A Reference Book for Schools,
Colleges, Universities and other Libraries,

राजस्थान
एक विस्तृत अध्ययन
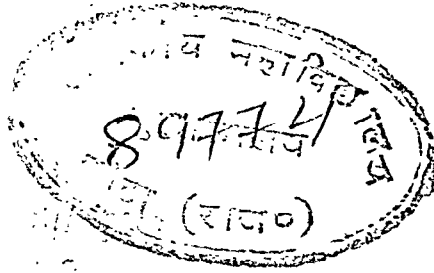
लेखक :
डॉ. एल. आर. भल्ला
भूगोल विभाग
दयानन्द कॉलेज, अजमेर

कुलदीप पब्लिकेशन्स्
अजमेर–305001

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक 'राजस्थान-एक विस्तृत अध्ययन' जहाँ एक ओर विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले उम्मीदवारों की उस कमी की पूर्ति करेगी जिसे वे एक लम्बी अवधि से प्रमाणिक पुस्तक न होने के कारण अनुभव कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर राजस्थान में रूचि रखने वाले सभी पाठकों को भी एक सन्दर्भ पुस्तक के रूप में सभी आवश्यक जानकारी उपलब्ध करवा कर उन्हें सन्तुष्टि प्रदान करेगी, ऐसी आशा है।

प्रस्तुत पुस्तक चूंकि राजस्थान के विषय में जानकारी प्राप्त करने वाले इच्छुक पाठकों को दृष्टिगत रखते हुए लिखी गई है, इसलिये राजस्थान राज्य से सम्बन्धित भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक विकास तथा अन्य तथ्यों की जानकारी को विवेचनात्मक व विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही राजस्थान की नवीनतम घटनाओं, सामग्री एवं आंकड़ों का समावेश कर पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाने की चेष्टा की गई है। पुस्तक लेखन में प्रमाणिक शब्दों एवं बोधगम्य भाषा का प्रयोग भी किया गया है। आशा की जाती है कि पाठकगण इसे पसन्द करेगें।

पुस्तक की रचना में जिन ग्रन्थों, लेखों व अन्य प्रकाशित विषय सामग्री से जो सहयोग लिया गया है, लेखक उनके प्रति हृदय से आभारी है।

लेखक कुलदीप पब्लिकेशन्स् के प्रति भी आभारी है जिनके अथक प्रयासों व प्रेरणा से यह पुस्तक आपके हाथों में है।

अन्त में परीक्षार्थियों व अन्य पाठकों से अनुरोध है कि वे इस पुस्तक के बारे में अपने उपयोगी व बहुमूल्य सुझाव भेजकर आगामी संस्करण को और अधिक उपयोगी बनाने में सहयोग प्रदान करेंगे, ऐसी अपेक्षा है।

एल. आर. भल्ला

विषय-सूची

भाग II

सभ्यता एवं इतिहास

(Civilization & History)

भाग III

संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था

(Culture and Social System)

भाग VI
आर्थिक विकास कार्यक्रम एवं प्रशासनिक व्यवस्था
(Economic Development Programmes & Administrative Set up)

1 राजस्थान : एक परिचय

राजस्थान भारत के 25 राज्यों में से एक है जो देश के लगभग 10.43 प्रतिशत क्षेत्र पर विस्तृत है। क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान मध्य प्रदेश के बाद भारत का दूसरा सबसे बड़ा प्रान्त है। जनसंख्या की दृष्टि से इसका स्थान नवां है लेकिन घनत्व के अनुसार यह पन्द्रहवां स्थान रखता है। राज्य के लगभग दो तिहाई हिस्से पर थार मरुस्थल है फिर भी बंजर भूमि, पेयजल का अभाव, सूखा, अकाल, आर्थिक धनाभाव जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी यहाँ का आदमी जीने का आदी रहा है। यह बात और है कि इन कठिनाईयों से उबर कर प्रवासी राजस्थानियों ने देश भर में बड़े-बड़े उद्योग लगाये हैं, व्यापार को बढ़ाया है और देश की आर्थिक व्यवस्था में उनकी एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

यहाँ की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है किन्तु भूमि की उत्पादन क्षमता बहुत कम है। राज्य में उत्पादन क्षमता प्रति हैक्टेयर 188 किलोग्राम है जबकि पंजाब में 718 किलोग्राम, हरियाणा में 474 किलोग्राम और हिमाचल प्रदेश में 238 किलोग्राम है। इस प्रकार राजस्थान का स्थान उत्पादन क्षमता की दृष्टि से देश में नवां है। इसके प्रमुख कारण जैसे भूमि का रेतीला होना, सिंचाई की कमी, उर्वरकों का कम प्रयोग, किसानों का आर्थिक पिछड़ापन, निरक्षरता आदि हैं। राजस्थान का कृषक प्रति हैक्टेयर 8 किलोग्राम खाद प्रयोग में लेता है जबकि पंजाब में 118 किलोग्राम, तामिलनाडू में 63 किलोग्राम, उत्तर प्रदेश में 49 किलोग्राम खाद प्रति हैक्टेयर काम में लायी जाती है। इस दिशा में राजस्थान का स्थान सोलहवां है।

राज्य में भारत के पशुधन का 11 प्रतिशत होने के कारण यह इस दृष्टि से प्रमुख राज्य है। राज्य में लगभग 4.96 करोड़ पशु है जो 1988-89 तक लगभग 5.60 करोड़ हो जाने की आशा है। प्रदेश की प्रति हजार जनसंख्या पर लगभग 1210 पशु है। क्षेत्रफल की दृष्टि से पशुओं का औसत घनत्व 120 पशु प्रति वर्ग किलोमीटर है। यह भारत के औसत 112 पशु प्रति वर्ग किलोमीटर से अधिक है।

सिंचाई के अन्तर्गत अब राजस्थान में कुल बोये गये क्षेत्रफल का मात्र 23 प्रतिशत है, किन्तु यह देश के औसत सिंचित क्षेत्र 32 प्रतिशत से कम है। राज्य के कृषित क्षेत्र का लगभग 46 प्रतिशत क्षेत्र पश्चिम के सूखे भाग में है और इसमें से केवल 6 प्रतिशत क्षेत्र में ही सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। आर्द्र भाग में राज्य का पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी भाग है जिसमें कृषित क्षेत्र का 53 प्रतिशत सम्मिलित है। इस भाग के 26 प्रतिशत क्षेत्र में ही सिंचाई की सुविधाएं प्राप्त है। इंदिरा गांधी नहर तथा इसकी शाखाओं के निर्माण के पूरा होने से वृद्धि तो होगी लेकिन फिर भी राज्य के पश्चिमी भाग का अधिकांश हिस्सा इससे अछूता ही रह जायेगा।

बिजली उत्पादन एवं उपभोग की दृष्टि से राजस्थान में अभी तक 49.9 प्रतिशत गाँवों का विद्युतीकरण हुआ है जबकि पंजाब, केरल, हरियाणा का शतप्रतिशत; तमिलनाडू का 99 प्रतिशत और महाराष्ट्र का 86.6 प्रतिशत विद्युतीकरण हो चुका है। इस दिशा में राजस्थान का स्थान नवां है। प्रति व्यक्ति बिजली का औसत उपभोग भी बहुत कम है।

परिवहन की दृष्टि से राजस्थान भारत के 25 राज्यों में से सोलहवें स्थान पर है। एक सौ वर्ग कि.मी. पर कुल 20.34 कि. मी. सड़कों का निर्माण हुआ है जबकि केरल में 268.25 कि. मी., तमिलनाडू में 98.25 कि. मी. और पंजाब में 91.18 कि. मी. का निर्माण हो चुका है। डेढ़ हजार से अधिक की जनसंख्या वाले सभी गांव अभी सड़कों से जुड़े हुए नहीं हैं लेकिन 1990 तक इन्हें सड़कों से जोड़ दिये जाने के लिये युद्ध स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं।

औद्योगिक दृष्टि से यह अत्यन्त पिछड़े हुए राज्यों में से एक है। यहाँ उद्योगों का रोजगार उत्पादन स्त्रोत की दृष्टि से अधिक महत्व नहीं है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के बाद राज्य में औद्योगिक इकाईयों की संख्या बढ़ रही है। 1951 में राज्य में लगभग 240 पंजीकृत औद्योगिक

इकाईयां थी जो 1986-87 में 7150 हो गई लेकिन अन्य राज्यों की दृष्टि से यह प्रगति प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती। सार्वजनिक क्षेत्र के बहुत कम कारखाने इस क्षेत्र को मिले हैं। कुछ कारखाने जैसे कोटा इंस्ट्रूमेन्टेशन, अजमेर का हिन्दुस्तान मशीन टूल्स एवं घड़ियों का कारखाना, खेतड़ी की तांबा परियोजना, उदयपुर का जिंक स्मेल्टर, सांभर साल्ट्स लिमिटेड इत्यादि हैं जो अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। यहाँ हस्त शिल्प एवं गृह उद्योग के विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं, जिनके उत्पाद विदेशों को और अधिक निर्यात हो सकते हैं किन्तु इनके विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इस दिशा में उचित प्रयास किये जाने चाहिये।

राजस्थान में विभिन्न प्रकार के खनिजों की उपलब्धता के कारण इसे खनिजों का अजायबघर कहा जाता है। खनिज भण्डारों की दृष्टि से बिहार के बाद राजस्थान का स्थान देश में दूसरा है। 1960 में राज्य के खनिज उत्पादनों का मूल्य 20 करोड़ रुपये था जो अब बढ़कर 130 करोड़ रुपये हो गया है। राज्य की कुल जनसंख्या का 5 प्रतिशत इनमें संलग्न है किन्तु यह प्रतिशत देश के औसत 12 प्रतिशत से बहुत कम है। खनिजों के विकास की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं। सीमेन्ट के क्षेत्र में तो यह भारत का अग्रणी प्रान्त हो सकता है किन्तु खेद है कि अभी तक कोटा-चित्तौड़गढ़ के बीच चौड़ी रेल लाइन बिछाने का कार्य भी पूरा नहीं हुआ है।

आवश्यकता को देखते हुये राजस्थान का योजनाबद्ध विकास धनाभाव के कारण सदा से पिछड़ा हुआ रहा है। छठी पंचवर्षीय योजना में राजस्थान को 2025 करोड़ रु. की राशि जबकि अन्य विकसित प्रान्तों को इससे कहीं अधिक राशि मिली। राजस्थान को सर्वाधिक धन की आवश्यकता है किन्तु इस दिशा में भी इसका स्थान दसवां रहा। महाराष्ट्र को सर्वाधिक 6175 करोड़ रुपये, मध्य प्रदेश को 5850 करोड़ रु., उत्तर प्रदेश को 3800 करोड़ रु. मिले। प्रश्न है आवश्यकता के अनुसार क्षेत्रीय विकास का। गॉडलिग फार्मूले से राजस्थान को मिल रही सहायता इसके विकास के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि यह रेगिस्तान है और गांवों, ढाणियों के बीच की दूरियां बहुत हैं। सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राजस्थान को 3000 करोड़ की राशि उपलब्ध कराये जाने का प्रावधान केन्द्र द्वारा किया गया है लेकिन विभिन्न केन्द्र प्रवर्तित योजनाओं के अन्तर्गत सातवीं योजना की अवधि में कम से कम 1500 करोड़ रुपये की केन्द्रीय सहायता प्राप्त करने के अतिरिक्त प्रयास किये जा रहे हैं।

वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये राज्य के त्वरित विकास के हेतु तीन प्राथमिकतायें जैसे ऊर्जा, पेयजल तथा सिंचाई अनुभव की जाती है। इसीलिये सातवीं पंचवर्षीय योजना में इन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है ताकि गतवर्षों में इन क्षेत्रों में हुये कम विकास की गति को तेज कर विद्युत उत्पादन, सिंचाई के साधनों में विस्तार और समस्त गांवों को पेयजल सुविधाओं से जोड़ा जा सके तथा वर्ष प्रतिवर्ष पड़ने वाले सूखे एवं अकाल की स्थिति से राज्य को उबारा जा सके।

राज्य का विकास आवश्यक है न केवल राज्य के हित के लिए वरन् समग्र राष्ट्र के लिए भी। क्षेत्रीय असन्तुलन राष्ट्रीय, आर्थिक एवं राजनैतिक अस्तित्व के लिए घातक है। वस्तुस्थिति कठोर परिश्रम, प्राथमिकताओं के अनुसार योजनाबद्ध विकास एवं साधनों की मांग कर रही है। यह गुरुतर कार्य जहाँ समग्र स्थानीय शक्ति के उचित उपयोग पर निर्भर करता है वहाँ इसके लिए भारी केन्द्रीय सहयोग की आवश्यकता है। अनेक ऐसे आधारभूत साधन हैं जैसे रेल, सिंचाई योजनाएँ, बिजली, खनिज सम्पदा का विकास आदि जिनके विकास का प्रमुख भार केन्द्र को उठाना होगा। कठोर परिश्रम से मनुष्य क्या नहीं कर सकता। अगर चाहे तो कोई कारण नहीं कि स्वर्ण गर्भित यह मरुधर प्रदेश विकास की ऊँचाईयों को प्राप्त न कर सके और भारत के अन्य विकसित राज्यों में अपना स्थान न बना सके।

स्थिति एवं विस्तार

राजस्थान राज्य भारत के उत्तरी-पश्चिमी भाग में स्थित है। इसकी भौगोलिक स्थिति $23^{0}3'$ से $30^{0}12'$ उत्तरी अक्षांसों तथा $69^{0}30'$ से $78^{0}17'$ पूर्वी देशान्तरों के मध्य है।[1] इसके उत्तर में पंजाब, दक्षिण में गुजरात,

1. The Imperial Gazetteer of India, 1908, Vol, XXI.

पश्चिम में पाकिस्तान तथा पूर्व में उत्तर प्रदेश है। उत्तर-पूर्व में हरियाणा व देहली तथा दक्षिण-पूर्व में मध्य प्रदेश है। भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान पूर्व में गंगा-यमुना नदियों के मैदान, दक्षिण-पश्चिम में गुजरात के उपजाऊ मैदान, दक्षिण में मालवा के पठार तथा उत्तर एवं उत्तर-पूर्व में सतलज-व्यास नदियों के मैदान द्वारा घिरा हुआ है। कर्क रेखा राजस्थान की दक्षिणी सीमा को छूती हुई निकलती है। इसका आकार विषम-कोण चतुर्भुज (Rhombus) के समान है। राजस्थान राज्य की लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक 826 किलोमीटर व चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक 869 किलोमीटर है।[2] राजस्थान की स्थलीय सीमा लगभग 5920 किलोमीटर लम्बी है जिसमें से 1070 किलोमीटर अन्तर्राष्ट्रीय-सीमा है जो पाकिस्तान से मिली हुई है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत का दूसरा बड़ा राज्य है। इसका क्षेत्रफल 3,42,214 वर्ग किलोमीटर है जो भारत के लगभग 10.74 प्रतिशत क्षेत्रफल के बराबर है। भारत में मध्य प्रदेश सबसे बड़ा राज्य है तत्पश्चात् क्रमशः राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश व आंध्र प्रदेश आदि राज्यों का स्थान है। क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान की तुलना यदि विश्व के देशों से की जाये तो ज्ञात होगा कि राजस्थान, श्रीलंका से पांच गुना, चेकोस्लोवाकिया से तीन गुना, इजराइल से 17 गुना तथा इंग्लैण्ड से दुगुने से भी बड़ा है। जापान की तुलना में राजस्थान कुछ ही छोटा है। इस प्रकार राजस्थान राज्य के विस्तार का अनुमान लगाया जा सकता है।

राजस्थान की सीमाएं

राजस्थान की उत्तरी सीमा हरियाणा व पंजाब से, पूर्वी सीमा उत्तर प्रदेश से, दक्षिणी-पूर्वी सीमा मध्य प्रदेश से और दक्षिण-पश्चिमी सीमा गुजरात राज्य से जुड़ी है। पश्चिमी सीमा पाकिस्तान से लगी है जो 1070 किलोमीटर लम्बी है। इस सीमा पर गंगानगर, बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर जिलों की सीमा स्थित है। यह सीमा उत्तर में फाजिल्का से 10 किलोमीटर दक्षिण से प्रारम्भ होकर पश्चिम में शाहगढ़ तक चली गई है और आगे कच्छ की खाड़ी के उत्तर-पूर्वी सिरे पर समाप्त हो जाती है। पाकिस्तान की ओर सीमा पर बहावलपुर, खैरपुर और मीरपुर खास जिले हैं। यह सीमा चूंकि मरुभूमि में से गुजरती है तथा सीमावर्ती राज्यों में यह सबसे लम्बी है। इस दृष्टि से इस मरुभूमि क्षेत्र के विकास की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। सीमावर्ती क्षेत्र में जहाँ पाकिस्तान से घुसपैठ और तस्करी रोकने के लिये चौकसी जरूरी है, वहीं इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का जीवनस्तर उठाने की समस्या भी बड़ी जटिल है। केन्द्रीय सरकार ने राज्य के सीमावर्ती क्षेत्रों के विकास के लिये सातवीं योजना में 2 अरब रुपये का प्रावधान किया है परन्तु इस क्षेत्र की भौगोलिक दशाओं और परिस्थितियों को देखते हुये यह राशि पर्याप्त नहीं है, इसे और बढ़ाये जाने की जरूरत है।

भौगोलिक दृष्टि से भारत व पाकिस्तान दोनों एक ही उप महाद्वीप के अंग होने के कारण एक हैं लेकिन राजनीतिक दृष्टि से दोनों अलग-अलग राष्ट्र हैं। भारत व पाकिस्तान के मध्य प्राकृतिक सीमाएँ नहीं हैं इसलिये आये दिन कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अगर भारत व पाकिस्तान के बीच अच्छे पड़ौसी की भांति सम्बन्ध बने रहे तो इस सीमा का उपयोग थल व्यापार की सुविधा के लिए तथा दोनों देशों के निवासियों के बीच संस्कृति का आदान-प्रदान करने के लिए हो सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत व पाकिस्तान के बीच की सीमा न केवल राजस्थान बल्कि देश के लिए बड़ी महत्वपूर्ण है।

'राजस्थान' नाम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वर्तमान राजस्थान के लिए पहले किसी एक नाम का प्रयोग इसकी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में नहीं पाया जाता। प्राचीन तथा मध्य युग में राजस्थान के अलग-अलग प्रदेशों के भिन्न-भिन्न नाम थे और उनके कुछ विभाग अन्य प्रदेशों के अन्तर्गत आते थे। वर्तमान बीकानेर और जोधपुर के जिले, महाभारत काल में 'जांगल' देश कहलाते थे। कभी-कभी इनका नाम 'कुरु जांगलाः' और 'माद्रेय जांगलाः' भी मिलता है जो कुरु और मद्र के पड़ौसी देशों के नाम से सम्बन्धित था।

2. India 1983, Govt. of India, P.P. 7-12

इसकी राजधानी अहिच्छत्रपुर थी, जिसको इस समय '**नागौर**' कहते हैं। गंगानगर के आस-पास का प्रदेश '**यौद्धेय**' कहलाता था।

जांगल देश के आस-पास के भाग को '**सपादलक्ष**' कहते थे, जिस पर चौहानों का अधिकार था। उन्हें इसलिए 'सपादलक्षीय नृपति' भी कहते थे जब उनके राज्य का विस्तार हुआ, तो राज्य की राजधानी शाकम्भरी (सांभर) हो गयी और वे 'शाकम्भरीश्वर' कहे जाने लगे। जब इनकी राजधानी अजमेर हुई तब इनके राज्य विस्तार में मारवाड़, बीकानेर, दिल्ली और मेवाड़ के बहुत से भाग सम्मिलित थे।

प्राचीन काल में उत्तरी भारत में कुरु, मत्स्य और शूरसेन के राज्य बहुत विस्तृत थे। अलवर राज्य का उत्तरी भाग कुरु देश के दक्षिण और पश्चिमी भाग मत्स्य देश के पूर्वी भाग शूरसेन देश के अन्तर्गत था।

भरतपुर और धौलपुर राज्य तथा करौली राज्य के अधिकांश भाग '**शूरसेन देश**' के अन्तर्गत थे जयपुर-टोंक के चारों ओर का प्रदेश '**विराट**' कहलाता था।

उदयपुर राज्य का प्राचीन नाम '**शिवि**' था जिसकी राजधानी मध्यमिका थी। आजकल मध्यमिका को नगरी कहते हैं जो चित्तौड़ के 7 मील उत्तर में है। वहाँ पर मेव जाति का अधिकार रहा जिससे उसे मेदपाट या प्राग्वाट भी कहा जाने लगा। डूँगरपुर, बांसवाड़ा के प्रदेश को व्याघ्रवाट; बाद में **वागड़** कहते थे। आज भी यह भाग उसी नाम से जाना जाता है। जोधपुर के राज्य को मरु और फिर मरुवार और **मारवाड़** कहा जाने लगा। जोधपुर-पाली का समीपवर्ती प्रदेश **गुर्जरत्रा** कहलाता था, बाड़मेर का प्रदेश पहले श्रीमाल, बाद में भीनमाल, वर्तमान में बाड़मेर तथा जैसलमेर राज्य का पुराना नाम माड तथा आसपास का प्रदेश वल्ल और दुंगल नाम से जाना जाता था। जालोर को **स्वर्णगिरी** और सिरोही के हिस्से की गणना आर्बूद देश में होती थी। सिरोही आबू के आस-पास का प्रदेश '**चन्द्रवती**' कहलाता था। कोटा तथा बूंदी, जो पहले सपादलक्ष के अन्तर्गत थे, के आस-पास का क्षेत्र हयहय तथा बाद में **हड़ौती** कहलाने लगा। झालावाड़ राज्य और टोंक के छबड़ा, पिरावा तथा सिरोंज मालव देश के अन्तर्गत माने जाते थे।

इसी प्रकार भौगोलिक विशेषताओं को लेकर भी कुछ राजस्थान के भागों के नाम रखे गये थे। उदाहरणार्थ माही नदी के पास वाले प्रतापगढ़ के भू-भाग को **कांठल** कहा जाता था क्योंकि वह माही नदी के कांठे अर्थात् किनारे का या सीमा का भाग था। प्रतापगढ़ और बांसवाड़ा के बीच के भागों में 56 ग्राम समूह थे अतएव उस भाग का नाम **छप्पन** कहलाने लगा। डूंगरपुर और बांसवाड़ा के बीच के भाग को मेवल और देवलिया और मेवल के निकटवर्ती प्रदेश को **मूढ़ोल** (मण्डल) कहते थे, क्योंकि वह एक स्वतन्त्र मण्डल था। भैंसरोडगढ़ से लेकर बिजोलिया के पठारी भाग को **ऊपरमाल** कहते थे। जरगा और रागा के पहाड़ी भाग हमेशा हरे-भरे रहते थे अतएव इसे '**देशहरो**' कहा जाता था। उदयपुर के आस-पास पहाड़ियाँ होने से उस प्रान्त को **गिरवा** कहते थे। इस प्रकार जिस देश के भू-भाग को हम राजस्थान कहते हैं वह किसी विशेष नाम से कभी प्रसिद्ध नहीं रहा। देश के इस भू-भाग में राजपूतों की सार्वभौमिक सत्ता होने के कारण शायद अंग्रेजों ने इसे राजपूताना के नाम से पुकारा, जैसे गोंड तथा तेलगांज के अधिक प्रभुत्व होने के कारण उनके प्रान्त गोंडवाना तथा तेलगांना कहलाये। श्री जार्ज थामस ने सन् 1800 में देश के इस भाग के लिए सर्व प्रथम '**राजपूताना**' शब्द का प्रयोग किया। राजपूताने के प्रथम और प्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने पुराने अभिलेख के अनुसार इस राज्य का नाम 'रजवाड़ा', रायथान या राजस्थान दिया है जो राजाओं या उनके राज्य का सूचक है।

कालान्तर में राज्य के लिए रायथान की अपेक्षा राजस्थान शब्द का प्रयोग किया जाने लगा और आज भी एक इकाई के रूप में यह इसी नाम से जाना जाता है।

राजस्थान का बदलता मानचित्र

राजस्थान शब्द का उल्लेख कर्नल टॉड ने 1829 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'एनालस एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान' में किया। देश के इस भाग के राजपूतों की सार्वभौमिक सत्ता होने के कारण शायद अंग्रेजों ने इसे राजपूताना के नाम से पुकारा। 19वीं शताब्दी के पूर्व

ाये
ा।
कर
वीं
भर
ार
ण-
टा
हा
दी
ड़
38
में
।।
कि

ण
ही
ना
में
गे
।
ल

सेन
न

में
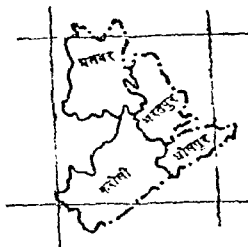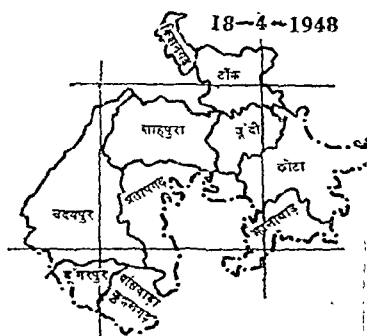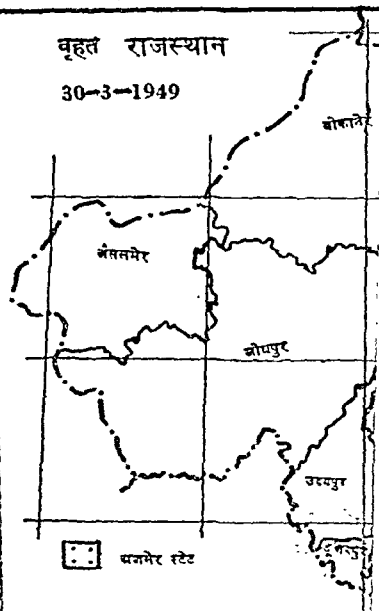
इस भाग के अलग-अलग प्रदेश अलग-अलग नामों से जाने जाते थे। प्राचीन भारत में गंगानगर के आस-पास के प्रदेश योद्धेय, बीकानेर के चारों ओर का प्रदेश जांगल, नागौर के चारों ओर का प्रदेश अहिच्छत्रपुर, जोधपुर, पाली का समीपवर्ती प्रदेश गुर्जर प्रदेश, बाड़मेर का प्रदेश श्रीमाल, बाद में भीनमाल, वर्तमान बाड़मेर, जैसलमेर के आस-पास का प्रदेश वल्ल और दुंगल, जलौर को स्वर्णगिरी, सिरोही आबू के आस-पास का प्रदेश चन्द्रवती, उदयपुर चित्तौड़ का क्षेत्र शिवि, बाद में मेदपाट और मेवाड़ कहलाया। डूंगरपुर और बाँसवाड़ा का प्रदेश व्याघ्रवाट, बागड़, बाद में डूंगरपुर और बाँसवाड़ा बने। काँठल जो बाद में देवलिया और प्रतापगढ़ कहलाया, अलवर का समीपवर्ती प्रदेश कुरु, भरतपुर, करौली और धौलपुर क्षेत्र शूरसेन, कोटा बूंदी के आस-पास का क्षेत्र हयहय तथा जयपुर, टोंक के चारों ओर का प्रदेश विराट कहलाये। इस प्रकार स्थानों और क्षेत्रों के नाम समय के साथ-साथ बदलते रहे हैं।

तत्कालीन राजपूताने (वर्तमान राजस्थान) का अतीत ज्ञात करने के लिए प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। बैराठ में ईसा से लगभग 250 वर्ष पूर्व के समय के दो शिलालेख मिले हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि अशोक का राज्य पश्चिम की ओर राजस्थान के इस भाग तक अवश्य विस्तृत था।

चीन यात्री ह्वेन चांग (सन् 629 से 645) जब भारत में आया था, उस समय तत्कालीन राजपूताना में निम्न भाग विभिन्न राज्यों में पाये जाते थे—

(1) बीकानेर और शेखावटी के भाग गुर्जर राज्य के अंग थे।

(2) दक्षिण व कुछ मध्य राजस्थान के राज्य बदारी राज्य में सम्मिलित थे।

(3) जयपुर, अलवर तथा टोंक के भाग बैराठ के अन्तर्गत थे।

(4) भरतपुर, धौलपुर व करौली के क्षेत्र मथुरा राज्य में गिने जाते थे।

(5) उज्जैन के राज्य में कोटा, झालावाड़ तथा टोंक का कुछ भाग सम्मिलित था।

7वीं शताब्दी के प्रारम्भ से 11वीं शताब्दी तक अनेक राजपूत राजवंशों का उदय हुआ। गहलोत जो कि आजकल सिसोदिया कहलाते हैं, गुजरात से यहाँ आये और दक्षिणी-पश्चिमी भाग को अपने अधीन कर लिया। इसके कुछ वर्षों पश्चात् परिहार वंश के लोग आकर जोधपुर के निकट मंडोर में राज्य करने लगे। 8वीं शताब्दी में चौहान व भाटी वंश के लोग क्रमशः सांभर व जैसलमेर में आकर बस गये। सबके पश्चात् परमार और सोलंकी वंश आये। चौहान वंश धीरे-धीरे दक्षिण-पश्चिम में और दक्षिण-पूर्व में सिरोही, बूंदी और कोटा की ओर बढ़ने लगे। सन् 1128 के लगभग कछवाहा वंश ग्वालियर से आकर जयपुर में तथा 13वीं शताब्दी के आरम्भ में कन्नौज से राठौड़ वंश आकर मारवाड़ में रहने लगा। झालावाड़ का झाला राज्य सन् 1838 में स्थापित हुआ। भरतपुर, धौलपुर आदि में जाट वंश ने 18वीं सदी के मध्य में प्रभुत्व जमा लिया। अंग्रेजों के कृपापात्र एवं प्रसिद्ध सरदार अमीरखाँ को टोंक रियासत वाला क्षेत्र सन् 1817 में दे दिया गया।

28 जुलाई, 1818 को अजमेर अंग्रेजों के नियन्त्रण में चला गया। धीरे-धीरे अंग्रेजों ने राजपूताने की समस्त रियासतों पर अप्रत्यक्ष रूप में प्रभुत्व जमा लिया। ब्रिटिश सरकार ने इन रियासतों को दो वर्गों में बांटा-'रियासत' तथा 'ठिकाना'। रियासत के राजा को 'महाराजा' अथवा महाराणा का खिताब प्राप्त था। ठिकानेदारों को यह खिताब उपलब्ध नहीं था। वे केवल ठिकानेदार अथवा जागीरदार कहलाते थे।

ब्रिटिश साम्राज्य में प्रान्तों का निर्माण केवल प्रशासनिक, सुरक्षा, सैनिक एवं बचत के दृष्टिकोण से किया गया। ब्रिटिश शासन काल में राजस्थान निम्न चार एजेन्सियों में विभक्त था—

(1) मेवाड़ और दक्षिण राजपूताना एजेन्सी में उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, कुशलगढ़, चीफ-शिप इंडर और विजय नगर राज्य थे।

(2) जयपुर एजेन्सी, जयपुर में जयपुर. अलवर, टोंक, किशनगढ़, शाहपुरा तथा लावा चीफ-शिप थे।

(3) पश्चिम राजपूताना स्टेट एजेन्सी, जोधपुर में जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, पालनपुर, सिरोही और दांता राज्य थे।

(4) राजपूताना स्टेट्स एजेन्सी, कोटा में कोटा, बूंदी, झालावाड़, भरतपुर, धौलपुर और करौली राज्य थे।

प्रत्येक रियासत का एक-एक रेजिडेन्ट नियुक्त किया और सबके ऊपर केन्द्र शासित अजमेर में पॉलिटिकल एजेन्ट का दफ्तर स्थापित किया गया। इन रियासतों को भी उन्होंने अपने अन्तर्गत पूर्णत: लाने के लिए 19वीं शताब्दी के मध्य में प्रयास किये परन्तु 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के कारण अनायास उन्होंने इन रियासतों के एकीकरण करने का विचार त्याग दिया। इन सभी रियासतों को उन्होंने राजपूताना के नाम से पुकारा।

समय परिवर्तन के साथ राजनैतिक जाग्रति आई। 23 जून, 1947 को भारत स्वतन्त्रता कानून, इंग्लैण्ड की तत्कालीन श्रमिक दल की सरकार के तत्वाधान में वहाँ की संसद में स्वीकृत हुआ। इस कानून ने देशी रियासतों को उनके महाराजाओं की इच्छा पर छोड़ दिया कि वे चाहें तो स्वतन्त्र रहें अथवा किसी भी संघ (भारत अथवा पाकिस्तान) में मिलें।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ। इस समय चार रियासतों-डूंगरपुर, अलवर, भरतपुर व जोधपुर के नरेशों ने स्वतन्त्र रहने की घोषणा की और कहा कि वे भारत संघ अथवा पाकिस्तान संघ में मिलना नहीं चाहते। इस समय उदयपुर के महाराजा भोपालसिंहजी, तत्कालीन बीकानेर नरेश स्वर्गीय श्री सादुलसिंहजी तथा कोटा के महारावल ने तत्कालीन रियासतों को भारत संघ में मिलने के लिए प्रेरित किया।

अन्त में तत्कालीन केन्द्रीय गृह मन्त्री स्वर्गीय लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की दूरदर्शिता एवं चतुराई के कारण राजपूताना के नरेशों ने भारत संघ में मिलना स्वीकार कर लिया।

वर्तमान राजस्थान की स्थापना होने के पूर्व यह 'राजपूताना' कहलाता था। इसमें 18 राजाओं की रियासतें, दो ठिकाने तथा अजमेर-मेरवाड़ा केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश सम्मिलित थे।

वर्तमान राजस्थान के निर्माण का कार्य सन् 1948 से प्रारम्भ होकर विभिन्न चरणों में होता हुआ सन् 1956 में पूरा हुआ। सर्वप्रथम अलवर, भरतपुर, धौलपुर व करौली रियासतों ने मिलकर 17 मार्च 1948 में **मत्स्य संघ** की स्थापना करके राजस्थान में रियासतों के एकीकरण का सूत्रपात कर दिया। इस मत्स्य संघ के राजप्रमुख महाराजा धौलपुर बनाये गये व राजधानी अलवर को रखा गया।

25 मार्च 1948 को बांसवाड़ा, कुशलगढ़, बूंदी, डूंगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा व टोंक आदि रियासतों ने एक अलग संघ राजस्थान के नाम से बना लिया जिसे **पूर्व राजस्थान** कहा गया। कोटा को इस संघ की राजधानी बनाकर महाराव कोटा को राजप्रमुख तथा महाराज डूंगरपुर उप-राजप्रमुख बनाये गये। वास्तव में राजस्थान संघ के निर्माण में यही प्रथम एवं दृढ़ कदम था।

18 अप्रेल 1948 को पूर्व राजस्थान संघ में उदयपुर रियासत भी सम्मिलित हो गई तथा इसका पुन: नामकरण **संयुक्त राजस्थान** राज्य हुआ। उदयपुर के महाराणा भोपालसिंह जी को संयुक्त राजस्थान का राजप्रमुख तथा महाराव कोटा को उप-राजप्रमुख बनाया गया। उदयपुर को इसकी राजधानी बनाया गया।

30 मार्च, 1949 को **वृहत राजस्थान संघ** की स्थापना संयुक्त राजस्थान में बीकानेर, जयपुर, जैसलमेर और जोधपुर राज्यों को मिलाकर की गई। अत: उदयपुर महाराणा को महाराज प्रमुख, जयपुर के महाराज सवाई मानसिंह जी को राजप्रमुख तथा कोटा नरेश को उप-राजप्रमुख बनाया गया। जयपुर नगर को राजधानी बनाया गया। वृहत राजस्थान का उद्घाटन सरदार पटेल ने 30 मार्च, 1949 को किया। पं. हीरालाल शास्त्री को वृहत राजस्थान संघ के प्रथम मुख्यमंत्री के रूप में शपथ दिलाई गई।

श्री शंकर राव देव की अध्यक्षता में एक समिति यह जानने के लिए कि मत्स्य संघ की जनता वृहत राजस्थान में सम्मिलित होना चाहती है अथवा नहीं, नियुक्त की गई। क्योंकि अलवर व करौली के नरेश तो संघ में सम्मिलित होने को तैयार थे, लेकिन धौलपुर, भरतपुर के नरेशों ने अपनी असहमति प्रकट की थी। इस कमीशन की सिफारिश पर भारत सरकार ने घोषणा की कि मत्स्य राज्य को शीघ्र ही वृहत राजस्थान में विलीन कर दिया जाये। फलस्वरूप 15 मई, 1949 को मत्स्य

राज्य को वृहत राजस्थान में मिलाकर संयुक्त वृहत्तर राजस्थान का निर्माण हुआ।

माघ शुक्ल 8, गुरुवार सम्वत 2006 दिनांक 26 जनवरी, 1950 को गणतन्त्र दिवस को अकेली बची हुई सिरोही रियासत भी भारत सरकार के अन्तर्गत अनुबन्ध करके आ गई और सदा के लिए संयुक्त वृहत्तर राजस्थान का भाग बन गई। अब इस महान् संघ संयुक्त वृहत्तर राजस्थान का नाम 'राजस्थान' कर दिया गया। प्रारम्भ में राजस्थान 'ब' राज्यों की सूची में रखा गया।

राजस्थान में मिला दिया गया। साथ ही राजस्थान के कोटा जिले का सिरोंज सवडिविजन मध्य भारत राज्य (वर्तमान मध्य प्रदेश) में मिला दिया गया। इस दिन राजस्थान भी 'अ' श्रेणी के प्रान्तों की सूची में आ गया।

इस प्रकार 1.11.56 से राजस्थान (मानचित्र सं. 1) राज्य भारत के अन्य राज्यों के समकक्ष हो गया तथा राज्यपाल की नियुक्ति होने लगी।

इस प्रकार वर्ष 1948 से प्रारम्भ होकर वर्ष 1956
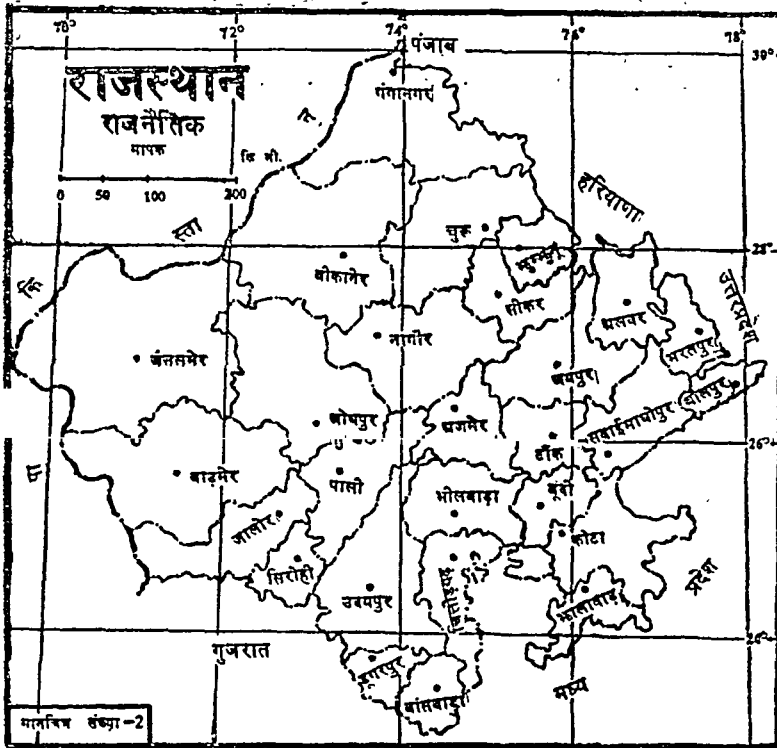
राजस्थान राजनैतिक मापक

राज्य पुनर्गठन आयोग, 1955 की रिपोर्ट के अनुसार राज्य की सीमा में पुन: परिवर्तन करने आवश्यक हो गये। भारत सरकार ने आयोग की सिफारिशें स्वीकार कर ली तथा राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 पास किया गया जो 1.11.56 से लागू हुआ। इस अधिनियम के अन्तर्गत अजमेर, मेरवाड़ा, आबू तहसील एवं मध्य भारत (वर्तमान मध्य प्रदेश) राज्य के मन्दसौर जिले की भानपुरा तहसील का सुनेल टप्पा वाला भाग

तक की अवधि में अनेक परिवर्तनों के पश्चात् राजस्थान का रूप, जो सामने आया, वह हमारे राजस्थान का वर्तमान रूप है। राजस्थान निर्माण का यह पुनीत कार्य इतिहास के पृष्ठों में स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेगा।

वर्तमान में राजस्थान को प्रशासन की दृष्टि से छ: सम्भागों एवं 27 जिलों में विभक्त किया गया है। राज्य की राजधानी जयपुर है।

राजस्थान में सरकार ने कमिश्नरी व्यवस्था 15 जनवरी, 1987 से पुन: लागू कर दी है जिसे पहले

1962 में समाप्त कर दिया गया था। राज्य में 6 कमीशनर कार्यालय एवं उनके अन्तर्गत आने वाले जिले निम्न प्रकार से हैं—

जयपुर संभाग— जयपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, सीकर एवं झुन्झुनू जिले।

जोधपुर संभाग— जोधपुर, जालौर, बाड़मेर, पाली, सिरोही व जैसलमेर जिले।

अजमेर संभाग— भीलवाड़ा, टोंक, नागौर व अजमेर जिले।

कोटा संभाग— कोटा, बूंदी, झालावाड़ व सवाई, माधोपुर जिले।

उदयपुर संभाग— उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा व चित्तौड़ जिले।

बीकानेर संभाग— बीकानेर, श्रीगंगानगर, चुरु जिले।

कलेक्टर पर कार्यभार बढ़ने और उन्हें पर्याप्त मार्ग-दर्शन देने के लिए यह व्यवस्था लागू की जा रही है। 1986-87 वर्ष अकाल राहत के लिये वरिष्ठ अधि-कारियों को लगाकर यह प्रयोग किया गया था, जो सफल रहा।

राजस्थान के सभी जिलों में क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा जिला जैसलमेर है जो 38,401 वर्ग कि.मी. में विस्तृत है जबकि धौलपुर जिला अपने 2,950 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल के साथ सबसे छोटा जिला है।

भाग I

प्राकृतिक, आर्थिक एवं मानवीय संसाधन

भौतिक स्वरूप

राजस्थान का क्षेत्रफल काफी अधिक होने के कारण इसका धरातल (मानचित्र सं. 3) सर्वत्र समान नहीं है। राजस्थान जिस स्थलाकृति पर विस्तृत है उसका आविर्भाव एक लम्बी अवधि में अनाच्छादन और अपरदन की प्रक्रियाओं के फलस्वरूप हुआ है। इस प्रदेश की शैल समूहों तथा भूगर्भीय संरचना ने राज्य की वर्तमान भू-आकृतियों को बड़े पैमाने पर प्रभावित तथा निर्धारित किया है।

राजस्थान का अधिकांश पश्चिमी व उत्तरी-पूर्वी भाग टेथिस महासागर का ही अवशेष है। राजस्थान के अरावली पर्वत विश्व के प्राचीनतम पर्वतों में से हैं जो गौंडवाना लैण्ड के ही भाग थे। राजस्थान का पूर्वी भाग गंगा-यमुना नदियों द्वारा निर्मित मैदान का ही भाग है। पश्चिम में थार का मरुस्थल है। दक्षिण-पूर्व का पठारी भाग गौंडवाना भूखण्ड का अवशेष है। अतः राजस्थान की स्थलाकृति में हर प्रकार की प्राकृतिक रचना दृष्टिगत होती है।
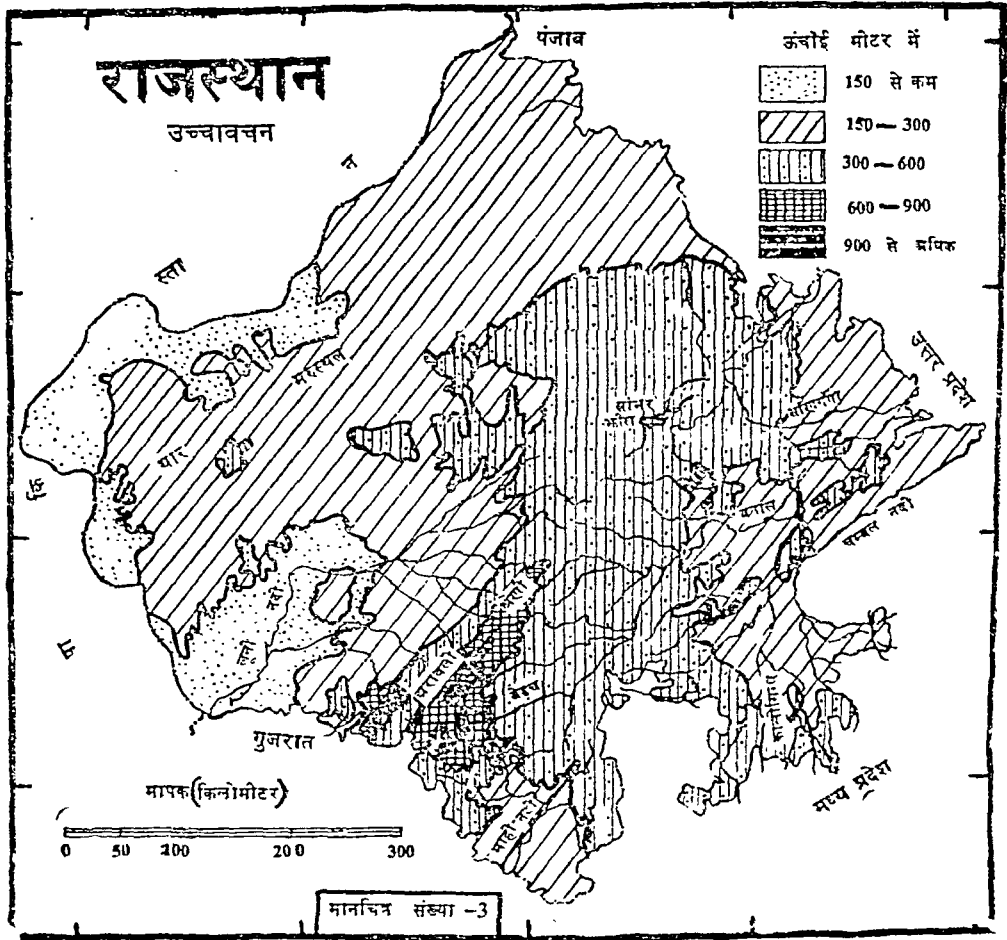
राजस्थान उच्चावचन

राजस्थान विश्व के प्राचीनतम भूखण्डों का अवशेष है। प्राग-ऐतिहासिक काल में विश्व दो-भूखण्डों (i) अंगारा लैण्ड, (ii) गौंडवाना लैण्ड में विभक्त था। इन दोनों भूखण्डों के मध्य टेथिस महासागर था।

जहां तक राजस्थान की प्राकृतिक रचना का प्रश्न है, सम्भवत: यह दो प्रकार की है—

(i) राजस्थान के अरावली पर्वत एवं दक्षिणी पठार गौंडवाना लैण्ड के भू-भाग हो सकते हैं क्योंकि इस गौंड-

वाना लैण्ड का एक अंश विलग हो कर उत्तर की ओर खिसक गया था जो अब दक्षिण के पठार के रूप में भारत का एक भौतिक भू-भाग है। इसकी प्रमाणिकता की पुष्टि में हम अरावली तथा दक्षिण-पूर्व के पठार की चट्टानों तथा उनमें पाये जाने वाले खनिजों को प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत कर सकते हैं। इसी प्रकार अरावली पर्वत भी कालान्तर में घिस-घिस कर काफी उबड़-खाबड़ तथा नीचे हो गये हैं।

(ii) राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी मरुप्रदेश तथा पूर्वी मैदान टेथिस सागर के अंग माने जाते हैं जो कालान्तर में नदियों द्वारा लाई गई तलछट के द्वारा पाट दिये गये हैं। राजस्थान के पूर्वी मैदान स्पष्टतया गंगा-यमुना नदियों द्वारा निर्मित है जबकि मरुप्रदेश के भू-भाग सरस्वती तथा अन्य नदियों द्वारा लाई गई तलछट से भर दिये गये हैं। इसलिए ऐसा माना जाता है कि थार का रेगिस्तान कभी हरा-भरा प्रदेश था और इसमें नदियां प्रवाहित होती थी। कालान्तर में पृथ्वी में हुई हलचल के कारण अथवा वर्षाविहीन प्रदेश बन जाने के कारण यह भू-भाग मरुभूमि में बदल गया। टेथिस सागर के अवशेष के रूप में राजस्थान में आज भी सांभर, डीडवाना व पचभद्रा आदि खारी झीलें मौजूद हैं।

भौतिक दृष्टि से राजस्थान भारत के दो मुख्य भौतिक विभागों—बड़े मैदान और केन्द्रीय उच्च भूमियों पर विस्तृत है। अरावली पर्वत श्रृंखला ने राजस्थान को वास्तव में उत्तरी-पश्चिमी भाग तथा दक्षिण-पूर्वी भाग में विभक्त कर दिया है। उत्तरी-पश्चिमी भाग पश्चिमी रेतीला मैदान के नाम से जाना जाता हैं जबकि दक्षिणी-पूर्वी भाग केन्द्रीय उच्च भूमि के उत्तरी भाग में विस्तृत है।

वर्तमान भौतिक स्वरूपों के आधार पर राज्य को निम्न भौतिक विभागों (मानचित्र सं. 4) में बांटा जा सकता है—

(1) पश्चिमी रेतीला मैदान

(अ) रेतीला शुष्क मैदान
- (i) मरुस्थली
- (ii) बालुका स्तूप मुक्त प्रदेश

(ब) अर्द्ध शुष्क मैदान अथवा राजस्थान बांगड़
- (i) लूनी बेसिन (ii) शेखावाटी प्रदेश
- (iii) नागौरी उच्च भूमि
- (iv) घग्घर मैदान
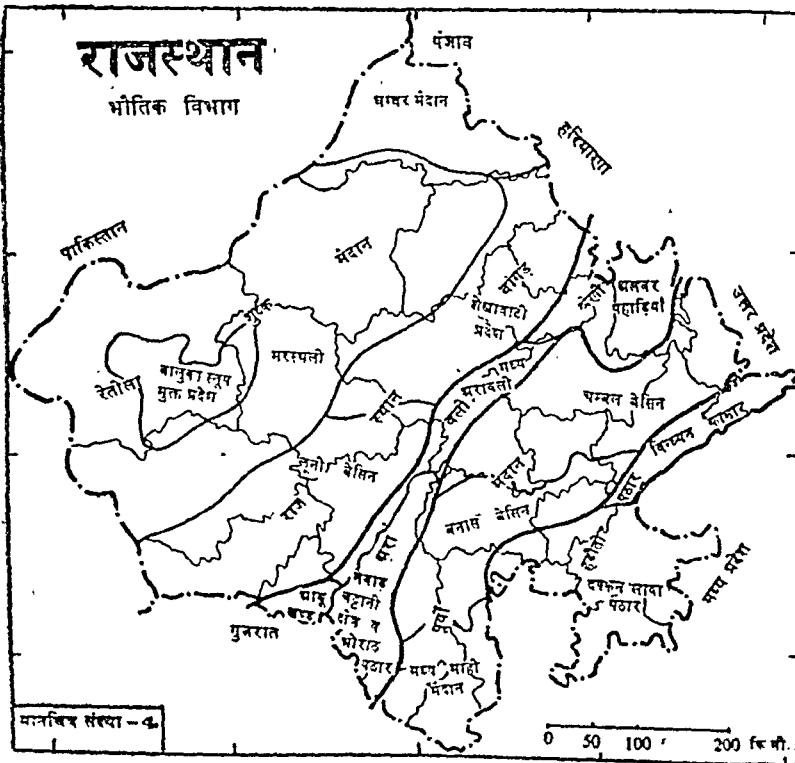
राजस्थान भौतिक विभाग

(2) अरावली श्रेणी और पहाड़ी प्रदेश
(अ) उत्तर-पूर्वी पहाड़ी प्रदेश अथवा अलवर पहाड़ियाँ।
(ब) मध्य अरावली श्रेणी
(i) सांभर वेसिन अथवा शेखावाटी निम्न पहाड़ियाँ।
(ii) मारवाड़ पहाड़ियाँ
(स) मेवाड़ चट्टानी क्षेत्र और भोराठ पठार
(द) आबू खण्ड प्रदेश
(3) पूर्वी मैदान
(अ) चम्बल वेसिन
(ब) बनास वेसिन
(स) छप्पन वेसिन (मध्य माही मैदान अथवा वागड़ भू-भाग)।
(4) दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान पठार (हड़ौती पठार)
(i) विन्ध्यन कागार
(ii) दक्कन लावा पठार

(1) पश्चिमी रेतीला मैदान—

रेतीला मैदान राजस्थान के बहुत बड़े भू-भाग पर अरावली श्रेणी के उत्तर-पश्चिम और पश्चिम में विस्तृत है। यह पश्चिमी रेतीला मैदान उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर लगभग 640 कि. मी. लम्बे तथा पश्चिम से पूर्व की ओर लगभग 300 कि.मी. चौड़े क्षेत्र पर लगभग 1,75,000 वर्ग कि.मी. क्षेत्र पर फैला है। इसकी पूर्वी सीमा उदयपुर जिले के उत्तरी शीर्ष तक अरावली श्रेणी के पश्चिमी उपपर्वतीय खण्ड द्वारा तथा इसके परे 50 से.मी. की वर्षा रेखा तथा महान् भारतीय जल विभाजक द्वारा अंकित है। इसप्रकार पश्चिमी रेतीले मैदान की पूर्वी सीमा अंशत: प्राकृतिक तथा अंशत: जलवायु से निर्धारित है। पश्चिमी सीमा भारत और पाकिस्तान के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है। उत्तरी सीमा पंजाब द्वारा तथा दक्षिणी-पश्चिमी सीमा गुजरात से निर्धारित है। राजनैतिक दृष्टि से इसमें श्रीगंगानगर, बीकानेर, चुरू, नागौर, जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, पाली, सिरोही, जालौर, सीकर व झुंझुनू आदि जिले सम्मिलित हैं।

साधारणतया इसे मैदान कहते हैं लेकिन इसकी धरातलीय सतह का बहुत बड़ा भाग बालू से ढका हुआ है परन्तु बीच-बीच में कहीं-कहीं चट्टानी सतह अथवा छोटी-छोटी पहाड़ियाँ पायी जाती हैं। प्रदेश का सामान्य ढाल पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण की ओर है। प्रदेश के उत्तरी तथा पूर्वी भाग की औसत ऊंचाई लगभग 300 मीटर तथा दक्षिणी भाग की औसत ऊंचाई जालौर-सिवाना उच्च भूमि के अतिरिक्त लगभग 150 मीटर है। उत्तरी-पश्चिमी भाग रेतीला तथा बंजर युक्त है। इसमें जल का अभाव अत्याधिक है।

राजस्थान मरुस्थल को उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर चार उपभौतिक प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार के विभाजन के लिये अरावली श्रेणी की अनावृत छोटी-छोटी पहाड़ियां तथा चट्टानी स्थलाकृतियाँ महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है।

(i) **महान मरुभूमि (Great Desert)**—राजस्थान मरुस्थल के सुदूर पश्चिम में स्थित महान मरुभूमि बालुकास्तूपों से ढकी है तथा भारत-पाक सीमा के सहारे-सहारे कच्छ की खाड़ी से पंजाब तक विस्तृत है।

(ii) **बाड़मेर-जैसलमेर-बीकानेर चट्टानी प्रदेश**—महान मरुभूमि के पूर्व में यह प्रदेश स्थित है जो बालुकास्तूपों से सर्वथा मुक्त है और यहाँ बड़ी संख्या में अनावृत चट्टानी शैल समूह पाये जाते हैं जो जुरेसिक से इयोसीन समुद्रीय शैल समूहों के वर्ग के हैं। इस प्रदेश में अवसादी शैल समूहों के कारण भूमिगत जल भी उपलब्ध है।

(iii) **लघु मरुस्थल (Little Desert)**— यह प्रदेश चट्टानी प्रदेश के पूर्व में कच्छ की खाड़ी से प्रारम्भ हो कर बीकानेर के उत्तर में महान मरुभूमि तक विस्तृत है।

(iv) **अर्द्ध-शुष्क प्रदेश (Semi-Arid Region)**—यह प्रदेश लूनी नदी के जलप्रवाह क्रम क्षेत्र में विस्तृत है।

अर्द्धशुष्क प्रदेश के उत्तरी भाग में डीडवाना, सांभर तथा अन्य खारी झीलें हैं। अत: यह स्पष्ट है कि इस रेतीले पश्चिमी मैदान के दक्षिणी-पूर्वी भाग के अतिरिक्त शेष भाग अन्तर्वर्ती प्रवाह क्षेत्र है जिसमें पानी व वनस्पति का अभाव प्रमुख है।

समस्त पश्चिमी रेतीला मैदान बालुकास्तूपों से ढका हुआ नहीं है बल्कि इसका बहुत बड़ा भाग लगभग 60% बालुकास्तूपों से अच्छादित हैं जिसके परिणामस्वरूप बालुकास्तूपों के विस्तार तथा उनकी मात्रा (मानचित्र सं. 5) इस प्रदेश की आर्थिक क्रियाओं को अत्यधिक प्रभावित करती है।

पश्चिमी राजस्थान में बालुकास्तूपों का विस्तार तथा मात्रा[1]

स्तूपों का विस्तार	क्षेत्रफल वर्ग कि.मी. में	कुल क्षेत्र का प्रतिशत
स्तूप नहीं	85,660	41.50
0 से 20% क्षेत्र प्रभावित	24,856	11.50
20% से 40% ,,	10,165	4.80
40% से 60% ,,	34,322	14.70
60% से 80% ,,	39,782	18.60
80% से 100% ,,	18,903	8 90
कुल	213,688	100.00

पश्चिमी रेतीले मैदान का विभाजन दो मुख्य उप इकाइयों में किया जा सकता है—

(अ) रेतीला शुष्क मैदान

इसके पुनः दो भाग किये जाते हैं—

(i) मरुस्थली

(ii) बालुकास्तूप मुक्त प्रदेश

(ब) अर्द्ध शुष्क मैदान अथवा राजस्थान बांगर

इसके पुनः चार भाग किये जाते हैं—

(i) लूनी बेसिन अथवा गोडवार प्रदेश

(ii) आन्तरिक प्रवाह का मैदान (शेखावाटी प्रदेश)

मानचित्र संख्या-5
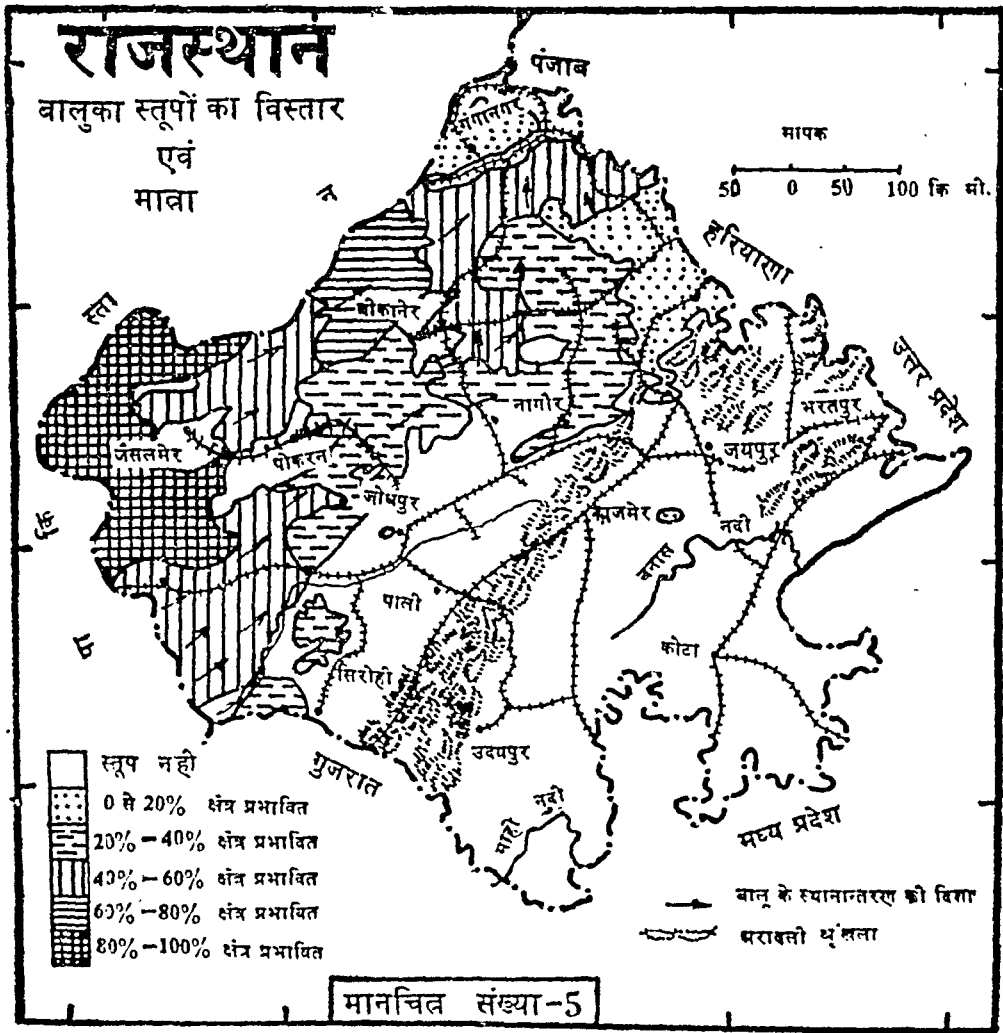
1. Raheja, P. C. & A. K. Sen : 'Resources in Perspective' Recent Developments in Rajasthan, Souvenir Volume, (Govt. of India, Jodhpur) 1964, P. 15.

(iii) नागौरी उच्च प्रदेश

(iv) घग्घर मैदान

रेतीले शुष्क मैदान और अर्द्ध शुष्क मैदान को विभाजित करने वाली रेखा 25 से.मी. वर्षा रेखा है।

(अ) रेतीला शुष्क मैदान—

(i) **मरुस्थली**—यह बीकानेर, जैसलमेर, चुरु, पश्चिमी नागौर के कुछ भाग और बाड़मेर के दो तिहाई पश्चिमी भाग पर विस्तृत है। पश्चिम में और आगे यह रेतीली और शुष्क मरुस्थली थार मरुभूमि के नाम से जानी जाती है।

मरुस्थली प्रदेश की आम विशेषतायें विशाल रेत के फैलाव और चट्टानी परिव्यक्त शिलायें हैं। यह परिव्यक्त शिलायें मुख्यतः अरावली नीस, शिष्ट, मलानी ग्रैनाइट और विन्ध्यन क्रम की हैं, जो थार क्षेत्र में अनावृत हैं। उत्तर-पश्चिम में जुरैसिक के विस्तृत कुछ ऊँचे उठे भाग और ईयोसीन चट्टानें, मुख्यतया चूने के पत्थर की जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, चुरु और गंगानगर जिलों में पायी जाती हैं। रेतीली सतहों से बाहर निकली हुई पुरानी चट्टानों से यह स्पष्ट होता है कि मरुस्थलीय प्रदेश प्रायद्वीपीय खण्ड के पश्चिमी विस्तार का ही एक भाग है।

बाड़मेर, जालौर, जैसलमेर तथा अन्य क्षेत्रों में जहाँ परिव्यक्त शिलायें सतह पर अनावृत हैं, उनसे इस प्रदेश की अपरदित स्थलाकृति दिखलायी देती है। अपक्षयित स्थलाकृति के भौतिक स्वरूप आबू ईडार क्षेत्र में गोलाकार धसकन व गड्ढे तथा गुफाओं जैसी आकृतियों के पाये जाते हैं। इन गड्ढों का निर्माण वायु की अपघर्षक क्रिया द्वारा हुआ है। जलज गर्तिकाएं सामान्यतया पर्वतीय क्षेत्रों में जल धाराओं के द्वारा बनी प्रतीत होती हैं। उपपर्वतीय खण्ड के सहारे कॉपीय नालियाँ, टॉलस, पंखे और सोपान विकसित हो चुके हैं। इन सभी अपक्षयित स्थलाकृतियों से यह स्पष्ट होता है कि उप-पर्वतीय खण्ड में निम्नीकरण की प्रक्रियायें निरन्तर क्रियाशील हैं।

मरुस्थलीय प्रदेश कच्छ की खाड़ी से पाकिस्तान की सीमा के सहारे पंजाब तक बालुकास्तूपों के आवरण से ढका है। इस प्रदेश में बालुकास्तूप एक विशिष्ट भू-आकृतिक लक्षण हैं (मानचित्र सं. 5)। मरुस्थली के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के स्तूप और उनका समूहीकरण देखने को मिलता है। स्तूपों के आकार, रूप, वायु दिशा और वनस्पतिक आवरण के आधार पर इन्हें साधारणतया तीन वर्गों में रखा जा सकता है—

(i) पवनानुवर्ती बालुकास्तूप

(ii) बरखान अथवा अर्द्ध चन्द्राकार बालुकास्तूप

(iii) अनुप्रस्थ बालुकास्तूप[2]।

पवनानुवर्ती बालुकास्तूप उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रचलित हवाओं के समानान्तर फैले हैं और उनमें से अधिकांश तलवार की आकृति के हैं। ये स्तूप मैदानी भाग के दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग में पाये जाते हैं। लेकिन बाड़मेर और जैसलमेर जिलों में ये अधिकतर दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी ऊँचाई 60 मीटर तक होती है। इस प्रकार के स्तूपों में लम्बी धुरी वायु की दिशा के समानान्तर होती है। एक दूसरे प्रकार से रेत का जमाव **बरखान** के रूप में होता है जिसमें नत्तोदर पार्श्व आन्तरिक क्षेत्र में वायु के सम्मुख रहता है। बरखान मध्य में सर्वाधिक ऊंचे होते हैं। यह प्रायः शृंखलाबद्ध मिलते हैं। इनकी चौड़ाई लगभग 100 मीटर से 200 मीटर होती है और औसत ऊंचाई 10 मीटर से 20 मीटर तक होती है। यह स्तूप गतिशील होते हैं। यह प्रायः मरुस्थली के उत्तरी भाग में देखे जाते है।

अनुप्रस्थ बालुकास्तूप वायु की दिशा के समकोण में बनते हैं। वायुमुख पार्श्व लम्बा और कम ढालू होता है जबकि वायु विमुख पार्श्व तीव्र ढालू होता है। ये मरुस्थली प्रदेश के पूर्वी तथा उत्तरी भागों में साधारणतया पाये जाते हैं। इस प्रकार के स्तूपों के पवनाविमुखी पार्श्वों पर बड़े-बड़े वृक्ष दिखायी देते हैं जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि स्तूप काफी समय से स्थिर हो चुके हैं। ये स्तूप अर्द्ध शुष्क भाग में स्थिर हैं।

(ii) **बालुकास्तूप मुक्त प्रदेश**—मरुस्थली से लगा हुआ समीपस्थ भू-भाग बालुकास्तूप मुक्त प्रदेश जैसलमेर

---

2. Misra, V. C. "The Marusthali.' India Regional Studies. (New Delhi—21st I.G.U.) Publi, (1968) P. 247.

के चारों ओर लगभग 65 कि. मी. क्षेत्र पर, पोकरन तहसील के आधे भाग पर, फलौदी तहसील के पश्चिमी और दक्षिणी भागों पर फैला हैं। चूना पत्थर और बलुआ पत्थर चट्टानें इस क्षेत्र में अनावृत हैं जो जुरैसिक एवं ईयोसीन शैल समूहों से सम्बन्धित हैं। जैसलमेर नगर जुरैसिक बालू पत्थरों से निर्मित चट्टानी मैदान पर स्थित है। जैसलमेर के उत्तर में तथा पोकरन के दक्षिण में जिन्हें यहाँ 'रन' (Ranns) के नाम से पुकारते हैं। कई प्लाया झीलें बेसिनो में मिलती हैं। बेसिनों के चारों तरफ निम्न कागार मिलते हैं जो इनकी सीमा बनाते हैं। इन झीलों में जल यद्यपि केन्द्रोन्मुखी अपवाह से आता है, फिर भी वर्ष के अधिकांश समय में ये शुष्क रहती हैं।[3]

जैसलमेर नगर से 64 किलोमीटर की परिधि के अन्तर्गत छोटी-छोटी पहाड़ियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। जैसलमेर मैदान को छोटी, आन्तरायिक और असतत जलधारायें पार करती हैं जिनके शुष्क पेंदे और पार्श्व बड़ी आसानी से भूमिगत जल को प्राप्त करने के लिए उपयोग में लाये जा सकते हैं। कुछ स्थानों पर ग्रिट, कांग्लोमिरेट, नीस, शिस्ट और ग्रेनाइट चट्टानें भी अनावृत है। मिट्टी काफी पथरीली हैं। इस प्रदेश के दक्षिणी भू-भाग के कुछ स्थानों पर कई निम्न कटक जो चिकने गुटिका पत्थरों के आवरण से ढके हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि कभी ये क्षेत्र जल अपरदन के कार्य से प्रभावित रहे थे।

(ब) राजस्थान बांगड़ अथवा अर्द्ध शुष्क मैदान—

अरावली के पश्चिमी किनारे से रेतीला शुष्क मैदान की सीमा तक लगभग 75,000 वर्ग कि. मी. क्षेत्र पर राजस्थान बांगर अथवा अर्द्ध-शुष्क मैदान का विस्तार है। इस क्षेत्र के उत्तर में घग्घर नदी का क्षेत्र है, उत्तर-पूर्व में शेखावाटी क्षेत्र तथा दक्षिणी-पूर्वी भाग में लूनी नदी अपनी कई सहायक नदियों के साथ फैली है जिसमें जोधपुर एवं बाड़मेर जिलों के अधिकांश भाग तथा पाली, जालौर और सिरोही जिले के पश्चिमी भाग स्थित है।

इस प्रदेश में रेतीले शुष्क मैदान की अपेक्षा प्राचीन चट्टानें अधिक प्रकट हुई है। इसके अतिरिक्त भूमिगत जल तल भी समीप है। लूनी तथा अनेक छोटी-छोटी मौसमी नदियाँ इस प्रदेश में प्रवाहित होती है। इसे पुनः चार लघु भू-आकृतिक विभागों में बांटा जा सकता है—

(i) **लूनी बेसिन (गोडवार प्रदेश)**—अजमेर की दक्षिणी-पश्चिमी अरावली श्रेणी से लूनी नदी निकलकर दक्षिण-पश्चिमी की तरफ बहती हैं, जिसमें अरावली के तीव्र उत्तरी-पश्चिमी ढालों पर बहने वाली कई छोटी-छोटी नदियाँ इसके बांयें किनारे पर आकर मिलती हैं। लूनी तथा इसकी सहायक नदियाँ जोधपुर जिले के दक्षिणी-पूर्वी भाग, पाली, जालौर और सिरोही जिलों में बहती हैं। लूनी आवाह क्षेत्र (Catchment area) के अलावा पश्चिमी राजस्थान का सभी बाकी क्षेत्र आन्तरिक प्रवाह का क्षेत्र है। लूनी बेसिन के पूर्व में फैली अरावली श्रेणी के पार्श्वों में वार्षिक वर्षा की मात्रा लगभग 65 से.मी. है जबकि इसकी पश्चिमी सीमा पर वर्षा की वार्षिक मात्रा घट कर केवल 15 से.मी. ही रह जाती है।

कच्छ की खाड़ी से पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम की तरफ से तेज चलने वाली हवाओं के द्वारा बालू बिना किसी अवरोध के उड़ाकर इस प्रदेश में लायी जाती है। वायु द्वारा लाई गई बालू विभिन्न क्षेत्रों में मिलती है। यह स्थानीय चट्टानों से निर्मित है। इस क्षेत्र में, यहाँ तक कि वर्षा ऋतु में नदियाँ बालू द्वारा इतनी अवरोधित होती है कि वे किसी भी बड़ी चीज को बहा कर ले जाने में असमर्थ होती हैं।

वर्तमान उच्चावन प्रारम्भिक जल अपरदन भू-पृष्ठीय (Sub aerial) आनाच्छादन का परिणाय है। वर्तमान की पहाड़ियाँ सख्त अवरोधी चट्टानी पदार्थों से निर्मित है जो कांपीय मैदानों से चारों तरफ से घिरी हुई हैं। धीरे-धीरे शुष्क दशायें अधिक महत्वपूर्ण बनती चली गई और दक्षिण-पश्चिमी हवाओं ने कांपीय मैदानों पर और पहाड़ी ढालों के विरुद्ध बालू का अपरदन तथा जमाव किया। वायु क्रिया तथा शुष्क दशाओं ने अपरदन तथा जमाव के नदीय चक्र द्वारा किये गये कार्यों तथा भू-आकृतियों के प्रारम्भिक निशानों को लुप्त कर दिया। धीरे-धीरे सतह बालू टीलों के आवरण से ढक गई,

3. Chatterji, S.P. "Physiography" in the Gazetteer of India Ist Volume (Delhi, Ministry of Information and Broad Cast, 1965) P. 34.

जिसके कारण इस प्रदेश के उच्चावचन में टीलों से निर्मित स्थलाकृतियाँ दृष्टिगोचर होने लगी।

अरावली शृंखला के पदीय और लूनी नदी के बीच का क्षेत्र काफी उपजाऊ है। जल भूमि सतह के समीप उपलब्ध है जिससे अच्छी सिंचाई सम्भव है। लेकिन पश्चिम में और आगे कांपीय दूमट कई स्थानों पर थार में रेतीली मिट्टी में बदल जाती है और धीरे-धीरे जल रेखा का स्तर गहरा होता जाता है। बीकानेर में जल रेखा का स्तर कभी-कभी भूमि सतह से 110 मीटर से 125 मीटर की गहराई तक मिलता है और वह जल भी अक्सर खारी होता है।

(ii) शेखावाटी भू-भाग (आन्तरिक जल प्रवाह का मैदान)—राजस्थान बांगर प्रदेश में राजस्थान की उत्तरी पूर्वी सीमा तक लूनी बेसिन के उत्तर में आन्तरिक जल प्रवाह का मैदान विस्तृत है। इसकी पूर्वी सीमा 50 से. मी. की वर्षा रेखा से निर्धारित होती है। अरावली श्रेणी इस प्रदेश में दक्षिण से उत्तर दिशा में फैली है जो इसको दो भागों में विभाजित करती है। एक तरफ उत्तर में **शेखावाटी रेतीले मरुस्थल भू-भाग** तथा दूसरी तरफ, दक्षिण व दक्षिण-पूर्व में जयपुर के उपजाऊ मैदान हैं। इन दोनों के बीच अरावली श्रेणी प्राकृतिक सीमा बनाती है। अजमेर के उत्तर-पूर्व में अरावली श्रेणी क्रमबद्ध शृंखला के रूप में नहीं है बल्कि यह टूटी-फूटी हैं जिनमें वायु-घाटियां (Wind gaps) पायी जाती हैं जैसे सीकर के पूर्व में सांभर झील के आस-पास तथा अजमेर-ब्यावर के बीच वायु घाटिया। इन वायु घाटियों से होकर वालुकास्तूप पूर्वी मैदान पर कई किलोमीटर की दूरी तक फैल गये हैं। बालू का विस्तार जयपुर शहर तथा इसके समीपवर्ती उत्तरी तथा दक्षिणी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होता है। शेखावाटी भू-भाग के कस्बों व नगरों के समीप बालुका-स्तूपों की संख्या तथा आकार बढ़ता जाता है। यहाँ वालुका-स्तूप बरखान प्रकार के हैं जबकि अन्य क्षेत्रों में पवनानुवर्ती प्रकार के हैं, जिनकी ऊँचाई 5 से 10 मीटर है। कुछ स्थानों पर निम्न भू-भाग में चूनेदार अधःस्तर अनावृत हैं। फलस्वरूप कच्चे तथा पक्के कुओं का निर्माण सुविधाजनक है। ये कुएं स्थानीय भाषा में 'जोहर' के नाम से जाने जाते है।

शेखावाटी भू-भाग की स्थलाकृति उबड़-खाबड़ बालू के टीलों द्वारा परिलक्षित होती है। यहाँ पवनानुवर्ती बालुका स्तूपों का केन्द्रीयकरण अधिक दिखाई देता है जो इस भू-भाग की विशेषता है।

यहाँ केवल एक मौसमीय नदी कान्तली हैं। इस प्रकार यह भू-भाग या तो अन्तर्वर्ती जल प्रवाह का क्षेत्र है अथवा नदियों रहित है। वर्षा की मात्रा इसके पूर्वी भागों में 50 से.मी. तथा पश्चिमी भागों में 25 से.मी. के बीच होती है यद्यपि वर्षा जल बालु-पहाड़ियों तथा स्तूपों द्वारा सोख लिया जाता है, फिर भी जल के भूमिगत भण्डारों को बनाये रखने में मदद मिलती है। कई छोटे बेसिन इसके पूर्वी भाग में स्थित अरावली शृंखला के पास पाये जाते हैं। इस प्रदेश की औसत ऊँचाई समुद्र तल से 450 मीटर है।

(iii) नागौरी उच्च प्रदेश—यह प्रदेश दक्षिण पूर्व में अति आर्द्र लूनी बेसिन तथा उत्तर-पूर्व में शेखावाटी शुष्क अन्तर्वर्ती मैदान के बीच में विस्तृत है। इसकी स्थलाकृति, अन्तर्वर्ती जलप्रवाह क्रम, नमकीन झीलों एवं चट्टानी व पहाड़ी धरातल के कारण अपने आप में विशिष्ट है। यह प्रदेश बंजर और रेतीला है क्योंकि मिट्टी में सोडियम नमक पाया जाता है। फलस्वरूप कृषि के लिये अनुपयुक्त है और इसलिए इसका उपयोग पशु चराई के हेतु किया जाता है। पर्वतसर के अलावा कहीं भी पहाड़ियाँ दृष्टिगोचर नहीं हैं। कुछ छोटी पहाड़ियाँ नावां तहसील में जो अजमेर तक विस्तृत है, पाई जाती हैं। ये पहाड़ियाँ इस प्रदेश की दक्षिणी सीमा बनाती हैं। नागौर, मण्डवा और मेड़ता के समीपवर्ती क्षेत्र वालुकास्तूपों से मुक्त है। इस प्रदेश की समुद्र तल से औसत ऊँचाई 300 मीटर से 500 मीटर है। भू-दृश्य कई निम्न गर्तो से परिपूर्ण है। वर्षा का वार्षिक औसत 25 से. मी. से 50 से. मी के बीच है। तूफानी वर्षा जो विरल है, के पश्चात् वर्षा का जल बालु पहाड़ियों के बीच बने कई स्थानीय गर्तों में भर जाता है। कई छोटे-छोटे बेसिन जो जयपुर-जोधपुर काठी के समीप पाये जाते हैं। तापक्रम ऊँचा होने के कारण लवणीय बाढ़ जल का वाष्पीकरण अधिक होता है फलस्वरूप विभिन्न स्थानों पर इन निम्न गर्तो में सोड़ा व नमक के जमाव दिखाई देते हैं।

गर्म और शुष्क मौसम की अवधि में दक्षिणी-पश्चिमी हवाओं के द्वारा कच्छ की खाड़ी से नमक इस भू-भाग में लाया जाता है। थोड़ी वर्षा जो इस क्षेत्र में होती है, नमक के कणों को मुख्य रूप से धो डालती है और छिछले गर्तों में जमा देती है। इस प्रदेश की महत्वपूर्ण नमक की झीलें सांभर, डिगाना, कुचामन और डीडवाना है। क्षेत्र के विस्तार की दृष्टि से सांभर झील जो जयपुर से 65 किलोमीटर पश्चिम में है, सबसे बड़ी नमक की झील है। डीडवाना से दक्षिण-पूर्व में लगभग 5 किलोमीटर की दूरी पर डीडवाना नमक झील स्थित है। कुचामन शहर से लगभग 8.5 किलोमीटर की दूरी पर अशतः शुष्क कुचामन नमक झील स्थित है। इन झीलों के अलावा सम्पूर्ण क्षेत्र विभिन्न नमक जमावों से परिपूर्ण है जो ग्रीष्म ऋतु में कीचड़ की ऊपरी पर्त पर नमक के जमाव की पर्तों को छोड़कर पूर्णतया शुष्क बन जाते हैं।

(iv) **घग्घर मैदान**—यह प्रदेश गंगानगर जिले के तीन चौथाई भाग पर विस्तृत है। घग्घर, सरस्वती, चौतांग, सतलज नदियों द्वारा हिमालय-पदस्थली के शिवालिक से लाकर जमा की हुई जलोढ़ सामग्री द्वारा यह मैदान निर्मित हुआ है। कालान्तर में जलवायु में आये परिवर्तनों से यह भाग शुष्क होता चला गया और कच्छ की खाड़ी की ओर से आई रेत ने इस पर अपना फैलाव प्रारम्भ किया। ये नदियाँ अब विलुप्त हो गई है और जलोढ़ सामग्री अनेक स्थानों पर वातोढ़ रेत से पूर्णतया ढक गई है। इसलिये अब यह प्रदेश एक रेतीला मैदान है जिसमें बालुका-स्तूप और छोटी बालू की पहाड़ियाँ छितरी हुई मिलती हैं। इनमें से कुछ बालुका-स्तूप गतिशील हैं लेकिन अधिकांशतः बालुका-स्तूप स्थिर हो गये हैं।

इस प्रदेश में घग्घर नदी के अलावा और कोई नदी नहीं पाई जाती हैं। इस नदी के पाट को, जो राजस्थान में "नाली" के नाम से जाना जाता हैं, साफ-साफ चिकनी, काली व सख्त मिट्टी के रूप में देखा जा सकता है। घग्घर नदी अपने प्राचीन पेटे में ही बहती है। आज की घग्घर नदी वैदिक साहित्य की बहुचर्चित सरस्वती नदी है। घग्घर मैदान के उत्तरी भाग का आधा हिस्सा पूर्णतया नहरों से सिंचित है। परिणाम स्वरूप यह काफी उपजाऊ है जबकि दक्षिणी व पूर्वी भाग का भूदृश्य रेतीला होने के साथ-साथ अर्ध नहरी क्षेत्र है। इस प्रकार यह मिश्रित भू-भाग है।

2. अरावली श्रेणी और पहाड़ी प्रदेश

अरावली श्रेणी राजस्थान की मुख्य एवं विशिष्ट पर्वत श्रेणी है। इस श्रेणी की चौड़ाई सर्वत्र एक सी नहीं है। यह पर्वत श्रेणी एक निरन्तर श्रेणी नहीं है बल्कि बीच-बीच में टूटी हुई है। यह दक्षिण-पश्चिम में सिरोही से आरम्भ होकर उत्तर-पूर्व में खेतड़ी तक तो श्रृंखला-बद्ध है उसके पश्चात् यह छोटी-छोटी श्रृंखलाओं के रूप में दिल्ली तक विस्तृत हैं। राज्य में यह श्रृंखला कर्णवत रूप में उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में देहली से गुजरात के मैदान तक लगभग 692 किलोमीटर की लम्बाई में विस्तृत हैं। राजस्थान की सीमाओं में यह श्रृंखला खेतड़ी से उत्तर-पूर्व की ओर खेड़ ब्रह्मा तक लगभग 550 किलोमीटर की लम्बाई तक फैली है। अरावली श्रृंखला विश्व की शायद प्राचीनतम वलित पर्वतीय श्रृंखला है। संरचनात्मक दृष्टि से इसकी रचना देहली क्रम से सम्बन्धित मौलिक चट्टानों से हुई है। जिनका बहुत ही कटाव हुआ लेकिन फिर भी उनमें से बहुत सी चोटियाँ जिनकी ऊंचाई 1225 मीटर से भी अधिक है, एक श्रृंखला के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

देहली से कटक दक्षिण-पश्चिम की तरफ फैले है लेकिन जयपुर में खेतड़ी के समीप वे अधिक सुस्पष्ट श्रृंखला के रूप में दृष्टिगोचर होते है। दक्षिण-पश्चिम की तरफ विस्तृत श्रृंखला काफी महत्वपूर्ण है। जिसमें मुख्य चोटियाँ जैसे बाबाई (780 मी.), खो (920 मी.), रघुनाथगढ़ (1055 मी.) और तारागढ़ (873 मी.) आदि स्थित हैं। यह श्रृंखलाएं सांभर झील के पश्चिम से गुजरती हैं तथा विस्तृत क्षेत्र पर फैली है। अजमेर के बाद कई समानान्तर श्रृंखलाएं हैं। मेरवाड़ के परे अरावली पहाड़ियों की चौड़ाई लगभग 50 किलोमीटर तथा उदयपुर और डूंगरपुर की तरफ दक्षिण-पूर्व में इनकी चौड़ाई बढ़ने लगती है। यहाँ इनकी ऊंचाई बहुत ही कम है और मुख्य श्रृंखला दक्षिण-पश्चिम की तरफ सिरोही जिले के दक्षिण-पूर्वी भू-भाग तक विस्तृत है। गुरु शिखर (1727 मी.) राजस्थान की सबसे ऊंची, इस पहाड़ी प्रदेश में स्थित है।

अरावली श्रृंखला का भूगर्भीय इतिहास धारवाड़ समय के समाप्त होने के साथ सम्भवतः सम्बन्धित है। यह श्रृंखला समप्राय थी और केम्ब्रियन युग में पुनः इसका उठाव हुआ। अरावली श्रृंखला पूर्व-विंध्यन काल में उद्वलित हुई थी और यह अनुमान लगाया जाता है कि विंध्यन काल की समाप्ति तक यह पर्वत श्रृंखला अपने आस्तित्व में होने के साथ-साथ दो विंध्यन क्षेत्रों को अलग करती थी। सर्वप्रथम अरावली श्रृंखला मेसोजोइक अवधि में समप्राय हुई। शायद यह प्रक्रिया क्रिटेशियस काल की अपेक्षा बहुत पहले सम्पन्न नहीं हुई थी। समप्राय मैदान इस प्रकार से संवलित हुआ कि इसका केन्द्रीय भाग उदयपुर शहर के समीप समुद्रतल से लगभग 1225 मीटर, उत्तरी-पूर्वी भाग देहली के समीप 306 मीटर तथा दक्षिणी-पश्चिमी भाग गुजरात में 306 मीटर ऊँचा उठ गया था। हेरोन का अनुमान है कि समप्राय मैदान की क्रिया के पश्चात् श्रृंखला का उत्थान इसके अपने किनारों पर 92 मीटर से 122.3 मीटर के लगभग तथा केन्द्रीय भाग में 1070 मीटर के लगभग हुआ। इस प्रकार अरावली श्रृंखला मेसोजोइक काल में समप्राय होकर टर्शरी काल के प्रारम्भ से पूर्व पुर्नउत्थित हुई। इसका दक्षिण की ओर विस्तार, जो इस समय समुद्र के नीचे है, टर्शरी काल में दक्कन-ट्रेप के एकत्रीकरण के पश्चात् हुआ।[5] यह भी अनुमान लगाया गया है कि पुर्नउत्थित अरावली श्रेणी टर्शरी काल में दूसरी बार समप्राय प्रक्रियाओं से गुजरी। इस बात की पुष्टि मुलायम चट्टानों जैसे फाइलाईटस, शिस्ट, नीस और कुछ ग्रेनाइट क्षेत्रों की चट्टानों पर अपरदित विषमताओं के द्वारा होती है। इस प्रकार की विषमताओं वाली स्थलाकृतियां अरावली के पूर्व में स्थित मैदानों पर पूर्णरूपेण विकसित है। इससे अधिक ऊँचाई पर, न केवल अलवर क्वार्टज के कटक पाये जाते हैं, वल्कि कई अवशेष अवरोधी पिण्ड, कठोर एपीडोराइटस, ग्रेनाइट, क्वार्टजाईट, चूना पत्थर आदि से वन गये हैं। इस भाग का अधिकतर क्षेत्र कम गहरे पृष्ठीय जमावों के आवरण से ढका है। इसकी उप-सतहीय चट्टानों को वहते जल और छोटी नदियों ने काट दिया है। यह समप्राय मैदानों की श्रृंखला है जो सीढ़ियों के अनुसार विभिन्न ऊँचाई के स्तरों के रूप में श्रृंखला के केन्द्र से मैदानों की तरफ मिलते हैं। इन मैदानों की ऊँचाई दो प्रमुख कारकों से प्रभावित हैं। प्रथम, वे चट्टानें जिनसे इनका निर्माण हुआ है। दूसरे, अपरदन की मात्रा जो यहाँ पर प्रभावी हो सकती थी। इन कारकों के फलस्वरूप अधिकतर स्थानों पर उनसे तीन सीढ़ीनुमा मैदानों का विकास हुआ। केल्कनीस और चूने के पत्थर के मैदान सबसे ऊँचे हैं, जो श्रृंखला के केन्द्र के सहारे लम्बे संकड़े पठार के रूप में बने हैं। कहीं-कहीं इन तीनों मैदानों के स्तरों की ऊँचाई के बीच 15 मीटर से 30 मीटर के अन्तर को देखा गया है। वर्तमान नदियों ने इस मैदानों को छेदित किया हुआ है। तीसरे, समप्राय मैदान जिनका निर्माण प्लीसटोसीन अथवा अधःनूतन युग में हुआ। राजपूताना के मध्य में, मुख्य रूप से उत्तर में, जहाँ यह टर्शरी युग के समप्राय मैदान से मिलता है, कापीय समप्राय मैदान 430 मीटर की ऊंचाई तक उठ जाता है और अरावली श्रृंखला के पश्चिमी पार्श्व में यह 306 मीटर के लगभग ऊँचा है। पश्चिमी राजस्थान की बालू की पहाड़ियां अधिकतर मरुस्थलीय क्षेत्रों में इस समप्राय मैदान के ऊपर स्थित है।

अरावली श्रृंखला में लगभग सभी कटक विशाल क्वार्टज पिण्डों से निर्मित हैं। देहली क्रम की चट्टानों का भू-अभिनति में जमाव हुआ था। ये चट्टानें अरावली क्रम अथवा रियालो श्रृंखला के ऊपर असंगत रूप से दिखलाई देती है। तल में देहली समभिनति (Synclinorium) दो पंखों के समान दृष्टिगोचर होती है जहाँ दोनों पंखों की डंडियां मिलती हैं। यह लगभग 10 किलोमीटर चौड़ी है और एक साधारण अभिनति है। यह लगभग 75 किलोमीटर की दूरी तक सकड़ी चौड़ाई में बनी रहती है और तत्पश्चात् यह दोनों सिरों पर यह दो अलग-अलग पंखों में फैल जाती है। कुछ शैल-समूहों की मोटाई बढ़ जाने के कारण कुछ अन्य अतिरिक्त वलन दिखाई देते हैं और मध्य केन्द्र में वे ऊँचे संस्तरण व गहन वलन के कारण उभर आते हैं। यह देमूरी के दक्षिण में अधिक स्पष्ट हैं क्योंकि यहाँ पर इसके

5. Heron, A. M. "The Geology of Central Rajputana" Mem. Geol. Surv. Ind., (1953) Vol. 79, P. 35.

कई वलन दृष्टिगोचर होते हैं तथा इनका रूप पंखे की तरह दिखाई देता है। देहली शृंखला के निम्न भाग के क्वार्टज तथा अभ्रक शिष्ट चट्टानों से विकसित लम्बे विशिष्ट कटक व सकड़ी घाटियां भी इस क्षेत्र में मिलती है, जबकि अधिक कटे-फटे पठार ऊपरी देहली क्रम के केवल शिस्ट, केल्कनीस और चूना पत्थर की वाम उलझी हुई संरचना की ओर समर्पित करते हैं।

अरावली श्रेणी और पहाड़ी प्रदेश को पुनः चार लघु भौतिक भागों में बांटा जा सकता है।

(अ) **उत्तरी-पूर्वी पहाड़ी प्रदेश**—यह प्रदेश जयपुर जिले के उत्तरी-पश्चिमी भागों में तथा अलवर जिले के अधिकांश भागों में स्थित चट्टानी और प्रपाती पहाड़ियों के कई समनातिक कटकों को शामिल करता है। इस क्षेत्र में अरावली-शृंखला फाइलाईट और क्वार्टज से निर्मित है जो कि पर्वतों के निर्माण में सहायक होती है। देहली क्रम की अन्य चट्टानें चूने के पत्थर की हैं जो सामान्यतया: केल्क-नीस में बदल जाती है। बहुत सख्त होने के कारण वे क्वार्टज कटकों के बीच ऊँची घाटियां अथवा ऊँचे मैदानों का निर्माण करती हैं। देहली में आग्नेय अन्तर्वेधन की तीव्रता और कायान्तरण की मात्रा अरावली शृंखला की अपेक्षा बहुत अधिक है। अतः यह काफी गहराई तक वलित होते हुए पटल पर पाई जाती है। भोराठ पठार के उत्तरी पार्श्व द्वारा दक्षिण-पश्चिम में यह घिरा हुआ है। कुम्भलगढ़ के उत्तर में विशेष रूप से अलवर की पहाड़ियों की ऊँचाई 550 मीटर से 670 मीटर के बीच पाई जाती है। इसकी शाखाएं पश्चिम में सीकर, श्रीमाधोपुर, नीम का थाना और खेतड़ी तहसीलों में पाई जाती है। पहाड़ियों के बीच की घाटियां चौड़ी हैं और कुछ घाटियां तो लम्बाई में काफी बड़ी हैं। पहाड़ियों के ऊपरी सिरे जो चपटे हैं उन पर कई छोटे-छोटे पठार मिलते हैं। उत्तर और उत्तर-पूर्व की ओर आगे पहाड़ियां टूटी हुई हैं और पहाड़ियों के अन्तिम सिरों की तरफ उनकी ऊँचाई होती जाती है। देहली के दक्षिण में स्थित पहाड़ियों की ऊँचाई समुद्र तल से लगभग 306 मीटर है। यहां की ऊँचाई समीपवर्ती मैदान से लगभग 60 मीटर से 90 मीटर है। इस प्रदेश की औसत ऊँचाई 300 मीटर से 670 मीटर के बीच मिलती है लेकिन कुछ चोटियां इस क्षेत्र में 700 मीटर से भी अधिक ऊँची है, जैसे—अलवर में भैरांच (792 मी.) वैराठ (704 मी.), जयपुर में बाबाई (792 मी.), खो (920 मी.) और सीकर जिले में रघुनाथगढ़ (1055 मी.) आदि।

(ब) **मध्य अरावली श्रेणी**—इस प्रदेश के अन्तर्गत अजमेर, जयपुर जिले तथा टोंक जिले के दक्षिण-पश्चिम में स्थित अरावली श्रेणी की पहाड़ियां शामिल हैं। इस प्रदेश को पुनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) **शेखावाटी निम्न पहाड़ियां**—इस प्रदेश का भू-दृश्य वाली पहाड़ियां और निम्न गर्तों से परिलक्षित है। यह आन्तरिक प्रवाह क्षेत्र है। सांभर झील से प्रारम्भ होने वाली सबसे लम्बी श्रेणी झुन्झुनू जिले में सिहना तक जाती है। अन्य छोटी-छोटी पहाड़ियां इस प्रदेश में विभिन्न नामों से जानी जाती हैं, जैसे पुराना घाट, नाहर गढ़, आड़ा डूंगर, राहोड़ी, तोरावाटी आदि। इनकी औसत ऊँचाई 400 मीटर है लेकिन सांभर झील के पश्चिम में, जहां अरावली श्रेणी की शाखाएं दृष्टिगोचर होने लगती हैं, इसकी ऊँचाई 500 मीटर तक पाई जाती है।

(ii) **मेरवाड़ पहाड़ियां**—मेरवाड़ पहाड़ियां मारवाड़ के मैदान को मेवाड़ के उच्च पठार से अलग करने वाली पर्वत श्रेणी है जो अजमेर नगर के निकट प्रकट होती है। यह अजमेर शहर के समीपवर्ती भागों में पहाड़ियों के समानान्तर अनुक्रम में दृष्टिगोचर होती है। इसका उच्चतम शिखर अजमेर नगर के निकट समुद्रतल से लगभग 870 मीटर ऊंचा है जो तारागढ़ के नाम से जाना जाता है। इसके पश्चिम में नागपहाड़ स्थित है जो उत्तरी मैदान में उच्चतम स्थल को परिलक्षित करता है। कुकरा से पहाड़ियों व घाटियों का एक अनुक्रमण अजमेर जिले के अन्तिम सिरे तक विस्तृत है, जहां वे मेवाड़ पहाड़ियों में मिल जाते हैं। पश्चिमी पार्श्व पर पहाड़ियां बहुत ही प्रबल तथा प्रपाती बन जाती हैं। इस प्रदेश की औसत ऊँचाई 550 मीटर है।

(स) **मेवाड़ पहाड़ियां और भोराट पठार**—यह प्रदेश पूर्वी सिरोही, उदयपुर के पूर्व में एक सकड़ी पट्टी को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण उदयपुर और डूंगरपुर जिलों में विस्तृत है। महान् भारतीय जल विभाजक रेखा उदयपुर

जिले के उत्तर से उदयपुर से बाहर पूर्व की तरफ मुड़ने से पूर्व दक्षिण-पश्चिम तक चली गई है। अरावली भू-भाग पूर्व में हार्स्ट अथवा अश्रोत्थ के रूप में 1530 मी. उच्चतम उत्थान द्वारा सीमित है। पश्चिमी पार्श्व भी एक भ्रंश के द्वारा अंकित है लेकिन इसका अस्तित्व—कांपीय विस्तार के फल-स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसलिए पश्चिमी सीमा एक नति के द्वारा परिलक्षित है। इस भू-भाग में वलन की सामान्य संरचना उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की तरफ समनतन वलनों के नति लम्ब के सहारे देखी जा सकती है। कुछ स्थानों पर मुख्य रूप से गोगुन्दा के दक्षिण में अलवर क्वार्टज के कटकों में जो समाभिनति का पूर्वी आधार बनाते हैं, नतिलम्ब उत्तर-दक्षिण दिशा में अधिक है।

आबू खण्ड के अतिरिक्त अरावली शृंखला का उच्चतम भू-भाग उदयपुर के उत्तर-पश्चिम में कुम्भलगढ़ और गोगुन्दा के बीच एक पठार के रूप में स्थित है जो स्थानीय भाषा में भोराट पठार के नाम से जाना जाता है। इस पठार की औसत ऊंचाई 1225 मीटर है। भोराट पठार से अलवर क्वार्टजाइट के प्रमुख नतिलम्ब कटक, जिनके ऊपरी सिरे समतल हैं, 300 मीटर की ऊंचाई तक उठे हुए हैं। कुछ चोटियों की ऊंचाई समुद्र-तल से 1300 मीटर है जबकि जरगा पर्वत में उच्चतम चोटी 1431 मीटर ऊंची पाई जाती है।

भोराट पठार और इसकी समीपवर्ती कटकें संश्लिष्ट गांठ जैसा रूप धारण करती हैं जहां से कई पर्वत स्कन्ध और वक्र कटकें सभी दिशा में विस्तृत हैं।

दक्षिण-पश्चिम, दक्षिण और दक्षिण-पूर्व की ओर यह पर्वत स्कन्ध और वक्र कटकें डूंगरपुर तथा सिरोही के पूर्वी सिरे तक चली जाती हैं। पूर्वी सिरोही में सुदूर पश्चिम में स्थित कटक हालांकि अधिक ऊंची नहीं है, लेकिन तीव्र ढाल वाली तथा ऊबड़-खाबड़ है जो स्थानीय भाषा में "भाकर" के नाम से जानी जाती है।[6] जयसमन्द झील के चारों ओर पहाड़ियां और शृंखलाएँ 820 मीटर की ऊंचाई तक उठ जाती हैं जबकि झील क्षेत्र की ऊंचाई 300 मीटर से भी कम है। जयसमन्द से और आगे पूर्व में लासाडिया का विच्छेदित व कटा-फटा पठार है जो टीलेनुमा और अनियमित धरातल वाला है। इस पठार की ऊंचाई 325 मीटर से 650 मीटर तक है। यहां से पहाड़ियों की शाखायें प्रतापगढ़ तक चली गई हैं।

भोराट पठार से पूर्व की ओर कई पर्वत स्कन्ध मिलते हैं, जिनमें से दक्षिणी सिरे का पर्वत स्कन्ध (500-600 मीटर) महत्वपूर्ण है। यह पर्वत स्कन्ध न केवल जयसमन्द बेसिन से उदयपुर बेसिन को पृथक् करता है बल्कि अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी के जल प्रवाह के बीच एक जल विभाजक का कार्य भी करता है। कुछ पहाड़ी स्कन्ध तश्तरीनुमा आकृति वाले उदयपुर बेसिन को घेरे हुए हैं। जिसे स्थानीय भाषा में गिरवा कहते है। गिरवा से तात्पर्य पहाड़ियों की मेखला से है।

भोराट पठार से उत्तर-पूर्व की ओर अरावली शृंखला उच्च मैदानों (500 मीटर) के साथ सूक्ष्म रूप से मिल जाती है और उत्तर में यह धीरे-धीरे अपनी चौड़ाई खोकर टॉडगढ़ के समीप मेरवाड़ पहाड़ियों के नाम से जानी जाती है।

मेवाड़ पहाड़ियों का शेष भाग तुलनात्मक रूप से कम महत्वपूर्ण है। चित्तौड़गढ़ के पूर्व में पहाड़ियों की शृंखला पाई जाती है जो उत्तर-दक्षिण में विस्तृत है। इसमें ये पहाड़ियां सकड़ी सीमित घाटियां एक-दूसरे के समानान्तर बनाती हैं।

(द) **आबू पर्वत खण्ड**—इस प्रदेश में पहाड़ियां कठोर क्वार्टजाइट से निर्मित हैं। यह पहाड़ियां जो कटक सदृश्य लगती हैं, काफी लम्बी तथा ऊपरी सिरों पर समतल सतह वाली हैं। इनके पार्श्व दीवार की भांति हैं। समस्त श्रेणी को अगर ध्यान से देखा जाये तो यह स्पष्ट होता है कि ये समतल चोटियां एक बड़े कटे-फटे समप्राय मैदान के अवशिष्ट भाग हैं। अरावली शृंखला दक्षिणी-पश्चिमी भागों में विलग है और सिरोही में पहाड़ियों के गुच्छे के रूप में विस्तृत है। इसकी प्रमुख विशेषता आबू के पास प्रायः पृथक पहाड़ी के रूप में है। यह मुख्य अरावली श्रेणी से पश्चिमी बनास की विस्तृत घाटी द्वारा और पश्चिम में आबू-सिरोही श्रेणी में इसरा गांव के समीप एक दर्रे द्वारा पृथक हो गई है। आबू पर्वत 19 किलोमीटर लम्बा और 8 किलोमीटर

6. Dhaundiyal, B. N. : Rajasthan District Gazetteer, Sirohi (1967) P. 7.

चौड़ा पठार है जो लगभग 1200 मीटर समुद्रतल से ऊँचा है। यह एक अनियमित पठार है जो कई प्रक्षेपित चोटियों से घिरा हुआ है। प्राकृतिक स्थलाकृतियाँ पश्चिमी और उत्तरी पार्श्वों में अति प्रपाती ढाल के कारण प्रमुख हैं। पर्वत स्कन्धों और उनके बीच स्थित घाटियों के द्वारा पूर्व और दक्षिण का धरातल काफी छिन्न-भिन्न है। सबसे आश्चर्य जनक भू-दृश्य चट्टानों के विशालतम खण्ड हैं जो पहाड़ी के शिखर के साथ खड़े प्रतीत होते हैं। इनमें से कुछ खण्डों का अपरदन ऐसा हुआ कि वे बड़ी लुभावनी और सुन्दर आकृतियाँ प्रस्तुत करते हैं जबकि दूसरी तरफ उनका सन्तुलन देखते ही बनता है और ऐसा आभास होता है कि कहीं जरा से धक्के से नीचे गिर न जायें। कुछ स्थानों में उच्छृंग को गुफा और छिद्रों का ऐसा रूप दे दिया गया है कि वह सुन्दरतम स्पंज के खण्ड से मिलता-जुलता है।[7]

आबू पर्वत से सटा हुआ उड़िया पठार आबू से लगभग 160 मीटर ऊँचा है और गुरुशिखर मुख्य चोटी के नीचे स्थित है। जेम्स टॉड के द्वारा गुरुशिखर को सन्तों का शिखर कहा गया है। यह हिमालय और नीलगिरि के बीच (गुरुशिखर 1722 मीटर) सबसे ऊँची चोटी है। गुरुशिखर के आस-पास की अन्य चोटियों में से सेर (1597 मी.), अचलगढ़ (1380 मी.) और दिलवाड़ा के पश्चिम में तीन अन्य चोटियाँ हैं।

आबू पर्वत के पश्चिम में आबू-सिरोही श्रेणियाँ हैं। यह आबू श्रेणी की अपेक्षा बहुत नीची है। पश्चिम की ओर और आगे छितरी हुई पहाड़ियों के वर्ग मिलते हैं और पालनपुर तक पहुंचते-पहुंचते सघन हो जाते हैं।

(3) पूर्वी मैदान

यह मैदान अरावली श्रेणी के उत्तर-पूर्व, पूर्व और दक्षिण-पूर्व के भागों में विस्तृत है, तथा संपूर्ण राज्य के 23.3% भू-भाग को घेरे हुये है। पश्चिमी सीमा अरावली के पूर्वी किनारों द्वारा उदयपुर के उत्तर तक और इससे आगे उत्तर में 50 सेमी. की समवर्षा रेखा द्वारा निर्धारित होती है। मैदान की दक्षिण-पूर्वी सीमा विन्ध्यन पठार द्वारा बनाई जाती है। इस प्रदेश की भूमि अत्यन्त समतल होने के साथ ही कई नदियों द्वारा सिंचित है जहाँ जलोढ़ मिट्टियों का निक्षेप हुआ है। फलस्वरूप मिट्टियाँ उपजाऊ हैं। इस मैदान के अन्तर्गत चम्बल बेसिन की निम्न भूमियाँ, बनास का मैदान और मध्य माही अथवा छप्पन का मैदान आदि सम्मिलित हैं। भरतपुर, मोरेना, ग्वालियर आदि मैदान ऊपरी गंगा मैदान के बढ़े हुए विस्तृत भाग हैं। कोटा का मैदान वास्तव में मोरेना के मैदान का ही विस्तार है लेकिन बनास का मैदान यद्यपि एक कापीय भू-भाग है, फिर भी एक समप्राय मैदान है। मध्य माही मैदान बंजर भूमियों की घाटियों का क्षेत्र है जिसे छप्पन के नाम से पुकारते हैं। छप्पन मैदान में प्रवाह शक्ति की तीव्रता के कारण दक्षिण में नाईसी मैदान का अधिक अपरदन हुआ है। फलस्वरूप भू-आकार का एक विलग रूप प्रदर्शित हुआ है। यह डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ तथा उदयपुर के कुछ भागों पर विस्तृत है और इसका प्रवाह अरबसागर की ओर है। यह मैदान तीन उप-इकाईयों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) चम्बल बेसिन

(ब) बनास बेसिन

(स) मध्य माही बेसिन अथवा छप्पन का मैदान अथवा बागड क्षेत्र।

(अ) चम्बल बेसिन—राज्य में चम्बल घाटी की स्थलाकृति पहाड़ियों और पठारों से निर्मित है। इसकी सम्पूर्ण घाटी में नवीन कांपीय जमाव पाये जाते हैं। चम्बल बेसिन का धरातल सदृश्य दिखलाई देता है। इसमें बाढ़ के मैदान, नदी कगार, बीहड़ व अन्तसरिता आदि स्थलाकृतियाँ पाई जाती हैं जो इस प्रदेश में काफी अच्छी तरह से विकसित हुई हैं। ये चम्बल की निम्न भूमियाँ अपने आप में विचित्र प्रकृति की हैं। कभी-कभी यह नदियों से काफी दूर बीहड़ों में विस्तृत घाटियों के फर्श बनाती है लेकिन यह फर्श इस क्षेत्र में बहने वाली जल धाराओं के सामान्य स्तर से कुछ ही ऊँचे हैं। कहीं-कहीं ये निम्न भूमियाँ बीहड़ों की तलीय सीमा बनाते हुए स्वयं लहरनुमा अनियमित छोटी-छोटी पहाड़ियों के रूप में उपजाऊ भूमियों के पार्श्वों से ऊपर उठ जाती है।[8]

7. Dhaundiyal, B. N. : Rajasthan District Gazetteer, Sirohi (1267) P. 7.
8. Statistical, Descriptive and Historical Account of U.P. Vol. VII (1876) P. 414.

कोटा, बूँदी, टोंक, सवाईमाधोपुर और धौलपुर आदि जिलों में वीहड़ों से कुल प्रभावित क्षेत्र लगभग 4500 वर्ग किलोमीटर है। इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण चम्बल वीहड़ पट्टी है जो 480 किलोमीटर लम्बाई में कोटा में बारां तक विस्तृत है। इसमें कोटा से धौलपुर तक एक ऊपरी विंध्यन कगार, भूमियों की अनियमित और ऊँची दीवारें वाण गंगा तथा यमुना के बीच जल विभाजक के द्वारा अंकित है। दक्षिणी सीमा सहायक नदियों जैसे—काली सिन्ध और पार्वती आदि के साथ बदलती रहती है। इससे आगे यह कुंवारी वीहड़ों के द्वारा चम्बल के दक्षिण-पश्चिमी मार्ग के साथ निरन्तर बारां तक अच्छी तरह से सीमांकित है।

'प्रचण्ड खड्डों का निर्माण सम्भवतः पुनर्योवन के द्वारा हुआ होगा लेकिन ये प्रचण्ड खड्ड भूमि के दुरुपयोग के कारण और भी गंभीर बन गये हैं और शायद भारत में इस क्षेत्र को विशेषकर अग्रभूमियों के किनारों की तरफ अपरदन का सबसे खराब क्षेत्र बनाते हैं।[9] ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकतर अपरदन और वीहड़ों का निर्माण पिछले 400 वर्षों की अवधि में हुआ है।[10] प्रमाणों द्वारा यह भी पुष्टि होती है कि पूर्व में यह क्षेत्र बड़े घने जंगलों से ढके हुए थे लेकिन जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण निवासियों ने बड़ी निर्दयता से कृषि के उपयोग हेतु इनका सफाया कर दिया। वीहड़ों तथा यमुना घाटी के बीच तथा चम्बल और कुन्वारी के बीच के मैदानी क्षेत्र कृषि के अन्तर्गत है। बीहड़ों के निर्माण के पूर्व ये भू-भाग भी शायद कृषि के अन्तर्गत हों लेकिन आज ये खराब भूमियां हैं और कृषि क्षेत्र निरन्तर वीहड़ों के शीर्ष अपरदन के साथ खिसकते जा रहे हैं।

(ब) बनास वेसिन—बनास वेसिन पश्चिम में 50 से. मी. वर्षा रेखा द्वारा, दक्षिण में महान् भारतीय जल विभाजक द्वारा उत्तर में अलवर पहाड़ी प्रदेश द्वारा तथा पूर्व में विन्ध्यन कगार के द्वारा सीमांकित है। बनास तथा इसकी सहायक नदियों द्वारा सिंचित यह मैदान दक्षिण में मेवाड़ का मैदान तथा उत्तर में मालपुरा-करौली का मैदान कहलाता है। मेवाड़ का मैदान अथवा मेवाड़ का पथरीला मैदान आर्क्रियन नीस का कटा-फटा मैदान है। यह उदयपुर के पूर्वी भागों, पश्चिमी चित्तौड़-गढ़, भीलवाड़ा, टोंक, जयपुर, पश्चिमी सवाईमाधोपुर और अलवर के दक्षिणी भागों पर विस्तृत है। इस मैदान का ढाल धीरे-धीरे उत्तर व उत्तर-पूर्व की ओर कम होता जाता है। इसकी औसत ऊंचाई 280 मीटर से 500 मीटर के बीच है। इस मैदान की अधिकतम ऊँचाई पश्चिम में, जहाँ अरावली श्रेणी अनावृत है, देवगढ़ के समीप लगभग 582 मीटर है। इस भू-भाग में कई पृथक निर्जन पहाड़ियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जिन पर अनाच्छादन का प्रभाव स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है। इनके उच्च भू-भाग टीलेनुमा है जिनके कारण इसे पीडमाण्ट मैदान भी कहा जा सकता है। उदयपुर प्रदेश में ऊंचे टीलेनुमा भू-भागों पर कांपीय मिट्टी के जमाव नाम मात्र के हैं। मिट्टी की पर्तें पतली व पथरीली हैं। वार्षिक वर्षा लगभग 70 सेंटीमीटर है। इस क्षेत्र की स्थलाकृतियाँ अपरदित आकृतियों के रूप में हैं जिनका प्रादुर्भाव ग्रेनाइट और नीस की चट्टानों में अपरदन के कारण हुआ है। मेवाड़ मैदान, बनास नदी तथा इसकी सहायक नदियाँ जैसे खारी, सोडरा, मोसी और मोरल जो बायें किनारे पर बहती हैं और बेड़च, वाजायइन और गोलवा जो दाहिने किनारे पर मिलती हैं, से सिंचित है। बनास नदी चम्बल नदी की सहायक नदी है। पश्चिम की तरफ जहाँ मैदान ऊंचा तथा अधिक उवड़-खावड़ है, कांपीय जमाव की परतें पतली होती जाती है।

मालपुरा-करौली मैदान—यह साधारणतया शिस्ट और नीस से निर्मित है। किशनगढ़ और मालपुरा के

9. Spate, O. H. K. and A. T. A. Learmouth : 'India and Pakistan' (Methuen, London, 1967) P. 622.
10. Singh L. R. and R. P. Singh : 'The Ravines of the Lower Chambal Valley : A Geographical Study' N.G.J.I., VII (3,1961) P. 152.

अधिकतर भागों में कांपीय जमाव की परतों की मोटाई अधिक है जहाँ वे अपने नीचे अधिकांश नीस चट्टानों को छुपाये हुए है। इस मैदान की औसत ऊँचाई 280-400 मीटर है। इस मैदान का ढाल दक्षिण-पूर्व और पूर्व की ओर है।

(स) मध्य माही बेसिन (छप्पन का मैदान) अथवा **बागड क्षेत्र**—यह मैदान उदयपुर के दक्षिणी-पूर्वी, बांसवाड़ा और चित्तौड़गढ़ जिले के दक्षिणी भागों में विस्तृत है। यह क्षेत्र माही नदी की सहायक नदियों से सिंचित है जो अन्ततोगत्वा कच्छ की खाड़ी से होते हुए अरब सागर में गिरती है। माही नदी की सहायक नदियों का ढाल प्रवणांक काफी तीव्र है। इतना ढाल प्रवणांक अन्य किसी प्रदेश में दृष्टिगत नहीं होता है। ढाल प्रवणांक लगभग 8 मीटर से 12 मीटर प्रति किलोमीटर है। परिणामस्वरूप नीस मैदान में जल विभाजक के उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में अधिक अपरदन हुआ है। इसकी औसत ऊंचाई 200 मीटर से 400 मीटर के बीच है। मध्य माही बेसिन में मेवाड़ के उत्तरी मैदान की अपेक्षा भू-आकृतियाँ अधिक विषम हैं। दक्षिण में स्थित क्षेत्र काफी गहरा तथा कटा-फटा है। अतः पहाड़ियाँ एक दूसरे से काफी अलग-थलग है। दक्षिण में यह बेसिन समरुप नहीं है जैसा कि उत्तर में मेवाड़ का मैदान है। यह क्षेत्र अधिक गहराई तक विच्छेदित होने के कारण इस विच्छेदित मैदान को तथा पहाड़ी भू-भाग को स्थानीय भाषा में 'बागड' नाम से पुकारा जाता है। बागड में बांसवाड़ा व डूंगरपुर के पहाड़ी भू-भागों तथा विच्छेदित मैदान को सम्मिलित किया जाता है। प्रतापगढ़ और बांसवाड़ा के बीच के भाग में छप्पन ग्राम समूह स्थित थे इसलिए यह भू-भाग छप्पन के मैदान के नाम से भी जाना जाता है।

(4) दक्षिणी-पूर्वी राजथान पठार (हड़ौती पठार)

राजस्थान में यह पठार मेवाड़ मैदान के दक्षिण-पूर्व में चम्बल नदी के सहारे पूर्वी भाग में विस्तृत है और राजस्थान के 9.6% भू-भाग को घेरे हुए है। यह उत्तर-पश्चिम में अरावली के महान् सीमा भ्रन्श द्वारा सीमांकित है और राजस्थान की सीमा के पार तब तक फैला हुआ है जब तक बुन्देल-खण्ड के पूर्ण विकसित कगार दिखाई नहीं देते। हड़ौती पठार के अन्तर्गत [illegible] का पठार और मेवाड़ का पठार जिसमें राजनैतिक दृष्टि से झालावाड़ से बून्दी और कोटा, चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा और बांसवाड़ा के कुछ भाग सम्मिलित है। यह पठारीय भाग आगे चलकर मालवा के पठार में मिल जाता है। इस क्षेत्र का अधिकांश भाग चम्बल नदी तथा इसकी सहायक नदियों जैसे काली सिन्ध, परवान और पार्वती के द्वारा सिंचित है। अतः कृषि के सन्दर्भ में भी यह राजस्थान का महत्वपूर्ण भाग है। इस भू-भाग का ढाल दक्षिण से उत्तर की ओर क्रमशः है। यह पठार पुनः दो लघु इकाईयों में विभाजित किया जाता है—

(अ) विंध्यन कागार भूमि

(द) दक्कन लावा पठार

(अ) विंध्यन कागार भूमि—यह कागार भूमि क्षेत्र बड़े-बड़े बलुआ-पत्थरों से निर्मित है जो स्लेटी पत्थरों के द्वारा पृथक दिखाई देती है। कागारों का मुख बनास और चम्बल के बीच दक्षिण, दक्षिण-पूर्व दिशा की ओर है तथा बुन्देलखण्ड में पूर्व की तरफ फैले हैं। उत्तर-पश्चिम में चम्बल के बांये किनारे पर तीव्र ढाल वाले कागार दिखलाई देते हैं तत्पश्चात् एक कागार खण्ड स्थित है जो धौलपुर और करौली के क्षेत्रों पर फैला है। इस विभाग में समानान्तर विन्ध्यन कागार सम्भवतः ठोस अरावली के कारण वलित और भ्रंशित है जो सीमा भ्रंश के सहारे उन पर धकेल दिये गये हैं। अरावली में मेसोजोइक समप्राय मैदान के संवलन जो दृष्टिगोचर होते हैं वे इस सम्पर्क का परिणाम हो सकते हैं। इस क्षेत्र की कागार भूमियों की ऊँचाई 350 मीटर से 550 मीटर के बीच है।

(ब) दक्कन लावा पठार—मध्यप्रदेश के विन्ध्यन पठार के पश्चिमी भाग तीन संकेन्द्रीय कागारों के रूप में विस्तृत है। यह तीन संकेन्द्रीय कागार तीन प्रमुख बलुआ पत्थरों की परिव्यक्त शिलाओं के द्वारा निर्मित है। इन बलुआ पत्थरों की परिव्यक्त शिलाओं के बीच-बीच में स्लेटी पत्थर भी मिलते हैं। दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान की यह भौतिक इकाई ऊपरमाल (उच्च पठार या पथरीला) के नाम से जानी जाती है। यह एक विस्तृत और पथरीली उच्च भूमि है जिसमें कोटा-बूँदी पठारी भाग भी सम्मिलित हैं। तीन टूटे कागार परिवहन की कठिनाइयाँ उत्पन्न करते हैं। इस भू-भाग में नदी घाटियों में कहीं-

कहीं काली मिट्टी के क्षेत्र मिलते हैं। विन्ध्यन कांगारों के आधार तल क्षेत्रों तक दक्कन ट्रेप लावा के जमाव दिखलाई देते हैं। अपरदन पुरानी भूमि सतहों को अनावृत करता है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि पुरानी स्थलाकृति का धरातल काफी हद तक वर्तमान स्थलाकृति के अनुरूप था।

चम्बल और इसकी सहायक नदियों जैसे—काली सिन्ध और पार्वती ने कोटा में एक त्रिकोणीय कांपीय बेसिन का निर्माण किया है जिसकी औसत ऊँचाई 210 मीटर 275 मीटर के बीच है। निम्न चम्बल के किनारों के सकड़े गर्तों के ऊपर के खड्ड यह इंगित करते हैं कि ये अभी हाल के नवीनीकरण से प्रभावित रहे हैं।

बून्दी व मुकन्दवाड़ा की पहाड़ियाँ इसी पठारीय भाग में हैं। मुकन्दवाड़ा की पहाड़ियाँ चम्बल से कोटा के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में होती हुई झालरापाटन तक चली गई है। इस भाग का ढाल दक्षिण से उत्तर की ओर क्रमशः है। बून्दी की पहाड़ियों में सतपुर के समीप 545 मीटर ऊँची चोटी है। नदियों ने इस पठारीय भू-भाग को काट-काट कर काफी विच्छेदित कर दिया।

3 अपवाह प्रणाली एवं झीलें

राजस्थान जैसे प्रदेश के आर्थिक विकास में नदियों का स्थान विशेष महत्व का है। राजस्थान की नदियों से न केवल सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध करवाई जाती हैं बल्कि जहाँ कहीं भी सम्भव होता है उनसे जल विद्युत शक्ति भी प्राप्त की जाती है। राजस्थान की नदियों के अपवाह क्षेत्र में प्राचीन काल से ही बहुत परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्तरी एवं दक्षिणी-पूर्वी व पूर्वी राजस्थान की अपवाह प्रणाली पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। भू-गर्भ शास्त्रियों का अनुमान है कि ऐतिहासिक युग में सतलज और यमुना राजस्थान से होकर बहती थी। इसी प्रकार सरस्वती नदी कदाचित वह नदी थी जो सोतर या घग्घर की तलहटी को घेरे हुए थी और नहान के निकट बहती थी। इस प्राचीन नदी जो बहुत अर्से से सूख गई थी, के घाट के नीचे से कालीबंगा के पास भारत की 5000 वर्ष पुरानी मोहन-जोदड़ों व हड़प्पा सभ्यता के अवशेष मिले हैं। यमुना दिल्ली के उत्तर में करनाल के पश्चिम का ओर बहती थी। उत्तरी बीकानेर के सूरतगढ़ के पास ये दोनों नदियाँ मिलकर और हकरा के नाम से दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती हुई कच्छ की खाड़ी में गिर जाती थी। ईसा युग के प्रारम्भिक काल में सतलज नदी एक स्वतन्त्र नदी थी जो सिन्धु से अलग ही बहती थी। यह घग्घर में मिलती थी या नहीं, इसकी कुछ भी जानकारी नहीं है किन्तु अब यह व्यास नदी में मिल जाती है। अमरकोट और सिरसा के बीच में इनकी पुरानी धारा के अवशेष अब भी प्राप्त होते हैं।

राजस्थान की भू-गर्भीय संरचना, अरावली शृंखला और महान भारतीय जल विभाजक की अवस्थिति ने राजस्थान की अपवाह प्रणाली को अत्यधिक प्रभावित किया है। राजस्थान में महान भारतीय जल विभाजक नदियों के जल को बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर की ओर बांट देता है। यह जल विभाजक अरावली अक्ष के सहारे सांभर झील से अजमेर के दक्षिण तक विस्तृत है। यहाँ से दक्षिण-पश्चिम की ओर ब्यावर से कुछ ही किलोमीटर पहले तथा उदयपुर शहर से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में अग्रसर होने से पूर्व देवगढ़ और कुम्भलगढ़ की ओर मुड़ जाती है। इससे आगे उदय सागर को पीछे छोड़ती हुई यह पश्चिम की ओर बढ़ जाती है, तत्पश्चात दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़कर बड़ी सादड़ी तक पहुँचती है जहाँ से यह पहाड़ियों के रास्ते को छोड़ती हुई चित्तौड़गढ़ में छोटी सादड़ी से प्रतापगढ़ की ओर चली जाती है। अरावली पार्श्व के पश्चिमी और दक्षिणी भाग की नदियाँ अरब सागर की ओर बहती है। इन नदियों में लूनी, सुकरी, बनास, साबरमती और माही मुख्य हैं। इन नदियों में वर्षा ऋतु में अधिकांश मौसमी जल धारायें आकर मिल जाती है और उनके जल को यह नदियाँ अपने साथ बहा ले जाती हैं। जल विभाजक पूर्वी पार्श्व पर बनास नदी अपनी मुख्य सहायक नदियाँ जैसे खारी, मौसी और मोरेल के साथ बांयी तरफ बहती है जबकि बेड़च, वेजासन और गोलवा के साथ दांयी तरफ बहती है। बनास नदी पूर्व की ओर बहकर चम्बल नदी से मिलती है जो अन्ततोगत्वा उत्तर प्रदेश में यमुना नदी में गिरती है।

राजस्थान की नदियों का अपवाह क्षेत्र[1]

क्र सं.	नदी क्रम	अपवाह क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)	कुल अपवाह क्षेत्र का प्रतिशत
1.	**चम्बल नदी क्रम**	72,032.05	20 90
	(अ) कुल	2,943.90	0.80
	(ब) काली सिन्ध व परवान	11,444.72	3.30
	(स) चम्बल	18,446.45	5.40
	(द) बन्सी	33,760.05	9.80
	(इ) मोरेल	5,436 93	1.60
2.	**माही नदी क्रम**	16,551.18	4.80
3.	**लूनी नदी क्रम**	34 866.40	10.40
	(अ) सागी	3,327 46	1.00
	(ब) जवाई	8,866 88	2.60
	(स) सुकरी व बांडी	22,672.06	6.70

1. Raheja, P. C. and A. K. Sen : 'Resources in Perspectiive' Recent Developments in Rajasthan, Souvenir, Govt. of India, Jodhpur (1964) PP. 6-7.

4. साबरमती नदी क्रम	3,288 68	1.00
5. बनास नदी क्रम	2,837.81	0.90
6. आंतरिक प्रवाह क्रम	3,85,587.21	60.50
(अ) कान्तली	4,667.80	1.40
(ब) सोता व साहीवी	5,793.88	1.70
(स) बाराहा	3,516.50	1.00
(द) बाणगंगा	6,742.57	2.00
(इ) अनुपन्न (Misfit) धारायें	1,57,272.42	46.00
(फ) लूनी नदी की अनुपन्न धारायें	27,594.04	8.10
7. यमुना-गंगा नदी क्रम	5,126.49	1.50
	5,20,289.82	100 00

राजस्थान की अपवाह प्रणाली (मानचित्र स. 6) की मुख्य विशेषता यह है कि राज्य के लगभग 60.2 प्रतिशत क्षेत्र में आन्तरिक प्रवाह प्रणाली पाई जाती है। यह समस्त क्षेत्र लगभग अरावली के पश्चिम में स्थित है। इस भू-भाग में कई पृथक अपवाह बेसिन जैसे कान्तली बेसिन, सोता और सीवी बेसिन तथा बाराहा बेसिन पाये जाते हैं। लूनी बेसिन भी एक पृथक अपवाह बेसिन है लेकिन इसमें अनुपन्न धारायें पाई जाती हैं। राज्य के पश्चिमी भाग के रेगिस्तानी भू-भाग में इन सभी बेसिनों का जल समा जाता है। प्रवाह के अनुसार राजस्थान की अपवाह प्रणाली को हम तीन भागों में बांट सकते हैं :—

(1) वे नदियाँ जिनका जल अरब सागर में गिरता है।

(2) वे नदियाँ जिनका जल बंगाल की खाड़ी में गिरता है।

(3) आन्तरिक प्रवाह वाली नदियाँ।

(1) अरब सागर को जल ले जाने वाली नदियाँ—

लूनी नदी—राजस्थान बांगर प्रदेश के दक्षिणी भाग में केवल एक महत्वपूर्ण जल धारा लूनी नदी है—जो अजमेर के आनासागर से निकल कर लगभग 32 किलोमीटर की दूरी तक दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती है तथा जोधपुर, बाड़मेर और जालौर आदि अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों से गुजरती है। इसकी कुल लम्बाई 330 किलोमीटर है। लूनी नदी के स्रोत पर तालोड रोड के समीप इसका आवाह क्षेत्र लगभग 32 वर्ग किलोमीटर का है जो लेटेराइट और मुरमं से निर्मित है। पुष्कर घाटी से एक छोटी सहायक नदी प्राप्त करने पर इस नदी का बेसिन चौड़ा हो जाता है। अजमेर के समीप अरावली ढालों से लूनी नदी निकल कर 10 किलोमीटर बहने के पश्चात् दक्षिण-पश्चिम की तरफ मुड़ती है। इस नदी के अन्तर्गत राजस्थान के समस्त अपवाह क्षेत्र का लगभग 10.40 प्रतिशत भू-भाग आता है जिस पर यह प्रवाहित होती है। वर्ष के अधिकांश समय इस नदी का पेटा शुष्क रहता है। पूर्णरुपेण वर्षा पोषित नदी होने के कारण यह केवल वर्षा ऋतु में ही बहती है और कई स्थानों पर बालू के ढेर आ जाने के कारण अवरुद्ध हो जाती है। मानसून ऋतु के दौरान जब इसमें अधिकतम जल प्रवाहित होता है तब भी यह अपने पेटे में निर्मित जमावों को काटने में असमर्थ रहती है। अरावली शृंखला के पश्चिमी ढाल से कई छोटी-छोटी जल धारायें जैसे लालरी, गुहिया, बांड़ी, सुकरी, जवाई, जोजरी और सागाई निकलकर लूनी नदी में मिल जाती है। लूनी नदी का जल बालोतरा तक मीठा है लेकिन इसके पश्चात् इसका जल अधिक से अधिक खारा होता जाता है जब तक यह कच्छ की खाड़ी में जाकर नहीं गिर जाती है। जोधपुर जिले में लूनी नदी अपने पेटे को गहरा करने की अपेक्षा अपने विस्तार को चौड़ाई में बढ़ा लेती है क्योंकि यहाँ पर वर्षा की प्रकृति तूफानी एवं आकस्मिक होने के कारण इस भू-भाग में बाढ़ें इतनी तेजी के साथ आती हैं कि नदी को अपने पेटे को गहरा करने के लिए समय ही नहीं मिलता। अत: वर्षा ऋतु के दौरान नदी अपनी घाटी में बहने की अपेक्षा समीपवर्ती क्षेत्रों में फैल जाती है और कभी-कभी रेल्वे लाइनों को भी नुकसान पहुंचाती है जो वास्तव में लूनी जंक्शन से गोल तक इसके समानान्तर बिछी हुई है।

माही नदी—यह मध्य प्रदेश के अममोरू जिले से निकलकर उत्तर की ओर बहने के पश्चात् खांदू के निकट राजस्थान के दक्षिणी भागों में स्थित बांसवाड़ा जिले में प्रवेश करती है। यह नदी नरवाली तक बहने के पश्चात् दक्षिण-पश्चिम दिशा की

और लगभग 576 कि. मी. बहने के बाद खम्भात की खाड़ी में गिर जाती है। यह नदी डूँगरपुर की दक्षिणी सीमा वनाती हुई फिर बांसवाड़ा जिले के मध्य में प्रवाहित होती है। इसकी मुख्य सहायक नदियाँ—सोम, जाखम, अनास, चाप और मोरन आदि हैं। बांसवाड़ा में इस नदी पर माही बजाज सागर बांध बनाया गया है।

सोम—इसका उद्‌गम स्थल उदयपुर जिले में बीछामेड़ा स्थान है। यह शुरु में दक्षिण-पूर्व दिशा में बहती है और फिर डूँगरपुर की सीमा के साथ पूर्व में बहते हुए बेणेश्वर स्थान पर माही से मिल जाती है। इसकी सहायक नदियाँ जोखम, गोमती और सारनी हैं।

जोखम—यह नदी छोटी सादड़ी के निकट से निकलती है। इसके बाद प्रतापगढ़ जिले में बहते हुए उदयपुर जिले के धरियावद तहसील में प्रवेश करती है। आगे चलकर यह सोम नदी से मिल जाती है।

पश्चिमी बनास—अरावली के पश्चिमी ढालों से निकलकर सिरोही जिले में बहती हुई अन्त में कच्छ की खाड़ी ('लिटिल रन') में गिरती है।

साबरमती—इसका उद्‌गम स्थल उदयपुर जिले के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में होते हुए भी यह उदयपुर जिले में बहुत कम बहती है। इसका अधिकतर अपवाह क्षेत्र गुजरात राज्य में है। इसलिये यह नदी गुजरात की मुख्य नदी है। इसकी अनेक सहायक नदियाँ हैं जैसे—वाकल, हथमति, मेश्वा, वेतरक और माजम। यह सभी सहायक नदियाँ उदयपुर और डूँगरपुर से निकलती हैं लेकिन इनका अपवाह क्षेत्र राजस्थान राज्य में बहुत ही कम है। यह नदी अन्त में केम्बे की खाड़ी में विलीन हो जाती है।

(2) बंगाल की खाड़ी को जल ले जाने वाली नदियाँ—राजस्थान के पूर्वी एवं दक्षिणी-पूर्वी भागों में वर्षा का औसत 80 से.मी से भी अधिक है। राज्य के

इस भू-भाग में महत्वपूर्ण नदियाँ प्रवाहित होती है जिनमें चम्बल नदी क्रम महत्वपूर्ण है। चम्बल नदी सबसे बड़ी नदी है और केवल यही एक ऐसी नदी है जिसमें जल वर्ष भर प्रवाहित होता रहता है जबकि इसकी सहायक नदियाँ कभी-कभी पूर्ण शुष्क हो जाती हैं और उनके कभी पत्थरी पेटे दिखाई देने लगते हैं। सहायक नदियों में बनास, काली सिन्ध और पार्वती आदि मुख्य हैं।

चम्बल नदी—चम्बल नदी का प्राचीन नाम चर्मण्वती है, इसको कामधेनु नदी भी कहा जाता है। यह महू के दक्षिण में मानपुर के समीप जनापाव पहाड़ी (616 मी. ऊंची) के विंध्यन कगारों के उत्तरी पार्श्व से निकलती है। यह लगभग 325 किलोमीटर की दूरी तक एक लम्बे संकड़े और तीव्र गर्त से होकर बहती है। अपने स्त्रोत से 884 मीटर की ऊँचाई से 505 मी. की ऊँचाई तक चौरासीगढ़ के समीप गिरती है जहाँ यह चौरासीगढ़ से कोटा तक पुनः एक गार्ज में लगभग 113 किलोमीटर की दूरी तक बहती है। उत्तर दिशा में 257 किलोमीटर की दूरी तक बहने के पश्चात् यह चौरासीगढ़ के ऐतिहासिक गढ़ के समीप एक गार्ज को पार कर राजस्थान में प्रवेश करती है। इस स्थान पर नदी का तल 300 मीटर चौड़ा है। आगे भैंसरोड़गढ़ के समीप इसमें बामनी नदी आकर मिलती है। यहाँ से 5 किलोमीटर आगे प्रसिद्ध चुलिया का जलप्रपात है। यहाँ से कुछ दूरी तक बहने के पश्चात् नदी उत्तर-पूर्व की ओर मुड़कर कोटा में बहती हैं। यह पहले कोटा और बूंदी के बीच सीमा बनाती है, फिर सवाईमाधोपुर और कोटा के बीच सीमा बनाती हुई रामेश्वर स्थान पर बनास का पानी लेकर उत्तर से पूर्व दिशा में बहती है जहाँ यह राजस्थान और मध्यप्रदेश के बीच सीमा बनाती है। वहाँ इसमें सहायक नदी कालीसिन्ध नानेरा ग्राम के समीप मिलती हैं। अन्य सहायक नदी पार्वती लगभग 48 किलोमीटर नीचे आकर इससे मिलती है। यह दोनों सहायक नदियाँ इसके पूर्व में आकर मिलती हैं। लगभग 212 किलोमीटर तक सीधा रास्ता अपनाते हुए यह नदी पिनाहट के पास दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ जाती है और लगभग 966 किलोमीटर की समस्त दूरी तय करने के पश्चात मुराधगंज के समीप यमुना नदी में मिल जाती है। राजस्थान में यह केवल 135 किलोमीटर की दूरी तक बहती है। पालिया से पिनाहट तक उत्तर-पूर्व से आगे यह राजस्थान और मध्यप्रदेश के बीच लगभग 241 किलोमीटर की सीमा निर्धारित करती है। उत्तरप्रदेश में यमुना नदी में गिरने से पूर्व मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के बीच सीमा बनाती है। राजस्थान में दो अन्य सहायक नदियाँ कुराई और बनास, चम्बल नदी के बायें किनारे पर आकर उससे मिलती हैं। धौलपुर के दक्षिण में इस नदी के किनारों पर असंख्य गलीदार भूमि का निर्माण हुआ है जिनमें से कुछ 27 मीटर गहरे खड्ड मिलते है। राजस्थान में इस नदी का प्रवाह लगभग मैदानी है। चम्बल नदी पर निर्मित गांधी सागर बांध, जवाहर सागर बांध, राणा प्रताप सागर बांध और कोटा बेराज सिंचाई व जल-विद्युत प्रधान स्त्रोत है।

बनास—इस नदी को वन की आशा भी कहा जाता है। यह कुम्भलगढ़ दुर्ग से लगभग 5 किलोमीटर पूर्व अरावली पर्वत की खमनोर पहाड़ियों से अर्थात् कांकरोली और नाथद्वारा के बीच फैले आवाह क्षेत्र से निकलती है। बनास नदी मेवाड़ मैदान के मध्य से होकर गुजरती है। यह नदी कुम्भलगढ़ से मेवाड़ के पठार अर्थात् गोगुन्दा के पठार तक दक्षिण की ओर बहती है फिर अरावली पर्वतों की श्रेणियों को काट कर समकोण पर बहने लग जाती है और नाथद्वारा, राजसमन्द और रेलमगरा होती हुई चित्तौड़गढ़ व भीलवाड़ा जिले से बिगोंद के पास बेड़च का पानी लेकर चम्बल से रामेश्वर के स्थान पर सवाईमाधोपुर और कोटा की सीमा के समीप मिल जाती है। यह नदी गर्मियों में प्रायः सूख जाती है। इस नदी के ऊपरी भाग पहाड़ी होने के कारण अच्छी वर्षा प्राप्त करते हैं। इसकी घाटी के दोनों तरफ उपजाऊ क्षेत्र हैं। इसकी लम्बाई 480 किलोमीटर है। इसकी मुख्य सहायक नदियां बेड़च, कोठारी, खारी, मैनाल, बाण्डी, मानसी, धुन्ध और मोरेल हैं। बीगोंद और माण्डलगढ़ के मध्य बनास, बेडम्च और मैनाल नदियों का संगम स्थल है जिसे त्रिवेणी कहा जाता है।

बेड़च—यह नदी बनास नदी की सहायक नदी है। इसका उद्‌गम स्थल उदयपुर शहर के उत्तर में स्थित गोगुन्दा की पहाड़ियों में स्थित है। पहले आयड़ नदी के नाम से पुकारी जाती है लेकिन उदयसागर झील से निकलने के पश्चात् इसको बेड़च नदी कहते हैं। यहां से चित्तौड़ तक इसकी प्रवाह दिशा उत्तर-पूर्व रहती है

और 190 किलोमीटर बहने के पश्चात् चित्तौड़गढ़ से आगे बिगोंद के समीप बनास में मिल जाती हैं।

कोठारी—यह बनास नदी की प्रमुख सहायक नदी है। यह उदयपुर जिले के उत्तर में दिवेर स्थान से निकलती है और लगभग 145 किलोमीटर मैदानी भाग में प्रवाहित होने के पश्चात् भीलवाड़ा जिले में बनास नदी से मिल जाती है।

खारी नदी—यह नदी भी बनास की सहायक नदी है। यह उदयपुर जिले के सुदूर उत्तरी भाग में स्थित बिजराल ग्राम के पास की पहाड़ियों से निकलती है। यह देवगढ़ के समीप से होती हुई अजमेर जिले में देवली के समीप बनास नदी से मिल जाती है। यह नदी अधिक लम्बी नहीं है। इसकी कुल लम्बाई लगभग 80 किलोमीटर है।

पार्वती—यह चम्बल नदी की सहायक नदी है। यह विंध्यन श्रेणी के उत्तरी ढ़ाल से निकल कर मध्य प्रदेश में बहने के पश्चात् कोटा जिले में करयाहट स्थान के निकट राजस्थान में प्रवेश करती है। कोटा जिले में लगभग 65 किलोमीटर बहने के पश्चात् पाली स्थान पर यह चम्बल नदी में मिल जाती है।

काली सिन्ध—यह चम्बल नदी की सहायक नदी है। इसका उद्‌गम स्त्रोत मध्य प्रदेश में है। राजस्थान में यह झालावाड़ तथा कोटा से बहते हुए नोनेरा स्थान पर चम्बल नदी में गिर जाती है। इसकी मुख्य सहायक नदियाँ परवन, निवाज और आहू हैं।

बाणगंगा—यह नदी जयपुर जिले की बैराठ पहाड़ियों से निकल कर पूर्व की ओर बहते हुए भरतपुर में प्रवेश करती है। इसके बाद यह भरतपुर तथा उत्तर-प्रदेश की सीमा थोड़ी दूर तक बनाते हुई बहती है। अन्त में आगरा जिले के फतेहाबाद स्थान के निकट यह यमुना नदी में मिल जाती है। इसकी कुल लम्बाई 380 किलोमीटर है। बाणगंगा को जमवा रामगढ़ के समीप अवरुद्ध किया गया है जिससे जयपुर नगर को पीने के जल की एक बहुत बड़ी मात्रा उपलब्ध करवाई जाती है।

इनके अतिरिक्त कुटाल नदी ऊपरमाल के पठार से निकल कर बून्दी के पूर्व में प्रवाहित होती हुई चम्बल नदी में मिल जाती है।

(3) आन्तरिक जल प्रवाह

घग्घर—यह नदी हिमालय की शिवालिक पर्वत श्रेणियों से शिमला के पास कालका के निकट से निकल कर अम्बाला, पटियाला, हिसार जिलों में होती हुई राजस्थान के गंगानगर जिले में टिब्बी के समीप उत्तर पूर्व दिशा में प्रवेश करती है। पहले किसी समय यह बीकानेर राज्य के उत्तरी भाग में बहती थी लेकिन अब यह हनुमानगढ़ के पश्चिम में लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर प्रवाहित होती है। गंगानगर के रेगिस्तानी क्षेत्र में तलवाड़ा में अनूपगढ़ तक करीब 7 किलोमीटर की चौड़ाई में घग्घर नदी के बाढ़ का पानी अक्सर मानसून ऋतु में फैल जाती है जिससे धान की फसल को हानि तथा लाभ दोनों ही होते रहते हैं और यातायात अवरुद्ध हो जाता हैं। इसका जल दो नहरों की सहायता से सिंचाई के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ये नहरें तत्कालीन बीकानेर दरबार ने सन् 1897 में भारत सरकार से सहयोग प्राप्त कर बनवाई थीं। यह नदी अपने स्त्रोत से 465 किलोमीटर प्रवाहित होने के बाद भटनेर (हनुमान गढ़) रेगिस्तान में प्रायः विलीन हो जाती है लेकिन वर्षा ऋतु में यह सूरतगढ़ के कुछ गांवों तक पहुंच जाती है। यह अनुमान है कि यह नदी कभी बीकानेर और बहावलपुर राज्य के भागों में प्रवाहित होते हुए सिन्ध नदी में मिलती थी। इसका विस्तार बहावलपुर में हकरा के नाम से जाना जाता है। प्राचीन जलधाराओं के पेटे अभी भी देखे जा सकते हैं लेकिन वे वर्षा ऋतु के अलावा सूखे ही रहते हैं।

कान्तली नदी—यह नदी सीकर जिले की खण्डेला पहाड़ियों से निकलती है। यह मौसमी नदी है जो तोरावटी उच्च भूमि पर प्रवाहित होती है। यह उत्तर में सीकर व झुन्झुनूं में लगभग 100 किलोमीटर बहने के बाद चूरु जिले की सीमा में जाकर विलीन हो जाती है।

साबी नदी—यह नदी सेवर पहाड़ियों (जयपुर जिला) से निकल कर जिले की बानसूर तहसील में प्रवेश करती है। बानसूर, बहरोड, किशनगढ़, मण्डावर व तिजारा तहसीलों में बहने के बाद यह हरियाणा राज्य के गुड़गांव जिले में कुछ दूरी तक प्रवाहित हो कर पटौदी के उत्तर में भूमि में विलीन हो जाती है।

काकनेय अथवा काकनी नदी—जैसलमेर से लगभग 27 किलोमीटर दूर दक्षिण में कोटरी गाँव है, जहाँ से यह नदी निकलती है। यह कुछ ही किलोमीटर बहने के बाद लुप्त हो जाती है लेकिन प्रदेश में अच्छी वर्षा होने पर यह काफी दूर तक बहती है तब यह नदी स्थानीय भाषा में मसूरदी नदी के नाम से जानी जाती है। यह काफी दूरी तक पहले उत्तर की दिशा में फिर पश्चिम की तरफ बहते हुए बुज झील का निर्माण करती है। भारी वर्षा के वर्षों में यह नदी अपने सामान्य पथ से हटकर निरन्तर उत्तरी दिशा में सीधे ही लगभग 20 किलोमीटर तक, जब तक, यह मीठा खाड़ी में नहीं गिर जाती, बहती रहती है। इस प्रकार यह नदी तीन अवस्थाओं में बहती है लेकिन यह जल आपूर्ति पर निर्भर करता है। वर्षा की कमी होने पर यह तीन पृथक धाराओं में बहती है। इस नदी में पानी बहुत ही कम रहता है और वर्षा ऋतु के थोड़े दिनों के पश्चात् ही सूख जाती है। उपरोक्त के अतिरिक्त मन्था नदी जो जयपुर में मनोहर थाना से निकलती है, सांभर झील में उत्तर की तरफ से आकर उसमें गिरती है। रूपनगढ़ नाला, जो अजमेर के समीप से निकलता है, आकर सांभर झील में दक्षिण की तरफ गिरता है।

इन के अतिरिक्त राजस्थान में कई छोटी बड़ी नदियां प्रवाहित है। जिलानुसार राजस्थान की मुख्य नदियां निम्न है :—

जिलानुसार राजस्थान की नदियां

जिले का नाम	नदियों के नाम
1. अजमेर	: सागरमती, सरस्वती, खारी, डाई, बनास
2. अलवर	: साबी, रूपारेल, काली, गौरी, सोटा
3. उदयपुर	: बनास, वेड़च, वाकल, सोम, जाखम, साबरमती
4. कोटा	: चम्बल, काली सिन्ध, पार्वती, आऊ, नवेज, परबन
5. गंगानगर	: घग्घर
6. चित्तौड़गढ़	: बनास, वेड़च, वामणी, वागली, वागन, ओराई, गम्भीरी, सीवना, जाखम, माही
7. चूरू	: —
8. जयपुर	: बाणगंगा, बांड़ी, ढूंढ़, मोरेल, साबी, सोटा, डाई, सखा, माशी
9. जालौर	: लूनी, बांड़ी, जवाई, सूकड़ी
10. जैसलमेर	: काकनेय, लाठी, चांघण, धऊआ, धोगड़ी
11. जोधपुर	: लूनी, मीठड़ी, जोजरी
12. झालावाड़	: कालीसिन्ध, पार्वती, छोटी काली सिन्ध, निवाज
13. झुन्झुनू	: कान्तली
14. टोंक	: बनास, माशी, बांडी
15. डूंगरपुर	: सोम, माही, सोनी
16. नागौर	: लूनी
17. पाली	: लीलड़ी, बांड़ी, सूंकड़ी, जवाई
18. बाड़मेर	: लूनी, सूंकड़ी
19. बांसवाड़ा	: माही, अनास, चैनी
20. बीकानेर	: —
21. बूंदी	: कुराल
22. भरतपुर	: चम्बल, वराह, बाणगंगा, गंभीरी, पार्वती
23. भीलवाड़ा	: बनास, कोठारी, वेड़च, मेनाली, मानसी, खारी
34. सवाईमाधोपुर	: चम्बल, बनास, मोरेल
25. सिरोही	: प. बनास, सूकड़ी, पोसालिया, खाती, किशनावती, भूला, ओरा, सुखदा
26. सीकर	: कान्तली, मन्था, पावटा, कावंत
27. धौलपुर	: चम्बल

राजस्थान की प्रमुख झीलें

राजस्थान में जहां एक ओर खारी झीलें अपनी महत्वता रखती है वहीं दूसरी ओर मीठे पानी की झीलों का महत्व भी कम नहीं है। जहां प्राकृतिक झीलें मन को मोह लेती है वहीं कृत्रिम झीलें भी कम सौन्दर्यमयी नहीं है और साथ ही उपयोगिता की दृष्टि से भी लाभमयी है। राजस्थान की अधिकतर खारी झीलें आन्तरिक अपवाह के क्षेत्रों में हैं जहां छोटी-छोटी नदियां आकर प्रायः उनमें गिर कर समाप्त हो जाती है। इन खारी झीलों से नमक व अन्य पदार्थ प्राप्त होते हैं। मीठे पानी

की झीलों का उपयोग मुख्यत: सिंचाई के लिए तथा नगरों में जल की आपूर्ति उपलब्ध करवाने के लिए किया जाता है। मछलियाँ भी इनसे पकड़ी जाती हैं। इस प्रकार से इन झीलों का महत्व और भी प्रदेश के लिए बढ़ जाता है।

खारे पानी की झीलें

सांभर—इस झील की स्थिति 27° व 29° उत्तरी अक्षांशों व 74° और 75° पूर्वी देशान्तरों के मध्य है। यह जयपुर- फुलेरा रेल मार्ग पर जयपुर से 65 किलोमीटर पश्चिम में फुलेरा तहसील में स्थित है। इसकी ऊँचाई समुद्रतल से लगभग 367 मीटर है।

यह राजस्थान में ही नहीं बल्कि भारत में खारे पानी की सबसे बड़ी झील है जिसमें मेढ़ा, रुपनगढ़, खारी और खण्डेला नदियाँ आकर गिरती है। इसका अपवाह क्षेत्र लगभग 500 वर्ग किलोमीटर में विस्तृत है। सांभर झील की लम्बाई दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग 32 किलोमीटर तथा चौड़ाई 3 किलोमीटर से 12 किलोमीटर है। इस क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा लगभग 50 से. मी. है। मानसून काल में इसका जल 145 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैल जाता है। ग्रीष्म ऋतु में जब वाष्पीकरण की दर तेज होती है तो इसका विस्तार बहुत कम रह जाता है। ऐसा अनुमान है कि झील में 4 मीटर की गहराई तक नमक की मात्रा 350 लाख टन है अर्थात् प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पीछे 60,000 टन नमक होने का अनुमान हैं।[1]

भू-गर्भीय विभाग ने सर्वेक्षण की दृष्टि से इस झील के तल में तीन स्थानों पर छेदन कार्य किया जिससे नमूने प्राप्त कर यह निष्कर्ष निकाला कि इसके पेटे की गहराई पूर्वी किनारे पर 20 मीटर, मध्य में 23 मीटर और उत्तरी-पश्चिमी किनारे पर 25 मीटर है। पेटे के नीचे जो चट्टानें मिली हैं, उनके बारे में यह अनुमान है कि वे अरावली पर्वत श्रेणी की चट्टानों के अनुरूप हैं।

सांभर झील से नमक मुगलकाल से भी पूर्व से निकाला जाता रहा है। वर्तमान में सांभर नमक परियोजना का प्रबन्ध हिन्दुस्तान नमक कम्पनी के हाथ में है। एक सोडियम-सल्फेट संयत्र स्थापित किया जा रहा है जिससे 50 टन प्रतिदिन सोडियम सल्फेट का उत्पादन किया जा सकेगा। इस झील में नमक तैयार करने के लिये कई क्यारियाँ बनी हुई हैं व ठेलों के लिये पटरियां बिछी हुई हैं। इस झील के निकट 3 रेल्वे स्टेशन सांभर, गुढ़ा और कुचामन रोड अथवा नावां है जिनसे न केवल राजस्थान के विभिन्न स्थानों को नमक उपलब्ध करवाया जाता है बल्कि देश के अन्य राज्यों को भी निर्यात किया जाता है।

डीडवाना झील—यह नागौर जिले के डीडवाना नगर के समीप 4 किलोमीटर लम्बी झील है। यह 27°24′ उत्तरी अक्षांश और 74°34′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। जोधपुर नगर से डीडवाना झील लगभग 205 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में तथा डीडवाना कस्बे के दक्षिण-पूर्व में स्थित है।

इसके पेटे में चिपचिपी काली कीचड़ है जो संरचना की दृष्टि से सांभर झील के अनुरूप है। इसके नीचे खारे पानी के भण्डार हैं। इस झील से नमक बनाकर कुछ तो राजस्थान के बीकानेर व जोधपुर क्षेत्रों में ही खपा दिया जाता है और शेष नमक को डीडवाना स्टेशन से बाहर भेज दिया जाता है।

डीडवाना से लगभग 8 किलोमीटर की दूरी पर एक सोडियम सल्फेट संयत्र लगाया गया है जिससे कृत्रिम तरीकों से सोडियम तैयार कर कागज बनाने के काम में लिया जा रहा है। यहाँ का नमक प्राय: खाने के अयोग्य होता है।

पचभद्रा झील—यह झील बाड़मेर जिले में पचभद्रा नामक स्थान पर खारे पानी की झील है। यह लगभग 25 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र पर विस्तृत है। यह झील वर्षा जल के ऊपर निर्भर नहीं है बल्कि नियतवाही जल स्त्रोतों से इसे पर्याप्त खारी जल मिलता रहता है। स्थानीय कहावतों के अनुसार यह झील पूर्व में एक दलदल के रूप में थी जिसमें गर्म एवं शुष्क महीनों में नमक की पर्त जम जाती थी और आदिम जनजातियाँ अपने लिए तथा मरुभूमि के निवासियों के लिए नमक एकत्रित कर लिया करती थी। लगभग 400 वर्ष पूर्व एक पंचा था जिसने

---

1. M. S. Krishnan : "Geology of India and Burma" (1956) p. 43.

इस झील के समीप आकर एक खेड़ा या पुरवा स्थापित किया। अतः उसके नाम के पीछे इसे पचपदरा तथा बाद में अपभ्रंश होकर यह पचभद्रा पुकारा जाने लगा। इसके पश्चात् खारवाल जाति के लोग यहाँ आकर बसे जिन्होंने नमक निर्माण के कार्य को क्रमबद्ध तरीकों से प्रारम्भ किया। यह लोग मोरली झाड़ी की टहनियों का उपयोग नमक के स्फटिक बनाने के लिए करते हैं। नमक उत्तम किस्म का होता है जिसमें 98% तक सोडियम क्लोराइड की मात्रा पाई जाती है।

लूनकरनसर झील—यह खारी झील बीकानेर से उत्तर-पूर्व में लगभग 80 किलोमीटर दूर लूनकरनसर में स्थित है। इस झील का लवणीय जल नमक की मात्रा अधिक नहीं रखता है। इसलिए इससे नमक बहुत ही कम बनाया जाता है।

अन्य नमकीन झीलें फलोदी, कछोर और रेवासा है। राजस्थान की इन झीलों में टेथीज सागर के अवशेष होने के कारण पानी में खारापन होना स्वाभाविक है। लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि प्रतिवर्ष इनसे बहुत बड़ी मात्रा में नमक तैयार करने के बाद भी नमक की मात्रा में कमी नहीं आई है। इस विषय में हूम्स नोटिलिंग तथा हालैण्ड और क्राइस्ट आदि विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

हूम्स के अनुसार इन झीलों के स्थान पर पहले एक विशाल जलाशय था जिसके सूख जाने के परिणामस्वरूप यहाँ नमक के इतने बड़े जमाव पाये जाते हैं। नोटिलिंग का अनुमान है कि सांभर झील में नमक भूमि के नीचे लवणीय जल के स्त्रोतों के प्रवाहित होने के फलस्वरूप मिलता है।

अन्य विद्वानों के अनुसार इन झीलों के नीचे जो निक्षेप है उनमें पुरानी लवणीय शैलें बिछी हुई हैं अतएव केशाकर्षण शक्ति द्वारा नमक ऊपर आता रहता है और झीलें खारी होती रहती हैं।

हालैण्ड और क्राइस्ट के विचार है कि राजस्थान में इन झीलों में इतनी अधिक मात्रा में नमक पाये जाने का एकमात्र कारण ग्रीष्म ऋतु में चलने वाली दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हवायें हैं जो अपने साथ कच्छ की खाड़ी से सोडियम क्लोराइड नामक नमक धूल के कणों के रूप में राजस्थान की ओर ले आती हैं। ज्यों-ज्यों ये हवायें राजस्थान की ओर अग्रसर होती हैं उनकी गति में शिथिलता आने के कारण नमक के कणों को और आगे ले जाने में असमर्थ पाती हैं फलस्वरूप नमक के कण राज्य के रेगिस्तानी क्षेत्रों में गिर पड़ते हैं। यह असंख्य नमक कण इस भाग की छोटी-छोटी नदियों के द्वारा वर्षा ऋतु में सांभर जैसी झीलों में पहुँचा दिये जाते हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि प्रति वर्ष ग्रीष्म ऋतु में इन पवनों द्वारा औसतन एक लाख टन नमक राजस्थान की इन झीलों में पहुँचा दिया जाता है। फलतः झीलों में नमक की मात्रा में कभी भी कमी महसूस नहीं होती है।

(ख) मीठे पानी की झीलें

जयसमन्द झील—राणा जयसिंहजी ने सन् 1685-1691 में गोमती नदी पर बांध बनाकर इस झील को वर्तमान रूप दिया। यह बांध 375 मीटर लम्बा और 35 मीटर ऊँचा है। इसकी चौड़ाई पेटे में 20 मीटर तथा ऊपर 5 मीटर है। इसको ढ़ेबर झील भी कहते हैं। यह झील उदयपुर शहर से लगभग 51 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में स्थित है। इसकी स्थिति 73° 56′ व 74° 43′ पूर्वी देशान्तरों तथा 24° 12′ और 24° 18′ उत्तरी अक्षांशों के मध्य में है। इस झील की लम्बाई उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर लगभग 15 किलोमीटर है और इसकी चौड़ाई 2 से 8 किलोमीटर तक है। इस झील का क्षेत्रफल 55 किलोमीटर है। राजस्थान की मीठे पानी की झीलों में यह सबसे बड़ी है और विश्व की दूसरी सबसे बड़ी कृत्रिम झील है। इसकी परिधि 145 किलोमीटर है। इस झील का आवाह क्षेत्र लगभग 1800 वर्ग किलोमीटर है। इस झील के पश्चिम में 240 मीटर से 300 मीटर ऊँची एक पहाड़ी है। इस झील के क्षेत्र में छोटे बड़े 7 टापू हैं जिन पर भील व मीणा जाती के लोग रहते हैं। सबसे बड़े टापू का नाम 'बाबा का भागड़ा' तथा उससे छोटे का नाम 'प्यारी' है। इस झील में 6 कलात्मक छतरियां व प्रासाद बने हुए हैं जो बहुत ही सुन्दर हैं।

सन् 1950 के पश्चात् इस झील से सिंचाई के लिये दो नहरें श्यामपुरा नहर व भाट नहर बनाई गई। इन मुख्य नहरों की लम्बाई 324 किलोमीटर व वितरक नहरों की लम्बाई 125 किलोमीटर है। इसका प्रबन्ध

अब राज्य सरकार के सिंचाई विभाग के हाथ में है। यह झील पहाड़ियों से घिरी हुई है। शांत एवं मनोरम वातावरण में इस झील का प्राकृतिक सौन्दर्य मन को मोह लेता है। मनोरम दृश्यावली से आवृत यह झील बहुत ही उत्कृष्ट पर्यटक स्थल है।

राजसमन्द झील—महाराणा राजसिंह ने सन् 1662 में कांकरोली रेल्वे स्टेशन के निकट इस झील का निर्माण करवाया था। यह झील उदयपुर से 64 किलोमीटर दूर स्थित है। इस झील में गोमती नदी आकर गिरती है। यह झील लगभग 6.5 किलोमीटर लम्बी तथा 3 किलोमीटर चौड़ी है। इस झील का उत्तरी भाग नौ चौकी के नाम से प्रसिद्ध है जहाँ संगमरमर के 25 शिलालेखों पर मेवाड़ का इतिहास संस्कृत भाषा में अंकित हैं।

आजकल इस झील से सिंचाई का काम भी लिया जाता है। इसमें जल की आपूर्ति के लिए बनास बांध के फालतू पानी को खारी फीडर से नहरें निकाल कर डाल दिया जाता है जिससे इसमें वर्ष भर पर्याप्त पानी उपलब्ध रहता है और सिंचाई की सुविधाएँ एक बड़े क्षेत्र को उपलब्ध होती हैं।

पिछोला झील—14वीं शताब्दी के अन्त में राणा लाखा के शासन काल में एक बनजारे ने इस झील को बनवाया था। यह झील उदयपुर के पश्चिम में पिछोली गाँव के किनारे पर स्थित होने के कारण पिछोला नाम से जानी जाती है। महाराणा उदयसिंह ने अपने शासन काल में इसकी मरम्मत करवाई तथा इसके किनारों को पक्का बनवाकर ऊँचा कराया। यह झील लगभग 7 किलोमीटर चौड़ी है इस झील में स्थित दो टापूओं पर जग मन्दिर और जग निवास दो सुन्दर महल बने हुए हैं। कहते हैं कि खुर्रम (बादशाह शाहजहाँ) ने अपने विद्रोही समय में इन्हीं महलों में शरण ली थी, इसमें अब लेक पैलेस होटल खुला हुआ है।

आनासागर झील—यह झील अजमेर में दो पहाड़ियों के मध्य अत्यन्त रमणीय लगती है। यह एक सुन्दर कृत्रिम झील है। इस झील को सम्राट पृथ्वीराज चौहान के पितामह आनाजी ने सन् 1137 के लगभग बनवाया था। कहा जाता है कि इस स्थान पर आनाजी ने अपने अनेक शत्रुओं का वध किया था और बाद में भयंकर खून खराबे के इस युद्ध स्थल को धोने के लिये उसने एक छोटी नदी पर बांध बनवा कर इस स्थल पर झील तैयार करवाई। इससे मुगल सम्राटों का ध्यान, जब वे अजमेर आये, आकर्षित हुआ। जहाँगीर इस स्थान की सुन्दरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने बांध के नीचे एक उद्यान 'दौलत बाग' बनवाया जिसे अब 'सुभाष उद्यान' के नाम से जाना जाता है। शाहजहाँ ने इसके तट बन्धन पर 378 मीटर लम्बा संगमरमर का मुंडेरा जुड़वाया और पाँच संगमरमर के सुन्दर मण्डप बनवाये।

सिलिसेढ़ झील—यह झील देहली-जयपुर मार्ग पर जयपुर आते समय अलवर नगर से लगभग 12 किलोमीटर दूर है। यह झील अरावली पर्वत श्रेणी स्थित होने के कारण बहुत ही रमणीय दृश्य उपस्थित करती है। यह झील लगभग 10 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली है। इस झील के चारों ओर घने जंगल हैं जिनके कारण यह और भी अधिक आकर्षक दृष्टिगोचर होती हैं तथा पर्यटकों का मुख्य आकर्षण केन्द्र है। इससे मछलियाँ पकड़ी जाती है इस झील में नौका विहार की भी सुविधा है। सरकार द्वारा यहाँ विश्राम गृह भी स्थापित किया गया है।

कोलायत झील—मरुस्थली में बीकानेर से लगभग 48 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम की ओर कोलायत झील स्थित है। कहा जाता है कि यहाँ कपिल मुनि का आश्रम था। इस झील में वर्ष पर्यन्त पानी रहता है, यहाँ वर्ष में कार्तिक पूर्णिमा के समय एक बड़ा मेला भी लगता है। कोलायतजी बीकानेर से रेल मार्ग व सड़क मार्ग द्वारा जुड़ा हुआ है।

पुष्कर झील—यह झील अजमेर के उत्तर-दक्षिण में लगभग 11 किलोमीटर दूर पुष्कर में स्थित है। इसमें वर्ष भर पानी रहता है किन्तु वर्षा के दिनों इसका दृश्य बहुत ही आकर्षक लगता है। इस झील के तीन तरफ पहाड़ियाँ है। झील के चारों ओर स्नान घाट बने हुए हैं। यहाँ अनेक मन्दिर हैं, जिनमें ब्रह्माजी का मन्दिर सबसे प्राचीन है। पवित्र झील के पश्चिम में एक सीधी पहाड़ी की चोटी पर श्री ब्रह्माजी की पत्नी सावित्री का मन्दिर है। रंगजी के नाम से ज्ञात एक वैकुण्ठ नाथ जी का मन्दिर विशिष्ट दक्षिणी भारतीय शैली में बना हुआ

है जो बहुत ही सुन्दर स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत करता है। हिन्दुओं की यह मान्यता है कि पुष्कर की यात्रा करना मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य को प्राप्त करने की प्रथम सीढ़ी है।

उपरोक्त के अतिरिक्त उदयपुर में फतेहसागर झील, उदयसागर, बूंदी में नवलखां झील, डूंगरपुर में गैव-सागर झील, जोधपुर में बालसमन्द झील, कैलाना झील, सरदारसमन्द, प्रतापसागर, उम्मेदसागर, बीकानेर में गजनेर, अनूपसागर, सूरसागर, भरतपुर में बन्धवारेठा, धौलपुर में तालाबशाही, जयपुर में गलता जी व रामगढ़ बन्ध, जैसलमेर में धारसीसागर, गढ़ीसर, अमरसागर, बुज की झील, अजमेर में फाईसागर, नारायण सागर बांध, पाली में हेमावास बांध, जवाई बांध, अलवर में राजसमन्द, कोटा में जवाहर सागर बांध, कोटा बांध, चित्तौड़गढ़ में भूपाल सागर, राणा प्रताप सागर बांध; बांसवाड़ा में बजाजसागर बांध, कडाणा बांध, भीलवाड़ा में मेजा बांध, सरेरी बांध, उम्मेद सागर, मांडल ताल, अखड बांध, खारी बांध, जैतपुरा बांध आदि उल्लेख-नीय है।

भौगोलिक कारक मानव की क्रियाओं के वितरण अथवा मानव भूमि के सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं। उनमें जलवायु एक महत्वपूर्ण भौगोलिक कारक है। जलवायु का प्रभाव राजस्थान के आर्थिक जीवन पर विविध प्रकार से पड़ता हैं। कृषि एवं इससे सम्बन्धित सभी कार्य किसी न किसी प्रकार जलवायु पर आधारित हैं। राज्य की जनसंख्या भी प्रत्यक्ष रूप में जलवायु द्वारा प्रभावित है। इसी प्रकार प्राकृतिक वनस्पति, मिट्टी, उद्योग धन्धे, व्यवसाय, रहन-सहन, आवागमन के मार्ग, रहन-सहन, आवागमन के मार्ग तथा साधन आदि पर भी जलवायु का प्रभाव पड़ता है। किसी भी क्षेत्र की प्रगति और उसका विकास जलवायु द्वारा बड़े पैमाने पर निर्धारित होता है। अतः क्षेत्रीय आर्थिक परिस्थितियों को जलवायु की उपज कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

किसी प्रदेश की जलवायु का अध्ययन एक विस्तृत एवं जटिल विषय है, लेकिन यहाँ पर राजस्थान की जलवायु से सम्बन्धित केवल प्रमुख तथ्यों पर ही प्रकाश डाला जायेगा। किसी भू-भाग पर लम्बी अवधि के दौरान विभिन्न समयों में विविध मौसमों की औसत अवस्था उस भू-भाग की जलवायु कहलाती है। किसी एक स्थान की जलवायु अथवा मौसम की दशाओं का अध्ययन करते समय एक से तत्वों पर विचार किया जाता है अगर इसमें कोई अन्तर है तो वह केवल समय की अवधि का है। मौसम का तात्पर्य मुख्यतया छोटी अवधि जैसे एक दिन, एक सप्ताह, एक मास अथवा इससे कुछ अधिक, जबकि जलवायु एक लम्बी अवधि के दौरान किये गये अनुवीक्षणों के द्वारा निर्धारित दशाओं के औसत के साथ सम्बन्धित हैं। जलवायु के अध्ययन में कई तत्व जैसे तापक्रम, दवाव, आर्द्रता, वर्षा, वायुवेग, धूप की अवधि और कई अन्य कम महत्वपूर्ण तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। राजस्थान की जलवायु को नियन्त्रित करने वालों कारकों में अक्षांशीय स्थिति, जल से सापेक्षिक स्थिति, पर्वतीय अवरोध, ऊंचाई, प्रचलित हवाएँ, चक्रवातीय तूफानों का प्रचलन तथा महाद्वीपता आदि महत्वपूर्ण कारक हैं। इसमें अक्षांशीय स्थिति ऐसा कारक हैं जो दिन की लम्बाई को नियन्त्रित तथा निर्धारित करता है, जिससे धूप की अवधि व तापक्रम की विषमता प्रभावित तथा शासित होती है। राजस्थान की जलवायु का अध्ययन करने के पूर्व निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

(i) राजस्थान की स्थिति 23° 3′ व 30° 12′ उत्तरी अक्षांशों में है। इन्हीं अक्षांशों में उत्तरी अरेबिया, साइबेरिया और मिश्र का कुछ भाग, उत्तरी सहारा और मेक्सिको के भाग स्थित हैं, जहाँ जलवायु की दशायें राजस्थान की अपेक्षा अधिक कठोर और प्रचण्ड है। भारत के उत्तरप्रदेश व पश्चिमी बंगाल के अधिकांश भाग भी इन्हीं अक्षांशों के मध्य स्थित हैं लेकिन स्थानीय कारकों के फलस्वरूप जलवायु में पर्याप्त अन्तर है। अक्षांशीय स्थिति काफी हद तक उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में सूर्याभिताप और प्रचलित वायु की दिशाओं को निर्धारित करती है।

(ii) राजस्थान के दक्षिणी भाग, कच्छ की खाड़ी से लगभग 225 किलोमीटर और अरब सागर से लगभग 400 किलोमीटर दूर हैं।

(iii) राजस्थान के अधिकांश भाग समुद्रतल से 370 मीटर से भी कम ऊँचे हैं हालांकि अरावली प्रदेश के कुछ भागों की ऊंचाई 1375 मीटर तक पाई जाती है।

(iv) राज्य में अरावली शृंखला दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व में विस्तृत है। राजस्थान के दक्षिणी भागों से होकर कर्क रेखा गुजरती है।

राजस्थान जलवायु की दृष्टि से सम्पूर्ण भारत की मानसूनी जलवायु का एक अभिन्न अंग है किन्तु समानता के साथ-साथ भारत के अन्य भागों से भिन्न यह विशिष्टता लिये हुए है। जलवायु दशाओं की अतिशयता के लिये राजस्थान की आन्तरिक अवस्थिति, वनस्पति रहित आवरण, मिट्टियों की प्रकृति और नग्न चट्टानों आदि को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। आबू पर्वत और भोराट का पठार ऊंचाई के कारण कम तापक्रम आलेखित करते हैं और गर्मियों में ठण्डे बने रहते हैं। जलराशियाँ जैसे पिछोला, फतेहसागर आदि भी कुछ सीमा तक स्थानीय जलवायु पर तापक्रम के प्रभाव को कम करने में सहायक होती है। सामान्यतया अरावली

के पश्चिम में राजस्थान की जलवायु विश्व के अन्य मरुस्थल और अर्द्ध मरुस्थल प्रदेशों के समान ऊंचे तापक्रम, कठोर सूखे की लम्बी अवधियाँ, उच्च वायुवेग और निम्न सापेक्षिक आर्द्रता जैसी विशेषताएँ रखती हैं। शीत ऋतु काफी ठण्डी होती है और कई स्थानों पर तापक्रम कभी-कभी हिमांक बिन्दु से नीचे गिर जाता है और पाला भी पड़ता है। दूसरी तरफ ग्रीष्म ऋतु में तापक्रम तेज और झुलसाने वाला होता है।

राजस्थान का पश्चिमी शुष्क प्रदेश भारत का सबसे अधिक गर्म प्रदेश है। अरावली के पूर्व और दक्षिण में तापक्रम के वितरण और वर्षा की मात्रा में काफी विषमता देखने को मिलती है।

भारत विभिन्न प्रकार की जलवायु विषमताओं को रखता है लेकिन मानसून के परिवर्तनों के प्रभाव से जलवायु की दशाओं में एक प्रकार की समता दिखाई देती है। राजस्थान की जलवायु का अध्ययन मौसमी विषमताओं पर आधारित है। प्रत्येक ऋतु का अध्ययन जलवायु के प्रमुख तत्त्व वर्षा, तापक्रम तथा वायुभार की दशाओं के आधार पर किया जा सकता है। वायुभार दशाओं का स्थानीय महत्त्व नहीं होता, इसलिए ये दशायें सम्पूर्ण उपमहाद्वीप पर व्याप्त दशाओं द्वारा नियन्त्रित तथा उन्हीं का एक अभिन्न अंग होती है।

जलवायु के आधार पर राजस्थान में वर्ष को तीन मुख्य परम्परागत ऋतुओं में बांटा गया है—

(1) ग्रीष्म ऋतु (मार्च से मध्य जून)

(2) वर्षा ऋतु (मध्य जून से सितम्बर)

(3) शीत ऋतु (अक्टूबर से फरवरी)

भारत सरकार के अन्तरिक्ष विभाग (मौसम कार्यालय) ने शीत ऋतु को दो उपविभागों में बांटा है—

(i) मानसून प्रत्यावर्तन काल की ऋतु (अक्टूबर से मध्य दिसम्बर तक)

(ii) शीत ऋतु (मध्य दिसम्बर से फरवरी)

यह मौसमी विषमतायें विभिन्न महीनों के तापक्रम और वर्षा की दशाओं के विस्तृत रूप पर आधारित हैं। तापक्रम और वर्षा बहुत ही महत्वपूर्ण तत्त्व हैं जो किसी भी प्रदेश की जलवायु के अध्ययन के लिए निरन्तर ध्यान में रखे जाते हैं। इस प्रदेश की जलवायु पर अन्य कारक जैसे धूप की मात्रा, मेघाच्छादन और आर्द्रता का प्रभाव भी पड़ता है।

ग्रीष्म ऋतु

ग्रीष्म ऋतु मार्च से आरम्भ होती है। सूर्य के उत्तर की ओर अग्रसर होने पर तापक्रम में वृद्धि होती हैं। सर्वप्रथम दक्कन पठार पर और फिर धीरे-धीरे भारत के उत्तरी-पश्चिमी और दक्षिण-पश्चिमी भागों पर तापक्रम में वृद्धि होने लगती है। राजस्थान में इस महीने के दौरान तापक्रम में वृद्धि लगभग एक जैसी होती है।

तापक्रम में वृद्धि के कारण, वायुमण्डलीय दबाव निरन्तर गर्म सतह पर गिरने लगता है। अप्रेल में हवायें पश्चिम से पूर्व की ओर चलती है। हवायें क्योंकि गर्म-थार मरुस्थल को पार करते हुए आती है, इसलिए शुष्क और गर्म होती हैं। अप्रेल और मई के महीनों में सूर्य लम्बवत चमकता है, तापक्रम के दैनिक परिसर में वृद्धि होती है और दिन अधिक गर्म हो जाते हैं। राजस्थान के पश्चिमी भागों में, मुख्य रूप से बीकानेर, फलौदी, जैसलमेर और बाड़मेर आदि में अधिकतम दैनिक तापक्रम इन महीनों में 40° सें. से 45° सें. तक चला जाता है।

थार मरुस्थल भारत में अत्यधिक गर्म प्रदेशों में से एक है क्योंकि दैनिक परिसर अधिक है। इसलिए निम्नतम दैनिक तापक्रम काफी नीचे तक गिर जाता है। दिन के समय तीव्र गर्मी और चिलचिलाती धूप होती है। आर्द्रता लगभग एक प्रतिशत तक गिर जाती है। पौधे जो इन विशिष्ट मरुस्थलीय दशाओं में अपनी वृद्धि कर सकने में समर्थ हैं, उनके अलावा यहाँ हरी वनस्पति नहीं पाई जाती है। वार्षिक तापक्रम परिसर 14° सें. से 17° सें. के बीच रहता है लेकिन तापक्रम का दैनिक परिसर अधिक है और वास्तव में, राजस्थान के विभिन्न केन्द्रों पर दिन और रात के तापक्रम में अन्तर इतना अधिक रहता है कि जलवायु की दशाओं के औसत मूल्य अपूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं। वायु शुष्क तथा आकाश मेघरहित होने के कारण सूर्य की किरणें बिना किसी अवरोध के बलुई और चट्टानी सतहों पर पहुँचती हैं। दिन के समय ताप में वृद्धि क्षितिज में सूर्य के बढ़ने के साथ-साथ होती जाती है। यह वृद्धि इतनी अधिक होती है कि दोपहर के समय

तक तापक्रम लगभग 36° सें. और तीसरे पहर तक यह लगभग 49° सें. तक पहुँच जाता है। वातावरण की शुष्कता, स्वच्छ आकाश, मिट्टी की बलुई प्रकृति और वनस्पति के अभाव के कारण रात्रि में तापमान अचानक गिर जाता है। दिन की कड़ी गर्मी के पश्चात् राजस्थान का मरु प्रदेश रात में शीतल हो जाता है क्योंकि धूप से तप्प बालू रेत रात होते ही ठण्डी होने लगती है, जिसके परिणाम स्वरूप वायु भी शीतल हो जाती है। इस प्रकार इस भाग में गर्मी के मौसम में भी रातें शीतल एवं सुहावनी होती हैं।

सें. तक तापक्रम पहुंच जाता हैं। दिन के समय उच्च तापक्रम मौसम को अति कष्टकर बना देते हैं। यदा-कदा धूल के तूफान तापक्रम में अचानक गिरावट ले आते हैं और कभी-कभी इन तूफानों के बाद वर्षा हो जाती है जिसके कारण तापक्रम गिर जाते हैं। रात्रियां ग्रीष्मऋतु में भी ठण्डी होती हैं और शीतकाल में कभी-कभी पाला भी पड़ जाता है। तापक्रम का दैनिक परिसर अरावली के पश्चिम में लगभग 14° सें. से 17° सें. के बीच रहता है और राज्य के अन्य भागों में भी सूर्य का ताप दिन के दौरान बालू और अनावृत चट्टानी सतहों को

मानचित्र संख्या –7
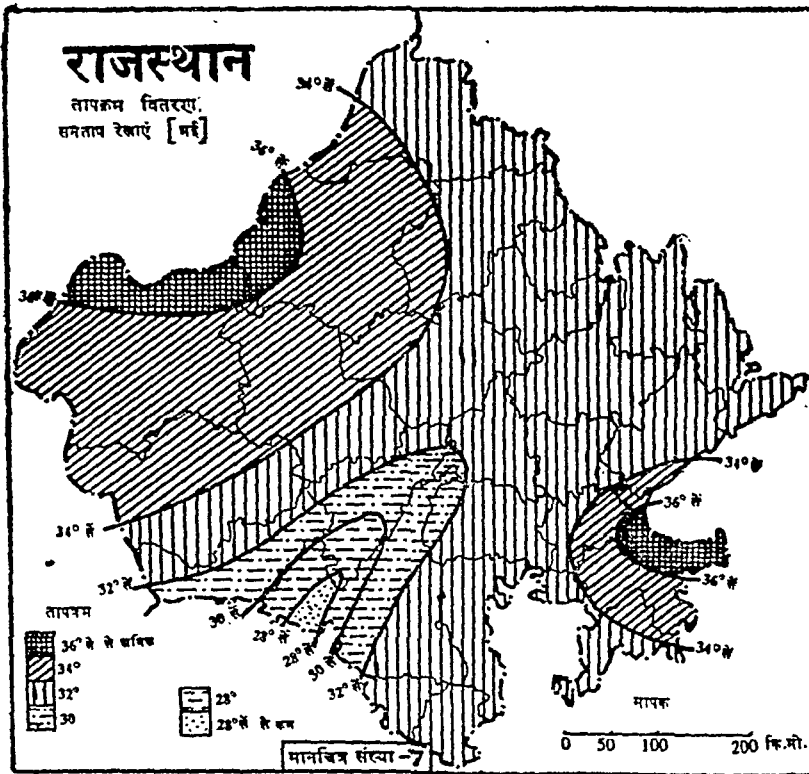
परिणाम यह होता है कि दिन के समय तापक्रम बहुत अधिक तथा रात्रि में तापक्रम काफी कम हो जाता है। दिन का तापक्रम तापतरंगों के सम्पर्क में आकर काफी बढ़ जाता है। यह ताप तरंगें सामान्यतः उत्तरी भागों में इस अवधि के दौरान विकसित होती है। इसलिए गंगानगर में उच्चतम तापक्रम 50° सें. तक पहुंच जाता है। जोधपुर, बीकानेर और बाड़मेर में 49° सें., जयपुर और कोटा में 40° सें. और झालावाड़ में 47°

इतना अधिक गर्म कर देता हे कि नंगे पैर उन पर चलना दूभर हो जाता हे। स्थानीय ताप प्रचण्ड संवाहन धाराओं को जन्म दे देता है जिसके फलस्वरूप धूल के भंवरों की उत्पत्ति होती हैं। कभी-कभी ये चक्रवातीय तूफानों से सम्बन्धित होते हैं तथा धूल से परिपूर्ण होने के कारण खतरनाक भी होते हैं। धूल की उपस्थिति के कारण दृश्यता बहुत कम हो जाती है। मई के महीने की औसत समताप रेखाओं (32° सें., 34° सें, 36° सें.)

को मानचित्र संख्या 7 में दिखाया गया है। अरावली के उत्तरी और पश्चिमी भागों में तापक्रम निरन्तर बढ़ता जाता है। कोटा और झालावाड़ में भी लगभग 36° सें. औसत तापक्रम रिकार्ड किया जाता है। 36° सें. की समताप रेखा बीकानेर के पश्चिम और जैसलमेर के उत्तरी भागों से गुजरती है। उच्चतम औसत मासिक तापक्रम मई में कोटा में 36° सें. रिकार्ड किया गया है। राज्य में समताप रेखाओं की प्रवृत्ति शुष्कता की तीव्रता और मात्रा की द्योतक नहीं है।

वर्षा की मात्रा भी इन दोनों क्षेत्रों में शुष्क और उपआर्द्र दशाओं को किसी सीमा तक निर्धारित करती है। जून से सितम्बर तक जैसलमेर, फलौदी, बीकानेर, और गंगानगर में औसत वर्षा 12 से मी. से 25 से.मी. के बीच होती है। इस प्रकार वर्षा की दशायें इन दोनों प्रदेशों की जलवायु दशाओं को काफी प्रभावित करती है। यह पहले प्रदेश को शुष्क तथा दूसरे को उपआर्द्र बनाती है। 32 सें. की समताप रेखा अरावली के पश्चिमी पार्श्व के सहारे काफी दूर तक विस्तृत है और फिर यह अजमेर और जयपुर के पश्चिम से होते हुये उत्तर की ओर चली जाती है।

संक्षेप रूप से कह सकते है कि इस मौसम में तापमान 32° सें. से 43° सें. तक पाये जाते है। मई के महीने में राज्य के अधिकांश भागों में अधिकतम तापमान 40.5° सें. से 42° सें. के मध्य तथा निम्नतम तापमान 23° सें. से 27° सें. तक रहते है। राज्य के पश्चिमी भाग भीषण रूप से गर्म रहते है तथा तापमान 45° सें. से भी अधिक हो जाते है। इस ऋतु में भयंकर लू चलती है जिससे तापक्रम पर्याप्त बढ़ते है। तीव्र गर्मी के कारण स्थानीय वायु भंवर बन जाते है जो रेत भरी आंधियों के साथ मिलकर भयंकर रूप धारण कर लेते है। रेत भरी आंधियों का औसत वर्ष में गंगानगर में 27 दिन, कोटा में 5 दिन, अजमेर तथा झालावाड़ में 3 दिन रहता है। इस ऋतु की अन्य विशेषतायें शुष्क वायु, उच्च तापक्रम तथा गर्म तथा शुष्क पश्चिमी हवाएँ है। सम्पूर्ण ऋतु में सापेक्षिक आर्द्रता प्रातः 35 प्रतिशत से 60 प्रतिशत और दोपहर में 10 प्रतिशत से 30 प्रतिशत रहती है।

वर्षा ऋतु

अप्रैल से निरन्तर गर्मी प्राप्त करते-करते तापक्रम, दबाव और वायु दशायें जून के मध्य तक अत्यधिक तीव्र और प्रचण्ड बन जाती हैं और इसलिये उत्तरी, उत्तरी-पश्चिमी और पश्चिमी भारत, मानसून के प्रारम्भ होने तक, काफी गर्म हो जाता है। मानसून हवायें हिन्द महासागर को पार करते ही दो शाखाओं में—एक बंगाल की खाड़ी शाखा और दूसरी अरब सागर शाखा के रूप में बंट जाती है, क्योंकि उनका लक्ष्य सिन्ध और राजस्थान के निम्न वायु दाब की ओर अग्रसर होना होता है। इसलिये राजस्थान अपनी स्थिति के कारण दोनों मानसून शाखाओं के रास्ते में आता है। इन मानसूनों की उर्द्धवाकार गति भारी वर्षा नहीं लाती है। न केवल राजस्थान में बल्कि पश्चिमी क्षेत्रों में भी मानसून के पहुँचने के बाद भी वर्षा काफी कम होती है। राजस्थान में कम वर्षा होने के निम्न प्रमुख कारण है—

(i) दक्षिणी-पूर्वी वायु धारायें पहिले से ही अपनी आर्द्रता को गंगा के मैदान में ही समाप्त कर चुकी होती है।

(ii) दक्षिण-पूर्व से आने वाली हवायें उष्ण सागर पार करने के पश्चात् अत्यधिक गर्म भूमि पर आती हैं। इसलिये उनकी सापेक्षिक आर्द्रता 90 प्रतिशत से घट कर 50 प्रतिशत ही रह जाती हैं। साधारणतया सापेक्षिक आर्द्रता का यह प्रतिशत भी वर्षा कर सकता है बशर्ते वायु धारा 920 मीटर की ऊँचाई तक उठ जाये। लेकिन पश्चिम से गर्म शुष्क वायु की ऊपरी धारा की उपस्थिति के कारण आर्द्रता का अधिकांश भाग सोख लिया जाता है और आकाश पुनः मेघरहित बन जाता हैं। इस प्रकार स्वच्छ मेघरहित आकाश, लम्बवत सूर्य की झुलसाने वाली किरणें वायु की शुष्कता को बनाये रखती हैं जिससे वर्षा की सम्भावना प्रायः समाप्त हो जाती है।[1]

(iii) राजस्थान में वर्षा की न्यूनता के लिये प्राकृतिक अवरोध का भी अभाव एक कारण है।

---

1. Miller, A. A. : "Climatology" Methuen and Co. Ltd. London 1961, P. 152.

राजस्थान में अरावली की श्रेणियों का विस्तार हवाओं के समानान्तर होने तथा ऊँचाई अधिक न होने के कारण यह श्रेणियाँ जल से भरी हवाओं को रोककर वर्षा करवाने में सहायक नहीं होती। यही कारण है कि मानसून हवायें बिना वर्षा किये आगे अबाध गति से निकल जाती है।

राजस्थान में वर्षा, विशेषकर मरुस्थली प्रदेश में बहुत विरल, अत्यधिक अनियमित मौसमीय और वार्षिक दृष्टि से भी परिवर्तनशील हैं। राजस्थान के वर्षा वितरण में भी क्षेत्रीय भिन्नता स्पष्ट है। वर्षा वितरण पर अरावली शृंखला का प्रबल प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। अरावली शृंखला की औसत ऊँचाई दक्षिण-पश्चिम में लगभग 920 मीटर हैं लेकिन उत्तर-पूर्व की ओर इसकी ऊँचाई धीरे-धीरे कम होती जाती है। उत्तर-पूर्व में यह पहाड़ियां देहली के समीप पहुँचते-पहुँचते बिखरी चट्टानों के रूप में मिलती हैं फलस्वरूप ग्रीष्म ऋतु की प्रचंड गर्मी के पश्चात् केवल दक्षिण-पश्चिम में ही वर्षा के प्रारम्भ से कुछ राहत मिलती है। लेकिन मरुस्थल के उत्तरी-पश्चिमी भागों में, तापक्रम अभी भी 46° सें. तक बना रहता है।

इस अवधि के दौरान समवर्षा रेखाओं की सामान्य प्रवृत्ति उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की तरफ (मानचित्र सं. 8) रहती है। दक्षिणी राजस्थान में बांसवाड़ा से झालावाड़ तथा कोटा तक के भागों में वर्षा उन मानसूनों से होती है जो नर्मदा, ताप्ती, माही नदियों की घाटियों के रास्ते यहाँ पहुँचते हैं। अरावली के पश्चिम में वर्षा की मात्रा में बड़ी तेजी के साथ कमी आती है जिसके फलस्वरूप पश्चिमी राजस्थान भारत का सबसे अधिक शुष्क प्रदेश बन गया है।

राज्य में वर्षा जून से सितम्बर की अवधि में होती है तथा पूर्व से पश्चिम की ओर इसकी मात्रा कम होती जाती है। 50 सें.मी. की सम वर्षा रेखा राज्य को दो विभागों में बाँटती है। इस रेखा के दक्षिण और पूर्व में वर्षा अधिक होती है। दक्षिण में स्थित आबू पर्वत, राजस्थान में सबसे अधिक 150 सें.मी. वर्षा प्राप्त करता है। अरावली के पूर्व में 80 सें.मी. से अधिक वर्षा कहीं भी नहीं होती है जबकि शुष्क पश्चिमी भाग में वर्षा का औसत 25 सें.मी. से भी कम रहता है।

उत्तर में वर्षा निम्न वायु गर्तों तथा पूर्वी हवाओं से प्रभावित है। कुछ-कुछ वर्षा स्थानीय वज्र-तूफानों से भी होती है।

औसत वार्षिक वर्षा जो अपने विस्तार में अत्याधिक अनिश्चित हैं, इन्डो-पाकिस्तान सीमा पर 10 सें.मी. और जैसलमेर में 21 से.मी. से प्रदेश के पूर्वी भाग में 35 से.मी. से 40 से.मी. के बीच विषमता रखती है। वर्षा पूर्व से पश्चिम की ओर कम होती जाती है जैसे जोधपुर 35 से.मी , जैसलमेर 20 से.मी. तथा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है जैसे बाड़मेर 31 से मी , बीकानेर 30 से.मी., गंगानगर 22 से.मी. आदि। इसके साथ ही साथ वर्षा की परिवर्तनशीलता भी इसी दिशा में बढ़ती जाती है। राजस्थान में अधिकांश वर्षा जुलाई और अगस्त के महीनों में ही होती है जैसे बीकानेर जुलाई और अगस्त में कुल वर्षा का 60 प्रतिशत से भी अधिक वर्षा प्राप्त करता है। इसी प्रकार गंगानगर लगभग 50 प्रतिशत, जैसलमेर 80 प्रतिशत से भी अधिक, जोधपुर 63 प्रतिशत से अधिक और बाड़मेर 70 प्रतिशत से भी अधिक वर्षा की मात्रा प्राप्त करते है। सितम्बर के महीनें में जुलाई और अगस्त की अपेक्षा कम वर्षा होती है। मानसून वर्षा काल के तीन महीनों में कुल वार्षिक वर्षा का लगभग 75 प्रतिशत से 90 प्रतिशत तक वर्षा प्रदान करते हैं। वर्षा की परिवर्तनशीलता अधिक है। मरुस्थली में 50 प्रतिशत से 70 प्रतिशत तक परिवर्तनशीलता वार्षिक वर्षा में एक असाधारण लक्षण नहीं माना जाता है। वास्तव में मरुस्थली के हृदय स्थल में कुछ ऐसे भी वर्ष आये हैं जब वर्षा बिलकुल ही नहीं हुई। जैसलमेर में 1970 से पूर्व लगभग 8 वर्ष की अवधि में बिलकुल ही वर्षा नहीं हुई जबकि 1970 में इसने अत्यधिक वर्षा रिकार्ड की। अभी तक आलेखित वार्षिक वर्षा अधिकतम गंगानगर ने वर्ष 1945 में 64 से.मी., बीकानेर ने 1917 में 172 से.मी., फलौदी ने 117.6 से.मी., बाड़मेर ने 1944 में 89.5 से.मी. और जैसलमेर ने वर्ष 1955 में 45.3 से.मी. वर्षा प्राप्त की।

शीत ऋतु

शीत ऋतु को दो विभागों में बांटा गया है :—

(अ) मानसून प्रत्यावर्तन काल ऋतु (अक्टूबर से मध्य दिसम्बर)

(ब) शीत ऋतु (मध्य दिसम्बर से फरवरी तक)

(अ) मानसून प्रत्यावर्तन काल की ऋतु

भारतीय जलवायु दृश्य से दक्षिणी-पश्चिमी मानसून और अन्त: कटिबन्धीय सीमान्त के प्रत्यावर्तन के पश्चात्, कुछ समय के लिये तापक्रम में थोड़ी सी वृद्धि हो जाती और उसके पश्चात् शीत ऋतु तक धीरे-धीरे तापक्रम निम्नतम बिंदु तक गिरने लगते हैं। उन क्षेत्रों में जहां पर वर्षा अधिक होती है, वहां पर उच्च तापक्रम तथा सतत आर्द्रता के कारण मौसम उमसदार होता है। राजस्थान में अक्टूबर और नवम्बर के महीनों में जहां राज्य का आधा भाग 25 से.मी. से कम वर्षा प्राप्त करता है, अधिक वाष्पीकरण और जलाक्रान्ति की अनुपस्थित उत्तम मौसम की दशाओं को दर्शाती हैं। समग्र राजस्थान में अक्टूबर माह में तापक्रम साधारणतया सम होते हैं, अधिकतम तापक्रम 34° सें. और 36° सें. के बीच और निम्नतम तापक्रम 18° सें. और 21° सें. के बीच विभिन्न केन्द्रों पर आलेखित किये गये हैं। नवम्बर का महीना कुछ ठण्डा होता है। आबू पर्वत का तापक्रम आस पास के क्षेत्रों से काफी कम है क्योंकि यह अधिक ऊंचाई पर स्थित है। इन महिनों के दौरान मानसून के प्रत्यावर्तन के कारण हवायें काफी शान्त, बहुत हल्की और अत्यधिक परिवर्तनशील होती हैं।

(ब) शीत ऋतु (मध्य दिसम्बर से फरवरी)

दिसम्बर से फरवरी के महीनों में सूर्य की स्थिति दक्षिणी गोलार्द्ध में होती है। उपकटिबन्धीय प्रतिचक्रवातीय कोष प्रायद्वीपीय आधार के समीप अपनी अक्ष के साथ पश्चिम में अग्रसर होता है। तापक्रम और वायुदशायें भारतीय प्रदेश पर इस दबाव केन्द्र से प्रभावित होती हैं। राज्य के उत्तरी भागों में उत्तर-पश्चिमी हवायें और दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में उत्तर-पूर्वी हवायें भारत के प्रतिचक्रवातीय कोष के कारण उत्पन्न होती है। फलस्वरूप शीतकालीन चक्रवात राजस्थान में पश्चिम से पूर्व की ओर अग्रसर होते हैं। इस अवधि के दौरान पूरे प्रदेश में तापक्रम धीरे-धीरे कम होने लगते हैं और वर्षा या तो बहुत कम या बिलकुल

ही नहीं होती है। शीत वर्षा जिसे स्थानीय भाषा में 'मावट' कहते हैं, पश्चिमी विक्षोमों के साथ जुड़ी है जो कभी-कभी मई तक चालू रहती है। जयपुर, अलवर और सीकर इन विक्षोभों तथा गर्तों से वार्षिक वर्षा का 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक प्राप्त करते हैं। आकाश मेघरहित होता है। पश्चिमी विक्षोभ छिछले गर्तों के द्वारा उत्तरी मैदान के मौसम में महत्वपूर्ण बाधायें उत्पन्न करते हैं लेकिन इनका प्रभाव राज्य की मौसमी दशाओं पर बहुत कम परिलक्षित होता है।

जनवरी और मई माह की समताप रेखायें आपस सबसे कम 8° सें. है। उत्तरी क्षेत्रों में तापक्रम प्रवणता अधिक है जबकि दक्षिण में कम है। राजस्थान का विस्तार 23°3' से 30°12' उत्तरी अक्षांशों में है। अत: दक्षिण से उत्तर तक तापक्रम में अन्तर लगभग 7° सें. का है जो सम्भवतया एक डिग्री अक्षांश के साथ एक सेन्टीग्रेड की तापक्रम की प्रवणता को दर्शाता है। समताप रेखायें अरावली को पार करते समय दक्षिण की ओर झुक जाती हैं जिससे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि दक्षिणी अक्षांशों पर तापक्रम कम होता है। राजस्थान के दक्षिणी भाग विशेषकर कोटा, झालावाड़, जोधपुर,
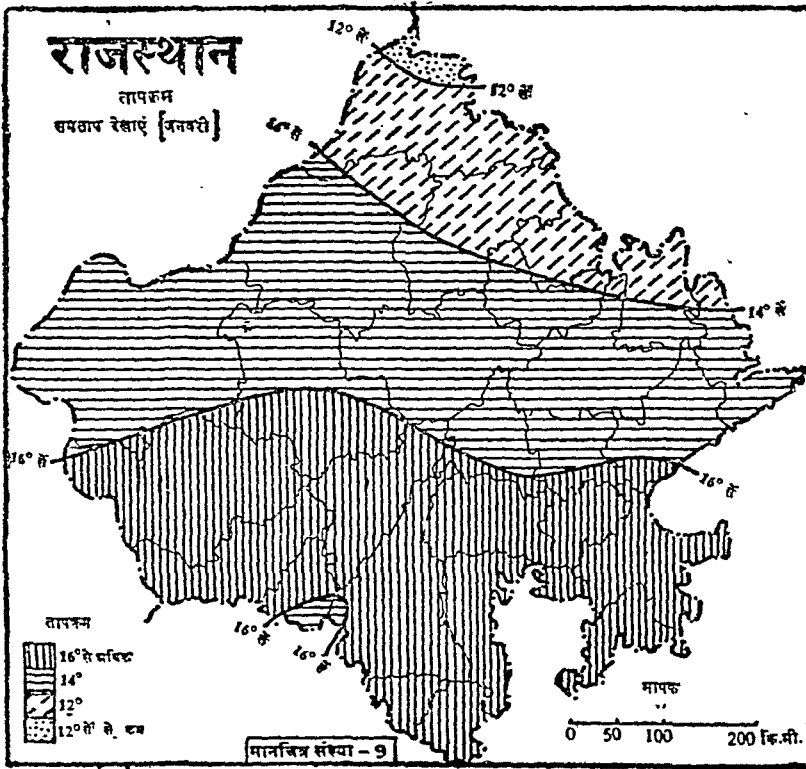
में काफी विषमता रखती हैं। यह समताप रेखायें लगभग अक्षांशों के समानान्तर पश्चिम से पूर्व की ओर अरावली की पहाड़ियों को पार करते समय थोड़े अन्तर के साथ पायी जाती है। जनवरी माह का औसत तापक्रम का परिसर (मानचित्र सं. 9) उत्तरी भाग में 12° सें. से दक्षिण में 16° सें. के बीच है। जनवरी माह का औसत तापक्रम विभिन्न केन्द्रों पर 14° सें. से 17° सें. के बीच रहता है। आबू पर्वत पर तापक्रम परिसर बाड़मेर और उदयपुर के भाग में जनवरी का औसत तापक्रम लगभग 16° सें. है। औसत मासिक तापक्रम बीकानेर में 15.4° सें., जैसलमेर में 15° सें., जोधपुर में 17° सें होता है। माउन्ट आबू पर्वतीय क्षेत्र में स्थित होने के कारण जनवरी में निम्नतम औसत तापक्रम लगभग 14.6 सें. रिकार्ड करता है। इसी समय उत्तरी क्षेत्रों में शीत लहर के कारण तापक्रम कभी-कभी पाला के साथ हिमांक बिन्दु तक पहुँच जाते हैं। शीत

उत्तरी हवायें प्रायः चलती रहती है जिसके कारण दैनिक तापक्रम अतिशयता इस ऋतु में शीत लहर से सम्बन्धित है।

आर्द्रता—ब्लेनफार्ड (1876) भारतीय मरुस्थल के विषय में अपना मत व्यक्त करते हैं कि मरुस्थल शब्द का प्रयोग इस भू-भाग के लिये भ्रामक है क्योंकि यह न तो बंजर है और न ही बसा हुआ है और कुछ स्थानों पर छोटे पेड़-पौधे पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जनसंख्या छितरी हुई हैं। गाँव बिखरे हुए हैं। ऊँट, चौपाए, भेड़ और बकरियों के बड़े-बड़े समूह रखे और चराये जाते हैं। मरुस्थल वास्तव में एक महान बालू का भू-भाग है जहाँ जल की धाराओं का पूर्णतया अभाव है लेकिन कुछ चट्टानें और सतह का एक बड़ा भू-भाग बालू की पहाड़ियों से ढ़का हुआ है। ग्लेनी (1932) और सर ऑरेल स्टेन का विवरण ब्लेन फोर्ड से मिलता-जुलता है। स्टेन के मतानुसार भारतीय मरुस्थल की जलवायु चीन, तुर्किस्तान के रेगिस्तान की अति शुष्कता से काफी भिन्न है। भारतीय मरुस्थल के ऊपर की वायु अधिक शुष्क नहीं है बल्कि थोड़ी सी नमी रखती है।

मार्च, अप्रेल और मई के गर्म महीनों में आपेक्षित आर्द्रता निम्नतम और जुलाई, अगस्त और सितम्बर के महीनों में अधिकतम होती है। आर्द्रता सबसे कम अप्रेल के महीने में तथा सबसे अधिक अगस्त के महीने में होती है। वायु में नमी की मात्रा शीत ऋतु में निम्नतम होती है। ग्रीष्म ऋतु में आर्द्रता प्रातःकालीन 35 प्रतिशत से 60 प्रतिशत के बीच और अपरान्ह 10 प्रतिशत और 30 प्रतिशत के बीच रहती है। शीत ऋतु में मुख्यतया दिसम्बर से फरवरी के महीनों में आर्द्रता सुबह के समय 50 प्रतिशत से 60 प्रतिशत तक तथा अपरान्ह में 25 प्रतिशत से 35 प्रतिशत के बीच रहती है। गंगानगर में कुछ थोड़ी सी अधिक आर्द्रता का प्रतिशत सिंचाई और पर्याप्त मात्रा में निम्न शुष्क बल्ब तापक्रम के परिणामस्वरूप मिलता है। जोधपुर में सबसे कम आर्द्रता पाई जाती है और वाष्पीय दबाव के मूल्यों से तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि जोधपुर अन्य केन्द्रों की अपेक्षा अधिक शुष्क है। मानसून ऋतु में आर्द्रता में वृद्धि अधिक दिखाई देती है। जुलाई से सितम्बर की अवधि में आर्द्रता 55 प्रतिशत से 70 प्रतिशत के बीच पाई जाती हैं। सापेक्षिक आर्द्रता और बादलों के मेघाच्छादन में सीधा सम्बन्ध है। अधिक आर्द्रता अधिक बादलों के निर्माण में सहायक होकर अधिक वर्षा प्रदान करती है। यह वृद्धि अरावली के दक्षिणी-पश्चिमी और पश्चिमी क्षेत्रों में कम तथा पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्रों में जहाँ वर्षा काफी अधिक होती है, अधिक पाई जाती है। इस समय कोटा में सापेक्षिक आर्द्रता और ऊँचे तापक्रम के कारण उमसदार दशायें उत्पन्न हो जाती हैं। सितम्बर और अक्टूबर के साथ ही तापक्रम में 25° सें. तक गिरावट आ जाती है। इसलिये मानसून के प्रत्यावर्तन पर सापेक्षिक आर्द्रता में बड़ी तेजी से गिरावट आने लगती है और कभी-कभी यह प्रतिशत शीत ऋतु की अपेक्षा भी कम होता है।

हवाएँ

राजस्थान में हवायें प्रायः दक्षिण-पश्चिम और पश्चिम की ओर से चला करती हैं। जून के महीने में हवायें सबसे तेज व नवम्बर के महीने में सबसे हल्की चलती हैं। वायु की गति राजस्थान के पूर्वी भागों की अपेक्षा उत्तरी-पश्चिमी व पश्चिमी भागों में जैसे बीकानेर, गंगानगर, जोधपुर, जैसलमेर व बाड़मेर के शुष्क व अर्द्धशुष्क भागों में अधिक तीव्र होती हैं। राजस्थान में वायु की अधिकतम गति लगभग 140 किलोमीटर प्रति घंटा है।

ग्रीष्म ऋतु में गर्म, तेज हवाएं और आन्धियां पश्चिमी राजस्थान की एक विशेषता हैं। गर्म और शुष्क हवा के फलस्वरूप जलाशय राशियों से होने वाले वाष्पीकरण और पौधों से होने वाले वाष्पोत्सर्जन में वृद्धि होती है। अप्रेल से सितम्बर तक हवाएं तीव्रगति से चलती है। जून में यह अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है। इस माह में हवाएं जैसलमेर में औसतन 27 किमी. प्रति घन्टा से चलती रहती है। वर्षा ऋतु के पश्चात् समस्त राज्य में अक्टूबर और नवम्बर के महीनों में हवा की गति अन्य महीनों की अपेक्षा काफी कम रहती है। इन दोनों महीनों में पश्चिमी राजस्थान में इसका परास (परिसर-Range) 2.5 कि.मी. प्रति घन्टा से 5 कि.मी. प्रति घन्टा तक रहता है। पूर्वी राजस्थान में जयपुर केन्द्र

के अलावा अन्य सभी केन्द्रों पर हवा की गति 3 कि. मी. प्रति घण्टे से कम रहती है। जयपुर में हवा की गति 8 कि.मी. के लगभग आलेखित की जाती है।

आंधियाँ

ग्रीष्म ऋतु में समग्र राजस्थान में गर्म और धूलभरी हवाएँ आम घटना हैं, किन्तु पश्चिमी शुष्क भागों में प्रचण्ड धूल के तूफान एक साधारण बात है। ये धूल के तूफान अथवा धूल-भरी आंधियाँ प्रायः तीसरे पहर आया करती हैं जो तापक्रम को अचानक गिरा देती हैं तथा प्रायः बौछार या छींटे पड़ जाते हैं। इन आंधियों का रंग प्रायः पीला होता है लेकिन कभी-कभी काला भी होता है। फलस्वरूप इन आंधियों से दिन में ही रात जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है।

राजस्थान के उत्तरी क्षेत्रों में यह धूल भरी आंधियाँ जून के महीने में तथा दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्रों में मई के महीने में सबसे अधिक आती हैं जून के बाद प्रायः धूल भरी आंधियाँ रूक जाती हैं। औसतन वर्ष भर में धूल की आंधियाँ गंगानगर में 27 दिन, बीकानेर में 18 दिन, जोधपुर में 8 दिन, जयपुर में 6 दिन, कोटा में 5 दिन तथा अजमेर में 3 दिन चला करती हैं। इस प्रकार धूल भरी आंधियों की संख्या और तीव्रता पश्चिमी शुष्क भागों से अर्द्ध शुष्क उपजाऊ मैदानों व अधिक वर्षा वाले पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्रों की ओर क्रमशः कम होती जाती है। राज्य के पश्चिमी शुष्क क्षेत्रों की अपेक्षा पूर्वी भागों में वज्र तूफान प्रायः अधिक आते हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि वज्र तूफानों का वितरण धूल भरी आंधियों के स्थानिक वितरण से विपरीत प्रवृत्ति दर्शाता है। झालावाड़ और जयपुर में एक वर्ष में 40 से 45 दिन वज्र तूफान आते हैं जबकि कोटा और अजमेर में 30 से 35 दिन, जोधपुर में लगभग 25 दिन और बीकानेर व बाड़मेर में लगभग 10 दिन वज्र तूफान आते हैं। गंगानगर में इनकी विरलता है। यह तूफान साधारणतया मई से सितम्बर की अवधि में लेकिन विशेषतया जून और जुलाई में आते हैं।

राजस्थान के जलवायु प्रदेश

जलवायु प्रदेश का अभिप्राय उस स्थल क्षेत्र से है जहाँ पर जलवायु के लक्षण सामान्य रूप से समान हों लेकिन इससे यह तात्पर्य नहीं है कि वे बिल्कुल ही समान हों। वास्तव में किसी प्रदेश को जलवायु प्रदेशों में विभाजित करना सरल कार्य नहीं है क्योंकि विभिन्न तत्वों को विविध परिस्थितियों में वर्गीकरण करते समय ध्यान में रखना होता है। यह भिन्नता स्वाभाविक है जिसके अनेक कारण है।

राजस्थान का धरातल सर्वत्र समान नहीं है। समुद्र तल से ऊँचाई, विषमता, जल तथा स्थल भागों की सापेक्ष्य स्थिति एवं अक्षांशीय स्थिति आदि कई तत्व जलवायु के निर्धारण में सहायक होते हैं। इनके अतिरिक्त वायु दिशा, पर्वतों की स्थिति आदि तत्व भी राजस्थान की जलवायु में प्रादेशिक भिन्नता उत्पन्न करते हैं। इन सभी तथ्यों के फलस्वरूप तापक्रम एवं वर्षा दोनों के वितरण में विषमता दृष्टिगत होती है लेकिन यह विषमता वर्षा वितरण में अधिक है। यही कारण है कि जब हम राजस्थान के जलवायु प्रदेशों का निर्धारण करते हैं तो तापक्रम की अपेक्षा वर्षा के वितरण को एक मापदण्ड मानते हुये उसे महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। तापक्रम की दृष्टि से राजस्थान गर्म शीतोष्ण कटिबन्ध में आता है इसलिये तापक्रम की भिन्नता का आधार इसके जलवायु प्रदेशों के लिए न्यायसंगत नहीं होगा। प्रो. विलियमसन, क्लार्क, डॉ. स्टाम्प और प्रो. कैण्ड्यू आदि विद्वानों ने भी भारत को जलवायु प्रदेशों में विभक्त करने के लिये वर्षा को ही मापदण्ड बनाया है।

राजस्थान कर्क रेखा के उत्तर में स्थित है किन्तु इसकी जलवायु सब भागो में एक समान नहीं है। राजस्थान के पश्चिमी भाग में ग्रीष्म ऋतु काफी उष्ण और शीत ऋतु काफी ठण्डी होती है तथा वायु में वाष्प की मात्रा बहुत ही कम होती है। इसके विपरीत पूर्वी भागों में शीत ऋतु कम ठण्डी और ग्रीष्म ऋतु कम गर्म होती है। वायु में सदैव आर्द्रता की मात्रा बनी रहती है। राजस्थान में ग्रीष्म ऋतु के तापक्रम पर निम्न बातों का प्रभाव पड़ता है—

(i) सूर्य की सीधी किरणों का पड़ना।

(ii) समुद्र से दूर होने के कारण स्थल का प्रभाव पड़ना।

(iii) प्रतिचक्रवात जो निरन्तर तापमान को ऊँचा बनाये रखते हैं।

(iv) वर्षा लाने वाली दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पवनों के आने से तापमान में गिरावट आना।

ग्रीष्म ऋतु में अधिकतम तापमान उत्तरी एवं उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान में रहते हैं। शीत ऋतु में सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने के अतिरिक्त यहाँ चलने वाले प्रति-चक्रवात भी तापमान को निर्धारित करते हैं। जनवरी में तापमान 12° सें. से 16° सें. के बीच तथा जून में 38° सें. से 49° सें. के बीच रहते हैं। पश्चिमी भागों में वर्षा 25 से मी. से कम किन्तु पूर्वी भागों में 75 से.मी. से भी अधिक होती है। इस प्रकार तापमान और वर्षा की मात्रा के आधार पर राजस्थान निम्न जलवायु प्रदेशों में विभक्त किया जाता है—

(1) शुष्क जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश के अन्तर्गत जैसलमेर जिला, बाड़मेर जिले के उत्तरी भाग, जोधपुर जिले की फलौदी तहसील का पश्चिमी भाग, बीकानेर जिले का पश्चिमी भाग तथा गंगानगर जिले का दक्षिणी भाग शामिल हैं। दूसरे शब्दों में यह प्रदेश थार मरुस्थल तक ही सीमित है। इस प्रदेश में शुष्क उष्ण मरुस्थलीय जलवायु की दशायें पायी जाती हैं। औसत तापमान ग्रीष्म ऋतु में 34° सें. से अधिक तथा शीत

ऋतु में 12° सें. से 16° सें. रहते हैं। वर्षा बहुत ही कम होती है। सुदूर पश्चिमी भागों में वर्षा 10 सें.मी. से भी कम तथा इस प्रदेश के शेष भागों में 20 सें.मी. से कम होती है। यहाँ की जलवायु अधिक शुष्क और कठोर है।

(2) अर्द्ध शुष्क जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश के अन्तर्गत गंगानगर, बीकानेर, जोधपुर, बाड़मेर जिलों के पश्चिमी भागों के अलावा समस्त भाग, चुरु जिला, सीकर, झुन्झुनूं, नागौर, पाली व जालौर के पश्चिमी भाग सम्मिलित है। इस प्रदेश में वर्षा 20 सें.मी. से 40 सें.मी. तक होती है। वर्षा की प्रकृति अनिश्चित है तथा साथ ही तूफानी भी। इसलिये जब कभी भी वर्षा होती है तो प्रायः बाढ़ें आ जाती है। इस प्रदेश में औसत तापमान ग्रीष्म ऋतु में 32° सें. से 36° सें. तथा शीत ऋतु में 10° सें. से 17 सें. तक पाये जाते हैं। इस प्रदेश के उत्तरी क्षेत्रों में शीत ऋतु छोटी व शुष्क होती है। यहाँ वनस्पति मुख्यतः स्टैपी प्रकार की मिलती है जिसमें कांटेदार झाड़ियां तथा घासों की प्रधानता होती है।

(3) उपआर्द्र जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश के अन्तर्गत

अलवर, जयपुर, अजमेर जिले, झुन्झुनूं, सीकर, पाली व जालौर जिलों के पूर्वी भाग तथा टोंक, भीलवाड़ा व सिरोही के उत्तरी-पश्चिमी भाग आते हैं। यह अर्द्ध उष्ण आर्द्र प्रदेश है जिसमें वर्षा कम होती है। यह वर्षा की मात्रा भी वर्षा ऋतु के कुछ महीनों तक ही सीमित है। इस प्रदेश में वर्षा 40 सें. मी. से 60 सें. मी. के बीच होती है। औसत तापमान गीष्म ऋतु में 28° सें. से 34° सें. तथा शीत ऋतु में 12° सें. उत्तरी क्षेत्रों में तथा 18° सें. दक्षिणी भागों में रहता है। इस प्रदेश में स्टेपी वनस्पति पाई जाती है।

(4) आर्द्र जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश के अन्तर्गत भरतपुर, धौलपुर सवाई माधोपुर, बूंदी, कोटा, दक्षिणी-पूर्वी टोंक तथा उत्तरी चित्तौड़गढ़ के क्षेत्र शामिल हैं। यहाँ वर्षा 60 सें. मी. से 80 सें. मी. के बीच होती है। इस प्रकार की जलवायु में ग्रीष्म कालीन तापमान ऊँचे होते है। औसत तापमान ग्रीष्म ऋतु में 32° सें. से 34° सें. तथा शीत ऋतु में 14°—17° सें. तक रहते हैं। शीत ऋतु में कुछ वर्षा चक्रवातों द्वारा हो जाती है। इस प्रदेश के क्षेत्रों पर पतझड़ वाले वृक्ष पाये जाते हैं।

(5) अति आर्द्र जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश के अन्तर्गत दक्षिणी-पूर्वी कोटा, झालावाड़, बांसवाड़ा जिले, उदयपुर जिले का कुछ दक्षिणी-पश्चिमी भाग तथा माऊन्ट आबू के समीपवर्ती भू-भाग शामिल हैं। इस प्रदेश में वर्षा का औसत 80 सें. मी. से लेकर 150 सें. मी. तक पाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में भीषण गर्मी पड़ती है। वर्षा अधिकाशत: वर्षा ऋतु में होती है। शीत ऋतु सूखी व ठण्डी होती है। वनस्पति यहाँ मानसूनी सवाना प्रकार की मिलती है।

कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार राजस्थान में जो जलवायु प्रदेश मिलते हैं वह भी उनके आधारों के अनुसार विषमता रखते हैं।
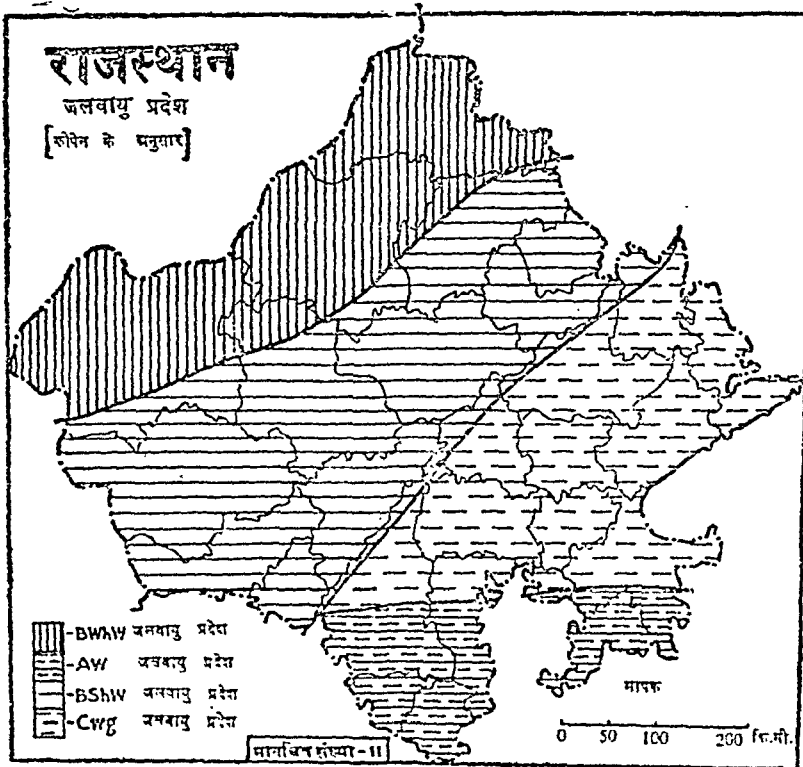
कोपेन का वर्गीकरण

डा. ब्लाडिमिर कोपेन ने वनस्पति के आधार पर विश्व को अनेक जलवायु प्रदेशों में बांटा है। इनके अनुसार वनस्पति के द्वारा ही किसी स्थान पर तापमान

और वर्षा का प्रभाव ज्ञात किया जा सकता है। इन्होंने अपने वर्णन में सांकेतिक शब्दों का प्रयोग किया है। उसके अनुसार राजस्थान में निम्न जलवायु प्रदेश मिलते हैं।

(i) AW या उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु प्रदेश—इस जलवायु प्रदेश में ग्रीष्म ऋतु में भीषण गर्मी पड़ती है तथा वर्षा भी अधिकतर ग्रीष्म ऋतु में होती है। शीत ऋतु सूखी और ठण्डी होती है एवं अति ठण्डे मास का तापमान 18° सें. से ऊपर रहता है। राजस्थान के डूंगरपुर जिले का दक्षिणी भाग तथा बांसवाड़ा जिला इस जलवायु प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं। ये क्षेत्र, वास्तव में शुष्क उष्ण कटिबन्धीय घास के मैदानों तथा सवाना तुल्य प्रदेश से बहुत कुछ साम्य रखते हैं। इस प्रदेश के क्षेत्रों पर मानसूनी पतझड़ वाले वृक्ष पाये जाते हैं।

***(ii) Bshw* जलवायु प्रदेश**—यह अर्द्ध शुष्क प्रदेश है। जाड़े की ऋतु शुष्क होती है, साथ ही ग्रीष्म ऋतु में भी वर्षा अधिक नहीं होती है। वनस्पति मुख्यत: स्टैपी प्रकार की है। कांटेदार झाड़ियां और घासें यहाँ की विशेषता हैं। धरातलों के पश्चिमी भाग में स्थित जिले बाड़मेर, जालौर, जोधपुर, नागौर, चूरू, सीकर, झुन्झुनूं, दक्षिणी पूर्वी गंगानगर आदि इस जलवायु प्रदेश में आते हैं।

(iii) Bwhw जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश में शुष्क उष्ण मरुस्थलीय जलवायु की दशायें पायी जाती हैं। वर्षा बहुत ही कम होती है। इसके विपरीत वाष्पीकरण की क्रिया अधिक होती है। इसलिये ये मरुस्थलीय प्रदेश बन गये हैं। उत्तरी-पश्चिमी जोधपुर, जैसलमेर, पश्चिमी बीकानेर और गंगानगर जिले के पश्चिमी भाग इस जलवायु प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं अर्थात् इस प्रकार के प्रदेश राजस्थान के पश्चिमी भाग के थार मरुस्थल तक ही सीमित है।

(iv) Cwg जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश में शीत ऋतु में मौसमी पवनों से वर्षा नहीं होती। यह ग्रीष्म के कुछ महीनों तक सीमित हैं। साधारणत: वर्षा ऋतु में वर्षा होती है। अरावली के दक्षिणी-पूर्वी और पूर्वी भाग इस जलवायु प्रदेश में आते हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण में वनस्पति और जलवायु के आंकड़ों पर विशेष ध्यान दिया गया है, किन्तु भू-पृष्ठीय रचना, वायुदाब में अन्तर तथा पवनों की दिशा के प्रभाव की अवहेलना की गई है। कोपेन के सूत्र निचले मैदानों के लिए तो किसी प्रकार ठीक है, किन्तु ऊँचे भागों के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होते हैं।[2]

थार्नवेट का वर्गीकरण—

थार्नवेट ने भी अपने विभाजन में विभिन्न सांकेतिक शब्दों का उपयोग किया है। इसके वर्गीकरण का आधार भी कोपेन की भाँति वनस्पति है। यह कोपेन के वर्गीकरण से अधिक मान्य है क्योंकि इसमें वर्षा की मात्रा के अतिरिक्त वाष्पीकरण की मात्रा को भी दृष्टिगत रखा गया है। तापमान और वर्षा के मौसमी एवं मासिक वितरण का भी इस वर्गीकरण में ध्यान रखा गया है—इनके द्वारा विभाजित किये गये जलवायु प्रदेशों को अगर हम देखें तो निम्न जलवायु प्रदेश राजस्थान में मिलते हैं।

(i) CA'w जलवायु प्रदेश—इस प्रकार का प्रदेश अधिकांशतया दक्षिणी-पूर्वी उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, कोटा, झालावाड़ आदि जिलों में पाया जाता है। यहाँ वर्षा ग्रीष्म ऋतु में होती है। शीत ऋतु प्राय: सूखी रहती है। यहां सवाना तथा मानसूनी वनस्पति पायी जाती हैं।

(ii) DA'w जलवायु प्रदेश—इस प्रकार की जलवायु में ग्रीष्मकालीन तापमान ऊँचे रहते हैं, वर्षा कम होती है तथा अर्द्ध मरुस्थलीय वनस्पति पायी जाती है। राजस्थान का दक्षिणी एवं पूर्वी भाग अर्थात् सिरोही, पूर्वी जालौर, पाली, अजमेर, चित्तौड़, बूंदी, सवाई-माधोपुर, टोंक, भीलवाड़ा, भरतपुर, जयपुर, अलवर, सीकर, झुन्झुनूं आदि जिले इस जलवायु प्रदेश के अंतर्गत आते हैं।

(iii) DB'w जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश के भागों में शीत ऋतु छोटी और शुष्क परन्तु ग्रीष्म ऋतु लम्बी और वर्षा वाली होती है। यहाँ कंटीली झाड़ियां और अर्द्ध मरुस्थलीय वनस्पति पायी जाती है। राजस्थान के उत्तरी भाग जैसे गंगानगर, चुरू, बीकानेर आदि जिले इस प्रदेश में आते हैं।

---

2. Trewartha, G.T. : "An Introduction to climate". P. 226

(iv) EA'd उष्णकटिबन्धीय मरुस्थलीय जलवायु—यह अत्यन्त गर्म और शुष्क जलवायु प्रदेश है। यहाँ प्रत्येक मौसम में वर्षा की कमी अनुभव की जाती है। वनस्पति केवल मरुस्थलीय ही उगती है। राजस्थान की मरुस्थली में स्थित बाड़मेर, जैसलमेर, पश्चिमी जोधपुर, दक्षिणी-पश्चिमी बीकानेर आदि जिले इस प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं।

मानचित्र संख्या-12
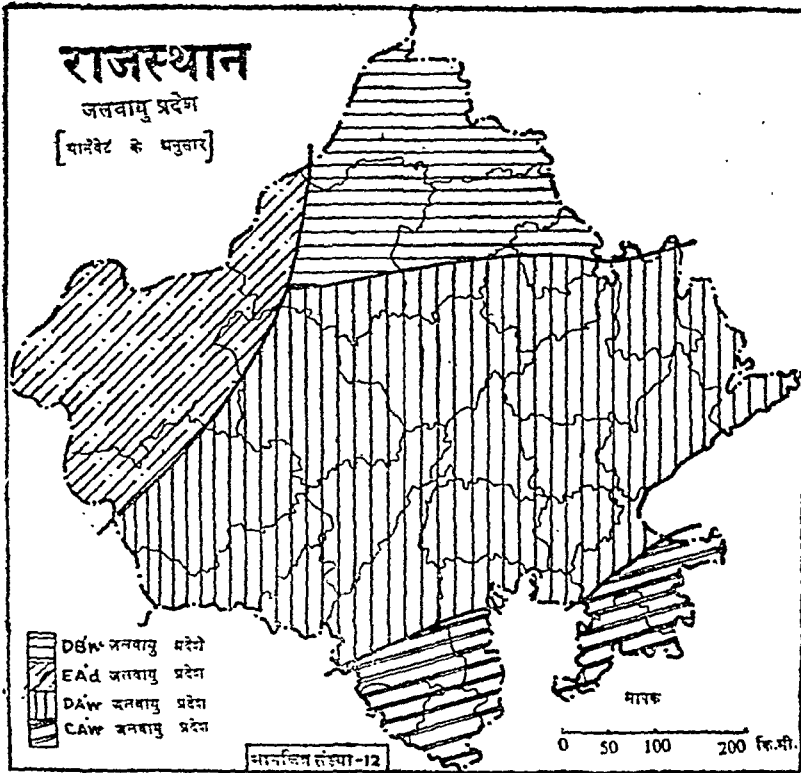
ट्रिवार्था का वर्गीकरण

प्रो. ट्रिवार्था ने डा. कोपन के वर्गीकरण में संशोधन कर अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। यह वर्गीकरण बड़ा सरल और बोधगम्य है। ट्रिवार्था के वर्गीकरण के अनुसार राजस्थान में निम्न जलवायु प्रदेश मिलते हैं—

(i) Aw जलवायु प्रदेश—इस प्रकार के प्रदेश में उष्ण कटिबन्धीय शुष्क जलवायु मिलती है जिसमें तापमान 21° सें. तक रहता है और वर्षा 100 से.मी. तक होती है। बांसवाड़ा जिला इसके अन्तर्गत आता है।

(ii) Bsh जलवायु प्रदेश—उष्ण और अर्द्ध उष्ण कटिबन्धीय स्टैपी जलवायु इस प्रदेश की विशेषता है। इस प्रकार की जलवायु उदयपुर, सिरोही, जालौर, दक्षिणी-पूर्वी बाड़मेर, जोधपुर, पाली, अजमेर, नागौर, चुरु, झुन्झुनूं, सीकर, गंगानगर, बीकानेर आदि में मिलती है।

(iii) Bwh जलवायु प्रदेश—इस प्रदेश के अन्तर्गत उष्ण और अर्द्धउष्ण मरुस्थल जलवायु पाई जाती है। जैसलमेर, उत्तरी-पश्चिमी बाड़मेर, पश्चिमी बीकानेर आदि जिले तथा उनके भू-भाग इसके अन्तर्गत आते हैं।

(iv) Caw जलवायु प्रदेश—यह अर्द्धउष्ण आर्द्र प्रदेश है जिसमें वर्षा कम होती है। शीत ऋतु में कुछ

मानचित्र संख्या–13
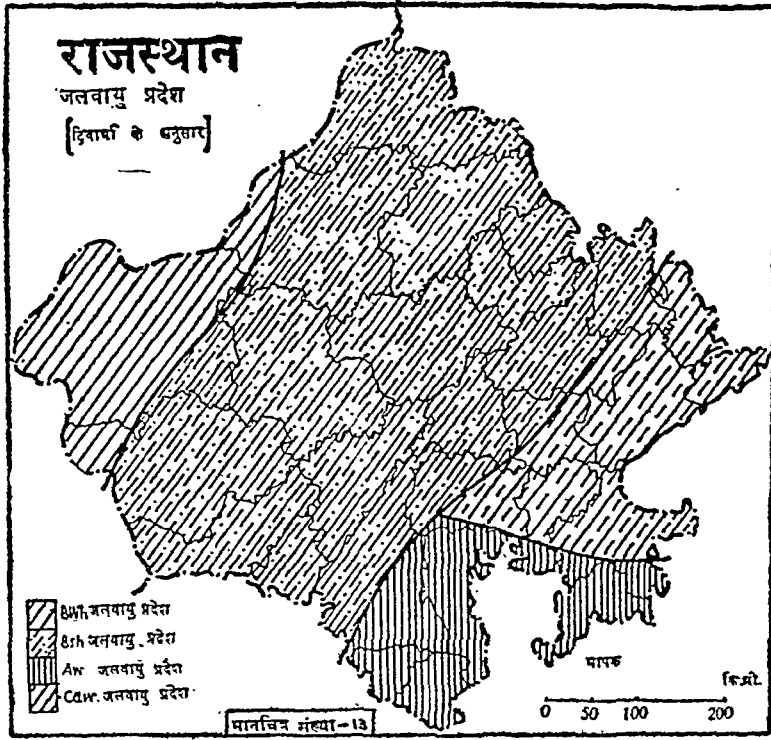
वर्षा चक्रवातों द्वारा होती है। इसमें कोटा, झालावाड़, सवाईमाधोपुर, भरतपुर, धौलपुर, अलवर आदि जिले आते हैं।

5 मिट्टी संसाधन

मिट्टी राज्य की अमूल्य सम्पदा है जिस पर उसकी समृद्धि एवं सम्पूर्ण कृषि उत्पादन निर्भर करता है। राजस्थान कृषि प्रधान राज्य है। अत: इसकी अधिकांश जनसंख्या कृषि से ही अपनी जीविका प्राप्त करती है। इसलिए कृषि की दृष्टि से इन मिट्टियों की जानकारी करना अनिवार्य हो जाता है।

अमरीकी मिट्टी विशेषज्ञ डॉ. बैनेट के अनुसार "मिट्टी भू-पृष्ठ पर मिलने वाले असंगठित पदार्थों की वह ऊपरी परत है जो मूल चट्टानों अथवा वनस्पति के योग से बनती है।" इससे यह स्पष्ट होता है कि मिट्टी में पौधों की उत्पत्ति एवं वृद्धि के लिए पर्याप्त मात्रा में जीवांश, खनिजांश तथा वनस्पतिक अंश होते हैं। ये सभी मिलकर ही भूमि को उर्वरा शक्ति प्रदान करते हैं। अन्यथा शैलों के बारीक कण स्वयमेव उर्वर नहीं होते हैं।

मिट्टी के निर्माण में अनेक तत्व सहयोग प्रदान करते हैं, जिनमें तापमान, वर्षा, ऊँचाई, वनस्पति के गुण, जीव क्रियाएँ, स्थलाकृति एवं समय आदि प्रमुख हैं। वर्षा का मिट्टी के निर्माण पर अधिक प्रभाव पड़ता है। फलत: विभिन्न स्थानों में मिट्टियों की एक रूपता में विषमता देखने को मिलती है। भूमि की बनावट देश के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। राजस्थान के अधिकतर भाग मरुभूमि से ढके हैं जहाँ शुष्क दशायें पानी के अभाव में और गहन बन जाती हैं। घग्घर जैसी तेज नदी भी इस बालू रेत में विलीन हो जाती है। यदि इस प्रदेश में रेतीली मिट्टी की अपेक्षा अच्छी दूमट मिट्टी होती तो घग्घर का पानी बालू में न समाता। इस प्रदेश में गंग-नहर, घग्घर नदी से नहरें निकाल कर तथा इन्दिरा नहर एवं उसकी वितरक नहरों द्वारा सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि कर हम कृषि ऊपज बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं, परन्तु इस प्रदेश में बालू रेत होने के कारण यह रेत काफी पानी सोख लेती है और जितना परिश्रम का फल मिलना चाहिये, नहीं मिल पाता। अत: अरावली श्रेणी का पश्चिमी भाग पूर्णत: रेतीला है। राजस्थान के पूर्वी भागों की बनावट विषम प्रकार की होने के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती है।

राजस्थान का पश्चिमी भाग एक विस्तृत रेतीला मैदान है जिसमें जगह-जगह बिखरी कई पहाड़ियाँ और शैलों के दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। इस पश्चिमी भाग में मिट्टी की उर्वरता पश्चिम और उत्तर-पश्चिम से पूर्व और उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ती जाती है। अधिकांश भागों में मिट्टी क्षारीय है।

पश्चिमी राजस्थान की मिट्टियाँ सामान्यतया बालूमय हैं जिनमें 90 प्रतिशत से 95 प्रतिशत तक बालू तथा 5 प्रतिशत से 7 प्रतिशत तक मटियार पाई जाती है। यह वायुढ़ बालू अंशत: धरातलीय चट्टानों से और इसका अधिकांश भाग तटीय प्रदेशों से जहाँ से यह उड़कर यहाँ आती है, से निर्मित है।[1] अरावली श्रेणी के पूर्वी भागों में लेटेराईट लाल, दूमट, कच्छारी या काली आदि मिट्टियाँ अलग-अलग स्थानों में पाई जाती हैं।

मिट्टियों के प्रकार—वृहत्त रूप से राज्य में निर्वासित तथा अवशिष्ट मिट्टियां पाई जाती है। निर्वासित प्रकार की मिट्टियां बहित पदार्थों जैसे—कांप, बालू एवं सिल्ट को प्रदर्शित करती है जो मुख्य रूप से नदी घाटियों में संचित होती है जबकि अवशिष्ट प्रकार की मिट्टियां नीचे स्थित चट्टानों के तात्विक परिवर्तन का प्रतिफल है जो मुख्य रूप से पर्वतों, पहाड़ियों एवं पठारों पर पाई जाती है। मिट्टियों की स्थानिक अवस्थिति, उनकी मुख्य विशेषताएं और कृषि के लिए उनकी उपयुक्तता के आधार पर राज्य की मिट्टियों को निम्न भागों में बांटा जा सकता है[2]—

(1) रेतीली मिट्टी
(2) भूरी और रेतीली मिट्टी
(3) लाल और पीली मिट्टी
(4) लाल लोमी मिट्टी

1. Misra V. C. : "The Marusthli" in R. L. Singh (Ed.) India—Regional Studies, New Delhi, 21st I. G. U. Publ. (1968) P. 247.
2. Ray Chaudhuri, S. P. "Land Resources of India". Indian Soils—Their classifications, occurrences and properties, Manager of publications, Delhi—1964 Vol. I. 1-4.

(5) मिश्रित लाल और काली मिट्टी
(6) मध्यम प्रकार की काली मिट्टी
(7) कांप मिट्टी
(8) भूरी रेतीली कच्छारी मिट्टी

1. **रेतीली मिट्टी**—यह मिट्टी राजस्थान में सबसे विस्तृत क्षेत्र पर पाई जाती हैं। इस मिट्टी का विस्तार पश्चिमी राजस्थान के रेतीले मैदान में विशेषत: अन्तर: स्तूपीय क्षेत्रों में पाया जाता है। भू-सम्पत्ति के अनुसार यह क्षेत्र कांप एवं वायु द्वारा निक्षेपित मिट्टियों से निर्मित है जिसमें पीली मिट्टी से पीली भूरी, बलुई से बलुई चीका मिट्टियां उपस्थित है। वर्षा की कमी और ढीली संरचना के कारण इस मिट्टी में उर्वरक शक्ति कम पाई जाती है। इस मिट्टी के पुन: चार वर्ग किये जा सकते हैं—

(अ) **रेतीली बालू मिट्टी**—यह गंगानगर, बीकानेर,

मानचित्र संख्या-14

चूरु, जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर और झुन्झुनूं जिलों में मिलती है। यह मिट्टी घुलनशील लवण ऊँचे प्रतिशत पर रखती है तथा इसमें पी. एच. मूल्य भी अधिक होता है। अरावली के समस्त पश्चिमी भाग में बालू यत्र-तत्र बिखरी पहाड़ियों तथा चट्टानों के दृश्याशों का ही विस्तार है। मिट्टी में लगभग 90% से 95% तक बालू और लगभग 5% से 7% तक मृत्तिका पाई जाती है। यहाँ धूल भरी हवायें, जो मिट्टी की वृद्धि में अड़चन है, सतही चट्टानों से अंशत: बालू प्राप्त करती हैं तथा साथ ही बालू के अधिकांश भाग को तटीय प्रदेशों से उड़ाकर यहाँ ले आती है और जमा देती है। यहाँ की मिट्टी में लवण की मात्रा, पी. एच मूल्य की अधिकता तथा सामान्यतया जैविक पदार्थों की कमी पायी जाती है। कैल्सियम कार्बोनेट का प्रतिशत भी विषमता लिए हुए हैं। इस समस्त क्षेत्र में वर्षा 10 से.मी. से भी कम होती है। इसलिए वर्षा की कमी सबसे बड़ा निर्णायक कारक सिद्ध

होता है। बायुड़ बालू के अधिकतर भागों में कैल्सियम ऑक्साइड नामक पदार्थ की विषमता 1.0 से 1.5 प्रतिशत तक मिलती है। बालुकास्तूप स्थिरीकरण के क्षेत्रों में कैल्सियम ऑक्साइड कम पाया जाता है जैसे –जोधपुर और जयपुर के कुछ भागों में। ऐसे क्षेत्रों में यह देखा गया है कि कैल्सियम ऑक्साइड मिट्टी में गहराई की ओर कम होते जाते हैं जो कैल्सियम कार्बोनेट संचयन (कंकड़ संस्तरण निर्माण) के परिणाम है। बालू स्थिरीकरण के क्षेत्रों में मिट्टी के पार्श्व सुरक्षित दशाओं के अन्तर्गत विकसित हो चुके हैं क्योंकि यहाँ वर्षा के जल को ऊपरी परतों से कैल्सियम को अपने साथ घुलाकर अध:भूमि की परतों की ओर ले जाने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। इस कारण अध:भूमि में कैल्सियम के यौगिक ऊपरी मिट्टी की अपेक्षा 10 गुने तक अधिक मिलते है। अधिकांश रेतीली मिट्टियों में नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है। यह प्राय: 0.02 से 0.07 प्रतिशत के बीच मिलती है। यह कमी किसी सीमा तक नाईट्रेट के रूप में उच्च उपलब्ध नाइट्रोजन की उपस्थिति के द्वारा सन्तुलित होती जाती है। इस प्रकार फॉस्फेट व नाइट्रोजन की उपस्थिति इन रेतीली मिट्टियों को जहाँ जल की आपूर्ति नियमित है, उपजाऊ बना चुकी है। ऐसे उपजाऊ बने भागों में कृषि बड़ी सफलता के साथ की जा रही है।

(ब) लाल रेतीली मिट्टी—नागौर, जोधपुर, पाली, जालौर तथा चूरू और झुन्झुनूं के कुछ भागों में विस्तृत है।

इसका रंग पीला-भूरा अथवा गहरा होता है। यह संरचना में ढीली किन्तु उत्तम सिंचित है। इन मिट्टियों का गठन बलुई कांप से बलुई चीका कांप तक पाया जाता है। इन मिट्टियों में जल को सोखने की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक हैं। कृषि के लिए उपयुक्त है बशर्ते पानी उपलब्ध हो।

(स) पीली-भूरी रेतीली मिट्टी—यह नागौर और पाली जिलों में पाई जाती है। यह पीली-भूरी रेतीली से बालू दोमट आदि के रूप में पाई जाती है। इसमें 100-150 से.मी. की गहराई पर चूना मिश्रित मिट्टी की पर्त पाई जाती है जिसे स्टैपी मिट्टी कहते हैं। यह कृषि के लिये उपयुक्त है।

(द) खारी मिट्टियाँ—यह मिट्टी बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर और नागौर की निम्न भूमियों अथवा गर्तों में पाई जाती है। इस प्रकार की मिट्टी में कृषि सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें एक तो लवण की मात्रा अधिक होती है और दूसरे अवरुद्ध प्रवाह का होना है। इस मिट्टी में केवल लवण अवरोधी घास ही उग पाती है।

2. भूरी रेतीली मिट्टी—यह मिट्टी लगभग 36,400 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है तथा बाड़मेर, जालौर, जोधपुर, सिरोही, पाली, नागौर, सीकर और झुन्झुनूं जिलों में मिलती है। अरावली अक्ष के पश्चिम में इसका समस्त क्षेत्र स्थित है। इस मिट्टी के क्षेत्र में रेतीले मैदानों के विस्तृत फैलाव दृष्टिगोचर होते हैं। पूर्व और उत्तर-पूर्व की ओर इस मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि परिलक्षित होती है। इस प्रकार की मिट्टी के क्षेत्रों में पानी की सामान्य कमी है और भूमिगत जल 30 मीटर से 125 मीटर की गहराई तक मिलता है। मिट्टी में फॉस्फेट के तत्व अच्छे मिलते हैं और कुछ स्थानों पर इसका प्रतिशत इतना अधिक होता है जितना कि कांप मिट्टी में पाया जाता है। मिट्टियों और बालू में पी. एच. का मूल्य 7.2 से 9.2 के बीच मिलता है। मिट्टी की उर्वरता नाइट्रेट के रूप में नाइट्रोजन की उपस्थिति के कारण और अधिक बढ़ जाती है। पाली जिले के सुमेरपुर स्थान पर इस मिट्टी में विषमताएँ अधिक देखी गई हैं। यह कांपीय और चूनेदार हैं तथा इसमें कंकड़ों का मिश्रण भी हैं।

बनावट माध्यम से भारी है। मिट्टियों का विषम वितरण दक्षिण के पहाड़ी क्षेत्रों में दृष्टिगत है जबकि उत्तर की तरफ कुछ-कुछ सम और भारी मिट्टियाँ पाई जाती हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न मिट्टी के वर्ग जैसे सामान्य हल्की मिट्टियाँ, चट्टानी क्षेत्रों की काली मिट्टियाँ, गहरी मध्यम भारी मिट्टियाँ, पीली-भूरी मध्यम मिट्टियाँ और भूरी मध्यम मिट्टियाँ आदि के पहचाने गये हैं।

3. लाल व पीली मिट्टी—इस प्रकार की मिट्टी सवाईमाधोपुर, भीलवाड़ा, अजमेर और सिरोही जिलों में मिलती है। लाल व पीली मिट्टियाँ इस क्षेत्र में एक साथ मिलती हैं। यह पीला रंग सम्भवतया लोह-आक्साइड के जलयोजन की उच्च मात्रा के कारण है। इन भागों में चीका व दोमट दोनों प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं। लेकिन इस क्षेत्र के उत्तरी भागों में

मुख्यत: अजमेर में यह वालुई है। मिट्टियों में कार्बोनेट और ह्यूमस की कमी है। पी. एच. का मूल्य 5.5 से 8.5 के बीच, मृतिका की मात्रा 3 से 9 प्रतिशत के बीच मिलती है। इसमें कैल्सियम कार्बोनेट नहीं पाया जाता है व नमक भी कम होता है। नाइट्रोजन और जैविक-कार्बन यौगिकों की मात्रा भी बहुत कम पाई जाती है। यह ग्रेनाइट, शिस्ट और नीस इत्यादि चट्टानों के टूटने से निर्मित हुई हैं। जलवायु और स्थानीय दशाओं का प्रभाव भी इस मिट्टी पर अधिक पड़ा है।

अजमेर जिले में पीसांगन क्षेत्र में मिट्टियों का सतही गठन रेतीली से रेतीली दोमट और दोमट के रूप में हैं। चूनेदार क्षितिज एक साधारण विशेपता है। कहीं-कहीं इसमें लोहमय कंकड़ भी पाये जाते हैं। लाल या पीला रंग इसमें लोह अंश की उपस्थिति को प्रमाणित करता है।

मिट्टी का सतही रंग हल्के पीले से भूरा पीला, पीला-भूरा और गहरा भूरा दिखाई देता है। मिट्टी के इस क्षेत्र में कुछ अन्य मिट्टी के वर्ग भी पाये जाते हैं जो निम्न हैं[3]—

(अ) रेतीली मिट्टी—इस क्षेत्र का भूदृश्य, चट्टानी दृश्याशों, पहाड़ियों व रेत के टीलों के कारण बहुत उवड़-खावड़ दिखाई देता है। मिट्टी रेतीली से दोमट रेतीली है जिसमें रेत की मात्रा 75 से 90 प्रतिशत मिलती है। हल्की पीली मिट्टी भी मिलती है जिसके दाने अभी संरचना की दृष्टि से पूर्ण विकसित नहीं हो सके हैं। मिट्टी खुली, मुलायम और भुरभुरी है जिसके कारण इसमें जल को सोखने की क्षमता बहुत अधिक है। घुलनशील लवण का प्रतिशत इस मिट्टी में बहुत कम पाया जाता है। अजमेर जिले में यह रेतीली है। कहीं-कहीं वालुका-स्तूप और चट्टानें भी देखने को मिलती हैं।

(ब) छिछली अथवा सतही मिट्टी—इस प्रकार की मिट्टी चट्टानी और चट्टानी दृश्याशों के क्षेत्रों में मिलती है। चट्टानी स्तर के ऊपर 30 से. मी. से 120 से. मी. की गहराई तक यह मिट्टी मिलती है। धरातलीय स्थलाकृति असमान तथा टूटी-फूटी है। दोमट रेतीली से रेतीली दोमट एव हल्की भूरी से पीली भूरी जैसी मिट्टियों के रूप में यह मिलती है। इन मिट्टियों में 65 प्रतिशत से 85 प्रतिशत तक रेत का मिश्रण दिखाई देता है। मिट्टी के कणों की संरचना मृदुकणीय जैसी है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि इस मिट्टी के दाने अभी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो सके हैं। अरावली पहाड़ों के ढालों पर कम गहराई की मिट्टी पाई जाती है। यहाँ पर मिट्टी के कण अपेक्षाकृत बड़े हैं और रंग कुछ भूरा है।

(स) गहरी मध्यम भारी मिट्टी—यह मिट्टी काफी गहरी हैं। इसकी पार्श्व संरचना से यह पूर्ण विकसित स्तम्भीय खण्ड के रूप में दृष्टिगत होती है। रेतीली दोमट से दोमट तथा पीली भूरी से गहरे भूरे, हल्के-भूरे रंग में यह मिट्टी मिलती है। यह मिट्टी काफी कठोर और सुदृढ़ होती है। अत: इसमें आसानी से पानी प्रवेश नहीं कर पाता। इस क्षेत्र में अन्य मिट्टी के वर्ग भी देखने को मिलते हैं। सवाईमाधोपुर के कुछ भाग में गहरी और लोमी मिट्टी है।

4. **लाल लोमी मिट्टी**—यह डूंगरपुर, उदयपुर के मध्य एवं दक्षिणी भाग में मिलती है। यह लाल मिट्टी प्राचीन स्फटकीय और कायान्तरित चट्टानों से निर्मित हुई है। विभिन्न क्षेत्रों में इसकी गहराई और उर्वरा शक्ति में विपमता दृष्टिगत होती है। जब इसकी तुलना भारी और मध्यम काली मिट्टी से की जाती है तो यह स्पष्ट होता है कि इस मिट्टी में चूने, पोटाश, लोह आक्साइड और फास्फोरस की मात्रा कम पाई जाती है। यह मिट्टी लोह कण के समिश्रण के कारण लाल रंग की दिखाई देती है। इनकी बनावट में स्थानीय विपमताएं हैं क्योंकि जिन मूल चट्टानों से ये बनी है उनकी भौतिक एवं रसायनिक विशेपताओं में अन्तर होता है। औसत रूप से इस मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस और ह्यूमस आदि कम पाये जाते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में लाल मिट्टी की गहराई अलग-अलग पाई जाती है। इसमें विपमतायें, गठन, रन्ध्रयुक्त संरचना तथा उपजाऊपन के आधार पर देखने को मिलती है। इसमें कंकड़ पिण्ड बिल्कुल नहीं पाये जाते हैं। इसकी उर्वरा शक्ति विभिन्न स्थानों पर विपम होने के कारण विभिन्न कृपि फसलें जैसे—मक्का, चावल व गन्ना आदि बोई जाती हैं।

5. **मिश्रित लाल और काली मिट्टी**—यह मिट्टी

3. Ray Chaudhuri, S. P. & others; 'Soils of India' ICAR, New Delhi, 1963 P. 308.

भीलवाड़ा व उदयपुर के पूर्वीय भागों में एवं चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर व बांसवाड़ा आदि जिलों में मिलती है। लाल मिट्टी ग्रेनाइट और नीस की चट्टानों से बनी है और काली मिट्टी मालवा पठार की काली मिट्टी का ही विस्तार है। यह आम तौर पर हल्के गठन वाली है और चूने के सग्रन्थन से रहित होती है। यह बालुई मटियार अथवा बालुई दोमट के रूप में मिलती है। इसमें साधारणतया फॉस्फेट, नाइट्रोजन, कैल्सियम और कार्बनिक पदार्थों की कमी होती है। विभिन्न स्थानों पर इसकी उर्वरा शक्ति तथा गहराई में विषमता पाई जाती है। काली मटियारी मिट्टियों में कृषि अच्छी होती है जबकि छिछली, कंकरीली लाल मिट्टियों की किस्म अच्छी नहीं होती है। सामान्यतया यह उपजाऊ मिट्टी है जिससे कपास, मक्का इत्यादि फसलें प्राप्त की जाती हैं।

6. **मध्यम काली मिट्टी**—राज्य के दक्षिणी-पूर्वी भागों जैसे—झालावाड़, बूंदी, कोटा आदि जिलों में यह मिट्टी साधारणतया पाई जाती है। झालावाड़, कोटा व बूंदी में यह मिट्टी गहरे भूरे रंग की मटियार और दोमट के रूप में मिलती है। इसके क्षेत्र का सामान्य ढाल दक्षिण से उत्तर की ओर होने के कारण काली मिट्टियों और कच्छारी मिट्टियों के मिश्रण नदी घाटियों में पाये जाते हैं। सामान्यतया इन मिट्टियों में फॉस्फेट, नाइट्रोजन और जैविक पदार्थों की कमी मिलती है लेकिन कैल्सियम और पोटाश की मात्रा इनमें पर्याप्त है। यह मिट्टियां कृषि प्रबन्ध पद्धतियों के अनुरूप व्यवहार करती हैं और व्यापारिक फसलों की अच्छी उपज के लिए उपयुक्त हैं।

सतही रंग के आधार पर इस क्षेत्र की मिट्टियों को निम्न वर्गों में पुन: विभाजित किया जा सकता है—

(अ) **भारी मिट्टी**—यह मिट्टी सतह पर चिकनी है जबकि इसके नीचे की परतों में मटियार दोमट मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी धूसर भूरी से गहरी धूसर भूरे रंग की मिट्टी के रूप में काफी गहराई तक मध्य की पर्तों में क्षैतिजीय अवस्था में मिलती है तथा पीली भूरी से भूरी रंग की मिट्टी निम्नतम गहराई की पर्तों में मिलती है। इसकी पुष्टि मिट्टी पार्श्वों से होती है।

(ब) **मध्यम भारी मिट्टी**—इस मिट्टी का सतही रंग धूसर भूरे से भूरे रंग के बीच होता है। कुछ स्थानों पर इस मिट्टी के कण काफी गहराई तक दृष्टिगत हैं। इसका सतही गठन काफी सरल है।

(स) **पीली और लाल हल्की मिट्टी**—यह मिट्टी सतह पर पीले व हल्के लाल रंग की है लेकिन गहराई के साथ रंग में विषमता आती जाती है जो इसकी परतों से परिलक्षित होती है। इसका गठन 15% से 20% तक दोमट से चिकनी दोमट के रूप में है। इस मिट्टी में 1 प्रतिशत से 6 प्रतिशत तक चूर्णमयी कंकड़ मिलते हैं।

उपरोक्त इन तीनों मिट्टियों में प्राय: जैवीय पदार्थ, कार्बन और नाइट्रोजन की मात्रा निम्न से मध्यम तक पाई जाती है। यह उपजाऊ है इसलिये इसका उपयोग कृषि कार्यों के लिये अधिक किया जाता है।

7. **कछारी मिट्टी**—राज्य के पूर्वी भागों में मुख्यतया भरतपुर, धौलपुर, जयपुर, टोंक और सवाईमाधोपुर जिलों में यह मिट्टी मिलती है। यह लाल रंग की होती है। इसमें चूना, फास्फोरिक अम्ल और ह्यूमस की कमी पाई जाती है। यह गठन में मटियार से रेतीली दोमट होती है। मिट्टी के ऊपरी क्षितिज में अक्सर फास्फेट और कैल्सियम की कमी होती है परन्तु नाइट्रोजन यौगिकों की विषमता रहती है। दूसरी क्षितिज सामान्यतया घनी और भारी है। भरतपुर, सवाईमाधोपुर और टोंक की मिट्टियां पीली अथवा लाल रंग की हैं। लवणीय और क्षारीय मिट्टी के छोटे-छोटे भू-भाग वहां पाये जाते हैं जहां जल स्तर ऊँचा होता है। मिट्टियों की ऊपरी पर्तों में सामान्यतया नाइट्रोजन फास्फेट और कैल्सियम तत्वों की कमी पाई जाती है। कुछ भागों में कंकड़ भी इनमें पाये जाते हैं। यह कंकड़ या तो रेत के ऊपर बिछे रहते हैं या कहीं-कहीं यह कंकड़ भी पर्तों के अंग बने दृष्टिगत होते हैं। इनमें स्थानीय चूर्णमयी संचयन भी देखे जाते हैं। सामान्यतया यह मिट्टी अच्छी उत्पादकता के लिए प्रसिद्ध है।

8. **भूरी रेतीली कछारी मिट्टी**—राज्य के अलवर, भरतपुर जिले के उत्तरी भाग तथा गंगानगर जिले के मध्य भाग में यह मिट्टी मिलती है। सामान्यतया इसका रंग कुछ ललाई व भूरापन लिए हुए है। इसमें चूने, फास्फोरस और ह्यूमस की कमी मिलती है।

गंगानगर व अलवर जिले में इसका रंग भूरा है

चूँकि यह नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी है इसलिए उपजाऊ है। इन भागों में राजस्थान की व्यावसायिक व अन्य खाद्यान्न आदि फसलें उगाई जाती हैं। गंगानगर की जलोढ़ मिट्टी से कपास और गेहूँ की अच्छी उपज प्राप्त की जाती है।

उपरोक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त कृषि विभाग ने मिट्टियों की उर्वरता के आधार पर एक सामान्य जानकारी प्राप्त कर राजस्थान की मिट्टियों का वर्गीकरण किया हैं। उर्वरता के आधार पर मिट्टियों का वर्गीकरण सबसे पुराना है। इस सम्बन्ध में एक कहावत भी है कि अच्छी मिट्टी, अच्छी और पुष्ट फसलों को जन्म देती है। स्मरण रहे कि मिट्टी की उर्वरा शक्ति तथा उसकी भौगोलिक स्थिति वनस्पति के अनुसार बदलती रहती है। सिंचाई से मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि राजस्थान में ज्यों-ज्यों सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि होती जायेगी, मिट्टियों में उर्वरा

मानचित्र संख्या -15
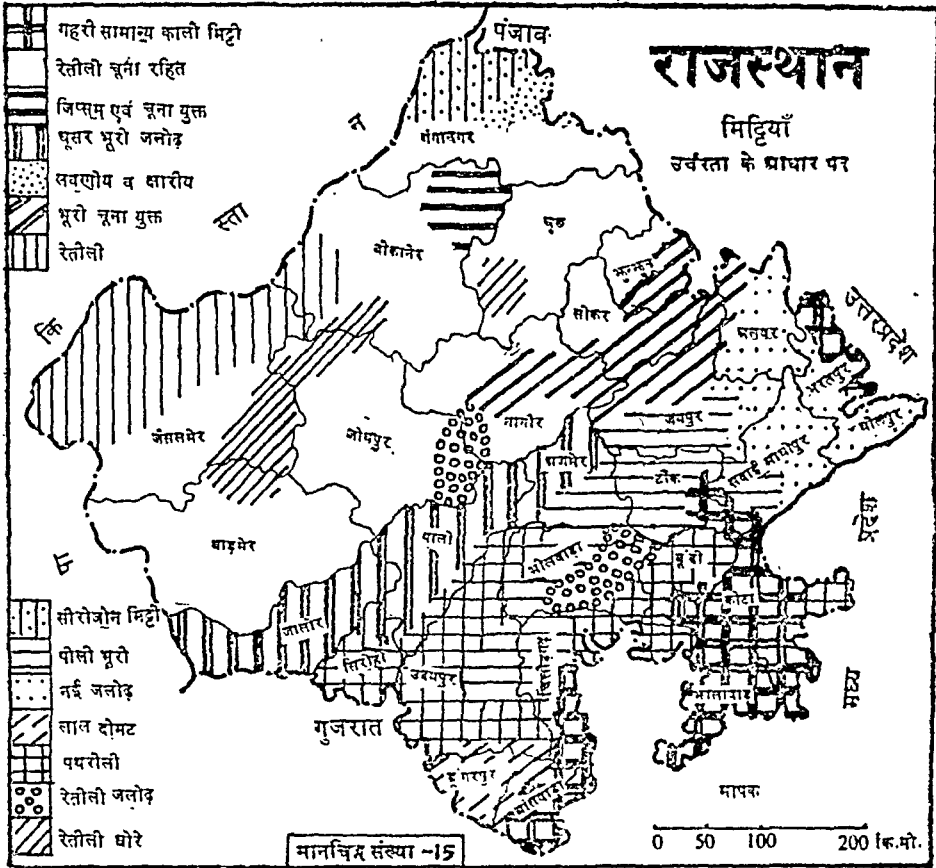
शक्ति भी बढ़ेगी अर्थात् मिट्टियों का वर्गीकरण भी उन्हीं के अनुरूप बदलता रहेगा। अत: उर्वरता के आधार पर मिट्टियों का वर्णन विस्तार में न करते हुए केवल उनका वर्गीकरण ही यहाँ दिया जा रहा है।

(1) रेतीली मिट्टी
(2) रेतीली चूना रहित मिट्टी
(3) रेतीली धोरें युक्त मिट्टी
(4) रेतीली जलोढ़ मिट्टी
(5) सीरोजोन मिट्टी
(6) जिप्सम एवं चूना युक्त मिट्टी
(7) भूरी चूना युक्त मिट्टी
(8) लवणीय एवं क्षारीय मिट्टी
(9) नई जलोढ़ मिट्टी
(10) धूसर भूरी जलोढ़ मिट्टी

(11) पीली-भूरी मिट्टी
(12) लाल दोमट मिट्टी
(13) गहरी सामान्य काली मिट्टी
(14) पथरीली मिट्टी

उपरोक्त दोनों वर्गीकरण के अतिरिक्त विश्व में सभी देशों की मृदाओं की एक जैसी नाम-पद्धति काम में लेकर एक-सा ही वर्गीकरण हो, इस प्रयास के अन्तर्गत मृदा के गुणों, मौसम-विज्ञान तथा खनिज-विज्ञान आदि अनेक कारकों का मृदा-वैज्ञानिकों से मान्यता प्राप्त वर्गीकरण थोर्प तथा स्मिथ का है। इस वर्गीकरण के अनुसार राजस्थान में पायी जाने वाली मृदाओं को निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है और वे राजस्थान के किन क्षेत्रों में मिलती है, इसका भी वर्णन सारांश में किया जा रहा है-

(1) भूरी मृदायें—टोंक, सवाईमाधोपुर, बून्दी, भीलवाड़ा, उदयपुर और चित्तौड़गढ़ जिलों के कुछ क्षेत्रों में।

(2) सीरोज़म किस्म की मृदाएें—पाली, नागौर, अजमेर व जयपुर जिलों में बहुत बड़े क्षेत्र में।

(3) लाल बलुई मृदाऐं—जोधपुर, नागौर, पाली, जालौर, बाड़मेर, चूरू तथा झुन्झुनूं जिलों में।

(4) लवणीय मृदाएं—लवण झीलों के आस-पास के क्षेत्र में और बाड़मेर व जालौर जिलों के कच्छ की खाड़ी के आस-पास के क्षेत्रों में।

(5) लाल दूमट मृदाएं—डूंगरपुर, बांसवाड़ा जिलों में और उदयपुर व चित्तौड़गढ़ जिलों के कुछ क्षेत्रों में।

(6) पहाड़ी मृदाएं—अरावली पर्वतमाला, विंध्याचल पर्वत और अलवर में स्थित दिल्ली सिस्टम पर्वत के ऊपरी सतह व गिरिपाद क्षेत्रों में।

(7) बलुई मृदाएं व रेत के टीबे—जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर, पश्चिमी जालौर, पश्चिमी नागौर व उत्तरी-पश्चिमी चूरू के क्षेत्रों में।

(8) जलोढ़ मृदाएं—गंगानगर, अलवर, जयपुर, भीलवाड़ा, टोंक, सवाईमाधोपुर।

लवणीय एवं क्षारीय मिट्टी की समस्या – राजस्थान में लवणीय एवं क्षारीय मिट्टी की समस्या बहुत अधिक है। खारी और लवणीय भूमि में या तो फसलें उगती ही नहीं और उगती भी हैं तो पैदावार बहुत कम होती है। इस प्रकार की भूमि को ऊसर, कलर रेही या नमकीन मिट्टी भी कहते हैं।

सोडियम कार्बोनेट, सल्फेट तथा क्लोराइड के साथ कैल्सियम और मैग्नेशियम क्षारों के मिश्रण से 'रेह' बनती है। वैसे तो ऊसर भूमि राज्य के सभी भागों में पाई जाती है। वैसे तो ऊसर भूमि राज्य के सभी भागों में पाई जाती है लेकिन खास तौर पर ऐसी समस्या जोधपुर, पाली, भीलवाड़ा, जयपुर, अजमेर, भरतपुर, टोंक, अलवर, नागौर, सिरोही और चित्तौड़गढ़ जिलों में अधिक है।

भूमि के ऊसर होने के निम्न कारण हो सकते हैं:—

(1) शुष्क जलवायु और बरसात के पानी में जिस तरह मिट्टी की लवणीयता होती है वह मिट्टी की सतह पर जम जाती है। इससे भूमि ऊसर हो जाती है।

(2) कुयें के पानी की सतह ऊँची होने से भी यह समस्या पैदा हो जाती है।

(3) यदि खेत उबड़-खाबड़ है तो निचले हिस्सों में खार जम जाता है।

(4) मिट्टी इस प्रकार की हो जिसमें पानी की निकासी कम हो। इस प्रकार भूमि का भौतिक रुप खराब होकर पानी के जमाव की समस्या और ऊसर की समस्या उत्पन्न होती है।

(5) राज्य में खास तौर पर पश्चिमी भागों के कुओं का पानी खारा है। खारे पानी से सिंचाई करने से भी मिट्टी पर खार जमा होने की सम्भावना रहती है और बहुत सी जगह खार इतनी जमा हो जाती है कि खेती करना असम्भव हो जाता है।

(6) कई जगह अब नहरें बनाई गयी हैं। नहरों को ठीक न बनाना या इनके ठीक से न चलने से भी उनके आस पास की जमीन पर पानी रिसने से ऊसर पैदा हो जाती है। कई तालाबों के पानी रिसने से भी अधिकांशत: ऊसर जम जाती है।

ऊसर भूमि को सुधारने के लिए निम्न उपाय काम में लाये जा सकते हैं :

(1) अगर खाली जमीन के समतल न होने से ऊसर का प्रभाव है तो जमीन को समतल कर देना चाहिये।

(2) मामूली लवणीयता और खार को मिटाने के लिए गोबर का प्रयोग लाभदायक होता है और ऐसी

जमीन पर जैसे—जौ, गेहूँ, कपास, गन्ना आदि फसलों को बोया जाये क्योंकि ये फसलें खार सहन कर सकती हैं।

(3) हरी खाद के प्रयोग से भी ऊसर भूमि का सुधार सम्भव है। बरसात में गवार या ढ़ैंचा बोकर दो माह बाद उसे जमीन में दबा दिया जाये, फिर गेहूँ या जौ की काश्त की जा सकती है।

यदि साधारण तरीकों से भूमि न सुधरे तो फिर रासायनिक पदार्थों को उपयोग में लाया जाना चाहिये। इसमें खड्डी या जिप्सम सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। जिप्सम में यह गुण है कि खार को शुष्क कर लेती है अतः मिट्टी में मिलना आवश्यक है। जिप्सम के उपयोग के बाद गोबर में हरी खाद मिला कर फिर फसलें बो सकते हैं। ऊसर भूमि पर धान अच्छी प्रकार से उगाया जा सकता है।

मिट्टी अपरदन की समस्या

साधारणतया मिट्टी जल प्रवाह, वायुवेग अथवा हिमानी और हिमपात के द्वारा एक स्थान से बहकर या उड़कर अन्य स्थान पर एकत्रित हो जाती है इस क्रिया को मिट्टी का अपरदन कहते हैं। मिट्टी के अपरदन द्वारा राज्य की मिट्टियों की उर्वरा शक्ति प्रतिवर्ष घटती जा रही है।

मिट्टी के अपरदन अथवा अपरक्षण को रेंगती हुई मृत्यु कहा जाता है। यह दुष्परिणाम केवल भूमि तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि मनुष्यों को भी भुगतना पड़ता है। भूमि के नष्ट होने से उसकी उपज शक्ति कम हो जाती है। भूमि की सतह के ऊपर ही वनस्पति से सम्बन्धित रासायनिक तत्व एकत्रित रहते हैं जिनसे पौधों को भोजन मिलता रहता है। यदि एक बार ऊपरी सतह नष्ट हो जाती है तो भूमि की उर्वरा शक्ति भी क्षीण हो जाती है जिसके फलस्वरूप वहाँ किसी प्रकार की वनस्पति पैदा होना असम्भव हो जाता है।

मिट्टी अपरदन के प्रकार

राजस्थान की उन सब ढालू भूमियों पर जहाँ न तो वन हैं न घास के मैदान और जहाँ कृषि योग्य भूमि की ठीक प्रकार से मेड़ बन्दी भी नहीं की जाती है, वहाँ की मिट्टी का कटाव सदैव होता रहता है। प्रत्येक स्थान पर मिट्टी का अपरदन एक सा नहीं होता है। यह कई बातों पर निर्भर करता है जैसे—मिट्टी का गुण, भूमि का ढाल, वर्षा की मात्रा आदि। कठोर मिट्टी की अपेक्षा कोमल छोटे कण वाली मिट्टी अधिक ढाल और मूसलाधार वर्षा में शीघ्र अपरदित होकर बह जाती है।

मिट्टी का अपरदन कई प्रकार का होता है। जब घनघोर वर्षा के कारण निर्जन पहाड़ियों की मिट्टी जल में घुलकर बह जाती है तो इसे भूमि का आवरण अपरदन (Sheet Erosion) कहते हैं। इस प्रकार का कटाव ढालू खेत, खाली पड़ी भूमि में तथा अत्यधिक कटाई; वनों के नाश और बदलती खेती के फलस्वरूप होता है। धरातली अपरदन सभी ढालू भूमि की ऊपरी मूल्यवान मिट्टी को बहा देता है जिससे उसकी उर्वराशक्ति कम हो जाती है। इस प्रकार का अपरदन अरावली श्रेणियों के पार्श्वों पर तथा उनके पदीय क्षेत्रों में अर्थात् सिरोही; उदयपुर, अलवर, डूंगरपुर आदि जिलों में अधिकतर देखने को मिलता है।

जब जल बहता है तो उसकी विभिन्न धारायें मिट्टी को कुछ गहराई तक काट देती हैं परिणामस्वरूप धरातल में कई फुट गहरे गड्डे बन जाते हैं। इस प्रकार के अपरदन (Gully Erosion) कहते हैं। यह अपरदन से अधिक हानिकारक होता है। इस प्रकार का अपरदन कोटा, सवाईमाधोपुर तथा धोलपुर जिले में अधिक दृष्टिगत होता है।

मरुभूमि में प्रचण्ड वायु द्वारा भी मिट्टी का अपरदन होता रहता है। इसके द्वारा मिट्टी कटकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर बिछा दी जाती है इसे वायु द्वारा अपरदन (Wind Erosion) कहते हैं। राजस्थान के पश्चिमी शुष्क मैदान के प्रायः सभी क्षेत्र इस प्रकार के अपरदन से प्रभावित हैं। अरावली श्रेणी के बीच निरन्तरता जहाँ भी टूटती है उन वायु घाटियों (Gap Valley) से बड़ी मात्रा में रेत वायु द्वारा लाकर पूर्वी राजस्थान के क्षेत्रों में जमा दी जाती है।

इन विभिन्न प्रकार के अपरदनों द्वारा राजस्थान की हजारों हैक्टेयर भूमि नष्ट हो चुकी है और हो रही है।

मिट्टी अपरदन के कारण

मिट्टी अपरदन अनेक कारणों से होता है यथा—

(i) पिछली कई शताब्दियों से मानव अपने उपयोग के लिए वनों को नष्ट करता रहा है। इस क्रिया से मिट्टी के रक्षात्मक तत्व प्रवाहित जल के साथ घुलकर चले जाते हैं। चम्बल, माही और उनकी सहायक नदियों के किनारे अपरदन का कार्य निरन्तर गति से हो रहा है। इससे उपजाऊ क्षेत्र नष्ट होते जा रहे हैं।

(ii) वनों में तथा घास के क्षेत्रों पर बड़ी संख्या में भेड़-बकरियों को चरने के लिए छोड़ दिया जाता है। जो वनस्पति को अन्तिम विन्दु तक चर कर उसे खोखला बना देती हैं। यह ढीले भाग जल के वेग के साथ बहकर भूमि को अनुपजाऊ बना देते हैं। जैसलमेर, सिरोही, पाली, जोधपुर आदि जिलों में वनों के नियमों का उल्लंघन करके आदिवासी जातियां जैसे गरासिया, मीणा, सहरिया, भील आदि पशुओं को चराते हैं जिनसे बड़े पैमाने पर मिट्टी का अपरदन होता है।

(iii) अनेक क्षेत्रों के पहाड़ी ढ़ालों पर आदिवासियों द्वारा वालरा कृषि (झूमिंग कृषि की तरह) के अन्तर्गत उदयपुर, डूंगरपुर, कोटा, बांसवाड़ा और चित्तौड़गढ़ में वनों को काटकर कृषि योग्य बनाया जाता है, जिसके कारण धीरे-धीरे सभी क्षेत्रों में वन नष्ट होकर मिट्टी अपरदन प्रारम्भ हो जाता है।

(iv) वर्षा ऋतु के आगमन से पूर्व पश्चिमी शुष्क मैदान के मरुस्थलीय जिलों में भीषण गर्म आंधियाँ चलती हैं जो भूमि की ऊपरी परत की ढीली मिट्टी को उड़ा ले जाती हैं। इस क्रिया द्वारा धरातल पर आवरण क्षय होता रहता है और कालान्तर में यह क्षेत्र अनुपजाऊ बन जाते हैं।

(v) कृषि के अवैज्ञानिक तरीकों को अपनाकर कृषक स्वयं मिट्टी के अपरदन में सहयोग प्रदान करता है। ढ़लुऐ क्षेत्रों में समोच्च रेखाओं के समानान्तर जुताई न करने से, दोषयुक्त फसलों की हेरा-फेरी अपनाने से, अथवा आवरण फसलें (cover crops) गलत तरीके से बोने से मिट्टी का क्षरण बढ़ता है। प्रायः राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्रों में इस प्रकार का अपरदन देखने को मिलता है।

राजस्थान में मिट्टी अपरदन के क्षेत्र

मिट्टी अपरदन की विभीषिका ने राजस्थान में अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर रखा है। इसको कृषि की पहली श्रेणी का शत्रु माना जाता है।

जल द्वारा अपरदन—राष्ट्रीय आयोजन समिति (1948) के अनुसार "एक समय जहाँ दूध और घी की नदियां बहा करती थीं वहाँ आज विश्व के इस सर्वाधिक उर्वर भू-भाग के मध्य में सैंकड़ों वर्ग किलोमीटर तक फैली हुई भूमि अतिशय पशुचारण के फलस्वरूप अपने प्राकृतिक आवरणों से वंचित होकर मरुस्थल हो गई है।" राजस्थान का मरुस्थल मिट्टी का अपरदन का मुख्य क्षेत्र है।

चम्बल और उनकी सहायक नदियों के द्वारा हाड़ौती के पठार पर काफी कटाव हुआ है। चम्बल नदी मिट्टी अपरदन को सर्वाधिक प्रोत्साहित करने वाली मानी जाती है। चम्बल के तो खड्ड प्रसिद्ध हैं। यहाँ का विशाल भू-खण्ड अनेक नालों और खड्डों में विभक्त हो गया है। यह काफी गहरे और विस्तृत हैं। इस भूमि पर खेती करने की बात तो दूर यह चरागाह के लिए भी अनुपयुक्त है। ये खड्ड और नाले मिट्टी अपरदन अर्थात् विनाश क्षेत्र के जीते-जागते नमूनें है।

वर्षा और नदियों के प्रवाह से धरातल की मिट्टी कट कर बह जाती है। इससे भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है। बाढ़ आ जाने से नदी के किनारों की उपजाऊ भूमि पर बहुत कटाव हो जाता है। राजस्थान में घग्घर, चम्बल, बनास और बाणगंगा नदियों में बाढ़ आती है जिससे मिट्टी अपरदन होता है। घग्घर नदी से बहुत भूमिरक्षण होता है। घग्घर नदी की बाढ़ को नियन्त्रण में रखने के लिये इस नदी के किनारों पर नहरों का निर्माण किया गया है।

वायु द्वारा अपरदन—निश्चित अंश तक धरातलीय और अवनालिका अपरदन के बाद पश्चिमी शुष्क मैदान के क्षेत्र वायु से होने वाले अपरदन के शिकार बन जाते हैं। इन क्षेत्रों की बढ़ती हुई शुष्कता के फलस्वरूप वायु का वेग वृक्षों, झाड़ियों तथा घास के आवरण को नष्ट करता हुआ कृषि योग्य क्षेत्रों को भी मरुस्थलीय रूप प्रदान करता है। थार का मरुस्थल राजस्थान के पूर्वी भागों की ओर अबाध गति से बढ़ रहा है।

वायु द्वारा मिट्टी का अपरदन सामान्यतया जोधपुर, बीकानेर, कोटा, जयपुर, भरतपुर, अजमेर जिलों के क्षेत्रों

में देखा जाता है। राजस्थान में इस अपरदन द्वारा गत शताब्दी में प्रतिवर्ग किलोमीटर लगभग 1 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी का विनाश हुआ है।

राजस्थान में आँधी और तूफान, विशेषकर ग्रीष्म ऋतु में बहुत आते हैं। हम देखते हैं कि बालू के टीले पश्चिमी व उत्तरी राजस्थान में कुछ ही घंटें बाद अपना स्थान बदलते रहते हैं। इससे उपजाऊ भू-खण्ड भी बालू से ढ़क जाते हैं और शनैः-शनैः उनकी उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है।

मिट्टी अपरदन की हानियाँ—विभिन्न प्रकार से होने वाले मिट्टी अपरदन के संयुक्त प्रभावों का राष्ट्रीय योजना समिति (1948) ने निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण दिया है।

(i) भीषण तथा आकस्मिक बाढ़ों का प्रकोप।
(ii) सूखे की लम्बी अवधि जिसका प्रभाव नहरों पर पड़ता है।
(iii) जल के अतिरिक्त स्रोतों पर प्रतिकूल प्रभाव जिससे कुओं तथा नलकूपों की जल सतह का नीचा हो जाना और सिंचाई में कठिनाई होना है।
(iv) नदियों की तह में बालू का जम जाना जिससे नदी की धारा में परिवर्तन होता रहता है और नहरों का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है।
(v) उच्च कोटि की मिट्टियों के नष्ट हो जाने से कृषि का उत्पादन कम होता जाता है।
(vi) नदियों के किनारे की भूमि का कटाव होने से कृषि योग्य भूमि में कमी आना।
(vii) वायु द्वारा बहुधा जोते और बोये गये खेतों पर बालू की परत जमा दी जाती है जिससे बीज अंकुरित नहीं होने पाता, फसल नष्ट हो जाती है।

अपरदन रोकने के उपाय—मिट्टी अपरदन की समस्या एक विकट समस्या है जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से राज्य की आर्थिक समृद्धता पर पड़ता है। अपरदन को रोकने के लिए निम्न उपाय काम में लाये जाने आवश्यक हैं।

(i) पहाड़ी ढ़ालों पर बंजर भूमि में और नदियों के किनारे वृक्षारोपण किया जाय तथा साथ ही चराई पर नियन्त्रण रखा जाये।

(ii) फसलों के हेर-फेर को अपनाकर तथा समय पर खेतों को पड़ती छोड़ना भी वांछनीय है।

(iii) बहते हुए जल के वेग को रोकने के लिए खेतों में मेड़बन्दी करना, ऊँची भूमि पर समोच्य रेखाओं के अनुसार और मैदानों में टेढ़ी-मेढ़ी खेती की पद्धति अपनाना आवश्यक है।

(iv) बहते हुये जल की मात्रा में कमी करना भी आवश्यक है इसके लिए—

(अ) पहाड़ियों के ढ़ाल पर अथवा ऊँचे नीचे क्षेत्र में बहते हुये जल को संग्रह करने के लिए छोटे-छोटे तालाबों का निर्माण किया जाय।

(ब) नदियों के मार्ग में बांधों का निर्माण कराया जाये।

(स) खेतों पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर ऐसे बांध बनवाये जायें जो एकत्रित जल को अनेक भागों में बांट सकें। इससे जल का वेग भी कम हो जायेगा तथा मिट्टी भी बहकर नहीं जा सकेगी।

(v) राजस्थान के सभी भागों में गांवों, कस्बों व नगरों के बाहर पशुओं के लिए निश्चित भूमि में चरागाहों का विकास किया जाये तथा उन्हें उन्हीं चरागाहों में चराया जाये।

(vi) मरुस्थलीय क्षेत्र में मिट्टी को उड़ने से रोकने के लिए वृक्षों की पट्टी लगाई जानी चाहिये।

योजनाओं के अन्तर्गत भूमि संरक्षण कार्य—प्रथम योजना काल में राजस्थान में 1952 में जोधपुर में एक मरुस्थल वृक्षारोपण तथा अनुसन्धान केन्द्र खोला गया। यह केन्द्र मरुस्थल की दशाओं के अनुरूप पौधों का चयन कर उनका रोपण करता है तथा यहां से पौधे और बीज उगाने के लिए वितरित किये जाते हैं। लगभग 6 हजार हैक्टेयर भूमि पर समोच्य बांध बांधे गये, 4800 हैक्टेयर भूमि में वन-रोपण किया गया, 1189 लाख हैक्टेयर में भूमि-संरक्षण के कार्यक्रम लागू किये गये।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में मरुस्थल वृक्षारोपण तथा अनुसन्धान केन्द्र तथा केन्द्रीय शुष्क प्रदेश शोध संस्थान का संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन के सहयोग से पुनर्गठन किया गया। इसके उपरान्त केन्द्रीय रेगिस्तान विकास बोर्ड की स्थापना भी की गई है। राजस्थान में जोधपुर के निकट ही चरागाहों

के विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 500 हैक्टेयर पर बाड़े स्थापित करने का कार्य प्रारम्भ किया गया जिसमें अब तक 55 बाड़े तैयार किये जा चुके हैं। तृतीय योजना काल में निम्न कार्यक्रम निर्धारित किये गये।

(i) 10 लाख हैक्टेयर भूमि पर मेड़बन्दी तथा 1500 हैक्टेयर भूमि पर शुष्क खेती करने की प्रणाली को अपनाना।

(ii) नदी घाटियों में बने बांधों को अधिक स्थायी बनाने, बाढ़ों को रोकने, भूमि के कटाव पर नियन्त्रण करने, मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने तथा ईंधन और औद्योगिक लकड़ी की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए 2.65 लाख हैक्टेयर भूमि पर वृक्षारोपण करना।

(iii) नमकीन और ऊसर मिट्टी का पुनरुद्धार करने तथा उसकी उपजाऊ शक्ति को पुन: प्राप्त करने के लिए राज्य में 65000 हैक्टेयर भूमि का सुधार करना।

(iv) मरुस्थलीय क्षेत्रों में चरागाह तथा वृक्षारोपण क्रिया द्वारा 2.5 लाख हैक्टेयर भूमि का पहाड़ी क्षेत्रों में तथा बंजर भूमि पर संरक्षण कार्य करना।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भूमि संरक्षण के कार्यक्रम पर अधिक जोर दिया गया जिसमें 3.5 लाख हैक्टेयर भूमि पर और अधिक संरक्षण कार्यक्रम अपनाये गये।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भूमि सुधार के लिए 62 लाख तथा भूमि संरक्षण के लिये 286 लाख की राशि का प्रावधान रखा गया जिसमें अधिक उपज प्रदान करने वाली फसलों के लिए नई नीति अपनाना तथा भूमि संरक्षण के लिए जल विभाजक पद्धति को अपनाया जाना आदि शामिल किये गये। इस योजना काल की अवधि में भूमि सुधार के लक्ष्यों में सफलता 82 प्रतिशत रही जबकि भूमि संरक्षण कार्यों में केवल 37 प्रतिशत ही सफलता मिल पाई।

छठी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भी भूमि सुधार तथा भूमि संरक्षण के कार्यक्रमों को शामिल किया गया है। इनमें वे कार्य जो अभी तक अपूर्ण हैं, उन्हें तथा कुछ नये कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया हैं। भूमि सुधार तथा भूमि संरक्षण के लिए क्रमश: 133 लाख व 565 लाख रुपयों की राशि का प्रावधान रखा गया है। वर्ष 1983 तक इन पर क्रमश: 33 लाख एवं 85 लाख रुपये की राशि व्यय हो चुकी है।

देश के बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों में वनों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आर्थिक उन्नति तथा विकास योजनाओं में वनों का बड़ा योगदान रहता है। वनों का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में विशेष महत्व है। भू-संरक्षण, जल-संरक्षण, मरुस्थल और बाढ़ आदि को नियन्त्रित करने एवं देश के औद्योगिक एवं कृषि विकास के लिये वनों का उचित परिमाण में होना आवश्यक है। राजस्थान में वनों का महत्व इसलिये और भी अधिक हो जाता है, जब हम यह विचार करते है कि थार का मरुस्थल प्राकृतिक मरुस्थल नहीं है बल्कि वनस्पति के आवरण से रहित हो जाने तथा अत्यधिक व अनियमित चराई के कारण मरुभूमि में परिवर्तित हो गया है। प्राकृतिक वनस्पति के अन्तर्गत वन, कंटीली झाड़ियां तथा घास आदि शामिल है। इसमें वनों का महत्व अधिक है लेकिन राजस्थान में भारत की तुलना में वनों से आच्छादित प्रदेश बहुत कम है। सबसे अधिक वन-क्षेत्र असम राज्य (42%) में हैं और सबसे कम वन क्षेत्र पंजाब राज्य (2.5%) में। राजस्थान में कुल क्षेत्रफल का लगभग 3.3 प्रतिशत भाग सघन वनों से आच्छादित है। राजस्थान में विभिन्न प्रकार की वनस्पति लगभग 34,610 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत है जो राज्य के कुल क्षेत्रफल का 10.12 प्रतिशत है।[1] इसके केवल तीसरे हिस्से में सघन वन है। यह उल्लेखनीय है कि भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 10 40 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान में है जबकि भारत के कुल वन क्षत्र का लगभग 1.8 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान में है। राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो 22.8% भू-भाग वनों से आच्छादित है। इसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर औसतन जहाँ प्रति व्यक्ति 0.2 हेक्टेयर वन क्षेत्र है, राज्य में प्रति व्यक्ति 0.06 हैक्टेयर वन क्षेत्र ही है। राजस्थान में कुल वनों के क्षेत्रफल का लगभग 3‌ प्रतिशत सुरक्षित, 44 प्रतिशत रक्षित और 24 प्रतिशत खुले रूप में वर्गीकृत किया गया है।[2] राज्य की कार्यशील जनशक्ति का मात्र 0.4% ही वन सम्पदा पर रोजगार की दृष्टि से निर्भर है।

राज्य में जितने अभयारण्य हैं, उतने देश के किसी भी अन्य राज्य में नहीं है। राज्य में कुल 20 अभयारण्य व 25 आरक्षित क्षेत्र हैं। वन विभाग राज्य में कोयला व ईंधन लकड़ी की मांग का 8% से 10% ही उपलब्ध करा पाने में सक्षम है। विभाग को केवल 9,000 हेक्टेयर भूमि में से ही पेड़ काटने की स्वीकृति है जिसमें से केवल 6,000 हेक्टेयर भूमि में से ही पेड़ काटे जाकर लोगों को ईंधन उपलब्ध कराया जाता है। विभाग के 35 विक्रय केन्द्र राज्य में हैं जिनमें से 17 विभिन्न मुख्यालय केन्द्रों पर एवं 18 अन्य स्थानों पर है। राज्य के क्षेत्रफल को देखते हुए ये अपर्याप्त हैं। सुनिश्चित वन योजना के आधार पर कुल क्षेत्रफल का लगभग एक चौथाई अथवा एक तिहाई भाग वनों के अन्तर्गत होना चाहिए तभी मानव, जीव-जन्तु और वनस्पति के बीच समुचित संतुलन रह सकता है। इस दृष्टि से राजस्थान काफी पिछड़ा हुआ है।

स्वतन्त्रता से पूर्व राजस्थान में वनों की सुरक्षा, सदुपयोग तथा उसके नियमित विकास पर उचित ध्यान नहीं दिया गया जिसके फलस्वरूप वनों का विनाश होता चला गया, जिसका आर्थिक जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। किन्तु बाद में वनों के महत्व को समझकर वनों को सुरक्षित रखने की आवश्यकता बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महसूस की गई, तब देशी राज्यों के कुछ शासकों ने अपने आधीन कुछ वन क्षेत्रों को शिकार-भूमियों के रूप में सुरक्षित किया। जोधपुर नरेश ने सबसे पहले वनों को सुरक्षित रखने की योजना लगभग 1910 में बनाई। उसी प्रकार टोंक राज्य में 1901 में एक शिकार एक्ट बनाया गया जिसमें वन्य जीवों और वनों के संरक्षण का ध्यान रखा गया। उदयपुर राज्य में भी वर्ष 1936 में वन क्रियाशील योजनायें बनाई गई। राजपूताना में वनों के संरक्षण तथा उनको विकसित करने की दिशा में उठाये गये अन्य कदमो में मारवाड़ शिकार नियम, 1921; कोटा जंगलात कानून, 1924 तथा जयपुर शिकार कानून, 1931 आदि थे।

---

1. Statistical Abstract, 1986, Directorate of Economics & Statistics, Rajasthan, Jaipur.
2. Basic Statistics of Rajasthan, 1986.

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वनों के महत्व को समझते हुए इनके समुचित विकास तथा संरक्षण की ओर विशेष प्रयास करने के लिए 12 मई 1952 को भारत सरकार ने राष्ट्रीय वन सम्बन्धी नीति का निर्धारण किया। इसके अनुसार 23 प्रतिशत भूमि पर वन लगाने का निश्चय किया गया। फलस्वरूप राजस्थान में भी वनों की ओर समुचित ध्यान सरकार द्वारा दिया जाने लगा।

वनस्पति को प्रभावित करने वाले कारक

प्राकृतिक वनस्पति की अवस्थिति और वितरण को विशेष रूप से निम्न कारक प्रभावित करते हैं—

(i) प्राकृतिक कारक जैसे उच्चावचन और मिट्टी
(ii) जलवायु कारक
(iii) जैविक कारक

(i) **प्राकृतिक कारक**— राज्य में अरावली पर्वत उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग 692 किलोमीटर की लम्बाई तक राज्य को दो विशिष्ट प्राकृतिक विभागों—उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व में बांटते हुए विस्तृत है। दक्षिण-पश्चिम में अरावली श्रेणी की ऊँचाई अधिक है। गुरु शिखर (1727 मी.) जिसकी चोटी राज्य में सबसे अधिक ऊँची है, माउन्ट आबू अधःशैल में स्थित है। राज्य का उत्तरी-पश्चिमी भाग वायुढ़ जमाव का एक विस्तृत भाग है। यह बालू अपने नीचे ठोस भूगर्भ को छुपाये हुये हैं। उच्चावचन सर्वत्र समतल नहीं है। कई निम्न चट्टानी प्रक्षेपों की उपस्थिति के कारण एकरूपता टूट जाती है। हवायें यहाँ पर कई बालू कटक रेत के टीले और छोटो बालू पहाड़ियों का निर्माण कर चुकी हैं। राज्य के पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी भाग अधिक उपजाऊ है। दक्षिण-पूर्व में पठारी भूमि और पूर्व में बनास मैदान स्थित है। इन्हीं प्राकृतिक विशेषताओं के कारण यहाँ विभिन्न प्रकार की वनस्पति पाई जाती है।

वनस्पति अरावली के पूर्व और दक्षिण-पूर्व में पूर्ण विकसित है तथा पश्चिमी शुष्क वनस्पति की अपेक्षा यहाँ बड़ी संख्या में वृक्ष पाये जाते हैं। आबू पर्वत के आस-पास वनस्पति अधिक वर्षा (150 से. मी.) के कारण काफी सघन मिलती है। राजस्थान का पश्चिमी भाग अधिक शुष्क है। यहाँ वनस्पति झाड़ियों के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। उच्चावचन काफी समतल है लेकिन यत्र-तत्र बालू के टीले, बलुआ पत्थर और ग्रेनाइट से निर्मित पहाड़ियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। ज्यों-ज्यों पश्चिम की ओर शुष्कता बढ़ती जाती हैं, पेड़ बौने होने लगते हैं लेकिन बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर और पश्चिमी जोधपुर में तो वृक्ष अदृश्य होते दिखाई देते है साथ ही झाड़ियों की प्रमुखता बढ़ती जाती है।

(ii) **जलवायु कारक**—राज्य के विभिन्न भागों में वनस्पति वितरण पर जलवायु का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। वर्षा की मात्रा दक्षिण-पूर्व में 100 से. मी. तथा पश्चिमी क्षेत्रों में 10 से. मी. अथवा इससे भी कम है। बहुत से स्थानों पर वर्षा में अधिक विषमता पायी जाती है और कुछ स्थानों पर तो विषमता लगभग बराबर अथवा इसके औसत मूल्य से भी अधिक देखने को मिलती है। पश्चिमी भाग न केवल वर्षा में बल्कि तापक्रम वितरण में भी अत्यधिक चरम सीमायें प्रस्तुत करते हैं। कोपेन और गीगर के मतानुसार वर्षा वनस्पति के अस्तित्व के लिए अपर्याप्त है अगर यह T+14 सेन्टीमीटर से कम है। यहाँ T माध्य वार्षिक तापक्रम सेन्टीग्रेड में प्रदर्शित करता है। राजस्थान का माध्य वार्षिक तापक्रम 26.5 सें. है और इस सूत्र के अनुसार मूल्य 40.5 के बराबर है। राज्य का पश्चिमी आधा भाग शुष्क है और शेष T+14 और 2T+28 के बीच जो आता है वह अर्द्ध-शुष्क है।

अधिकांश वर्षा जुलाई और अगस्त के महीनों में होती है हालांकि कुछ वर्षा शीतऋतु में भी होती है। इस वर्षा की मुख्य विशेषता अनिश्चतता है। दूसरे विभिन्न स्थानों पर बहुत ऊँचे तापक्रम पाये जाते हैं। सापेक्षिक आर्द्रता सुबह अधिक तथा धीरे-धीरे अपराह्न में कम होती जाती है। समस्त क्षेत्रों में हवायें चलती हैं और पश्चिमी मैदानों में कभी-कभी झक्कड़ चलते हैं जिनकी गति 30 किलोमीटर या इससे भी अधिक होती है। विभिन्न प्रकार की वनस्पति जो राज्य के विभिन्न भागों में मिलती है, उसके तथा वर्षा के बीच स्पष्ट सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। आबू पर्वत 120 से. मी. से भी अधिक वर्षा प्राप्त करता है। आबू के ऊपरी भागों में आर्द्र किस्म के जंगल पाये जाते हैं जिनमें अम्बरतारी, केर और निचले ढालों पर धाऊ, बेल, सिरस, आम, जामुन, कचनार, रोहिरा आदि के घने जंगल पाये जाते

हैं। इनके अतिरिक्त नीम, पीपल, बेर, बड़, गूलर आदि वृक्ष भी प्रमुख हैं।

पूर्वी राजस्थान में बांसवाड़ा व बारां प्रदेश में 80 से. मी. वर्षा होती है। यहाँ धोकड़ा व महुआ के साथ सागवान के शुद्ध वन मिलते हैं तथा घासें भी उगती हैं। वह क्षेत्र जहाँ वर्षा 40 से. मी. से 80 से.मी. (चित्तौड़गढ़ क्षेत्र को छोड़कर) और वह स्थान जहां मिट्टी अच्छी है, धोकड़ा के वृक्ष शुद्ध रूप में पाये जाते हैं। चित्तौड़गढ़ के वे भाग जहाँ वर्षा 60 से. मी. से 80 से. मी. के बीच है, बबूल के साथ चन्दन के लट्ठे और बालवृक्ष पाये जाते हैं।

अरावली के पश्चिम में अजमेर, पाली एवं सिरोही क्षेत्र से लेकर जोधपुर तक संक्रामक प्रकार की वनस्पति अर्थात् पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्रों की मिश्रित वनस्पति मिलती है। इस भू-भाग में वनस्पति पश्चिम की ओर निरन्तर छितरी होती जाती है। इस भाग के मुख्य वृक्ष धाऊ, कुमात और खेजड़ी आदि हैं। जोधपुर की तरफ रोहिड़ा, खेजड़ी और कुमात आदि वृक्ष मिलते हैं। इस प्रकार की वनस्पति इस प्रदेश की अत्यधिक शुष्कता को प्रदर्शित करती है। उत्तर-पश्चिम में जैसलमेर, गदरारोड, बाड़मेर के कुछ भाग और गंगानगर, आदि क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 20 से. मी. से भी कम होती है। इस क्षेत्र का अधिकांश भाग बालू से ढ़का है। यहाँ पर बहुत ही कम वनस्पति और वह भी काफी अन्तराल पर मिलती है। शुष्क एवं अर्द्धशुष्क प्रदेशों में विलायती खेजड़ा बहुत सफलता के साथ उगता है। इसमें सूखे को सहन करने की बड़ी क्षमता होती है क्योंकि यह अपनी जड़ों को काफी दूर तक फैला कर पानी ग्रहण कर सकता है तथा साथ ही साथ केवल चट्टानी सतहों पर भी उग आता है।

(iii) जैविक कारक—राज्य में जैविक कारकों का प्रभाव वनस्पति पर विपरीत दृष्टिगोचर होता है। भेड़, बकरियाँ और चौपायों के बड़े-बड़े समूह के द्वारा अविवेकता पूर्ण चराई, वृक्षों की अनियमित रूप से कटाई, खेती के लिये भूमि की सामूहिक सफाई, आदिवासियों के द्वारा जंगलों को काट कर 'वालरा' कृषि करना, प्राकृतक वनस्पति के विनाश के मुख्य कारण है। घुमक्कड़ जातियों की क्रियाएँ उनकी भेड़-बकरियों के समूह के स्थानांतरण के साथ वनों के विनाश में अपना योगदान करती रही हैं। जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि के कारण मानव ने वनों को काट-काट कर अधिवास बनाये, यातायात के लिये उनका उपयोग किया। इस प्रकार जैविक कारक भी वनों के वितरण तथा उनके विकास को काफी प्रभावित करते रहे हैं और भविष्य में भी विनाश तथा विकास को प्रभावित करते रहेंगे।

वनों का भौगोलिक वितरण

यह निश्चित है कि किसी प्रदेश की वनस्पति—वहाँ की जलवायु, मिट्टी और भू-पृष्ठ के भू-वैज्ञानिक इतिहास से प्रभावित होती है। भूमि की स्थिति का प्रभाव वनस्पति पर पड़ता है उदाहरणार्थ अरावली के दक्षिणी एवं पूर्वी भाग की वनस्पति, पश्चिमी भाग की वनस्पति से भिन्न हैं।

अरावली श्रेणी के उत्तरी-पश्चिमी समस्त क्षेत्र में मरुस्थलीय वनस्पति काफी विरल दृष्टिगोचर होती है। मरुस्थलीय वृक्षों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(i) वे वृक्ष जो वार्षिक वर्षा पर निर्भर रहते है तथा (ii) वे वृक्ष जो मिट्टी की गहरी परतों में उपस्थित उपधरातलीय जल पर निर्भर रहते है। वर्षा काल में इण्डीगोफोरम, कोरडीफोलिया तथा सेन्चूरस वाईफ्लोरस सामान्यत: उगते हैं। चिरकाल वनस्पति में केर, खेजड़ी, बुई और हेलीसीलन सेलिकोरनियम वृक्ष प्रमुख है।

अरावली पर्वतीय श्रेणियों के पश्चिमी ढ़ालों पर मुख्यत: पाली, जालोर, सीकर, झुन्झुनूं आदि क्षेत्रों में अरण्डी, इमली, बबूल, धोंक, केर आदि अर्द्ध-मरुस्थलीय वनस्पति प्रमुखता के साथ मिलती है।

अरावली क्षेत्र में जहाँ वर्षा अधिक होती है, वहाँ प्राकृतिक वन अधिक विस्तार में मिलते है। गूलर, नीम आम, बड़, बहेड़ा, महुआ, धोंक और खेर के वृक्ष उदयपुर बांसवाड़ा, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़, अजमेर, जयपुर, अलवर और भीलवाड़ा जिलों में अधिक पाये जाते है।

पूर्वी मैदानी क्षेत्रों जैसे भरतपुर, धौलपुर, टोंक; सवाईमाधोपुर, कोटा, बूंदी और झालावाड़ आदि में घनी वनस्पति पाई जाती है। इन क्षेत्रों में सालर, बांस, सेमल, प्लास, खेर, सफेद धोंक आदि प्रमुख वृक्ष दृष्टि-

गोचर होते है।

राजस्थान में प्राकृतिक वनस्पति तीन प्रकार की मिलती हैं—वन, घास तथा मरुस्थलीय वनस्पति। राज्य के अधिकांश भाग शुष्क जलवायु के अन्तर्गत आते हैं। शुष्क जलवायु वनों के विकास के लिये अनुकूल नहीं होती है। राजस्थान के वन क्षेत्र मुख्यत: पूर्व व दक्षिण-पूर्व में ही पाये जाते हैं क्योंकि इन क्षेत्रों में वर्षा अधिक होती है। इस भाग के अन्तर्गत अलवर, भरतपुर, सवाई माधोपुर, कोटा, बून्दी, चित्तौड़गढ़, झालावाड़, बांसवाड़ा, उदयपुर, डूंगरपुर और सिरोही जिले सम्मिलित हैं।

जोधपुर, जयपुर, टोंक और अजमेर आदि जिलों की पहाड़ियों पर वन बिखरे-बिखरे पाये जाते हैं। उत्तरी-पश्चिमी भाग में जैसे गंगानगर, बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर आदि में वनस्पति नगण्य है। केवल कुछ वृक्ष ही काफी दूर-दूर दिखाई पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त कंटीली झाड़िया, बबूल, खेजड़ी आदि वृक्ष उत्पन्न होते हैं। बीकानेर, जोधपुर, सीकर, झुन्झुनूं व चूरू आदि जिलों में घास के बीड़ पाये जाते है।

राजस्थान के उदयपुर जिले में सबसे अधिक वन मिलते हैं। यहाँ राजस्थान के वनों का 21.7 प्रतिशत मिलता है। परन्तु जिले के क्षेत्रफल के प्रतिशत के सन्दर्भ में वन बांसवाड़ा में सबसे अधिक हैं जहां सम्पूर्ण जिले के क्षेत्रफल के 35% भाग पर वन हैं। सबसे कम वनों का प्रतिशत राजस्थान के पश्चिम जिलों में हैं। जोधपुर जिले में वहां के क्षेत्रफल के लगभग 1 प्रतिशत भाग में वन है। चूरू, गंगानगर और बाड़मेर में वनों का प्रतिशत नगण्य है।

सामान्यतया उत्तर से दक्षिण की ओर तथा पश्चिम से पूर्व की ओर मुख्यत: वर्षा के वितरण के अनुरूप, वृक्षों व झाड़ियों की विषमता और गहनता तथा उनकी उपज वृद्धि में क्रमोत्तर सघनता बढ़ती जाती है। धरातल के कारण स्थानीय विषमतायें पायी जाती हैं। पहाड़ियों के ऊपरी सिरों की अपेक्षा उनके ढ़ालों पर अधिक घनी वनस्पति पाई जाती है क्योंकि वहाँ पर नग्न चट्टानें कम होती है, मिट्टी नीचे की ओर आकर जम जाती है तथा साथ ही अधिक नमी पायी जाती है। पहाड़ियों के बीच सकड़ी व गहरी घाटियों में, जो कृषि भूमि के तल से ऊपर होती है, घने जंगल व सघन घास मिलती है। मिश्रित पतझड़ और उपोष्ण सदाबहार वनों का वितरण असमान हैं। यह अधिकतर आबू खण्ड, मेवाड़, बूंदी, अलवर की पहाड़ियों पर सकेन्द्रित है।

मेवाड़ की पहाड़ियों में खासतौर से इसके दक्षिणी भागों में, धोकड़ा, सालर, आँवला, तेंदू, खैर इत्यादि के साथ सागवान और बांस मिलते हैं।

नदी घाटियों के सहारे और निम्न प्रदेशों में धोक, सालर, नीम, महुआ, आम, जामुन और बबूल साधारणत: पाये जाते हैं। कोटा में सागवान का वितरण सीमित है। बूंदी में मिश्रित पतझड़ के वृक्ष पाये जाते हैं।

घास के मैदान व चरागाह, जिन्हें यहाँ स्थानीय भाषा में बीड़ कहते हैं विस्तृत रुप से झुन्झुनूं, सीकर, अजमेर के अधिकांश भागों में एवं भीलवाड़ा, उदयपुर और सिरोही के सीमित भागों में पाये जाते हैं। अक्सर जंगलों व घास के मैदानों के साथ तथा कभी-कभी अकेले भी झाड़ी प्रदेश मिलते है लेकिन यह प्रदेश के काफी अधिकांश भाग पर विस्तृत हैं। सामान्यत: तेज पहाड़ी ढालों पर, पठार के ऊपरी सिरों पर एवं चट्टानी अपरदित मैदानों पर जहाँ जंगल नहीं पनप सकते अथवा कृषि सम्भव नहीं होती है, उन भागों पर झाड़ियां दृष्टिगोचर होती हैं।

राज्य के सूदूर पश्चिमी भाग जैसे जैसलमेर, गदरा-रोड (बाड़मेर), बीकानेर और गंगानगर आदि में वर्षा 20 से. मी. से कम होती है तथा साथ ही इसकी प्रकृति अनिश्चित भी होती है।

राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र बालूमय है। इस क्षेत्र की वनस्पति कांटेदार झाड़ियों से लेकर शुष्क पतझड़ वनों के बीच की विषमता रखती है। इस भू-भाग में सामान्यत: कीकर, खैर, राम बांस, बबूल, कुमात, खेजड़ी और विलायती खेजड़ा आदि वृक्ष पाये जाते हैं। इन सभी वृक्षों में से विलायती खेजड़ा सबसे अधिक सफल है। यह प्रदेश के सबसे अच्छे चारे के वृक्षों में से एक है तथा विविध जलवायु एवं मिट्टी की दशाओं में और विषम भूमियों पर भी उगाया जा सकता है। इस वृक्ष की महत्वता न केवल आश्रय पट्टी प्रदान करने में बल्कि बालू के टीलों को स्थायित्व प्रदान करने में भी है। यह इस क्षेत्र का मूल वृक्ष नहीं है। देशी जातियों में से खेजड़ा

जैसलमेर के मरुस्थलीय क्षेत्र से लेकर अर्द्धशुष्क क्षेत्रों तक उगाया जाता है। यह चट्टानों तथा बलुई सतहों पर भी सफलता के साथ उगता है। इसकी वृद्धि की दर धीमी है लेकिन इसकी लकड़ी अच्छी होती है। शुष्क और अर्द्धशुष्क प्रदेशों में विलायती खेजड़ा बड़ी अच्छी तरह उगाया गया है। इसमें सूखे को सहन करने की विचित्र शक्ति है और साथ ही अनावृत चट्टानों पर भी उग जाता है।

पोकरन और जैसलमेर के बीच काफी विस्तृत क्षेत्र हैं जहाँ विभिन्न जातियों की घासें मिलती हैं। लेकिन मुख्य रूप से सावन, धामन और मूरात आमतौर से उगती है। मरुस्थल के शुष्कतम भाग में इन जातियों की उपस्थिति यह स्पष्ट करती है कि पश्चिमी शुष्क मैदान में जलस्तर ऊँचा है और यह क्षेत्र अच्छे चारागृह के रूप में परिवर्तित हो सकते हैं। उपर्युक्त घास की जातियाँ चौपायों तथा भेड़ों के लिये चारे को दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त है। पश्चिमी राजस्थान के शुष्क प्रदेश में पशुपालन विभिन्न घासों के बोये जाने पर निर्भर करता है, अगर चारा आपूर्ति की स्थिति इन शुष्क क्षेत्रों में सुधार दी जाये तो दुग्ध उद्योग के अति विकसित होने की सम्भावनाओं को नकारा नहीं जा सकता।

वनों के प्रकार

राजस्थान की प्राकृतिक दशा, जलवायु और मिट्टियों में पर्याप्त विषमता पाई जाती है। इसी के फलस्वरूप राजस्थान में वनस्पति भी अनेक प्रकार की (मानचित्र सं. 16) मिलती है जो निम्न प्रकार की है।

1. शुष्क सागवान वन
2. शुष्क पतझड़ वन
3. मिश्रित पतझड़ वन
4. सालर वन
5. ढाक अथवा प्लास वन
6. उष्ण कटिबन्धीय कांटेदार वन
7. उपोष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन

1. शुष्क सागवान वन प्रदेश—यह वन राज्य के दक्षिणी भाग में **बांसवाड़ा** वन विभाग के अन्तर्गत लगभग **5200 वर्ग किलोमीटर** के क्षेत्र में विस्तृत है। इस वन प्रदेश में साधारणतया सागवान के जंगल पाये जाते हैं लेकिन **चित्तौड़गढ़, उदयपुर और बारां** के वनों में सागवान के वृक्ष अन्य वृक्षों के साथ मिश्रित रूप में भी पाये जाते हैं। पश्चिमी अरावली में सागवान की उत्तरी सीमाएं उदयपुर में 24°42′ उत्तरी अक्षांश और कोटा जिले के बाएं, में 25°12′ उत्तरी अक्षांश है। इस भू-भाग की जलवायु शीत ऋतु में ठण्डी और ग्रीष्म-ऋतु में अति गर्म और शुष्क होती हैं। वार्षिक वर्षा 75 सें. मी. से 110 सें. मी. के बीच होती है। सागवान वृक्षों की ऊँचाई विभिन्न क्षेत्रों में मिट्टी की दशाओं के अनुरूप है। मिट्टी की गहराई पठारी क्षेत्रों और ऊँचे ढालों पर बहुत ही कम तथा पहाड़ियों के आधार और घाटियों में अधिक हैं। जहाँ सागवान के वृक्ष पाये जाते हैं उन क्षेत्रों की औसत ऊँचाई 245 मीटर से 490 मीटर के बीच में है। वृक्षों की ऊँचाई 9 मीटर से 13 मीटर के बीच है। कभी-कभी आग की घटनायें उगते हुये वृक्षों को बड़े पैमाने पर समाप्त कर देती है तथा अवस्थितिक गुणों को भी कम कर देती है। इस प्रदेश की दशायें केवल छोटे आकार के वृक्षों के लिये उपयुक्त हैं। यह वन फर्नीचर व मकान निर्माण के लिए इमारती लकड़ी तथा छतों व घेराबन्दी के लिये लट्ठे प्रदान करते हैं।

बड़े वृक्षों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की झाड़ियां और घासें भी इस प्रदेश में मिलती है। वनो के भीतरी भागों में कुछ भूमि खण्डों पर, जहाँ अधिक नमी होती है, बांस पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में अविवेकता पूर्ण कटाई के कारण केवल लट्ठे व झाड़ियों का अस्तित्व ही मिलता है।

2. उत्तरी उष्णकटिबन्धीय शुष्क पतझड़ वन—ये वन लगभग **26,418 वर्ग किलोमीटर** क्षेत्र में फैले है। अरावली श्रेणी के जिन क्षेत्रों की ऊँचाई 270 मीटर से 770 मीटर है उनके दक्षिणी-पूर्वी भागों पर मुख्य रूप से **उदयपुर** एवं **बांसवाड़ा** में यह वन पाये जाते हैं। धोकड़ा वृक्ष शुष्क गर्म प्रदेश का वृक्ष है। यह वृक्ष निम्न और कम ढालू भूमियों पर आमतौर से पाया जाता है लेकिन छोटी पहाड़ियों व निम्न कटकों पर भी यह मिलता है। वृक्ष की औसत ऊँचाई 6 मीटर से 7.5 मीटर के बीच है लेकिन जहाँ मिट्टी गहरी और जल आपूर्ति अच्छी है वहां इनकी ऊँचाई लगभग 14 मीटर तक पहुँच जाती है। इस क्षेत्र की औसत वार्षिक वर्षा

50 से. मी. से 100 से. मी. है। अरावली शृंखला के क्षेत्र जहाँ चट्टानें फाईलाईट से निर्मित है अथवा विध्यन क्रम के क्षेत्र जहाँ बलुआ शैलें और चूने के पत्थर पाये जाते हैं। सामान्य रूप से पाई जाने वाली किस्मों में आम, तेंदू, बबूल, बरगद, गूलर, खैर, नीम तथा अन्य वृक्षों में बहेड़ा, धमन, खिरनी, सेमल व टिमरु मुख्य है। ऊँची पहाड़ियों पर बांस, आंवला, आक, थोर व करोंदा मुख्य है। धोकड़ा वृक्ष की लकड़ी कठोर तथा मजबूत होने के साथ ही साथ निश्चित लचीलापन भी रखती है फलस्वरूप इससे कृषि के औजार बनाये जाते हैं। यह लकड़ी ईंधन तथा काठ कोयले की दृष्टि से भी अच्छी है। खैर से कत्था, खिरनी से खिलौने तथा तेंदू से बीड़ी बनाई जाती है।

3. **मिश्रित पतझड़ वन**—यह वन उदयपुर में आमतौर से तथा कोटा, बून्दी, चित्तौडगढ़ और सिरोही के कुछ भागों में मिलते हैं। ये वन लगभग 9000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत हैं। राज्य के इस भाग में औसत वार्षिक वर्षा लगभग 35 से. मी. है और तापक्रम
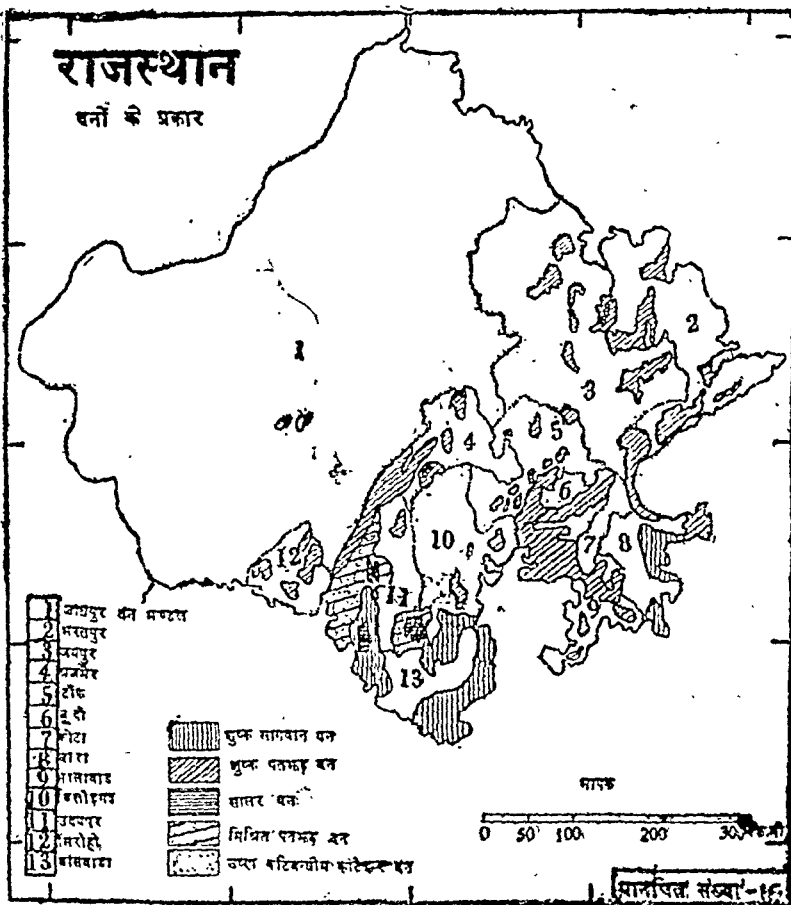
की विषमताएं शीतऋतु में निम्नतम तापक्रम 10° सें से ग्रीष्म ऋतु में 46° सें. के बीच मिलती है। ये वन 700 मीटर से 1200 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में मिलते हैं और अधिकांशतः पठारी भाग और धीमे ढालों पर पाये जाते हैं जहाँ मिट्टी की परतें पतली हैं। इस वन प्रदेश की वनस्पति में यथेष्ठ विविधतायें पाई जाती हैं। सामान्य रूप से मिलने वाले वृक्ष धोकड़ा, बरगद, गूलर, आम, जामुन, बबूल व खैर आदि हैं। इन वनों से प्राप्त लकड़ी का उपयोग ईमारती लकड़ी के रूप में थोड़ा तथा ईंधन व काठ कोयला के लिये अधिक किया जाता है। कुछ उपयुक्त स्थानों में जहाँ वर्षा और मिट्टियाँ अच्छी हैं वहाँ सागवान के वृक्ष भी पाये

जाते हैं ।

4. **सालर वन**—यह वन अलवर, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, सिरोही, अजमेर, जोधपुर और जयपुर आदि जिलों में लगभग **10,360 वर्ग किलोमीटर** के क्षेत्र पर मिलते हैं। वृक्ष अधिकांशत: अरावली कटकों के ऊपरी ढालों पर पाये जाते हैं। वार्षिक वर्षा इन क्षेत्रों में 50 से. मी. से 100 से. मी. के बीच होती है। ये वृक्ष 430 मीटर या इससे अधिक की ऊँचाई पर उगते हैं। इनकी ऊँचाई लगभग 12 मीटर से 15 मीटर तक होती है। वृक्ष सीधे एवं दानेदार होते हैं और सामान की पेकिंग के लिये उपयुक्त लकड़ी प्रदान करते हैं। गहरी मिट्टी वाले क्षेत्रों में घासें काफी घनी होती हैं जब कि शैल निर्मित मिट्टियों में व्यावहारिक रूप से कोई घास नहीं उगती। इन वनों का उचित ढंग से शोषण नहीं किया जा रहा है।

5. **ढाक या प्लास वन**—ये वन काली मटियार मिट्टियों की विशेषता वाले हैं। सभी नदी घाटियों में जहाँ सागवान के वृक्ष पाये जाते हैं, ये मुख्य रूप से मिलते हैं। नदी घाटियों में तथा नालों के साथ-साथ जहाँ मिट्टी गहरी व उर्वर है, सामान्यत: बहेड़ा, महुआ, सफेद सिरिस, करंज, गूलर व पारस पीपल आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। इन वनों के अन्तर्गत राज्य के कुल वन क्षेत्र की तुलना में नगण्य क्षेत्र ही शामिल हैं।

6. **उष्ण कटिबंधीय कांटेदार वन**—ये कांटेदार वृक्ष मुख्य रूप से जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर, पाली, सीकर, अजमेर, जयपुर, झुन्झुनूं, नागौर आदि जिलों के मैदानों में, निम्न पहाड़ी ढालों एवं ऊबड़-खाबड़ भूमियों पर पाये जाते हैं जहाँ औसत वर्षा 25 से मी. से 50 से.मी. के बीच होती है। रेतीली भूमि व शुष्क जलवायु के कारण इस क्षेत्र के पौधे सूखे और झाड़ीयुक्त हैं। खेजड़ा, रोहिड़ा, बेर, जाल, कंटीले बबूल, कैर आदि मुख्य वृक्ष हैं। इन वृक्षों की जड़ें लम्बी और मोटी होती है जिससे वे भूगर्भ से जल ग्रहण कर सके तथा साथ ही अपनी मोटी छाल के फलस्वरूप जल का तेजी से वाष्पीकरण न न होने दे। कुछ वृक्षों की पत्तियाँ व तनें बहुत मोटे होते हैं, किन्हीं पर कांटे अधिक मिलते हैं। इन वनों से ढके क्षेत्रों में घास की विभिन्न जातियाँ पाई जाती हैं, जिनकी वृद्धि बड़ी अच्छी है। इस भू-भाग का मुख्य वृक्ष खेजड़ा बड़ा उपयोगी है। इसकी लकड़ी ईंधन के लिए और काठ कोयला बनाने के काम में लायी जाती है। इन वनों से गोंद, चमड़ा रंगने वाले पदार्थ, चौपायों के चारे के लिये पेड़ों की पत्तियां तथा रीठा आदि प्राप्त किये जाते हैं।

7. **उपोष्ण कटिबन्धीय सदावहार वन**— आबू पर्वत के चारों तरफ का लगभग **32 वर्ग किलोमीटर** का क्षेत्र जो 1,070 मीटर से 1,375 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है, इन वनों के अन्तर्गत आता है। इस क्षेत्र में वार्षिक वर्षा लगभग 150 से. मी. है। आबू पर्वत के ढलानों तथा तल के आस-पास पाये जाने वाले वृक्षों तथा झाड़ियों में बांस, आम, धाऊ की कुछ प्रजातियों सिरिस, बेल, जामुन तथा रोहिड़ा प्रमुख हैं। आबू के उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में अम्बरतरी पाई जाती है। राजस्थान में आबू वनस्पति की दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न है। इन वनों के अन्तर्गत आने वाला क्षेत्र बहुत छोटा है। इन वनों के अन्तर्गत आने वाला क्षेत्र बहुत छोटा है। इसलिए इनका कोई व्यापारिक महत्व नहीं है। ये वन आबू पर्वत के पर्यटकों के लिए मनोहर छटा तथा सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

राजस्थान में वैधानिक स्तर पर वनों के लिए निम्न मण्डल बनाये गये हैं।[3]

(i) जोधपुर मण्डल—गंगानगर, बीकानेर, चुरु, नागौर, जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, जालौर, व पाली जिले।

(ii) भरतपुर मण्डल—अलवर, भरतपुर व धौलपुर जिले तथा सवाईमाधोपुर जिले का पूर्वी भाग।

(iii) जयपुर मन्डल—सीकर, झुन्झुनूं, जयपुर जिले तथा पश्चिमी सवाईमाधोपुर जिला।

(iv) अजमेर मण्डल—अजमेर जिला।

(v) टोंक मण्डल—टोंक जिला तथा भीलवाड़ा जिले का पूर्वी-उत्तरी भाग।

(vi) बून्दी मण्डल—बून्दी जिला।

(vii) कोटा मण्डल—कोटा जिला।

---

3. Basic Statistics of Rajasthan, 1982.

(viii) झालावाड़ मण्डल—झालावाड़ जिला ।

(ix) चित्तौड़गढ़ मण्डल – भीलवाड़ा जिले का पश्चिमी भाग तथा चित्तौड़गढ़ जिला सिवाय दक्षिणी भाग के ।

(x) उदयपुर मण्डल—उदयपुर जिला ।

(xi) सिरोही मण्डल—सिरोही जिला ।

(xii) बांसवाड़ा मण्डल—डूंगरपुर व बांसवाड़ा जिला तथा चित्तौड़गढ़ जिले का दक्षिणी भाग ।

राजस्थान में वनों को प्रशासनिक दृष्टि से तीन श्रेणियों में बाँटा गया है ।[4]

(1) जो वन जलवायु की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं उन्हें **'सुरक्षित वन'** कहते हैं । इन वनों का क्षेत्रफल 3.2 प्रतिशत है अर्थात् 12,486 वर्ग किलोमीटर पर यह विस्तृत है । ये वन सरकारी सम्पत्ति माने जाते हैं । ये वन सरकारी सम्पत्ति माने जाते हैं इसलिए इसमें से लकड़ी काटना, पशु चराना मना होता है । बाढ़ों पर नियन्त्रण करने, भूमि अपरदन से सुरक्षा और मरुस्थल प्रसार को रोकने तथा जलवायु व भौतिक कारणों से इनकी आवश्यकता होती है ।

(2) दूसरे प्रकार के वनों को **'रक्षित वन'** कहते हैं इनमें नियमों के अन्तर्गत पशुओं को चराने तथा लकड़ी काटने की सुविधा दी जाती है । इस प्रकार के वनों का क्षेत्रफल 44 प्रतिशत है अर्थात् ये वन 15,677 वर्ग किलोमीटर पर फैले हैं ।

(3) शेष वनों को **'अवर्गीकृत वन'** कहते हैं । इनमें लकड़ी काटने और पशुओं के चराने पर सरकार की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं है । सरकार इसके लिए कुछ शुल्क लेती है । इन वनों का क्षेत्रफल 124 प्रतिशत है अर्थात् 6,851 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर यह पाये जाते हैं ।

अब इस वर्गीकरण के स्थान पर संविधान के अन्तर्गत वन राजकीय वन, सामुदायिक वन आदि के रूप में वर्गीकृत कर दिये गये हैं[5] लेकिन आंकड़े अभी इस वर्गीकरण के अनुसार उपलब्ध नहीं होने लगे हैं ।

वनस्पति का आर्थिक महत्व

वनों का महत्व इनके क्षेत्र की अपेक्षा इनसे प्राप्त होने वाली कुछ विशिष्ट प्रकार की उपजों से आंका जाता है जो आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होती हैं । राज्य के वन लगभग 40 हजार व्यक्तियों को रोजगार प्रदान कर रहे हैं । राजस्थान में मुख्यत: धोंकड़ा के वन हैं जो राजस्थान के वन क्षेत्र के लगभग 60 प्रतिशत भाग पर विस्तृत हैं । तत्पश्चात् सागवान और सालर वनों का स्थान है जो क्रमश: 10 प्रतिशत और 6 प्रतिशत भाग पर विस्तृत हैं । इन वनों से प्राप्त उपजों को दो वर्गों से विभक्त कर सकते हैं ।

(अ) **मुख्य उपजें**—इस प्रकार की उपजों में गोला लकड़ी, ईमारती लकड़ी एवं ईंधन की लकड़ी आदि सम्मिलित हैं ।

(ब) **गौण उपजें**—इस प्रकार की उपजों के अन्तर्गत वनों से प्राप्त होने वाली छोटी-छोटी उपजें आती हैं जैसे पत्तियाँ, फल, घास, गोंद, बाँस, कत्था, खस, शहद व मोम तथा जड़ी-बूटियाँ इत्यादि ।

(अ) वनों की मुख्य उपजें

इमारती लकड़ी—राजस्थान के वन क्षेत्र के लगभग 10 प्रतिशत क्षेत्र में सागवान तथा 6 प्रतिशत क्षेत्र में सालर के वृक्ष पाये जाते हैं । राजस्थान के वनों से प्रतिवर्ष लगभग 26.5 लाख घन फुट इमारती लकड़ी सागवान, धोंकड़ा, सालर व बबूल आदि से प्राप्त होती है । यह लकड़ी पुराने एवं अविकसित तरीकों से प्राप्त करने के कारण बहुत बड़ी मात्रा में नष्ट भी हो जाती हैं । इसलिये राज्य सरकार को चाहिये कि लकड़ी काटने के वैज्ञानिक यन्त्र सम्बन्धित लोगों को उपलब्ध कराये तथा उन्हें प्रशिक्षण भी दिये जाने की व्यवस्था करे ।

जलाने की लकड़ी व कोयला—राजस्थान के वन निम्न श्रेणी के होने के कारण उनकी लकड़ी जलाने के लिये अधिक उपयुक्त है । वन क्षेत्र के लगभग 60 प्रतिशत पर धोंकड़ा मिलता है जिसका उपयोग आमतौर पर जलाने व कोयला बनाने के लिए किया जाता है । उदय-

4. Ibid, 1982.

5. The Times of India, Directory and Year Book (1972). P. 71.

पुर व चित्तौड़गढ़ के वनों से प्राप्त लकड़ी का उपयोग अधिकतर कोयला तैयार करने के लिये होता है। राजस्थान में प्रतिवर्ष 2 लाख टन से भी अधिक कोयला तैयार होता है। ईंधन के लिए मुख्यत: लकड़ी खैर, कीकर, बबूल, धोंकड़ा, खेजड़ा आदि वृक्षों से प्राप्त की जाती है। कोयले व लकड़ी का निर्यात भी किया जाता है। कोयले का उत्पादन वैज्ञानिक तरीकों से किया जाये तो इसके वर्तमान उत्पादन से 35 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती हैं।

(ब) गौण उपजें

बांस—बांस साधारणतया बांसवाड़ा, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, सिरोही एवं भरतपुर जिलों से प्राप्त किया जाता है। बांस का उपयोग टोकरी, चारपाई, झौंपड़ी बनाने, कागज बनाने तथा अन्य कार्यों में किया जाता है। बांस से कागज बनाने का कारखाना राजस्थान में इसलिये स्थापित नहीं किया जा सकता क्योंकि बांस यहाँ के वनों में अधिक मात्रा में नहीं मिलता है तथा अन्य वृक्षों के साथ मिले-जुले रूप में भी पाया जाता है।

घास—राज्य में अनेक प्रकार की घासें होती हैं। अधिकांश घास का उपयोग पशुओं के चारे के रूप में होता है। मूंज, रस्सियां व झाड़ू आदि इससे बनाई जाती हैं।

कत्था—कत्थे का उत्पादन उदयपुर, चित्तौड़गढ़, झालावाड़, बूंदी, भरतपुर व जयपुर जिलों में होता है। राजस्थान में कत्थे का उत्पादन प्रतिवर्ष लगभग 375 टन है। खैर के वृक्षों के तने के आन्तरिक भाग को काट कर छोटे-छोटे टुकड़े कर लिये जाते हैं, फिर उन्हें उबाल कर कत्था तैयार किया जाता है। राज्य में कत्थे को "हांडी प्रणाली" से तैयार किया जाता है। इस प्रणाली से कत्था कम प्राप्त होता है। यदि 'कारखाना प्रणाली' से कत्था तैयार किया जावे तो उत्पादन में वृद्धि हो सकती है। किन्तु कत्था उत्पादकों की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण मशीनों का प्रयोग नहीं हो पा रहा है। सरकार को इस तरफ उचित कदम उठाने चाहिये।

गोंद—गोंद अनेक प्रकार के वृक्षों जैसे खेजड़ा, बबूल, ढाक, नीम, पीपल आदि से प्राप्त होता है। इन अनेक वृक्षों में से चिपचिपा रस निकलता है जो वृक्ष के तने पर जम जाता है। सूख जाने पर ये गोंद का रूप ले लेता है। चौहटन क्षेत्र का मरुस्थलीय भू-भाग कुछ खास सूखे वृक्षों पर पैदा होने वाले गोंद के लिये प्रसिद्ध हैं।

यह गोंद चौहटन क्षेत्र के बूढ़ बावड़ी, खारीया, पराड़िया, मोजारिया, कैलनोट, देदूसर, कापराड़, नैतराड, धारासार, सरुपतला, ढोक, धोनिया, कोनटा नवालता आदि भागों में बहुतायत से मिलता है। गोंद कम्बढ़ वृक्ष से उतारा जाता है गोंद उतारने का कार्य खासकर मेघवाल, भील, जाट व मुसलमान जाति के लोग करते हैं। अधिकतर गोंद का निर्यात बम्बई को कर दिया जाता है। गोंद का उपयोग कई बीमारियों में किया जाता है। प्रसव के समय अथवा कमर, हाथ, पाँव दर्द के समय इसका उपयोग लाभकारी माना जाता है।

आवल या झाबुई—आवल की छोटी-छोटी झाड़ियां होती है। इन झाड़ियों की पत्तियों को पशु नहीं चरते। आवल की झाड़ियां जोधपुर, पाली, सिरोही, उदयपुर और बांसवाड़ा जिलों में बहुतायत से पाई जाती है। इस की छाल चमड़ा साफ करने के लिये बहुत उत्तम है। राजस्थान में चमड़ा उद्योग अविकसित होने के कारण इस छाल की अधिकांश मात्रा का उपयोग नहीं हो पाता है। अतः अधिकांश छाल को कानपुर, मद्रास, बम्बई, अहमदाबाद आदि स्थानों को भेज दिया जाता है।

तेंदू की पत्तियाँ—तेंदू की पत्तियों से बीड़ियां बनाई जाती है। तेंदू के वृक्ष मुख्यतः उदयपुर, चित्तौड़गढ़, झालावाड़, बांसवाड़ा और बारां क्षेत्र में पाये जाते हैं। पत्तियों के उत्पादन की लगभग आधी मात्रा का उपयोग राजस्थान के बीड़ी निर्माण केन्द्रों जैसे जयपुर, अजमेर, ब्यावर, कोटा, नसीराबाद, भीलवाड़ा व पाली आदि में कर लिया जाता है और शेष भाग का निर्यात समीपवर्ती राज्यों को कर दिया जाता है।

खस—खस एक प्रकार की घास है जिसकी जड़ों से समुचित तेल निकाला जाता है। यह घास भरतपुर, सवाईमाधोपुर व टोंक जिलों में उत्पन्न होती है। खस से इत्र व अन्य सुगन्धित वस्तुयें तैयार की जाती हैं। खस का उपयोग गर्मियों में कमरों को शीतल करने के लिये टाटे व परदे बनाने के लिये, हाथ के पंखे बनाने के लिये और शर्बत आदि बनाने में किया जाता है।

शहद व मोम—शहद की मक्खियां वृक्षों व झाड़ियों पर अपने छत्ते बना लेती हैं। इन छत्तों से शहद व मोम प्राप्त किया जाता है। अलवर, भरतपुर, सिरोही, जोधपुर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ और बांसवाड़ा आदि जिलों से यह विशेष रूप से प्राप्त किया जाता है।

महुआ—महुआ के वृक्ष से फल प्राप्त होते हैं जिनका उपयोग खाने, तेल बनाने व देशी शराब बनाने में किया जाता है। यह वृक्ष मुख्यत: डूंगरपुर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, झालावाड़ और सिरोही जिलों में मिलता है। आदिवासी व भील इसकी शराब घरों में बना लेते हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त लाख, बेर, सिंघाड़े व अन्य पदार्थ भी गौण उपजों के अन्तर्गत प्राप्त किये जाते हैं।

वन विकास के लिये सरकारी प्रयत्न

राजस्थान में एकीकरण से पूर्व वन विकास की समुचित व्यवस्था नहीं थी। इसके अतिरिक्त आदिवासियों ने जंगलों को काटकर वालरा कृषि कर बहुत हानि पहुंचाई है। अनियमित चराई और कटाई के कारण कई घास के मैदान साफ कर दिये गये। वन सम्पदा के लिये सुनियोजित प्रवन्ध नहीं किये गये। राजाओं, महाराजाओं ने वनों को आर्थिक साधन के रूप में न लेकर उनका उपयोग शिकार के दृष्टिकोण से किया।

राजस्थान निर्माण के पश्चात् वन के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए इनके विकास के लिए प्रयास प्रारम्भ किए गए। राजस्थान के कुल क्षेत्रफल के लगभग 3 34 प्रतिशत भाग पर सघन वन हैं जबकि आर्थिक दृष्टि से राज्य के कम से कम 33 प्रतिशत भाग में वन होने चाहिये। राजस्थान सरकार ने वन क्षेत्र को बढ़ाने के लिए वन-सीमांकन एवं बन्दोबस्त, वन अनुसंधान, वृक्षारोपण, ग्राम वनों का निर्माण, औद्योगिक एवं व्यावसायिक वृक्षारोपण, चरागाहों की स्थापना, वन सम्बन्धी शिक्षण एवं प्रशिक्षण, वन्य पशु-पक्षियों के क्रीड़ा स्थल आदि बनाने के बारे में कार्य प्रारम्भ कर रखे हैं। राजस्थान के नियोजन विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनाई गई। राजस्थान की द्वितीय पंचवर्षीय योजना में राज्य सरकार ने अपनी वन नीति घोषित की[6], जिसके अनुसार सरकार की वन नीति के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(i) वन की उपजों से स्थानीय मांग की पूर्ति करना।

(ii) वनों पर आधारित उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में कच्ची सामग्री उपलब्ध करवाना।

(iii) मिट्टी अपरदन को रोकना।

(iv) वन क्षेत्र में वृद्धि करना।

(v) वन लगाकर सीमान्त भूमियों का उपयोग करना।

(vi) चरागाह भूमि का विकास करना।

पंचवर्षीय योजनाएं एवं वन

प्रथम योजना - वन विकास की योजनाओं को 1953-54 में शुरू किया गया था। प्रथम योजना में वन विकास के लिए 28.12 लाख रुपये का प्रावधान था जिसमें से 26.37 लाख रुपये व्यय किए जा सके। मरुभूमि में वन लगाने के सम्बन्ध में अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने जोधपुर में एक अनुसन्धान केन्द्र की स्थापना की। इस योजना से राज्य में वन अनुसन्धान, वन सम्बन्धी शिक्षा, ग्राम वनों का निर्माण, वन सीमायें कायम करना, बन्दोबस्त का कार्य, चरागाहों की सीमाबन्दी, भवन निर्माण और शिकारगाह आदि के कार्यक्रम हाथ में लिए गए। वन सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए राज्य में फॉरेस्ट मॉडर्न स्कूल, उदयपुर, बांसवाड़ा व झालावाड़ में स्थापित किए गए।

इस योजना काल में 3,200 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की हदबन्दी हुई और 2,750 वर्ग किलोमीटर में वन बन्दोबस्त किया गया। पुरानी पौधशालाओं का विकास तथा 8 नई पौधशालाएं लगायी गयीं। कच्चे-पक्के रास्तों के अतिरिक्त 18 किलोमीटर लम्बी पक्की सड़कें बनाई गई। 7 बीज भण्डारों का, 8 वन पशु-पक्षी क्रीड़ा स्थलों का निर्माण किया गया। यह स्थल उदयपुर में जयसमन्द, अलवर में सरिसका, भरतपुर में घना, कोटा में दराह, धौलपुर में वन-विहार और सवाईमाधोपुर में रणथम्भोर, केशरबाग और रामसागर में हैं। प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से इन स्थानों को पर्यटकों के लिये आकर्षक बनाने के भी प्रयत्न किये गये है। वनों में घूमने वाली जातियों के स्थाई रूप से बसने के लिए प्रयत्न किए गए हैं और जयसमन्द के पास राष्ट्र वनशरण्य बनाया गया है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—इस योजना में 120 लाख रुपये वन विकास के लिए तथा 54 लाख रुपये भू-संरक्षण के लिए व्यय किए गए। भूमि संरक्षण के लिए

6. Govt. of Rajasthan, Second Five Year Plan, Jaipur P. 44.

वन रोपण कार्य अनिवार्य होता है। इस योजना में दो लक्ष्य मुख्य थे, एक तो वन साधनों के दीर्घकालीन विकास की व्यवस्था करना और दूसरा, निकट भविष्य में इमारती लकड़ी की बढ़ती मांग को पूरा करना। प्रथम योजना के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए कार्यक्रम बनाए गए। इस योजना काल में वन योजनाओं पर 129.15 लाख रुपये व्यय हुए जबकि व्यवस्था केवल 125.67 रुपयों की थी।

वनस्पति का परीक्षण कर 14 क्षेत्र चुने गये तथा बबूल के वृक्षों का रोपण किया गया। 6,500 हैक्टेयर भूमि में पौधे लगाये गये और 750 किलोमीटर लम्बे सड़क मार्ग बनाये गये। भरतपुर में 400 हैक्टेयर भूमि पर खस और हनुमानगढ़ में 1,880 हैक्टेयर भूमि में शहतूत व शीशम के वृक्ष लगाए गए। इस योजना के अन्त तक 43,250 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में वन विस्तृत थे जबकि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में केवल 4,530 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर वनों को लगाया गया। 40 पौधशालायें और स्थापित की गई।

तृतीय पंचवर्षीय योजना—इस योजना के अन्तर्गत राज्य की ईंधन, इमारती लकड़ी, कृषि संयत्र तथा औद्योगिक आवश्यकताओं में काम आने वाली लकड़ी को दृष्टिगत रखते हुए वनों के विकास के लिए 245 लाख रुपये की व्यवस्था की गयी। इसके अन्तर्गत रेल्वे लाईनों, सड़कों व नहरों के किनारे बेकार पड़ी भूमि का समुचित उपयोग करने के लिए वहाँ वृक्षारोपण किया गया। इसके अतिरिक्त वन जीव संरक्षण और अजायबघरों के सुधार के अन्तर्गत राष्ट्रीय उद्यान, अजायबघर तथा सात आखेट स्थल बनाने का कार्य था। जो जंगल घने नहीं थे, उन्हें और अधिक विकसित करने तथा जंगलों की उपज की मात्रा में वृद्धि करने का प्रयास किया गया। 17 नयी पौधशालायें स्थापित की गई, जिससे 8,000 हैक्टेयर भूमि के लिए पौध तैयार की जा सके। 17,000 हैक्टेभूमि में शीशम, सालर, बांस, शहतूत, बबूल आदि के वृक्ष लगाए जाने के लिए 43 पुरानी पौधशालाओं की पुर्नव्यवस्था की गई। योजना काल में वन विकास पर कुल 147.60 लाख रुपये व्यय हुए। इस योजना काल में आर्थिक महत्व के वृक्षों जैसे सागवान, बांस, दियासलाई की लकड़ी के वृक्ष आदि के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना—इस योजना में भी नये क्षेत्रों में वन लगाने, पुराने वनों का विकास करने, वन शिक्षा तथा पौधशालाओं की स्थापना एवं उनके विकास एवं प्रशिक्षण आदि पर अधिक महत्व दिया गया। राजस्थान सरकार का प्रथम योजना से ही राज्य में 33 प्रतिशत भूमि पर वन लगाने का उद्देश्य था, उसी को ध्यान में रखते हुए इस योजना अवधि में वन विस्तार पर कार्य किये गये।

पंचम पंचवर्षीय योजना—इस योजना के अन्तर्गत 1,470.33 लाख रुपयों की राशि का प्रावधान रखा गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय वननीति के संदर्भ में राज्य के 33 प्रतिशत क्षेत्र पर वन होने चाहिये, का जो निर्णय लिया गया था, वह कृषि तथा अन्य कार्यों के लिए भूमि की मांग के फलस्वरूप अब असम्भव सा प्रतीत होने लगा था। वर्तमान में राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र के लगभग 12.6 प्रतिशत पर वन विस्तृत हैं। इसलिए राष्ट्रीय आयोग द्वारा कृषि पर प्रस्तावित सुझावों के अन्तर्गत सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों की क्रियान्विती से समस्या का हल हो सकता है, ऐसा निर्णय लिया गया। सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के अनुरूप नहरों व सड़कों के किनारे वृक्षारोपण, अतिविकसित वनों को विकसित करना, बंजर व समुदाय भूमियों पर वृक्षारोपण, पर्यावरण व जंगली जन्तुओं के संरक्षण हेतु अभयारण्य आदि कार्यों को प्राथमिकता दी गई। अविकसित वनों को विकसित करने वाले कार्यक्रम में 22,891 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र पर यह कार्य सम्पन्न किया जा चुका है। राजस्थान नहरी योजना व चम्बल नियन्त्रित क्षेत्र के अन्तर्गत क्रमश: 19,500 हैक्टेयर व 350 हैक्टेयर में वृक्षारोपण का कार्य किया जा रहा है।

छठी पंचवर्षीय योजना—इस योजना में वन विकास के लिए 1,500 लाख रुपयों की राशि का प्रावधान रख कर वन विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया, वृक्षारोपण, फार्म, फोरेस्ट्री तथा अन्य कार्यक्रमों को गति दी गयी। चार नवीन कार्यक्रम और चलाये गये जो इस प्रकार है—

(i) प्रत्येक बच्चा एक पेड़ का लक्ष्य स्कूली कार्यक्रम के अन्तर्गत चलाया गया।

(ii) पर्यावरण विकास दल का गठन कर पहाड़ी क्षेत्रों में वृक्षारोपण करना तथा भूमि संरक्षण किया गया।

(iii) पर्यावरण विकास शिविर कार्यक्रम के अन्तर्गत विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों के छात्र वृक्षारोपण करते हैं।

(iv) वन विभाग अनुसन्धान कार्यक्रम के अन्तर्गत निरन्तर अनुसन्धान कार्य करता हैं।

राज्य में कुल पौधशालायें 600 हैं। 1983-84 तक 4 करोड़, 38 लाख पौधे लगाये गये थे।

स्पष्ट है कि सरकार राज्य में वन सम्पदा की वृद्धि हेतु निरन्तर प्रयत्नशील है। सातवीं योजना में इसे और अधिक गति मिलेगी।

वन विस्तार की आवश्यकता—राजस्थान में वन सम्पत्ति राज्य की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए निम्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वनों का विस्तार अपरिहार्य है।

(i) राजस्थान मरुभूमि के विस्तार की रोकथाम करनी है।

(ii) चम्बल, बनास आदि नदियों में बाढ़ के कारण हो रहे भूमि कटावों को रोकना है।

(iii) भूमि की उर्वरता बढ़ाने व भूमि में नमी बनाये रखने के लिए वनों की आवश्यकता है।

(iv) पशुपालन क्षेत्रों में पशुओं के लिए चारे का प्रबन्ध करना आवश्यक है।

राजस्थान की जलवायु प्राय: शुष्क है। न केवल पश्चिमी मरुभूमि के भू-भाग बल्कि अधिकांश पूर्वी भाग भी शुष्क है, जहाँ जल का अभाव तथा पशुओं के लिए चारे की समस्या जटिल है। जलवायु की विषमता को कम करने में वनों की महान् उपयोगिता है। वृक्ष भूमि से जल को ग्रहण कर पत्तियों द्वारा उड़ाकर वायु मण्डल में आर्द्रता को बढ़ाते हैं। यह आर्द्रता वनों के ऊपरी वायुमण्डल में 1,650 मीटर की ऊँचाई तक बनी रहती है। यह आर्द्र हवा उड़ते हुये बादलों को अपनी ओर आकर्षित करती है और बादलों की नमी को बढ़ाकर क्षेत्र में उन्हें वर्षा प्रदान करने के लिए प्रेरित करती है। स्थानीय वर्षा पर वनों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। पहाड़ी एवं ढालू भूमि पर वन वर्षा के वेग को रोकते हैं जिससे पानी शीघ्रता से बहकर नहीं चला जाता तथा साथ ही भूमि की शोषण शक्ति भी 40 गुना तक बढ़ जाती है।

वनों का एक महत्वपूर्ण प्रभाव है **"सालभर में वर्षा के दिनों में वृद्धि"**। वनों के विस्तार के फलस्वरूप वर्षा के दिनों में वृद्धि होती है और साथ ही वर्षा की मात्रा में भी।

राजस्थान जैसे शुष्क प्रदेश में वनों का वर्षा पर इससे अच्छा प्रभाव और क्या हो सकता है कि वर्षा के दिन बढ़ें और समय-समय पर वर्षा का जल मिल सके जो हमारी मुख्य फसल बाजरा, मक्का, चना, गेहूँ आदि के लिए लाभकारी हो। वन तापक्रम की विषमता को कम करते हैं। तापक्रम के अन्तर को हम वृक्ष एवं अन्य वनस्पति द्वारा कम कर कई प्रकार की फसलें लगा सकते हैं। खेतों में जो तीव्र ठण्डी व गर्म हवा द्वारा हानि होती है उसे हम वृक्षों की बाढ़ लगाकर कम कर सकते हैं। वृक्षों से सुरक्षित खेतों में अनाज की उपज में औसतन 25% तक वृद्धि हो जाती है।

पशुओं को तीव्रगामी हवा के स्थल में चराने से उनके दूध में 12 प्रतिशत तक कमी आ जाती है। इसलिए चरागाहों पर वृक्षों का होना आवश्यक है। राजस्थान में पहाड़ियों एवं वनों में चराई की एक जटिल समस्या है। ऊँट व बकरी की चराई भी बन्द करना मुश्किल हो रहा है। कटे हुए कूटों को भी चराई से बचाने में कठिनाई होती है। वनों की अधिकांश भूमि कृषि आदि कार्य के लिए काम में लाई जा चुकी है और वन भूमि पर निरन्तर दबाव रहता है।

धोंक व सागवान के जंगलों में गत कुछ वर्षों में किए गए पुनरोद्धार के कार्यों से यह स्पष्ट है कि ऐसी पहाड़ियाँ जहाँ कुछ वृक्ष तथा झाड़ियों का आवरण है, उनकी चराई व कटाई से सुरक्षा करने पर 8-10 वर्ष में वह क्षेत्र एक अच्छे जंगल का रूप ले लेता है।

राजस्थान के वनों में लाखों रुपये के मूल्य की भारी मात्रा में ग्रामवासियों को रिआयतें हैं। वनों से सिर बोझ लकड़ी, असीमित चराई एवं अन्य कई प्रकार की सुविधाएँ हैं। शायद यही एक राज्य है जहाँ सुरक्षित वनों में कई स्थानों पर ऊंट व बकरी की चराई की आज्ञा दी जा चुकी है। विज्ञप्तियों के द्वारा ग्रामीणों को

झोंपड़ी, कुओं हल आदि के लिए लकड़ी वनों से दी जाती है जिनकी मांग पूरी करना आज के युग में लगभग असंभव सा हो गया है।

राजस्थान में वनों का पुनरोद्धार

राजस्थान जैसे शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क प्रदेश के लिए यहाँ की जलवायु में समता लाने, वर्षा एवं जल के उचित प्रवन्ध, भू-संरक्षण, तीव्र हवा आदि से रक्षा, पशुओं के लिये चारा, जलाने के लिये लकड़ी, कोयले, हल, झोंपड़ों के लिए लकड़ी आदि अनेक प्रकार के लाभों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हैं कि वनों की रक्षा की जाए तथा वन एवं वृक्षों की मात्रा बढ़ाई जाए। इसी में राज्य का कल्याण है। इस दिशा में सबके सहयोग की आवश्यकता है।

वनों का विनाश—पिछले कुछ वर्षों के दौरान वनों की कटाई बहुत तेजी से हुई है और नतीजा यह हुआ कि उसी गति से राजस्थान अकाल के पंजे में जकड़ता गया है। झरने, नदियाँ, नाले सूख गये। तालाब पैंदे में बैठ गये। पर्वतीय जिलों के पहाड़ वनस्पति विहीन हो गए। धौलपुर, अलवर, सवाई माधोपुर, कोटा, बूंदी, अजमेर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा व सिरोही में लम्बी पहाड़ी शृंखलाएं हैं जिन पर वन सम्पदा का वास था। इन सभी में वन संहार का जो भयावह स्वरूप देखने को मिला है, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

इसका एक बड़ा कारण आदिवासी क्षेत्रों में आजीविका का मुख्य साधन वनों और वन उपजों का होना भी है। आदिवासी क्षेत्रों में जनसंख्या के बढ़ने के साथ-साथ उनकी उदरपूर्ति के कारण वनों की कटाई की गति भी बढ़ गई है। सरकार ने उनको आज भी सिर पर ढोने योग्य भार तक की सूखी लकड़ी लाकर शहरों में बेचने की छूट दे रखी है। आजीविका के साधनों के अभाव में यह छूट मानवीय आधार पर आवश्यक भी है। जलाने व इमारत में ली जाने वाली लकड़ी के उपयोग के साथ जलाने का कोयला वनों की लकड़ी से ही बनाया जाता है। यहीं नहीं खनिज का दोहन और पत्थर की खानें भी पहाड़ों के अस्तित्व को समाप्त कर रहे हैं।

वनों के विनाश को रोकने की दिशा में प्रयास—पिछले कई वर्षों से राज्य सरकार ने वनों के विनाश को रोकने की दिशा में गम्भीर कदम उठाये हैं और ऐसे अनेक उपाय किए हैं जिनसे वनों की अनियन्त्रित कटाई पर थोड़ा बहुत अंकुश लगा है। अनेक स्थानों पर उजड़े वनों को व्यापक वृक्षारोपण से पुनः हरा भरा बनाया गया है। अब ठेकेदारों को वन काटने के ठेके देना लगभग बन्द कर दिया गया है। वन विभाग ने आदिवासी क्षेत्रों में पेड़ लगाने तथा उनकी देखभाल के लिए अलग-अलग योजनायें प्रारम्भ की हैं जिनमें सामाजिक वानिकी सुरक्षा, वनों की खेती, पौध तैयार कराने आदि योजनायें प्रमुख हैं। पहाड़ियों पर ऐसे पेड़ लगाये जा रहे हैं जो स्थानीय जलवायु एवं मिट्टी के अनुकूल हों।

राज्य सरकार ने वृक्षारोपण कार्यक्रम को गति देने, पर्यावरण संतुलन बनाये रखने और वनों के समग्र विकास के लिए राजस्थान राज्य वन विकास निगम की स्थापना करने का निर्णय लिया है। पर्यावरण में उपर्युक्त संतुलन रखने तथा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कम से कम 33% भू-भाग वनों से आच्छादित होना वांछित है जबकि राज्य में केवल 12.6% भू-भाग पर ही वन हैं।

कैलीफोर्निया पायनिर फण्ड इनवरनेस के निदेशक एवं प्रोफेसर डा. ए. डी. रोजेनक्रेन्ज का मत है कि राज्य में वृक्षारोपण के क्षेत्र को बढ़ाने के प्रयास किये जाने चाहिए जिससे पर्यावरण में उत्पन्न असन्तुलन समाप्त हो सके। जल्दी बढ़ने वाले पेड़ों को लगाने से समस्या हल नहीं होगी। इससे भूमिगत जल का स्तर गिरने लगता है। लोगों को जंगल काटने के साथ-साथ वृक्ष लगाने की राय देनी होगी।

पेड़ लगाइये, पर जीवनोपयोगी—खेतों एवं गांवों के सामुदायिक क्षेत्रों में दैनिक जीवन के लिए लाभदायक पेड़ लगाने में न केवल हम पैदावार ही बढ़ा सकते हैं वरन् चारा, लकड़ी, ईंधन, छाया, जल एवं शुद्ध वायु भी प्राप्त कर पर्यावरण संतुलन बनाये रख सकते हैं। भूमिक्षरण को भी ये वृक्ष रोकने में सक्षम सिद्ध होंगे।

राजस्थान की जलवायु जामुन के पेड़ों के लिए अत्यन्त उपयुक्त हैं। खेत के चारों कोनों पर, सामुदायिक क्षेत्र पर एवं नहरों के दोनों ओर यूकिलिप्टस के स्थान पर यदि जामुन लगाए जाए तो उचित रहेगा। जामुन मधुमेह की रोकथाम में भी उपयोगी है। इसकी डालें, पत्तियाँ, फल व गुठलियाँ सभी उपयोगी हैं।

खेतों की मेड़ों पर झरबेरी लगाईयें। लिसोड़ा भी आसानी से लगाया जा सकता है। आम के वृक्ष भी लाभकारी हो सकते हैं यदि इन पर फैलती हुई मेंगो-सालफोर्मेशन रोग जिसमें फलों के स्थान पर गुच्छे वन जाते हैं, को रोका जा सके तो यह सर्वाधिक आमदनी का साधन वन जायेगा।

इमली राजस्थान की क्षारीय लवणीय भूमि पर भी अच्छी वृद्धि व उपज देती है। इसकी लकड़ी भी मजबूत होती है। आँवला भी हर क्षेत्र में लगाने के लिए उत्तम है।

कुओं वाले या नहरी क्षेत्र के खेतों के कुछ भागों में पपीता, उत्तम किस्म के अनार व अमरूद आदि भी लगाये जा सकते हैं।

अरडू की पत्तियाँ बकरी वाले घर बैठे ही खरीद कर ले जाते हैं यह एक वर्ष में 200 से 300 रुपये की आमदनी का अच्छा स्रोत है। इनसे चारे की समस्या का समाधान हो सकता है। नीम सड़क के दोनों ओर गाँवों के चौक में व गाँवों के रास्ते पर लगाया जाना चाहिए।

शीशम के लिए राजस्थान की लवणीय भूमि उपयुक्त है। इसके पेड़ों को दीमक से बचाने के लिए विशेष प्रयत्न करने चाहिए जैसे एल्ड्रिन या बी. एच. सी. का नियमित छिड़काव विशेषतः सूखे मौसम में करना चाहिए।

मारवाड़, टीक, सैमल, सिरस भी वंजर भूमि में तेजी से बढ़ता है। इनकी लकड़ी ईंधन के काम आती है। ये लवणीय व क्षारीय भूमि में भी उग सकते हैं। इन्हें सड़कों के किनारे भी उगाया जा सकता है।

ढ़ाक के पेड़ों की बेरहमी से कटाई की गई है किन्तु इसके पेड़ ठूंठ से पुनर्जीवित हो जाते हैं। वन व चरागाहों में ढ़ाक के पेड़ लगाए जायें।

राज्य वृक्ष खेजड़ी भारतीय मूल का प्राचीन वृक्ष है। भारतीय धर्म ग्रन्थों में इसे शमी वृक्ष के नाम से जाना जाता है। खेजड़ी को थार का कल्पवृक्ष कहा जाता है। स्थानीय भाषा में इसे जांटी भी कहते है। इसके पत्ते चारे के काम आते है, फली की सब्जी-सांगरी बनती है, छाल दवा के काम और टहनियां ईंधन के काम आती हैं। खेजड़ी के नीचे खेती भी अच्छी होती है तथा साथ ही यह धरती की उर्वरा शक्ति बढ़ाता है।

बंजर, क्षारीय एवं रेतीली भूमि पर उगने योग्य भी अनेक पेड़ हैं जैसे सू-बबूल, बबूल की जातियाँ, विलायती खेजड़ा, करंज सरू आदि अत्यन्त उपयुक्त हैं। यह पेड़ लकड़ी, चारा तो देते ही हैं, साथ ही भू-क्षरण को भी रोकते हैं। ये राजस्थान के किसी भी क्षेत्र में अच्छी तरह पनप सकते हैं। इनके अतिरिक्त हर गाँव में पीपल, बरगद के पेड़ भी होने चाहिए।

निष्कर्ष—यद्यपि राजस्थान के वन संसाधन राज्य की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं हैं फिर भी वे कुछ निश्चित महत्वपूर्ण उपज प्रदान कर सकते हैं, जिन पर कुछ उद्योग विकसित किये जा सकते हैं। उद्योगों जैसे बीड़ी बनाना, कत्था, लाख की चूड़ियां व सामान, आरा मशीनें, गत्ता उद्योग, चमड़ा कमाना, चमड़े को रंगना, छपाई व रंगाई की सामग्री और गोंद पर आधारित उद्योगों के विकास के लिए राज्य में अत्यधिक सम्भावनाएँ मौजूद हैं।

इसके अतिरिक्त एक अन्य ओर भी दृष्टिकोण है जिसमें वैज्ञानिकों का मत है कि वृक्षों की पत्ती, तने, फूल और फल की सतह जहरीली गैसों के अवशोषण का काम करती है और विषाक्त वातावरण को शुद्ध करने में सहायक होती है। जंगल जलेबी के पेड़ में गैसीय विषपान करने की क्षमता सबसे अधिक है। इसके बाद नीम में 0.15, सागौन में 0.12, पीपल में 0.10, आम में 0.09 प्रति ग्राम/वर्ग से. मी. पूर्ण सतह प्रति घण्टा होती है।

सदाबहार रहने वाले हरे-भरे वृक्ष ही अधिक लगाए जाने चाहिए जो ज्यादा गैसीय प्रदूषण को समाप्त करने में सहायक हों।

यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पश्चिमी शुष्क प्रदेश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था और समृद्धता अविकसित वनों को विकसित करने, मिट्टी के संरक्षण तथा वनों के उचित प्रबन्ध से जुड़ी हुई हैं जबकि दक्षिणी-पूर्वी और पूर्वी प्रदेश उपलब्ध संसाधनों के उचित उपयोग और आर्थिक दृष्टिकोण से वृक्षारोपण के साथ सम्बन्धित है।

7 सिंचाई

वर्षा के अभाव मे भूमि को कृत्रिम तरीकों से जल पिलाने की क्रिया को सिंचाई करना कहा जाता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि कार्यों में संलग्न है। अतः सिंचाई देश में कृषि के विकास के लिए अपरिहार्य है। मिट्टी में उपलब्ध आर्द्रता पर सफल कृषि निर्भर करती है जो पौधों के अंकुरित होने तथा विकसित होने में सहायक होती है। यहाँ तक कि शुष्क भूमियों को भी सुधार कर कृषि कार्यों के लिये योग्य बनाया जा सकता है बशर्ते कि उन्हें सिंचाई की पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जा सकें। सिंचाई न केवल उत्पादन में वृद्धि करती है बल्कि एक वर्ष में दो या दो से भी अधिक फसलों को प्राप्त करने में भी सहायक होती हैं। दूसरे, कृषि को स्थायित्व प्रदान करती है लेकिन जब कृषक वांछित जल के लिए अनिश्चित वर्षा पर निर्भर करता है तब कृषि मानसून पर लगाया हुआ दांव बन जाती है। अगर वर्षा समय पर नहीं होती है या कम होती है, तो फसल का उत्पादन कम हो जाता है और इस प्रकार कृषक को हानि उठानी पड़ती है। जहाँ सिंचाई के कृत्रिम तरीके उपलब्ध नहीं होते वहाँ पर कृषि सीमित तथा अनिश्चित बन जाती है। लेकिन जब जल आपूर्ति निश्चित होती है तो कृषि भूमि अर्थव्यवस्था की एक निश्चित विशेषता बन जाती है। अन्त में, विश्वसनीय सिंचाई आवृत्ति अकालों के विरुद्ध एक बीमा सिद्ध होती है।

राजस्थान एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाला राज्य है। राज्य की लगभग 70 प्रतिशत से 75 प्रतिशत जन-संख्या प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कृषि एवं पशुपालन से ही अपना जीविकोपार्जन करती है। राज्य में भूमि मानव अनुपात भी बहुत अनुकूल हैं लेकिन इसका विकास जल की अपर्याप्त उपलब्धता के कारण सीमित हैं। राज्य की प्राकृतिक दशाओं जैसे—बलुई मिट्टी, विरल वर्षा और क्षेत्र की शुष्कता के कारण सिंचाई की आवश्यकता इतनी अधिक ओर कहीं भी महसूस नहीं की जाती जितनी कि राजस्थान में। दुर्भाग्यवश राजस्थान राज्य की स्थिति अन्य राज्यों की अपेक्षा बहुत ही बदतर है। भारत में वर्षा का औसत 120 से. मी. है लेकिन दुर्भाग्यवश राज्य में वर्षा का औसत 65 से. मी. से भी कम है। राज्य के दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भागों में वर्षा का औसत लग-भग देश के औसत के बराबर है लेकिन राज्य के उत्तरी एवं पश्चिमी भागों में यह बहुत कम है जहाँ यह औसत 10 से. मी. से 50 से. मी. के बीच मिलता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि राज्य में समुचित सिंचाई की सुविधाओं के अभाव में कृषि का वांछित विकास नहीं हो सकता।

राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का दूसरा बड़ा राज्य है। इसका क्षेत्रफल 342.27 लाख हैक्टेयर है। राज्य में लगभग 285.5 लाख हैक्टेयर (1981) भूमि कृषि योग्य है। यह भारत के कुल कृषि योग्य क्षेत्र का लगभग 13.75 प्रतिशत है। राजस्थान में लगभग 173.5 लाख हैक्टेयर पर कृषि हो रही है जो राज्य के कुल कृषि योग्य क्षेत्र का लगभग 64 प्रतिशत है। राज्य के कुल कृष्य भूमि 173.5 लाख हैक्टेयर में से केवल 40 लाख हैक्टेयर से भी अधिक सिंचित क्षेत्र है। यह सिंचित क्षेत्र कुल कृष्य भूमि का केवल 23% है। जिलों में श्रीगंगानगर में सबसे अधिक क्षेत्रफल में सिंचाई हो रही है जहां कि यह क्षेत्र कृष्य भूमि का 46.66 प्रतिशत है। जैसलमेर जिले में सबसे कम सिंचित क्षेत्रफल है। शेष 36 प्रतिशत भाग में कम वर्षा होने और सिंचाई के साधनों के अभाव में कृषि नहीं हो पा रही है। इसी प्रकार राज्य का उत्तरी एवं उत्तरी-पश्चिमी भाग, जो सम्पूर्ण राज्य के क्षेत्रफल का 60 प्रतिशत है, उसमें वर्षा का औसत 10 से मी. से 40 से. मी. है। नदियाँ छोटी-छोटी हैं जो वर्ष भर नहीं बहती। कुछ वर्षा का पानी इन नदियों में आता है, वह वर्षा काल के समाप्त होते ही सूख जाता है। दूसरी तरफ, दक्षिणी-पूर्वी एवं पूर्वी भाग में, जहाँ वर्षा ठीक होती है वहाँ बाढ़ का विकराल रूप धन एवं जन की हानि करता है। इस प्रकार एक ओर पानी की कमी है तो दूसरी ओर अत्यधिक वर्षा से फसलों को नुकसान पहुँचता है। अतः यह आवश्यक है कि नदियों पर छोटे बांध, तालाब तथा कुएँ व नलकूप आदि का निर्माण कर दोनों ही स्थितियों से राजस्थान को बचाया जाये।

राजस्थान के निर्माण से पूर्व सिंचाई की सुविधाएँ पर्याप्त नहीं थीं इसलिये राजस्थान निर्माण के पश्चात् सिंचाई की इस कमी को महसूस किया गया। पंचवर्षीय

योजनाओं के अन्तर्गत सिंचाई के विकास पर कई कार्यक्रम बनाये गये। फलस्वरूप वर्तमान में, राजस्थान में लगभग 40 लाख हैक्टेयर सिंचित क्षेत्रफल है जो कुल फसल क्षेत्र का लगभग 23 प्रतिशत है। इस क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत अलवर, भरतपुर, जयपुर, सवाई-माधोपुर, अजमेर, टोंक, भीलवाड़ा, पाली, उदयपुर और चित्तौड़गढ़ जिलों में विस्तृत है। उपरोक्त सिंचित क्षेत्र अधिकांशत: अरावली श्रेणी और पूर्व में स्थित मेवाड़ मैदान में आता है। इस प्रदेश में वर्षा 40 से. मी. से 80 से. मी. के बीच होती है। परन्तु 1987-88 में कुल 46.70 लाख हैक्टेयर क्षेत्र सिंचाई के अन्तर्गत लाने हेतु 142.53 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

राजस्थान में जल संसाधन

राजस्थान एक शुष्क प्रदेश है। इसके पश्चिमी मरुस्थली भाग में वर्षा का वार्षिक औसत 10 से. मी. से 15 से. मी. जबकि मध्य राजस्थान में वर्षा का औसत 35 से. मी. से 50 से. मी. के बीच पाया जाता है। इसके साथ ही वर्षा भी अनियमित एवं अनिश्चित है। परिणामस्वरूप सूखे तथा अकाल की पुनरावृत्ति होती रहती है। जल साधनों की सीमितता के बावजूद भी नदियों के जल से आपूर्ति की जाती है। राज्य सरकार ने उपलब्ध जल-स्रोतों से सिंचाई की सम्भावनाओं पर विस्तृत जानकारी प्राप्त की तथा राज्य के जल स्रोतों को निम्न प्रकार विभाजित किया है।

1. **चम्बल घाटी**—चम्बल घाटी का आवाह क्षेत्र 22,630 वर्ग किलोमीटर है जिससे 1,530 मिलियन घन मीटर पानी प्राप्त किया जा सकता है।

2. **बनास घाटी**—बनास नदी राजस्थान की महत्वपूर्ण नदी है। वेड़च, कोठारी, खारी, ढूंढ व मोरेल इसकी प्रमुख सहायक नदियां हैं। इन नदियों का आवाह क्षेत्र 47,6‹0 वर्ग किलोमीटर है जिससे 1,280 मिलियन घन मीटर जल उपलब्ध हो सकता है।

3. **माही घाटी**—यह दक्षिण राजस्थान की एक बड़ी नदी घाटी है। इसकी सहायक नदियाँ सोम, जाखम व बनास आदि हैं। इन सबका सम्मिलित जल 1,600 मिलियन घन मीटर है। इसमें से राजस्थान की सिंचाई योजनाओं द्वारा 1,3‹0 मिलियन घन मीटर पानी का उपयोग कर लिए जाने की सम्भावना है। इसका जल-आवाह क्षेत्र 22,760 वर्ग किलोमीटर है।

4. **बाण गंगा घाटी**—इस घाटी का जल आवाह क्षेत्र 6,680 वर्ग किलोमीटर है तथा इससे 96 मिलियन घन मीटर पानी प्राप्त हो सकेगा।

5. **साबरमती घाटी**—साबरमती घाटी एक पहाड़ी क्षेत्र है जिसका प्रवाह गुजरात राज्य की तरफ है। इसका आवाह क्षेत्र 2,765 वर्ग किलोमीटर है फलस्वरूप इससे 150 मिलियन घन मीटर जल उपलब्ध हो सकता है।

6. **पश्चिमी बनास घाटी**-पश्चिमी बनास नदी से आबू शृंखला के पूर्वी भागों को जल मिलता है। इस घाटी में पश्चिमी बनास, कादम्बरी, भूला, खैर व भण्डारा परियोजनाएँ स्थित हैं जो इसके पानी का उपयोग करती हैं व करेंगी। इसका आवाह क्षेत्र 1975 वर्ग किलोमीटर है जिसके 90 मिलियन घन मीटर जल को उपयोग में लाया जा सकता है।

7. **सूकली घाटी**—सूकली घाटी में पानी आबू पर्वत की पश्चिमी घाटी एवं स्थानीय पहाड़ियों से बहकर आता है। इसका आवाह क्षेत्र 935 वर्ग किलोमीटर है। इससे 255 मिलियन घन मीटर पानी प्राप्त हो सकता है। कुल पानी की उपलब्ध मात्रा में से केवल 171 मिलियन घन मीटर पानी का उपयोग राजस्थान कर सकता है।

8. **लूनी घाटी**—लूनी नदी पश्चिमी राजस्थान की महत्वपूर्ण नदी है जिसका आवाह क्षेत्र 33,185 वर्ग किलोमीटर है। इससे 263 मिलियन घन मीटर जल प्राप्त हो सकता है। इसके लिए नकोड़ा बाँध का निर्माण प्रस्तावित है। जालोर जिले के सांचोर क्षेत्र में लूनी नदी की चौड़ाई बढ़ जाने के कारण पानी की कुछ धारायें कच्छ के रन तक पहुँच जाती है, अत: वहाँ इससे सिंचाई के लिए उन्हीं उपलब्ध जल-संग्रह क्षेत्र में बने तालाबों से पानी प्राप्त करना सम्भव है।

गम्भीरी घाटी—इसका आवाह क्षेत्र 4,865 वर्ग किलोमीटर है। जिससे 106 मिलियन घन मीटर जल प्राप्त किया जा सकता है। इस घाटी से अजान बाँध को पानी उपलब्ध कराने के लिए सेवाला से बहाव को मोड़ा गया है।

इनके अतिरिक्त कुछ कृत्रिम झीलें एवं तालाब आदि भी सिंचाई के लिए जल की आपूर्ति करते हैं। कुओं एवं नदियों से भी जल की आपूर्ति की जाती है। वर्ष 1950-51 में सिंचित क्षेत्र 10 लाख हैक्टेयर था जो 1985-86 में बढ़कर 40.8 लाख हैक्टेयर हो गया।

सिंचाई के प्रमुख साधन

वर्तमान में राजस्थान में 41,20,000 लाख घन फुट पानी सिंचाई के लिए उपलब्ध है जिसका उपयोग सिंचाई के साधनों द्वारा करना है। कृषि के राष्ट्रीयकरण कमीशन के अनुसार राजस्थान सन् 2000 तक कृषि क्षेत्र के 29% भाग पर ही सिंचाई के साधन उपलब्ध करा पायेगा और सन् 2025 तक यह प्रतिशत 31 तक बढ़ सकेगा। इस प्रदेश में कृषि क्षेत्र के अधिक से अधिक 34% भाग पर ही सिंचाई के साधन जुटा पायेंगे।

राजस्थान में सिंचाई के तीन प्रमुख साधन है—

(1) कुएं व नलकूप

(2) तालाब

(3) नहरें

सिंचाई के विभिन्न साधनों में से कुएँ व नलकूप कुल सिंचित क्षेत्र के लगभग 63 प्रतिशत क्षेत्र पर सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध करवाते हैं। तालाबों द्वारा 3.75% और नहरों द्वारा 33.25 प्रतिशत की सिंचाई की जाती है। औसतन राज्य में कपास के क्षेत्रफल का 89% भाग सिंचित है। गंगानगर जिले में कपास के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र का दो-तिहाई क्षेत्र आता है जिसका 99.95 प्रतिशत भाग सिंचित है। भीलवाड़ा, पाली, अजमेर, उदयपुर व चित्तौड़गढ़ आदि जिले कपास के क्षेत्रफल का 22.17% रखते हैं। इन जिलों में लगभग 87.35% कपास का क्षेत्र सिंचित है। पूर्वी प्रदेश में झालावाड़ जिला कपास क्षेत्र का 2.74 प्रतिशत भाग रखता है। यहाँ वर्षा का औसत 90 से. मी. है। अतः कपास की फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती।

निम्न तालिका में विभिन्न साधनों द्वारा सिंचित क्षेत्र दर्शाया गया है —

विभिन्न साधनों द्वारा सिंचित क्षेत्र (हजार हैक्टेयर में)

साधन	1951-52	1962-63	1972-73	1977-78	1980-81
नहरें	224	581	819	914	941
तालाब	82	214	105	231	112
कूएँ तथा नलकूप	684	977	1314	1550	1874
अन्य साधन	17	51	32	70	56
कुल सिंचित क्षेत्र	1007	1823	2270	2765	2983

1. कुएं व नलकूप—

राजस्थान में सिंचाई के प्रमुख साधन कुए हैं। इनके द्वारा कुल सिंचित क्षेत्र के लगभग 63 प्रतिशत भाग पर सिंचाई होती है। इनके द्वारा सिंचाई उन्हीं भागों में की जाती है जहाँ इनके निर्माण के लिए भौगोलिक दशाएँ अनुकूल होती हैं। अधिकतर कुएँ वहीं बनाये जाते हैं, जहाँ जल स्तर रेखा भूमि के निकट ही पायी जाती हो। इस दृष्टि से भरतपुर, अलवर, उदयपुर, जयपुर, अजमेर कुओं के द्वारा सिंचाई के लिए बड़े उपयुक्त हैं क्योंकि यहाँ जल स्तर रेखा 6 मीटर से 12 मीटर की गहराई पर मिलती है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य है कि जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ कुओं में जल थोड़ी ही गहराई पर मिल जाता है किन्तु जहाँ वर्षा पर्याप्त नहीं होती है वहाँ भूमिगत जल भी अधिक गहराई पर मिलता

है। यही कारण है कि राजस्थान के पूर्वी भाग की अपेक्षा बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर तथा जैसलमेर में 60 से 150 मीटर की गहराई पर जल तल मिलता है। अतः सिंचाई करने में इन स्थानों में परिश्रम और व्यय दोनों ही अधिक होते हैं। इसलिए इन स्थानों पर कुएँ केवल पीने का पानी प्राप्त करने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं।

कुएं और नलकूपों से सिंचाई करने की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण जिला जयपुर है जहाँ पर कुओं द्वारा कुल सिंचित क्षेत्र का 16.50 प्रतिशत भाग मिलता है। इसके अतिरिक्त अलवर, भरतपुर, सवाईमाधोपुर, धौलपुर, अजमेर, भीलवाड़ा आदि जिले भी कुओं द्वारा सिंचाई की दृष्टि से मुख्य हैं। इन जिलों में कुओं में जल धरातल के निकट कम गहराई पर मिल जाता है, अतः फसलों के लिए जल की उतनी ही आवश्यकता नहीं रहती जितनी पश्चिमी भाग में। वर्ष 1981 में बीकानेर जिले में कुओं द्वारा सिंचाई बिल्कुल ही नहीं की गई जबकि चूरू, गंगानगर व जैसलमेर में कुओं द्वारा सिंचित क्षेत्र कुल 1,228 हैक्टेयर ही रहा जो कि नगण्य मात्र है। राजस्थान के दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व में वर्षा का औसत अच्छा होने के कारण इस क्षेत्र में स्थित जालौर, उदयपुर, पाली तथा चित्तौड़गढ़ आदि जिलों में कुओं द्वारा

चित्र सं. 17—बादल आपको धोखा भी दे सकते हैं, खेत में कुआं हो तो निराशा से बचा जा सकता है।

सिंचित क्षेत्र काफी है जो कि राजस्थान में कुओं द्वारा कुल सिंचित क्षेत्र का लगभग 26 प्रतिशत है।

राजस्थान के पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी भागों में कुओं द्वारा अधिक सिंचाई किए जाने के कुछ अन्य कारण भी हैं:-

(i) अरावली के पूर्वी ढालों से निकलने वाली नदियों का जल धीरे-धीरे रिस कर भूमि में समा जाता है अतः जलस्तर ऊँचा रहता है और कुएँ बनाने में सुविधा रहती है।

(ii) इस क्षेत्र की मिट्टी मुलायम तथा जलोढ़ व बलुई होने से खुदाई करना सरल है।

(iii) कृषक अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से ही कुआं बना लेता है अतः अधिक व्यय नहीं होता।

नहरों के विकास के पूर्व कुओं द्वारा सिंचित क्षेत्रफल और भी अधिक था क्योंकि नहरों द्वारा सिंचाई की अपेक्षा कुओं द्वारा सिंचाई में कई लाभ होते हैं जो इस प्रकार हैं—

(i) कुओं द्वारा सिंचित क्षेत्रों में नियमित और

विश्वसनीय जल आपूर्ति के कारण फसल प्रतिरूप अच्छी तरह विकसित होता है।

(ii) प्रति हैक्टेयर औसत उपज अधिक प्राप्त होती है क्योंकि कुएँ के जल में अनेक रसायनिक तत्व जैसे नाइट्रेट, क्लोराइड, सल्फेट और सोडा आदि घुले रहते हैं जो भूमि को उपजाऊ बना कर पैदावार में वृद्धि करते हैं।

(iii) नहरी सिंचाई की तुलना में कुओं द्वारा सिंचाई सस्ती पड़ती है।

(iv) कुओं से पानी हर समय तथा निरन्तर मिल जाता है।

(v) चूंकि जल निकालने के लिए कृषक को परिश्रम करना पड़ता है अतः जल का उपयोग मितव्ययता से होता है।

ऐसा नहीं है कि कुओं से सिंचाई करने पर लाभ ही लाभ हो, कुछ इसमें दोष भी पाये जाते हैं जो निम्न है।

(i) कुओं से पानी निकालने के साधन महंगे है। साथ ही ऊर्जा की कमी सबसे महत्वपूर्ण है।

(ii) यदि लगातार अधिक समय तक कुओं से जल निकाला जाय तो ये शीघ्र सूख जाते हैं, साथ ही जिस वर्ष वर्षा कम होती है सिंचित क्षेत्र में भी कमी हो जाती है।

(iii) कुओं से केवल सीमित क्षेत्रों में ही सिंचाई हो सकती है उदाहरणार्थ कच्चे कुएं 1.5 हैक्टेयर तथा पक्के कुएँ 6.8 हैक्टेयर भूमि सींच सकते हैं।

(iv) अधिकांश कुओं का जल खारी होता है जो सिंचाई के लिए अनुपयुक्त होता है।

उपरोक्त समस्याओं के बावजूद भी भूमिगत स्रोत से सिंचाई के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध करवाया जा सकता है और जहां अन्य सिंचाई के साधन नहीं है इनका उपयोग कर कृषि सिंचित क्षेत्र में वृद्धि की जा सकती है।

नलकूप—राजस्थान के पश्चिमी भागों में प्राचीनकाल की सरस्वती और हकारा नदियों का लुप्त हुआ जल भूमि के नीचे पाये जाने का अनुमान है। लूनी नदी के बेसिन में इस प्रकार के जल स्रोत मिलते हैं। जैसलमेर से 5 किलोमीटर पश्चिम में 312 मीटर की गहराई पर खोदे गये नलकूप से प्रति घण्टा 3,18,220 लीटर और जैसलमेर के पूर्व में 48 किलोमीटर दूर चन्दन नलकूप से 287 मीटर की गहराई से प्रति घण्टा 2,27,300 लीटर जल प्राप्त हो रहा है। इसी प्रकार डावला के खोदे गए नलकूप से 1,04,558 लीटर जल प्रति घण्टा मिल रहा है। भू-गर्भ के नीचे जल के इतनी बड़ी मात्रा में मिलने से विशेषज्ञों का अनुमान है कि जैसलमेर और पोकरन नगरों के बीच 112 किलोमीटर लम्बे क्षेत्र में मीठे जल के गहरे भण्डार मौजूद हैं।

नलकूपों का निर्माण उन क्षेत्रों में सम्भव है जहां जल 15 मीटर से अधिक गहराई पर पाया जाता है। भूमि में छिद्र बना कर जल को पम्प द्वारा धरातल तक लाया जाता है। नलकूपों का प्रयोग सामान्यतः वहां किया जाता है जहां नहर का जल नहीं पहुँच पाता। नलकूपों का प्रयोग सिंचाई के अतिरिक्त अनुपजाऊ भूमि को खेती योग्य बनाने में भी किया जाता है।

साधारणतय: नलकूपों के निर्माण के लिए निम्न दशायें आवश्यक हैं—

(i) भूमि तल के नीचे जल की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिये जिससे वह धरातल की मांग को स्थायी रूप से पूरा कर सके।

(ii) जल का तल धरातल से 150 मीटर की गहराई से अधिक न हो तथा उसका तल साधारण जल तल से नीचा हो।

(iii) सिंचाई की मांग औसत रूप से एक वर्ष में 3,200 घण्टे हो।

(iv) सस्ती विद्युत शक्ति की उस क्षेत्र में सुविधा हो।

(v) मिट्टी इतनी उपजाऊ हो कि नलकूप निर्माण में किया गया खर्च उस पर अधिक उत्पादन करके प्राप्त किया जा सके।

नलकूपों से खेतों तक जल पहुंचाने के लिए कच्ची अथवा पक्की नालियां 1.6 किलोमीटर से 3.2 किलोमीटर तक बनानी पड़ती है।

ऐसे क्षेत्रों में जहां नहरें, तालाब तथा बाँधों से सिंचाई सम्भव न हो, वहां नियमित कृषि के लिए कुएं जल की पूर्ति करते हैं। बीकानेर तथा जैसलमेर जिलों में साधारण कुओं की खुदाई पर काफी व्यय होता है।

तथा साथ ही साथ कुओं की खुदाई पर समय भी काफी लगता है। इसके अतिरिक्त पानी को निकालने की समस्या भी बनी रहती है। विशेषज्ञों का यह अनुमान है कि नलकूप 120-160 हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई के लिए जल उपलब्ध करवाता है जबकि कुआं सिर्फ 6-8 हैक्टेयर को ही सिंचित कर पाता है। नलकूप का प्रयोग जहाँ जल तल 13 मीटर की गहराई से अधिक हो, वहाँ मितव्ययी सिद्ध होता है। छोटे आकार के खेतों के लिए नलकूप विशेष महत्व रखते हैं लेकिन एक कृषक के लिए नलकूप का खर्च वहन करना कठिन होता है।

राजस्थान में 137 लाख हैक्टेयर कृषि भूमि ऐसी है जिसे सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं है, साथ ही 106 लाख हैक्टेयर भूमि ऐसी है जो कृषि योग्य है, लेकिन बोयी नहीं जा रही। इस प्रकार कुल 243 हैक्टेयर भूमि ऐसी है जिसे सिंचाई की सुविधायें प्रदान की जा रही है। सिर्फ कुछ थोड़ा सा क्षेत्र ही नलकूपों द्वारा सिंचित है। अतः यह स्पष्ट है कि नलकूपों का उपयोग सिंचाई के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगा।

सन् 1949 से सन् 1956 की अवधि के दौरान केवल 12 नलकूप ही स्थापित किये गये लेकिन नलकूपों से सम्बन्धित वास्तविक कार्य सन् 1956 से प्रारम्भ हुआ जब इस मण्डल का स्थानान्तरण राजस्थान सरकार के अन्तर्गत कर दिया गया। यह अनुमान है कि प्रतिवर्ष 75 नलकूप तथा कुछ संख्या में कुओं की खुदाई का कार्य प्रतिवर्ष किया जाता है। इसी प्रकार लगभग 10,000 मौजूदा कुओं को प्रतिवर्ष गहरा किया जाता है। इससे प्रतिवर्ष लगभग 12,000 हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की संभावनायें बढ़ जाती हैं। मण्डल व्यवसायिक पैमाने पर कार्य कर रहा है और इसकी सहायता अन्वेषण नलकूप संगठन भी करता है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में नलकूपों की दशा में काफी विकास किया गया। वर्ष 1956-57 में केवल तीन नलकूप लगाए गए। इनमें से दो जयपुर में तथा एक जैसलमेर में। वर्ष 1963-64 के अन्त तक राज्य में 163 नलकूप लगाये जा चुके थे। नलकूपों की संख्या को दृष्टिगत रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नलकूपों के निर्माण के लिए सबसे अधिक अनुकूल दशायें जयपुर प्रदेश में तथा इसके बाद जैसलमेर में मिलती है।

वर्ष 1971 तक नलकूपों की संख्या 525 हो गई थी जिसमें से अधिकतर नलकूप धनी कृषकों एवं भूतपूर्व जागीरदारों के द्वारा लगवाए गए थे।

चौथी पंचवर्षीय योजना से सरकार ने कृषकों को नलकूप लगाने के लिए सरल शर्तों पर ऋण देने की व्यवस्था प्रारम्भ करवा दी जिससे नलकूपों की संख्या में बड़ी तेजी के साथ वृद्धि हो गई। योजना के अन्त तक नलकूपों की संख्या 876 हो गई थी। पांचवी पंचवर्षीय योजना में राज्य के पश्चिमी मरुभूमि में 110 नये नलकूपों की खुदाई के साथ-साथ किसानों को बिजली उपलब्ध करवाने के लिए कई विद्युत योजनायें भी लागू की गई जिससे नलकूपों का सदुपयोग हो सके।

छठी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सन् 1983 तक 81 लाख रुपयों की लागत से 52 नलकूपों की खुदाई का कार्य करवाया जा चुका हैं। मरुस्थलीय क्षेत्रों के अभावग्रस्त गांवों में पीने का पानी उपलब्ध कराने हेतु दूरस्थ ग्रामीण अंचलों में 22 नलकूपों की खुदाई कराई गई है।

नवगठित जल निगम के अनुसार राज्य के पूर्वी भाग में सीकर व झुन्झूनू जैसे मरुस्थलीय जिलों सहित जयपुर, सवाईमाधोपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर जिलों में लगभग 1,140 मिलियन घन मीटर अतिरिक्त भू-जल उपलब्ध है। अतः इन जिलों में लगभग 2,500 नलकूप सिंचाई के लिए बनाए जा सकते है। निगम ने भू-जल के सर्वेक्षण एवं कार्यक्रम लागू करने के कुछ स्थानों का चयन भी कर लिया है और सन् 1987 में 47 नलकूप तैयार करने का लक्ष्य रखा गया है।

नलकूप विकास से सम्बन्धित कठिनाईयों का निराकरण:—

(i) विभिन्न क्षेत्रों में मिट्टी एवं वर्षा में विषमता पाई जाती है इसलिए राज्य के विभिन्न भागों के लिए केवल एक ही निराकरण सम्भव नहीं हो सकता। यह सुझाव है कि एक विस्तृत सर्वेक्षण करवाया जाना चाहिए।

(ii) उदयपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़ जैसे क्षेत्र चट्टानी शैल समूह होने के कारण नलकूपों के लिए उपयुक्त नहीं हैं इसलिए विस्फोट प्रक्रिया का विकास किया

जाना चाहिए ।

(iii) देश के अन्य राज्यों की अपेक्षा राजस्थान में नलकूप लगाने पर काफी खर्च आता है । औसतन लागत लगभग 16,000/- आती है हालांकि यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर विषम होती है । जैसलमेर तथा बाड़मेर के कुछ निश्चित भागों में नलकूप गरीब कृषक की पहुंच के बाहर है । अतः इसकी सफलता केवल सहकारिता के आधार पर ही सम्भव है ।

(iv) नलकूपों की खुदाई से सम्बन्धित मशीनें तथा यन्त्रों की कमी राज्य में नलकूपों के विकास को सीमित कर देती है । इसलिए यह सुझाव है कि विदेशों से केवल आवश्यक मशीनरी का ही आयात किया जावे ।

(v) राज्य में क्षारीय मिट्टी की बड़ी विकट समस्या है जो राज्य के लगभग 4 लाख हैक्टेयर भूमि पर विस्तृत है । राजस्थान के कृषि रसायनविदों के अनुसार राजस्थान के पश्चिमी भाग के जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, जालौर, बीकानेर, चुरु, गंगानगर, नागौर, सीकर व झुन्झुनूं जिलों के भागों में 50 प्रतिशत से अधिक तथा राज्य के पूर्वी भाग के जयपुर, अजमेर, भीलवाड़ा, अलवर एवं भरतपुर के भागों में जल का कम से कम 50 प्रतिशत जल बहुत ही खारी है । खारी जल में अधिकतर सोडियम सल्फेट, सोडियम क्लोराइड और कुछ में सोडियम बाइकार्बोनेट मिलता है । अतः यह प्रस्तावित है कि जल को खनिज रहित करने वाली रसायनिक अभिक्रिया मिट्टी की तथा जल की लवणीय मात्रा को कम कर देगी ।

राज्य निरन्तर अकाल तथा सूखे से प्रभावित है इसलिए नलकूपों द्वारा जल आपूर्ति सिंचाई के लिए वरदान सिद्ध होगी । यह अनुमान है कि राज्य में नलकूप निश्चित रुप से सिंचाई का सबसे उत्तम साधन सिद्ध होगा विशेष कर जबकि जलस्तर 15 मीटर से अधिक नीचा हो । पश्चिमी राजस्थान के निवासियों के जीवन तथा अर्थव्यवस्था के लिए भूमिगत जल अपरिहार्य है । नलकूप सिंचाई का भविष्य उज्जवल है बशर्ते जो योजनाएँ बनाई व सोची जाए अगर उन्हें समय पर कुशलता से लागू कर दिया जाए ।

2. तालाब—

तालाब से सिंचाई भारत में प्राचीनकाल से होती आ रही है । वेदों में कई स्थान पर तालाबों का उल्लेख मिलता है । राजस्थान में कुछ तालाब तो बहुत ही प्राचीन है जिनका पानी नहाने तथा जानवरों के पीने के काम आता है । कुछ तालाब राजा-महाराजा व जागीरदारों तथा सेठों द्वारा अकाल के दिनों अथवा धर्मपरायणतावश बनवाये गये । आजकल सरकार तालाब बनाने के लिए प्रोत्साहन देती है तथा स्वयं भी तालाब व बांध बना कर कृषकों को अधिक अन्न उत्पादन करने के लिए प्रेरित करती है ।

भूमि का वह नीचा भाग जिसमें वर्षा का पानी आकर रुक जाता है या मानव द्वारा निर्मित वह गर्त जो पानी से भर जाता है, तालाब की संज्ञा से संबोधित किया जाता है । तालाबों का निर्माण प्रायः उन स्थानों पर किया जाता है जहां दो-तीन ओर भूमि अपने आप ऊँची होती है । केवल एक या दो ओर ही बांध बांधना पड़ता है । राजस्थान में भूमि की बनावट ही तालाब निर्माण का निर्धारण करती है । राजस्थान के दक्षिणी तथा दक्षिणी-पूर्वी भागों में ही मुख्यतः तालाब पाये जाते हैं । इसके कई कारण हैं—

(i) राजस्थान के दक्षिण-दक्षिण-पूर्व में बहने वाली नदियाँ वर्षा के जल पर निर्भर करती हैं । नदियों की अस्थायी प्रकृति तथा दशा एवं पठारी व पथरीली भूमि होने से नहरों के निर्माण में बाधा पड़ती है ।

(ii) पठार की कठोर चट्टानें तथा पहाड़ी धरातल जल को सोख नहीं सकते इसलिए कुंओं का निर्माण करना सरल नहीं है किन्तु वर्षा के जल को तालाबों में रोककर नालियों द्वारा अथवा उलीचने द्वारा खेतों तक पहुंचाया जा सकता है ।

(iii) इस क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या बिखरी हुई हैं । इससे तालाबों का बनाना ही उचित होता है ।

तालाबों द्वारा सिंचित क्षेत्र—राजस्थान में तालाबों द्वारा सींचा जाने वाला क्षेत्र वर्षा की मात्रा के अनुसार घटता बढ़ता रहता है । वर्ष 1964 में तालाबों द्वारा सिंचित क्षेत्र 14 प्रतिशत था जबकि वर्ष 1977 में यह घटकर 8.4 प्रतिशत ही रह गया तथा वर्ष 1981 में यह और भी घटकर केवल 3.75 प्रतिशत हो गया । वर्ष 1988-89 में वर्षा की मात्रा अच्छी होने से तालाबों में पानी की मात्रा अधिक होने के कारण इस वर्ष तालाबों

द्वारा सिंचित क्षेत्र लगभग 8 प्रतिशत होने की सम्भावना है। अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि तालाबों में जल की मात्रा पर वर्षा की मात्रा का सीधा प्रभाव पड़ता है।

राजस्थान में लगभग 450 जलाशय है जो अधिकतर दक्षिणी व पूर्वी भाग में पाये जाते है। तालाबों द्वारा सींचा जाने वाला सबसे अधिक क्षेत्र भीलवाड़ा जिले में पाया जाता हैं। इस जिले की 24.4 हजार हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई तालाबों से होती है जो तालाबों से कुल सिंचित भूमि का लगभग 22 प्रतिशत है। इसके पश्चात् उदयपुर, पाली, चित्तौड़गढ़ तक बूंदी जिले हैं जहाँ 11,000 हैक्टेयर से 18,000 हैक्टेयर भूमि पर तालाबों से सिंचाई होती है जो तालाबों द्वारा कुल सिंचित भूमि का लगभग 46 प्रतिशत है। राजस्थान के दक्षिणी, दक्षिणी-पूर्वी भाग में तालाबों द्वारा सिंचित क्षेत्र का लगभग 98 प्रतिशत है। जोधपुर, सीकर, नागौर तथा झुन्झुनू जिले ऐसे हैं जहाँ तालाबों द्वारा सिंचाई नाम मात्र की होती है। बाड़मेर, बीकानेर, चूरू, गंगानगर, जैसलमेर तथा जालौर आदि मरुस्थलीय भागों में तालाबों का अभाव है। इसलिए इनसे सिंचित क्षेत्र भी बिल्कुल नहीं है। बांसवाड़ा, अजमेर, टौंक, जयपुर, डूंगरपुर, कोटा तथा सवाईमाधोपुर में भी तालाबों से कुछ सिंचाई की जाती है।

जैसलमेर में तालाबों का सर्वथा अभाव है लेकिन यहाँ सिंचाई के साधन के रूप में खड़ीन पाये जाते हैं। खड़ीन का मतलब खड़ने योग्य भूमि से है और खड़ने का तात्पर्य हल चलाने से है। जैसलमेर में छोटे-छोटे खेतों में पाल बांधकर वर्षा का पानी एकत्रित किया जाता हैं और जब यह पानी सूख जाता है तो उनमें हल चला कर खेती की जाती है। यदि दो या तीन सेन्टीमीटर भी वर्षा हो जाती है तो इन खड़ीनों में पानी आ जाता है। इस प्रकार जैसलमेर में खड़ीनें बहुत लोकप्रिय है।

राजस्थान में सिंचाई की दृष्टि से तालाबों का कोई विशेष महत्व नही है जैसे-जैसे सिंचाई के अन्य साधनों का उपयोग बढ़ता जा रहा है तालाबों द्वारा सिंचित क्षेत्र में [illegible] रही है। राजस्थान के मुख्य तालाब निम्न है जो सिंचाई के लिये उपयोगी हैं [illegible]

जयसमन्द - यह उदयपुर शहर से 51 किलोमीटर दूर है। इससे कई नहरें निकाल कर सिंचाई की जाती है।

राजसमन्द—राजनगर के समीप गोमती नदी को बांधकर इस तालाब को बनवाया गया है। इससे नहरें निकाल कर कांकरोली, राजनगर व अन्य क्षेत्रों में सिंचाई की जाती है।

अन्य प्रमुख तालाबों में पिछोला, फतेहसागर, वल्लभनगर, उदयसागर, बागोलिया (उदयपुर जिला), बरड़ा, हिन्डोली, कोतिमोरी, स्वरूपसागर (बूंदी जिला), सरदारसमन्द, हेमावास, खरड़ा, दांतीवाड़ा खिवन्डी, मुथाना (पाली जिला), पार्वती, बारेठा, सीकरी (भरतपुर), एडवर्डसागर, बिल्यान (डूंगरपुर), नाहरसागर, उम्मेदसागर, खारी, मेजा, सरेरी, अरवार, (भीलवाड़ा जिला), भोपाल सागर, कपासन, डिन्डोली, गाड़ोला, मुरलिया, बोर्डा, सोनीयानी तथा बानाकिया (चित्तौड़गढ़) में तथा कुछ अन्य तालाब अन्य जिलों के भी सिंचाई के लिये उपयोगी है।

तालाबों का छिछला हो जाना, जल की मात्रा वर्षा के ऊपर निर्भर करना तथा तालाबों से खेतों तक पानी पहुँचाने में काफी श्रम, समय व खर्च आदि का होना, आदि दोषोंके बावजूद तालाब राजस्थान के दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भागों में सिंचाई के उत्तम साधन हैं क्योंकि वर्षा जल का उपयोग इनके द्वारा ही सम्भव है।

नहरें

राजस्थान शुष्क प्रदेश रहा है फलस्वरूप सिंचाई के उद्देश्य से कुछ नहरें भी बनाई गई थी। राज्य में भरतपुर, कोटा, बून्दी, गंगानगर, बीकानेर, पाली, सिरोही, बांसवाड़ा, भीलवाड़ा जिलों में नहरों से सिंचाई होती है। गंगनहर, भरतपुर नहर, गुड़गांव नहर आदि से बहुत पहले से ही सिंचाई की जाती रही है। नहरों से सिंचित क्षेत्र के लगभग 33.75 प्रतिशत भाग पर सिंचाई की जाती है। मार्च 1983 से नहरों द्वारा 19.22 लाख हैक्टेयर भूमि सींची जाने लगी है और इसे निरन्तर बढ़ाने के प्रयास जारी है।

गंगानगर जिले में अधिकतर सिंचाई नहरों के द्वारा होती है। अरावली और मेवाड़ मैदानी क्षेत्रों में वर्षा

की प्रकृति और प्राकृतिक दशायें इस प्रकार की है कि वहाँ नहरों का निर्माण बड़े पैमाने पर नहीं हो सकता। यहाँ निम्न विशेषताएं पाई जाती हैं—

(i) अरावली प्रदेश में वर्षा की मात्रा का औसत 50 सें. मी. से 90 सें. मी. है। इसकी 90 प्रतिशत मात्रा वर्षा ऋतु के महीनों तक ही सीमित है।

(ii) इस क्षेत्र की मिट्टी हल्की रन्ध्रयुक्त और रेतीली है जिससे जल का अधिकांश भाग बहते समय मिट्टी में रिस जाता है।

(iii) मेवाड़ के मैदानी भागों में तापक्रम साधारणतया ऊँचे पाये जाते हैं जिससे जल का वाष्पीकरण अधिक मात्रा में होता है।

(iv) इस क्षेत्र का चट्टानी ढाँचा इस प्रकार का है जो पानी संग्रह के लिए प्राकृतिक भण्डारों की सुविधा प्रदान नहीं करता।

अतः यह सभी उपरोक्त तथ्य इस प्रदेश में नहरों के शीघ्र विकास न होने के लिये उत्तरदायी हैं! हालांकि सिंचाई के लिए उपलब्ध वर्षा के जल का उपयोग करने के यथासम्भव प्रयास किए गये हैं। यहाँ तक कि ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ नहरों का निर्माण किया गया है, पानी की प्रायः कमी रहती है। पानी की कमी के मुख्य कारण जैसे अनियमित वर्षा, परिवहन में जल की क्षति, उच्च निस्पंदता, ऊँचे तापक्रम के कारण अधिक वाष्पीकरण, नहरों से पानी पहुँचाने के लिए नालियों की कमी, किसानों के बीच जल वितरण का दोष पूर्ण तरीका आदि है। नहरों से जल प्राप्ति की अविश्वसनीयता के कारण किसानों के लिए फसलों का बदलना अथवा गहन कृषि प्रकारों को अपनाना मुश्किल हो जाता है। इस पर भी नहरों से सिंचाई अधिक खर्चीली है जो इसके विकास के रास्ते में अवरोधी सिद्ध होती है।

इस प्रकार सिंचाई के द्वारा कृषि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उपयुक्त एवं सही तरीके अपनाने की आवश्यकता है। निम्न तरीके उत्तम वितरण एवं कृषि उत्पादन को बढ़ाने में निश्चित ही सहायता करेंगे।

1. सिंचाई के लिए नियमित तथा अधिक जल पूर्ति उन क्षेत्रों को प्रदान की जाये जहाँ सिंचाई की आवश्यकता है।

2. नहरों को एक सीध में करते हुये निस्पंदता को घटाना चाहिये।

3. नहरों का निर्माण सही ढ़ाल में करना चाहिये।

4. नहरों से मिले पानी की प्रवाह प्रणाली में सुधार करना चाहिये।

5. नियंत्रण क्षेत्र को सघन बनाने के लिए जल का उपयोग करना चाहिये।

राजस्थान में अधिकतर नदियाँ बरसाती हैं। अतः इन नदियों के पानी को बाँधों द्वारा रोक कर वर्ष पर्यन्त नहरों की सहायता से सिंचाई हो सकती है परन्तु राजस्थान राज्य के निर्माण के पूर्व इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था क्योंकि इसमें एक तो राजनैतिक कठिनाईयाँ थीं एवं दूसरे, छोटी-छोटी रियासतों के पास इतने साधन नहीं थे कि बड़ी-बड़ी नदियों पर बांध बना सकते। धरातल के ऊबड़-खाबड़ होने से भी नहरों के बनाने में कठिनाईयाँ होती थी परन्तु राजस्थान के पुनंगठन के पश्चात् सिंचाई के साधनों में नहरों के विकास पर अत्यधिक महत्व दिया गया जिसके परिणामस्वरूप सिंचाई की कई योजनाओं को क्रियान्वित किया गया।

राजस्थान की प्रमुख नहरों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

गंगनहर—राजस्थान के पश्चिमी भागों में वर्षा बहुत ही कम होती है। इस अभाव को दूर करने के लिए तत्कालीन बीकानेर महाराजा श्री गंगासिंह ने गंगनहर का निर्माण करवाया था।

यह नहर सन् 1927 में सतलज नदी से फिरोजपुर के निकट हुसैनीवाला से निकाली गई। इस नहर का पेटा सीमेन्ट से बना हुआ है जिससे जल नीचे की ओर भूमि में नहीं रिस पाता। यह नहर पंजाब राज्य में बहती हुई खक्खां के पास बीकानेर डिवीजन में प्रवेश करती है। फिर यह नहर शिवपुर, गंगानगर, जोरावरपुर पदमपुर, रायसिंह नगर और सरूपसर के पास होती हुई अनूपगढ़ तक आई है। इसकी शाखायें तथा उपशाखायें दूर-दूर तक फैली है। इसकी मुख्य शाखायें लक्ष्मीनारायण जी, लालगढ़, करणजी और समिजा है। मुख्य नहर की लम्बाई फिरोजपुर से शिवपुर तक लगभग 137 किलोमीटर है और राज्य के अन्तर्गत प्रमुख नहर

तथा उपशाखाओं की लम्बाई लगभग 1,280 किलोमीटर है। इस नहर के बनने से पूर्व बीकानेर प्रदेश शुष्क था। चारों ओर रेत के टीले विस्तृत थे लेकिन अब शुष्क भूमि का रूप परिवर्तित हो गया है। इससे अब लगभग 1.5 लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई होती है। वर्ष भर की सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने के कारण इसके सहारे गन्ना, कपास, गेहूँ, मॉलटा, चेरी आदि पैदा किये जाते हैं।

उल्लेखनीय है कि गंगनहर, जिसे बने 57 वर्ष से ज्यादा हो चुके हैं, अब एकदम जर्जर हो चुकी है। अतः अपनी क्षमता (2270 क्यूसेक्स) का तीन चौथाई जल ही ग्रहण कर पाती है। इस कारण 137 किलोमीटर लम्बी नहर का पुनर्निर्माण जरूरी हो गया है। पुनर्निर्माण की लगभग एक अरब रुपये की योजना तैयार है। जब भी इस योजना पर कार्य शुरु किया गया तो मुख्य गंगनहर को चार पाँच वर्ष तक लगातार बन्द रखनी पड़ेगी। ऐसी हालत में गंगनहर लिंक चैनल वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में काम आएगी।

गंगनहर लिंक चैनल—इस लिंक योजना के कार्य को फरवरी, 1984 से पूरे वेग से शुरु किया गया। गंगनहर लिंक चैनल जो लगभग 80 किलोमीटर लम्बी है, के निर्माण पर लगभग 16 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है।

गंगनहर लिंक चैनल का उद्गम स्थल हरियाणा में लोहगढ़ नामक स्थान पर है। यह चैनल इन्दिरा गांधी मुख्य नहर से जोड़ी जायेगी। चैनल का प्रारम्भिक 7 किलोमीटर हिस्सा हरियाणा राज्य में पड़ता है। लिंक चैनल की क्षमता 3200 क्यूसेक्स पानी की होगी। इसे निकटवर्ती ग्राम साधुवाली के निकट गंगनहर में जोड़ा जायेगा।

लिंक चैनल के निर्माण का उद्देश्य जर्जर हालत गंगनहर के पुनर्निर्माण के दौरान गंगानगर जिले में सिंचाई एवं पीने के लिए पानी आवश्यकता को पूरा करना है किन्तु लिंक चैनल इसके बाद भी एक स्थायी महत्व की वस्तु के रूप में वर्षों काम देती रहेगी। जब कभी सफाई या रख रखाव के लिये मुख्य नहर बन्द करनी पड़ेगी तब यह लिंक नहर पानी पहुंचाती रहेगी।

भरतपुर नहर—इस नहर के निर्माण की दिशा में सन 1906 में तत्कालीन भरतपुर नरेश ने प्रयास किया था। लेकिन इस नहर का उद्घाटन सन 1960 में तथा पूर्ण कार्य 1963-64 में हुआ।

यह नहर पश्चिम यमुना से निकलने वाली आगरा नहर के सहारे 111 किलोमीटर के पत्थर से निकाली गई है। यह कुल 28 किलोमीटर लम्बी है। जिस में से 16 किलोमीटर की लम्बाई उत्तर-प्रदेश में है। मुख्य नहर तथा इसकी उप-शाखाओं की कुल मिलाकर 64 किलोमीटर है। यह नहर राजस्थान के पूर्वी क्षेत्र को सींचती है। इस नहर से लगभग 11 हजार हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई हो सकती है। वर्ष 1960 में इससे 793 हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई की गई लेकिन अब यह सुविधा 8500 हैक्टेयर भूमि पर उपलब्ध है। इसके द्वारा सिंचित क्षेत्र में खाद्यान्न उत्पादन में 1.10 लाख टन की वृद्धि हुई है। सन् 1967 एव 1972 में इस नहर में इस नहर में बाढ़ आ जाने से भरतपुर जिले को काफी हानि उठानी पड़ी।

गुड़गाँवा नहर—यह नहर हरियाणा व राजस्थान की सरकारों के प्रयत्नों से बनाई जा रही है। इस नहर के निर्माण का लक्ष्य यमुना नदी के पानी का मानसून काल में उपयोग करना है। इस नहर की क्षमता 2100 क्यूसेक होगी जिसमें से राजस्थान को 500 क्यूसेक पानी उपलब्ध हो सकेगा।

यह नहर यमुना नदी से ओखला के निकट से निकाली जा रही है तथा राजस्थान में भरतपुर जिले की कामा तहसील में जुरेरा गाँव के पास यह नहर राज्य में प्रवेश करती है। इस नहर का निर्माण कार्य सन् 1967 में आरम्भ किया गया था तथा इसे सन् 1973 में पूरा करना था लेकिन इसका निर्माण कार्य सन् 1985 तक पूर्ण हो सका है। इस नहर की लम्बाई राजस्थान राज्य में कुल 58 कि.मी. है। इस नहर के निर्माण पर 948 लाख रु. व्यय हुए है। इस पर आने वाली लागत को राजस्थान व हरियाणा सरकारों ने क्यूसेक किलोमीटर के आधार पर वहन किया है। इस नहर के बन जाने से राजस्थान के लगभग 28.20 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई सम्भव हो सकी है।

इन्दिरा गांधी नहर परियोजना

विकासकालीन भारत के सामने खाद्यान्न की समस्या जो हमेशा बनी रहती है इसका निराकरण हो सकता है, यदि भारत में उपलब्ध जल व भूमि का उपयोग पूर्णरूपेण किया जाये। उत्तरी-पूर्वी भारत की नदियों का जल हमेशा देश में बाढ़ की स्थिति को उत्पन्न कर देता है जबकि पश्चिम की प्यासी मरुभूमि में पानी का अभाव बना रहता है। अतः इस पानी को मरुभूमि में उपलब्ध कराया जाये तो यहां का भू-दृश्य बदला सकता है। अब पंजाब व हिमाचल प्रदेश की नदियों का जल राजस्थान में लाकर यहां के विस्तृत मरुस्थल को हरा भरा करने का भागीरथी प्रयास किया जा रहा है और इस प्रयास का ही नाम है—राजस्थान नहर परियोजना। श्रीमति इन्दिरा गांधी की मृत्यु के पश्चात् उनकी याद में राज्य सरकार ने 2-11-84 को एक अधिसूचना जारी कर राजस्थान नहर परियोजना का नाम इन्दिरा गांधी नहर परियोजना रक्खा है।

इन्दिरा गांधी नहर एक सामान्य सिंचाई परियोजना नहीं है। यह नहर जहां आकार, लम्बाई, क्षमता, सिंचित क्षेत्र, निर्माण सामग्री की मांग और जलशक्ति की दृष्टि से विश्व की वृहद परियोजनाओं की श्रेणी में आती है वही वह कई तथ्यों में अनन्य एवं अतुलनीय है जैसे किसी भी सिंचाई परियोजना में विषम मरुस्थल क्षेत्र को कृषि प्रधान बनाने का कार्य इस स्तर पर इससे पूर्व कभी नहीं किया गया।

इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति—

इन्दिरा गांधी नहर के क्षेत्र में गंगानगर, बीकानेर, जैसलमेर तथा बाड़मेर जिले सम्मिलित हैं जो भारतीय थार मरुस्थल के पश्चिम में स्थित है।

इस रेगीस्तानी क्षेत्र को युगों-युगों से कच्छ की खाड़ी से चलने वाली दक्षिणी-पश्चिमी हवाओं ने रेत के कणों से ढक दिया है। यहां पीली सी बालू एक शान्त लहलहाता सागर का दृश्य प्रस्तुत करती है। मीलों दूर क्षितिज तक फैले हुए बालू के टीले दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं ये टीले 60 मीटर की ऊंचाई तक पहुंच जाते हैं। ये टीले स्थानान्तरित होते रहते हैं।

इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र की भू-आकृति बड़ी विलक्षण है। इन्दिरा गांधी नहर राज्य में जहां प्रवेश करती है वहां से लगभग 65 किलोमीटर की दूरी तक का क्षेत्रफल समतल होने के साथ-साथ यत्र-तत्र बालुकास्तूपों से निर्मित है। इससे दक्षिण की तरफ लगभग 115 किलोमीटर सूरतगढ़ तक जाने पर भूमि समतल लेकिन स्तूप बड़े आकार के दृष्टिगोचर होने लगते हैं। सूरतगढ़ से लगभग 355 किलोमीटर दक्षिण के बीच के क्षेत्र में धरातल बड़ा ही उबड़ खाबड़ है। तत्पश्चात् फिर धरातल समतल है लेकिन जैसलमेर क्षेत्र में निम्न चट्टानी कटकों के रूप में धरातलीय विषमताएं पाई जाती हैं। यहां से बाड़मेर तक बालू के टीले तथा उबड़ खाबड़ धरातल पाया जाता है। इस क्षेत्र में नदी प्रवाह का अभाव है। घग्घर नदी उत्तर-पूर्व से बीकानेर में प्रवेश करती है और हनुमानगढ़ से कुछ ही किलोमीटर नीचे यह बालू में लुप्त हो जाती है।

इस क्षेत्र में जहां-जहां गांव हैं, गर्मियों के लिए वर्षा की एक-एक बूंद को कुण्ड (टांका) में एकत्रित कर लिया जाता है। तब तक गांव वाले कई किलोमीटर दूर तालाबों से पानी लाते रहते हैं जब तक कि वे सूख नहीं जाते। कुण्ड या टांकी का पानी बड़ी होशियारी से केवल पीने के ही काम में लाया जाता है। इस क्षेत्र में भूमिगत जल का तल बहुत नीचा है अतः कुएं बहुत गहरे हैं। अनेक भागों में कुछ कुएं 75 मीटर से 120 मीटर गहरे हैं। अतः पानी प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

इस प्रदेश की जलवायु अपनी प्रबलता के कारण विलक्षण है। ग्रीष्म ऋतु में तापक्रम 49° सेल्सियस तक पहुंच जाता है और शीत ऋतु में कभी-कभी पाला भी पड़ता है। ग्रीष्म ऋतु में तेज लू और हवा चलती है। यह कहा जाता है कि युगों-युगों से चले आ रहे इस प्रचण्ड ताप, ठण्ड और शुष्क हवाओं के प्रभाव से ही यह रेगिस्तान चट्टानों के टूट-टूट कर मिट्टी बन जाने से बना है। इस क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा 10 सें. मी. से 25 सें. मी. के बीच है। वर्षा की मात्रा में कमी के कारण प्रायः अकाल पड़ा करते हैं। वर्षा की मात्रा में कमी के साथ-साथ यह ग्रीष्म ऋतु के दो तीन महीनों की अवधि तक ही केन्द्रित है। इस प्रकार जलवायु ने इस क्षेत्र को बहुत ही ऊसर बना दिया है। प्रचण्ड सूर्य के ताप को सहकर जीने वाली यहां कटीली झाड़ियां

हैं। लू और आंधियों के थपेड़ों से कटाव होते-होते भूमि निर्जन व बेकार हो गई है। पानी के अभाव में यहाँ की उपजाऊ भूमि बेकार पड़ी है।

इस क्षेत्र में कुल भू-भाग के 20 प्रतिशत से भी कम भू-भाग पर मुख्यत: खरीफ की कृषि होती है। वर्षा के अभाव में लगातार कई वर्षों तक खेत बिना कृषि के ही खाली पड़े रहते हैं। जनसंख्या का बसाव बहुत कम है। गंगानगर में 98 और बीकानेर में 32 व्यक्ति ही प्रति वर्ग किलोमीटर में रहते हैं। जैसलमेर में राज्य का न्यूनतम घनत्व 6 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। अत: स्पष्ट है कि यह क्षेत्र भौगोलिक अतिशयता का विस्तृत क्षेत्र है।

बीकानेर में गंगनहर ने यह सिद्ध कर दिया है कि राजस्थान का रेगिस्तान पानी मिलने पर वास्तव में बंजर और अनुपजाऊ क्षेत्र नहीं है। इस क्षेत्र की उर्वरता शिथिल होकर छुपी है। गंगनहर ने एक शुष्क भाग को फलों वाले उद्यान तथा खाद्यान भण्डार में बदल दिया है। अत: इस रेतीले क्षेत्र से जीवन को लहलहाते देखने में आवश्यकता है तो केवल पानी की।

योजना का सूत्रपात—इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के आधुनिक आयोजकों को, जो इस रेगिस्तान में पानी लाने के उपायों एवं पानी के स्रोतों की खोज में थे, 1927 में गंगनहर के निर्माण से प्रेरणा मिली।

इन्दिरा गांधी नहर के निर्माण का सुझाव तत्कालीन बीकानेर राज्य के सिचाई इन्जीनियर श्री कंवरसेन ने सन् 1948 में अपने प्रारम्भिक अध्ययन "बीकानेर राज्य में पानी की आवश्यकतायें" के बाद भारत सरकार के समक्ष एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। जिसमें सुझाव दिया गया कि राजस्थान के विकास के लिये सतलज नदी पर स्थित 'हरीके बांध' से नहरें निकालने के और इन्दिरा गांधी नहर बनाने का काम नांगल योजना के साथ ही आरम्भ हो। अत: इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के निर्माण की परिकल्पना 1948 में ही हो गई थी।

भारत पाक विभाजन के पश्चात् पंजाब राज्य की पांच नदियों में सिन्धु और चिनाव का पानी पाकिस्तान के हिस्से में एवं रावी, व्यास तथा सतलज का पानी भारत के हिस्से में आया। रावी, व्यास तथा सतलज के पानी के समुचित उपयोग के लिए भाखड़ा नांगल परियोजना व व्यास परियोजना जैसी बहुउद्देशीय परियोजनाएं बनाई गई।

भारत सरकार ने आवश्यक जांच कर इन्दिरा गांधी नहर के निर्माण का निर्णय लिया। इस दिशा में प्रथम कदम के रूप में सतलज, व्यास नदियों के संगम पर पंजाब में फिरोजपुर के निकट 'हरीके बैराज' का निर्माण सन् 1952 में कराया गया, जिससे इन्दिरा नहर के उद्गम की व्यवस्था की गई। केन्द्रीय जल व शक्ति आयोग द्वारा किये गये निरीक्षण तथा एकत्रित विवरण के आधार पर हरीके बांध से जैसलमेर तक इस नहर की रूपरेखा बना ली गयी। राजस्थान सरकार ने भी एक बार पुनः 1954-55 में सर्वेक्षण कराया और 20 लाख हैक्टेयर भूमि में सिंचाई करने वाली 66 करोड़ रुपये की योजना प्रस्तुत की। इस योजना को केन्द्रीय योजना आयोग ने 1957 में स्वीकार कर लिया।

1955 के अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार रावी, सतलज व व्यास नदियों से उपलब्ध 23 लाख हैक्टेयर मीटर पानी राजस्थान को आवंटित किया गया। राजस्थान के हिस्से का यह पानी पंजाब के हरिके बैराज से बाड़मेर जिले में गदरारोड तक जाने वाली 9,425 किलोमीटर लम्बी इस नहर परियोजना द्वारा राजस्थान को आवंटित पानी में 1.25 लाख हैक्टेयर मीटर पानी का उपयोग गंगनहर, भाखड़ानहर व सिद्धमुख फीडर में किया जाना है। इन्दिरा गांधी नहर परियोजना का निर्माण कार्य का श्री गणेश तत्कालीन केन्द्रीय गृहमन्त्री स्व. गोविन्द वल्लभ पंत ने 31 मार्च 1958 को किया।

इन्दिरा गांधी नहर परियोजना एवं क्रियान्विती—इन्दिरा गांधी नहर सतलज व व्यास नदी के संगम पर निर्मित हरिके बैराज से निकाली गई है। इस नहर के मुख्य दो भाग हैं—पहला राजस्थान फीडर तथा दूसरा मुख्य नहर। राजस्थान फीडर की लम्बाई 204 किलोमीटर है। यह 169 किलोमीटर पंजाब तथा हरियाणा राज्यों में बहने के पश्चात् 35 किलोमीटर राजस्थान में गंगानगर जिले के मसीतावली हैड (अगले छोर) तक जाती है। यह जल आपूर्ति का कार्य करती है और इसके पानी का उपयोग कहीं भी नहीं किया जाता है। 204

किलोमीटर लम्बी राजस्थान फीडर के कार्य को शीघ्र पूरा कर 6-9-1961 को इसमें जल प्रवाहित किया गया।

दूसरा, इन्दिरा मुख्य नहर जो फीडर के अन्तिम सिरे से प्रारम्भ होती है। इसकी पहिले लम्बाई 445 किलोमीटर जैसलमेर के रामगढ़ गांव तक प्रस्तावित थी लेकिन अब इसकी लम्बाई (649 कि. मी.) गडरा-रोड, वाड़मेर तक वढ़ा दी गई है।

प्रशासनिक सुविधा हेतु इन्दिरा नहर परियोजना के निर्माण कार्य को दो चरणों में विभक्त किया गया है—

प्रथम चरण

प्रथम चरण में 204 किलोमीटर लम्बी राजस्थान फीडर नहर जो गंगानगर जिले के मसीतावाली अगले छोर तक जाती है, का निर्माण कार्य शामिल है। फीडर के अन्तिम छोर से 'इन्दिरा नहर' मुख्य नहर निकलती है, जो बीकानेर जिले के ऐतिहासिक कस्वे पूंगल से 20 किलोमीटर दूर सत्तासर ग्राम के पास 189 किलोमीटर लम्बाई में है तथा 2950 किलोमीटर लम्बी वितरण प्रणाली का निर्माण कार्य भी इसमें शामिल हैं। ये सभी कार्य लगभग पूर्ण हो चुके हैं। इनसे 5.36 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में 110 प्रतिशत की सघनता के साथ सिंचाई की जायेगी।

सूरतगढ़ शाखा, अनूपगढ़ शाखा व पूंगल शाखा इन्दिरा नहर के प्रथम चरण में से निकलने वाली प्रमुख शाखा हैं। प्रथम चरण का विशेष भाग लूनकरण बीकानेर जलोत्थान नहर है जिससे 51 हजार हैक्टेयर भूमि सींची जा सकती है तथा बीकानेर व उसके आस-पास के क्षेत्रों में पीने तथा उद्योगों के लिये पानी उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके लिए चार पंपिंग स्टेशनों के माध्यम से कुल 60 मीटर की ऊँचाई तक जलोत्थान किया गया है। नोरंगदेसर, रावतसर, खेतावाली, जाखपुरा वितरक नहरों का निर्माण कार्य भी पूरा हो चुका है। प्रथम चरण पर मई, 1987 तक 241.88 करोड़ रुपये खर्च हो चुके हैं। नवीनतम अनुमानों के अनुसार इसकी संशोधित लागत 246 करोड़ रुपये है।

द्वितीय चरण

इन्दिरा नहर परियोजना के द्वितीय चरण में 256 किलोमीटर लम्बी मुख्य नहर तथा 5830 किलोमीटर लम्बी वितरण प्रणाली का निर्माण कर 10.12 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में 80 प्रतिशत सिंचाई सघनता से सिंचाई करना प्रस्तावित है। नहर का दूसरा चरण राजस्थान के ऐतिहासिक कस्बे पूगल से 20 किलोमीटर पूर्व में सत्तासर ग्राम के पास 189 किलोमीटर से आरम्भ होता है। यह भाग 189 किलोमीटर से 255 किलोमीटर चल कर 445 किलोमीटर पर जैसलमेर जिले के मोहनगढ़ कस्बे के पास समाप्त होता है। यहाँ इसके एक सिरे से लीलवा व डीगा नामक दो शाखायें निकलती हैं, जिनका सिंचाई योग्य क्षेत्र भाखड़ा एवं गंगनहर के सिंचाई योग्य क्षेत्र के बराबर है।

इस नहर परियोजना के द्वितीय चरण का कार्य 1972-73 में प्रारम्भ किया गया था। 31 दिसम्बर, 1986 तक 256 कि.मी. लम्बाई में मुख्य नहर तथा मार्च, 87 तक लगभग करीब 486 कि.मी. लम्बाई में वितरण प्रणाली का निर्माण कार्य पूर्ण कर लिया गया है।

पोलिथन लाईनिग (पक्का करना) वाली इस जलप्रदाय नहर द्वारा पानी जैसलमेर जिले में नहर के अन्तिम सिरे तक पहुँचाया जा रहा है। वर्ष 1987 के प्रथम दिवस को नहर के अन्तिम छोर तक जल प्रवाहित किया गया है। शहीद सागरमल गोपा शाखा के साथ जल आपूर्ति नहर को 65 कि मी. पूर्ण कर सदराऊ व नेड़ाई जलाशयों में पानी भरा गया है। इस वर्ष के भीषण अकाल से पीड़ित पश्चिमी राजस्थान के पशुओं को इस क्षेत्र में ले जाकर पीने का पानी उपलब्ध कराया गया है।

नवीनतम अनुमानों के अनुसार द्वितीय चरण की संशोधित लागत 1,420 करोड़ होगी। मई, 1987 तक इस पर 309.73 करोड़ व्यय हो चुके हैं। द्वितीय चरण में 8.90 लाख हैक्टेयर सिंचाई क्षमता में से मार्च, 84 तक 1.06 लाख हैक्टेयर क्षमता प्राप्त कर ली गई है।

कुछ नई योजनायें— छठी पंचवर्षीय योजना के अनुसार नई शैली से मुख्य नहर को पूरा करना एवं वितरण प्रणाली में शाखाओं को 750 क्यूसेक क्षमता तक पक्का करना एवं शेष शाखाओं तथा वितरक नहरों को कच्चा ही बनाकर पानी छोड़ने का इरादा
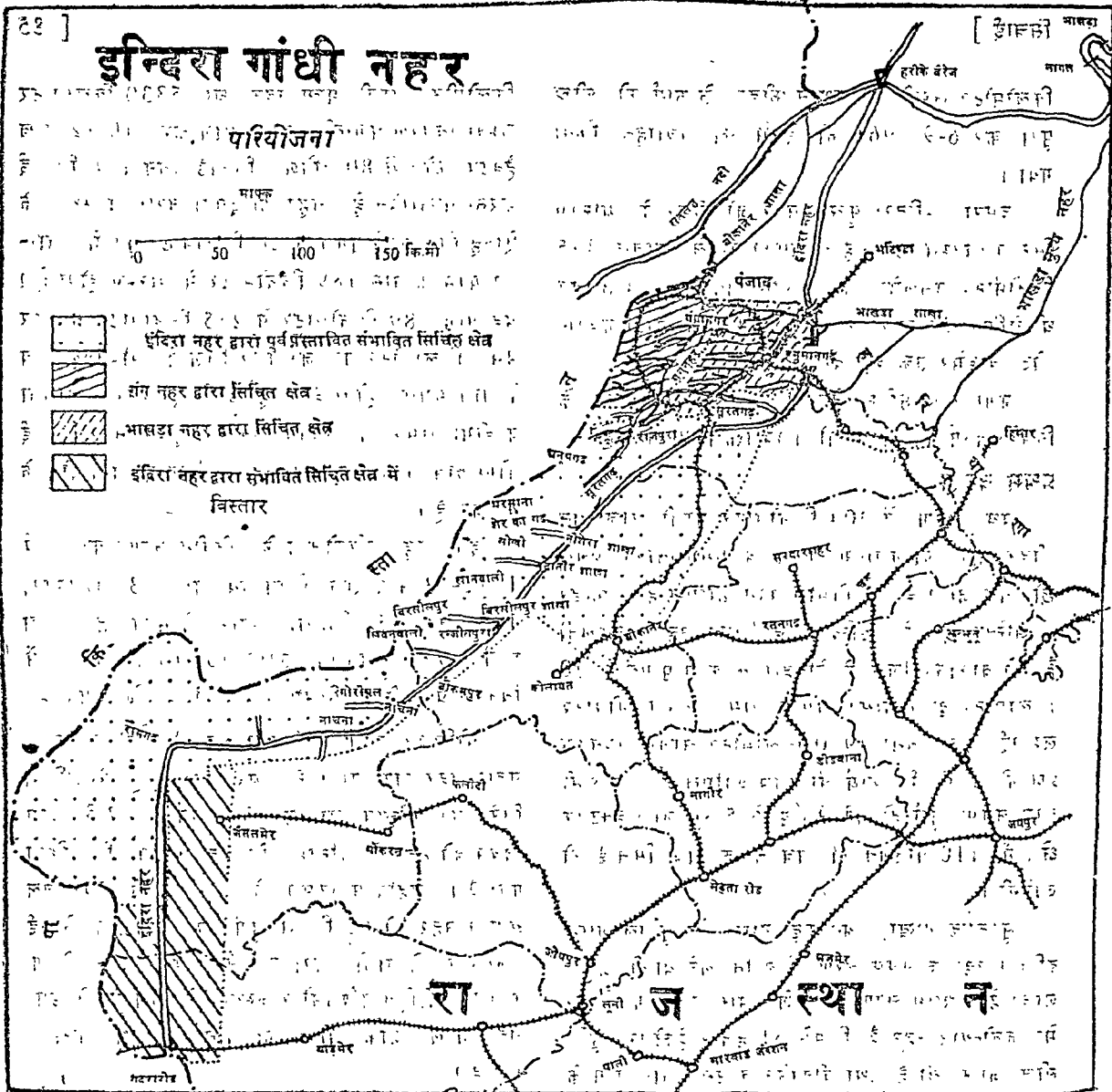
मानचित्र सं. 18—इन्दिरा गांधी नहर परियोजना : कुछ विशेषताएं—

नहर की कुल लम्बाई : 9,425 किलोमीटर। यानी देश की लम्बाई व चौड़ाई के जोड़ से लगभग दोगुनी।
पानी का वार्षिक उपयोग : 76 लाख एकड़ फुट अथवा 120 फुट ऊँचे जलाशय के बराबर।
नहरों के निर्माण पर मिट्टी का कार्य : 39 करोड़ घनमीटर यानी एवरेस्ट की ऊँचाई के बराबर।
नहरों को पक्का (लाइनिंग) करने के लिए 340 करोड़ टाइलों की आवश्यकता।
मानव शक्ति की आवश्यकता : 30 करोड़ मानव दिन।
परियोजना से लाभ : भूमि के मूल्य में वृद्धि—5,000 करोड़ रुपये।
अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन—37 लाख टन वार्षिक।
रोजगार के अवसर—कृषि फार्मों पर 2.5 लाख परिवारों का स्थापन।
पेयजल आपूर्ति—1,200 घन फुट प्रति सैकण्ड जल का आरक्षण।
नहरों व सड़कों पर वृक्षारोपण—10,000 किलोमीटर लम्बाई में।
परियोजना की कुल अनुमानित लागत—1,410 करोड़ रुपये।

है। समस्त नहरों को वर्ष 1987-88 तक पक्का करने का विचार है।

इन नई पद्धति से 1984-85 में 45 लाख हेक्टेयर भूमि सींचने का लक्ष्य था। इस नई पद्धति से डेढ़ गुनी अधिक सिंचाई क्षमता का विकास सम्भव हो सका है। इन्दिरा नहर परियोजना के द्वितीय चरण में दातौर, भुट्टोवाली, बिलासपुर, चारनवाला, लिलुआ व डिगा आदि नहर से निकलने वाली मुख्य शाखाएँ हैं। इन सभी शाखाओं पर कार्य युद्ध स्तर पर चल रहा है।

नहर के बांई ओर का रेगिस्तानी क्षेत्र ऊँचाई पर स्थित है, इसलिए सहावा (गंगानगर व चूरू), कोलायत व गजनेर (बीकानेर), फलौदी (जोधपुर) व पोकरण (जैसलमेर) जलोत्थान नहरों की योजना है, जिनके द्वारा 60 मीटर की ऊँचाई तक जलोत्थान किया जायेगा। इन सभी योजनाओं का कार्य प्रारम्भ हो चुका है। इन सभी से श्रीगंगानगर, चूरू, बीकानेर, जोधपुर एवं जैसलमेर जिलों की 3.12 लाख हैक्टेयर भूमि सिंचित की जा सकेगी।

वर्ष 1984-85 में 40 करोड़ रुपये से लगभग 70 किलोमीटर मुख्य नहर और 75 किलोमीटर वितरक प्रणाली की लाईनिंग करने का विस्तृत कार्यक्रम बनाया गया है, जिसके लिए 8 करोड़ रुपये की अतिरिक्त धन-राशि की पूर्ति के लिए प्रयत्न किये जायेंगे। इन्दिरा नहर में पानी का बहाव नियमित एवं पर्याप्त मात्रा में रखने के लिये (i) व्यास एवं सतलज नदियों पर बांध, (ii) रावी और व्यास नदियों पर माधोपुर स्थान पर एक लिंक तथा (iii) व्यास नदी पोंग स्थान पर बांध का निर्माण किया गया है। 11 अक्टूबर 1961 को हनुमानगढ़ के निकट तलवाड़ा स्थान पर 72 किलोमीटर लम्बी नोरंगदेसर वितरक शाखा में पानी छोड़ा गया। गंगानगर एवं बीकानेर जिलों में कार्य पूरा हो चुका है। 17 अक्टूबर 1983 को चारणवाली हैड से तथा 17-1-85 को इससे आगे की बुर्जी 1257.5 तक के जैसलमेर जिले के आगे के मरुक्षेत्र को पीने तथा सिंचाई के लिये पानी उपलब्ध कराया गया। इसी भांति गंगानगर एवं चूरू जिलों के 353 गांवों को भी पहली बार मीठा पानी पीने को मिला। 1-1-87 को नहर के अन्तिम छोर तक जल प्रवाहित किया गया। जोधपुर तथा नागौर भी शीघ्र यह लाभ प्राप्त करने वाले हैं।

इन्दिरा गांधी नहर पर आने वाली लागत—इन्दिरा गांधी नहर परियोजना पिछले 26 वर्षों से निर्माणाधीन है। प्रारम्भ में 1958 में यह 66 करोड़ रुपये की योजना बनी थी। इस योजना पर मार्च 1984 तक 405 करोड़ चार लाख रुपये खर्च किए जा चुके हैं लेकिन फिर भी इस परियोजना के द्वितीय चरण का निर्माणाधीन कार्य काफी शेष है। लेकिन अभी हाल के अनुमानों के अनुसार इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के सम्पूर्ण होने व इससे सम्बन्धित सभी कार्यों पर अनुमानित लागत एक हजार 410 करोड़ रुपये होगी जो इसकी प्रारम्भिक लागत से 21 गुने से भी अधिक होगी। अनुमानित लागत में वृद्धि के कारण निम्न हैं—

(i) खर्च में वृद्धि का प्रमुख कारण योजना का निर्धारित समय में पूर्ण न होना, फलस्वरूप मूल्य सूचकांक में वृद्धि होना।

(ii) परियोजना के मौलिक स्वरूप में परिवर्तन होना। मूल योजना में केवल राजस्थान फीडर को ही पक्का बनाने का प्रावधान था। बाद में रेतीले क्षेत्र में तीन चौथाई पानी को व्यर्थ न होने से बचाने के लिए सम्पूर्ण नहर को पक्का बनाने का निर्णय लेना।

(iii) नहर से जलोत्थान योजनाओं की संख्या को बढ़ा दिया जाना।

(iv) नहर को बाड़मेर जिले के गडरारोड तक बढ़ाने का निर्णय लेना।

(v) नहर से पानी शीघ्र उपलब्ध करवाने के लिये पोलीथिन लाइनिंग पद्धति को अपनाना।

'इंदिरा नहर' का कार्य वर्ष 1981-82 तक बहुत धीमी गति से हो रहा था। इसका मुख्य कारण सरकार का वित्तीय असहयोग था। पिछले दो-तीन वर्षों में केन्द्रीय सरकार से मदद मिलने व योजना के राष्ट्रीय महत्व को देखते हुये पर्याप्त धनराशि आवंटित की गई जिस से नहर निर्माण का कार्य युद्ध स्तर पर किया जा रहा है। इसमें पक्की लाईनिंग, हैड रेगूलर व्यवस्थायें, भूदान आवंटन योजनाएं, सेना के जवानों द्वारा विशेष वृक्षारोपण और सड़क निर्माण का कार्य तेजी से चला है। इंदिरा गांधी नहर में प्रगति की गति इसी प्रकार की

रहने के कारण 1-1-87 तक अपेक्षित लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया है। नहर से न केवल राजस्थान बल्कि सम्पूर्ण भारत लाभान्वित होगा क्योंकि देश के खाद्यान्न अभाव की एक चौथाई पूर्ति इस क्षेत्र से होने लगेगी।

इन्दिरा परियोजना से संभावित लाभ

1. **सिंचाई क्षेत्र में वृद्धि**—इस नहर से गंगानगर, बीकानेर, जैसलमेर तथा बाड़मेर जिलों के लगभग 15 लाख हैक्टेयर भूमि में सिंचाई हो सकेगी।

2. **कृषि उपज में वृद्धि**—इस योजना से खाद्यानों में लगभग 25 लाख टन और कपास में लगभग 1.5 लाख गांठों के उत्पादन में वृद्धि होने का अनुमान है।

3. **रेगिस्तान प्रसार में रुकावट**–थार का रेगिस्तान जो रेंगता हुआ आगे की ओर अग्रसर है अब वह सिंचित क्षेत्र बढ़ जाने से आगे नहीं बढ़ सकेगा।

4. **विपुल जल की सुलभता**—इन्दिरा नहर की प्रवाह क्षमता 5300 लाख घन मीटर प्रति सैकेन्ड है। इससे लोगों को पीने का पानी मिलेगा तथा औद्योगिक, पशुपालन तथा कृषि आदि क्रियाओं के लिये भी जल उपलब्ध होता रहेगा।

5. **अकाल पर रोक**—यह भाग सदियों से शुष्क रहा है। अकाल जैसी स्थिति प्राय: यहाँ बनी रहती है। इससे यह नहर मुक्ति दिलवायेगी।

6. **विद्युत उत्पादन**—वैज्ञानिक अन्वेषणों के फलस्वरूप धीमी गति से प्रवाहित जल से ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है। डॉ. सिचेन्डर द्वारा आविष्कृत लिफ्ट ट्रान्सलेटर नामक यन्त्र को नहर पर विभिन्न स्थानों पर लगाकर ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है। एक मीटर से अधिक गहरे पानी के किनारे इसे स्थापित करके यदि ऊर्जा उत्पन्न की जाये तो इन्दिरा नहर से इतनी विद्युत उत्पन्न होगी कि जो समस्त पश्चिमी भारत की ऊर्जा आवश्यकता को पूरा कर सकेगी। इस प्रणाली के अतिरिक्त वर्तमान में अनूपगढ़ व सूरतगढ़ शाखाओं पर 13 मेगावाट क्षमता के तीन लघु जल-विद्युत गृहों का निर्माण कार्य चल रहा है।

7. **पशु उद्योग**—इस क्षेत्र में प्रारम्भ से ही पशुधन की अधिकता है। रेगिस्तान की शुष्क दशाओं में भेड़, बकरी, ऊँट आदि सुगमता से पाले जाते हैं। अत: इनसे सम्बन्धित ऊन, हड्डी तथा चमड़ा आदि उद्योग काफी विकसित हो सकते हैं।

8. **मत्स्य व्यवसाय**—नहर पर जगह-जगह मछली संवर्धन केन्द्र अगर स्थापित कर दिये जावें, तो मत्स्य व्यवसाय अच्छी प्रकार फल-फूल सकता है।

अधिवास विस्तार—इस क्षेत्र में जनसंख्या की कमी है, अत: यहाँ भूमि का आवंटन कर भूमिहीन किसानों, सैनिकों, उद्योगपतियों, व्यापारियों एवं श्रमिकों को बसाया जा सकता है जिससे सम्पूर्ण क्षेत्र की उन्नति हो सकेगी।

10. **खनिज शोषण**—इस क्षेत्र में जिप्सम, नमक, इमारती पत्थर बहुतायत से मिलता है। पैट्रोलियम के मिलने की भी संभावनायें बढ़ी हैं। आशा है कि धोहाख क्षेत्र में शीघ्र ही व्यापारिक स्तर पर तेल एवं गैस प्राप्त करने का कार्य शुरू हो जायेगा। अत: खनिज व्यवसाय का भविष्य भी उज्जवल दृष्टिगत होता है।

11. **यातायात का विकास**–इस क्षेत्र में अधिवासीय विस्तार हो जाने के कारण बीकानेर, जैसलमेर, हनुमानगढ़, गंगानगर, जोधपुर आदि केन्द्र रेल एवं सड़क मार्ग के संगम होंगे। भविष्य में इस नहर को कांडला बन्दरगाह से जोड़कर नोकानयन करने की योजना है। ऐसा होने पर इन्दिरा नहर भारत की 'राईन नदी' बन जायेगी तथा इससे व्यापार, उद्योग तथा वाणिज्य का अत्याधिक विकास होगा।

12. **औद्योगिक विकास**—कृषि की उपज पर निर्भर चीनी, कपड़ा आदि उद्योग लगेंगे तथा साथ ही नमक, जिप्सम, पेट्रोलियम, फल, पशु पर आधारित उद्योगों का विकास हो सकेगा। भारतीय मूल के लोग जो खाड़ी देशों में बसे हैं, इस क्षेत्र में अपने उद्योग धन्धे स्थापित करने के लिए बहुत इच्छुक हैं तथा साथ ही सरकार भी प्रयत्नशील है।

13. **पर्यटन विकास**—इस प्रदेश में बीकानेर, जैसलमेर, कोलायत, रामदेवरा, जोधपुर आदि पहले से ही विकसित पर्यटक केन्द्र हैं। इनका विस्तार केन्द्र हैं। और नवीन केन्द्रों की स्थापना के फलस्वरूप पर्यटक काफी संख्या में आकर्षित होंगे। इन्दिरा नहर पूर्ण होने पर, स्वयं पर्यटकों के लिए, एक आकर्षण का केन्द्र बन

जायेगी।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत प्रगति—राजस्थान के निर्माण से पूर्व सिंचाई की ओर किसी भी रियासत ने विशेष ध्यान नहीं दिया। एक तो रियासतें छोटी थीं तथा साथ ही आर्थिक साधन भी सीमित थे। दूसरे नदियाँ कई रियासतों में से होकर प्रवाहित होती थीं। इसलिए किसी एक रियासत का उन पर आधिपत्य नहीं था। अतः कोई भी बड़ी सिंचाई योजना को हाथ में लेना उनके लिए सम्भव नहीं था।

वर्ष 1949 में राजस्थान के गठन से पूर्व कुल 3.40 लाख हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध थीं। बीकानेर राज्य की गंगनहर से केवल 2.42 लाख हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई होती थी। राज्य की महत्वपूर्ण नदियों जैसे चम्बल, बनास एवं माही आदि के पानी का भी उपयोग सिंचाई के लिए नहीं होता था।

सन् 1951 में देश में पंचवर्षीय योजनाओं का सूत्र-पात देश के सर्वांगीण विकास के लिए किया गया जिनमें राज्य के लिए सिंचाई परियोजनाओं को भी सम्मिलित कर सिंचाई के साधन विकसित किए गए।

प्रथम पंचवर्षीय योजना—प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सिंचाई एवं शक्ति के विकास पर राज्य व केन्द्रीय सरकार ने 39.41 करोड़ रुपयों के प्रावधान में से 31.47 करोड़ रुपये खर्च किए। इस योजना काल में दो बहुउद्देशीय योजनायें—भाखड़ा नांगल व चम्बल, 111 बड़ी व मझली योजनायें, 21 अभावग्रस्त योजनायें तथा 525 लघु योजनाओं का श्री गणेश किया गया। इनमें से योजना अवधि के अन्त तक 96 बड़ी व मंझली योजनाएं, 185 लघु योजनाएं तथा चम्बल योजना के प्रथम चरण का कार्य ही समाप्त हो पाया। इस योजना के अन्तर्गत जो कार्य किए गए उनके फलस्वरूप सिंचित क्षेत्र 1950-51 के 11.74 लाख हैक्टेयर से बढ़कर वर्ष 1955-56 में 13.6 लाख हैक्टेयर हो गया। इसी प्रकार विद्युत की उत्पादन क्षमता भी 13,271 किलो-वाट से बढ़कर 34,900 किलोवाट हो गई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—इस योजना काल में सिंचाई तथा ऊर्जा के विकास पर 36 33 करोड़ रुपये खर्च किए गए। फलस्वरूप प्रथम योजना की अधूरी योजनाओं तथा 19 बड़ी व मंझली योजनाएँ, 110 लघु योजनाएँ हाथ में ली गई। इन्दिरा नहर का निर्माण शुरू किया गया। चम्बल नदी से सिंचाई के लिए पानी मिलना शुरू हो गया। राज्य के सभी सिंचाई साधनों से सिंचित क्षेत्र में वृद्धि हुई। प्रथम योजना के सिंचित क्षेत्र में 4 लाख हैक्टेयर सिंचित क्षेत्र की बढ़ोत्तरी हुई इसी प्रकार राज्य की विद्युत क्षमता 1.08 लाख किलोवाट की हो गई।

तृतीय पंचवर्षीय योजना—इस योजना काल में सिंचाई व शक्ति के विकास को सबसे अधिक प्राथमिकता देते हुए इन पर 115 58 करोड़ रुपये व्यय किए गए। इस अवधि में पोंग बांध, इन्दिरा नहर, चम्बल परि-योजना आदि पर कार्य किए गए जिस से सिंचाई क्षमता 22.16 लाख हैक्टेयर हो गई। इस प्रकार राज्य की सिंचाई क्षमता में 4.66 लाख हैक्टेयर की वृद्धि हुई। 1964-65 तक सिंचित क्षेत्रफल 20.80 लाख हैक्टेयर हो गया। इससे सिंचित क्षेत्र में लगभग 54% की वृद्धि हुई।

विद्युत उत्पादन में भी 78000 किलोवाट की वृद्धि हुई अर्थात् इस योजना के अन्त तक राज्य की विद्युत क्षमता 1.86 लाख किलोवाट हो गई। तीन वार्षिक योजनाओं (1966-69) में राज्य सरकार ने 86.75 करोड़ का व्यय सिंचाई व विद्युत विकास योजनाओं पर किया। सिंचित क्षेत्र 22.16 लाख हैक्टेयर से बढ़ कर 1968-69 के अन्त में 23.5 लाख हैक्टेयर हो गया। विद्युत क्षमता भी बढ़ कर 23.3 लाख किलोवाट हो गई।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना—इस योजना के अन्तर्गत किए गए विकास कार्यो के कारण सिंचित क्षेत्र 26.4 लाख हैक्टेयर हो गया। इस प्रकार सिंचित क्षेत्र में लगभग 3 लाख हैक्टेयर क्षेत्र की वृद्धि हुई। इस योजनाकाल में सिंचाई व शक्ति के कार्यो पर 186.95 करोड़ रुपये खर्च हुये।

पांचवी योजना—इस में भी सिंचाई एवं विद्युत विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। योजनाकाल में 327.47 करोड़ रु. की व्यवस्था थी। योजना के पहले वर्षों में सिंचाई परियोजना पर 180 करोड़

रुपये खर्च हुए, जिनसे 2.40 हैक्टेयर भूमि में सिंचाई करने की क्षमता बढ़ी। 1979-80 में लघु सिंचाई परियोजना में 7 करोड़ रुपये खर्च हुए। योजनाकाल में सिंचाई व शक्ति पर 420.68 करोड़ रुपये खर्च हुए और 7.5 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त भूमि पर सिंचाई की जाने लगी। विकास कार्यों के फलस्वरूप 1977-78 तक सिंचित क्षेत्र 30 लाख हेक्टेयर हो गया।

छठी योजना—सिंचाई एवं विद्युत कार्यों के विकास पर लगभग 1061.62 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान है। 79-80 का वार्षिक योजना के अन्तर्गत सिंचाई और शक्ति पर 158.91 करोड़ रु. खर्च हुये थे। योजनाकाल में सिंचाई को उच्च प्राथमिकता दी गई। बहुउद्देशीय बड़ी व मध्यम सिंचाई परियोजनाओं के लिए 393.47 करोड़ रुपये रखे गए है। योजना के प्रथम तीन वर्षों में क्रमशः 69.58 करोड़ रुपये, 70.71 करोड़ रु. और 64.41 करोड़ रुपये खर्च किये जा चुके है। वृहत सिंचाई योजनाओं के कारण खर्च में वृद्धि हुई है। माही परियोजना का मुख्य बांध पूरा हो चुका है। इससे 24,900 हैक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई सुविधा उपलब्ध होगी। योजना की समाप्ति तक 1984-85 में कुल सिंचित क्षेत्र 40 लाख हैक्टेयर था।

सातवीं योजना—इसके अन्तर्गत वर्ष 1985-86 में सिंचाई परियोजनाओं एवं बाढ़ नियन्त्रण के लिए 107.72 करोड़ रुपये व्यय किए गए। वर्ष 1986-87 के 110.88 करोड़ रुपये के बजट प्रावधान में से सिंचाई विभाग द्वारा नियन्त्रित योजनाओं के लिए 43.37 करोड़, माही-बजाज सागर परियोजना के लिए 17.51 करोड़ रुपये तथा इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के लिए 50.00 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। वर्ष 1986-87 में 16,500 हैक्टेयर क्षेत्र में अतिरिक्त सिंचाई क्षमता सृजित किए जाने का लक्ष्य था जिसमें से केवल 5,638 हैक्टेयर क्षेत्र में अतिरिक्त सिंचाई क्षमता सृजित की जा चुकी थी। वर्ष 1987-88 में सिंचाई विभाग द्वारा 111.40 हैक्टेयर क्षेत्र में अतिरिक्त सिंचाई क्षमता सृजित किए जाने का प्रावधान है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत सरकार ने जल-साधनों के विकास पर अधिक ध्यान देते हुए उनके समुचित उपयोग पर तेजी से कार्य किया है। राज्य में सूखा तथा अकाल जैसी परिस्थितियों के उत्पन्न हो जाने के परिणामस्वरूप इन विकास कार्यों के सम्मुख कई कठिनाईयाँ उपस्थित हो जाती हैं लेकिन फिर भी राज्य सरकार कृत-संकल्प है कि जलसाधनों का उचित उपयोग निकट भविष्य में कर सूखा तथा अकाल जैसी समस्याओं का निवारण हमेशा के लिए कर दिया जाए।

राज्य में सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धि असन्तुलित है। राज्य में वर्षा का औसत कम है और नदी जल स्रोत अपर्याप्त हैं। अतः राज्य में जो वृहद सिंचाई योजनाएं बनी हैं वे बाहरी स्रोतों पर निर्भर है तथा राज्य के कुछ जिलों तक सीमित हैं। राज्य में सिंचित क्षेत्र कुल कृषि क्षेत्र का 14 प्रतिशत है और इसमें भी लगभग आधा क्षेत्र कुओं से सिंचित है। राज्य के पूर्वी क्षेत्र में सिंचाई सुविधा भूमिगत एवं छोटी नदियों व बांधों के सतही पानी से प्रदान की जा सकती है। अब तक इस दिशा में कोई ठोस एवं योजनागत विशेष व व्यापक कार्य नहीं हुआ और अब इस हेतु जल साधन विकास निगम की स्थापना सही दिशा में उठाया गया कदम है।

नवगठित जल निगम के अनुसार राज्य के पूर्वी भाग में सतही जल से 600 छोटी जलोत्थान तथा भू-जल से 2500 नलकूप लगाये जा सकते हैं। राज्य भू-जल बोर्ड ने कई स्थानों के जल स्रोतों का सर्वेक्षण भी कर रखा है। जल निगम इसे आधार बनाकर आगे कार्यवाही करेगा।

नलकूप एवं लघु सिंचाई परियोजनाओं का लाभ छोटे किसानों तक आसानी से पहुँचता है जबकि बड़ी एवं नहरी योजनाओं से बड़े किसान लाभान्वित होते हैं। इस असन्तुलन को सामूहिक एवं सहकारी नलकूप परियोजनाओं से दूर किया जा सकता है। जलोत्थान एवं नलकूपों के साथ बिजली उपलब्धि का प्रश्न जुड़ा हुआ है। राज्य बिजली के अभाव के दौर में है। जल निगम राज्य की समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए इन लघु सिंचाई योजनाओं को किस गति से पूरा करता है, यह प्रश्न भी है। पश्चिमी राजस्थान के विकास के लिए सिंचाई की वैकल्पिक व्यवस्था तथा खेती के नये तरीकों का विकास किया जाना चाहिए ताकि कम से कम पानी के उपयोग से काम चल सके।

कृषि के क्षेत्र में राजस्थान में उच्च-गर्भित शक्तियां हैं, आवश्यकता है केवल अधिक पानी की। यहां के जल साधनों का उपयोग पूर्णरूप से और अच्छी तरह करने के लिए राज्य ने बहुत-सी सिचाई और नदी घाटी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए साहसपूर्ण कदम उठा लिया है।

राजस्थान में पानी के साधन बहुत सीमित हैं। दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भागों को छोड़कर राज्य में सर्वत्र वर्षा अनियमित एवं अनिश्चित है। राजस्थान का उत्तरी व पश्चिमी भाग शुष्क एवं मरुस्थल है। राज्य में जल संसाधन के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में काफी प्रयास किए गए हैं। राज्य सरकार ने समीपवर्ती राज्यों से मिल कर संयुक्त योजनाएं बनाकर उनसे लाभ उठाने के प्रयास किये हैं। कुछ महत्वपूर्ण सिंचाई योजनाएं इस प्रकार हैं।

चम्बल घाटी परियोजना—चम्बल की विनाशकारी लीला को समाप्त कर इसके विशाल जलप्रवाह को सिंचाई, विद्युत तथा पीने के पानी के लिये प्रयुक्त करने की दृष्टि से राजस्थान तथा मध्यप्रदेश सरकार ने संयुक्त रूप से इस परियोजना को हाथ में लिया।

चम्बल नदी का परिचय—चम्बल नदी भारत के हृदयस्थल विंध्याचल पर्वतमाला के बीच 'जाना पाओ' पहाड़ियों में से निकलती है। यह भाग समुद्रतल से 1000 मीटर ऊँचा है। यह 320 किलोमीटर उत्तर की ओर बहती हुई चौरासीगढ़ के समीप राजस्थान में प्रविष्ट होती है, इस प्रकार 320 किलोमीटर के बहाव में 400 मीटर का ढ़ाल है। चौरासीगढ़ से कोटा तक चम्बल एक संकरी घाटी से बहती है और इसी भाग में चम्बल पर बांध बनाए गए हैं। यह नदी राजस्थान में कोटा के निकट बहती हुई नोनेरा गांव के निकट अपनी प्रथम बड़ी सहायक नदी कालीसिन्ध से मिलती है, तत्पश्चात राजस्थान तथा मध्यप्रदेश की सीमा बनाती हुई वह कर उत्तरप्रदेश में इटावा के निकट यमुना नदी में मिल जाती है।

चम्बल नदी की लम्बाई 1045 किलोमीटर है और अधिकतम चौड़ाई 730 मीटर है। यह गर्मियों में पानी की एक क्षीण रेखा मात्र ही रह जाती है। कालीसिन्धु, बनास और पार्वती इसकी मुख्य सहायक नदियां हैं। चम्बल नदी तथा इसकी सहायक नदियों का जलप्रवाह 1542 मिलियन घन मीटर है।

चम्बल घाटी परियोजना के लिए उपयुक्त दशाएं—

चम्बल घाटी योजना जिन दशाओं के परिणामस्वरूप बनाई गई, वे इस प्रकार हैं—

(i) चम्बल नदी के पानी का उपयोग करने के लिए राजस्थान के निर्माण के पूर्व इन्दौर, मेवाड़ और कोटा राज्यों के भूतपूर्व नरेशों ने विशेषत: विद्युत उत्पादन तथा सिंचाई के लिए अलग-अलग योजनाएं बनाई, लेकिन राजनीतिक कारण, आर्थिक कठिनाईयों, वैज्ञानिक साधनों की कमी तथा यातायात के सीमित साधनों के परिणामस्वरूप इन योजनाओं को कार्यान्वित नहीं किया जा सका।

(ii) चम्बल नदी एक गहरी एवं संकरी घाटी में होकर बहती है। कई स्थानों पर तेज ढ़ाल के फलस्वरूप जलप्रपात मिलते हैं जिनसे जलविद्युत का उत्पादन सुविधापूर्वक किया जाना सम्भव है।

(iii) चम्बल नदी की घाटी गहरी होने के कारण पानी का तल काफी नीचे रहता है। इसलिए बांध का निर्माण कर पानी तल को ऊपर उठाना आवश्यक था अन्यथा सिंचाई सम्भव न होती।

(iv) इस बेसिन में कच्चे माल की कमी नहीं है। उदाहरणार्थ चूने का पत्थर और वन इस क्षेत्र के प्रमुख साधन हैं। अत: कई प्रकार के उद्योग स्थापित किये जा सकते थे।

(v) चम्बल अधिकतर जनजातियों के अधिवास क्षेत्रों से होकर गुजरती है। अत: इनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए यहाँ पर कृषि की सुविधायें प्रदान करनी थी और उसके लिए सिंचाई तथा सस्ती ऊर्जा भी अपरिहार्य थी।

(vi) राजस्थान के इस क्षेत्र में अकाल और बाढ़ों को कम करने के लिए तथा कृषि को स्थाई रूप प्रदान करने के लिए यह योजना आवश्यक थी।

(vii) चम्बल की घाटी में मिट्टी का कटाव अधिक होने से खड्ड (Ravines) काफी विस्तृत क्षेत्र में पाये जाते है। यह खड्ड डाकूओं के आश्रय स्थल बन गये थे। अत: खड्डों के विस्तार को रोकने के लिए इस पर बांध बनाने की आवश्यकता पड़ी।

(viii) चम्बल घाटी परियोजना के निर्माण के लिए आवश्यक निर्माण सामग्री इस क्षेत्र में आसानी से उपलब्ध हो जाती है।

योजना का आरम्भ—चम्बल योजना का सूत्रपात सर्वप्रथम सन् 1943 में जलविद्युत के लिए कोटा के निकट एक बांध बनाये जाने के रूप में हुआ। लेकिन 1945 तक यह निर्णय लिया गया कि तीन बांध और उन पर विद्युत केन्द्र बनाये जायें। सन् 1950 तक इस योजना में 48.5 लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कोटा सिंचाई बांध और नहरों के निर्माण कार्य को भी शामिल कर लिया गया। इस योजना पर कुल व्यय 100 करोड़ रुपये तक होगा जिसका वहन राजस्थान एवं मध्यप्रदेश दोनों राज्य सरकारें बराबर-बराबर करेंगी। साथ ही वे ऊर्जा व पानी का उपयोग भी बराबर-बराबर करेंगी।

चम्बल योजना की रूपरेखा—चम्बल घाटी परियोजना को देश के विकास कार्यों में सम्मिलित करते हुये योजना आयोग ने निम्न कार्यों को शामिल करते हुए अन्तिम रूप में स्वीकृति प्रदान की—

1. तीन बांध और प्रत्येक बांध पर एक विद्युतगृह का निर्माण।
2. कोटा के समीप एक बैराज का निर्माण।
3. सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराने हेतु नदी के दोनों किनारों पर नहरों का निर्माण।
4. दोनों राज्यों के लिए विद्युत सम्प्रेषण लाइनों का जाल बिछाना तथा दोनों राज्यों के लिए एक-एक उप स्टेशन केन्द्र बनवाना।

इस योजना को तीन चरणों में पूरा किया गया। प्रथम चरण में गाँधीसागर बांध, कोटा बैराज बांध पर जलविद्युत सम्प्रेषण लाइनें तथा सिचाई के लिये नहरों का निर्माण आदि कार्य सन् 1960 तक पूरे कर लिए गए।

द्वितीय चरण में राणाप्रतापसागर बांध और जलविद्युत गृह का निर्माण कार्य पूरा किया गया।

तृतीय चरण में जवाहरसागर, कोटा बाँध तथा इस पर एक जल विद्युतगृह के निर्माण कार्य को सम्पन्न किया गया।

चम्बल घाटी परियोजना—इस योजना का कार्य 1953-54 में प्रारम्भ किया गया था। इसके अन्तर्गत निम्न निर्माण कार्य आते हैं—

गाँधीसागर बाँध—भानपुरा तहसील में भानपुरा से 33 किलोमीटर और मध्यप्रदेश के चौरासीगढ़ से 8 किलोमीटर दूर, जहाँ घाटी की चौड़ाई कम है, गाँधी सागर बाँध 1960 में बनाया गया। यह बाँध 510 मीटर लम्बा और 62 मीटर ऊँचा है। इसके ऊपर 5 मीटर चौड़ी सड़क बनायी गयी हैं। बाढ़ का अतिरिक्त जल निकलने के लिए स्पिलवे भाग में 18 मीटर और 24 मीटर के 10 फाटक हैं। बाँध से जो विशाल जलाशय तैयार हुआ है उसमें 77,460 लाख हैक्टेयर मीटर जल रखने की क्षमता है।

बाँध के दोनों ओर दो नहरों का निर्माण भी किया गया है। बांई ओर की नहर बूंदी तक जाकर अरावली पर्वत श्रेणियों के साथ-साथ बहती हुई मेजा नदी में मिलती है। दांई ओर की नहर राजस्थान में लगभग 130 किलोमीटर बहती हुई पार्वती नदी को पार करके मध्यप्रदेश में प्रवेश करती है। इन नहरों की कुल लम्बाई में से 261 किलोमीटर राजस्थान में तथा 641 किलोमीटर मध्यप्रदेश में है। यह नहरें 4.44 लाख हैक्टेयर भूमि को सिंचित करती हैं। इस सिंचित क्षेत्र में दोनों राज्यों का बराबर का हिस्सा है।

गांधीसागर बाँध की रूपरेखा इस प्रकार बनाई गई है कि बाँध के 22,533 वर्ग किलोमीटर के आवाह क्षेत्र में दो उत्तरोत्तर मानसून के जल का संचय किया जा सके क्योंकि नदी का जल मानसून पर निर्भर करता है जो कि बहुत ही अनिश्चित तथा अविश्वसनीय है। इसलिए जिन वर्षों में वर्षा, औसत से काफी कम हो, उस अवधि में बांध पर स्थित ऊर्जा केन्द्रों के लिए जल की आपूर्ति गांधीसागर के आवाह क्षेत्र में जल की निम्नतम संचय क्षमता से पूर्ण की जा सके।

गांधीसागर बाँध पर ही गांधीसागर विद्युत स्टेशन 93 मीटर लम्बा है जिसमें 15-15 मीटर की दूरी पर 28,000 किलोवाट शक्ति के कुल पाँच उत्पादन यन्त्र लगाये गये हैं जो कुल 115 मेगावाट शक्ति का उत्पादन करते हैं। इससे 60 प्रतिशत भारांश की कम से कम

80,000 किलोवाट बिजली मिलने लगी है। बांध के पास हाइटेन्शन ट्रान्समिशन लाइनें भी तैयार की जा चुकी है। इसके प्रथम चरण पर 48 करोड़ रुपये व्यय हुए हैं।

राणा प्रताप सागर बांध—गांधीसागर बांध से 48 किलोमीटर दूर ऊपर की ओर राजस्थान में 12 मीटर ऊंचे चूलिया प्रपात के समीप जहाँ चम्बल एकदम सिमट जाती है, रावत भाटा में ही बनाया गया है। बांध पर 31 करोड़ रुपया खर्च हुआ है यह कार्य 1970 तक पूरा हो गया। यह बांध 1,100 मीटर लम्बा और 36 मी. ऊंचा है। इसके द्वारा बनने वाले जलाशय का क्षेत्रफल 113 वर्ग किलोमीटर है और उसमें 3.1 लाख हैक्टेयर मीटर जल समा सकता है। यह बांध न केवल गांधी सागर बांध से छोड़े गए जल को बल्कि 1,440 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के अपने स्वतन्त्र जल संग्रहण क्षेत्र का भी जल इकट्ठा करता है। इस बांध से 1.2 लाख हैक्टेयर भूमि में सिंचाई की जा रही है।

भोपाल विद्युतगृह इस प्रपात के निकट है जिससे जलाशय के जलतल तथा प्रपात के जल गिरने के अन्तर का लाभ उठाया जा सके। इस बिजलीघर का विद्युत उत्पादन चार इकाइयों का प्रति इकाई के पीछे 43,000 किलोवाट, कुल 172 मेगावाट विद्युत का है। इससे 20 अप्रैल 1973 से बिजली का उत्पादन प्रारम्भ हो चुका हैं। केन्द्र सरकार द्वारा कनाडा के सहयोग से प्रतापसागर बांध के समीप ही अणुशक्ति परियोजना पर 180 करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है जिसकी विद्युत उत्पादन क्षमता वर्तमान में 2 लाख किलोवाट है परन्तु एक और अणुभट्टी पूरी होने पर विद्युत क्षमता कुल चार लाख किलोवाट की हो जायेगी।

कोटा बांध अथवा जवाहर सागर—यह बांध राणा प्रताप सागर बांध से लगभग 33 किलोमीटर दूर बोरावास ग्राम के समीप बनाया गया है। यहाँ चम्बल की चौड़ाई चौरासीगढ़ की अपेक्षा 122 मीटर कम हो जाती है। यह केवल एक पिक-अप बांध है। पहले दो बांधों में छोड़ा गया जल ही यहाँ विद्युत उत्पादन के लिए काम में लाया जाता है। यह बांध 548 मीटर लम्बा और 25 मीटर ऊंचा है इस बांध की जल धारणा शक्ति 18,000 हैक्टेयर मीटर है।

कोटा बांध के अन्तर्गत शक्ति गृह से अधिक शक्ति उत्पादन के लिए यन्त्र लगाए गए हैं जिनकी प्रत्येक की क्षमता 33,000 किलोवाट अर्थात् कुल 99,000 किलोवाट की है और 60% भारांश की 60,000 किलोवाट बिजली पैदा होती है।

कोटा बैराज—कोटा बांध से 16 किलोमीटर आगे कोटा नगर के पास एक सिंचित अवरोधक का निर्माण किया गया है। यह 1954 में शुरू किया गया था। यह बांध 600 मीटर लम्बा और 36 मीटर ऊंचा है। इसकी जल संग्रहण की क्षमता 76,460 लाख घन मी. है। इस बांध से दो नहरें निकाली गई हैं। दाहिनी ओर की नहर मध्यप्रदेश की ओर जाती है। यह रास्ते में काली, सिन्ध, परवान और पार्वती नदियों को पार करती है। यह मध्यप्रदेश की 1.70 लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई करती है। इसकी क्षमता 6656 क्यूसेक है। इसकी लम्बाई 420 कि.मी. है। यह नहर 120 कि.मी. राजस्थान में बहती है और 305 कि.मी. मध्यप्रदेश में।

बांयी ओर की नहर राजस्थान में सिंचाई के काम आती है। इसकी क्षमता 1070 क्यूसेक है। इससे राजस्थान में 1.80 लाख हैक्टेयर भूमि में सिंचाई की जाती है। इस शाखा और उपशाखाओं की लम्बाई 182 कि.मी. हैं। इसकी दो शाखायें बूंदी और कपेन, प्रत्येक 64 किलोमीटर लम्बी हैं। इन नहरों से बूंदी, कोटा, टोंक और सवाईमाधोपुर जिलों के क्षेत्रों की सिंचाई होती है। मुख्य नहर कोटा अवरोधक बांध के दाईं ओर से निकाली गई है। प्रारम्भ के 127 किलोमीटर की दूरी तक यह कोटा जिले के क्षेत्र की सिंचाई करती है। इसके बाद पार्वती नदी को पार करके मध्यप्रदेश राज्य में पहुंचकर लगभग 250 किलोमीटर चम्बल नदी के समानान्तर बहती हुई मुरेना एवं भिण्ड जिलों के क्षेत्र को सिंचाई सुविधा प्रदान करती है। दोनों नहरों के पानी के प्रयोग के लिए 2,350 किलोमीटर लम्बी छोटी वितरक नहरें बनाई गई हैं। जिनसे राजस्थान व मध्यप्रदेश की 5.60 लाख हैक्टेयर भूमि में सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध हो रही है।

चम्बल परियोजना राज्य के लिए वरदान सिद्ध हुई है। कोटा औद्योगिक केन्द्र बन गया है। राजस्थान की

1.60 लाख हेक्टेयर तथा मध्यप्रदेश की 1.01 लाख हेक्टेयर भूमि को 1960 से पानी मिल रहा है। अब कुल मिलाकर 5.60 लाख भूमि में सिंचाई की सुविधा है। राजस्थान के दक्षिणी पूर्वी भाग को बिजली मिल रही है। इस योजना के लिए कनाड़ा सरकार ने 46 हजार डालर की राशि अनुदान में दी है। राणा प्रताप सागर बांध पर जो अणुशक्ति उत्पादन केन्द्र है, वह कोटा में रावत भाटा के स्थान पर है। इसमें पहला संयन्त्र 2 लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न करता है और दूसरे संयन्त्र की क्षमता 200 मेगावाट है। इस योजना को विश्व बैंक की आर्थिक सहायता मिली है।

इस परियोजना क्षेत्र में जल निकास एवं खेत सुधार की कमी, अपर्याप्त सड़कें, कृषि उत्पादन निर्धारित सीमाओं तक नहीं बढ़ पाना, भूमि की काफी हानि आदि दोषों को दूर करने हेतु इस परियोजना के अन्तर्गत विश्व बैंक की सहायता से सिंचित क्षेत्र विकास परियोजना का प्रथम चरण वर्ष 1974 में प्रारम्भ हुआ जो जून, 1982 में समाप्त हो गया। प्रथम चरण के अन्तर्गत नहरों को पक्की करने एवं जलोत्सरण के कार्यों के अतिरिक्त 33,503 हेक्टेयर क्षेत्र में भूमि सुधार का कार्य किया गया। वर्ष 1987-88 में इस परियोजना के लिये 200 लाख रुपयों की राशि निर्धारित की गई, जिस के अन्तर्गत 4,000 हेक्टेयर क्षेत्र में भूमि सुधार कार्य करने का प्रावधान है।

जलोत्थान सिंचाई योजनाएं प्रस्तावित—

चंबल परियोजना के तहत कमाण्ड क्षेत्र में निर्मित इक्कीस जलोत्थान सिंचाई योजनाएं प्रस्तावित हैं जिनकी अनुमानित लागत 25 करोड़ 13 लाख 40 हजार रुपये आंकी गई है। इन योजनाओं से कोटा एवं बूंदी जिलों की 36 हजार हेक्टेयर कृषि भूमि को सिंचाई सुविधा प्रदान की जा सकेगी।

सिंचाई विभाग के एक प्रवक्ता ने बताया कि चंबल सिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत ऊंचे इलाकों को सिंचाई सुविधा प्रदान किये जाने की दृष्टि से दांई मुख्य नहर एवं बांई मुख्य नहर की बूंदी ब्रांच केनाल पर 21 जलोत्थान सिंचाई योजनाएं प्रस्तावित की गई हैं जिन्हें स्वीकृति के लिए केन्द्रीय जल आयोग को भेजा गया है।

वर्तमान में कोटा जिले के कमाण्ड क्षेत्र में चार जलोत्थान सिंचाई योजनाओं का निर्माण कार्य पूरा किया जा चुका है। दो योजनाओं का कार्य प्रगति पर है तथा दो का निर्माण कार्य शीघ्र ही आरंभ कराया जाएगा।

दांई मुख्य नहर क्षेत्र में दो जलोत्थान सिंचाई योजनाएं अन्ता लिफ्ट स्कीम ब्लाक नम्बर 9 व 18 निर्मित की जा चुकी है। इनसे मांगरोल तहसील की क्रमश: 774 व 615 हेक्टेयर भूमि को सिंचाई सुविधा प्रदान की जा रही है। दोनों जलोत्थान योजनाओं की अनुमानित लागत 57 लाख 31 हजार रुपये है। झाली-पुरा लिफ्ट स्कीम से लाडपुरा तहसील की 535 हैक्टेयर भूमि को सिंचाई लाभ मिलेगा। इसमें गत वर्ष 283 हेक्टेयर में सिंचाई की गई। योजना की लागत 3.44 लाख रुपये हैं। पूर्ण हुई लिफ्ट योजनाओं में दांई मुख्य नहर क्षेत्र की पचेल स्कीम से भी मांगरोल तहसील की 215 हेक्टेयर भूमि को लाभान्वित किया जा रहा है। जबकि सिंचाई क्षमता 431 हेक्टेयर है।

दांई मुख्य नहर के अन्तर्गत दीगोद एवं गणेशगंज योजनाओं का कार्य प्रगति पर है। दीगोद स्कीम पर मार्च 1988 तक 99 लाख 31 हजार रुपये व्यय किए जा चुके हैं। योजना की सिंचाई क्षमता करीब चार हजार हेक्टेयर है। गणेशगंज स्कीम से मांगरोल तहसील के 20 एवं इटावा के 10 ग्रामों की 9 हजार 257 हेक्टेयर भूमि में सिंचाई सुविधा प्रदान की जा सकेगी। वर्ष 1982 से आरम्भ इस योजना का कार्य 1988-89 वित्तीय वर्ष में पूर्ण होने की सम्भावना है।

काजरी एवं सोरखण्ड लिफ्ट स्कीमों से कोटा जिले की मांगरोल तहसील की कृषि भूमि में सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराने का प्रावधान है।

भाखड़ा नांगल परियोजना

भाखड़ा नांगल परियोजना बहु-उद्देशीय नदी-घाटी योजनाओं में भारत की सबसे बड़ी योजना है जो राजस्थान, पंजाब व हरियाणा की संयुक्त परियोजना है तथा तीनों के प्रयास से बनी है। इस योजना पर 236 करोड़ रुपये व्यय हुए हैं जिसमें राजस्थान को 22 करोड़ रुपये का खर्च वहन करना पड़ा। इस योजना में राजस्थान का 15.22 प्रतिशत हिस्सा है।

यह बांध सतलज नदी पर होशियारपुर जिले में भाखड़ा गांव के निकट बनाया गया है। इस परियोजना

अन्तर्गत भाखड़ा स्थान पर 222 मीटर ऊंचे बांध, नांगल पर 25.5 मीटर ऊंचा नांगल बांध, 46 किलोमीटर लम्बी नांगल हाइड़ल चैनल, भाखड़ा बांध पर दो विद्युत गृह, नांगल हाइड़ल चैनल पर गंगवाल व कोटला में दो विद्युत गृह, 1104 किलोमीटर लम्बी मुख्य नहरें तथा 3360 किलोमीटर लम्बी फतेहाबाद शाखा नहरों का निर्माण कार्य शामिल है।

राजस्थान में इस परियोजना से उपलब्ध पानी का उपयोग करने के लिये लगभग 1570 किलोमीटर लम्बी छोटी-बड़ी नहरों का निर्माण किया है। गंगानगर जिले की भादरा, नोहर, सूरतगढ़, हनुमानगढ, रायसिंहनगर, पदमपुर और गंगानगर की तहसीलों में सिंचाई आरम्भ हो गई है। यह ध्यान रहे कि इस क्षेत्र का अधिकांश भाग बहुत कम वर्षा वाला क्षेत्र हैं। इन नहरों से सन् 1960 से 2.30 लाख हेक्टेयर भूमि में निरन्तर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो रही है। सभी विद्युत गृहों की कुल प्रति स्थापित क्षमता 12 लाख किलोवाट है। गंगूवाल और कोटला में उत्पन्न होने वाली बिजली 3680 किलोमीटर लम्बे तारों द्वारा देश के विभिन्न राज्यों के अनेक स्थानों को भेजी जा रही है। इकहरी सर्किट 312 किलोवाट लाइन पानीपत से हांसी, हिसार तथा राजस्थान के राजगढ़ और रतनगढ़ को गयी हैं। भाखड़ा नांगल योजना से राजस्थान के चूरु, बीकानेर, गंगानगर, झुन्झुनूं और सीकर जिलों के नगरों को भी शक्ति प्राप्त हो रही है।

व्यास परियोजना व पोंग बांध

यह राजस्थान, पंजाब व हरियाणा की सम्मिलित रूप से कार्यान्वित की जाने वाली परियोजना है। इस परियोजना के अन्तर्गत व्यास नदी तथा व्यास सतलज लिंक पर दो बांध बनाने की बहुउद्देशीय योजनायें बनाई गई।

पहली योजना के अन्तर्गत व्यास नदी पर पोंग स्थान पर बांध जिसकी ऊंचाई 133 मीटर होगी तथा एक विद्युत गृह का निर्माण शामिल है जिसमें पंजाब हरियाणा व राजस्थान के लगभग 21 लाख हेक्टेयर भूमि पर सिंचाई तथा विद्युत गृह की प्रति-स्थापित क्षमता 2 4 लाख किलोवाट की व्यवस्था सम्मिलित है। भविष्य में दो और इकाइयों की स्थापना की जायेगी जिन में प्रत्येक की क्षमता 60 हजार किलोवाट की होगी। पोंग बांध का निर्माण कार्य पूरा हो चुका है।

व्यास सतलज लिंक का निर्माण कार्य पंजाब राज्य के अन्तर्गत है। इसकेअन्तर्गत एक बांध, भाखड़ा बांध के ऊपर पंडोह के समीप व्यास नदी पर दो सुरंगे 12-12 किलोमीटर लम्बी, हाइड़ल चैनल तथा चार इकाइयों का विद्युत गृह, जिसमें प्रत्येक की क्षमता 165 मेगावाट तथा कुल क्षमता 6.6 लाख किलोवाट होगी, का कार्य शामिल है। भविष्य में दो इकाइयाँ और लगाने की गुंजाइश रखी है।

इस का निर्माण कार्य व्यास-नियन्त्रण मण्डल की देख रेख में सम्पन्न किया जा रहा है। राजस्थान के व्यास परियोजना से प्रत्यक्ष रूप से सिंचाई का लाभ नहीं मिल सकेगा। यह इन्दिरा गांधी नहर परियोजना को स्थाई रूप से जल आपूर्ति करेगी। यह योजना राज्य को 150 मेगावाट विद्युत प्राप्त करायेगी।

इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य राजस्थान नहर को शीतकाल में जल की आपूर्ति को नियमित बनाये रखना है।

माही बजाज सागर परियोजना

राजस्थान के युगों से पिछड़े हुए आदिवासी क्षेत्र बांसवाड़ा में एक नये युग का सूत्रपात माही बजाज सागर परियोजना के द्वारा किया जा रहा है, जिससे यहाँ के लोग अभावों व असुविधाओं से अपने आप को मुक्त कर कृषि के उत्पादन में वृद्धि, खनन व्यवसाय में विकास, उद्योगों की स्थापना तथा अपने में क्रांतिकारी परिवर्तन कर आधुनिक सुविधाओं को प्राप्त कर सकेंगे।

यह क्षेत्र अधिकतर पर्वतीय है और यहाँ वर्षा का औसत 80 सेन्टीमीटर है। भूमि पथरीली है, अतः कुएं खोदना कठिन है। यहाँ की मिट्टी ऊपजाऊ है फिर भी सिंचाई सुविधा के अभाव में मुख्यतः खरीफ की खेती ही की जाती है। रबी की फसल केवल उन्हीं क्षेत्रों में की जाती है जहाँ कुएं सफलतापूर्वक खोदे जा सकते हैं। परियोजना के पूर्ण हो जाने पर जल की

सतह ऊँची होगी और इसके फलस्वरूप कुओं में अधिक पानी आ सकेगा ।

माही नदी का परिचय—बागड़ और कांठल के इस क्षेत्र की गंगा-माही नदी जिसका उद्गम मध्यप्रदेश के धार जिले में विंध्याचल पर्वत से हैं, उत्तर-पश्चिम दिशा में बहती हुई लगभग 169 किलोमीटर के पश्चात् बांसवाड़ा के समीप राजस्थान में प्रवेश करती है। राजस्थान में यह लगभग 71 किलोमीटर तक बहती है। यहाँ इस नदी की मुख्य सहायक नदियाँ अनास, सोम, लाखन और ईराऊ हैं। यहाँ से यह नदी उत्तर दिशा में बहकर दक्षिण-पश्चिम दिशा में घूमती हुई गुजरात राज्य में प्रवेश करती है और अन्त में खम्भात की खाड़ी में जाकर अरब सागर में विलीन हो जाती है। इस नदी के असीम जल का उपयोग मानवीय कल्याण के लिए 1960 तक नहीं के बराबर हो सका था ।

परियोजना एवं प्रगति—बांसवाड़ा जिले की आदिवासी जनता के लिए सम्पन्नता और समृद्धि के द्वार खोलने वाली माही बहुउद्देशीय परियोजना का कार्य 1959-60 में आरम्भ किया गया था । इस परियोजना को तीन भागों में बांटा गया है:—

(i) **इकाई प्रथम (बांध)**—बांसवाड़ा से लगभग 16 किलोमीटर दूर बोरखेड़ा ग्राम के समीप माही नदी पर बांध बनाया गया है । यह बांध लगभग 3.2 किलोमीटर लम्बा है। इस बांध के पूर्व में लगभग 6 किलोमीटर की दूरी पर 1.6 किलोमीटर लम्बे एक मिट्टी के बांध का भी निर्माण किया गया है। इस परियोजना का जल संग्रह क्षेत्र 6,240 वर्ग किलोमीटर है जिनमें से 4,350 वर्ग किलोमीटर मध्यप्रदेश में तथा शेष 1,890 वर्ग किलोमीटर राजस्थान में है। बांध के अन्तर्गत लगभग 115 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र डूब में आयेगा। इस जलाशय की जल धारण क्षमता लगभग 580 मिलियन घन मीटर है। माही जलाशय का अधिकतम जल स्तर समुद्र तल से 31 मीटर एवं न्यूनतम जल स्तर 28 मीटर ऊपर होगा। मुख्य बांध से बाढ़ के अनावश्यक पानी को निकालने के लिए लोहे के 14 विशाल फाटक लगाये गये हैं ।

(ii) **इकाई द्वितीय (नहरें)**—सिंचाई के लिये बांसवाड़ा के पास कागदी पिकअप वीयर से दो नहरें (दाईं व बाईं मुख्य नहरें) निकाली गई हैं, जिन की लम्बाई क्रमशः 71.72 किमी. व 36.12 किमी. है तथा इनकी वितरिकाओं की कुल लम्बाई 854 किमी. है। इन से 30,750 हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होगी।

(iii) **इकाई तृतीय (विद्युत उत्पादन सम्बन्धी)**—परियोजना के प्रथम विद्युत गृह में 25-25 मेगावाट की दो इकाइयाँ हैं। इसे तत्कालीन मुख्यमन्त्री हरिदेवजोशी ने जनवरी, 1986 को राष्ट्र को समर्पित किया था। इस से जून, 87 तक 23 करोड़ 16 लाख 7 हजार इकाई बिजली का उत्पादन किया जा चुका है। दूसरे विद्युत गृह से मार्च, 1989 से उत्पादन शुरू होने की आशा है इस विद्युत गृह का निर्माण बांसवाड़ा से 40 किलोमीटर दूर लिलवानी पर किया जा रहा है। विद्युत गृह में 45-45 मेगावाट की दो इकाइयाँ हैं।

परियोजना के प्रारम्भ के समय इसकी कुल लागत 29 करोड़ रुपये आँकी गई थी लेकिन वर्ष 1987 तक कुल 187 करोड़ 82 लाख खर्च किये जा चुके हैं। वर्ष 1987-88 में इस क्षेत्र में 13,000 हेक्टेयर क्षेत्र में भूमि सुधार कार्य किये जाने प्रस्तावित है जिस के लिये राज्य सरकार द्वारा 56 लाख रुपये की राशि राज्य योजना में निर्धारित की गई है।

बांसवाड़ा जिले की माही बजाज सागर बहुउद्देशीय परियोजना से 1988-89 वर्ष के अन्त तक सिंचाई व विद्युत उत्पादन का लक्ष्य पूरा कर लिया जायेगा। माही परियोजना से एक नवम्बर 1983 को स्व. प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने जल प्रवाहित कर सिंचाई का शुभारम्भ किया था। प्रथम रबी वर्ष 1983 में इससे 30 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में पानी छोड़ा गया था। दूसरे वर्ष रबी 1984 में 45 हजार हैक्टेयर, तीसरे वर्ष रबी 1985 में 60 हजार हैक्टेयर तथा गत वर्ष 86-87 के अंत तक 73 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में किसानों को पानी उपलब्ध करवाया गया।

माही कमाण्ड क्षेत्र की विस्तार योजना के तहत इस परियोजना से 64 हजार 500 अतिरिक्त क्षेत्र को सिंचित

करने का कार्यक्रम भी है। इसके तहत बांसवाड़ा जिले के भूंगड़ा, आनन्दपुरी, कुशलगढ़ तथा डूंगरपुर जिले की सागवाड़ा एवं आसपुर तहसील लाभान्वित होगी। इस प्रकार आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक माही परियोजना से कुल एक लाख 44 हजार 500 हैक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई होने लगेगी। सिंचित क्षेत्र में वृद्धि के कारण अब इस परियोजना की संशोधित अनुमानित लागत 397.06 करोड़ रुपये आंकी गई है। वर्तमान में भूंगड़ा, आनन्दपुरी एवं सागवाड़ा नहरों की खुदाई का कार्य अकाल राहत के अन्तर्गत चलाया जा रहा है।

माही की सिंचाई से इस आदिवासी क्षेत्र के किसानों के खेतों में अच्छी उपज होने लगी है जबकि पहले इन खेतों पर कुछ भी पैदा नहीं होता था।

सिंचाई एवं विद्युत की सुविधा मिलने के कारण इस आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में बदलाव के साथ कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में भी आमूलचूल परिवर्तन होने की आशा है। जिले में माही बांध के पृष्ठ जल के किनारे एक अणु बिजली घर की स्थापना करने का भी प्रस्ताव है जिसे भारत सरकार ने अपनी मंजूरी दे दी है।

जवाई बांध योजना

पश्चिमी राजस्थान के काफी बड़े सिंचाई स्रोत व सिरोही, पाली, जालौर व जोधपुर जिलों की प्यास बुझाने वाला जवाई बांध पश्चिमी रेल्वे की दिल्ली-अहमदाबाद रेल लाइन पर पाली जिले में जवाई नदी पर एरिनपुरा रेल्वे स्टेशन से 2.5 किलोमीटर दूर अरावली पर्वत की गोद में बसा आज भी अपनी क्षमता का जीवन्त परिचायक है।

राजस्थान की रियासतों के एकीकरण से पहले बार-बार पड़ने वाले अकाल की समस्या को हल करने के उद्देश्य से सन् 1904-5 में वहां के मुख्य इंजीनियर डॉ. हेन्स ने जवाई नदी पर एरिनपुरा स्टेशन से 2 कि.मी. दूर पर बांध बनाने के लिए सर्वेक्षण किया था। इस योजना पर 1946 में काम आरम्भ हुआ था। इसके जलाशय को उम्मेद सागर नाम दिया गया।

इस बांध का निर्माण कार्य मई, 1946 में जोधपुर रियासत के तत्कालीन महाराजा उम्मेदसिंह ने करवाया जो सन् 1956 में पूरा कर लिया गया। इसी वर्ष से बांध में जल की आंशिक भराई शुरू कर दी गई। इस परियोजना के अन्तर्गत एक जलाशय, एक कंक्रीट बांध, दो मिट्टी के बांध, दो पार्श्व दीवारें और नहरों का निर्माण कार्य सम्मिलित है। यह बांध 923 मीटर लम्बा तथा 34 मीटर ऊंचा है। इसमें 740 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का 21.5 लाख घन मीटर जल एकत्रित होता है। यहां से इस जल का वितरण कंक्रीट की बनी हुई नहरों के द्वारा किया गया है। इस बांध से 22 किलोमीटर लम्बी मुख्य नहर निकाली गई हैं। इस मुख्य नहर से 4 शाखाएं और निकाली गई हैं जो 176 किलोमीटर लम्बी हैं। नहर के पश्चिम की ओर से निकाली गई शाखा पाली जिले में तथा दूसरी नहर, जो पूर्वी भाग से निकाली गई है, सिरोही जिले में सिंचाई करती है।

मुख्य बांध के अगल-बगल में दो बांध बनाये गए हैं, जिनका अग्रभाग तो पक्का है, किन्तु आधार मिट्टी का है। इन बांधों का काम जल को जलाशय की बगलों से इधर-उधर जाने से रोकना है। इस प्रकार दो दीवारें पार्श्व में हैं जिनकी लम्बाई क्रमशः 1,070 मीटर तथा 1,220 मीटर है। ये दीवारें जलाशय के तटों का काम करती हैं ताकि बाढ़ के रूप में जल नष्ट न हो सके।

जवाई बांध का कुल नियन्त्रण क्षेत्र 46,250 हैक्टेयर है जिसमें से कृषि योग्य नियन्त्रण क्षेत्र 41,.00 हैक्टेयर है। पाली जिले में 26,550 हैक्टेयर व जालोर जिले से 14,860 हैक्टेयर एवं प्रस्तावित सिंचित क्षेत्र 17,600 हैक्टेयर है। बांध से पाली जिले के 33 गांवों तथा जालौर जिले के 24 गांवों की जमीन की सिंचाई होती है।

जवाई बांध से सिंचाई शुरू होने के समय से मात्र 1980-81 में 19000 हैक्टेयर भूमि में सिंचाई की गई जो उस समय तक सबसे अधिक थी परन्तु 1985-86 वर्ष में बारावंदी लागू करके पूर्ण भराव के पानी से ही 23,000 हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की गई जो बहुत बड़ी उपलब्धि है।

बांध की योजना बनने तक इससे जोधपुर शहर व अन्य गांवों को पीने का पानी देने का कोई प्रस्ताव नहीं था लेकिन जैसे-जैसे पानी की मांग बढ़ती गई वैसे-वैसे पहिले तो हेमावास (पाली) बांध से तथा बाद में मने

1960 से इस बांध का पानी भी उन स्थानों को दिया जाने लगा। पाली के लिये पिछले कुछ वर्षों में 592.5 मिलियन घन मीटर पानी सुरक्षित रखा जाता है। इसके निर्माण के बाद केवल 1973 व 1983 में ही यह बांध अपनी पूरी भराव क्षमता को पार कर सका। केवल इन्हीं दो समयों में बांध का पानी मुख्य दरवाजों के ऊपर से बहा।

पानी की आवक कम होने के कारण राज्य सरकार ने 'सेई परियोजना' का निर्माण उदयपुर जिले की कोटड़ा तहसील में करवाया। सेई बांध के पानी को जवाई नदी में मिलाने के लिए सरकार ने एक योजना कार्यान्वित की थी जिसके अन्तर्गत सेई के पानी को एक सुरंग के माध्यम से इसमें मिलाये जाने का प्रावधान था जो अभी कुछ ही समय पूर्व शुरू हुआ है। इस पानी को जवाई बांध में मिलाये जाने से साधारण वर्षा में 54.96 मिलियन घन मीटर पानी अतिरिक्त आने का अनुमान है। गत वर्षों में सेई से इस बांध में 317 घन मीटर पानी मिलाया गया। प्रत्येक वर्ष बांध के पानी का बंटवारा करने के लिए एक कमेटी भी है।

राज्य सरकार ने जवाई नियन्त्रण क्षेत्र की नहरों के आधुनिकीकरण की भी एक योजना को हाथ में लिया है। इस योजना के अन्तर्गत नहरों की क्षमता बढ़ाना, नहरों को पक्का करवाना और पक्कों का पुनर्निर्धारण करना आदि है जिससे जवाई बाँध के पानी का अधिकतम उपयोग किया जा सके व क्षेत्र के खेतों की अच्छी सिंचाई हो सके।

यह वास्तविकता है कि जवाई परियोजना पश्चिमी राजस्थान की प्यासी भूमि को सिंचित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है लेकिन सिरोही जिले को जितना फायदा मिलना चाहिये उसका पांचवा भाग भी नहीं मिल पा रहा है।

जाखम परियोजना—उदयपुर जिले के आदिवासी क्षेत्रों में सिंचाई साधनों के विकास के लिए कई परियोजनाओं पर काम चल रहा है। जाखम वृहद् सिंचाई परियोजना इनमें से एक है। इसके पूर्ण हो जाने पर लगभग 107 गांवों के खेत इसके पानी से लहलहायेंगे तथा साथ ही पन-बिजली का उत्पादन भी होगा।

जाखम सिंचाई परियोजना के अन्तर्गत बांध के अतिरिक्त एक पिक-अप वियर का निर्माण भी किया गया है। मुख्य बाँध चित्तौड़गढ़ जिले की प्रतापगढ़ तहसील के अनूपपुरा गांव के पास जाखम नदी पर बनाया जा रहा है। इसी जिले में छोटी सादड़ी कस्बे के पास जाखम नदी का उद्गम स्थल है। जाखम नदी के पानी का उपयोग सिंचाई हेतु करने के लिये राज्य सरकार ने 1962 में इस परियोजना को स्वीकृति प्रदान की थी।

जाखम सिंचाई बाँध का निर्माण ऐसे स्थान पर किया जा रहा है जहाँ पर नदी एक गहरी घाटी से गुजरती है। नदी का रास्ता पथरीला है जो घने जंगल में घिरा हुआ है आवक क्षेत्र के आस-पास पहाड़ियां होने से वहाँ सिंचाई के योग्य भूमि नहीं हैं। इसलिये बाँध के पानी को सिंचाई वाले क्षेत्र तक लाने के लिये बाँध से नीचे की तरफ 13 किलोमीटर दूर नामलिया गांव के पास छोटे बाँध (पिक-अप-वियर) का निर्माण किया गया।

परियोजना का मुख्य कार्य शुरू करने के लिये सन् 1969 और 1970 में बाँध और नहरों का विस्तृत सर्वेक्षण, भू-गर्भीय सर्वेक्षण, डिजाइन, हाइड्रोलिक अनुसन्धान आदि कार्य कराये गये तथा पुनः नये सिरे से परियोजना के अर्जित लाभ, जल उपलब्धि, सिंचाई लक्ष्य आदि को ध्यान में रखते हुए परियोजना का प्रारूप तैयार किया गया। इस पर अनुमानित लागत 11 करोड़ 60 लाख रुपये आंकी गई जो बढ़कर 43 करोड़ रुपये हो गयी। इसके पूर्ण होने पर आदिवासी क्षेत्र की धारियावाद तहसील के 67 गाँवों की लगभग 21 हजार हैक्टेयर अतिरिक्त भूमि को सिंचाई सुविधा मिल सकेगी।

परियोजना के अन्तर्गत निर्मित किये जा रहे 81 मीटर ऊंचे और 253 मीटर लम्बे बाँध का निर्माण केन्द्रीय जल आयोग द्वारा भी यहाँ की विशिष्ट भौगोलिक दशा को ध्यान में रखते हुये तैयार किये गये डिजाइन के आधार पर किया जा रहा है। बाँध में 14 ब्लाक बनाये गए हैं। परियोजना का अधिकतर कार्य प्रायः पूरा हो चुका है। बाकी के कार्य शीघ्र ही पूरे कराने का लक्ष्य है।

पिक-अप वियर को सुदृढ़ करने तथा सुरक्षित बनाने की दृष्टि से केन्द्रीय जल आयोग ने रूपरेखा तैयार की

है। नहरों की निकासी के लिए हैडवर्क्स भी तैयार हो चुका है। इस लघु बांध के दोनों किनारों से 63 किलोमीटर लम्बी दो प्रमुख नहरें निकाली गई हैं। दांई नहर 24 किलोमीटर व बांई नहर 40 किलोमीटर लम्बी होगी। शाखा नहरों तथा माइनरों की लम्बाई 225 किलोमीटर होगी। इस योजना में सभी नहरें पक्की बना कर पानी का सदुपयोग किया जायेगा। जल धोरों का निर्माण सातवीं पंचवर्षीय योजना में पूरा करने का प्रस्ताव है।

उदयपुर से 152 किलोमीटर और धरियावद व प्रतापगढ़ से 32 किलोमीटर दूर मुख्य बांध स्थल तक पक्की सड़क बना दी गयी है।

इस परियोजना से रबी में 60 प्रतिशत और खरीफ में 20 प्रतिशत सिंचाई का प्रस्ताव है। दांई नहर से हर वर्ष 5000 हैक्टेयर और बांई नहर से 16390 हैक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई होगी। धरियावद के कुल 104 गांव और प्रतापगढ़ (चित्तौड़गढ़) तहसील के 3 गांवों की 21040 हैक्टेयर से अधिक कृषि भूमि को सिंचाई सुविधा मिलेगी। आदिवासी किसानों के लिए यह परियोजना वरदान सिद्ध होगी।

बांध पर जल विद्युत उत्पादन के लिए एक बिजली घर के निर्माण का प्रस्ताव है। यहाँ 4.5 मेगावाट क्षमता की दो इकाईयाँ कायम की जायेगी।

ओराई सिंचाई योजना—यह बांध चित्तौड़गढ़-बूंदी सड़क मार्ग पर भोपालपुरा गांव के समीप ओराई नदी पर बनाया गया है। ओराई नदी अपना उद्गम स्थान मध्यप्रदेश में रखती है। यह नदी मध्यप्रदेश में लगभग 35 किलोमीटर वह कर राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जिले में प्रवेश करती है जहाँ यह लगभग 20 किलोमीटर वह कर सेविया ग्राम के समीप बनास नदी की सहायक नदी बेड़च में मिल जाती है।

यह परियोजना द्वितीय पंचवर्षीय योजना अवधि में प्रस्तावित की गई, जिसका निर्माण कार्य सन् 1962 में प्रारम्भ होकर सन् 1967 में पूर्ण हो गया। मुख्य बांध नदी के तल से 20 मीटर ऊँचा है। इसकी जल-भराव क्षमता लगभग 3,810 लाख घन मीटर है। बांध के पानी का फैलाव लगभग 8 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में है। मुख्य बांध के दूसरी ओर मिट्टी का सेड़ल-डेम बनाया गया है जिसकी लम्बाई एक किलोमीटर है तथा अधिकतम ऊँचाई 7 मीटर है।

इस बांध की मुख्य नहर की लम्बाई लगभग 34 किलोमीटर है जो राजगढ़, रुपारेल वरधनी व देवली नालों पर बड़े-बड़े पुलों द्वारा पार करती है। इस नहर के लिए सबसे अधिक खुदाई बरधनी गांव के निकट भेरु घाटी में 8 मीटर तक की गई है। बांध का जल क्षेत्र 216 वर्ग किलोमीटर है। इस बांध की कुल भराव क्षमता 3,810 लाख घन मीटर में से 268 लाख घन मीटर डैड स्टोरेज है अर्थात् मोरी के नीचे का पानी जो सिंचाई के काम में नहीं आ रहा है।

सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध हो जाने के कारण इस क्षेत्र में गेहूँ, गन्ना, कपास, तिलहन आदि का उत्पादन हो रहा है। बांध के समीप घने जंगल होने के कारण इस क्षेत्र को सुरक्षित वन पशु स्थल के रूप में विकसित किया गया है। राजस्थान सरकार ने एक विश्रान्ति ग्रह का निर्माण किया है जिससे पर्यटक यहाँ आकर लुभावने दृश्यों तथा घने जंगल के सम्मोहनीय प्राकृतिक सुन्दरता का आनन्द उठा सकें। बांध में 20 मीटर डैड स्टोरेज होने के कारण मछली भी पकड़ी जाती है।

अन्य योजनाएँ—राजस्थान में उपरोक्त बड़ी योजनाओं के अतिरिक्त अन्य योजनाएं भी हैं जिनमें से कुछ पूरी हो चुकी हैं और कुछ योजनाओं का विवरण इस प्रकार है।

मोरेल बांध—सवाईमाधोपुर तहसील में लालसोट से लगभग 16 किलोमीटर दूर मोरेल नदी पर मिट्टी का एक बांध बनाया गया है। इसके निर्माण पर 52 लाख रुपये की लागत आई है। इससे वर्तमान में 8.6 हजार हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई हो रही है।

गुढ़ा योजना—बूंदी से लगभग 19 किलोमीटर की दूरी पर मिट्टी का एक बांध 71.80 लाख रुपये की लागत से सन् 1958 में बनाया गया है जिससे 8.1 हजार हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है।

बांकली बांध—यह बांध अरावली पर्वत से निकलने वाली सूकड़ी नदी पर 9.65 लाख रुपये की लागत से सन् 1956 में बनाया गया। सूकड़ी नदी, लूनी नदी की सहायक है। इस बांध से जालोर व पाली जिलों की

1.8 हजार हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई होती है।

पार्वती योजना—यह बांध धौलपुर जिले में अंगाई रेल्वे स्टेशन के समीप पार्वती नदी पर सन् 1959 में 122 लाख रुपये की लागत से बनाया गया। इसके जलाशय का आवाह क्षेत्र 795 वर्ग किलोमीटर है तथा इसकी भराव क्षमता 1220 लाख घन मीटर जल की है इस बांध की लम्बाई 7 किलोमीटर तथा मुख्य नहर की लम्बाई 56 किलोमीटर है। वर्ष 1960 में इससे 1352 हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई की गई थी जबकि वर्तमान में इससे 12100 हैक्टेयर पर सिंचाई हो रही है।

मेजा बांध – भीलवाड़ा में मांडल कस्बे से 8 किलोमीटर दूर कोठारी नदी पर एक बांध बनाया गया है। इस बांध का निर्माण कार्य 1956-57 में समाप्त हो गया था लेकिन पूरी योजना 1972 में पूर्ण हुई जिस पर 97.35 लाख रुपये व्यय हुए। इस योजना से 57 गांवों की 10.5 हजार हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। इस सिंचित क्षेत्र में गन्ने तथा फलों का उत्पादन किया जा रहा है। इससे भीलवाड़ा नगर को पीने का पानी एक पाईप लाईन द्वारा उपलब्ध कराया जा रहा है। पाईप लाईन का कार्य 15 फरवरी 1985 को पूर्ण हो गया हैं।

खारी बांध—यह बांध आसिन्द से 8 किलोमीटर दूर खारी नदी पर बनाया गया है। यह बांध 1957 में 37 लाख रुपये की लागत से बनकर तैयार हो गया था। इस बांध के द्वारा आसीन्द तहसील के 74 गांवों की 3.8 हजार हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई होती है। इसका लाभ रवी तथा खरीफ दोनों की फसलों को होता है।

अड़वान बांध—इस बांध का निर्माण शाहपुरा के समीप मन्सी नदी के पानी का उपयोग करने के लिए सन् 1959 में किया गया। इस पर कुल व्यय 50 लाख रुपयों का हुआ। यह 5.5 हजार हैक्टेयर भूमि को सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध करवाता है। शाहपुरा पंचायत समिति ने 16 पम्पों की सहायता से जलोत्थान योजना के द्वारा 405 हैक्टेयर भूमि पर इस बांध से पानी उपलब्ध करवा दिया है जिसके फलस्वरूप कृषि कार्य प्रारम्भ हो गया है।

पश्चिमी बनास योजना–इस योजना का प्रारम्भ सन् 1958-59 में हुआ। यह बांध मिट्टी का बनाया गया है जिसकी लम्बाई 3,366 मीटर तथा चौड़ाई 3.6 मीटर से 4.8 मीटर है। इसकी ऊंचाई 1.65 मीटर है। यह बांध पिण्डवारा तहसील में स्वरुपगंज के समीप पश्चिमी बनास नदी पर बनाया गया है। इसके जलाशय की भराव क्षमता 460 मिलियन घन मीटर जल है। इससे निकलने वाली नहरों की कुल लम्बाई 90 कि. मी. हैं। इसका अपवाह क्षेत्र 5,180 हैक्टेयर है और यह 4000 हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई की सुविधा प्रदान कर रही है। इस योजना पर 65 लाख रुपये व्यय हुये हैं।

गम्भीरी योजना–इस बांध का निर्माण सन् 1956 में निम्बाहेड़ा तहसील में मोथा और आनिया के समीप गम्भीरी नदी पर मिट्टी से किया गया। नदी के दोनों ओर नहरों का निर्माण कर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करवायी गयी है। इसकी मुख्य नहरों की लम्बाई 50 कि. मी. तथा वितरक नहरों की लम्वाई 22 कि. मी. है। इससे 6.2 हजार हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई निम्बाहेड़ा, गंगरार तथा चित्तौड़गढ़ तहसीलों में हो रही है।

अन्य कुछ महत्वपूर्ण मध्यम व छोटी सिंचाई योजनायें नारायाण साग, लासाड़िया (अजमेर), पालवपुरा, बन्दी का गोठरा (बू दी), जोतपुर, झाडौल (भीलवाड़ा), पलनिया (कोटा), गलवा, मॉसी (टौंक), वेड़ाच वड़गाँव, वेड़ाच वल्लभनगर, खोरी, फीडर, डाइया (उदयपुर) तथा हरीशचन्द्र सागर (झालावाड़) आदि भी उल्लेखनीय है।

बिलास सिंचाई योजना–कोटा जिले के मानगढ़ गाँव के निकट बिलास नदी पर एक बाँध बनाया जा रहा है। यह नदी चम्बल वेसिन की पार्वती नदी की एक सहायक नदी है और एक मुख्य नहर जलाशय के दाहिने मुहाने से निकलती है।

इस परियोजना के अन्तर्गत 3,750 मीटर लम्बा एक मिट्टी का बाँध, 570 मीटर लम्बा पानी निकालने के लिए एक चैनल, एक मुख्य नियन्त्रक दाहिनी तरफ तथा एक 20 किलोमीटर लम्बी एक पक्की नहर का कार्य शामिल है।

इस परियोजना से कोटा जिले में प्रतिवर्ष 2,500 हैक्टेयर भूमि की सिंचाई होने की सम्भावना है।

इन्दिरा लिफ्ट सिंचाई योजना—सवाईमाधोपुर जिले

सन् 1958-59 में हुआ। यह बाँध मिट्टी का बनाया गया है जिसकी लम्बाई 3,366 मीटर तथा चौड़ाई 3.6 मीटर से 4.8 मीटर है। इसकी ऊंचाई 1.65 मीटर है। यह बांध पिण्डवारा तहसील में स्वरूपगंज के समीप पश्चिमी बनास नदी पर बनाया गया है। इसके जलाशय की भराव क्षमता 460 मिलियन घन मीटर जल है। इससे निकलने वाली नहरों की कुल लम्बाई 90 कि.मी है। इसका अपवाह क्षेत्र 5,180 हैक्टेयर है और यह 4,000 हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई की सुविधा प्रदान कर रही है। इस योजना पर 65 लाख रुपये व्यय हुए हैं।

गम्भीरी योजना— इस बांध का निर्माण सन् 1956 में निम्बाहेड़ा तहसील में मोथा और आतिया के समीप गम्भीरी नदी पर मिट्टी से किया गया। नदी के दोनों ओर नहरों का निर्माण कर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करवायी गई है। इसकी मुख्य नहरों की लम्बाई 50 कि.मी. तथा वितरक नहरों की लम्बाई 22 कि.मी. है। इससे 6.2 हजार हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई निम्बाहेड़ा, गंगरार तथा चित्तौड़गढ़ तहसीलों में हो रही है।

अन्य कुछ महत्वपूर्ण मध्यम व छोटी सिंचाई योजनाएं नारायण साग, लासाड़िया (अजमेर); पालवपुरा, बन्दी का गोठरा (बूंदी); जोतपुर, झाडौल (भीलवाड़ा) पलनिया (कोटा); गलवा, मॉसी (टोंक); वेड़ाच बड़गांव वेड़ाच वल्लभनगर, खोरी फीडर, डाइया (उदयपुर) तथा हरीशचन्द्र सागर (झालावाड़) आदि भी उल्लेखनीय हैं।

विलास सिंचाई योजना—कोटा जिले के मानगढ़ गांव के निकट विलास नदी पर एक बांध बनाया जा रहा है। यह नदी चम्बल बेसिन की पार्वती नदी की एक सहायक नदी है और एक मुख्य नहर जलाशय के दाहिने मुहाने से निकलती है।

इस परियोजना के अन्तर्गत 3,750 मीटर लम्बा एक मिट्टी का बांध, 570 मीटर लम्बी पानी निकालने के लिए एक चैनल, एक मुख्य नियन्त्रक दाहिनी तरफ तथा एक 20 किलोमीटर लम्बी एक पक्की नहर का कार्य शामिल है।

इस परियोजना से कोटा जिले में प्रतिवर्ष 2,500 हैक्टेयर भूमि की सिंचाई होने की सम्भावना है।

इंदिरा लिफ्ट सिंचाई योजना—सवाईमाधोपुर जिले में प्रस्तावित सिंचाई योजनाओं में इंदिरा लिफ्ट योजना सबसे बड़ी है। इस योजना से चम्बल नदी के जल को मण्डराये से लगभग 20 किलोमीटर दक्षिण में कसेड गाँव के समीप 124 मीटर उठाकर गंगापुर, करौली, हिण्डोन, बामनवास, नादौती, टोडाभीम व महुआ तथा भरतपुर जिले की बयाना तहसील के 370 गांवों की लगभग 94 हजार हैक्टेयर कृषि योग्य भूमि की सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराई जा सकेगी।

योजना के प्रारम्भिक सर्वेक्षण के अनुसार इस योजना के अन्तर्गत लिफ्ट किये गये पानी को कृषि योग्य भूमि तक पहुंचाने के लिये ऊंची-ऊंची पहाड़ियों को पार करना पड़ेगा जिससे लगभग 10 किलोमीटर लम्बी सुरंग बनाने की भी आवश्यकता पड़ेगी। परियोजना पर करीब 50 करोड़ रुपये खर्चे का अनुमान है तथा जलोत्थान के लिये लगभग 33 हजार किलोवाट बिजली की आवश्यकता होगी।।

पीपलदा लिफ्ट सिंचाई योजना— सवाईमाधोपुर जिले की खण्डार तहसील के 34 गांवों की कुल 12,930 हैक्टेयर कृषि भूमि की सिंचाई कर हरा-भरा करने के लिए प्रस्तावित यह योजना चम्बल नदी पर गण्डावर गांव के समीप पंपों से 58 मीटर पानी उठा सकेगी। इस योजना की अनुमानित लागत 5.29 करोड़ रुपये आंकी गई है।

सोमकागदर सिंचाई योजना—उदयपुर जिले में सोमकागदर सिंचाई योजना का निर्माण किया गया है। इसके द्वारा गत वर्ष 6,000 हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराई गई थी। इसकी अनुमानित लागत 10.30 करोड़ रुपये है तथा यह 6.84 हजार हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई सुविधायें प्रदान करेगी।

सोम-कमला-अंबा सिंचाई परियोजना— डूंगरपुर जिले में सोम-कमला-अंबा सिंचाई परियोजना का निर्माण किया गया है जो 14,000 हैक्टेयर भूमि को अतिरिक्त सिंचाई की सुविधाएं प्रदान करेगी।

पांचना परियोजना — राजस्थान के पूर्वी जिले सवाईमाधोपुर से करौली उप-जिले के गुड़ला गांव के निकट पांच नदियों— भद्रावती, बरखेड़ा, अटा, माची

तथा भैंसावट के संगम पांचना सिंचाई क्षेत्र में 1 किमी. लम्बा बांध बनाया गया है।

सवाईमाधोपुर में गम्भीर नदी पर पांचना बांध का निर्माण कार्य 1979-80 से प्रगति पर है। इसकी अनुमानित लागत 21 करोड़ रुपये है जिसमें अमरीकी सहायता के माध्यम से पैसा मिल रहा है।

पांचना बांध बालू मिट्टी से बनाया गया है जो अब से तीन साल पूर्व ही बन गया था। अब बांध के फालतू पानी की निकासी के लिए स्पिल-वे बनाने के लिए अभी चट्टानों को तोड़ने का काम चल रहा है। पांचना बांध की ऊंचाई मूल योजना के अनुसार 13.5 मीटर थी लेकिन बाद में इसकी ऊंचाई बढ़ाकर 25.5 मीटर निर्धारित कर दी गई हैं। योजना की पूर्णता में अभी कम से कम पांच वर्ष और लगने की सम्भावना है जिस के मध्य स्पिलवे का निर्माण, नामी एक्काडक्ट का अधूरा कार्य पूरा करना, कर एण्ड कवर चैन 60 से 71, चैन 150 से 172 बनाना एवं नहरों के साथ सड़कें पूरी करना आदि कार्य पूरे पूर्ण होने हैं। तब कहीं इस से पूरे लाभान्वित क्षेत्र 9,985 हेक्टेयर भूमि को इसकी पूर्ण जल क्षमता 250 क्यूसेक्स सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध होंगी।

पांचना बांध में पानी का पूर्ण भराव होने पर करौली कस्बे का कुछ भाग भी उसकी डूब में आयेगा, जो नदी गेट की तरफ है। इस भाग को भद्रावती नदी के पानी की डूब से बचाने के लिए एक परियोजना चूलीदेह तैयार की गई है, पर अभी तक उस पर काम नहीं हुआ है। अब एक दूसरी परियोजना पर विचार किया जा रहा है जिसमें नदी गेट के पास परकोटे के सहारे मिट्टी का बांध बनाने की व्यवस्था है। केन्द्रीय जल आयोग ने भी करौली नगर के खतरे को देखते हुए इस परियोजना को अव्यावहारिक बताया है।

बीसलपुर परियोजना—इस परियोजना के अन्तर्गत टोडारायसिंह कस्बे से 13 किलोमीटर दूर बनास नदी के किनारे बीसलपुर स्थान पर बीसलपुर बांध बनाया जायेगा। बीसलपुर बांध के निर्माण पर अनुमानतः 150 करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे जिससे टोंक, बूंदी तथा सवाईमाधोपुर जिलों के 571 गांवों की 80 हजार हैक्टेयर से भी अधिक कृषि भूमि की सिंचाई की जायेगी। यह बांध 580 मीटर लम्बा तथा इसकी ऊंचाई 21 मीटर होगी। इस बांध की नहर की लम्बाई 80,000 मीटर होगी इस बांध की जल संग्रह क्षमता 26,500 वर्ग किलोमीटर तथा जल ग्रहण क्षमता 76,000 लाख घन मीटर होगी। इस बांध के बन जाने से पीने के पानी हेतु 26,000 लाख घन मीटर पानी उपलब्ध हो सकेगा और वार्षिक सिंचाई क्षमता 61 हजार हैक्टेयर भूमि होगी।

बीसलपुर परियोजना के प्रथम चरण के साथ ही जन स्वास्थ्य अभियांत्रिक विभाग की 64 करोड़ रुपये की पेयजल योजना जुड़ी हुई है। अजमेर, ब्यावर, किशनगढ़, जयपुर शहर और जिले के कुछ गांवों के अलावा टोंक जिले के गांवों की इस विस्तृत योजना के बजाय फिलहाल बड़े शहरों को पानी पहुंचाने की योजना को पहले क्रियान्वित करने का प्रस्ताव है।

भारत सरकार के नगरीय विकास मंत्रालय ने बीसलपुर परियोजना की चौसठ करोड़ रुपये की तकनीकी योजना को मंजूरी दे दी है।

बीसलपुर पर 1988-89 वर्ष में ग्यारह करोड़ साठ लाख रुपये व्यय किए जाने का प्रावधान है। जिसमें से सात करोड़ पैंतालीस लाख रुपये सिंचाई विभाग और शेष राशि जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग को आवंटित की गई है।

सिंचाई विभाग पर एक करोड़ बीस लाख रुपए स्थापना पर तथा छह करोड़ पच्चीस लाख रुपया अन्य कार्यों पर व्यय करेगा।

जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग पेयजल के लिए पाइप लाइन डालने व फिल्टर प्लांट पम्पिंग स्टेशन आदि निर्माण कर व्यय करेगा।

परियोजना पर बांध निर्माण का कार्य अक्टूबर में आरम्भ किया जा रहा है। नसीराबाद से ब्यावर तक पाइप लाइन डालने का कार्य 1988-89 वर्ष में पूरा करने का प्रयास किया जाएगा जबकि कुछ अन्य मुख्य निर्माणाधीन योजनाएं मेजाफीडर कोठारी (भीलवाड़ा); गोसुन्दा, वस्सी (चित्तौड़गढ़); भीमसागर, छापी; हरिश्चन्द सागर (झालावाड़) आदि भी उल्लेखनीय हैं।

कृषि

राजस्थान की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। राज्य यद्यपि खनिजों में धनी है लेकिन संसाधन इतने अधिक विकसित नहीं हैं कि कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था के रूप को परिवर्तित किया जा सके। राज्य की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं पशुपालन से ही अपना जीविकोपार्जन करती है। कृषि न केवल ग्रामीण जनसंख्या के व्यवसाय एवं आय का आधार है बल्कि औद्योगिक कच्चे माल का स्रोत और राज्य की अर्थ-व्यवस्था की आधारशिला भी है। वर्तमान मूल्यों के आधार पर राज्य की कृषि तथा इससे सम्बन्धित क्षेत्रों से लगभग 1400 करोड़ की आय हुई है जो राज्य की सम्पूर्ण आय का 52 प्रतिशत है।

राजस्थान में कृषि तापक्रम, वर्षा के वितरण, उच्चावचन तथा मिट्टी की दशाओं से प्रभावित होती है। जयपुर, अलवर, भरतपुर, कोटा जिलों में ये दशायें अनुकूल हैं, इसलिए कृषि का विकास अधिक हुआ है। राज्य के पश्चिमी रेतीले मैदान में वर्षा का अभाव कृषि कार्यों को अधिक प्रभावित किये हुए है। इंदिरा गांधी नहर तथा चम्बल नदी द्वारा सिंचित क्षेत्र में कृषि की उपज अधिक प्राप्त होती है। दक्षिणी-पूर्वी एवं पूर्वी भाग में मिट्टी का प्रभाव कृषि उपज पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अरावली क्षेत्र में उच्चावचन कृषि कार्यों को शासित करता प्रतीत होता है।

राजस्थान का अधिकांश भाग शुष्क प्रदेश है जिसमें पानी का अभाव है, फलस्वरूप सिंचाई के साधनों का अधिकतम उपयोग ही कृषि के विकास के लिए अपरिहार्य है। अतः राज्य सरकार कृषि कार्यों के लिए पानी उपलब्ध कराने के लिए सतत प्रयास कर रही है जिसके परिणामस्वरूप राजस्थान में कृषि भूमि का उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार राज्य में 26,606 लाख हैक्टेयर भूमि ही कृषि योग्य है। 1951 में वास्तविक बोया गया क्षेत्र 93,13,000 हैक्टेयर था जो बढ़कर सन् 1984-85 में 163.41 लाख हैक्टेयर हो गया है और 1987-88 का लक्ष्य 181.50 लाख हैक्टेयर रखा गया है। इस प्रकार वास्तविक बोया गया क्षेत्रफल 1951 में कृषि योग्य का 27.16 प्रतिशत था जो बढ़कर सन् 1984-85 में 44.65 प्रतिशत हो गया।

भूमि उपयोग से यह स्पष्ट होता है कि उच्चावचन एवं शुष्कता के द्वारा निर्धारित सीमाओं के कारण राज्य के अधिकांश भाग का उपयोग कृषि कार्यों के लिए नहीं हो सकता क्योंकि भूमि उपयोग के कुल क्षेत्रफल का लगभग 8.52 प्रतिशत बंजर तथा अकृषित भूमि है, 18.75 प्रतिशत कृषि योग्य खाली भूमि के रूप में वर्गीकृत की गई है, लगभग 6 प्रतिशत क्षेत्रफल चालू पड़त तथा 6.10 प्रतिशत चालू पड़त के अतिरिक्त अन्य पड़त के रूप में है। लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्रफल कृषि कार्यों के लिए प्रयुक्त नहीं किया जाता है। यहाँ तक कि कृषि के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में उत्पादकता भारत के कुछ अन्य भागों की अपेक्षा काफी कम है। यह निम्न उत्पादकता पश्चिम की शुष्क, अर्द्धशुष्क दशाओं तथा अरावली शृंखला के फैलाव के कारण उत्पन्न कृषि निषेधखण्ड परिणामस्वरूप हैं। 50 सेन्टीमीटर की वर्षा रेखा राज्य को दो विशिष्ट जलवायु प्रदेशों प्रथम—पश्चिमी भाग के शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क प्रदेश तथा दूसरा पूर्व में उष्ण आर्द्र प्रदेश में विभक्त करती है।

पश्चिमी प्रदेश मरुस्थली जिलों पर विस्तृत है इसमें विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं जिनमें रेतीली-भूरी, धूसर तथा विषम कांपीय मिट्टियाँ अच्छी हैं लेकिन इसमें नमी की कमी सदैव बनी रहती है। इस प्रदेश में अपर्याप्त सिंचाई की सुविधाओं के कारण भूमि कार्य सीमित होकर रह गये हैं हांलाकि इस समय गंगानगर जिला राज्य में सबसे अधिक सिंचित क्षेत्रफल रखता है। इस प्रदेश में अधिकांशतः बाजरा, मोटे अनाज तथा दालों की खेती की जाती है। अगर कुछ जिलों के अनुसार बोये गये क्षेत्रफल का अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है कि जैसलमेर जिले के कुल क्षेत्रफल के 7.06 प्रतिशत क्षेत्रफल पर फसलें बोई जाती हैं जबकि चूरू में यह प्रतिशत 76.57 तक पहुँच

राजस्थान में भूमि उपयोग प्रतिरूप का अवलोकन निम्न तालिका से किया जा सकता है—

राजस्थान में भूमि उपयोग[1] (1980-81)

भूमि उपयोग का वर्गीकरण	क्षेत्रफल (हैक्टेयर में)	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
राजस्थान	3,42,26,931	100.00
वन	20,87,825	6.10
कृषि के लिये अनुपलब्ध		
गैर कृषि उपयोगों में प्रदत्त भूमि	15,07,123	4.40
बंजर तथा अकृषित भूमि	29,16,795	8.52
अन्य अकृषित भूमि (पड़त भूमि को छोड़कर)		
स्थाई चरागाह एवं अन्य चराई भूमि	18,33,634	5.36
वृक्ष एवं उपवनों के अन्तर्गत भूमि	24,313	0.07
कृषि योग्य खाली भूमि	64,15,595	18.75
पड़त भूमि		
चालू पड़त के अतिरिक्त अन्य पड़त	20,89.252	6.10
चालू पड़त	20,85,053	6.09
शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल	1,52,67,521	44.63
एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्रफल	20,82,113	6.08
कुल फसली क्षेत्रफल	1,73,49,634	50.71

जाता है जो कि राज्य के सभी जिलों की अपेक्षा अधिक है। कुल बोये गये क्षेत्रफल का प्रतिशत बीकानेर तथा पाली में क्रमशः 31.5 तथा 43.4 है जो कि राज्य में 44.63 प्रतिशत से कम है। पश्चिमी प्रदेश के अन्य सभी जिले राज्य के प्रतिशत से अधिक बोया गया क्षेत्रफल रखते हैं। लेकिन इस प्रदेश में अधिकतर खरीफ की फसलें ही बोयी जाती हैं क्योंकि सिचाई की सुविधाएँ गंगानगर, पाली व जालौर के सिवाय अन्य सभी जिलों में कम है।

पूर्वी आर्द्र प्रदेश—50 सेन्टीमीटर की वर्षा रेखा के पूर्व में स्थित हैं। वर्षा अच्छी हो जाने तथा सिचाई की सुविधायें पर्याप्त उपलब्ध होने के फलस्वरूप मुख्य से गेहूं, मक्का, कपास, गन्ना और तिलहन आदि फसलें बोयी जाती हैं। गंगानगर यद्यपि शुष्क प्रदेश में स्थित है फिर भी उपयुक्त एवं अच्छी सिचाई की सुविधाएँ उपलब्ध होने के कारण नकदी फसलों के अन्तर्गत बोये गये क्षेत्रफल का प्रतिशत अधिक रखता है।

इसी प्रकार उन जिलों में जिनमें पहाड़ी धरातल

1. Statistical Abstract, 1981, Directorate of Economics & Statistics, Rajasthan, Jaipur PP. 39-48.

राजस्थान
भूमि उपयोग प्रतिरूप
वर्ष 1981
उत्तर
पंजाब
हरियाणा
उत्तरप्रदेश
मध्य प्रदेश
गुजरात
पाकिस्तान
गंगानगर
बीकानेर
चूरू
झुंझुनू
सीकर
अलवर
भरतपुर
धौलपुर
जैसलमेर
जोधपुर
नागौर
जयपुर
अजमेर
टोंक
सवाईमाधोपुर
बाड़मेर
पाली
जालोर
सिरोही
उदयपुर
भीलवाड़ा
बूंदी
कोटा
चित्तौड़गढ़
झालावाड़
डूंगरपुर
बांसवाड़ा
शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल
स्थायी चरागाह एवं वृक्षकुंजों के अन्तर्गत भूमि
पड़त भूमि
वन
कृषि योग्य व्यर्थ भूमि
कृषि के लिये अनुपलब्ध क्षेत्रफल
0
50
100
150 कि.मी.

अधिक विस्तृत तथा सिंचाई की सुविधाएं पर्याप्त नहीं है, बोये गये क्षेत्रफल का प्रतिशत भी राज्य के प्रतिशत (44.63) से कम देखने को मिलता है जैसे उदयपुर में 17 प्रतिशत, सिरोही में 27.60 प्रतिशत, डूंगरपुर में 31.6 प्रतिशत, चित्तौड़गढ़ में 32.3 प्रतिशत, बूंदी में 37.46 प्रतिशत, बांसवाड़ा तथा अजमेर में 41 प्रतिशत।

राज्य में कृषि योग्य खाली भूमि 18.75 प्रतिशत है। जिलों में अगर इसका वितरण देखा जाये तो जैसलमेर जिले में 29.71 लाख हैक्टेयर तथा बीकानेर में 13.91 लाख हैक्टेयर भूमि कृषि योग्य खाली भूमि के अन्तर्गत आती है। राज्य की कुल कृषि योग्य खाली भूमि का 67 प्रतिशत इन दोनों राज्यों में मिलता है। इसी प्रकार एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्रफल भी सबसे कम जैसलमेर (8 हैक्टेयर) तथा बीकानेर (14,074 हैक्टेयर) जिलों में है जो राज्य के कुल एक बार से अधिक बोये गये क्षेत्रफल का 6.72 प्रतिशत है जबकि गंगानगर, अलवर तथा उदपुर जिलों में राज्य का एकबार से अधिक बोया गया क्षेत्रफल 30 प्रतिशत केन्द्रित है। राज्य की कुल बंजर और अकृषित भूमि 29.17 लाख हैक्टेयर में से 7.98 लाख हैक्टेयर भूमि उदयपुर तथा जैसलमेर जिलों में पाई जाती है। इस प्रकार राज्य में भूमि उपयोग के विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत काफी विषमताएं पाई जाती हैं जो इसके अध्ययन को और अधिक जटिल बना देती है।

अन्य राज्यों की तुलना में राजस्थान में जोत क्षेत्रों का औसत आकार बड़ा है। पश्चिम के शुष्क प्रदेश में जोतों का आकार और भी बड़ा है। इस क्षेत्र में केवल वही फसलें उगाई जाती है जो कम आर्द्रता या नमी चाहती हों तथा साथ ही शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क अवस्थाओं में जीवित रह सकती हैं। ये फसलें काफी कड़ी व कठोर होती हैं तथा पूर्वी प्रदेश की फसलों की अपेक्षा इन्हें श्रम तथा देखभाल की कम आवश्यकता होती है।

गेहूं, जौ व कपास आदि फसलों की औसत उपज राज्य के दोनों प्रदेशों में तथा चावल, मक्का, बाजरा और तिलहन आदि फसलों की औसत उपज पूर्वी नम प्रदेशों में अधिक है। शुष्क प्रदेशों में बाजरा, ज्वार और मोटे अनाज की औसत उपज की तुलना जब भारत की औसत उपज से की जाती है तो काफी कम आती है। राज्य में गौण अनाज, दालें और मोटे अनाज का प्रतिशत कुल फसली क्षेत्र 173.5 लाख हैक्टेयर का लगभग 60 प्रतिशत है जिसके परिणामस्वरूप राज्य में कृषि की उत्पादकता काफी कम हो जाती है। ये फसलें कम वर्षा क्षेत्र में उपलब्ध कम तथा अपर्याप्त सिंचाई की सुविधाएं, उच्च तापक्रम तथा ग्रीष्म ऋतु में कम वर्षा (विशेष रूप से पश्चिमी रेतीले मैदानों में) आदि दशाओं में उगाई जाती हैं, जिसके कारण इनका प्रभाव फसल की उपज पर विपरीत रूप से पड़ता है। उच्च तापक्रम ग्रीष्म ऋतु में वाष्पीकरण की दर को बढ़ा देता है। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में फसलों के लिए अधिक नमी की आवश्यकता में वृद्धि हो जाती है। नागौर, बीकानेर, बाड़मेर, चूरू, जोधपुर और जैसलमेर जिलों में पानी की अत्यधिक कमी के बावजूद विस्तृत क्षेत्र कृषि के अन्तर्गत लाये गये हैं जो भौगोलिक कारकों के द्वारा न्यायसंगत नहीं है। इसका परिणाम यह है कि राज्य के पूर्वी आर्द्र भागों की अपेक्षा प्रति हैक्टेहर उपज यहाँ कम होती है।

राजस्थान में कृषि जनसंख्या का घनत्व भारत के अन्य भागों की तुलना में कम है। यह पूर्वी आर्द्र प्रदेश में प्रति 100 हैक्टेयर 88 व्यक्ति है जबकि पश्चिमी रेतीले मैदान में प्रति 100 हैक्टेयर 37 व्यक्ति ही हैं। भारत में कृषि तथा इससे सम्बन्धित उपलब्ध भूमि पर प्रति 100 हैक्टेयर के पीछे 127 व्यक्ति का घनत्व आता है। राजस्थान का अधिकतर भाग शुष्क तथा अर्द्ध-शुष्क दशाओं वाला तथा रेतीली मिट्टी का क्षेत्र है जिसके परिणामस्वरूप यह कम उपजाऊ है। अतः यहां जनसंख्या का दबाव कम है और कृषि निषेध क्षेत्रों के विस्तृत भू-भाग राज्य के पश्चिमी भाग में देखने को मिलते हैं। परिणाम यह है कि पश्चिम में बड़ी आकार वाले जोत हैं। उत्पादन कम होने के कारण किसानों को बहुत ही विस्तृत क्षेत्र पर कृषि करनी होती है जिससे उत्पादन इतना हो सके कि वह अपनी उदरपूर्ति कर सके। राजस्थान में कम उत्पादन होने के लिए खाद व उर्वरकों का कम उपयोग तथा पिछड़े एवं आदिम कृषि तरीकों को भी गिनाया जा सकता है।

फसल चक्र प्रतिरूप—

कृषि भूगोल फसलक्रम के वितरण से सम्बन्धित है। राजस्थान जैसे एक विस्तृत क्षेत्र का अध्ययन करते समय यह उचित होगा कि कुछ मुख्य विशेषताएं जो विस्तृत क्षेत्रों पर कृषि कार्यों से सम्बन्धित हो, पर एक माप दण्ड का चयन कर लिया जाये। मुख्य प्रदेशों के अन्तर्गत विषमताएं अंकित की जा सकती हैं।

विभिन्न कृषि फसलों का अध्ययन सांख्यिकीय आधार पर किया गया है (मानचित्र—फसलों का वितरण)। फसलों को खाद्य एवं व्यावसायिक फसलों के वर्गों में बांटा गया है। खाद्य फसलें जैसे अनाज व दालें तथा व्यावसायिक फसलें जैसे तिलहन, गन्ना व कपास आदि। विभिन्न प्रकार की फसलों का वर्णन उनके अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रफल के आधार पर प्रत्येक जिले के लिए, फिर प्रत्येक फसल का क्षेत्रफल जिले के कुल फसली क्षेत्रफल के आधार पर किया गया है। ये दोनों माप दण्ड स्पष्ट रूप से राज्य के विभिन्न भागों में विभिन्न फसलों का भारी केन्द्रीयकरण दर्शाते हैं।
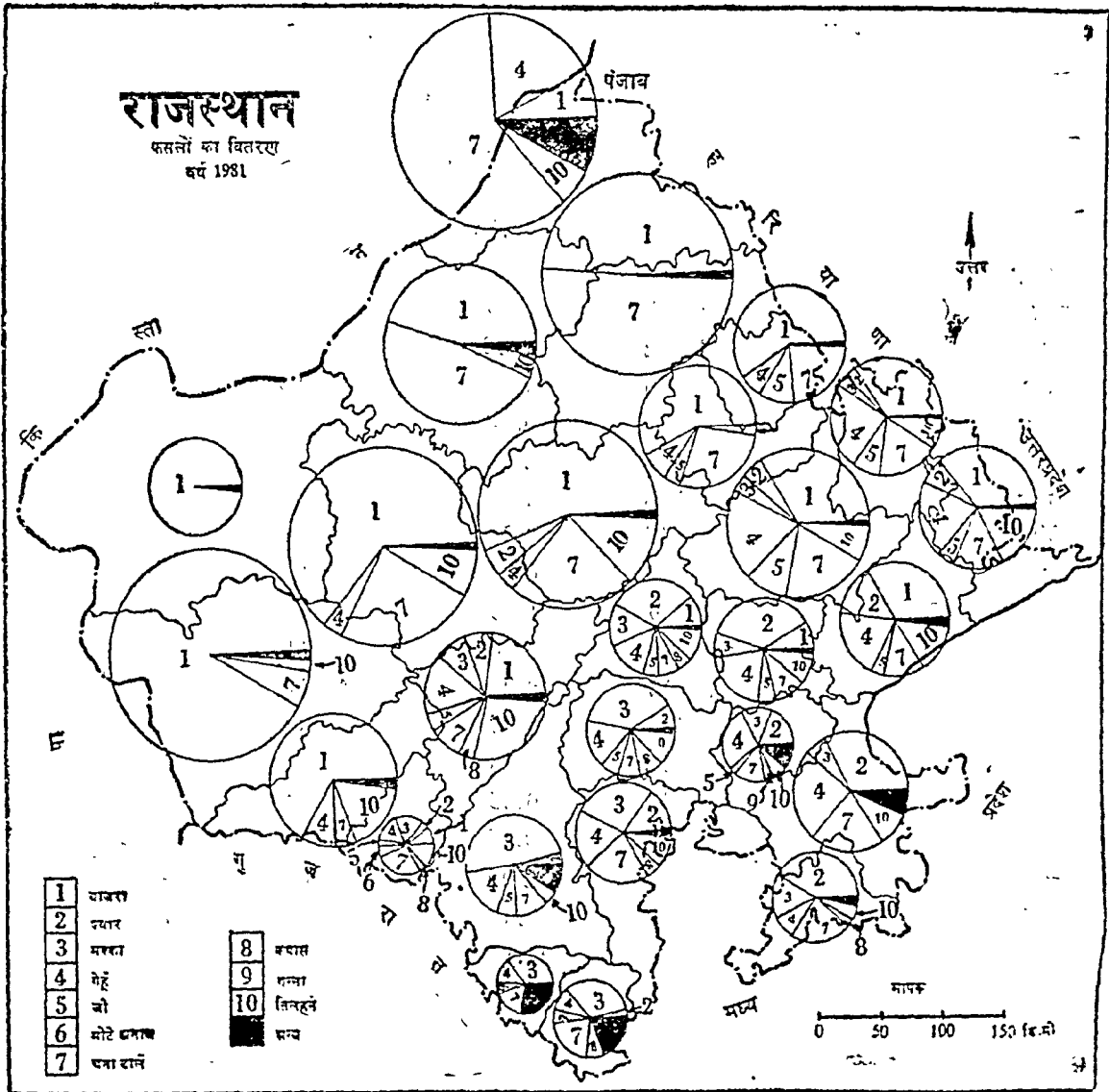
राजस्थान में कृषि की प्रमुख विशेषताएँ—

1. राज्य की कृषि में शुष्कता और उच्चावचन दोनों क महत्वपूर्ण भूमिका है। 50 सेन्टीमीटर की वर्षा रेखा राज्य को दो भागों में बांटती है—

(i) पश्चिमी शुष्क एवम् अर्द्ध-शुष्क रेतीले मैदान।

(ii) पूर्वी अरावली पहाड़ी प्रदेश, बनास बेसिन और पठारी क्षेत्र।

2. राज्य के कुल क्षेत्र का लगभग 50 प्रतिशत क्षेत्र कृषि के अन्तर्गत है।

3. राजस्थान में कृषि उपजों में खाद्य फसलों की अधिक महत्ता है। पूर्वी भाग में जहां गेहूँ, मक्का, कपास, गन्ना तिलहन व चना अधिक बोया जाता है, वहीं पश्चिमी भाग में बाजरा, ज्वार, मोंठ, मूंग आदि प्रमुख फसलें हैं। राज्य में खाद्य फसलों के अन्तर्गत कुल फसली क्षेत्र का 71 प्रतिशत है जबकि 29 प्रतिशत क्षेत्र में बाजरा उगाया जाता है।

4. बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, नागौर व चूरू जिले राज्य के लगभग 44.12 प्रतिशत क्षेत्र में विस्तृत हैं। इन सभी जिलों में राज्य के कुल फसली क्षेत्र का

राजस्थान में विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल व उत्पादन (1981–82)[2]

फसलें	क्षेत्र		उत्पादन	
	कुल क्षेत्रफल 000 हैक्टेयर में	राजस्थान में कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत	कुल उत्पादन 000 टनों में	राजस्थान में कुल उत्पादन का प्रतिशत
खाद्य फसलें	**12,247**	**70.58**	**6,503**	**76.81**
बाजरा	5,035	36.64	1163	13.75
चना	1,227	8.93	855	10.11
गेहूं	1,632	11.88	2390	28.25
ज्वार	1,006	7.32	340	4.02
मक्का	899	6.54	785	9.28
जौ	409	2.98	517	6.11
चावल	170	1.24	150	1.77
मोटे अनाज	47	0.34	4	0.05
तूर	35	0.25	12	0.14
अन्य दालें (खरीफ)	1,759	12.8	266	3.14
अन्य दालें (रबी)	28	0.20	21	0.25
अखाद्य फसलें	**5,102**	**29.42**	**4,757**	**23.13**
तिल	428	2.48	34	0.40
मूंगफली	212	1.23	86	1.02
तिलहन	43	0.25	14	0.17
गन्ना	29	0.16	1161	13.72
कपास	357	2.06	66	4.59
सरसों व राई	362	2.08	248	2.93
अन्य अखाद्य फसलें	3,672	21.16	2748	0.30
कुल (खाद्य एवं अखाद्य फसलें)	1,7350	100.00	10,860	100.00

2. Ibid PP.39-48

लगभग 37.70 प्रतिशत तथा कृषि योग्य खाली भूमि का 74.89 प्रतिशत पाया जाता है। इन जिलों में कुल फसली क्षेत्र के अधिकांश भाग में बाजरा उगाया जाता है।

5. बीकानेर और जैसलमेर जिले शुष्क क्षेत्र में स्थित हैं और राज्य के कुल क्षेत्र के 19.21 प्रतिशत भाग में विस्तृत हैं। वास्तविक बोये गये क्षेत्रफल का 7.43 प्रतिशत फसलों के अन्तर्गत है जिसके 40 प्रतिशत भाग पर बाजरे की कृषि की जाती है। बीकानेर तथा जैसलमेर जिलों में क्रमशः कुल क्षेत्रफल के 31 प्रतिशत तथा 69 प्रतिशत भूमि पर बाजरे की खेती होती है। दोनों जिलों में कृषि योग्य खाली भूमि के अन्तर्गत लगभग 68.03 प्रतिशत क्षेत्र आता है।

6. राजस्थान में कृषकों के पास भारत के अन्य राज्यों के कृषकों की अपेक्षा अधिक भूमि है।

7. राज्य में कोई भी फसल विशेष रूप से चारे के लिए नहीं बोई जाती है।

8. राज्य में प्रति हेक्टेयर उपज कम है और अधिकतर फसलों की औसत उपज भारत की अपेक्षा बहुत कम है।

9. राज्य के अधिकांश खेतों में एक ही फसल बोई जाती है। बोयी हुई भूमि के 6.08 प्रतिशत भाग पर ही एक से अधिक फसलों का उत्पादन किया जाता है।

10. कृषि में खाद व उर्वरकों का उपयोग बहुत कम किया जाता है। गोबर जिसका उपयोग एक अच्छी खाद के रूप में हो सकता है, का अधिकतर उपयोग ईंधन के रूप में होता है।

11. राज्य में व्यावसायिक फसलों के अन्तर्गत बहुत ही कम क्षेत्रफल है। कपास और गन्ना कुल फसली क्षेत्र के अनुपात में क्रमशः 2.76 प्रतिशत और 0.16 प्रतिशत पर बोया जाता है।

12. गंगानगर जिला जो राज्य के उत्तरी भाग में स्थित है, मुख्यतः सिंचाई की सुविधाओं के कारण लगभग 34.27 प्रतिशत पर चना, 15.16 प्रतिशत पर कपास का उत्पादन करता है।

13. राजस्थान में कृषि प्रकृति पर आधारित है क्योंकि सिंचाई के साधनों की कमी है। राज्य में कुल 29.83

भारत[3] एवं राजस्थान[4] में मुख्य फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल तथा उनका उत्पादन (1980-81)

फसलें	क्षेत्रफल (हजार हैक्टेयर में)			उत्पादन (हजार टन में)		
	भारत	राजस्थान	भारत में राजस्थान का प्रतिशत	भारत	राजस्थान	भारत में राजस्थान का प्रतिशत
गेहूँ	9,746	1,632	16.75	6,462	2,390	36.98
चना	7,570	1,227	16.21	3,651	855	23.42
चावल	30,810	170	0.55	20,576	150	0.73
दालें (सभी)	19,091	1,822	9 54	8,411	299	3.55
खाद्यान्न (सभी)	97,321	12,247	12.58	50.825	6,503	12.80
मूंगफली	4,494	43	0.96	3,481	86	2.47
राई व सरसों	2,071	362	17 48	762	248	32.55
तिलहन	10,727	471	4.39	5,158	48	0.93
गन्ना	1,707	29	1.70	57,051	1,161	2.04
कपास	5,882	357	6.10	5,124	388	7.58
तम्बाकू	357	3	0.85	261	1,975	0.77

3. India—A Reference Annual, 1983, Govt. of India, P.228
4. Statistical Abstract, 1981, Rajasthan, PP. 33-34

लाख हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई की जाती है। इस प्रकार कुल बोये गये क्षेत्रफल का 17 प्रतिशत भाग ही सिंचित है। सिंचाई के अभाव में बहुत सी भूमि व्यर्थ पड़ी रहती है।

14. राज्य में पशुपालन एक प्रमुख व्यवसाय है इसलिए राज्य की कृषि भूमि पर इसका दवाव अधिक है।

1956 में राज्य के पुनर्गठन होने से पूर्व यह खाद्यान्नों के उत्पादन में एक कमी का क्षेत्र था। कई बड़ी विकास योजनाओं की क्रियान्विती के पश्चात ही यह विकास संभव हो सका कि राज्य ने न केवल खाद्यान्नों में ही आत्मनिर्भरता प्राप्त की बल्कि अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर आधिक्य प्रवृति को दर्शाया। मानसून की अनिश्चितता के कारण वार्षिक कृषि में विषमतायें देखी जाती हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत कई सिंचाई एवं कृषि योजनाओं को लागू किया गया जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। इन छः पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में अधिक महत्व भूमि की क्षमता के अनुसार उसके उपयोग पर दिया गया। वनों तथा चरागाहों के अन्तर्गत क्षेत्र का उपयोग 1951-1961 तक का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि चरागाहों व जंगलों का उपयोग अविवेकतापूर्ण किया गया। इसलिए वनों के क्षेत्र 24.16 प्रतिशत घट गया तथा चरागाहों के क्षेत्रफल में भी कोई वृद्धि नहीं हुई लेकिन 1961 से 1981 तक भी चरागाहों में केवल 4.5 प्रतिशत की वृद्धि रेकार्ड की गई, जो नगण्य है। कृषि योग्य खाली भूमि का उपयोग भी पिछली पांच पंचवर्षीय योजनाओं की समाप्ति के पश्चात भी अधिक नहीं किया जा सका। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि भूमि का कृषि कार्यों के लिए उपयोग व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक रूप से नहीं किया गया। अतः यह आवश्यक है

राजस्थान में फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

फसलें	1960-61			1980-81		
	क्षेत्रफल 000 हैक्टेयर में	उत्पादन 000 टनों में	प्रति हैक्टेयर औसत उपज किलोग्राम में	क्षेत्रफल 000 हैक्टेयर में	उत्पादन 000 टनों में	प्रात हैक्टेयर औसत उपज किलोग्राम में
(अ) खाद्यान्न	11,194	5,035	463	12,247	6,503	531
(i) अनाज	7,614	3,644	493	9,198	5,349	582
चावल	81	107	1,362	170	150	881
ज्वार	1,050	290	284	1,006	340	338
बाजरा	3,970	875	277	5,035	1,163	231
मक्का	607	595	1,010	899	785	872
गेहूं	1,214	1,071	908	1,632	2,390	1,464
जौ	607	670	1,135	409	517	1,264
मोटा अनाज	81	36	454	47	4	76
(ii) दालें	3,580	1,391	404	3,049	1,154	378
चना	1,740	960	567	1,227	855	697
रवी की दालें	20	9	454	28	21	753
खरीफ की दालें	1,820	422	238	1,794	278	151
(ब) व्यावसायिक फसलें						
तिलहन	1,030	276	275	1,045	382	366
कपास	260	200	417	357	388	185
गन्ना	32	90	2,800	29	1,161	3,949

कि अव्यवस्था की जानकारी कर उसे सुधारने के लिए तत्काल प्रयास किये जायें। साथ ही साथ फसल प्रतिरूप भी भूमि की क्षमता के अनुरूप विकसित किये जायें। जिसके लिए निम्न प्रयास किये जाने चाहिए :—

1. उपयोग में लाने योग्य बंजर भूमि की अवस्थिति ज्ञात कर उसका उपयोग इस प्रकार से करना कि वनस्पति कृषि योग्य भूमि और चरागाहों के बीच एक उपयुक्त सन्तुलन स्थापित किया जा सके।

2. उचित फसली प्रतिरूपों का उन क्षेत्रों के लिए अपनाया जाना जो पुनः उद्धित कर लिए गये हों अथवा सिंचाई के अन्तर्गत लाये गये हों अथवा जिनके लिए प्रयास किये जा रहे हों।

राज्य में छः पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में कृषि में सुधार लाने के लिए जो उपाय अपनाये गये उनका प्रभाव बदलते फसल प्रतिरूप और इन फसलों के प्रति हैक्टेयर उत्पादन के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। वर्ष 1961 में खाद्यान्नों के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल 11,194 हजार हैक्टेयर था जो बढ़कर 1981 में 12,247 हजार हैक्टेयर हो गया। वर्ष 1961 में चावल और गेहूँ के अन्तर्गत क्षेत्रफल क्रमशः 80,972 हैक्टेयर और 12,14,575 हैक्टेयर था जो 1981 में बढ़कर 1,70,098 हैक्टेयर और 16,32,140हैक्टेयर हो गया। निम्नांकित आंकड़े विशेष रूप से ज्वार, बाजरा, चना, गेहूँ, जौ, तिलहन व गन्ना आदि फसलों के संदर्भ में प्रति हैक्टेयर औसत उपज में सामान्य बढ़ोत्तरी को प्रकट करते हैं।

कृषि के प्रकार

राज्य की प्राकृतिक दशा, जलवायु तथा मिट्टी की विषमता के कारण इसके विभिन्न भागों में कई प्रकार की खेती होती है। कृषि की निम्न पद्धतियाँ राज्य में अपनाई जाती है—

(1) **शुष्क खेती**—शुष्क खेती राज्य के उन भागों में की जाती है जहाँ वर्षा 50 सेन्टीमीटर से कम होती है। दूसरे शब्दों में, वे सभी भाग जो अरावली के पश्चिम में स्थित हैं उनमें इसे अपनाया जाता है, केवल इन्दिरा नहर द्वारा सिंचित क्षेत्र इसमें अपवाद स्वरूप है।

(2) **सिंचाई द्वारा खेती**—इस प्रकार की खेती उन क्षेत्रों में जहाँ वर्षा 50 से 100 सेन्टीमीटर तक होती है, की जाती है। ऐसे क्षेत्रों के अन्तर्गत अलवर, भरतपुर, धौलपुर जयपुर, सवाईमाधोपुर, टोंक, अजमेर के पूर्वी भाग, भीलवाड़ा का दो तिहाई क्षेत्र, बूंदी, कोटा, चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा के उत्तरी पश्चिमी भाग तथा उदयपुर जिले सम्मिलित हैं। राज्य के उत्तर में स्थित गंगानगर जिले के सिंचित क्षेत्रों में भी इसी प्रकार की खेती की जाती हैं।

(3) **आर्द्र खेती**—यह विशेष कर काँप मिट्टी और काली मिट्टी के क्षेत्रों में की जाती है जहाँ वर्षा 100 से. मी. से अधिक होती है। ऐसे भागों में झालावाड़, कोटा तथा बाँसवाड़ा के पूर्वी भाग, बनास तथा साबरमती के क्षेत्र सम्मिलित हैं।

(4) **झूमिंग प्रणाली द्वारा**—इस प्रणाली के अन्तर्गत वन आदि जलाकर पहले भूमि को साफ कर लिया जाता है, फिर पहली वर्षा के बाद उस राखयुक्त मिट्टी में अनाज बिखेर कर बो दिये जाते हैं। इस प्रकार के खेतों से दो तीन वर्षों तक फसलें प्राप्त की जा सकती हैं। इस प्रकार की खेती राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में विशेषकर डूंगरपुर, बांसवाड़ा, उदयपुर में आदिवासी लोगों के द्वारा की जाती है जिसे ये लोग 'वालरा' के नाम से पुकारते हैं।

प्रमुख फसलें

राज्य में जहाँ एक ओर चावल व गन्ने जैसी उष्ण कटिबन्धीय फसलें पैदा होती है वहीं दूसरी ओर कपास, गेहूँ तथा तम्बाकू जैसी समशीतोष्ण कटिबन्धीय फसलें भी उत्पन्न की जाती हैं।

राज्य में फसलों को अध्ययन की दृष्टि से निम्न प्रकार विभाजित किया जाता है—

1. खाद्यान—गेहूं, जौ, बाजरा, ज्वार, मक्का, चावल, दालें, चना।
2. व्यावसायिक और मुद्रादायिनी फसलें — गन्ना, तिलहन।
3. पेय पदार्थ—तम्बाकू।
4. रेशेदार पौधे—कपास

खाद्यान्न

गेहूँ—खाद्यान फसलों में गेहूं का उत्पादन सबसे अधिक होता है। प्रायः गेहूं दो प्रकार का उत्पन्न किया जाता है। प्रथम प्रकार के गेहूँ को साधारण रोटी का गेहूं (ट्रीटीकम वलगेयर) कहते हैं। यह देखने में चमकीला

सुडौल तथा पीसने में मुलायम होता है और इसका रंग सफेद होता है। राजस्थान के अधिकतर भागों में इसी का ही उत्पादन किया जाता है। दूसरे प्रकार का गेहूँ जिसे मेकरोनी गेहूँ कहते हैं, यह अपेक्षाकृत कठोर लाल रंग का और छोटे दाने वाला होता है। मेकरोनी गेहूँ राजस्थान में अधिकतर उन क्षेत्रों में उत्पन्न किया जाता है जहां वर्षा की मात्रा गेहूं की फसल के लिए पर्याप्त होती है।

गेहूँ राजस्थान में रवी की फसल है। यह वस्तुतः शीतोष्ण जलवायु का पौधा है लेकिन इसके प्रधान क्षेत्र उपार्द्र तथा अर्द्ध शुष्क और सिचाई या शुष्क खेती की दशाओं में शुष्क भागों में पड़ते हैं। इसके बोने के समय तापक्रम को 10° से. तथा दाना लगते, पकते समय तापमान की क्रमिक वृद्धि होकर 15°-20° सें. तक होना चाहिये। राजस्थान में गेहूँ ठण्डी, नम जलवायु में सफलतापूर्वक उगाया जाता है तथा साथ ही शुष्क जलवायु फसल के पकते समय उपयुक्त होती है।

शीतकाल में तापमान 10° सें. से 15° सें. होना चाहिए। गेहूं के पकते समय मेघ रहित आकाश होना चाहिए। बादल छाये रहने से गेहूँ की फसल को रतुआ चेंपा, करजवा आदि जीवाणु लग जाते हैं। गेहूं के लिए आदर्श वर्षा 50 से 75 सें.मी. मानी जाती है। राजस्थान में शुष्क भागों में गेहूँ सिंचाई की सहायता से बोया जाता है, बुवाई के 15 दिन बाद और पकने के 15 दिन पूर्व यदि चक्रवातीय वर्षा हो जाती है तो गेहूँ की फसल के लिए लाभदायक होती है।

गेहूं विभिन्न प्रकार की मिट्टीयों में उगाया जाता है। किन्तु वस्तुतः इसके लिए उपजाऊ दोमट मिट्टी आपेक्षित है। महीन कांप मिट्टी व चीका प्रधान मिट्टी अधिक उपयुक्त है। किन्तु भारी चीका तथा बारीक रेतीली मिट्टी में भी होता है।

राजस्थान में जिन खेतों में गेहूँ उगाया जाता है, उन्हें आने वाली गर्मियों में पड़ती छोड़ कर उनमें कुछ खाद मिला दी जाती है। गेहूं जुताई द्वारा बनी नालियों में पंक्तिबद्ध बोया जाता है। सिंचाई क्योंकि आवश्यक है इसलिए नियमित रूप से पानी खेतों में पांच बार पिलाया जाता है। यह प्रायः दिसम्बर, जनवरी, फरवरी के अन्त में तथा मार्च में दो बार दिया जाता है। गेहूँ के लिए प्रारम्भिक अवस्था में आर्द्रता अपरिहार्य है क्योंकि इससे इसकी वृद्धि शीघ्र होती है। तत्पश्चात तापक्रम में क्रमिक वृद्धि दानों के लगने तथा फसल के पकने के लिए सहायक होती है इसी समय शुष्क हवायें चलने लगती हैं जो दानों को शीघ्र सुखाने में सहायक होती हैं राजस्थान में पश्चिमी जिलों में तापक्रम में शीघ्र वृद्धि के कारण दाना झुर्रीदार बन जाता है लेकिन उन क्षेत्रों में जहां तापक्रम में परिवर्तन धीरे धीरे होता है, गेहूं का दाना गोल होता है। साधारणतया गेहूँ की फसल अप्रेल के प्रथम सप्ताह से मई के मध्य तक राजस्थान के विभिन्न भागों में काटी जाती है।

गेहूं उत्पादन का प्रमुख क्षेत्र पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी राजस्थान में है, जहां गेहूं राज्य के कुल गेहूँ क्षेत्रफल के 68 75 प्रतिशत भाग पर बोया जाता है।

राज्य के पूर्वी जिले जयपुर, अलवर, भरतपुर तथा धौलपुर लगभग 30 प्रतिशत गेहूँ का उत्पादन करते हैं। अन्य प्रमुख उत्पादक जिले कोटा, सवाईमाधोपुर, उदयपुर, बूंदी, टौंक, अजमेर तथा भीलवाड़ा हैं।

दूसरा गेहूं उत्पादन का क्षेत्र गंगानगर जिले में संकेन्द्रित है। यहां गंगानहर तथा इन्दिरा नहर द्वारा सिंचाई होती है जिसके कारण यह क्षेत्र उत्पादन में भारत में अग्रणीय हो गया है।

राजस्थान में गेहूं के क्षेत्रों में गंगानगर केवल अपवाद है जहां गेहूं की कृषि सिंचाई द्वारा की जाती है। गंगानगर जिले में कांपीय उपजाऊ मिट्टी है जो फसल के लिए उपयुक्त है। राजस्थान में गेहूँ के क्षेत्रफल के अनुपात में गंगानगर जिले में 13.84 प्रतिशत क्षेत्र पर गेहूं की कृषि की जाती है जिससे राजस्थान में कुल गेहूं उत्पादन का 16.90 प्रतिशत गेहूं उत्पादित किया जाता है।

पश्चिम रेतीले मैदान में जलवायु अतिशुष्क होने तथा सिंचाई की सुविधा का अभाव होने कारण गेहूँ का उत्पादन बहुत कम होता है।

राज्य के प्रमुख जिलों में गेहूं का क्षेत्रफल तथा उत्पादन अगले पृष्ठ की तालिका में दर्शाया गया है।

राज्य के प्रमुख जिलों में गेहूं का क्षेत्रफल तथा उत्पादन (1980-81)

जिला	क्षेत्रफल		उत्पादन	
	000 हैक्टेयर में	प्रतिशत	000 टनों में	प्रतिशत
गंगानगर	226	13.84	404	16.90
जयपुर	159	9.75	283	11.85
अलवर	126	7.72	248	10.37
भरतपुर	113	6 92	177	7 40
कोटा	134	8.21	159	6.65
सवाईमाधोपुर	106	6.50	138	5 77
चित्तौड़गढ़	75	4.60	127	5 31
उदयपुर	71	4.35	105	4 40
बूंदी	70	4.32	91	3.80
पाली	71	4 60	88	3 68
टोंक	84	5.12	77	3.22
अजमेर	54	3.30	68	2 85
राजस्थान	1632	100 00	2390	100.00

वर्ष 1950-51 में राजस्थान में गेहूं 5.24 लाख हैक्टेयर भूमि पर बोया जाता था अब बढ़कर सन् 1980-81 में 16.32 लाख हैक्टेयर हो गया। इस प्रकार पिछले 30 वर्षों में गेहूं के बोये गये क्षेत्रफल में लगभग तीन गुनी वृद्धि हुई है। इसका प्रमुख कारण सिंचाई के साधनों में वृद्धि होना तथा गेहूँ की नवीनतम उच्च किस्मों को अपनाना है। गेहूँ का औसत उत्पादन भी 795 किलोग्राम से बढ़ कर 1464 किलोग्राम हो गया है जो कि भारत के औसत से अधिक है। अब राजस्थान के कई भागों में मैक्सिकन सोना, कल्याण सोना, शरबती सोनेरा, कोहीनूर आदि गेहूँ की किस्में बोयी जाने लगी हैं जिनका प्रति हैक्टेयर उत्पादन कई गुना अधिक होता है। वर्ष 1984-85 में गेहूं का उत्पादन 27.90 लाख रिकार्ड किया गया।

जौ—जौ भी एक महत्वपूर्ण खाद्यान्न है। अच्छी किस्म के जौ से जौ का पानी तथा शराब भी बनाई जाती है। जौ का पौधा प्राय: शुष्क और बालू मिश्रित कांप मिट्टी में उगता है। यह शुष्क जलवायु में भी पूर्ण रूप से विकसित हो सकता है। इसके पौधों को 15° सें. से 18° सें. तापमान की आवश्यकता होती है। अत: यह शीघ्रता से पकता है। इसे गेहूं की अपेक्षा कम पानी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह राज्य में कम तापमान तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाया जाता है।

इसकी खेती के लिए मिट्टी की तैयारी मध्य सितम्बर से मध्य नवम्बर तक की जाती है। बुवाई का कार्य मध्य अक्टूबर से मध्य दिसम्बर तक सम्पन्न होता है। सिंचाई जनवरी के प्रारम्भ में, मध्य फरवरी और मार्च के शुरू में करना आवश्यक है। कटाई का कार्य मार्च के अन्त से प्रारम्भ होकर मध्य अप्रेल तक किया जाता है।

राजस्थान में लगभग 409 हजार हैक्टेयर क्षेत्र पर जौ की कृषि की जाती है जो कुल कृषि क्षेत्र का लगभग 2.35 प्रतिशत है। राज्य में शुष्क और रेतीले भाग में जहाँ सिंचाई की सुविधायें पर्याप्त नहीं है, इसकी फसल का लगभग 90 प्रतिशत क्षेत्र जयपुर, अलवर, उदयपुर, अजमेर, भरतपुर, भीलवाड़ा, पाली, सवाईमाधोपुर, टोंक गंगानगर, झुन्झुनूं, नागौर और सीकर आदि जिलों में हैं। इसमें गंगानगर, नागौर, सीकर व झुन्झुनूं जिलों के अतिरिक्त बाकी सभी जिले 50 सेन्टीमीटर वर्षा रेखा के पूर्व में स्थित है। वर्ष 1980-81 में सबसे अधिक उत्पादन लगभग 1,05,000 टन हुआ जो राज्य के कुल उत्पादन 5,17,000 टन का 20% था।

बाजरा—अगर बोये गये क्षेत्र को मापदण्ड माना जाये तो राजस्थान में बाजरा मुख्य खाद्यान्न फसल है। वर्ष 1985 में राजस्थान में कुल फसली क्षेत्र 173.5 लाख हैक्टेयर में से 50.35 लाख हैक्टेयर क्षेत्र पर बाजरा उत्पन्न किया गया है जो कि कुल फसली क्षेत्र का 29.02 प्रतिशत है। इसका उत्पादन वर्ष 1984-85 में 15.70 लाख टन रिकार्ड किया गया।

बाजरे के लिए अधिक शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। यह 40 से 50 सेन्टीमीटर वर्षा वाली बालूदार मिट्टी से अधिक उत्पन्न होता है। जहां सिंचाई के साधन भी उपलब्ध हों, वहां भी बाजरा उगाया जाता है। यदि वर्षा हल्की फुहार के रूप में होती रहे तो निकृष्ट भूमि में भी बाजरा उत्पन्न हो सकता है। इसके लिए औसत तापमान 15° से 32° सें. उपयुक्त रहते हैं।

बाजरा की फसल के लिए खेतों की तैयारी मार्च

के अन्त तक की जाती है। प्रारम्भिक वर्षा की नियमित बौछारों के साथ बुआई का कार्य शुरू कर दिया जाता है। वास्तविक बुवाई जून के अन्तिम सप्ताह से मध्य जुलाई के बीच होती है। फसल की कटाई का कार्य सितम्बर के अन्त से अक्टूबर के अन्त तक होता है।

राजस्थान में बाजरे की फसल निकृष्ट जलवायु और मिट्टी की दशाओं के क्षेत्र में उगाई जाती है। इसका लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्र राज्य के मरुस्थलीय जिलों के अन्तर्गत है। पश्चिमी राजस्थान के केवल बाड़मेर,जोधपुर तथा नागौर आदि जिलों में राज्य के कुल बाजरा क्षेत्र का लगभग 44 प्रतिशत भाग स्थित है जो राज्य का केवल 14 प्रतिशत बाजरा उत्पादन करते हैं। यदि हम जिलों की बोई गई भूमि के अनुपात में देखें तो जैसलमेर में यह कुल बोई गई भूमि के 69.4 प्रतिशत पर बोया जाता है। बाड़मेर में यह 68.40, जोधपुर में 49.76 और नागौर में 44.60 प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाजरा का मुख्य कृषि क्षेत्र पश्चिमी रेतीले मैदान तक ही सीमित है। राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में गंगानगर जिले (4.88) के अलावा सभी मरुस्थलीय जिले कुल फसली क्षेत्र के अनुपात में 31% से 70% के बीच बाजरे की फसल के अन्तर्गत क्षेत्र रखते हैं। यह प्रतिशत पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ता जाता है। जैसलमेर में यह सबसे अधिक 69.4 प्रतिशत है जो कि राजस्थान का शुष्कतम भाग है।

बाजरे की फसल के अन्तर्गत क्षेत्र का प्रतिशत राज्य के दक्षिणी-पूर्वी भाग में सबसे कम है जहाँ अधिक वर्षा और अच्छी मिट्टी उपलब्ध है। राजस्थान के जिले जयपुर भरतपुर, अलवर और सवाईमाधोपुर राज्य के कुल बाजरे के उत्पादन के अनुपात में 55 प्रतिशत उत्पादन करते हैं जबकि इनमें राज्य के बाजरे के अन्तर्गत क्षेत्र का केवल 17.22 प्रतिशत क्षेत्र ही स्थित है। इन जिलों में बाजरे का इतना अधिक उत्पादन होने के मुख्य कारणों में भौगोलिक सुविधाओं तथा उन्नत बीजों के उपयोग को गिनाया जा सकता है। आजकल राज्य में संकर-बाजरे का उत्पादन बढ़ रहा है। इसके उत्पादन के लिए रसायनिक खाद व अपेक्षाकृत अधिक पानी की आवश्यकता होती है। देश में उपभोग एवं उन्नत बीज के रूप में इस की काफ़ी मांग है।

ज्वार—ज्वार शुष्क कटिबन्धीय प्रदेश की उपज है। यह राजस्थान में खरीफ की फसल है। इसकी बुवाई के समय पर्याप्त गर्मी की आवश्यकता होती है लेकिन अधिक वर्षा इसकी फसल के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। 30 से 100 सेन्टीमीटर वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी कृषि सफलता से की जाती है। इसकी फसल कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी अच्छी प्रकार से उगाई जाती है। इसकी शुष्क दशाओं को सहने की क्षमता इसे उन क्षेत्रों के लिए जहां पर कृषि मुख्यतया वर्षा पर निर्भर करती है, एक आदर्श फसल बना देती है।

ज्वार की कृषि के लिए 22° से 32° सें. तापमान अनुकूल सिद्ध होते हैं लेकिन ज्वार की कुछ किस्में 43° सें. तक के तापमान में अच्छी उपज देती है। इस की कृषि के लिए भारी दोमट मिट्टी अथवा काली कपास मिट्टी सर्वोत्तम समझी जाती है। इसकी फसल चिकनी कॉंप मिट्टी चाहे लाल अथवा काली हो, पर अच्छी होती है। सिंचित क्षेत्र में इसे पर्याप्त पानी निकास की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिये।

राजस्थान में कृषि के लिए खेतों की तैयारी मार्च के अन्त से अप्रेल के अन्त तक की जाती है। बुआई जून के मध्य में तथा कटाई का कार्य नवम्बर-दिसम्बर में सम्पन्न होता है। जब ज्वार चारे के रूप में उगाई जाती है तो इसे अप्रेल-मई में बोया जाता है तथा मई के अन्त तक इसकी कटाई कर ली जाती है। राजस्थान के उन क्षेत्रों में जहां वर्षा की मात्रा 50 सेन्टीमीटर से कम होती है, सिंचाई आवश्यक है।

राजस्थान में ज्वार भारत के कुल ज्वार क्षेत्रफल के अनुपात में लगभग 6.45 प्रतिशत भाग पर बोई जाती हैं तथा भारत के ज्वार उत्पादन का लगभग 3.24 प्रतिशत होता है। यह लगभग 10.06 लाख हैक्टेयर भूमि पर जो कुल फसली क्षेत्र 5.80 प्रतिशत है, उगाई जाती है। ज्वार एक मुख्य फसल है, इसकी कृषि राज्य के मध्य एवं पूर्वी भाग में मुख्यतया संकेन्द्रित है। इसके क्षेत्र का 88 प्रतिशत इस प्रदेश में केन्द्रित है। कोटा झालावाड़, चित्तौड़गढ़, सवाईमाधोपुर, भरतपुर तथा अलवर आदि जिलों में ज्वार के क्षेत्र का लगभग 51 प्रतिशत क्षेत्र विस्तृत है जहाँ ज्वार के कुल उत्पादन का

लगभग 87 प्रतिशत उत्पादन होता है। इसके अतिरिक्त बांसवाड़ा, भीलवाडा, बूंदी, जयपुर, नागौर, टोंक तथा उदयपुर जिले भी मुख्य हैं जहां इसका उत्पादन अच्छा किया जाता है। बाड़मेर, बीकानेर, चूरू, जैसलमेर जालौर, झुन्झुनूं, जोधपुर तथा सीकर आदि जिलों में इसका उत्पादन नगण्य है।

ज्वार का उत्पादन वर्ष 1950-51 में 1.62 लाख टन था जो बढ़कर वर्ष 1984-85 में 4.10 लाख टन हो गया लेकिन ऐसा नहीं है कि इसके उत्पादन में निरन्तर वृद्धि ही होती रही, कई उतार-चढ़ाव भी इसमें आये।

मक्का—गेहूं और चावल के बाद खाद्यानों में मक्का का स्थान है। खाद्यान की तरह प्रयोग किये जाने के अलावा मक्का से विभिन्न पदार्थ जैसे स्टार्च, ग्लूकोज, एल्कोहल इत्यादि भी बनाये जाते हैं। इसकी हरी पत्तियों से साइलेज नामक चारा बनाया जाता है। यह सीधे पशुओं को खिलाई जाती है, इसे खाकर पशु मोटे हो जाते हैं।

राजस्थान में मक्का खरीफ की फसल है। मक्का उपोष्ण कटिबन्ध का पौधा है। मक्का की कृषि के लिए ग्रीष्मकाल का औसत तापमान 21° से. से 27° से. के बीच होना चाहिये। रात्रियां उष्ण होनी चाहिये जिनमें तापमान औसतन 14° से. से कम नहीं होना चाहिए। इसके लिए कम से कम वर्षा 50 सेन्टीमीटर आवश्यक है। साथ ही भूमि ऐसी हो जिसमें वर्षा का जल अधिक समय तक न ठहरे। फसल के उगते समय बारम्बार हल्की-हल्की बौछारों का होना आवश्यक है, अन्यथा सिंचाई की आवश्यकता होती है। कृषि विशेषज्ञों के मतानुसार मक्का के पौधों का 80 प्रतिशत विकास रात्रिकाल में ही होता है। अगर रात्रि में वर्षा हो तो बहुत ही उपयुक्त है। मक्का का पौधा पानी की आवश्यकताओं की दृष्टि से काफी सुग्राही है। अगर वर्षा देरी से होती है तो इसका फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अगर वर्षा के बीच लम्बे अन्तराल आ जाते हैं तो फसल को हानि पहुंचती है। इसलिए पौधे की वृद्धि के दौरान जल की आवश्यकता अपरिहार्य है।

मक्का के लिए नत्रजनयुक्त तथा जीवांश बाहुल्य दोमट मिट्टी अनुकूल होती है। मिट्टी में अधिक आर्द्रता संचयी शक्ति भी आवश्यक है। राज्य में इसकी कृषि मुख्यतया दोमट मिट्टी वाले क्षेत्र में संकेंद्रित है। मक्का की फसल के लिए मिट्टी की तैयारी मार्च के अन्त से अप्रेल के अन्त तक की जाती है। बुआई कार्य मध्य जून से मध्य जुलाई तक लेकिन खास तौर पर ग्रीष्म ऋतु की प्रथम वर्षा के साथ सम्पन्न होता है। कटाई का कार्य सितम्बर के अन्त से मध्य नवम्बर तक होता है। राज्य में सिंचाई की सुविधा का उपयोग कर मक्का अप्रेल-मई में बो दी जाती है जिसका उपयोग चारे के लिए किया जाता है।

राजस्थान में मक्का की फसल के अन्तर्गत लगभग 8.99 लाख हैक्टेयर क्षेत्र आता है जो राज्य में कृषि के कुल क्षेत्र का लगभग 5.20 प्रतिशत है। इसका सबसे अधिक केन्द्रीकरण अरावली श्रेणी व पहाड़ी प्रदेश और बनास बेसिन में है जहाँ राज्य के कुल मक्का क्षेत्र का लगभग 92 प्रतिशत क्षेत्र है। कुल मक्का उत्पादन का लगभग 55 प्रतिशत भाग उदयपुर, चित्तौडगढ़ तथा भीलवाड़ा जिलों से प्राप्त होता हैं।

झालावाड़ तथा अजमेर जिलों में दोनों में अलग-अलग 6 प्रतिशत क्षेत्र मक्का की फसल के अन्तर्गत है जबकि उत्पादन क्रमश: 7.52 प्रतिशत तथा 2.42 प्रतिशत है। अत: स्पष्ट है कि अजमेर जिले में मक्का की खेती पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है। उदयपुर, चित्तौड़गढ़, बांसवाड़ा, झालावाड़ तथा डूंगरपुर में मक्का की उन्नत किस्मों को बो कर अधिक उत्पादन लिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त पाली, बूंदी तथा जयपुर में भी पर्याप्त मात्रा में उगाई जाती है। पश्चिमी राजस्थान में इसकी खेती बहुत कम की जाती है। राजस्थान में वर्ष में 1950-51 में मक्का का उत्पादन 1.62 लाख टन था जो बढ़कर 1970-71 में 9.3 लाख टन हो गया लेकिन वर्ष 1980-81 में घटकर 7.84 लाख टन रह गया क्योंकि इस पिछले दशक में सिंचाई की सुविधाएं अधिक प्राप्त होने के कारण मक्का के क्षेत्र पर अन्य महत्वपूर्ण फसलों को बोया जाने लगा। लेकिन वर्ष 1984-85 में इसका उत्पादन 11.20 लाख रिकार्ड किया गया। मक्का की प्रति हैक्टेयर उपज 872 किलोग्राम है।

चावल—चावल आर्द्र उपोष्ण तथा उष्ण जलवायु का पौधा है। चावल के उत्पादन के लिए पर्याप्त जल

तथा साथ ही साथ उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। साधारणतः 100 सेंटीमीटर से 160 सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी खेती सम्भव है। वर्षा का पानी पर्याप्त न होने पर सिंचाई आवश्यक हो जाती है।

बीज-वपन के समय औसत तापमान 20°-21° से., प्राथमिक विकास के समय 23°-24° सें. तथा पकते समय 25°-26° सें. की आवश्यकता होती है।

साधारणतः धान बोने के बाद 60 से 90 दिनों तक खेतों में 15 सेंटीमीटर से 25 सेंटीमीटर तक यदि पानी भरा रहता है तो पौधों का अच्छा विकास होता है। फसल के पकते समय खेतों में से पानी को बाहर निकाल दिया जाता है।

चावल की कृषि के लिए प्रायः कांप तथा चीका प्रधान दोमट मिट्टियाँ बहुत अनुकूल रहती है, क्योंकि इन मिट्टियों में पानी को धारण किये रखने की क्षमता अधिक होती है।

धान की कृषि में मनुष्य के श्रम की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है क्योंकि बड़ी मशीनों का प्रयोग कम होता है। परन्तु मानव श्रम सस्ता होना चाहिए। आजकल जापानी पद्धति से चावल की खेती की जाने लगी है। इससे उपज अधिक मिलती है।

राजस्थान में इसका उत्पादन नगण्य है। राजस्थान की कुल खेतीहर भूमि के लगभग एक प्रतिशत भाग पर धान उन्हीं क्षेत्रों में बोया जाता है जहाँ या तो वर्षा पर्याप्त होती है या सिंचाई की अच्छी सुविधायें हैं। राजस्थान में यह सबसे अधिक बांसवाड़ा, डूंगरपुर, बूंदी, कोटा, उदयपुर तथा गंगानगर में बोया जाता है इसके अतिरिक्त कुछ चावल भरतपुर, चित्तौड़गढ़, झालावाड़ तथा सवाईमाधोपुर जिलों में भी बोया जाता है।

गंगानगर तथा कोटा जिले राज्य में सम मात्रा में चावल उत्पादन कर अग्रणी हैं। डूंगरपुर जिले में कुल बोई भूमि के 21 प्रतिशत भाग पर चावल बोया जाता है। यह प्रतिशत बांसवाड़ा में लगभग 16 एवं बूंदी में लगभग 10 हैं। सन् 1950-51 में चावल की खेती 66 हजार हैक्टेयर पर की गई थी जो बढ़कर वर्ष 1980-81 में 176 हजार हैक्टेयर हो गई तथा इसी प्रकार उत्पादन 57 हजार टन से बढ़कर 150 हजार टन हो गया। राजस्थान में उत्पन्न होने वाला चावल मोटा व घटिया किस्म का होता है।

दालें—दालें हमारे भोजन का प्रमुख अंग होने के कारण इनका महत्व काफी अधिक है। इनके बोने से खेतों को नाइट्रोजन मिलता है। हरी खाद के रूप में भी इनका उपयोग किया जाता है।

राजस्थान में दालों की कृषि कुल बोये गये क्षेत्र के 10.49 प्रतिशत क्षेत्र पर की जाती है अर्थात् लगभग 18.21 लाख हैक्टेयर भूमि (1980-81) पर बोई जाती है। अगर चने को शामिल कर लिया जाय तो इनके अन्तर्गत कुल कृषि क्षेत्र का लगभग 17.57 प्रतिशत क्षेत्र आता है।

राज्य के शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क भाग में दालों के अन्तर्गत अधिकतर क्षेत्र मिलता है। दालों के अन्तर्गत लगभग 72 प्रतिशत क्षेत्र जयपुर, झुन्झुनूं, सीकर, नागौर, जोधपुर, बीकानेर और चूरू आदि जिलों में स्थित है। अन्तिम चार जिले राज्य में दालों का लगभग 18.88 प्रतिशत क्षेत्र रखते हुए राज्य में प्रथम स्थान पर है। लेकिन उत्पादन की दृष्टि से जोधपुर प्रथम स्थान पर है। जोधपुर राज्य में कुल दालों के उत्पादन का लगभग 30.77 प्रतिशत उत्पादन करता है।

खरीफ की दालों का अधिक उत्पादन जोधपुर, चूरू चित्तौड़गढ़, बीकानेर, नागौर, सवाईमाधोपुर, तथा बाँसवाड़ा आदि जिलों में किया जाता है। जबकि रबी की दालों का उत्पादन करने में कोटा, उदयपुर, भरतपुर बूंदी तथा झालावाड़ आदि जिले प्रमुख हैं।

मूंग, मोंठ, अरहर व उड़द आदि दालों की खेती राजस्थान के विभिन्न भागों में की जाती है। मूंग व मोंठ की कृषि मुख्यतः शुष्क भागों में होती हैं तथा इनका उत्पादन सबसे अधिक होता है। प्रायः मूंग व मोंठ के उत्पादन क्षेत्र वहीं हैं जहां बाजरा संकेन्द्रित हैं। अरहर की खेती पूर्वी राजस्थान व उड़द की खेती दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान में अधिक की जाती है। राजस्थान में वर्ष 1980-81 में दालों का उत्पादन 2.99 लाख टन था। अगर चने को मिला दिया जाये तो यह उत्पादन 11.54 लाख टन होता है।

चना—रबी की फसलों में उगाये जाने वाले अनाजों में गेहूं के पश्चात चने का द्वितीय स्थान है। चना एक

ऐसी दलहन की फसल है जो राजस्थान के प्रायः सभी जिलों में उत्पन्न की जाती है लेकिन बाड़मेर, जैसलमेर तथा जोधपुर में इसका उत्पादन नगण्य है। इसको गेहूं और जौ के साथ भी बोते हैं तब इसे **गोचनी** अथवा बेझड़ कहते हैं। चने के अनेक भोजन पदार्थ बनते हैं लेकिन इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसे घोड़ों तथा अन्य पशुओं को दाने के रूप में खिलाये जाने में है।

चने के लिए हल्की बलुही मिट्टी और ऊंचे तापमान की आवश्यकता होती है। चने की पैदावार हल्की, ऊंची और भली-भांति सूखी हुई भूमि में अच्छी होती है। पाला पड़ जाने से इसका फूल नष्ट हो जाता है जिससे इसका दाना सूख जाता है इसके लिए 20^{0} से 25^{0} सें. तापमान की आवश्यकता होती है। चना बोते समय मिट्टी में नमी होना आवश्यक है लेकिन बाद में वर्षा की कमी इसके लिए हानिकारक नहीं होती। जिन क्षेत्रों में जल की कमी के कारण गेहूं या जौ पैदा नहीं हो सकता, वहां चना उत्पन्न किया जा सकता है।

राजस्थान में इसकी फसल के लिए भूमि की तैयारी सितम्बर के अन्त से अक्टूबर के मध्य की जाती है। बुआई का कार्य अक्टूबर के अन्त तक होता है तथा कटाई का कार्य 20 मार्च से 15 अप्रेल तक सामान्यतया सम्पन्न होता है। गंगानगर जिले में सिंचाई दो बार की जाती है। प्रथम बुआई के समय तथा द्वितीय जनवरी के अन्त में, जब फूल आने का समय होता है। इसकी खेती शुष्क खेती (Dry Farming) प्रणाली से भी की जाती है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से चना राजस्थान में बाजरा व गेहूं के बाद तीसरा स्थान रखता है। यह राजस्थान के बोये गये क्षेत्र के लगभग 7.1 प्रतिशत पर उगाया जाता है। राज्य का लगभग 42 प्रतिशत क्षेत्र उत्तर में स्थित गंगानगर जिले में सीमित है। इन्दिरा गांधी नहर परियोजना से प्राप्त सिंचाई सुविधाओं के कारण ही चने का क्षेत्र यहां अधिक सकेन्द्रित है। गंगानगर जिले के अन्तर्गत चने का अधिकांश क्षेत्र शुष्क, रेतीले अथवा आर्द्र क्षेत्रों में तथा साथ ही साथ उन क्षेत्रों में जहां सिंचाई सुविधाओं की कमी है, विस्तृत हैं। सबसे अधिक चने का उत्पादन गंगानगर जिले में होता है जो चने के कुल उत्पादन का लगभग 43 प्रतिशत उत्पन्न करता हैं। अलवर, भरतपुर, जयपुर, कोटा, चूरू, चित्तौड़गढ़, सवाई-माधोपुर, टोंक तथा बूंदी आदि जिले प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। इन जिलों तथा गंगानगर जिले में चने के अन्तर्गत कुल फसली क्षेत्र का लगभग 88 प्रतिशत क्षेत्र केन्द्रित है। गंगानगर जिले में कुल बोये गये क्षेत्रफल के 28.30 प्रतिशत पर चना उगाया जाता है। किन्तु राज्य के शुष्क पश्चिमी भाग में बहुत थोड़ी मात्रा में यह उगाया जाता है। राजस्थान में चने के अन्तर्गत बोया गया क्षेत्रफल भारत का लगभग 18.26 प्रतिशत है तथा उत्पादन की दृष्टि से भी लगभग इतना ही प्रतिशत राज्य उत्पादन करता है। आजकल राज्य में लगभग 12लाख टन वार्षिक चना उत्पन्न हो रहा है। इस प्रकार देश में चने का उत्पादन करने वालों में राजस्थान प्रमुख है।

गन्ना—गन्ने का मूल स्थान भारत को माना जाता है। सबसे पहले शायद यह बंगाल की खाड़ी तट पर उगता मिला था। अधिकांश चीनी गन्ने से बनाई जाती है।

गन्ना मुख्यतः उष्ण कटिबन्धीय पौधा है। इसकी खेती के लिए प्रायः 15^{0} से 25^{0} सें. तक तापमान रहना चाहिये। पाला इसके लिए हानिकारक है। इसके लिए औसत वर्षा 125 से 175 सेन्टीमीटर तक अनुकूल पड़ती है। जहां पर वर्षा कम होती है, वहां पर 7-8 बार सिंचाई करके गन्ने की फसल ली जा सकती है।

गन्ने के लिए ऐसी मिट्टी जिसमें फास्फोरस की मात्रा आर्द्रता रखने की क्षमता अधिक हो, उपयुक्त रहती है। साधारणतः कांप अथवा दोमट अथवा लावा मिट्टी अनुकूल होती है। गन्ने की कृषि के लिए धरातल समतल तथा जल निकास सुविधा वाला होना चाहिये। सस्ते श्रमिक आवश्यक हैं अन्यथा उत्पादन व्यय बढ़ जाता हैं। गन्ने का एक बार बोया गया बीज तीन साल तक चलता है। यह साधारणतया मध्य जनवरी से मध्य अप्रेल तक बोया जाता हैं तथा आगामी फरवरी मार्च में काट लिया जाता है।

यद्यपि विश्व में सबसे अधिक गन्ने का उत्पादन भारत में होता है किन्तु राजस्थान भारत के कुल गन्ना क्षेत्र 1.11 प्रतिशत क्षेत्र पर गन्ना उत्पन्न करता है। यह राजस्थान के कुल बोये गये क्षेत्र के लगभग 0.16 प्रतिशत पर बोया जाता है। इसके उत्पन्न करने वाले प्रमुख जिले बूंदी, उदयपुर, गंगानगर तथा चित्तौड़गढ़, जो राजस्थान के कुल गन्ना उत्पादन के क्षेत्र का लगभग तीन चौथाई भाग रखते हैं, कुल उत्पादन का 77

प्रतिशत उत्पादन करते हैं। इनके अतिरिक्त गन्ने का उत्पादन छोटे पैमाने पर बाँसवाड़ा, भरतपुर, भीलवाड़ा, डूंगरपुर, जयपुर, झालावाड़, कोटा, सवाईमाधोपुर, तथा टोंक जिलों में भी किया जाता है। बूंदी जिला राज्य के कुल गन्ने क्षेत्र का लगभग 30.20 प्रतिशत क्षेत्र रखकर इतनी ही प्रतिशत मात्रा में गन्ने का उत्पादन कर राजस्थान में प्रथम स्थान रखता है जबकि द्वितीय स्थान पर उदयपुर जिला है। गंगानगर जिले में गन्ने की कृषि सिंचाई की सहायता से की जाती है।

वर्ष 1980–81 में 29.1 लाख हैक्टेयर भूमि पर यह उत्पन्न किया गया जिससे 11.61 लाख टन गन्ने का उत्पादन हुआ। राजस्थान का गन्ना स्थानीय चीनी मिल में गुड़ बनाने के काम आता है।

तिलहन—व्यावसायिक कृषि उपजों में तिलहन के अन्तर्गत दो प्रकार के बीज सम्मिलित किये जाते हैं। एक वे जिनका दाना छोटा होता है जैसे अलसी, राई, सरसों व तिल। दूसरे वे जिनका दाना बड़ा होता है जैसे मूंगफली, रेंडी, बिनौला, महुआ व नारियल आदि। सभी प्रकार के तिलहनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी, वर्षा एवं ताप की आवश्यकता होती है। अतः राजस्थान के सभी जिलों में ये न्यूनाधिक मात्रा में पैदा किये जाते हैं। वर्ष 1960-61 और 1984-85 में सभी प्रकार तिलहनों का उत्पादन क्रमशः 2.76 लाख और 11.60 टन हुआ था।

मूंगफली—मूंगफली उष्ण कटिबन्धीय पौधा है। इसे साधारण ताप 15° से 25° से. तापमान की आवश्यकता होती है। पाला फसल के लिए हानिकारक है। वर्षा 75 से 150 सेन्टीमीटर होनी चाहिये। इससे कम वर्षा होने पर सिंचाई की सुविधा प्रदान करना आवश्यक हो जाता है। यह हल्की मिट्टी में जिसमें खाद दी गई हो और पर्याप्त मात्रा में जीवांश मिले हों, अच्छी पैदा होती है। मूंगफली खरीफ की फसल है जो मई से अगस्त तक बोई तथा नवम्बर से जनवरी तक खोदी जाती है। इसके लिए शुष्क मौसम की लम्बी अवधि चाहियें। इसे ज्वार, बाजरा, रेंडी, अरहर आदि के साथ मिलाकर बोया जाता है। राजस्थान में चित्तौड़गढ़, सवाईमाधोपुर, जयपुर, भरतपुर, भीलवाड़ा तथा झालावाड़ जिले इसके उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त अजमेर, कोटा, टोंक तथा उदयपुर में भी अच्छा उत्पादन किया जाता है। चित्तौड़गढ़ तथा सवाईमाधोपुर ये दोनों जिले राजस्थान के मूंगफली उत्पादन का लगभग 47% उत्पादन करते हैं जबकि इन दोनों जिलों में मूंगफली के कुल बोये गये क्षेत्रफल का केवल 24% ही मिलता है। चित्तौड़गढ़ जिले की कुल बोई गई भूमि के लगभग 6 प्रतिशत पर यह बोई जाती है। आजकल चित्तौड़गढ़ में कपास की अपेक्षा मूंगफली की मुद्रादायिनी फसल के रूप में स्थान दिया जा रहा है। 1980-81 में यह 211.9 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में बोई गयी तथा इससे 85.8 हजार टन का उत्पादन हुआ।

अलसी—अलसी की कृषि दो कार्यों के लिए की जाती है। एक तो इसके बीजों से तेल प्राप्त करने के लिए, दूसरे इसके पौधों से रेशे प्राप्त कर लिनेन वस्त्र बुनने के लिए इसका उत्पादन किया जाता है। तेल का उपयोग रंग-रोगन बनाने में किया जाता है।

अलसी के लिए औसत तापमान 15° से 25° सें. ठीक रहता है। यदि मिट्टी में पर्याप्त नमी हो तो अलसी सभी प्रकार की मिट्टी में उत्पन्न हो सकती है। इसके लिए 75 से 150 सेन्टीमीटर तक वर्षा पर्याप्त होती है।

अलसी की बुआई प्रायः वर्षा के समाप्त होते ही अक्टूबर से दिसम्बर तक होती है और फरवरी से अप्रेल तक काटी जाती है। राजस्थान में इसके प्रमुख उत्पादक जिले कोटा, सवाईमाधोपुर तथा झालावाड़ हैं जिनमें कुल बोई गई भूमि का लगभग 72 % क्षेत्र केन्द्रित हैं तथा जो राज्य के अलसी उत्पादन का तीन चौथाई उत्पादन करते है। इसके अतिरिक्त चित्तौड़गढ़, सीकर, टोंक, भरतपुर, बूंदी तथा भीलवाड़ा जिले हैं जिनमें इसका लगभग 23 प्रतिशत क्षेत्र स्थित है। पश्चिमी राजस्थान के शुष्क जिलों में इसकी कृषि बिल्कुल नहीं की जाती है। वर्ष 1980-81 में इसकी कृषि राज्य में 43 हजार हैक्टेयर भूमि पर की गई जिससे 14 हजार टन अलसी का उत्पादन हुआ।

अरण्डी—यह उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्ध का पौधा है। इसकी कृषि मैदानों तथा पठारों पर समान रूप से होती है। इसके लिए शुष्क बलुही या कांप मिट्टी की आवश्यकता होती है। पाला पड़ने पर अरण्डी के वृक्ष की पत्तियां

सूख जाती है और फसल को क्षति पहुँचती है। साधारणतया जुलाई के महीने में पहली वर्षा पड़ने पर बो दी जाती है और दिसम्बर से मार्च तक काटी जाती है।

वर्ष 1980-81 में राजस्थान में यह कुल 4,082 हैक्टेयर भूमि पर बोई गई जिससे इसका उत्पादन 841 टन हुआ। उत्पादन की दृष्टि से जालोर, सिरोही, पाली तथा बांसवाड़ा आदि जिले प्रमुख हैं क्योंकि ये जिले राज्य का लगभग 90 प्रतिशत उत्पादन करते हैं। कुछ अरण्डी का उत्पादन बाड़मेर, भरतपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर तथा कोटा आदि जिलों में भी होता है। राजस्थान के अधिकांश पश्चिमी जिलों में इसका उत्पादन नहीं किया जाता है।

तिल—राजस्थान में तिल खरीफ की फसल है। इसके लिए 20° से 25° सें. या इससे कुछ अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। तिल की खेती वहाँ अच्छी होती है जहाँ ग्रीष्म के महीने में तापक्रम 21° सें.या इससे अधिक रहता हो। 50 से 100 सेंटीमीटर तक की वर्षा इसके लिए पर्याप्त होती है। तिल के लिए हल्की बलुही मिट्टी की आवश्यकता होती है जिसमें जल रुके नहीं। इसकी खेती निकृष्ट एवं अनुपजाऊ खेतिहर भूमि में भी की जाती है।

राजस्थान में इसकी कृषि मैदानी भागों तथा भूमि के उच्च खण्डों तक सीमित है। खेतों की तैयारी जून के अन्त से जुलाई के प्रारम्भ में की जाती है। बुआई का काल मध्य जुलाई से मध्य अगस्त तक रहता है। कटाई का कार्य सितम्बर के अन्त से अक्टूबर के अन्त तक चलता है।

तिल राजस्थान के कुल क्षेत्र के लगभग 2.47 प्रतिशत भाग में उत्पन्न किया जाता है। यह अधिकतर नागौर, कोटा, पाली, जोधपुर, भरतपुर, अलवर, चित्तौड़गढ़, सवाईमाधोपुर, उदयपुर, बूंदी, भीलवाड़ा तथा झालावाड़ जिलों में बोया जाता है। नागौर, कोटा, पाली व जोधपुर जिलों में राज्य के कुल तिल उत्पादन क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र है जबकि ये सभी कुल उत्पादन का 47 प्रतिशत भाग उत्पन्न करते हैं। प्रथम स्थान नागौर जिले का है जहाँ 18 70 प्रतिशत क्षेत्र पर 14.62 प्रतिशत उत्पादन किया जाता है लेकिन भरतपुर जिला 1.40 प्रतिशत क्षेत्र से 8.35 प्रतिशत का उत्पादन कर प्रति हैक्टेयर उत्पादन की दृष्टि से प्रथम स्थान राज्य में रखता है।

तिल का उत्पादन वैसे तो सभी शेष जिलों में थोड़ा बहुत किया जाता है लेकिन चूरु, गंगानगर, जैसलमेर, झुंझुनूं, सीकर, और बीकानेर आदि जिलों में सन् 1981 में इसका उत्पादन लगभग 428 हजार हैक्टेयर भूमि पर किया गया जिससे 34 हजार टन तिल का उत्पादन हुआ।

सरसों व राई—इनके दाने छोटे होते हैं। इनका तेल निकाला जाता है। तेल निकालने के बाद जो लुग्दी बच जाती है उसे खल कहते हैं। यह पशुओं को खिलाने के काम में आती है।

यह रबी की फसल है। सरसों व राई प्रायः गेहूँ, जौ आदि फसलों के साथ बोई जाती है। अतः इसके लिए वैसी ही जलवायु व मिट्टी आवश्यक होती है जैसी गेहूं या जौ के लिए। औसत तापमान 20° से 25° सें. और वर्षा 75 से 150 सेन्टीमीटर लाभदायक होती है किन्तु जल की अधिकता पौधों को नष्ट कर देती है। उपजाऊ दोमट मिट्टी इसके लिए विशेष रूप से उपयुक्त है।

राजस्थान के कुल कृषि क्षेत्र के लगभग 2.08 प्रतिशत भाग पर उत्पन्न की जाती है। राज्य के अन्तर्गत इनका उत्पादन गंगानगर, भरतपुर, अलवर तथा जालोर जिलों में सर्वाधिक किया जाता है। इन जिलों में इन फसलों के अन्तर्गत कुल बोई गई भूमि का लगभग 67 प्रतिशत भाग केन्द्रित है और लगभग 73 प्रतिशत राज्य का उत्पादन होता है।

इन जिलों के अतिरिक्त पाली, जोधपुर, सवाईमाधोपुर, जयपुर, कोटा, उदयपुर, सिरोही, सीकर, नागौर और झुन्झुनूं आदि जिलों में भी इनका उत्पादन किया जाता है। राज्य के डूंगरपुर,जैसलमेर, झालावाड़, भीलवाड़ा तथा अजमेर आदि जिले इनकी कृषि में नगण्य स्थान रखते हैं। इस प्रकार सरसों एवं राई के प्रमुख उत्पादक जिले राज्य के उत्तरी पूर्वी एवं दक्षिणी पूर्वी भागों में स्थित हैं। वर्ष 1980-81 राज्य में इनकी खेती 362 हजार हैक्टेयर भूमि पर की गई तथा 248 हजार टन का उत्पादन हुआ।

प्रतिशत उत्पादन करते हैं। इनके अतिरिक्त गन्ने का उत्पादन छोटे पैमाने पर बाँसवाड़ा, भरतपुर, भीलवाड़ा, डूंगरपुर, जयपुर, झालावाड़, कोटा, सवाईमाधोपुर, तथा टोंक जिलों में भी किया जाता है। बूंदी जिला राज्य के कुल गन्ने क्षेत्र का लगभग 30.20 प्रतिशत क्षेत्र रखकर इतनी ही प्रतिशत मात्रा में गन्ने का उत्पादन कर राजस्थान में प्रथम स्थान रखता है जबकि द्वितीय स्थान पर उदयपुर जिला है। गंगानगर जिले में गन्ने की कृषि सिंचाई की सहायता से की जाती है।

वर्ष 1980–81 में 29.1 लाख हैक्टेयर भूमि पर यह उत्पन्न किया गया जिससे 11.61 लाख टन गन्ने का उत्पादन हुआ। राजस्थान का गन्ना स्थानीय चीनी मिल में गुड़ बनाने के काम आता है।

तिलहन—व्यावसायिक कृषि उपजों में तिलहन के अन्तर्गत दो प्रकार के बीज सम्मिलित किये जाते हैं। एक वे जिनका दाना छोटा होता है जैसे अलसी, राई, सरसों व तिल। दूसरे वे जिनका दाना बड़ा होता है जैसे मूंगफली, रेंड़ी, बिनौला, महुआ व नारियल आदि। सभी प्रकार के तिलहनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी, वर्षा एवं ताप की आवश्यकता होती है। अत: राजस्थान के सभी जिलों में ये न्यूनाधिक मात्रा में पैदा किये जाते हैं। वर्ष 1960-61 और 1984-85 में सभी प्रकार तिलहनों का उत्पादन क्रमश: 2.76 लाख और 11.60 टन हुआ था।

मूंगफली—मूंगफली उष्ण कटिबन्धीय पौधा है। इसे साधारण ताप 15° से 25° से. तापमान की आवश्यकता होती है। पाला फसल के लिए हानिकारक है। वर्षा 75 से 150 सेन्टीमीटर होनी चाहिये। इससे कम वर्षा होने पर सिंचाई की सुविधा प्रदान करना आवश्यक हो जाता है। यह हल्की मिट्टी में जिसमें खाद दी गई हो और पर्याप्त मात्रा में जीवांश मिले हों, अच्छी पैदा होती है। मूंगफली खरीफ की फसल है जो मई से अगस्त तक बोई तथा नवम्बर से जनवरी तक खोदी जाती है। इसके लिए शुष्क मौसम की लम्बी अवधि चाहिये। इसे ज्वार, बाजरा, रेंडी, अरहर आदि के साथ मिलाकर बोया जाता है। राजस्थान में चित्तौड़गढ़, सवाईमाधोपुर, जयपुर, भरतपुर, भीलवाड़ा तथा झालावाड़ जिले इसके उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त अजमेर, कोटा, टोंक तथा उदयपुर में भी अच्छा उत्पादन किया जाता है। चित्तौड़गढ़ तथा सवाईमाधोपुर ये दोनों जिले राजस्थान के मूंगफली उत्पादन का लगभग 47% उत्पादन करते हैं जबकि इन दोनों जिलों में मूंगफली के कुल बोये गये क्षेत्रफल का केवल 24% ही मिलता है। चित्तौड़गढ़ जिले की कुल बोई गई भूमि के लगभग 6 प्रतिशत पर यह बोई जाती है। आजकल चित्तौड़गढ़ में कपास की अपेक्षा मूंगफली की मुद्रादायिनी फसल के रूप में स्थान दिया जा रहा है। 1980-81 में यह 211.9 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में बोई गयी तथा इससे 85.8 हजार टन का उत्पादन हुआ।

अलसी—अलसी की कृषि दो कार्यों के लिए की जाती है। एक तो इसके बीजों से तेल प्राप्त करने के लिए, दूसरे इसके पौधों से रेशे प्राप्त कर लिनेन वस्त्र बुनने के लिए इसका उत्पादन किया जाता है। तेल का उपयोग रंग-रोगन बनाने में किया जाता है।

अलसी के लिए औसत तापमान 15° से 25° सें. ठीक रहता है। यदि मिट्टी में पर्याप्त नमी हो तो अलसी सभी प्रकार की मिट्टी में उत्पन्न हो सकती है। इसके लिए 75 से 150 सेन्टीमीटर तक वर्षा पर्याप्त होती है।

अलसी की बुआई प्रायः वर्षा के समाप्त होते ही अक्टूबर से दिसम्बर तक होती है और फरवरी से अप्रेल तक काटी जाती है। राजस्थान में इसके प्रमुख उत्पादक जिले कोटा, सवाईमाधोपुर तथा झालावाड़ हैं जिनमें कुल बोई गई भूमि का लगभग 72% क्षेत्र केन्द्रित हैं तथा जो राज्य के अलसी उत्पादन का तीन चौथाई उत्पादन करते है। इसके अतिरिक्त चित्तौड़गढ़, सीकर, टोंक, भरतपुर, बूंदी तथा भीलवाड़ा जिले हैं जिनमें इसका लगभग 23 प्रतिशत क्षेत्र स्थित है। पश्चिमी राजस्थान के शुष्क जिलों में इसकी कृषि बिलकुल नहीं की जाती है। वर्ष 1980-81 में इसकी कृषि राज्य में 43 हजार हैक्टेयर भूमि पर की गई जिससे 14 हजार टन अलसी का उत्पादन हुआ।

अरण्डी—यह उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्ध का पौधा है। इसकी कृषि मैदानों तथा पठारों पर समान रूप से होती है। इसके लिए शुष्क बलुही या कांप मिट्टी की आवश्यकता होती है। पाला पड़ने पर अरण्डी के वृक्ष की पत्तियां

सूख जाती है और फसल को क्षति पहुँचती है। साधारणतया जुलाई के महीने में पहली वर्षा पड़ने पर वो दी जाती है और दिसम्बर से मार्च तक काटी जाती है।

वर्ष 1980-81 में राजस्थान में यह कुल 4,082 हैक्टेयर भूमि पर वोई गई जिससे इसका उत्पादन 841 टन हुआ। उत्पादन की दृष्टि से जालौर, सिरोही, पाली तथा बांसवाड़ा आदि जिले प्रमुख हैं क्योंकि ये जिले राज्य का लगभग 90 प्रतिशत उत्पादन करते हैं। कुछ अरण्डी का उत्पादन बाड़मेर, भरतपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर तथा कोटा आदि जिलों में भी होता है। राजस्थान के अधिकांश पश्चिमी जिलों में इसका उत्पादन नहीं किया जाता है।

तिल—राजस्थान में तिल खरीफ की फसल है। इसके लिए 20° से 25° सें. या इससे कुछ अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। तिल की खेती वहाँ अच्छी होती है जहाँ ग्रीष्म के महीने में तापक्रम 21° सें.या इससे अधिक रहता हो। 50 से 100 सेंटीमीटर तक की वर्षा इसके लिए पर्याप्त होती है। तिल के लिए हल्की बलुही मिट्टी की आवश्यकता होती है जिसमें जल रुके नहीं। इसकी खेती निकृष्ट एवं अनुपजाऊ खेतिहर भूमि में भी की जाती है।

राजस्थान में इसकी कृषि मैदानी भागों तथा भूमि के उच्च खण्डों तक सीमित है। खेतों की तैयारी जून के अन्त से जुलाई के प्रारम्भ में की जाती है। बुआई का काल मध्य जुलाई से मध्य अगस्त तक रहता है। कटाई का कार्य सितम्बर के अन्त से अक्टूबर के अन्त तक चलता है।

तिल राजस्थान के कुल क्षेत्र के लगभग 2.47 प्रतिशत भाग में उत्पन्न किया जाता है। यह अधिकतर नागौर, कोटा, पाली, जोधपुर, भरतपुर, अलवर, चित्तौड़गढ़, सवाईमाधोपुर, उदयपुर, बूंदी, भीलवाड़ा तथा झालावाड़ जिलों में बोया जाता है। नागौर, कोटा, पाली व जोधपुर जिलों में राज्य के कुल तिल उत्पादन क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र है जबकि ये सभी कुल उत्पादन का 47 प्रतिशत भाग उत्पन्न करते हैं। प्रथम स्थान नागौर जिले का है जहाँ 18 70 प्रतिशत क्षेत्र पर 14.62 प्रतिशत उत्पादन किया जाता है लेकिन भरतपुर जिला 1.40 प्रतिशत क्षेत्र से 8.35 प्रतिशत का उत्पादन कर प्रति हैक्टेयर उत्पादन की दृष्टि से प्रथम स्थान राज्य में रखता है।

तिल का उत्पादन वैसे तो सभी शेष जिलों में थोड़ा बहुत किया जाता है लेकिन चूरू, गंगानगर, जैसलमेर, झुंझुनूं, सीकर, और बीकानेर आदि जिलों में सन् 1981 में इसका उत्पादन लगभग 428 हजार हैक्टेयर भूमि पर किया गया जिससे 34 हजार टन तिल का उत्पादन हुआ।

सरसों व राई—इनके दाने छोटे होते हैं। इनका तेल निकाला जाता है। तेल निकालने के बाद जो लुग्दी बच जाती है उसे खल कहते हैं। यह पशुओं को खिलाने के काम में आती है।

यह रवी की फसल है। सरसों व राई प्राय: गेहूं, जौ आदि फ़सलों के साथ बोई जाती है। अत: इसके लिए वैसी ही जलवायु व मिट्टी आवश्यक होती है जैसी गेहूं या जौ के लिए। औसत तापमान 20° से 25° सें. और वर्षा 75 से 150 सेन्टीमीटर लाभदायक होती है किन्तु जल की अधिकता पौधों को नष्ट कर देती है। उपजाऊ दोमट मिट्टी इसके लिए विशेष रूप से उपयुक्त है।

राजस्थान के कुल कृषि क्षेत्र के लगभग 2.08 प्रतिशत भाग पर उत्पन्न की जाती है। राज्य के अन्तर्गत इनका उत्पादन गंगानगर, भरतपुर, अलवर तथा जालौर जिलों में सर्वाधिक किया जाता है। इन जिलों में इन फसलों के अन्तर्गत कुल वोई गई भूमि का लगभग 67 प्रतिशत भाग केन्द्रित है और लगभग 73 प्रतिशत राज्य का उत्पादन होता है।

इन जिलों के अतिरिक्त पाली, जोधपुर, सवाईमाधोपुर, जयपुर, कोटा, उदयपुर, सिरोही, सीकर, नागौर और झुन्झुनूं आदि जिलों में भी इनका उत्पादन किया जाता है। राज्य के डूंगरपुर,जैसलमेर, झालावाड़, भीलवाड़ा तथा अजमेर आदि जिले इनकी कृषि में नगण्य स्थान रखते हैं। इस प्रकार सरसों एवं राई के प्रमुख उत्पादक जिले राज्य के उत्तरी पूर्वी एवं दक्षिणी पूर्वी भागों में स्थित हैं। वर्ष 1980-81 राज्य में इनकी खेती 362 हजार हैक्टेयर भूमि पर की गई तथा 248 हजार टन का उत्पादन हुआ।

तम्बाकू—भारत में तम्बाकू का पौधा पुर्तगालियों द्वारा सन् 1508 में लाया गया और तब से इसकी खेती भारत के लगभग सभी राज्यों में की जाती है।

तम्बाकू उष्ण कटिबन्धीय पौधा है। इसके पूर्ण विकास के लिए तापमान 16° से 40° सें. तक तथा वर्षा का औसत 50-100 सेन्टीमीटर होना चाहिये। इसकी जड़ों में जल एकत्रित नहीं होना चाहिये। अतः तम्बाकू की कृषि ढालू सतह और पठारी भागों में भी की जाती है। पाला इसके लिए हानिकारक हैं। तम्बाकू के लिए बुलही दोमट अथवा मिश्रित कच्छारी मिट्टी उपयुक्त रही है। यह चूने और पोटाशयुक्त मिट्टी में अच्छी तरह पनपता है। इसकी खेती करने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति शीघ्र नष्ट हो जाती है। अतः खेती में अमोनिया सल्फेट, पोटेशियम सल्फेट तथा सुपर फॉस्फेट व हरी खाद डाली जाती है। तम्बाकू की कृषि के लिए सस्ते श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है।

तम्बाकू की कई किस्में बोई जाती हैं लेकिन दो मुख्य किस्में हैं--निकोटिना टुबेकम और निकोटिना रास्टिका। राजस्थान में सबसे अधिक क्षेत्रफल प्रथम किस्म के अन्तर्गत है। राजस्थान में यह अधिकतर अलवर झुन्झुनू, सवाईमाधोपुर, चित्तौड़गढ, जयपुर, नागौर तथा उदयपुर जिलों में बोई जाती है। इन जिलों में राज्य के तम्बाकू के कुल क्षेत्रफल का 78 प्रतिशत भाग पाया जाता हैं तथा कुल उत्पादन का 85 प्रतिशत उत्पादन होता है। क्षेत्र तथा उत्पादन की दृष्टि से अलवर सब जिलों में अग्रणीय है। तम्बाकू के कुल क्षेत्रफल का दो तिहाई भाग अरावली के पूर्वी भाग में स्थित है जबकि पश्चिम की तरफ झुन्झुनूं व नागौर जिले ही महत्वपूर्ण हैं जो कुल क्षेत्रफल का 12 प्रतिशत भाग रख कर कुल उत्पादन का लगभग 22 प्रतिशत तम्बाकू उत्पन्न करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ तम्बाकू बांसवाड़ा, भरतपुर, भीलवाड़ा, जालौर, झालावाड़, जोधपुर तथा सीकर में भी उगाया जाता है। बाकी जिले नगण्य हैं। वर्ष 1980-81 में तम्बाकू के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल 2,829 हैक्टेयर था जिससे 1,975 टन तम्बाकू का उत्पादन प्राप्त हुआ। इसकी कृषि पर कर लगता है।

कपास—कपास भारत की उपज है। राजस्थान में कपास को ग्रामीण भाषा में बणीयां कहते हैं।

कपास उष्ण कटिबन्धीय पौधा है। इसके लिए साधारणतः 20°-30° सें. तापमान की आवश्यकता पड़ती है किन्तु यह 40° से. तक की गर्मी में पैदा किया जा सकता है। इसे 200 दिन पाला रहित ऋतु चाहिये। अधिक ठण्ड में इसमें एक कीड़ा बॉलवीविल लग जाता है। पकते समय अथवा फूल खिलते समय स्वच्छ आकाश, तेज गर्मी और धूप आवश्यक है। रात्रि में हल्की ठड लाभदायक है।

कपास के लिए साधारणतः 50 से 100 सेन्टीमीटर वर्षा पर्याप्त होती है। जहां वर्षा 50 सेन्टीमीटर से कम होती है वहाँ सिंचाई के सहारे कपास पैदा की जाती है। राजस्थान में कपास की खेती सिंचाई द्वारा की जाती है। सिंचाई द्वारा उत्पादित कपास की किस्म अच्छी होती हैं तथा प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी अधिक मिलता है।

कपास का उत्पादन विभिन्न प्रकार की मिट्टियो में किया जा सकता है किन्तु आर्द्रतापूर्ण, चिकनी और काली मिट्टी अधिक लाभप्रद मानी जाती है क्योंकि पौधे की जड़ जल में न डूबे तब भी उसे अधिक आर्द्रता की आवश्यकता होती है। कपास के लिए समतल और सुप्रावाहित धरातल तथा उपजाऊ मिट्टी आवश्यक है। चूने के अंश वाली मिट्टी उत्तम रहती है क्योंकि इससे अधिक उपज प्राप्त होती है।

कपास का पौधा 1.25-1.50 मीटर ऊंचा होता है। ज्योंही पौधे पर फूल निकल कर बड़े होने लगे त्योंही उनको चुन लेना आवश्यक होता है अन्यथा फूल खराब होकर गिरने लगते हैं। फूल चुनने का अधिकतर कार्य स्त्रियां व बच्चे करते हैं। कपास के लिए सस्ते श्रम की आवश्यकता पड़ती है। कपास की बुआई का कार्य मध्य अप्रेल से प्रारम्भ कर मध्य जून तक किया जाता है। कपास के पौधों के लिए पानी की आपूर्ति उपलब्ध करवाने के लिए इसे सम दूरी पर लगाना चाहिये। सिंचाई चार बार जून में और यदि वर्षा न हो तो पांचवी बार पानी अक्टूबर के अन्त तक देना चाहिये। कपास की चुनाई उसकी किस्म तथा बुआई के समय पर निर्भर करती है। साधारणतया सितम्बर के अन्त से प्रारम्भ होकर दिसम्बर के अन्त तक होती हैं।

राजस्थान में कपास तीन प्रकार की बोई जाती है देशी, अमरीकी व मालवी। देशी कपास राजस्थान के

प्रायः सभी भागों में बोयी जाती है। राजस्थान में देशी कपास उदयपुर, चित्तौड़गढ़ व झालावाड़ में बोई जाती है अमेरिकी कपास गंगानगर तथा बांसवाड़ा में और मालवी कपास राज्य के कोटा, बूंदी, झालावाड़, बांसवाड़ा तथा टोंक जिलों में होती है।

राज्य के कपास उत्पादक क्षेत्र भारत के मुख्य कपास उत्पादक प्रदेशों के भाग नहीं है। कपास की कृषि सन् 1980-81 में लगभग 357 हजार हैक्टेयर भूमि पर की गई जो राज्य के कुल कृषि क्षेत्र का 2.05 प्रतिशत भाग है। राजस्थान के कपास क्षेत्र का 66 प्रतिशत क्षेत्र अकेले गंगानगर में केन्द्रित है। लगभग 25 प्रतिशत कपास क्षेत्र राज्य के पूर्वी जिलों जैसे उदयपुर, सिरोही, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, अजमेर, झालावाड़ तथा बांसवाड़ा आदि में विस्तृत हैं। भारत के मुख्य कपास उत्पादक प्रदेशों की भाँति राज्य में भी कपास की कृषि मिट्टी के वितरण से बहुत अधिक सम्बन्धित है। उपरोक्त क्षेत्रों में लाल व पीली मिट्टियां अथवा मिश्रित लाल और काली मिट्टियाँ अथवा मध्यम काली मिट्टियाँ मिलती हैं जहां कपास की कृषि की जाती है। राजस्थान में जैसलमेर व चूरू जिले ऐसे हैं जहाँ कपास का उत्पादन बिलकुल नहीं किया जाता है।

फल व सब्जियाँ—फल व सब्जियां विभिन्न प्रकार की जलवायु व मिट्टियों में उगाई जाती है। इसलिए राजस्थान के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के फल व सब्जियाँ उत्पन्न की जाती हैं। राजस्थान के पूर्वी-दक्षिणी तथा दक्षिण-पूर्वी भागों में इनका उत्पादन अधिक होता है जबकि पश्चिमी तथा उत्तरी भागों में सब्जियों की अपेक्षाकृत कम उत्पादन होता है। राज्य में आलू, बैंगन, भिण्डी, तुरई, टमाटर, लौकी, कद्दू, अरवी, रतालू, मिर्च गोभी, बन्दगोभी, मंगारफली आदि अनेक प्रकार की सब्जियां उत्पन्न की जाती हैं। आलू और गोभी का उत्पादन प्रायः शहरों व नगरों के समीप किया जाता है। उदयपुर व चित्तौड़गढ़ जिलों की मिर्च प्रसिद्ध हैं।

राजस्थान में विभिन्न प्रकार के फलों का उत्पादन किया जाता है लेकिन 'आम' प्रमुख फसल है। आम की यद्यपि कई किस्में उदयपुर, जयपुर तथा कोटा जिलों से प्राप्त की जाती हैं लेकिन आम बहुत बढ़िया किस्म के नहीं होते। आम राजस्थान में जयपुर, चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, बूंदी और कोटा जिलों में काफी होता है। आम का उत्पादन अभी तक व्यावसायिक फसलों के रूप में नहीं किया जा रहा है। अन्य जिलों में भी जल की उपलब्धि होने पर उगाया जाने लगेगा। जोधपुर के अनार, धौलपुर के नीबू, तथा गंगानगर के माल्टे बहुत प्रसिद्ध हैं। सिरोही जिले में चीकू का उत्पादन अधिक होता है जबकि जयपुर जिले में नख तथा नाशपाती, उदयपुर में पपीते, शरीफा, अंजीर व ककड़ी, बीकानेर में मतीरा, टोंक तथा पाली में खरबूजा आदि बहुत होता है।

गंगानगर जिला राजस्थान में अब प्रमुख फल उगाने वाला बनता जा रहा है। इसमें चीकू, आम, माल्टा और अंगूर प्रमुख रूप से उगाये जाने लगे हैं। यहाँ का माल्टा समग्र देश में प्रसिद्ध है। राजस्थान में पिछले कुछ वर्षों से अंगूर का उत्पादन निरन्तर वृद्धि की ओर अग्रसर है, कृषि विशेषज्ञों का मत है कि शुष्क जलवायु अंगूर की कृषि के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इसलिए इसका उत्पादन गंगानगर, पाली, नागौर, जयपुर तथा उदयपुर आदि जिलों में बढ़ाया जा रहा है।

अन्य फलों में नींबू, नारंगी, आड़ू, फालसे, बेर, सीताफल, सिंघाड़े, तरबूज तथा केला आदि मुख्य हैं। राजस्थान सरकार फलों के अधिक उत्पादन के लिये यथा सम्भव सहायता प्रदान करने का अथक प्रयास कर रही है।

यांत्रिक कृषि

उन क्षेत्रों में जहाँ घनत्व कम होता है, प्रायः कृषि यंत्रों की सहायता से विस्तृत खेती कर भूमि का उचित उपयोग किया जाता है। राजस्थान के पश्चिमी जिलों में जनसंख्या का दबाव भूमि पर कम है लेकिन यांत्रिक कृषि केवल गंगानगर जिले में उपलब्ध सुविधाओं के कारण विकसित हो सकी है। गंगानगर जिले में गंग कॉलोनी क्षेत्र में अधिकांश किसानों के पास ट्रैक्टर तथा कृषि यंत्र मिलते हैं। वहाँ पर सिंचाई के साधनों में वृद्धि के साथ-साथ यान्त्रिक कृषि का विकास किया गया है। यांत्रिक कृषि का सबसे उत्तम क्षेत्र सूरतगढ़ फार्म है जहाँ आधुनिक कृषि पद्धतियों का उपयोग कर भूमि की सघनता का

अधिकतम लाभ उठाया जा रहा है।

सूरतगढ़ यान्त्रिक फार्म—

सूरतगढ़ में सोवियत रूस की आर्थिक सहायता से 12,410 हैक्टेयर क्षेत्र में एशिया महाद्वीप का सबसे बड़ा कृषि फार्म 15 अगस्त, 1956 को स्थापित किया गया। सन् 1956 में रूस से सम्बन्धित यंत्र मंगवाये गये जिनकी सहायता से 1,620 हैक्टेयर भूमि में खेती कर 385 मैट्रिक टन खाद्यान्न तथा 391 मैट्रिक टन तिलहन की उपज हुई। सूरतगढ फार्म पर कृषि फसलों पर नये प्रयोग किये जाते हैं। अच्छे प्रकार के पशुओं की संख्या में वृद्धि करने के लिए उत्तम नस्ल विकसित करने का कार्य भी किया जा रहा है। यहाँ से उत्तम नस्ल के पशु तथा सांड राजस्थान के अन्य जिलों को भेजे जाते हैं। सूरतगढ़ फार्म ने प्राकृतिक विपदाओं व अपर्याप्त सिंचाई सुविधाएं होने पर भी आशातीत सफलता प्राप्त की है। इस फार्म में खरीफ की फसल के अन्तर्गत चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास, गन्ना व तिल आदि तथा रबी की फसल के अन्तर्गत गेहूँ, जौ, सरसों व चना आदि का उत्पादन किया जाता है। यांत्रिक कृषि की आधुनिक तकनीकों व सुविधाओं को अपना कर यहाँ उत्पादन किया जाता है जिससे प्रति हैक्टेयर उपज अच्छी होती है। इस फार्म की 85 हैक्टेयर भूमि पर फलों का उत्पादन किया जा रहा है।

सूरतगढ़ फार्म की आशातीत सफलता से प्रेरित होकर केन्द्रीय सरकार ने गंगानगर जिले में जैतसर स्थान पर 12,140 हैक्टेयर का एक फार्म स्थापित किया है जिसे इंदिरा नहर की वितरक नहर सूरतगढ़ शाखा सिंचित करती है। इस फार्म के चारों ओर के टीलों को साफ कर मैदान का रूप दे दिया गया है। सर्वप्रथम सन् 1963 में गंगनहर के द्वारा इस फार्म की लगभग 4,000 हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की गई। यह फार्म सूरतगढ़ फार्म के प्रवन्ध के अंतर्गत है, इसलिए इस फार्म पर भी रूस से प्राप्त यंत्रों व मशीनों का प्रयोग किया जाता है। यह फार्म छोटी रेल्वे लाइन के सरुप-सागर-गंगानगर मार्ग पर पश्चिम में है। इस फार्म पर कपास, तिलहन व पशुओं के लिए चारे की कृषि की जाती है।

राज्य में इन दो मुख्य फार्मों के अलावा लगभग 80 अन्य छोटे-मोटे फार्म स्थापित किए गए हैं जिनके अंतर्गत 5,000 हैक्टेयर भूमि है। इसमें से 58 बीजों के विकास के लिए तथा 22 अनुसंधान कार्य के लिए है।

मिश्रित कृषि—राजस्थान में सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध करवाने के लिए सतत् प्रयास किए जा रहे हैं लेकिन फिर भी राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधाओं एवं वर्षा का अभाव प्रतिवर्ष बना रहता है। इसलिए कृषि लाभप्रद व्यवसाय नहीं है। प्रदेश में कृषक दो सौ दिन तक प्रायः व्यस्त रहते हैं। वर्ष के शेष दिनों में अन्य कार्यों को करने के लिए उन्हें उसकी खोज करनी पड़ती है। साधारणतया कृषक पशुपालन के कार्य को अपना कर अपना निर्वाह करते हैं।

कृषि कार्य के साथ-साथ पशुपालन व्यवसाय को अपनाना ही मिश्रित कृषि कहलाता है। राजस्थान में कृषि कार्यों में सलग्न जनसंख्या में से 70 प्रतिशत जन-संख्या मिश्रित कृषि करती है।

फसलों के उपरोक्त विवरण से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि राजस्थान में प्रायः सभी प्रकार की फसलें बोई जाती हैं। फिर भी राजस्थान के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग फसलें महत्वपूर्ण हैं। राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्रों में बाजरा, ग्वार, मेवाड़ में मक्का, हड़ोती के पठार में ज्वार प्रमुख उपज हैं। रबी की फसलों का वितरण राजस्थान में जोधपुर व बीकानेर के संभागों को छोड़कर प्रायः एक सा है।

राजस्थान में प्राकृतिक प्रकोपों तथा वर्षा के अभाव के फलस्वरूप एक विशेष प्रकार की कृषि की जाती है जिसे **मिली-जुली फसल** कह सकते हैं। मिली-जुली फसल एक प्रकार से कृषक को किसी सीमा तक किसी एक फसल के नष्ट हो जाने पर भी हानि से बचाती है। प्रायः कपास, तिल व बाजरे के साथ मूंगफली को बोते हैं। किसी कारण जब एक फसल नष्ट हो जाती है तो दूसरी प्राप्त हो जाती है। मिली-जुली फसल में प्रायः गौण फसल इस प्रकार बोई जाती है जो मुख्य फसल के लिए खाद का कार्य करती है। मूंगफली की फसल एक तो जल्दी पक जाती है तथा दूसरे खेत को इससे नत्रजन प्राप्त होती है। इसलिए प्रायः मूंगफली मुख्य फसल के साथ

बोई जाती है। यह भूमि को ढ़के रखती है जिससे मिट्टी की आर्द्रता बनी रहती है। अरण्डी के साथ भी मूंगफली बोई जा सकती है।

कृषि प्रदेश

कृषि प्रदेशों का निर्धारण वर्षा की मात्रा, मिट्टी, फसलोत्पादन तथा इसी प्रकार की अन्य भौगोलिक सूचनाओं की सहायता से किया जाता है। कृषि प्रदेशों से न केवल इनके आपसी सम्बन्धों तथा कृषि पद्धति की जानकारी होती है बल्कि संभावित कृषि विकास के लिए योजनाओं के निर्माण में भी सहायता मिलती है। प्रदेश की वर्षा राज्य में जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करती है। इसकी मात्रा के अनुसार यहां के कृषि कार्यों में भारी अन्तर पाये जाते हैं। मानचित्र संख्या 23 में राजस्थान के कृषि प्रदेशों को दिखाया गया है। प्रत्येक प्रदेश में विभिन्न फसलों का प्रधान्य है। इस प्रकार के प्रदेशों के निर्धारण में जे. सी. वीवर तथा किकूकाजू दोई की विधियों को अपनाते हुए सांख्यिकीय आंकड़ों को आधार बनाया गया है।

प्रोफेसर वी. सी. मिश्रा (1967) ने राजस्थान को सात भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त किया है। ये सभी प्रदेश फसलों के विभिन्न वर्ग रखते हैं। नहरी प्रदेश में चना, गेहूँ व कपास का उत्पादन अधिक होता है। अरावली प्रदेश के दक्षिणी भागों में मक्का एक प्रमुख फसल है और साथ ही इस प्रदेश में सबसे अधिक फसल वैभिन्य देखने को मिलता है। पूर्वी प्रदेश में चना प्रमुख फसल है जबकि दक्षिण-पूर्वी प्रदेश में जहाँ मध्यम काली मिट्टी मिलती है, ज्वार प्रथम स्थान की फसल है। इस प्रकार ये सभी प्रदेश अपनी-अपनी विशिष्ट प्रथम स्थान की फसलें रखते हैं।

किकूकाजू की विधि के अनुसार राजस्थान लगभग 76 फसल संयोग रखता है। जहाँ तक विविधता का प्रश्न है तो केवल बाजरा ही एक ऐसी फसल है जो एकल संस्कृति प्रदेश के रूप में पश्चिमी शुष्क प्रदेश की नौ तहसीलों पर विस्तृत है। पांच फसल संयोग अर्द्ध शुष्क प्रदेश में मिलते हैं जो दो फसलों से मिलकर बनते हैं। सत्रह फसल संयोग ऐसे हैं जो तीन फसलों से मिलकर बनते हैं यह सभी उपआर्द्र प्रदेश में फैले हैं। चार फसलों के संयोग लगभग 20 बनते हैं। इसी प्रकार पांच फसलों के संयोग भी 20 बनते हैं। परिणामस्वरूप राजस्थान के अधिकतर भागों पर तीन, चार तथा पांच फसलों के संयोग मिलते हैं। राजस्थान की लगभग 13 तहसीलें ऐसी हैं जिनमें छः, सात तथा आठ फसल संयोग पाये जाते हैं। यह सभी फसल संयोग संक्रमण पट्टी में पाये जाते हैं क्योंकि इस पट्टी के अर्द्ध शुष्क तथा उपआर्द्र के बीच में स्थित होने के कारण यहाँ विषम धरातलीय दशायें और संक्रमण की विशेषताएं पाई जाती है।

राजस्थान को प्रथम कोटि फसल के आधार पर चार प्रदेशों में बाँटा गया है फिर फसल संयोग के आधार पर उनके खण्ड निर्धारित किए गए हैं। प्रथम दृष्टि में प्रथम कोटि फसल का क्षेत्रीय वितरण विभिन्न प्रदेशीय प्रभुत्व को प्रदर्शित करता है लेकिन मोटे तौर पर यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न फसलों का प्रभुत्व विभिन्न क्षेत्रों में देखने को मिलता है जैसे—बाजरा व दालें शुष्क प्रदेश में, मक्का पहाड़ी प्रदेश में, चना, सरसों व राई पूर्वी प्रदेश में तथा ज्वार व गेहूँ काली मिट्टी के दक्षिण-पूर्वी प्रदेश में।

इनमें बाजरा को प्रथम फसल मानते हुए अन्य फसलों के संयोग से मिलाकर पांच कृषि प्रदेश (मा. सं 23) बनाये गये हैं जबकि ज्वार फसल का एक प्रदेश, मक्का फसल के दो प्रदेश तथा एक गेहूँ का प्रदेश बनाया गया है—

1. बाजरा-ज्वार प्रदेश—इस कृषि प्रदेश में जैसलमेर जिला बाड़मेर का उत्तरी भाग तथा फलोदी तहसील (जोधपुर) का थोडा सा पश्चिमी भाग इसके अन्तर्गत आता है। बाजरा सबसे प्रधान फसल है। भूमि में नमी की कमी, कम वर्षा, उच्च तापक्रम, सिंचाई की सुविधाओं का अभी वर्तमान में अभाव तथा रेतीली मिट्टी इस प्रदेश की प्रमुख भौगोलिक विशेषताएं हैं। बाजरा यहां के कृषि क्षेत्र के लगभग 98 प्रतिशत क्षेत्र पर उत्पन्न किया जाता है। ज्वार का उत्पादन अधिक नहीं होता है। इस प्रदेश में खेत बड़े, पशुओं का अधिक उपयोग, जनसंख्या का घनत्व सबसे कम, परिवहन के साधनों की कमी तथा अर्थव्यवस्था पशुओं पर आधारित आदि अनेक सांस्कृतिक विशेषताएं देखने को मिलती हैं।

2. बाजरा-दालें-तिलहन प्रदेश—इस कृषि प्रदेश में जालौर, जोधपुर, बीकानेर, चूरू जिले तथा नागौर जिले का पश्चिमी भाग सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में बाजरा के साथ-साथ दालें व तिलहन महत्वपूर्ण फसलें हैं। यहाँ पर वर्षा की मात्रा 20 से 40 सेन्टीमीटर, तापक्रम पश्चिमी प्रदेश की अपेक्षा कम, रेतीली व भूरी रेतीली मिट्टियाँ, लेकिन बीकानेर के कुछ भाग में जिप्सम एवं चूनायुक्त मिट्टियाँ, भूमि में नमी की मात्रा कम आदि भौगोलिक विशेषताएं मिलती हैं। वर्षा की भिन्नता के कारण इस कृषि प्रदेश में अकाल पड़ते रहते हैं। इस प्रदेश में पश्चिम से पूर्व की ओर अग्रसर होने पर बाजरा के अन्तर्गत आने वाला क्षेत्र कम होने लगता है तथा दालें व तिलहन का कृषि क्षेत्र बढ़ने लगता है। बीकानेर व चूरू जिले में सिंचाई सुविधाओं का उपयोग कर दालों व तिलहन का उत्पादन अधिक बढ़ाया जा रहा है तथा भविष्य में इसकी काफी संभावनाएं हैं।
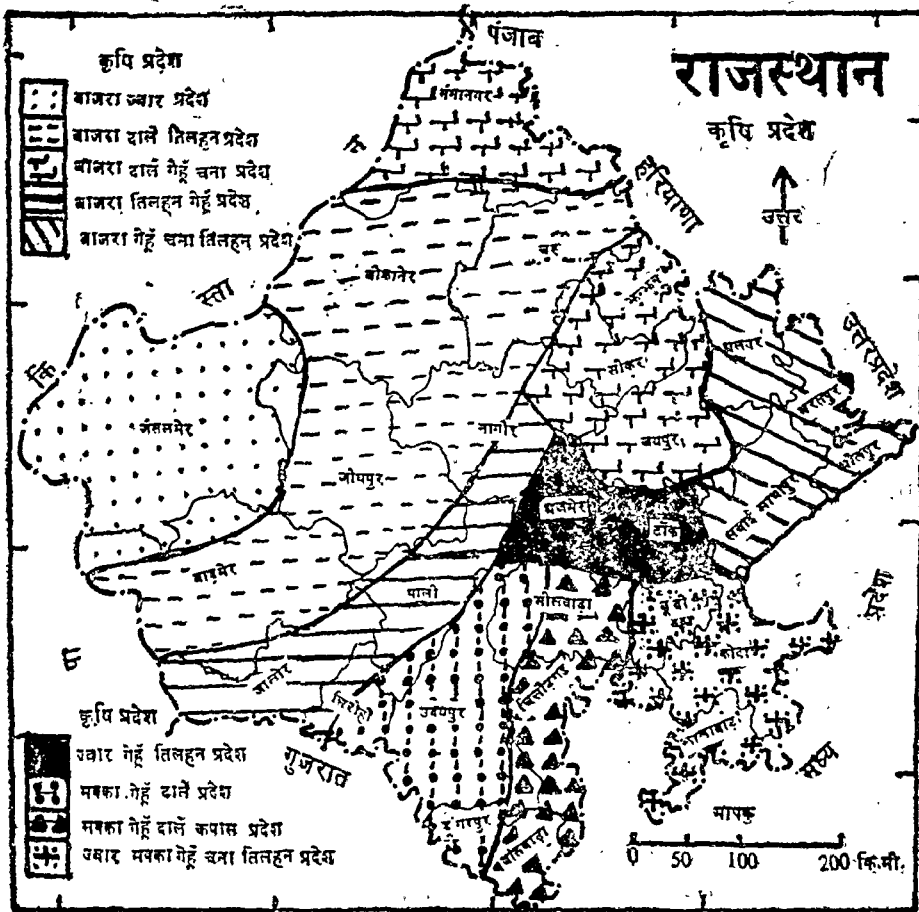
मानचित्र संख्या 23—राजस्थान कृषि प्रदेश

3. बाजरा-दालें-गेहूँ-चना प्रदेश—इस प्रदेश के अन्तर्गत गंगानगर, झुन्झुनूं, सीकर व जयपुर जिले आते हैं। इस प्रदेश में गेहूँ व चने का संयोग बाजरा व दालों के साथ देखने को मिलता है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र जो जयपुर जिले के अलावा अर्द्ध शुष्क प्रदेश है, इन फसलों के अनुरूप भौगोलिक दशायें रखता है। इस प्रदेश के गंगानगर जिले में रेतीली व भूरी रेतीली कच्छारी मिट्टी. शेखावाटी में भूरी रेतीली मिट्टी तथा जयपुर जिले में कच्छारी मिट्टी मिलती है। वर्षा की मात्रा इस प्रदेश में 20 सेन्टीमीटर से 60 सेन्टीमीटर है जो पश्चिमी-पूर्वी क्षेत्रों में बढ़ती जाती है। गंगानगर जिले में वर्षा की कम मात्रा की पूर्ति नहरी सिंचाई से कर ली जाती है। तापक्रम की विषमता गंगानगर में अधिक है।

इस प्रदेश में चार फसलें मुख्य रूप से उत्पन्न की

जाती हैं लेकिन प्रतिशत की मात्रा में विषमता देखने को मिलती है। गंगानगर में बाजरा व दालों का प्रतिशत गेहूं व चने की अपेक्षा अधिक तो है लेकिन उतना नहीं जितना कि झुन्झुनूं व सीकर जिलों में। बाजरा व दालों के अन्तर्गत सभी जिलों में प्रतिशत अधिक है लेकिन यह प्रतिशत झुन्झुनूं, सीकर, जयपुर तथा गंगानगर में क्रमशः कम होता जाता है फलस्वरूप सिंचाई की सुविधाओं का उपयोग अधिक परिलक्षित होता है। गंगानगर जिले में फसल वैभिन्य अधिक मिलता है जबकि शेखावाटी तथा जयपुर में यह कम है। गेहूं गंगानगर में अधिक उत्पन्न किया जाता है लेकिन अत्यधिक सकेन्द्रीयकरण का क्षेत्र जिले में कोई भी देखने को नहीं मिलता है। यह सभी तहसीलों में विभिन्न फसलों के साथ बोया जाता है।

4. बाजरा-तिलहन-गेहूं प्रदेश—इस प्रदेश में जालौर, पाली, सिरोही जिले का उत्तरी पश्चिमी भाग तथा नागौर जिले के पूर्वी भाग सम्मिलित हैं। यहां तीन फसलों का संयोग अर्थात बाजरा, तिलहन व गेहूं का संयोग मिलता है। इसके पश्चिम में स्थित कृषि प्रदेश में दालों का उत्पादन किया जाता है लेकिन इस प्रदेश में दालों का स्थान गेहूं ले लेता है। तापक्रम यहाँ शीतकाल में 14° सेन्टीग्रेड तथा ग्रीष्मकाल में 30°—32° सेन्टीग्रेड मिलता है। औसत वर्षा 30 से 60 सेन्टीमीटर के बीच होती है जो पश्चिम की ओर कम होती जाती है। यह प्रदेश लूनी नदी व जवाई बांध से सिंचित है। वर्षा की मात्रा अच्छी होने के कारण यहां पर बाजरा व तिलहन के साथ गेहूं का उत्पादन किया जाता है। मिट्टियां यहां पर भूरी-रेतीली, लाल-पीली तथा धूसर-भूरी-जलोढ़ पाई जाती हैं। यद्यपि बाजरा प्रथम फसल है लेकिन बाजरा-दालें-तिलहन प्रदेश की अपेक्षा इस प्रदेश में कृषि क्षेत्र के काफी भू-भाग पर बोया जाता है। तिलहन फसल द्वितीय स्थान पर होने के बावजूद भी अधिक क्षेत्र पर बोई जाती है। सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि होने के साथ फसल संयोग में परिवर्तन निकट भविष्य में होने की संभावना है।

5. बाजरा-गेहूँ-चना-तिलहन प्रदेश—इस प्रदेश के अन्तर्गत अलवर, भरतपुर, धौलपुर तथा सवाईमाधोपुर जिले आते हैं। इस प्रदेश में वर्षा की मात्रा 50 से 70 सेन्टीमीटर, तापमान ग्रीष्मकाल में 32° सेन्टीग्रेड तथा शीतकाल में 12° से 16° सेन्टीग्रेड तक पाये जाते हैं। इस प्रदेश की मिट्टियां भूरी-रेतीली-कच्छारी, कच्छारी, लाल पीली नई जलोढ़ आदि हैं जो गेहूँ, चना और तिलहन आदि फसलों के लिए उपयुक्त हैं। वर्षा की मात्रा अच्छी होने के कारण भूमि में नमी की मात्रा अच्छी बनी रहती है जिससे फसल वैभिन्य अधिक देखने को मिलता है। बाजरा खरीफ की फसल है। गेहूं के साथ-साथ चना अथवा तिलहन को मिलाकर बोते हैं। ज्यों-ज्यों सिंचाई की सुविधाएं बढ़ती जा रही हैं सहचरी फसलों की संख्या कम होती जा रही है।

6. ज्वार-गेहूँ-तिलहन प्रदेश—इस प्रदेश में अजमेर व टोंक जिले सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में वर्षा की औसत मात्रा अजमेर में 40 से 55 सेन्टीमीटर तथा टोंक में 50 से 70 सेन्टीमीटर है। तापक्रम ग्रीष्म ऋतु में 32° सेन्टीग्रेड तथा शीत ऋतु में 14°—16° सेन्टीग्रेड पाये जाते हैं। अजमेर में लाल-पीली तथा टोंक में कच्छारी मिट्टी पाई जाती है। खरीफ की फसल में ज्वार का उत्पादन किया जाता है जबकि रबी की फसल के अन्तर्गत गेहूं के साथ तिलहन बोये जाते हैं। ज्वार ऐसी फसल है जो शुष्क दशाओं में उगने की क्षमता रखती है लेकिन गेहूं व तिलहन सिंचाई की सुविधाओं के फलस्वरूप उत्पन्न की जाती है। राजस्थान में अजमेर जिले में फसल वैभिन्य सबसे अधिक मिलता है।

7. मक्का-गेहूँ-दालें प्रदेश—यह प्रदेश भीलवाड़ा जिले के पश्चिमी भाग, उदयपुर, डूंगरपुर जिले, पाली जिले के दक्षिण पूर्वी भाग तथा सिरोही जिले के पूर्वी भागों पर विस्तृत है। इस प्रदेश में वर्षा 60 सेन्टीमीटर से अधिक होती है। तापक्रम में अधिक विषमता देखने को नहीं मिलती है। इस प्रदेश की मिट्टियां लाल-पीली व लाल लोमी हैं जो मक्का की फसल के लिए अधिक उपयुक्त हैं। अरावली श्रेणी के पूर्व में स्थित लगभग 47 तहसीलों में यह अपना प्रथम स्थान रखती है। इस प्रदेश में धरातल काफी अधिक विषम हैं इसलिए फसल वैभिन्य अधिक परिलक्षित होता है। इसमें एक या दो फसली संयोग दृष्टिगत नहीं होते हैं बल्कि इन सभी के संयोग देखने को मिलते हैं जो राजस्थान में बोई जाती हैं।

8. मक्का-गेहूँ-दालें-कपास प्रदेश—इस प्रदेश में भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़ तथा बांसवाड़ा जिले सम्मिलित हैं। इस प्रदेश की विशेषता कपास की फसल है जो इसको अपने पश्चिमी कृषि प्रदेशसे अलग करती है। यहां मिश्रित लाल–काली, पथरीली, लाल दोमट व गहरी सामान्य काली मिट्टियां पाई जाती हैं। वर्षा की मात्रा 70 सेन्टीमीटर से 100 सेन्टीमीटर के बीच होती है। इसमें वर्षा की मात्रा उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ती जाती है। मक्का इस प्रदेश की प्रधान फसल है जो सब से अधिक बांसवाड़ा में कृषि क्षेत्र का प्रतिशत रखती है जबकि गेहूं का क्षेत्र बांसवाड़ा जिले में सबसे कम है। दालें इस प्रदेश में तृतीय स्थान की फसल है जिसके अन्तर्गत सबसे कम कृषि क्षेत्र भीलवाड़ा जिले में है क्योंकि यहाँ पर मक्का व गेहूँ अधिक कृषि क्षेत्र पर बोया जाता है। इसी प्रकार कपास का क्षेत्र भी यहां अन्य जिलों की तुलना में अधिक है। अभी कपास के अन्तर्गत इस प्रदेश के कृषि क्षेत्र का अधिक भू-भाग नहीं है लेकिन सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि होने पर इस प्रदेश में कपास की फसल के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र में वृद्धि की सम्भावना है क्योंकि यह एक नकदी फसल है।

9. गेहूँ-ज्वार-मक्का-चना-तिलहन प्रदेश—इस प्रदेश में बूंदी, कोटा तथा झालावाड़ आदि जिले सम्मिलित हैं। वर्षा की मात्रा अच्छी होने पर भूमि में नमीं अधिक रहती है साथ ही सिंचाई की सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। इस प्रदेश में सामान्यतया मध्यम काली मिट्टी मिलती है लेकिन बूंदी के कुछ भागों में पथरीली मिट्टी भी पाई जाती है। इस प्रदेश में गेहूं मुख्य फसल है। चना व तिलहन रबी की फसलें होते हुए भी खरीफ की फसलों जैसे ज्वार व मक्का की अपेक्षा चौथे व पांचवे स्थान पर है। फसल वैभिन्य इस प्रदेश में भी परिलक्षित होता है। लेकिन अन्य सभी फसलों का प्रतिशत बहुत ही कम है। अच्छी कृषि व्यवस्था, खेत छोटे, जनसंख्या का घनत्व अधिक व उच्च आर्थिक स्तर आदि अनेक सांस्कृतिक लक्षण इस प्रदेश में दृष्टिगत होते हैं।

पंचवर्षीय योजनाएं तथा कृषि विकास

कृषि अर्थव्यवस्था में कृषि के विशेष महत्व को दृष्टिगत रखते हुए राजस्थान के योजना निर्माताओं ने प्रथम पंचवपर्षीय योजना से ही कृषि तथा इससे सम्बन्धित कार्यों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जिस से राजस्थान कृषि के क्षेत्र में प्रगति की ओर अग्रसर हो सका तथा एकीकरण के पूर्व के कृषि ढाँचे को बदलने में समर्थ हो सका। आज राजस्थान खाद्यान्नों के उत्पादन में सम्पन्न होकर अपने सिंचाई साधनों की वृद्धि के साथ औद्योगिकीकरण की ओर बढ़ रहा है।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत राजस्थान के कृषि विकास से सम्बन्धित बहुत सी उपलब्धियां प्राप्त की हैं, जो निम्न तथ्यों से स्पष्ट हैं।

1. कृषि उत्पादन में वृद्धि—योजनाओं से पूर्व राज्य अपनी आवश्यकता से भी कम खाद्यान्न उत्पन्न करता था। अतः उसे कमी की पूर्ति आयात द्वारा करनी पड़ती थी लेकिन अब राज्य खाद्यान्नों में न केवल आत्मनिर्भर हैं बल्कि निर्यात भी करने लगा है। 1951 में खाद्यान्न का उत्पादन 29.4 लाख टन था जो 1980-81 में बढ़ कर 47 लाख टन हो गया। वर्ष 1986–87 में यह घट कर 43.37 लाख टन रह गया परन्तु 1987–88 में इनके उत्पादन का लक्ष्य 80.40 लाख टन का रखा गया है।

खाद्यान्न फसलों के साथ-साथ विभिन्न कृषि विकास कार्यक्रमों के कारण राज्य में तिलहन, कपास, गन्ना, मूंगफली आदि के उत्पादन में भी चार गुनी वृद्धि हुई है। तिलहन का उत्पादन 13.35 लाख टन होने का अनुमान है। खाद्यान्नों के उत्पादन में तिगुनी तथा अखाद्यान्नों के उत्पादन में चौगुनी वृद्धि रिकार्ड की गई है।

2. कृषि क्षेत्र का विस्तार—वर्ष 1951 में कुल बोया गया क्षेत्रफल 93 लाख हेक्टेयर था जो 1985–86 में बढ़कर 174.10 लाख हैक्टेयर हो गया जो कि लगभग दुगना है।

3. सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि—राजस्थान में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में सिंचाई साधनों के विकास को प्राथमिकता दी गई है फलस्वरूप बहुउद्देश्यीय नदी घाटी योजनाओं जैसे भांखरा-नांगल, जवाई योजनाओं का कार्य सम्भव हो सका। अभी भी इन्दिरा गांधी नहर, माही, व्यास योजनाओं का कार्य चल रहा है। विभिन्न सिंचाई कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप वर्ष 1951 में कुल सिंचित क्षेत्र 11.74 लाख हैक्टेयर था जो बढ़कर 1982–83

में 36 लाख हैक्टेयर हो गया। वर्ष 1984-85 में इसे बढ़ाकर 44.5 लाख हेक्टेयर करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

4. **उर्वरकों के प्रयोग में वृद्धि**—राजस्थान में कृषि से उत्पादन अधिक लेने के लिए उर्वरकों के प्रयोग में तेजी से वृद्धि हो रही है। कोटा में श्रीराम खाद फैक्ट्री की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई है। राज्य खादों का उपयोग 2 लाख टन से भी अधिक करने लगा है। वर्ष 1985-86 में उर्वरकों की कुल खपत प्रति हैक्टेयर 12.69 किलोग्राम की हुई और वर्ष 1987-88 के लिए 15.40 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर का लक्ष्य रखा गया।

5. **उन्नत बीजों का प्रयोग**—राज्य में उन्नत बीजों को प्राप्त करने के लिए 60 बीज-गुणक फॉर्म स्थापित किये जा चुके हैं। राजस्थान निर्माण के समय तक अधिक उपज प्रदान करने वाली उपजों के अन्तर्गत क्षेत्र बिल्कुल नहीं था, जबकि वर्ष 1984-85 के अन्त तक 29.3 हैक्टेयर क्षेत्र में उन्नत बीजों का प्रयोग हुआ। अधिक उपज देने वाले व उन्नत किस्मों के 1.45 लाख क्विन्टल बीजों का वितरण 1986-87 में किया गया। वर्ष 1987-88 के लिए 2.60 लाख क्विन्टल उन्नत बीजों के वितरण का लक्ष्य रखा गया।

6. **कृषि शिक्षा एवं अनुसंधान**—कृषि में विकास तेजी से लाने के लिए यह आवश्यक था कि कृषकों को कृषि की शिक्षा प्रदान करने के लिए विशेष व्यवस्था की जाये। उदयपुर में कृषि विश्वविद्यालय सांगरियां, जोबनेर, अजमेर, चिमनपुरा, सवाईमाधोपुर में कृषि महाविद्यालय व बीकानेर में पशु चिकित्सा महाविद्यालय स्थापित किये गये हैं। इनके अतिरिक्त केन्द्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, दुर्गापुरा (जयपुर) तथा 7 खण्ड स्तरीय अनुसंधान केन्द्र क्रमशः श्रीगंगानगर, बोरखेड़ा, सुमेरपुर (पाली) व कोटा तथा यू. एन. डी. पी. प्रयोगशाला कोटा, बीकानेर एवं हनुमानगढ़ में स्थापित किये गये हैं।

7. **भूमि सुधार कार्य**—राजस्थान में जमींदारी तथा जागीरदारी प्रथा का पूर्णतः उन्मूलन किया जा चुका है। काश्तकारी अधिनियम लागू होने से किसानों को भूमि रखने की सुरक्षा मिली है। चकबन्दी अधिनियम लागू कर छोटे तथा बिखरे खेतों की समस्या का समाधान किया गया है। वर्ष 1965-66 तक 18.8 लाख हैक्टेयर भूमिपर चकबन्दी पूरी की जा चुकी थी। वर्ष 1982-83 तक चकबन्दी के अन्तर्गत 60 लाख हैक्टेयर क्षेत्र पर कार्य पूरा कर लिए जाने का अनुमान है। राज्य में भूमि जोत की सीमा पश्चिमी राजस्थान में 21.85 हैक्टेयर तक तथा पूर्वी व दक्षिणी-पूर्वी राज्य में 10 हैक्टेयर तक रखी गई है। मार्च 1987 तक 4.49 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में भूमि विकास कार्य कर 67 हजार काश्तकारों को लाभान्वित किया गया जिन पर कुल 96.25 करोड़ रुपये व्यय किये गये।

8. **कृषि यन्त्रीकरण**—कृषि में यन्त्रों का उपयोग कर इसका विकास तेजी से किया जाये इसकी प्रेरणा प्रदान करने के लिए दो फार्म सूरतगढ़ तथा जैतसर में खोले गये हैं और उनकी आशातीत सफलता से कृषि कार्यों में कृषि यन्त्रों का उपयोग बढ़ने लगा है जिनकी पूर्ति करने के लिए उनका निर्माण जयपुर, नागौर, सोजत, चित्तौड़गढ़, पाली तथा बीकानेर आदि वर्कशापों में किया जाता है। वर्ष 1969 में कृषि उद्योग निगम की स्थापना की गई जो कृषि के वैज्ञानिक उपकरणों की व्यवस्था करता है। ट्रैक्टरों की संख्या 1960-61 में 3,154 थी जो 1982-83 में बढ़कर 20,000 से अधिक हो गई है।

9. **भूमि संरक्षण**—कृषि विकास में भूमि संरक्षण पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। वर्ष 1969-70 में 83 हजार हैक्टेयर भूमि मेंसंरक्षण कार्य सम्पन्न किये गये। वर्ष 1982-83 तक भू-संरक्षण के अन्तर्गत अतिरिक्त 5.5 लाख हैक्टेयर भूमि लाने का अनुमान है। बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत शुष्क खेती को सम्बल प्रदान करने के उद्देश्य से राज्य में विभिन्न भूमि संरक्षण कार्यों का क्रियान्वयन विभिन्न योजनाओं—ग्रामीण भूमिहीन रोजगार कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम तथा मरु विकास कार्यक्रम आदि के अन्तर्गत किया जा रहा है।

राजस्थान में कृषि विकास की समस्याएं

मुख्य समस्याएं निम्न प्रकार हैं —

1 **प्राकृतिक प्रकोप**—पश्चिमी राजस्थान की जलवायु शुष्क है। इसके अधिकांश भाग पर मरुभूमि का विस्तार है। अतः इस क्षेत्र में अकाल की पुनरावृत्ति

6-8 वर्ष में तथा सूखे की हर तीन वर्ष में होती रहती है, साथ ही ओला-वृष्टि, कभी आंधी-तूफान तथा कभी टिड्डी दल का आक्रमण फसलों को नष्ट कर देता है। राजस्थान के लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र पर तेज हवाओं से भूमि कटाव तथा अरावली के पूर्वी भाग में जल अपरदन की विशेष समस्याएं हैं। जिनके कारण कृषि का विकास काफी अवरुद्ध हुआ है।

2. राजस्थान में अभी भी सिंचाई की सुविधाओं की कमी है क्योंकि अभी भी राज्य का लगभग 80 प्रतिशत कृषि योग्य क्षेत्र प्राकृतिक वर्षा पर आश्रित हैं तथा राजस्थान में वर्षा की प्रकृति तथा मात्रा अनिश्चित हैं।

3. राज्य में भूमि व्यवस्था दोषपूर्ण हैं। भूमिहीन किसानों का बाहुल्य हैं।

4. राज्य के कृषक निर्धन हैं तथा साथ ही ऋण ग्रस्तता से पीड़ित हैं। अतः ये वैज्ञानिक कृषि करने में असमर्थ हैं।

5. किसानों का अनपढ़ होना तथा वैज्ञानिक नवीन विधियों के उपयोग से अनभिज्ञ होना भी एक विकट समस्या है।

6. राज्य में कृषि उपज के विपणन की व्यवस्था दोषपूर्ण है।

राजस्थान में कृषि विकास की समस्याओं के निराकरण के लिए सुझाव

राजस्थान की सरकार एवं जनता कृषि क्षेत्र में उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने में प्रयासरत हैं। इससे न केवल वांछित लक्ष्यों की पूर्ति ही होगी बल्कि अन्य क्षेत्रों के विकास पर भी इसका प्रभाव पड़ेगा। कृषि विकास की समस्याओं के हल के लिए निम्न सुझाव प्रस्तावित किये जा सकते हैं :—

1. प्राकृतिक विपदाओं के फलस्वरूप जो हानि होती है तथा विकास मार्ग में जो बाधाएं उत्पन्न होती हैं उनसे निपटने के लिए भू-संरक्षण, वृक्षारोपण व कीटाणुनाशक दवाओं का प्रयोग बढ़ाना चाहिये।

2. राज्य के कृषि योग्य क्षेत्रफल को, जो वर्षा के ऊपर आश्रित हैं, उसे सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध करवानी होगी। इस क्षेत्र का शीघ्र लाभ उठाने के लिए लघु-योजनाओं को अपनाना लाभकारी रहेगा क्योंकि यह जल्दी पूर्ण होकर छोटे कृषकों को लाभ प्रदान करने में सहायक होती है। बहुउद्देश्यीय सिंचाई योजनाओं को भी पूर्ण करने के प्रयास तेज किये जाने चाहिये।

3. भूमि की दोषपूर्ण व्यवस्था को दूर करने के लिए भूमि सुधारों को कारगर ढंग से लागू करना चाहिए। कृषकों से गैर कृषकों को भूमि हस्तांतरण पर प्रभावी कदम उठाकर अथवा अधिनियम पारित कर रोक लगानी चाहिये।

4. राज्य के कृषकों को बैंकों के माध्यम से वित्तीय व्यवस्था की सुविधा को बढ़ावा देना चाहिये जिससे कृषक वैज्ञानिक उपकरण, उर्वरक तथा उन्नत बीज क्रय कर उत्पादन में वृद्धि कर सके।

5. राज्य में कृषकों को कृषि सम्बन्धी कार्यों में प्रशिक्षित करने के लिए और अधिक कृषि महाविद्यालय तथा केन्द्र खोलने चाहिये। शहरी क्षेत्रों में उन्नत कृषि को बढ़ावा मिला है लेकिन ग्रामीण आंचलों के कृषकों को उन्नत कृषि तथा बीजों का लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहित करने के प्रयास किये जायें। इनमें फसल प्रतियोगिताओं का प्रयोजन, समय-समय पर कृषि प्रदर्शनियां आयोजित करना तथा कृषकों को प्रशिक्षित करने के लिए समय-समय पर शिविर लगाना आदि प्रयास मुख्य हैं।

6. कृषकों को अपनी उपज का सही मूल्य मिले, इसके लिए सरकार को सहकारी विपणन व्यवस्था, मण्डी नियन्त्रण और भण्डारण की व्यवस्था को प्रोत्साहन देना चाहिये। सरकार द्वारा कृषि मूल्य नीति एक सराहनीय कदम है।

7. राज्य में उर्वरकों के उत्पादन में वृद्धि कर किसानों को खाद का उचित प्रयोग करने तथा रसायनिक उर्वरकों के उपयोग में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

8. राज्य में पड़त भूमि को सुधारने, भूमि का उचित वितरण करने तथा भू-परीक्षण सेवाओं का प्रसार आदि के लिए प्रभावी प्रयास किये जाने चाहिये।

उपरोक्त सुझावों से राजस्थान में कृषि का विकास शीघ्रता से होगा। यह न केवल कृषकों को बल्कि सभी

व्यवसाय के लोगों की आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि करेगा तथा साथ ही राज्य भी प्रगति की ओर अग्रसर होगा।

कृषि विकास का मूल्यांकन--

पिछले 83 वर्षों में राजस्थान के कृषि क्षेत्र में क्रान्तिकारी प्रगति हुई है लेकिन फिर भी कई ऐसे क्षेत्र शेष हैं जिनमें काफी कार्य करना होगा। राजस्थान में अब भी लगभग 80 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि है जिसको सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करवानी है। अकालों की पुनरावृत्ति, सूखे का प्रकोप प्राय: बना रहता है जोकि राज्य के योजना निर्माताओं के लिए चुनौती है। राज्य में खाद व उर्वरकों का प्रयोग बढ़ा है लेकिन खादों की अपर्याप्तता तथा कृषकों की निर्धनता रास्ते में रोड़ा बनती हैं। कृषि के नवीन तथा वैज्ञानिक उपकरणों की प्राप्ति में भी कठिनाई होती है। राज्य में छोटे किसानों तथा भूमिहीन कृषकों की स्थिति अच्छी नहीं है। प्रति हैक्टेयर उपज कम है। सिंचाई साधनों में बड़ी व बहुउद्देशीय तथा मध्यम योजनाओं पर अत्यधिक ध्यान केन्द्रित कियाजा रहा है। यह ठीक है कि इनके निर्माण कार्य पूर्ण होने पर, बड़े पैमाने पर लोगों को लाभ होगा लेकिन लघु सिंचाई योजनाओं से तत्काल लाभ होता है, जिन्हें राज्य में बड़े पैमाने पर लेना होगा। साथ ही भूमिगत जल संसाधनों के प्रयास जो अभी तक सीमित हैं उनमें अधिक तेजी लाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि राजस्थान ने निर्माण से अब तक राज्य में खाद्यान्न, सिंचाई तथा भूमि पर सुधार आदि क्षेत्रों में संतोषजनक तथा प्रेरणादायक प्रगति की है लेकिन अभी भी भावी विकास की योजनाओं में इनके लिए किये जाने वाले प्रयासों में तेजी लाकर राज्य की अर्थव्यवस्था में समृद्धि लानी होगी।

★

कृषि एव पशुपालन एक दूसरे पर आश्रित हैं। राजस्थान की अर्थव्यवस्था में कृषि एवं पशुपालन दोनों ही अधिक महत्व रखते हैं क्योंकि राजस्थान का अधिकांश भू-भाग शुष्क एवं रेतीला है। राज्य के शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क भागों में वहां की अधिकतर जनसंख्या के लिए पशुपालन एक मुख्य धन्धा है। मरुभूमि निवासियों के लिए मुख्यत: घुमक्कड़ जन-जातियों के लिए जो अपनी उदरपूर्ति के लिए पशुधन पर निर्भर है यह व्यवसाय और भी महत्वपूर्ण वन जाता है। अव राजस्थान में पशुओं के द्वारा निम्न उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है—

(i) कृषि कार्यों में जैसे—हल खींचने, दांय चलाने, कुओं से पानी खींचने, बोझा ढोने तथा अन्य कृषि कार्यों के लिए वैलों तथा अन्य पशुओं का उपयोग किया जाता है। सन् 1983 में राजस्थान में लगभग 82 लाख पशु काम करने वाले थे।

(ii) पशुओं से गोबर की खाद प्राप्त होती है। हड्डी व खून की खाद भी महत्वपूर्ण है। इन खादों का उपयोग खेतों की उर्वरकता को वनाये रखने के लिए किया जाता है।

(iii) भेड़ों से ऊन प्राप्त की जाती है। वर्ष 1983 में राजस्थानी भेड़ों से देश की कुल ऊन का 43 प्रतिशत भाग प्राप्त हुआ।

(iv) पशुओं से चमड़ा तथा खालें प्राप्त होती हैं। वर्ष 1983 में चमड़े का उत्पादन राज्य में 680 टन किया गया।

(v) पशुओं से पौष्टिक पदार्थ दूध के रूप में मिलता है जिनका उत्पादन सन् 1983 में 2.6 लाख टन था।

अत: पशुधन के बिना खेत बिना जुते पड़े रहते हैं। खलियानों में दांय का कार्य समय पर नहीं हो पाता तथा शाकाहारी देश में घी, दूध आदि पौष्टिक पदार्थों का उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से वहुत ही कम है। इसलिए यह आवश्यक है कि पशुपालन की तरफ उचित ध्यान दिया जावे तथा इनके विकास के लिए नस्ल सुधार तथा चारे के प्रति समुचित व्यवस्थाए की जानी चाहिए जिससे राज्य की आवश्यकताएं अपने ही पशुधन से न केवल पूर्ण हो सके वल्कि दूसरे राज्यों को पशुधन का निर्यात कर आय के साधन जुटा सकें।

पशुधन संरचना

राजस्थान पशुधन की दृष्टि से सम्पन्न है। भारत के कुल पशुधन का लगभग 11.2 प्रतिशत भाग राजस्थान में पाया जाता है। पशुपालन यहां की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्ष 1960-61 में चौपायों की संख्या 13.15 मिलियन थी जो राज्य के कुल पशुधन का 39.2 प्रतिशत थी जवकि वर्ष 1977 में चौपायों की संख्या घटकर 12.89 मिलियन रह गई तथा इसी के साथ राज्य के कुल पशुधन का प्रतिशत भी घटकर 31.18 रह गया। वर्ष 1983 की पशुगणना के अनुसार चौपायों की संख्या 13.50 मिलियन है। वर्ष 1983 में बकरियों का प्रतिशत 29.02, भेड़ों का प्रतिशत 25.20 तथा भैंसों का प्रतिशत 11.33 रहा। राजस्थान में क्षेत्रफल की दृष्टि से पशुधन का औसत घनत्व 121 प्रतिवर्ग किलोमीटर है जोकि देश के कुल औसत घनत्व 112 प्रतिवर्ग किलोमीटर से अधिक है जवकि 1961 में राजस्थान के पशुधन का औसत घनत्व केवल 100 प्रतिवर्ग किलोमीटर था।

राजस्थान में पशुसंख्या जनसंख्या से अधिक है। 1981 की जनगणना के अनुसार राज्य में 1,000 मनुष्यों के पीछे 1554 पशुधन है। यह मुख्यतया इस तथ्य के फलस्वरूप है कि अरावली के पश्चिम में स्थित भाग शुष्क मरुस्थल है जिसका कृषि की दृष्टि से महत्व कम है तथा साथ ही साथ जनसंख्या का घनत्व कम है।

वर्ष 1965-66 की पशुगणना के अनुसार राजस्थान में 3.75 करोड़ पशु थे। वर्ष 1977 में पशुओं की जनसंख्या 4.14 करोड़ तथा 1983 में 5.33 करोड़ थी इससे राज्य को लगभग 12 प्रतिशत आय होती है। सूखाग्रस्त क्षेत्रों के निवासियों की आय का यह प्रमुख स्रोत है। डेयरी उद्यान विकास के फलस्वरूप दूध का उत्पादन छठी योजना के अन्त तक 35 लाख टन हो गया। भेड़ों से ऊन, पशुओं से गोबर खाद प्राप्त की जाती है। पशुओं का शक्ति के साधन के रूप में कृषि कार्य में प्रयुक्त किया जाना आदि पशुधन के महत्व के परिचायक हैं। कुक्कुटशालाओं के कारण मुर्गे-मुर्गियों की सख्या राज्य में लगभग 12 करोड़ होने का अनुमान है।

पशुधन का क्षेत्रीय वितरण

राज्य में चौपायों की नौ विशिष्ट नस्लें, भेड़ों की प्रसिद्ध आठ नस्लें, बकरियों की छः प्रतिष्ठित नस्लें और ऊँटों की चार नस्लें पाई जाती है। इनके अलावा घोड़ों की उत्तम नस्लें पाई जाती हैं जो देश में लोकप्रिय हैं। प्रजनक अपने आप में एक वर्ग है। पेशेवर घुमक्कड़ प्रजनक तथा साधारण किसान भी पशुपालन की जानकारी रखते हैं। ये लोग काफी अनुभवी होते हैं क्योंकि कई पीढ़ियों से वे व्यापार को करते चले आ रहे हैं।

शुष्क जलवायु में जहां पशुओं की चराई के लिए प्राकृतिक सुविधाएं मिलती हैं, वहीं पशु अधिक संख्या में पाले जाते हैं। राजस्थान में प्रमुख पशु क्षेत्र मरुभूमि में जहां वर्षा की मात्रा कम है विस्तृत हैं। राजस्थान में पशु पालन उन घास के मैदानों में होता है, जो या तो मरुस्थल की बाहरी सीमा पर स्थित हैं, अथवा उन शुष्क भागों में जहां कृषि करना कठिन है। राजस्थान के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क भागों से वर्षा की मात्रा इतनी नहीं होती कि उत्तम घास पैदा की जा सके। राजस्थान के जिन भागों में वर्षा पर्याप्त होती है, या जहां सिचाई के साधन उपलब्ध है, वहां पशुपालन अधिक नहीं किया जाता, क्योंकि आर्द्र भागों में शुष्क भागों की अपेक्षा उतना ही अधिक दूध प्राप्त करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक पशु पालने पड़ते हैं। मिट्टी की प्रकृति, तापक्रम एवं वर्षा के आधार पर राजस्थान को दो पशु प्रदेशों में विभक्त किया जा सकता है।

उत्तरी-पश्चिमी भाग—राज्य का आधे से भी अधिक क्षेत्र अरावली के उत्तरी-पश्चिमी भाग में विस्तृत हैं जहां भूमि रेतीली, पानी का विषम वितरण एवं कमी तथा उंचे तापक्रम पाये जाते हैं कृषि का विकास उत्तरी क्षेत्रों में विशेषकर गंगानगर जिले में हो रहा है, जहां सिचाई सम्भव है। यदा कदा भूमि चूने के पत्थर के कटकों के साथ अर्द्धशुष्क से शुष्क क्षेत्र की ओर जाने पर दिखाई देती है। वर्षा का वार्षिक वितरण इस क्षेत्र में 35 सेन्टीमीटर से भी कम है।

इस भाग में मरुस्थल समानान्तर बालू की पहाड़ियों से परिलक्षित हैं। इनमें कुछ पहाड़ियां तो दो किलोमीटर लम्बी और लगभग 150 मीटर से 300 मीटर ऊंची हैं। इन पहाड़ियों के पार्श्व जल से चिन्हित हैं। वर्षा ऋतु में बौनी झाड़ियां और घास के उग आये गुच्छे पशुधन के लिए मुख्य चारा होते हैं। इस प्रकार के क्षेत्रों में राजस्थान के उत्तम चौपाये, भेड़, बकरियां और ऊंट पाले जाते हैं। पीने के पानी की कमी के परिणामस्वरूप प्रजनकों और मनुष्यों को एक गांव से दूसरे गांव में घूमना पड़ता है। वर्षा ऋतु के केवल दो तीन महीने ही ऐसे होते हैं, जब पशुओं के लिए आवश्यक चारा इस क्षेत्र में उपलब्ध होता है। इस अवधि में सावन घास की अच्छी किस्म थार क्षेत्र में उगती है। यह घास बड़ी पौष्टिक होती है जिस पर राज्य का अधिकांश पशुधन निर्भर होता है। अरावली के पश्चिम से सटे हुए अर्द्धशुष्क भाग में उत्तम घोड़े जो मालानी अथवा मारवाड़ी नाम से जाने जाते हैं, पाले जाते हैं।

इस क्षेत्र में प्रसिद्ध राठी तीन चौथाई साहीवाल) नस्ल की गायें पाई जाती हैं, जिन्हें यहां के विस्तृत चरागाहों पर रखा जाता है। थारपारकर नस्ल की गायें और कन्करेज (सांचौर) गायें भी यहां पाई जाती हैं। घुमक्कड़ प्रजनक इस प्रदेश से चौपायों के पालन में संलग्न है। दूध का उत्पादन अधिक है लेकिन जनसंख्या विरल होने के कारण लगभग सारे ही दूध का घी बना लिया जाता हैं। औसतन प्रत्येक परिवार के पास 100 से 200 तक गायें होती हैं। चार या पांच परिवार एक साथ मिलकर लगभग 1,000 चौपायों का स्वामित्व रखते हैं।

इस क्षेत्र में भेड़ पालन भी मुख्य हैं। यह क्षेत्र बीकानेरी, जैसलमेरी, मारवाड़ी भेड़ों के लिए प्रसिद्ध है। पूगल भेड़े ऊन की उत्तम किस्म प्रदान करती हैं। इस प्रदेश का ऊंट पालन में एकाधिकार है ऊंट की दो मुख्य नस्लें जैसे जैसलमेरी और बीकानेरी इस भू-भाग से देश के विभिन्न भागों के लिए हजारों की संख्या में निर्यात की जाती है। इस प्रदेश में लोही और मारवाड़ी नस्ल की बकरियां पाली जाती हैं।

एक पट्टी जिसकी लम्बाई 366 किलोमीटर लम्बी तथा 81 किलोमीटर की चौड़ाई में हैं, पाकिस्तान और गुजरात की सीमा के साथ विस्तृत है। यह पट्टी, चौपायों भेड़ों, बकरियों और ऊंटों के लिए आदर्श है।

दक्षिणी-पूर्वी भाग—दक्षिणी-पूर्वी भाग राजस्थान में अरावली के पूर्व और दक्षिण में विस्तृत है। जहां तक उच्चावचन, तापक्रम, वर्षा मिट्टी और वनस्पति दशाओं का प्रश्न है,यह विभाग अधिक विविधताएं रखता है। इस विभाग में विस्तृत श्रेणियां, विभिन्न प्रकार की वनस्पति तथा उनका विस्तृत विस्तार चट्टानी बंजर भूमि एवं कटे-फटे भाग पाये जाते हैं। यहां बहुत सी नदियां और उनकी सहायक नदियां बहती है जिनके किनारों पर अच्छी मिट्टी मिलतीहै। मेवाड़ का पठार कोटा पठार की तरफ पहुँचते पहुंचते शिथिल पड़ जाता है और उसकी अपेक्षा करौली की पहाड़ियां,ऊबड़ खाबड़ प्रदेश तथा ट्रांस-यमुना भू-भाग के चपटे मैदानों की प्रमुखता दिखलाई देती है। वार्षिक वर्षा 55 सेन्टीमीटर से 100 सेन्टीमीटर के बीच होती है। इस प्रदेश मेंर ाज्य की लगभग दो तिहाई जनसंख्या रहती है। चौपायों की दो उद्देशीय नस्लें जैसे हरियाणा मेवात और रथ, भारवाही नस्लें जैसे मालवी, शुद्ध दुधारू नस्ल जैसे थारपारकर और गिर आदि सामान्य रूप से पाई जाती हैं। घासों की विभिन्न प्रकार की किस्में जैसे अंजन, खावल और चिम्बर पाई जाती है जिनसे चरागाह भूमियां ढकी हुई हैं। बकरियों में जमनापुरी, बारवारी और सिरोही मुख्य नस्लें हैं। पंजाब की मुर्राह नस्ल भैंस इस क्षेत्र में अपना घर बना चुकी है और धीरे-धीरे राज्य के विभिन्न भागों में भी फैल रही है।

राजस्थान में गोवंश

राजस्थान में गाय, बैल प्रायः सभी भागों में पाये जाते हैं। भारत की समस्त गायों का लगभग 8 प्रतिशत भाग राजस्थान में पाया जाता है। संख्या के अतिरिक्त श्रेष्ठता की दृष्टि से भी याजस्थान की गायें खासकर मरुस्थलीय भाग की गायें जो 5 किलोग्राम से 12 किलोग्राम तक दूध देती हैं, ऊंचा स्थान रखती हैं। जोधपुर, बाड़मेर और जैसलमेर जिलों में मलानी व सांचोर किस्म की गायें, बीकानेर जिले में पूगल तहसील की गायें,कोटा झालावाड़, डूंगरपुर व बांसवाड़ा जिलों में मालवी गायें प्रसिद्ध हैं। नागौर के बैल सर्वश्रेष्ठ नस्ल के हैं। राजस्थान में गाय बैलों की संख्या 1983 में 135 लाख थी। दूध का वार्षिक उत्पादन 35 लाख टन है।

गाय की नस्लों में निम्न जातियां मुख्य हैं।

1. नागौरी—नागौरी वंश की उत्पत्ति का क्षेत्र नागौर जिले का 'सोहालाक' ग्राम है। नागौरी बैल देश का अत्यन्त प्रसिद्ध दौड़ने वाला तथा हल में चलने वाला पशु है। नागौरी वंश के पशुओं की टांगे पतली व मजबूत होती हैं। अनुमानतः इन लक्षणों ने ही इस वंश को चंचलता तथा चाल की सुगमता प्रदान की है। इनका मुंह लम्बा व सकड़ा सा और साधारणतया समतल ललाट वाला होता है। इस नस्ल की गायें कम दूध देने वाली होती हैं।

2. कांकरेज—यह नस्ल राज्य के बाड़मेर, सिरोही पाली तथा जालौर ज़िलों में पाई जाती हैं। इस नस्ल के बैल तेज चलने और बोझा ढोने के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके सींग बड़े मजबूत होते हैं। दूसरे वंशों की अपेक्षा इनके सींग काफी ऊंचाई तक खाल से ढके रहते हैं। यह द्वि-प्रयोजनीय नस्ल है जो भारवाहक के अतिरिक्त सफल दुग्धदायिनी भी है। इस नस्ल की गायें 5 से 9 किलोग्राम दूध प्रतिदिन देती हैं।

3 **थारपारकर**—इस नस्ल के पशु राजस्थान के पश्चिमी शुष्क प्रदेशों में पाये जाते हैं। ये चारे की कमी के कारण पत्तियों और ज्वार-बाजरे के डंठलों पर निर्भर रहते हैं।

इस नस्ल का उत्पत्ति स्थान "मालाणी" (जैसलमेर) ग्राम है। स्थानीय भागों में यह नस्ल 'मालाणी' नाम से विख्यात है। थारपारकर (थारी) नस्ल की गायें अधिक दूध देती हैं। इसलिए इनकी दुग्ध उद्योग में अधिक मांग है। इस नस्ल के बैल कम परिश्रमी होते हैं। थारपारकर के शुद्ध गोवंश के पशु बाड़मेर, सांचौर, पूर्वी जैसलमेर तथा जोधपुर ज़िले के पश्चिमी भागों में मिलते हैं। यह नस्ल शुष्क वनस्पति पर काफी समय तक रह सकती है। इस क्षेत्र में इसके केन्द्रीयकरण का यही मुख्य कारण है।

4. राठी—इस नस्ल के गाय-बैल गंगानगर जिले के दक्षिणी-पश्चिमी, बीकानेर के पश्चिमी तथा जैसलमेर के उत्तरी-पूर्वी भागों में मिलते है। यह नस्ल लाल सिन्धी एवं साहीवाल की मिश्रित जाति है। इस नस्ल की गायें काफी दूध देती हैं। अतः दुग्ध व्यवसाय के लिए अधिक उपयोगी हैं। बैलों में भारवाहन क्षमता कम होती है।

अधिकांशतः ये पशु घुमक्कड़ पशुपालकों तक ही सीमित है।

5. हरियाणा—इस नस्ल के गाय-बैल गंगानगर चूरू, पूर्वी बीकानेर, सीकर, टोंक व जयपुर जिलों में पाये जाते हैं। इस नस्ल के पशु बनावट में अच्छे व अनुपात में गठीले होते हैं। सिर ऊंचा उठा हुआ, चेहरा लम्बा व नुकीला होता है। मस्तिष्क के मध्य एक हड्डी काफी उठी हुई होती है जो इस नस्ल का प्रमुख लक्षण है। इस नस्ल की गायें औसतन 5.50 से 8 किलोग्राम दूध देती हैं। बैल भार वाहन, कुओं से पानी खींचने तथा खेती करने के लिए बड़े उपयोगी होते हैं।

6 मालवी—यह नस्ल कोटा, झालावाड़, डूंगरपुर बांसवाड़ा तथा चित्तौड़गढ़ जिलों में पाई जाती है। इस नस्ल के पशु मध्यम व हल्के वजन के होते हैं। ये हल में जोतने व बोझा ढोने के लिए प्रसिद्ध हैं। इनका कद छोटा, बदन गठीला, कमर सीधी व पुट्ठे ढालू होते हैं। इनकी टांगे छोटी व मजबूत होती हैं। इसी कारण ये उबड़ खाबड़ भूमि में आसानी से चल लेते हैं। इस नस्ल की गायें कम दूध देती हैं।

7. गिर—गुजरात के सौराष्ट्र प्रदेश में स्थित 'गिर वन' में रहने वाले पशु 'गिर' जाति के नाम से जाने जाते हैं। इन्हें राजस्थान में 'रैंडा' तथा अजमेर में 'अजमेरा' के नाम से पुकारते हैं। ये पशु द्विप्रयोजनीय जाति के हैं। इस नस्ल की गायें हरियाणा नस्ल की गायों की अपेक्षा अधिक दूध देती है। गिर वंश का प्रमुख ध्यान आकर्षित करने वाला लक्षण उनका उन्नत तथा चौड़ा ललाट है जो कि एक ढाल की भांति सिर के भाग को ढक देता है। इस नस्ल की गाय औसतन 5 50 किलोग्राम से 9 किलोग्राम तक दूध देती देती हैं। इसी कारण डेयरी व्यवसाय में इनकी ज्यादा मांग है।

8. सांचोरी—सांचोर की गायें अधिक प्रसिद्ध हैं। ये प्रायः कम दूध देती हैं। यह नस्ल कांकरेज नस्ल के पशुओं से मिलती जुलती है। राजस्थान के जालोर जिले की सांचोर तहसील तथा सिरोही व उदयपुर में यह नस्ल मिलती है।

भैंसे

भैंसों की दृष्टि से राजस्थान का भारत के राज्यों में छठा स्थान है। इस दृष्टि से राज्यों का क्रम इस प्रकार है—उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, पंजाब, बिहार और राजस्थान राज्य में भैंसों की संख्या वर्ष 1983 में 6.04लाख थी गायों के अतिरिक्त दुग्ध प्राप्ति के लिए भैंसे अधिक पाली जाती हैं। इनका दूध पौष्टिक, भारी एवं चिकना होता है। भैंसे कृषि कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं। राजस्थान में केवल एक ही नस्ल की भैंस प्रसिद्ध हैं जिसका नाम मुर्राह है। यह भैंस न केवल राजस्थान में बल्कि भारत में प्रसिद्ध हैं। राजस्थानी पशुपालक इन्हें ही पालते हैं। इनका रंग काला, शरीर भारी और सुगठित एवं सिर छोटा होता है। इनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता एवं वसा की मात्रा की अधिकता के कारण यह नस्ल सम्पूर्ण भारत में उच्च किस्म की मानी जाती है। यह राजस्थान के पूर्वी भाग के जिलों अलवर, भरतपुर, धौलपुर, कोटा, बूंदी व जयपुर आदि में, जहां वर्षा अपेक्षाकृत अधिक होती है तथा गगानगर जिले में, जहां नहरी सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, पाई जाती है। ये भैंसे एक समय में 10 से 12 किलोग्राम दूध देती हैं। दुग्ध व्यवसाय में इस नस्ल की भैंसों की बहुत अधिक मांग होने के कारण यहां से भारत के अन्य राज्यों को तथा बड़े-बड़े शहरों को इनका निर्यात किया जाता है। राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में जैसे जैसलमेर, बीकानेर आदि में बहुत कम भैंसे मिलती हैं।

दुग्ध उद्योग

राजस्थान में दुग्ध उत्पादन का विकास अभी तक आधुनिक पद्धति से नहीं हुआ है। राजस्थान में प्रति गाय के पीछे लगभग 160 किलोग्राम और भैंस के पीछे 386 किलोग्राम दूध मिलता है जबकि भारत में यह मात्रा क्रमशः 210 एवं 554 किलोग्राम है। राज्य में प्रति 100 व्यक्ति के लिए 27 गायें व 10 भैंसों का औसत आता है जबकि समग्र भारत में यह औसत 5 गायें व 3 भैंसे हैं। राज्य का हिस्सा देश में दूध के उत्पादन में 6.9 प्रतिशत है जबकि दूध देने वाले पशुओं का भाग 9 प्रतिशत आता है।

राजस्थान में दूध का उत्पादन सन् 1951 में 15 लाख टन; 1966 में 18.7 लाख टन तथा 1984 में यह

35 लाख टन था। सन् 1989 में इसके 36 लाख टन होने की संभावना है। प्रतिवर्ष दूध और दूध से बने जो पदार्थ काम में लाये जाते हैं, उनका 40 प्रतिशत भाग दूध के रूप में, 8.7 प्रतिशत दही के रूप में, 4.13 प्रतिशत घी के रूप में, 5.8 प्रतिशत मक्खन के रूप में 3.4 प्रतिशत खोये के रूप में तथा 0.8 प्रतिशत अन्य पदार्थों के रूप में उपयोग में लाया जाता है।

राजस्थान में जितना दूध होता है उसका 48 प्रतिशत गाय का, 40 प्रतिशत भैंस का और 12 प्रतिशत बकरी व भेड़ का होता है। राजस्थान में सबसे अधिक दूध उत्पादन जयपुर, गंगानगर, जोधपुर, उदयपुर, अलवर बीकानेर, भरतपुर, धौलपुर, भीलवाड़ा, अजमेर व कोटा में होता है। थारपारकर, गिर और राठी नस्लें दूध के लिए पाली जाती हैं। भैंसों में मुर्राह नस्ल दूध उत्पादन के लिए पाली जाती है।

सन् 1974 में राज्य में दुग्ध उद्योग विकास के लिए एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम शुरू किया गया। इस कार्यक्रम में सहकारिता के आधार पर जिला स्तर पर दूध उत्पादकों के एक संगठन के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों से आधिक्य दूध का संग्रह किया जाता है। चतुर्थ योजना के अन्तर्गत दुग्ध शीतल केन्द्रों व दुग्ध संयन्त्र केन्द्रों के निर्माण कार्य प्रारम्भ किये गये। इनके लिए वित्त की व्यवस्था राज्य की योजनाओं के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ एवं सूखा सम्भावित क्षेत्रकार्यक्रम के अन्तर्गत की गई।

पांचवी योजना के अन्तर्गत राजस्थान राज्य दुग्ध विकास निगम की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ परियोजना के अन्तर्गत की गई है। दुग्ध विकास कार्यक्रम अमुल के प्रारूप पर अपनाये गये हैं। यह प्रारूप दो स्तरों पर सहकारी ढांचे का निर्माण करता है। ग्रामीण एवं जिला/प्रादेशिक स्तर पर कार्य करने वाली संस्थाएं ठीक ढंग से कार्य कर सकें, इसलिए राज्य सरकार ने इन्हें समाप्त कर राजस्थान सहकारी दुग्ध संघ की स्थापना राज्य स्तर पर की है।

सन् 1987 के अन्त तक 24 दुग्ध शीतल संयन्त्र तथा 10 दुग्ध संयन्त्र स्थापित किये जा चुके थे। 1986-87 के अन्त तक दूध का संग्रह प्रतिदिन लगभग 4.04 लाख लीटर था। 3,932 दुग्ध उत्पादक सहकारी समिति कार्यरत थी जिनके 1,91,595 सदस्य थे। दुग्ध सं की दुग्ध दोहन की क्षमता 9.20 लाख लीटर तथा अवशीतन क्षमता प्रतिदिन 4.10 लाख लीटर तक प गई है। वर्ष 1988-89की वार्षिक योजना में दुग्ध उ विकास के लिए 2 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रस्ताव

चौपायों के विकास के लिए अधिक सुविधाएँ उपल करवाने के लिए 4 चारा केन्द्रों तथा 8 वीर्य केन्द्रों निर्माण कार्य पूरा हो चुका है। नस्ल सुधार के राठी तथा होल्सटीन नस्लों के लिए नये फार्म स्था किये जायेंगे।

दुग्ध उद्योग के विकास के लिए मानव श्रम श का विकास भी अपरिहार्य है। इस उद्देश्य के लिए त नये प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये हैं जिनमें ग्रामीण नवयुव को दूध की जांच करना, दूध का रिकार्ड रखना, प्रा मिक एवं कृत्रिम गर्भाधान के तरीकों का उपयोग क सकने की जानकारी दी जाती हैं।

राजस्थान को-ऑपरेटिव डेयरी फैडरेशन लिमि ने आपरेशन फ्लड तृतीय के तहत वर्ष 1992 तक लिए 59 करोड़ 42 लाख रुपये की योजना शुरू की है योजना के पूरा होने से प्रतिदिन दूध संकलन की क्षम 9 लाख से बढ़कर 15 लाख लीटर हो जायेगी। इ योजना के तहत 5 हजार 800 दुग्ध उत्पादक समिति तथा 5 लाख 48 हजार दुग्ध उत्पादक परिवारों क सदस्य बनाने का लक्ष्य है। मार्च 88 के अंत तक राज में 4 हजार 126 समितियां गठित की जा चुकी हैं त लगभग तीन लाख परिवारों को इनसे जोड़ा जा चुका है

दुग्ध संकलन क्षमता में वृद्धि के साथ डेयरी संयंत्र की दुग्ध पाउडर बनाने की क्षमता में वृद्धि के लिए करोड़ रुपए की योजना बनाई गई है। इसके अन्तर्ग जयपुर, अजमेर एवं अलवर स्थित दुग्ध पाउडर संयंत्र का 50 लाख रुपए की लागत से विस्तार किया जायेगा बीकानेर में 30 मीट्रिक टन तथा भीलवाड़ा में 1 मीट्रिक टन प्रतिदिन उत्पादन क्षमता के नए दुग्ध पाउड संयंत्र लगाये जायेंगे। इस योजना से वर्तमान दुग्ध पाउडर क्षमता 50 मीट्रिक टन से बढ़कर 93 मीट्रिक टन प्रतिदिन हो जायेगी।

सरदार शहर में दो करोड़ 81 लाख रुपये की लागत से एक लाख लीटर दूध प्रतिदिन क्षमता की फीडर डेयरी स्थापित की जायेगी। इसके साथ ही भरतपुर, धौलपुर, चित्तौड़गढ़, टोंक, उदयपुर, श्रीगंगानगर व सीकर जिलों में दो करोड़ 50 लाख रुपए की पचास-पचास हजार लीटर क्षमता के दुग्ध अवशीतन केन्द्र स्थापित किये जायेंगे। इसी तरह लूणकरणसर, पाली एवं दतरगढ़ के दुग्ध अवशीतन केन्द्रों की मौजूदा क्षमता का विस्तार भी किया जायेगा।

आपरेशन फ्लड तृतीय योजना के अन्तर्गत पशु विकास, दुग्ध विपणन, दुग्ध समितियों एवं दुग्ध संघों के विकास पर 18 करोड़ 40 लाख रुपए के कार्य करवाये जायेंगे। उन्होंने बताया कि जयपुर में बच्चों के लिए दुग्ध पाउडर एवं आइसक्रीम बनाने का संयंत्र रानीवाड़ा में पनीर बनाने का संयंत्र उदयपुर में श्रीखण्ड बनाने का तथा अलवर में मावा बनाने के संयंत्र स्थापित करने की भी योजना है।

पशुओं की हीन दशा के कारण

राजस्थान में ही नहीं बल्कि समस्त देश में पशुओं की हीन अवस्था हैं पशुओं की इस हीन अवस्था और दूध उत्पादन की कम मात्रा के लिए निम्न कारणों को गिनाया जा सकता है।

(i) जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण पशुओं का भार भूमि पर दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। इसलिये जनसंख्या के भार से बची निकृष्ट भूमि से पशुओं के लिए आवश्यक चारा उपलब्ध नहीं हो पाता। उचित चारे की व्यवस्था न होने पर भी दूध देने वाले, हल तथा बोझा खींचने वाले पशुओं की शक्ति में कमी होती जाती है। कुछ गायों की जनन शक्ति चारे के अभाव में कम हो जाती है।

(ii) राजस्थान में चरागाहों की विशेष कमी के कारण उत्तम एवं निकृष्ट सभी प्रकार के पशुओं को एक ही चरागाहों में अथवा जंगल में चराया जाता है, जहाँ उनका कमजोर व निम्न कोटि के सांडों व भैंसे से सम्पर्क होता है। जिससे पशुओं की नस्ल उत्तरोतर बिगड़ती जा रही है। न केवल उत्तम सांडों की कमी है वरन् कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों का भी अभाव है।

(iii) सभी प्रकार के पशुओं को एक साथ चराये जाने, गन्दा जल पीने, सड़ी गली वस्तुओं को खाने और गन्दे तथा अंधेरे बाड़ों में रहने के कारण ये अनेक रोगों से पीड़ित रहते है। ये रोग संक्रामक होने के कारण पशुओं में शीघ्रता से फैल जाते हैं, इससे बड़ी संख्या में पशु मर जाते हैं। साथ ही पशु चिकित्सालय भी काफी कम संख्या में हैं।

इस प्रकार पशुओं की समस्या उत्तम चारे, प्रजनन तथा चिकित्सा की है। अगर इनका निवारण कर दिया जाये तो पशु स्वस्थ, दुधारू तथा शक्तिशाली होंगे।

पशुधन का सुधार

राजस्थान सरकार ने पशुओं में सुधार लाने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयास किये हैं—

(i) राजस्थान सरकार ने 1957 में पशुपालन विभाग को एक पृथक विभाग स्थापित कर उसके संचालन के लिए प्रावधिक निदेशक नियुक्त किया। इस विभाग ने सभी प्रकार के पशुओं की जातिगत विशेषताएं तथा उनके क्षेत्रीय वितरण का सर्वेक्षण करवाया जिससे उनके अनुरूप सुधार कार्य सम्पन्न करवाये जा सकें।

(ii) सरकार ने पशुओं के लिए उत्तम चारे तथा खाद्य हेतु योजनाएं चालू की क्योंकि बिना पौष्टिक खुराक के उत्तम नस्ल भी गिर जाती है साथ ही उसकी क्षमता भी कम हो जाती है।

(iii) पशुओं में उत्पन्न बीमारियों के लिए अनुसंधान कार्य तथा पशु रोगों का उन्मूलन कार्य तेजी से किया जा रहा है। तीन प्रयोगशालाएं जयपुर तथा जोधपुर में भेड़, बकरी, कुक्कुट तथा पशुओं से सम्बन्धित रोगों पर अनुसंधान कार्य कर रही हैं।

(iv) राज्य में विभिन्न गोसंवर्धन योजनाओं को अपनाकर पशुपालन विभाग ने पशु सम्पत्ति के सुधार की ओर ध्यान दिया है।

(v) राजस्थान में बहुत संख्या में अनार्थिक एवं अनुत्पादक पशु हैं जो राज्य तथा पशुपालक दोनों के लिए अहितकर होते हैं। फलस्वरूप ग्राम आधार योजना की नींव डाली गई जिससे पशुओं को अधिक से अधिक उत्पादक बनाया जा सके।

ग्राम आधार योजना एक सुव्यवस्थित योजना पद्धति है जो प्रजनन कार्य को संयत रखती है, उन्नत सांडों की कमी की पूर्ति करती है, कृत्रिम गर्भाधान द्वारा उन्नत एवं इच्छित सांडों का सम्वर्धन करती है। लेकिन राजस्थान में यह योजना लोगों के धार्मिक अन्धविश्वास के कारण अधिक प्रगति नहीं कर पाई।

इस समय राजस्थान में 22 ग्राम आधार खण्ड, एक वीर्य संकलन केन्द्र तथा उससे सम्बद्ध 171 उपकेन्द्र कार्य कर रहे हैं जहां कृत्रिम गर्भाधान की सेवायें उपलब्ध करवाई जा रही हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं में पशुधन का विकास

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में पशुधन की महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए पंचवर्षीय योजनाओं में उनके विकास के लिए जो प्रयत्न किये गए हैं, वे उल्लेखनीय हैं। द्वितीय योजना के अन्तर्गत पशुपालन व नस्ल सुधार पर 125 लाख रुपये तथा तृतीय योजना में 281 लाख रु. व्यय किये गये। पांचवी तथा छठी पंचवर्षीय योजना में क्रमश: 13 करोड़ तथा 10.64 करोड़ व्यय किये जा चुके हैं। वर्ष 1988-89 की वार्षिक योजना में 6.99 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान है।

गो-सम्वर्धन शाखायें—गाय-बैलों की नस्ल उन्नत करने के लिए अब तक 44 गौ-शालाएं स्थापित की जा चुकी हैं। प्रथम व द्वितीय पंचवर्षीय योजना में हरियाणा मेवात तथा नागौरी नस्ल के लिए अलवर, बस्सी व नागौर में शाखाएं खोली गई हैं। कुम्हेर संवर्धन फार्म में हरियाणा नस्ल की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। राज्य सरकार ने थारपारकर नस्ल के सांड तैयार करने के लिए चांदन गांव (जैसलमेर) में बुलमदर फार्म सन् 1964 में कायम किया था जिसे अब मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर को स्थानान्तरित करने का फैसला किया गया है ताकि इस नस्ल का और अधिक विकास हो सके। रामसर व चन्दनवेल (जैसलमेर) में भी शाखायें स्थापित की गई हैं। नोहर में गोवत्स परिपालन केन्द्र स्थापित किया गया है जहाँ सांड तैयार किये जाते हैं और फिर इन्हें पंचायतों में वितरित कर दिया जाता है।

पशुचिकित्सा—राजस्थान में पशुधन की बीमारियों से रक्षा व रोकथाम के लिए नये चिकित्सालय खोले गये हैं। जहाँ 1951 में कुल 127 इकाईयां थी वे बढ़कर 1986-87 में 362 हो गई, साथ ही 347 औषधालय तथा 32 चल चिकित्सालय भी है। रिन्डरपेस्ट के नियन्त्रण के लिए 13 केन्द्र खोले गये हैं। इन के अतिरिक्त विभिन्न पंचायत समितियों के अन्तर्गत भी 185 पशु औषधालयों का संचालन किया जा रहा है।

पशुपालन व अनुसंधान—द्वितीय योजना काल में एक पशुचिकित्सा महाविद्यालय, बीकानेर में तथा एक जयपुर में स्थापित किया गया। जोधपुर में ऊन एवं भेड़ प्रशिक्षण स्कूल स्थापित किया गया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद नेसूरतगढ़ व बीकानेर में भेड़ अनुसंधान केन्द्र स्थापित किये हैं। छठी पंचवर्षीय योजना के प्रथम दो वर्षों में 104 पशु चिकित्सालय खोले गये तथा अनुसंधान की ओर काफी प्रयास किये जा रहे हैं जिससे पशुओं के स्वास्थ्य को अच्छा बनाये रखकर उनकी पूर्ण क्षमता का उपयोग किया जा सके। विदेशी सांडों का उपयोग भी किया जाने लगा लेकिन विदेशी सांडों से उत्पन्न पशु भारतीय दशाओं में बीमारियों के बहुत शीघ्र शिकार हो जाते हैं। फलस्वरूप पशुओं की बीमारियों का इलाज करने के साथ-साथ वर्तमान दशाओं में भी सुधार किया जाना चाहिये।

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र—प्रथम योजना में ब्यावर, अलवर, नागौर, झालावाड़, खेतड़ी, वस्सी, किशनवास, सुमेरपुर, रायसिंहनगर में कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र स्थापित किये गये। द्वितीय योजना में भी 10 ऐसे केन्द्र तथा कुछ उपकेन्द्र खोले गये। तीसरी योजना में जयपुर, दूदू व अजमेर में विशेष इकाईयां स्थापित की गई हैं। चतुर्थ से छठी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राज्य के पशुओं की नस्ल सुधारने के कार्यक्रम बड़ी तेजी से अपनाये गये हैं। इस समय 171 कृत्रिम गर्भाधान की सुविधाएं उपलब्ध करा रहे हैं।

चारा विकास योजना—पशुओं के खाने के लिए चारे की विशेष फसलों की एक योजना 1959 में बनाई गई थी जिसके अन्तर्गत चरागाहों की व्यवस्था करना, फसलों से प्राप्त भूसा व कुट्टी, घास आदि के लिए विशेष फसले उगाना, वृक्षों के पत्ते एकत्र करना, उन्नत घास के बीज बांटना और प्रदर्शनियां आयोजित करना आदि कार्य आते है। अब तक 7000 हैक्टेयर क्षेत्र में घास विकास

कार्य किया जा चुका है। वर्ष 1986-87 में 247 क्विन्टल चारा बीज का वितरण पशु विभाग द्वारा किया गया। वर्तमान में पंजीकृत चारा बीज उत्पादकों के द्वारा जिले के उन क्षेत्रों में जहां सिंचाई की सुविधाए उपलब्ध हैं, चयनित आधार पर चारे के बीज उगाने की योजना प्रस्तावित है। इन सब प्रयत्नों को देखते हुए अब भी पशुपालन की ओर ध्यान देने की काफी गुंजाइश है।

वर्ष 1988-89 में पशुपालन के क्षेत्र में निम्न कार्यक्रम प्रस्तावित है—

(i) 150 पशु औषधालयों को पशु चिकित्सालयों में क्रमोन्नत करना व साथ ही गत वर्ष के निर्धारित 50 नए चिकित्सालय भी खोलना।

(ii) चारा विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत इन्दिरा गांधी नहर परियोजना क्षेत्र में चारा बीज फार्म स्थापित करना।

(iii) राज्य में मुख्य पशु नस्ल की उन्नति के लिए पशु विकास कार्यक्रम की पांच विशेष विकास योजनाएं पांच जिलों में प्रारम्भ करना।

(lv) प्रत्येक डिविजनल मुख्यालय पर भ्रमणशील शल्य पशु चिकित्सा इकाई की स्थापना हेतु लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए 5 ऐसी इकाईयों की स्थापना। अभी केवल एक ही इकाई जोधपुर डिविजन में कार्यरत हैं।

भविष्य में राज्य में चारे की कमी की पूर्ति को महत्व देना होगा। जहां अच्छी वर्षा होती है वहां फसलों की हेर फेर के साथ घास को बोया जाये। इसके अतिरिक्त जिन भागों में वर्षा 35 सेन्टीमीटर से कम हैं, उन भागों में केवल घास को ही अधिक महत्व दिया जाये अथवा ज्वार की खेती की जाये ताकि पशुओं को चारा एवं मनुष्यों को अनाज मिल सके। राजस्थान में उन्नत किस्म की घास बड़े पैमाने पर पैदा की जाये। नस्ल सुधार के लिए सांडों व मेढ़ों की कमी को बाहर से आयात कर दूर किया जाये। भैंसों की नस्ल को सुधार कर अधिक दूध उत्पादन के प्रयास किये जावें।

अन्त में इतना ही कहा जा सकता है कि राज्य में पशुपालन व्यवसाय का भविष्य उज्जवल है।

भेड़

राज्य में कुल भेड़ों की संख्या 134 लाख है जो कि सम्पूर्ण भारत की 25 प्रतिशत हैं। भेड़ों से ऊन के अतिरिक्त दूध व मांस भी मिलता है। अनुमान है कि प्रति वर्ष राजस्थान में 25-30 लाख भेड़ें मांस प्राप्ति के उपयोग में लाई जाती है।

यदि राजस्थान में भेड़ों के क्षेत्रीय वितरण पर दृष्टि पात करें तो 50 सेन्टीमीटर वर्षा रेखा के पश्चिम में लगभग 67 प्रतिशत भेड़ें पाई जाती हैं। पश्चिम भाग के जोधपुर, बीकानेर, नागौर, बाड़मेर तथा पाली इन पांचों जिलों में राजस्थान की कुल भेड़ों की संख्या का लगभग 43 प्रतिशत मिलता है। 50 सेन्टीमीटर वर्षा रेखा के पूर्व में भीलवाड़ा, कोटा, जयपुर और अजमेर में भी भेड़ें पाई जाती हैं। सबसे कम भेड़ों की संख्या बांसवाड़ा और झालावाड़ में क्रमशः 21 हजार तथा 25 हजार है।

राज्य में भेड़ व्यवसाय के विकास हेतु पृथक रूप से भेड़ व ऊन विभाग की स्थापना सन् 1963 में की गई। वर्तमान में इस विभाग द्वारा निम्न कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है—

(1) भेड़ों की समुचित सार-संभाल हेतु प्रसार एवं स्वास्थ्य रक्षा कार्यक्रम।

(2) नस्ल सुधार हेतु संकर प्रजनन कार्यक्रम।

(3) मरुविकास व सूखा-संभावित क्षेत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत—

(अ) भेड़ चरागाह विकास।

(ब) भेड़ पालक प्रशिक्षण।

(स) भेड़ प्रदर्शनी।

(द) चल रोग अनुसंधान प्रयोगशाला।

(य) चयनित प्रजनन।

(4) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों को भेड़ इकाईयां देने का कार्यक्रम।

(5) अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए भेड़ विकास सुविधा।

(6) भेड़ व ऊन प्रशिक्षण संस्थान का संचालन।

(7) ऊन विश्लेपण प्रयोगशाला का संचालन।

अर्थव्यवस्था में महत्व—ऊन उत्पादन करने वाले राज्यों में राजस्थान का भारत में प्रमुख स्थान है। भारत के ऊन उत्पादन का 49 प्रतिशत राजस्थान से ही प्राप्त

होता है। राज्य में भेड़ों से लगभग 16 हजार टन ऊन का उत्पादन प्रतिवर्ष होता है। काश्मीर राज्य के अतिरिक्त सम्भवतः यहां पर देश का सबसे उत्तम ऊन उत्पन्न होता है। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि ऊन में से कुछ ऊन 'मेरीनों वूल 50 काउन्ट्स' जैसी किस्म की है। राजस्थानी ऊन राजस्थान से बाहर अन्य राज्यों को भी निर्यात की जाती है और कुछ ऊन यहां कुटीर उद्योगों में काम आती है। भेड़ों से ऊन के अतिरिक्त अन्य कई पदार्थ भी प्राप्त होते हैं। राजस्थान में लगभग 25-30 लाख भेड़ों की खालें प्राप्त होती हैं। भेड़ पालन से मनुष्यों को रोजगार मिलने के साथ-साथ पौष्टिक दूध भी मिलता है। भेड़ का मांस भी बेचा जाता है, खाल से जूतियां व हड्डियों से खाद बना ली जाती है। एक-एक गड़रिया 20 भेड़ से लेकर 400 भेड़ें तक रखता है। राजस्थान के रेतीले एवं पहाड़ी भाग में जहां कृषि कार्य के लिए सुविधायें कम है, मनुष्य भेड़े चराकर भूमि का उपयोग कर लेते हैं। कृषि वाले क्षेत्रों में भी भेड़ें एक सहायक उद्योग के रूप में पाई जाती है।

राजस्थान एवं भारत में, अनेक कुटीर उद्योगों, लघु उद्योगों एवं संगठित उद्योगों में ऊन कच्चे माल के रूप में काम में लाई जाती हैं। भेड़ों से अन्य लाभप्रद पदार्थ भी मिलतेहैं। इनकी मींगनियां व मूत्र अच्छी खाद होते है तथा हड्डियों से भी खाद बनाई जाती है। भेड़ों की आंतों से तल्ले,स्नायु से सिरेस तथा चर्बी से बूट पॉलिश व ग्रीस आदि बनाते हैं।अतः राजस्थान की अर्थव्यवस्था में इनका बहुत महत्व है।

भेड़ों की मुख्य नस्लें

(i) **नाली**—इस नस्ल की भेड़ें राजस्थान के उत्तरी क्षेत्र जैसे गंगानगर व बीकानेर में मिलती है। इन भेड़ों का चेहरा हल्के भूरे रंग का तथा कान लम्बे होते हैं। औसतन वजन 32 किलोग्राम होता है। इनसे प्राप्त होने वाली ऊन का रेशा लगभग 12 सेन्टीमीटर से 14 सेन्टीमीटर लम्बा होता है। प्रति भेड़ प्रतिवर्ष 3-4 किलोग्राम ऊन देती है। ऊन वर्ष में दो बार प्राप्त की जाती है। अनुमान है कि इस नस्ल की संख्या राजस्थान में लगभग 3.8 लाख है।

(ii) **मगरा**—इस नस्ल की भेड़े जैसलमेर, बीकानेर तथा नागौर जिलों में पाली जाती है। इनकी शारीरिक बनावट सुन्दर व मजबूत होती है। औसतन वजन 40 किलोग्राम होता है इनसे ऊन वर्ष में तीन बार प्राप्त की जाती है। इनसे प्राप्त ऊन कालीन बनाने के लिए बड़ी अच्छी होती है। इसकी ऊन का रेशा 10 सेन्टीमीटर से 12 सेन्टीमीटर तक लम्बा होता है तथा यह मध्यम श्रेणी की ऊन होती है। प्रति भेड़ प्रतिवर्ष औसतन 2 किलोग्राम ऊन देती है। इस जाति की लगभग 5 लाख भेड़ें राजस्थान में पाई जाती है।

(iii) **चोकला या शेखावाटी**—इस नस्ल की लगभग 21 लाख भेड़े राजस्थान में पाई जाती हैं लेकिन इनका अधिकांश केन्द्रीयकरण चूरू, झुन्झुनू व सीकर जिलों में है। इन भेड़ों के चेहरों पर गहरे, भूरे तथा काले धब्बे होते हैं। इनसे अच्छी किस्म की ऊन प्राप्त होती है। प्रत्येक भेड़ प्रतिवर्ष औसतन 1-2 किलोग्राम तक ऊन देती है।

(iv) **मारवाड़ी**—इस नस्ल की भेड़ें सम्पूर्ण जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, पाली, जयपुर, सीकर व झुन्झुनू जिलों में मिलती है। इन भेड़ों का स्वास्थ्य अच्छा होता है। इस नस्ल की भेड़ों की यह विशेषता होती है कि ये लम्बी दूरी तय कर सकती हैं तथा साथ ही किसी भी रोग से शीघ्र पीड़ित नहीं होती है। इससे मध्यम व साधारण किस्म की ऊन मिलती है। प्रति वर्ष औसतन 1-2 किलोग्राम तक ऊन देती है।

(v) **जैसलमेरी**—इस नस्ल की भेड़ें सम्पूर्ण जैसलमेर जिले में तथा जोधपुर के पश्चिमी सीमान्त भागों में मुख्यतः पाई जाती है। इस जाति में दो शाखायें हैं, एक तो गहरे भूरे रंग के चेहरे वाली तथा दूसरी, काले चेहरे वाली। इनके कान लम्बे तथा शरीर पुष्ट होता है। प्रति भेड़ से प्राप्त ऊन मध्यम श्रेणी की होती है व रेशा 10 से 12 सेन्टीमीटर लम्बा होता है। प्रति भेड़ से प्रतिवर्ष औसतन 2 से 3.5 किलोग्राम तक ऊन प्राप्त होती है। इस प्रकार राजस्थान में पाई जाने वाली समस्त नस्लों में से सबसे अधिक ऊन यही नस्ल देती है। इनकी संख्या समस्त राजस्थान में लगभग 6.5 लाख है।

(vi) **मालपुरी**—ये भेड़ें जयपुर, टोंक तथा सवाई-माधोपुर जिलों में मिलती हैं। इनके मुंह बहुत ही हल्के भूरे रंग के होते हैं जो दूर से प्रायः सफेद दृष्टिगत होते हैं। इनके कान छोटे होते हैं। यह नस्ल कम ऊन प्रदान करने वाली है। प्रति वर्ष भेड़ से ऊन का उत्पादन 1.5 किलोग्राम तक होता है। इनकी संख्या राजस्थान में लगभग 20 लाख है।

(vii) **सोनाड़ी अथवा चनोथर**—इस नस्ल की भेड़ें राजस्थान में लगभग 12 लाख हैं, उनमें से अधिकांश बाँसवाड़ा, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर तथा उदयपुर जिलों में पाई जाती हैं। इन भेड़ों का चेहरे से लेकर गर्दन तक भूरा रंग होता है। कान प्रायः 20 से 25 सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं जो चरते समय भूमि को स्पर्श करते हैं। पूंछ भी अपेक्षाकृत लम्बी होती है। इस नस्ल की भेड़ों का औसतन वजन 55 से 60 किलोग्राम होता है जो अन्य नस्ल की भेड़ों की अपेक्षा अधिक होता है। इनसे प्राप्त ऊन का रेशा छोटा होता है। प्रति भेड़ प्रति वर्ष 1 से 1.5 किलोग्राम तक ऊन देती है।

(viii) **पूगल**—पूगल तहसील बीकानेर जिले में भारत व पाकिस्तान की सीमा के निकट स्थित है। इसका उत्पत्ति स्थान पूगल होने के कारण इस नस्ल का नाम ही पूगल विख्यात हो गया। पूगल नस्ल की भेड़ें अधिकांशतः राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी भाग के जैसलमेर व बीकानेर जिलों में पाई जाती हैं। नागौर व जोधपुर जिलों के कुछ भागों में भी मिलती है। इनसे प्राप्त ऊन मध्यम किस्म की होती है तथा प्रति भेड़ प्रति वर्ष औसतन दो किलोग्राम तक ऊन देती है।

(ix) **बागड़ी**—इस नस्ल की भेड़ें राजस्थान में लगभग 5 लाख हैं जो अलवर जिले में पाई जाती है। इन भेड़ों में से 75 प्रतिशत भेड़ों के मुंह काले तथा शेष के सफेद होते हैं। इनके कान छोटे होते हैं। इनसे प्राप्त ऊन का रेशा छोटा होता है।

ऊन की किस्में

राजस्थान में देश की लगभग 25 प्रतिशत भेड़ें मिलती हैं जिनसे देश के कुल ऊन उत्पादन का 45 प्रतिशत भाग मिलता है। राजस्थान से विभिन्न देशों को विभिन्न नामों वाली भेड़ें जैसे बीकानेरी, जैसलमेरी, जोग्यिा, राजपूताना, ब्यावर तथा मारवाड़ी आदि निर्यात की जाती है। राज्य में ऊन के कुल उत्पादन का 16 प्रतिशत ऊनी कम्बल, गलीचे तथा नम्दे बनाने में प्रयोग किया जाता है। शेष 84 प्रतिशत में से 72 प्रतिशत विदेशों को तथा 12 प्रतिशत भारत के दूसरे राज्यों को निर्यात किया जाता है। राजस्थान में प्राप्त होने वाली ऊन को चार वर्गों में बाँट सकते हैं।

(i) **उत्तम श्रेणी की ऊन**—यह ऊन बीकानेर, झुन्झुनूं सीकर, जयपुर, चूरू तथा नागौर से प्राप्त होती है। समस्त ऊन की 27 प्रतिशत ऊन इस प्रकार की है।

(ii) **मध्यम श्रेणी की ऊन**—यह ऊन अलवर, भरतपुर, गंगानगर, बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर, सवाईमाधोपुर तथा जयपुर के कुछ भागों से प्राप्त होती है। इस प्रकार की ऊन कुल ऊन उत्पादन का 15 प्रतिशत है।

(iii) **मोटी ऊन**—यह टोंक, कोटा तथा जयपुर जिले के कुछ भागों से प्राप्त होती है।

(iv) **निम्न श्रेणी की ऊन**—यह उदयपुर, बाँसवाड़ा डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़ तथा भीलवाड़ा आदि जिलों से प्राप्त होती हैं।

रंगों की दृष्टि से राजस्थान में उत्पादित ऊन सफेद, हल्की सफेद, पीली तथा धूसर भूरी होती है। सबसे अधिक उत्पादन पीली ऊन का किया जाता है।

भेड़पालन एवं ऊन उद्योग के दोष

भेड़ों से प्राप्त ऊन की दृष्टि से राजस्थान का भारत में एक महत्वपूर्ण स्थान है लेकिन यह व्यवसाय उन्नत दशा में नहीं है। अतः इस उद्योग में कुछ दोष पाये जाते हैं, जो निम्न हैं।

(i) **भेड़ों की नस्ल**—राजस्थान में भेड़ों के लिए उत्तम चरागाह तथा अच्छे नर मेंढ़ा कम हैं, इसलिए भेड़ों की नस्ल बहुत बिगड़ी हुई है। भेड़ों के मालिक भी उनके चरने तथा प्रजनन के प्रति लापरवाही बरतते हैं।

(ii) **भेड़ों का स्वास्थ्य**—उत्तम चरागाहों के अभाव तथा कमी के कारण भेड़ों के चरने की व्यवस्था ठीक नहीं है, इसलिए उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रह पाता। अतः उनसे प्राप्त उत्पाद भी अच्छी श्रेणी के नहीं होते।

(iii) रोग—चरवाहे रोग-ग्रस्त भेड़ों तथा निरोग भेड़ों को अलग रख सकने में असमर्थ होते हैं। इनमें रोग का संक्रामण बड़ी तेजी से होता है जो भेड़ों में फैलकर उन्हें मृत्यु तक पहुंचा देता है।

(iv) भेड़पालकों की आर्थिक दशा शोचनीय—चरवाहों की आर्थिक दशा खराब होने के कारण उनकी कार्य-क्षमता में कमी पाई जाती है जिससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में लगे रहते हैं तथा भेड़ों की ओर से उदासीन हो जाते हैं। इसलिए पोषण के लिए उत्तम चारा, रोगी होने पर उचित इलाज तथा उत्तम किस्म के 'नर मेंढ़ा' आदि का प्रबन्ध नहीं कर सकते।

(v) अशिक्षा—भेड़पालक प्राय: अशिक्षित हैं जिससे वह उचित तकनीकों का उपयोग न तो भेड़पालन में और न ऊन के चयन में कर पाते हैं।

(vi) ऊन काटने का दोषपूर्ण ढंग—ऊन काटने व ऊन उद्योग में अवैज्ञानिक तरीके काम में लिए जाते हैं। ऊन की कटाई साधारणतया कैंची से की जाती है। ऊन जिससे बहुत सी ऊन बेकार चली जाती है। भेड़पालक उनकी विभिन्न किस्मों से अनभिज्ञ है। अत: वे जब शरीर के ऊपर की ऊन तथा सीने की ऊन को अन्य प्रकार की ऊन के साथ मिला देते हैं तो बड़ी मात्रा में यह बेमेल ऊन उत्तम ऊन के बाजार भाव को गिरा देती है। अभी तक ऊन को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। इसके मुख्य दो कारण हैं—

(अ) विदेशों में इस मिश्रित बेमेल ऊन को विदेशी-क्रेता ईस्ट इण्डिया कारपेट वूल के नाम से प्राप्त कर अपने देश में उत्तम प्रकार की वस्तुओं का निर्माण सस्ती कीमत पर कर लेता है।

ब) भारत में उत्तम ऊन की पूर्ति विदेशों से आयात कर सुविधापूर्वक कर ली जाती है।

(vii) दोषपूर्ण विक्रय प्रणाली—राजस्थान में ऊन के विक्रय की व्यवस्था बड़ी दोषपूर्ण है। ऊन के विक्रय में मध्यजन प्रचुर मात्रा में होने के फलस्वरूप वे अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने हेतु भेड़ पालकों के ऊन को वर्गीकरण करने के तरीकों से वंचित रखते हुए मिश्रित ऊन की आपूर्ति को प्रेरित करते हैं। इससे उत्तम किस्म की ऊन निम्न दर पर बिकती है और उन्हें आर्थिक हानि होती है तथा साथ ही मध्यजन मिलावट कर देते हैं। उनके निर्यात की प्रणाली भी दोषपूर्ण है।

(vii) सहकारिता का अभाव—भेड़ चराने वाले पालक तथा ऊन-विक्रेताओं के बीच किसी प्रकार का सहकारी प्रदान-प्रदान न होने के कारण सभी को हानि उठानी पड़ती है और साथ ही उनकी समस्याओं को हल करने के प्रयत्न भी सफल नहीं हो पाते।

दोषों को निवारण करने के उपाय तथा सरकारी प्रयास

(i) नस्ल सुधार—भेड़ों की नस्ल सुधारने के लिए गर्भाधान के लिए अच्छी किस्म के नर मेढ़ों का चुनाव करना चाहिये तथा इसकी सुविधा निकटस्थ स्थानों पर उपलब्ध होनी चाहिये। सरकार ने यह व्यवस्था जोधपुर, बीकानेर, कोडमदेसर (बीकानेर) और चित्तौड़गढ़ केन्द्रों पर प्रदान कर रखी है। भेड़ों की अच्छी नस्ल तैयार करने के लिए सोवियत रूस से मैरिनों नर मेढ़े इन केन्द्रों के द्वारा एक बड़े पैमाने पर प्रजनन फार्म फतेहपुर एवं अम्बिका नगर में तथा राज्य के द्वारा बीकानेर तथा शाहपुरा में नस्ल सुधार के केन्द्र स्थापित किये गये हैं।

(ii) उत्तम चरागाह—उत्तम चरागाहों की कमी होने के कारण भेड़ चराने वालों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है। अत: सरकार को उत्तम चरागाह का प्रबन्ध करना चाहिये।

(iv) रोग निवारण—भेड़ शीघ्र ही रोगों से ग्रसित हो जाती है। इसलिए रोगों को फैलने से रोकने के लिए तथा उनकी चिकित्सा के लिए पर्याप्त संख्या में पशु चिकित्सालय स्थापित करने चाहिए।

(iv) आर्थिक दशा में सुधार—भेड़ पालकों की आर्थिक दशा में सुधार लाने के लिए सहकारी समितियां और सहकारी बैंक स्थापित करने चाहिये जिससे वे भेड़ पोषण तथा उनके विकास में पीछे न रहे।

(v) अनुसंधान कार्य—भेड़ प्रजनन व ऊन पर अनुसंधान करने के लिए सरकार ने 8 केन्द्रों की स्थापना की है।

(1) बीकानेर—मगरा एवं पूगल नस्ल की भेड़ों के लिए।

(2) मण्डोर (जोधपुर) में जैसलमेरी भेड़ों के लिए।

(3) पोकरन (जैसलमेर) में भी जैसलमेरी भेड़ों के लिए।

(4) जोधपुर में मारवाड़ी भेड़ों के लिए।

(5) कोडमदेसर में चाखला भेड़ों के लिए।

(6) हनुमानगढ़ में नाली भेड़ों के लिए।

(7) जयपुर में मालपुरा भेड़ों के लिए।

(8) चित्तौड़गढ़ में सोनारी भेड़ों के लिए।

इन उपरोक्त केन्द्रों में भेड़ों से सम्बन्धित अनुसंधान कार्य होते रहते हैं और उनका लाभ भेड़ पालकों को समय-समय पर निरन्तर मिलता रहता है।

(vi) ऊन विकास के लिए सरकारी प्रोत्साहन—ऊन उद्योग से सम्बन्धित कार्यों को उन्नत करने के लिए सरकार ने राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में विकास केन्द्रों का एक जाल-सा बिछा दिया है जिससे राजस्थान में ऊन का विकास नियोजित तरीके से सम्भव हो सके। राजस्थान को ऊन विकास की दृष्टि से चार भागों में क्रमशः जयपुर, जोधपुर, बीकानेर व जैसलमेर में विभक्त किया गया है। प्रत्येक भाग के लिए एक-एक भेड़ व ऊन विकास अधीक्षक के नियंत्रण में एक-एक मुख्य विकास केन्द्र स्थापित किया गया है। प्रत्येक मुख्य विकास केन्द्र के अन्तर्गत दस-दस विकास केन्द्र स्थापित है, जो इस प्रकार हैं—

(i) जयपुर—मालपुरा, निवाई, सांभर, जयपुर, दौसा, अजीतगढ़, नवलगढ़, झुन्झुनूं, सीकर, सवाई-माधोपुर।

(ii) बीकानेर—भादरा, महाजन, सूरतगढ़, हनुमानगढ़, सुजानगढ़, डूंगरपुर, नोखा, कोलायत, बीकानेर, राजगढ़।

(iii) जोधपुर (उत्तरी भाग-जैसलमेर के लिए)—रामगढ़, जैसलमेर, डेडासर, लाठी, पोकरण, मोहनगढ़, फलौदी, ओसियां, शिव और भाद।

(iv) जोधपुर (दक्षिणी भाग-जोधपुर के लिए)—बाड़मेर, बालोतरा, जालोर, बाली, पाली, बिलाड़ा, जोधपुर, परवतसर, मेड़ता सिटी व नागौर,

(vii) वैज्ञानिक तरीके तथा प्रशिक्षण - ऊन काटने के लिए वैज्ञानिक तरीकों के अपनाने तथा चिकित्सा सम्बन्धी प्रशिक्षण आदि प्रदान करने के लिए सरकार को सुविधाएं उपलब्ध करवानी चाहिए जिससे अधिकाधिक विकास कर लाभान्वित हुआ जा सके।

(viii) सहकारिता की भावना—सहकारिता की भावना भेड़ पालकों में जागृत करनी चाहिए जिससे वह सहकारी समितियाँ बना कर उद्योग को संगठित कर अपनी समस्यायें सुलझाने के सामूहिक प्रयास कर सकें।

(ix) शिक्षा का प्रसार—भेड़ पालकों को शिक्षित किया जाना आवश्यक है। इसके अभाव में ये वैज्ञानिक तरीकों तथा ऊन उद्योग से सम्बिन्धित जानकारी को अपना कर लाभ नहीं अर्जित कर सकते। इस दिशा में भी सरकार ने काफी प्रयास किये हैं। अब तो भेड़ पालकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे सरकार द्वारा उपलब्ध सुविधाओं का यथा सम्भव लाभ उठावें तथा कार्य करते समय जो असुविधायें आती हैं उन्हें सरकार के सम्मुख प्रस्तुत कर उसके हल में सहयोग प्रदान करें।

ऊन कटाई केन्द्र—वैज्ञानिक ढंग से ऊन काटने के अब तक सरकार के द्वारा राजस्थान के विभिन्न भागों में लगभग 30 सामूहिक ऊन कटाई केन्द्र खोले गये हैं। सुमेरपुर में भी एक सहकारी ऊन कटाई केन्द्र स्थापित किया गया है।

प्रशिक्षण केन्द्र—भेड़ों के शारीरिक विज्ञान, ऊन वर्गीकरण तथा प्राथमिक चिकित्सा आदि के प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए जयपुर में एक ऐसा केन्द्र स्थापित किया जा चुका है। कॉटेज ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट की बीकानेर में, ऊन कतरन ट्रेनिंग स्कूल की जयपुर में, शीप एण्ड वूल ट्रेनिंग स्कूल की जोधपुर में और वूल ग्रेडिंग एण्ड स्पिनिंग ट्रेनिंग स्कूल की जयपुर में स्थापना की जा चुकी है।

ऊन ग्रेडिंग केन्द्रों की स्थापना—जोधपुर, बीकानेर, पाली, जयपुर, नागौर, नवलगढ़ में ऊन वर्गीकरण केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है। ये ऊन केन्द्र ऊन को प्राप्त कर उसका वर्गीकरण कर उसे नीलाम भी करते हैं।

आय सम्बन्धित केन्द्र—राजस्थान सरकार ने ऊन विश्लेषण प्रयोगशाला, बीकानेर में, भेड़ अनुसंधान केन्द्र सुजानगढ़ व मालपुरा में और एक यांत्रिक उत्पादन एवं

सार) है। राज्य में कुक्कुट विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 2 राज्य स्तरीय कुक्कुट शालायें, तीन बायलर फार्म, एक लेयर फार्म तथा दो चूज़ा पालन केन्द्र वर्ष 1987 में कार्यरत थे तथा इनके रोग निदान एवं आहार विश्लेषण हेतु चार प्रयोगशालायें–अजमेर, जोधपुर, कोटा तथा उदयपुर में कार्यरत थीं। वर्ष 1988–89 में अजमेर में मुर्गी पालन के प्रशिक्षण के वास्ते संस्थान का खोला जाना तथा दो नये सघन कुक्कुट विकास खण्डों की स्थापना तथा अजमेर एवं जयपुर की राज्य स्तरीय कुक्कुटशाला में अतिरिक्त उपकरण उपलब्ध कराना आदि कार्यक्रम प्रस्तावित हैं।

चौपाये, भैंसें, ऊंट, बकरियां, भेड़ और घोड़ों की विभिन्न नस्लें और उनका प्रादेशिक वितरण राज्यों में किए गये सर्वेक्षण के आधार पर निर्धारित कर राज्य को निम्न मानचित्र में प्रदर्शित 10 भू-भागों में विभाजित किया गया है।
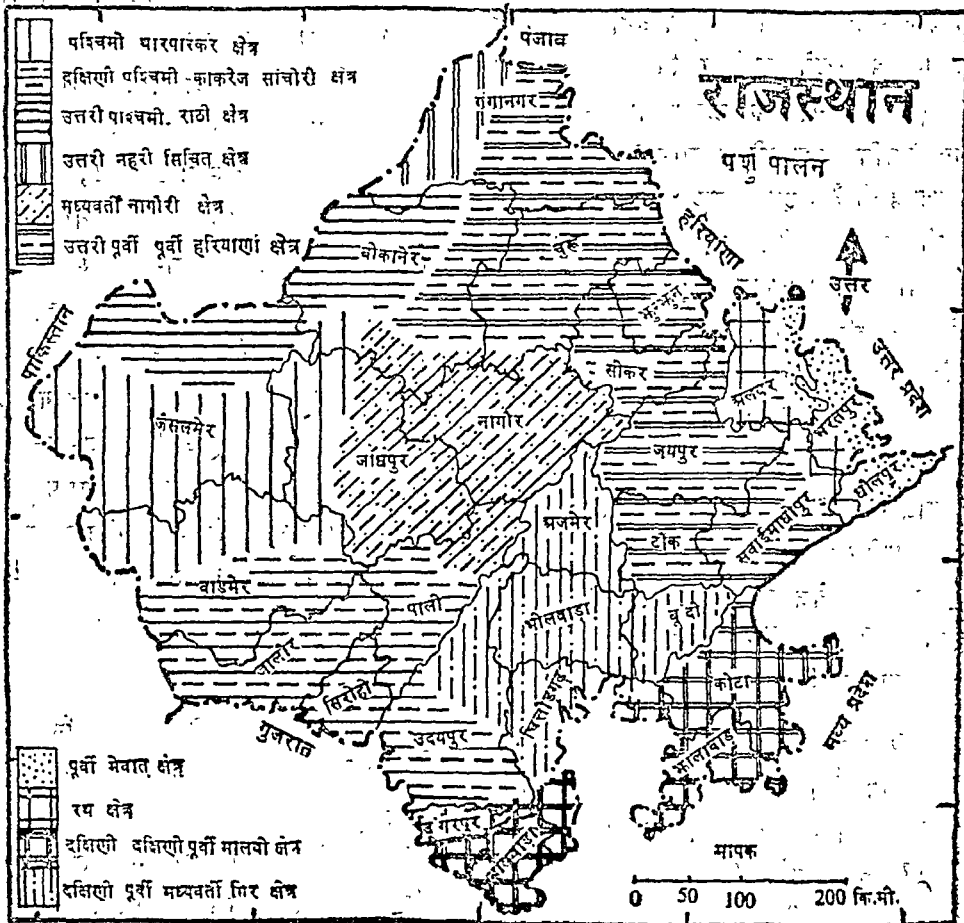
राजस्थान के पशुपालन क्षेत्र

1. उत्तरी-पश्चिमी (राठी) क्षेत्र—इस भू-भाग में राज्य के पश्चिमी भाग के बीकानेर, गंगानगर और जैसलमेर आदि जिले शामिल हैं। यहां बालू मिट्टी का वृहत फैलाव है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र जल के अभाव से ग्रस्त तथा अनउपजाऊ है। यहां शीत ऋतु में तापक्रम 14° सेन्टीग्रेड तथा ग्रीष्म ऋतु में 34° से 36° सेन्टीग्रेड तक रहता है। वर्षा यहां 25 सेन्टीमीटर से कम होती है। वनस्पति अत्यन्त विरल है तथा कटीली झाड़ियां पाई जाती हैं। यहाँ पर रेलोनुरूस हिरसूटस और पेकी-अमटर्जीज्म नामक घास होती है। इस प्रदेश में पशुपालन मुख्य आर्थिक क्रिया है। घी के उत्पादन के लिए दूध का प्रयोग किया जाता है और मनुष्य भेड़, बकरी व ऊंट के

दूध को काम में लाते हैं। ऊन का उत्पादन लगभग 7000 क्विन्टल है। बकरियों तथा ऊंटों के बालों का भी निर्यात होता है। भेड़ और बकरियों का निर्यात मांस के उद्देश्य से किया जाता है। चौपायों का व्यापार बंजारों के माध्यम से होता है जो एक गांव से दूसरे गांव में उन्हें लिए घूमते रहते हैं तथा अपने लिए वस्तुओं का क्रय करते रहते हैं। चौपायों को दूसरे राज्यों में चराने की दृष्टि से ले जाते हैं तथा वर्षा ऋतु के आगमन पर अपने क्षेत्रों में लौट आते हैं।

2 दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्र (संचौर अथवा कंकरेज)— इस क्षेत्र में सिरोही, जालौर जिलों व पाली जिले की खारची, देसूरी, पाली व बाली तहसीलें तथा बाड़मेर जिले के उत्तरी भाग के अतिरिक्त समस्त क्षेत्र इसमें आता है। स्थलाकृति अधिक ढालवाली पहाड़ियों और विस्तृत जलोढ़ मैदान से बनी हुई हैं। सिरोही जिले के पूर्वी भाग में अरावली श्रेणी फैली हुई हैं। यह क्षेत्र 600 से 900 मीटर तक ऊंचा हैं। सिरोही जिले के दक्षिणी पूर्वी भाग में वर्षा अधिक होती हैं। इस क्षेत्र में वार्षिक वर्षा 30 सेन्टीमीटर से 50 सेन्टीमीटर तक होती हैं तथा आबू में 150 सेन्टीमीटर तक वर्षा होती हैं। यहां पर मरूस्थलीय मिट्टी हैं तथा सिरोही जिले में लाल और पीली मिट्टी पाई जाती हैं। यहां पर हरी घास की कमी है तथा उपोष्ण कटिबन्धीय वन पाये जाते हैं। इस भाग में अर्थव्यवस्था मुख्यतया पशुधन पर केन्द्रित है। पशुपालन में संलग्न लोगों की आय का स्रोत केवल चौपाए, भेड़ें, बकरियां और ऊंटों तथा उनसे प्राप्त उत्पादों के क्रय से हैं। कंकरेज बैल इस क्षेत्र में बड़े महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे बहुत ही शक्तिशाली तथा शरीर में काफी डीलडौल वाले होते हैं। अतः अधिक सामान खींचने में सक्षम होते हैं। निर्यात के लिये ऊन, ऊंट तथा बकरियों के बाल अन्य महत्वपूर्ण सामग्री हैं। व्यक्तिगत पशुओं के समूह 100 से 300 गायों के होते हैं। कई परिवार इकट्ठे होकर गांवों को जन्म देते हैं। राठी भू-भाग की तरह ही ऊन, घी, खालों तथा चमड़े का व्यापार होता है। पशु मेलों में बैल बेचे जाते हैं और क्रेता मध्यप्रदेश, गुजरात और सौराष्ट्र आदि पड़ोसी राज्यों से आते हैं।

3. पश्चिम क्षेत्र (थारपाड़कर)— इसमें जैसलमेर जिला, बाड़मेर जिले का उत्तरी भाग, जोधपुर जिले की शेरगढ़ तथा फलौदी तहसील का पश्चिमी भाग और बीकानेर जिले की कोलायत तहसील का पश्चिमी क्षेत्र आता है। यह एक रेतीला तथा सूखा मैदान है। जगह-जगह रेत के टीले फले हुए दिखते हैं जो तेज आंधी चलने पर एक स्थान से हटकर अन्यत्र जमा हो जाते हैं। यहां पर जहां दिन में तापक्रम बहुत ऊंचा हो जाता है और गर्मी बहुत तेज पड़ती है, वहां शाम होने पर रेत शीघ्र ठण्डी हो जाती है, जिससे रात्रि शीतल एवं सुखद होती है। वर्षा 10 सेन्टीमीटर से 25 सेन्टीमीटर तक होती है। इस भाग में रेतीली मिट्टी होती है जिसके कण मोटे होते हैं। इस कारण उनमें पानी की नमी को रोकने की शक्ति नहीं होती है। इस क्षेत्र में बाजरा मुख्य उपज है। वनस्पति में बबूल तथा झाड़ियां ही दिखाई देती है।

यह भू-भाग छोटा है लेकिन थारपारकर नस्ल देश में मुख्यतया दूध की नस्ल के रूप में प्रसिद्ध है। गायें औसतन एक दिन में 10 से 12 किलोलीटर दूध प्रदान करती हैं। थान पर बांध कर खिलाने की दशाओं में ये गायें 15 से 20 किलोलीटर तक दूध देने की क्षमता रखती हैं। ये भी घुमक्कड़ प्रजनकों के हाथ में हैं जो नये चरागाहों और पानी की तलाश में घूमते रहते हैं। सेवन घास अपनी उच्च पौष्टिक महत्व के कारण मुख्य चारा है और ये चौपाये घास के ऊपर बड़े फलते फूलते हैं। दूध का वार्षिक उत्पादन लगभग 2.10 मिलियन क्विन्टल होता है और इस दूध की बड़ी मात्रा में घी निकाला जाता है। सिवाय जोधपुर शहर के स्थानीय बाजार नहीं हैं और समस्त घी व्यापार स्थानीय व्यापारियों के हाथ हैं जो इसे टीन में बन्द करने तथा उचित सील लगाने के पश्चात अन्य राज्यों को निर्यात करते हैं।

ऊंट जैसलमेरी नस्ल (सवारी के ऊंट) के या बीकानेरी नस्ल (भारवाही) से मिलते-जुलते हैं। ये सभी समूहों में रखे जाते हैं और प्रजनक इनके निर्यात व्यापार में संलग्न हैं। पशु मेले बाजार की सुविधाएं प्रदान करते हैं। भेड़ भी अच्छी किस्म जैसे- जैसलमेरी और मारवाड़ी नस्ल की हैं। ये अच्छी किस्म की ऊन तथा अधिक उत्पादन प्रदान करती हैं। बकरियां मुख्यतया मारवाड़ी तथा

लोही प्रकार की हैं। ये माँस आपूर्ति के लिए महत्वपूर्ण हैं लेकिन दूध की मात्रा केवल बच्चों को पालने के लिए ही पर्याप्त होती है। ऊन का उत्पादन लगभग 36,800 किलोग्राम प्रतिवर्ष होता है। लगभग सभी ऊन विदेशों को निर्यात करने के लिए भेज दी जाती है।

4. उत्तरी नहरी सिंचित भू-भाग—यह भू-भाग राज्य के उत्तर में गंगानगर जिले के सिंचित क्षेत्रों में विस्तृत है। यह भू-भाग रेतीला एवं शुष्क है। ग्रीष्मकाल में यह भाग अधिक गर्म व शीतकाल में अधिक ठण्डा रहता हैं। वर्षा बहुत ही कम होती हैं अतः सारा क्षेत्र शुष्क है। गंगानगर से उपलब्ध सिंचाई की सुविधाएं इस जिले को एक अच्छे कृषि क्षेत्र में बदल चुकी हैं। लगभग 2,78,760 हैक्टेयर क्षेत्र में गहन कृषि की जाती है। सिंचित भूमियों में किसान मिश्रित कृषि को अपना चुके हैं। नकदी फसलों की कृषि के अलावा चारा भी पशुधन के लिए चारे के रूप में उगाया जाता है। पशुधन दूध, माँस, ऊन, खालें तथा चमड़ा और खेतों के लिए खाद भी प्रदान करते हैं। ऊंट, घोड़े और गधे कृषि उत्पादकों को बाजार तक पहुँचाने के लिए काम में लाये जाते हैं। इस भू-भाग में कृषि और पशुपालन एक दूसरे पर निर्भर है। पशुधन और पशुधन उत्पादों के निर्यात में से घी और ऊन का निर्यात मुख्य है, और इनके बाद खालें, चमड़ा और हड्डियों का स्थान आता है। भैंसों को मुर्राह भू-भागों से प्राप्त किया जाता है और गायें राज्य में से, हरियाणा राठी भू-भाग से प्राप्त की जाती हैं। इस भू-भाग में जैसलमेरी और बीकानेरी दोनों प्रकार के ऊंट सामान्य रूप से मिलते हैं। राज्य में हनुमानगढ़, सूरतगढ़ और गंगानगर तथा हरियाणा राज्य में अबोहर और गिद्दरवा ऊन के बड़े बाजार हैं।

थान पर खिलायें जाने की दशाओं के अन्तर्गत भैंसे, गाय की अपेक्षा अधिक है। घी साधारणतया भैंसों के दूध से प्राप्त किया जाता है। भेड़ों को अधिकांशतः फसले काटने के बाद ठूठियों पर पाला जाता है। बकरियों के लिए छोटी झाड़ियों के जंगल अच्छी चरने की भूमियां है। चरने के स्थान बडे विरल हैं और परिणाम स्वरूप इस क्षेत्र में गाय की अपेक्षा भैंस अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है इसलिए उन पर इसे चराया जाता है।

5. मध्यवर्ती (नागौरी) क्षेत्र—इसमें नागौर जिला जोधपुर जिले की शेरगढ़ तथा फलौदी तहसील का पश्चिमी हिस्सा छोड़कर सम्पूर्ण जिला, बीकानेर जिले की कोलायत तहसील का पूर्वी भाग तथा नोखा तहसील का दक्षिण पूर्वी भाग, चूरू जिले की सुजानगढ़ तहसील का दक्षिणी भाग तथा पाली जिले की सोजत और रायपुर तहसीलें आदि क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र के अन्तर्गत लूनी बेसिन का ऊपरी तथा अन्तःस्थलीय प्रवाह के मैदान का दक्षिणी भाग सम्मिलित है। इस क्षेत्र के पूर्वी भाग में अरावली श्रेणियां सीमा के रूप में खड़ी हुई है। इस बेसिन में पश्चिम की ओर दोमट मिट्टी के स्थान पर बलुई मिट्टी मिलने लगती है किन्तु अरावली पर्वतपदीय भाग व लूनी नदी के बीच का भाग उपजाऊ हैं। अन्तःस्थलीय प्रवाह के मैदान का भाग अर्द्ध शुष्क मैदान हैं। इस क्षेत्र में ग्रीष्मकाल में तापक्रम 32° सें. से 34° सें. तक तथा शीतकाल में 14° सें. से 16° सेंटीग्रेड तक रहते हैं। वर्षा 25 से 50 सेन्टीमीटर होती है। इस क्षेत्र के नागौर जिले में भूरी मिट्टी और जोधपुर क्षेत्र में मरुस्थलीय मिट्टी पाई जाती है। इस क्षेत्र में गहरी मिट्टी वाले भाग में घास काफी सघन है जबकि पथरीली मिट्टियों में घास नहीं उगती है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन है। यहां के दुधारु पशु मुख्यतः कृषि उपजों पर ही निर्भर हैं।

यह प्रदेश पशुधन के उत्पादन तथा उत्पादों के लिए महत्वपूर्ण है। इस प्रदेश की लगभग 90 प्रतिशत अर्थव्यवस्था सिर्फ पशुधन पर निर्भर है। इस प्रदेश में लोगों का मुख्य व्यवसाय पशुपालन है। चौपायों की नागौरी नस्ल जो देश में प्रसिद्ध है, इसी भू-भाग से आती है। इसके अलावा मारवाड़ी भेड़ें और बकरियां मालानी घोड़े और बीकानेरी ऊंट सम महत्वता के हैं और देश के सभी भागों में इनकी बडी मांग रहती है। घासों में अंजन और पाला बहुत ही पौष्टिक है। भेड़ व बकरियां धाक पेड की पत्तियों पर पाली जाती है। ऊंट खेजडा, नीम तथा धाक आदि के पेडों के पत्तों से अपनी उदरपूर्ति करता है।

इस भू-भाग के बैल बड़े ताकतवर होते हैं और उनकी कीमत बहुत अच्छी मिलती है। यहां तक कि सख्त कांपीय मिट्टी में भी जुताई के लिए ये अच्छे सिद्ध होते हैं। कुओं से पानी खींचने के लिए तथा बैलगाडियों में इनका उपयोग किया जाता है।

इस भू-भाग की मारवाडी भेड़े अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से ऊन की अच्छी किस्म और मांस की अच्छी उपज के लिए प्रसिद्ध है। इस नस्ल की भेड़ें साधारण घास पर फलती फूलती हैं और विना पानी के कुछ दिन रह सकती हैं इसलिए उनका राजस्थान में काफी बाहुल्य है परिणामस्वरूप ऊन का काफी उत्पादन होता है।

पशुधन छोटी नस्ल का है तथा अच्छी तरह से पाला जाता है। भेड़ों के झुंड 100 से 300 तक की संख्या के होते हैं और बकरियां 50 से 100 तक के झुंडों में पाई जाती हैं। ऊंट समूह 10 से 20 जानवरों तक मिलते हैं। पशुधन का व्यापार मुख्य मेलों के समय किया जाता है। ये मेले देश के विभिन्न सुदूर भागों से लोगों को आकर्षित करते हैं।

6. उत्तरी-पूर्वी और पूर्वी (हरियाणा) क्षेत्र—इसमें गंगानगर (करणपुर, पदमपुर, अनूपगढ़ और रायसिंहगढ़ तहसील छोडकर) चूरू, सीकर, झुन्झुनू, जयपुर तथा पूर्वी बीकानेर के भू-भाग आते हैं। इस क्षेत्र में धरातल की दृष्टि से विभिन्न भू-आकृतियां मिलती हैं। गंगानगर जिले में घग्घर का मैदान, बीकानेर और चूरू क्षेत्र में मरुस्थल, सीकर एवं झुन्झुनू जिलों में अन्त:स्थलीय प्रवाह का मैदान, जयपुर के पश्चिमी भाग में उत्तरी-पूर्वी अरावली प्रदेश तथा टोंक व जयपुर के पूर्वी भाग में मैदानी भाग मिलते हैं। इस क्षेत्र के उत्तरी भागों में बलुई मरुस्थलीय मिट्टी तथा पूर्वी भागों में जलोढ़ मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी लाल रंग की है तथा इसमें चूना फास्फोरिक अम्ल और ह्यूमस की मात्रा कम पाई जाती है। तापक्रम गर्मियों में 34° सेंटीग्रेड तथा सर्दियों में 12° से 16° सेंटीग्रेड तक रहता है। इस क्षेत्र की लम्बाई अधिक होने से वर्षा की मात्रा में भिन्नता पाई जाती है। पश्चिमी भाग में 25 सेन्टीमीटर, मध्यवर्ती भाग में 50 सेन्टमीटर तथा अरावली श्रेणी के पूर्वी भाग में 75 सेन्टीमीटर वर्षा होती है। अरावली श्रेणियों को छोड़कर मैदानी भागों में सर्वत्र वर्षा की मात्रा के अनुसार ही घास पैदा होती है। इस भू-भाग में प्रसिद्ध हरियाणा नस्ल की गायें राठी-थारपारकर और कंकरेज क्षेत्रों में जहां चरागाह क्षेत्र काफी विस्तृत हैं, में पाली जाती हैं। इस भू-भाग में उत्तम पौष्टिक घासें जैसे अंजन भूरुत, चिम्बर और खावल पाई जाती हैं। यहां बहुत बड़े चौपायों के समूह नहीं मिलते लेकिन औसतन व्यक्तिगत किसान लगभग 10 से 20 गायें रखते हैं और उनसे उत्पन्न बछड़ों को बैलों के रूप में तैयार कर प्रदेश के अन्तर्गत उनसे कृषि कार्य करवाया जाता है और अन्य क्षेत्रों में इनको निर्यात भी कर दिया जाता है। बैलों का निर्यात उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, विहार, पश्चिमी बंगाल और यहां तक की आसाम तक भी किया जाता है। भैंसों का पालन दुग्ध प्राप्ति के लिए किया जाता है जिससे घी निकाला जा सके।

भेड़ों में चोकला, नाली और मारवाडी नस्लें अति प्रसिद्ध हैं। चोकला की मांग उसकी ऊन के कारण अत्यधिक है। इस प्रकार की भेड़ के लिए सीकर जिला मुख्य नस्ल केन्द्र है।

बकरियां मुख्यतया दूध उत्पादन के लिए पाली जाती हैं। मुख्य नस्लें जमनापुरी, बडवारी, अलवरी और सिरोही हैं। ये भेड़ें हरी वनस्पति और झाड़ी जंगलों पर खूब फलती फूलती हैं। मालानी नस्ल के घोड़े इस भू-भाग में प्रसिद्ध हैं आवश्यकता से अधिक घोड़ों को उत्तरप्रदेश, देहली और पंजाब के लिए निर्यात कर दिया जाता है।

इस भू-भाग के लोगों की अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्वपूर्ण स्थान है। बड़े पैमाने पर पशुधन व्यापार पशु मेलों में किया जाता है जो यहां बडी संख्या में लगते हैं।

7. मेवात प्रदेश—देहली और उत्तरप्रदेश से लगा हुआ यह प्रदेश राजस्थान के पूर्व में पूर्वी अलवर, भरतपुर तथा धौलपुर जिलों में विस्तृत है। मेवात नस्ल प्रसिद्ध है और प्रजनकों द्वारा प्राकृतिक और मिट्टी की दशाओं की अनुकूलताओं के हिसाब से विकसित की गई हैं। मेवाती गाय एक दिन में औसतन 5 से 7 किलोलीटर दूध देती है। यह चौपाये की शक्तिशाली 'हरियाणा नस्ल' को उत्पन्न करती है। मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश से बैलों की मांग अधिक रहती है। मुर्राह भैंसे और अलवरी एवं बारवरी बकरियां इस प्रदेश की मुख्य पशु-

धन सम्पत्ति हैं। भारी वर्षा के कारण यहाँ वनस्पति बहुतायत में होती हैं इसलिये जानवरों की दोनों प्रजातियाँ खूब फलती फूलती हैं। लोग गहन खेती में संलग्न हैं। बड़े पैमाने पर यहां भेड़पालन की गुंजाइश नहीं है।

8. रथ प्रदेश—यह प्रदेश उत्तरी-पूर्वी राजस्थान में पंजाब से लगा है तथा अलवर, भरतपुर, धौलपुर जिले के पश्चिमी भागों में विस्तृत है। इस भाग में भूमि समतल है और वर्षा अच्छी हो जाती है।

यहां की भूमि उर्वरा है सिंचाई के साधन भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। यह प्रदेश चौपायों की रथ नस्ल में विशेषीकरण रखता है, और छोटे-छोटे खेतों की जुताई के लिए के यह नस्ल अधिक उपयुक्त हैं। गायें छोटे कद व काठी की हैं और प्रतिदिन 5 से 6 किलो-लीटर दूध देती हैं। लोग गहन कृषि में संलग्न हैं। खेत छोटे हैं और इसलिए बड़े पैमाने पर पशुपालन की गुंजाइश नहीं रहती जैसा कि राज्य के अन्य भू-भागों में देखने को मिलता है।

मुर्राह भैंसे मुख्यतया दूध के लिए पाली जाती हैं। अलवरी किस्म की बकरियों की मांग न केवल राज्य में ही बल्कि देहली, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में भी है।

9. दक्षिणी, दक्षिणी-पूर्वी (मालवी) क्षेत्र—यह क्षेत्र मध्यप्रदेश राज्य से सटा हुआ है। महत्वतता की दृष्टि से हरियाणा क्षेत्र के बाद इसका स्थान है। इसमें बाँसवाड़ा डूंगरपुर, झालावाड़ और कोटा जिले आते हैं तथा डूंगरपुर जिले में अरावली श्रेणी बाँसवाड़ा में छप्पन का मैदान, कोटा और झालावाड़ में पठारी भू-भाग पाया जाता है। इस क्षेत्र में काली मिट्टी पाई जाती है जिसमें जैवीय, कार्बन और नाइट्रोजन आदि तत्व मिलते हैं। इस भाग में मई का तापक्रम लगभग 32° सेंटीग्रेड और जनवरी में 18° सेन्टीग्रेड रहता है। वर्षा लगभग 75 सेन्टीमीटर तक होती है। वर्षा की अधिकता एवं पठारी भू-भाग होने के कारण इस भाग में घास अधिक होती है। यह क्षेत्र मालवी नस्ल के चौपायों की लोकप्रियता के कारण प्रमुख है। मालवी नस्ल के चौपाये भारवाही शक्तिशाली बैलों के रूप में पथरीली मिट्टी के लिए बहुत अच्छे हैं। यह जानवर शक्तिशाली होने के कारण बड़े बोझ को खींचने के लिए बहुत ही उपयुक्त हैं। यह प्रदेश अच्छी वर्षा रखता है और किसान सघन खेती में संलग्न हैं। इस भू-भाग या क्षेत्र में भैंसे महत्वपूर्ण हैं। यह मुर्राह भैंसों से कुछ ही घटिया किस्म की हैं लेकिन दूध में चर्बी का प्रतिशत अधिक होता है। इनके लिए धाक के पत्ते एक आदर्श भोजन है और यह दूध में चर्बी की मात्रा को बढ़ाने में सहायक होता है। इस प्रदेश में लगभग 2.48 मिलियन बकरियां, 8,80,000 भेड़ें और करीब-करीब 29,700 ऊंट हैं। यह सभी जानवर झुण्डों व समूहों में दिखलाई देते हैं। इस प्रदेश की आधी अर्थव्यवस्था पशुधन के उत्पादों पर आधारित हैं। भेड़ें यहां सोनाली नस्ल की मिलती हैं जो मांस व दूध में चर्बी के उच्च प्रतिशत के कारण काफी प्रसिद्ध हैं। बकरियाँ सिरोही किस्म से मिलती जुलती हैं तथा दूध की मात्रा भी अच्छी है। ऊंट अधिकांशत भारवाही जाति के हैं। यह प्रदेश मुख्य रूप से खालें, चमड़ा तथा हड्डियों का निर्यात करता है। घरेलू बाजार होने के कारण लगभग समस्त दूध एवं घी स्थानीय भाग की पूर्ति में ही खप जाता है।

10. दक्षिणी-पूर्वी मध्यवर्ती (गिर) क्षेत्र—इसमें उदयपुर, चित्तौड़गढ़, अजमेर, भीलवाड़ा तथा बूंदी जिले आते हैं। इस क्षेत्र में अरावली श्रेणियाँ विस्तृत हैं। भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़ और अजमेर के पूर्वी भाग में मैदानी भाग हैं। इस भाग में लाल एवं काली मिट्टी पाई जाती है तथा ये मिट्टियाँ ह्यूमस और कार्बोनेट में घटिया है। इन मिट्टियों में आर्द्रता रोकने की क्षमता अच्छी है। इस भाग में ग्रीष्मकालीन तापक्रम लगभग 30° सेन्टीग्रेड और शीतकाल में 16° से 18° सेन्टीग्रेड तक रहता है। वर्षा लगभग 75 सेन्टीमीटर होती है। इस भाग में उष्ण कटिबन्धीय कंटीले वन पाये जाते हैं। गिर नस्ल के चौपाये दुग्ध उत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं। क्षेत्र में चौपायों की संख्या धीरे धीरे बढ़ रही है। उपयुक्त खिलाने पिलाने की सुविधाओं के साथ यह उत्तम डेयरी जानवर बन जाता है। बैलों का भारवाही जानवरों के रूप में अच्छा उपयोग किया जाता है। यह खेत जोतने के लिए; बैलगाड़ियों के लिए और कुओं से पानी निकालने के लिए भी अच्छे हैं। थान पर बांध कर

पालने की दशाओं में गाय औसतन 8 से 10 किलोमीटर दूध प्रतिदिन देती है। इस प्रदेश में भैंसों की संख्या बढ़ रही है। भैंसों की स्थानीय नस्ल दरांतीनुमा सींग रखती है और पंजाब की मुर्राह नस्ल को प्रतिस्थापित कर रही है। इस क्षेत्र में मारवाड़ी नस्ल की भेड़ें लोकप्रिय है। बकरियों में मिश्रित नस्ल पाई जाती है। ये अच्छा दूध प्रदान करती है और 100 से 300 तक के झुण्डों में साधारणतया देखी जा सकती हैं। ऊंटों का उपयोग कृषि कार्यों और माल ढोने के लिए अच्छे पैमाने पर किया जाता है। इन सभी कार्यों के लिए ऊंटों का आयात पश्चिमी प्रदेश किया जाता है क्योंकि यहां के ऊंट नस्ल की दृष्टि से काफी प्रसिद्ध हैं। गधे एवं घोडे संख्या में काफी कम हैं और कोई भी स्थानीय नस्ल नहीं पायी जाती। यह जानवर अब पाले जा रहे हैं तथा किसानों के द्वारा इनकी नस्ल तैयार की जा रही है हालांकि अभी वे प्रारम्भिक अवस्था में है। गिर नस्ल भी घुमक्कड़-प्रजनकों के प्रयास का फल है। अजमेर जिले की नसीराबाद तहसील में कोटा शहर के समीपीय भागों में घुमक्कड़ प्रजनकों के पास इस नस्ल के सर्वश्रेष्ठ जानवर मिलते है। इन स्थानों पर घी एवं दूध के लिए अच्छे बाजार मिल जाते हैं। दूध का उत्पादन काफी बढ़ गया है और इस प्रदेश में क्रीम बनाने व सूखा दूध पाऊडर बनाने की फैक्ट्रियों को प्रारम्भ करने के लिए अच्छी सम्भावनाएं हैं।

मत्स्य व्यवसाय

देश में मत्स्य व्यवसाय को दो भागों में बांटा सकता है—

(अ) सागरीय मत्स्य व्यवसाय।

(ब) अन्तर्देशीय मत्स्य व्यवसाय।

राजस्थान में केवल अन्तर्देशीय मत्स्य व्यवसाय ही पाया जाता है। नदियों, झीलों, तालाबों, जलाशयों, आदि से मछली पकड़ने की क्रिया अन्तर्देशीय मत्स्य व्यवसाय के अन्तर्गत आती है। अन्तर्देशीय क्षेत्र में अभी तक इस व्यवसाय में अधिक उन्नति नहीं हो पाई है क्योंकि संगठित एंव वैज्ञानिक ढ्ग से इस कार्य को करने के लिये सरकार तथा जनता का ध्यान कुछ ही दिन पूर्व आकर्षित हुआ है।

राजस्थान में सन् 1956 में मछलियों का उत्पादन केवल 2,200 टन था जो बढ़कर सन 1986 में 14640 टन हो गया है। उत्पादन को वैज्ञानिक तकनीकों के अपनाये जाने पर और भी बढाया जा सकता हैं।

राज्य में इस उद्योग के पिछड़े रहने के दो मुख्य कारण है। एक तो चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के पूर्व के समय में मछली पालन क्षेत्रों को विकसित करने के प्रयास नहीं किये गये। दूसरे, अधिकांश जनता के निरामिष होने के कारण मत्स्य व्यवसाय को आवश्यक प्रोत्साहन भी नहीं मिला। राजस्थान में व्यवहारतः समग्र उत्पादन जलाशयों, तालाबों, पोखरों, नदियों, तथा मौसमीय जल धाराओं से किया जाता हैं। भरतपुर व टोंक जिलों के छोटे छोटे तालाबों से जो मछलियां पकड़ी जाती हैं, वे पर्याप्त नहीं होती है। तालाब व पोखरों से मछली पकड़ने की क्रिया जो समग्र देश में काफी लोकप्रिय हैं, राज्य में अधिक प्रचलित नहीं हैं लेकिन पंचम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस पर ध्यान दिया गया हैं।

मत्स्य संसाधन के संरक्षण व मछली व्यवसाय को नियमित बनाये रखने के लिये राजस्थान मत्स्य अधिनियम 1953 लागू किया गया। इसके द्वारा मछली पकड़ने के मौसम को प्रथम जुलाई से 15 सितम्बर को अवधि तक सीमित कर दिया गया।

राज्य में सामान्यतः जलाशय प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से नदियों से जुड़े हुए हैं। इसमें मछली भण्डारण विभिन्न किस्मों तथा विभिन्न मात्राओं में पाया जाता है भरतपुर व टोंक के तालाब मुख्यतया मौसमी हैं और उनका मछली पालन केन्द्रों के रूप में उपयोग नहीं किया जाता हैं। राजस्थान में चम्बल, बनास, पार्वती, कालीसिन्ध और माही आदि नदियां मछली व्यवसाय के लिये महत्व पूर्ण हैं जहाँ नदीय मत्स्य क्षेत्र बड़े पैमाने पर विकसित हो सकते है लेकिन इनमें कुछ ही स्थान गहरे गर्तों के रूप में पाये जाते हैं जहाँ मछली पकड़ने का कार्य भलीभांति हो सकता है तथा शेष अधिकांश भाग इस व्यवसाय के लिये अनुपयुक्त है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में प्रशिक्षित व कुशल कर्मचारियों व मछुआरों की कमी के कारण इस योजना में इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 9 लाख रुपयों की राशि का प्रावधान

था जिसमें से केवल 3.6 लाख रूपये व्यय किये गये। इस योजना के अन्तर्गत 20 संवर्द्धन केन्द्र तथा 18 मछली फार्म स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया जिसमें से क्रमशः 5 संवर्द्धन केन्द्र व एक मछली फार्म की स्थापना ही की जा सकी। इस योजना काल तक इस व्यवसाय की धीमी प्रगति के लिये तकनीकी कर्मचारियों तथा परिवहन सुविधाओं की कमी को मुख्य रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

तृतीय एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में मत्स्य क्षेत्र में वृद्धि करने, कर्मचारियों व मछुआरों की तकनीकी प्रशिक्षण दिये जाने तथा मछली गर्भाधान केन्द्र व मछली बीज फार्म स्थापना करने की दिशा में सतत प्रयास किये गये। तृतीय एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत क्रमशः 30 लाख एवं 45 लाखरुपयों की राशि का प्रावधान गया जिसमें से क्रमशः 23 लाख एवं 32 लाख रूपये ही व्यय किये जा सके। इस अवधि में अलवर, जयपुर, अजमेर, पाली, उदयपुर, भीलवाड़ा, कोटा, टौंक, सवाई माधोपुर और धौलपुर आदि केन्द्रों पर मछली बीज फार्म स्थपित किये गये। परिवहन हेतु लगभग 50 वाहन विभाग द्वारा क्रय किये गये। चतुर्थ योजना के अन्त तक राज्य मछली का उत्पादन 8,500 टन हो गया था।

पांचवी योजना के अन्तर्गत जलाशयों में मछली उत्पादन के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया फलस्वरूप गर्भाधान के नये केन्द्र व मछली बीज फार्म स्थापित किये गये जिससे पालने योग्य विभिन्न किस्मों की मछलियों के बीजों का उत्पादन बढाया जा सके। अजमेर, टौंक, एवं भीलवाड़ा में तीन मछलीकृषक एजेन्सियों की स्थापना की गई हैं जिनका मुख्य कार्य मछली पकड़ने के कार्य को अधिक गहन बनाने तथा लघु जल क्षेत्रों को विकसित करना है। मछुआरा सहकारी संघ की स्थापना की गई। राज्य के आदिवासी क्षेत्रों में मछली क्षेत्रों के विकास के लिये विशेष ध्यान दिया गया। इन प्रयासों के परिणाम स्वरूप सन् 1979 में जलांडकों का उत्पादन 110 मिलियन तथा मछली के बच्चों का उत्पादन 30 मिलियन तक पहुंच गया जबकि सन् 1974 में यही उत्पादन क्रमशः 39 मिलियन तथा 10 मिलियन था। इस योजना के अन्त तक मछली का उत्पादन 11.5 हजार टन हो गया।

छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक मछलियों का उत्पादन 16,000 टन तक पहुँच गया तथा साथ ही इस व्यवसाय के विकास के लिए जो सामरिक नीति अपनाई गई है उसके अन्तर्गत मछली प्रजनन केन्द्र, मछली बीज फार्म, नये जल स्रोतों का अनुमान लगाना, नहरी मछली पकड़ने के क्षेत्रों का विकास करना, मछुआरा सहकारी संस्थाओं के संगठन आदि की स्थापना करने आदि कार्यों पर 250 लाख रुपये व्यय किये गये।

वर्ष 1985 से 1988 जून तक राज्य में वर्षा की कमी के कारण मत्स्य उत्पादन में गिरावट आई जो वर्ष 1988 में अनुमानित 13000 टन रही। वर्ष 1988-89 में मत्स्य विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत भीलवाड़ा, उदयपुर, टौंक एवं अलवर में चायनीज हेचरीज की स्थापना व मत्स्य फार्मों का नवीनीकरण करवाया जाना भी प्रस्तावित है।

यह भी एक प्रस्ताव है कि मछली विकास निगम की स्थापना की जाये जिससे एकीकृत व संगठित तरीके से जलाशय मछली केन्द्रों का विकास हो सके। उन्नत प्रबन्धकीय तकनीकों के द्वारा मछलियों का उत्पादन, मछली बीज फार्मों को सहायता, उत्पादन केन्द्रों पर शीत भण्डारण तथा शीत शृंखला की सुविधाएं तथा मछलियों की संस्थाओं को बाजारीय ढांचे पर आधारित कर कार्यात्मक रूप दिया जाना आदि कार्यक्रमों को यह निगम देखेगा। प्रस्तावित निगम के अन्तर्गत जल क्षेत्र का 40,000 हैक्टेयर क्षेत्र प्रबन्ध के अन्तर्गत लाया जायेगा फिर इसे बढ़ाकर सातवीं योजना के अन्त तक 70 हजार हैक्टेयर कर दिया जायेगा। मछली बीज उत्पादन, मछली के क्रय विक्रय आदि कार्य भी निगम की देख रेख में होंगे। 13 नये मछली बीज फार्म और 25 शुष्क बांध प्रजनन केन्द्रों का निर्माण किया जावेगा। उत्पादन केन्द्रों के समीप मौजूदा तालावों में सुधार करते हुए 1,250 हैक्टेयर के आकार का एक मछली पालन क्षेत्र की व्यवस्था की जायेगी। भण्डारण की दृष्टि से 70 मिलियन मछलियों को पाला जायेगा।

अन्त में, राज्य विभिन्न आन्तरिक मछलियों के संसाधनों में संभवतः धनी है क्योंकि इसके लगभग तीन लाख

हैक्टेयर भूमि पर जल तालाबों, पोखरों, जलाशयों तथा अन्य जल राशियों के रूप में मिलता है। अतः भविष्य में इन संसाधनों का समुचित उपयोग कर मत्स्य व्यवसाय के विकास को त्वरित गति प्रदान की जा सकती है।

राजस्थान के वन्य जीव

राज्य में जलवायु की विविधता, अरावली पर्वत श्रेणियां और दक्षिण-पूर्व के मनमोहक हरे-भरे जंगल आदि के कारण भिन्न-भिन्न जातियों के वन्य जीव काफी संख्या में मिलते हैं। इसलिये राजस्थान वन्य जीवों के लिए उत्तम वातावरण उपलब्ध करवाने वाला है। जल, थल व वनों की यह अनूठी सम्पदा, प्रकृति का संतुलन बनाये रखती है। राजस्थान अपने प्रथम आवरण में ही मरुभूमि का चित्र प्रस्तुत करता है। वर्षा के अभाव के कारण यहां घने जंगलों की कमी है फिर भी वन्य प्राणी सम्पदा के मामले में आसाम को छोड़कर देश के किसी राज्य से राजस्थान पीछे नहीं है।

स्वतंत्रता से पूर्व राजस्थान की रियायतों को शिकारियों के स्वर्ग के नाम से जाना जाता था। देश-विदेश के लाखों पर्यटक केवल वन्य प्राणियों की वजह से यहां यात्रा पर आया करते थे। इधर विगत 40 वर्षों के दौरान हमारी वन्य सम्पदा के अनियन्त्रित एवं निष्प्रयोजित शिकार के फलस्वरूप काफी हानि पहुँची। कई प्रमुख जाति के पशु-पक्षी जैसे पिंक हैडेड डक, लिंक्स, चीता, गोडावन आदि या तो पूर्णतया लुप्त हो गये या तो अब उनके दर्शन तक भी दुर्लभ हैं। प्रकृति में सतुलन बनाए रखने की दृष्टि से वन्य प्राणियों की सुचारू रूप से जीवन-यापन की व्यवस्था होना अनिवार्य है।

हमारे प्रदेश में पाए जाने वाले **मांसाहारी पशुओं** में प्रमुख हैं—बाघ, तेन्दुआ, शियागोश, जरख, जंगली बिल्ली, रेगिस्तानी बिल्ली, बिज्जू, भेड़िया, सियार, लोमड़ी, जंगली कुत्ता, बूच, जल मानुष, नेवला, सालर आदि।

बाघ—राजस्थान के अनेक पर्वतीय एवं वन प्रदेशों में बाघ मिलते हैं। ये मुख्यतः भरतपुर, धौलपुर, अलवर, सवाईमाधोपुर, करौली, कोटा, प्रतापगढ़, झालावाड़, सिरोही, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, बूंदी तथा डूंगरपुर के जंगलों में पाये जाते हैं।

चीते—चीते मुख्यतः सिरोही, उदयपुर, भीलवाड़ा, डूंगरपुर, करौली, झालावाड़, कोटा व अजमेर में पाये जाते हैं।

तेन्दुआ— ये मुख्यतः भरतपुर, अलवर, जालौर, उदयपुर तथा चित्तौड़गढ़ जिलों में मिलते हैं।

शाकाहारी पशुओं में काला हिरण, चिंकारा, सांभर नीलगाय, चीतल, चौसिंघा, भालू, जंगली सूअर, खरगोश बन्दर तथा लगूंर आदि उपलब्ध हैं।

राजस्थान में **काला हिरण** भरतपुर, सिरोही, जयपुर बाड़मेर, अजमेर, कोटा में, **चिंकारा** भरतपुर, सवाई-माधोपुर, जालौर, सिरोही, जयपुर व जोधपुर में, **सांभर** भरतपुर, अलवर, सवाईमाधोपुर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, कोटा, झालावाड़, जयपुर, बाड़मेर, अजमेर, डूंगरपुर व बाँसवाड़ा में, **नीलगाय** मुख्यतः किशनगढ़, करौली, भरतपुर, झालावाड़, जोधपुर व कोटा में, **चीतल** अधिकतर भरतपुर, सवाईमाधोपुर, सिरोही, बाड़मेर, भीलवाड़ा तथा उदयपुर में, **चौसिंघा हिरण** विशेषकर भरतपुर व सिरोही में तथा **खरगोश** उल्लेखनीय रूप से भरतपुर, सवाईमाधोपुर, कोटा, करौली, अजमेर, सिरोही व भीलवाड़ा में पाये जाते हैं।

कुतरकर खाने वालों में चूहा, जराबल, सेहली, गिलहरी आदि जीव प्रमुख हैं।

रेंगने वाले जीवों में प्रमुख हैं मगरमच्छ, घड़ियाल, पाटागोह, अजगर, सांडा, नाग तथा अन्य जातियों के सांप। राजस्थान के पश्चिमी शुष्क प्रदेश में सांप विभिन्न जातियों के पाये जाते हैं लेकिन जहरीले सांप जैसे कोबरा, किरेट व वाईपर कभी-कभी देखे जाते हैं। कोबरा मुख्यतः बीकानेर, जालौर, जैसलमेर, पश्चिमी जोधपुर तथा बाड़मेर में मिलते हैं। गंगानगर में वाईपर की स्थानीय जाति वण्डी बहुत मिलती है।

पक्षियों में देश का सबसे अधिक दुर्लभ पक्षी गोडावन, जो राजस्थान के बीकानेर, बाड़मेर और जैसलमेर जिलों में अधिक सख्या में मिलता है। जोधपुर, अजमेर और भीलवाड़ा आदि जिलों में भी इक्का-दुक्का गोडावन देखने को मिल जाते हैं। गोड़ावन पक्षी बहुत ही शर्मीला होता है। एकान्त में बसता है और आजादी से घूमना पसन्द करता है। शायद यही कारण है कि जन्तुआलय में रह

रहे गोड़ावन वंश प्रसार में हिचकते हैं। बीकानेर के जन्तु-प्रालय में सात गोड़ावन थे लेकिन आज केवल दो ही हैं। इसी से स्पष्ट है कि यहां का वातावरण इन्हें रास नहीं आता है। इनकी संख्या राजस्थान में लगभग 500 है।

इसके अतिरिक्त मोर, तीतर, भट तीतर, काला तीतर, तिजौर, खरमौर लवा, बटेर, जंगली मुर्ग, सारस पीलक, बुलबुल, नीलकंठ, दईयर, खातीचिड़ा, बाज, महुक, बया, किलकिला, मैना, तोता, कौआ, चील, गिद्ध, सिखरा, उल्लू, घनेश, कबूतर, हरियल, कमेड़ी उपलब्ध हैं। **तीतर** मुख्यतः भरतपुर, नागौर, सिरोही, टौंक, अजमेर, गंगानगर, भीलवाड़ा, डूंगरपुर व बांसवाड़ा में, **बटेर** साधारणतया जालौर, सिरोही, जोधपुर व डूंगरपुर में तथा **बुलबुल** विशेषकर जालौर, जोधपुर, बाड़मेर, गंगानगर व जैसलमेर में पाई जाती है।

पानी के पक्षियों के लिए केवलादेव **घना राष्ट्रीय उद्यान** एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्ध पार्क है जहां पर विदेशी एवं स्वदेशी दर्शकों का सदैव जमघट लगा रहता है। इस उद्यान की विशेषता सर्दी में आने वाले प्रवासी पक्षी हैं जो सुदूर देशों से यहां आकार पूरी सर्दी यहां गुजारते हैं। विश्व का दुर्लभ पक्षी साईवेरिन क्रेन केवल यहीं देखने को मिलता है। इसलिए घना को **पक्षियों का स्वर्ग** भी कहा जाता है। अन्य पक्षियों में काज, सुरखाव, शवलर, पिनटेल, पोचार्ड मलार्ड, टील, करकरा, स्टार्कस, हवासिल प्रमुख हैं। कुछ पक्षी ऐसे हैं जो वर्ष भर यहां रहते हैं और जिनका प्रजनन भी यहां सफलतापूर्वक हो रहा है जिनमें बगुले, नीलमुर्गी, चमचा, मंड, चनौखा, जलमुर्गी, सारस मुख्य हैं।

वन्य जीव संरक्षण भारतीय समाज के लिए कोई नई बात नहीं है। हमारे प्राचीन हिन्दू धर्म जिसका आधारभूत सिद्धान्त 'अहिंसा परमोधर्म' है की महान परम्परा वन, पशु पक्षियों की रक्षा से सम्बन्धित है।

गत कुछ वर्षों से भारत तथा राज्य सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और इस दिशा में समुचित कदम उठाये गये हैं। राज्य की योजना में भी वन्य प्राणियों के संरक्षण को आवश्यक अंग मान लिया गया है। भारतीय वन्य जीव कानून 1972 देश के सारे राज्यों में लागू है। इस कानून के बनने से अब कोई भी व्यक्ति बिना अनुमति के वन्य जीव का शिकार नहीं कर सकता। वन्य प्राणियों के लिए नये अभ्यारण व राष्ट्रीय पार्क बनाये गये हैं जहां पर वे उन्मुक्त विचरण कर सकते हैं। सींग, खाल तथा परों के निर्यात पर नियन्त्रण कर दिया गया। इस कानून का परिणाम है कि अब वन्य जीवों के अन्य देशों में निर्यात किये जाने पर काफी सख्त नियन्त्रण है।

दुर्लभ वन्य जीवों की रक्षा करने तथा उनकी संख्या बढ़ाने के लिए सतत प्रयास जारी है जिनमें बाघ, घड़ियाल, मगर, गैंडा, गोड़ावन आदि उल्लेखनीय है। विश्व वन्य जीव कोष एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति सरक्षण संगठन भी दुर्लभ वन्य जीवों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। भारत में बाघ के संरक्षण के लिए टाइगर प्रोजेक्ट की योजना इनके सहयोग से ही शुरू की गई है। राज्य में अवैतनिक गेम वार्डन भी नियुक्त किए गए हैं जो इनकी सुरक्षा की देखभाल रखेंगे।

राजस्थान में वन्य जीवों के स्वच्छन्द विचरण के लिए तथा अपनी संख्या में बढ़ोतरी के लिए 3 राष्ट्रीय उद्यान 20 वन्य जीव अभयारण्य एवं 22 शिकार निषेध क्षेत्र घोषित किए जा चुके हैं। पाँच चिड़ियाघर जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर एवं कोटा में स्थित हैं।

1. सरिस्का वन्य जीव अभ्यारण, अलवर
2. घना पक्षी अभ्यारण, भरतपुर
3. ताल छापर, चूरू
4. दड़ा अभ्यारण, कोटा
5. रणथम्भौर वन्य जीव अभ्यारण, रणथम्भौर
6. नाहरगढ़, जयपुर
7. राष्ट्रीय पार्क, जैसलमेर
8. जयसमन्द वन्य जीव अभ्यारण, उदयपुर
9. फुलवारी की नाल, उदयपुर
10. वन्दवारेठा, भरतपुर
11. रामसागर वन विहार, भरतपुर
12. रावली टाडगढ़, अजमेर
13. रणकपुर-कुम्भलगढ़, अजमेर
14. वन विहार, धौलपुर
15. आबू संरक्षण स्थल, सिरोही
16. पीपलखूंट, बांसवाड़ा

राष्ट्रीय उद्यान

रणथम्भौर वन्य जीव अभ्यारण्य—सवाईमाधोपुर जिले में रणथम्भौर वन्य जीव अभ्यारण्य जिले के वन्य-पशुओं की सुरक्षा के लिये राजस्थान सरकार के वन विभाग ने प्रख्यात रणथम्भौर के चारों ओर सवाई माधोपुर रेलवे स्टेशन के उत्तर-पूर्व में 10 किलोमीटर की दूरी पर घने जंगलों के बीच लगभग 39,200 हैक्टेयर क्षेत्र में सन् 1957-58 मे स्थापित किया था। सन् 1974 में इसे 'विश्व वन्य जीवन कोष' द्वारा चलाये गये प्रोजेक्ट टाइगर' मे सम्मिलित किया गया। यह अभयारण्य बाद मे नेशनल पार्क घोषित कर दिया एवं इसे क्षेत्रीय निदेशक प्रोजेक्ट टाईगर रणथम्भौर, सवाई माधोपुर के प्रशासनिक नियन्त्रण के आधीन कर दिया गया है। प्रोजेक्ट टाईगर योजना के अन्तर्गत विश्व वन्य प्राणी कोष से इसे पर्याप्त वित्तीय सहायता दी जाती है। बाघ, चीता, शेर, रीछ, नीलगाय, चीतल आदि प्राणी है।

राष्ट्रीय मरूउद्यान, जेसलमेर — राजस्थान की मरुस्थली में भी एक नेशनल पार्क जैसलमेर में स्थापित किया गया है जिसमें रेगिस्तानी वन्य जीवों की सुरक्षा तथा उनके लिये उपयुक्त वातावरण प्रदान करना है। इसमें चिकारा, चौसिघा, काले हिरण एवं गोड़ावन आदि पर अधिक ध्यान दिया गया है। स्मरण रहे, गोड़ावन को राज्य पक्षी की संज्ञा दी गई है। रेतीले भू-भाग तथा नखलिस्तान के चारों तरफ काले हिरण बड़ी संख्या में मिलते हैं जो शीघ्रता से विलुप्त होते जा रहे हैं। राज्य के उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्रों में रहने वाली विश्नोई जाति जो अपनी धार्मिक भावनाओं के कारण काले हिरण के शिकार को पसन्द नहीं करती हैं, के विचारों को ध्यान में रखकर राज्य सरकार ने राजस्थान वन्य जीव एवं पक्षी सुरक्षा अधिनियम, 1953' के अन्तर्गत इनके शिकार पर रोक लगा दी। यह राष्ट्रीय पार्क पूर्वी तथा दक्षिणी राजस्थान में स्थित अभयारण्यों, जो चीते तथा शेरों की शरणस्थली है, की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न हैं क्योंकि इसमें काले हिरणों को सुरक्षा प्रदान की गयी है।

केवला देव घना पक्षी अभ्यारण्य—यह अभ्यारण राष्ट्रीय पक्षी उद्यान के नाम से भी जाना जाता है,आगरा बीकानेर राष्ट्रीय मार्ग पर स्थित है। यह भरतपुर शहर से लगभग दो किलोमीटर उत्तर-पूर्व में है। पक्षी विहार 29 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत है। इस पक्षी विहार में 300 से भी अधिक पक्षियों की जातियां यहाँ मिलती है जिनमें 100 के आस-पास विदेशी है जो कि सुदूर साईबेरिया एवं यूरोपीय भागों से शीत कालीन प्रवास व अपनी वंश-वृद्धि के लिये यहाँ आते है तथा ग्रीष्म ऋतु में यहाँ से पलायन कर जाते है। इस में स्थानीय पक्षियों के अलावा साईबेरिया, ताशकन्द, मंगोलिया, नैपाल, चीन व जापान इत्यादि देशों के पक्षी भी दिखाई देते हैं। विदेशी पक्षी नवम्बर से मार्च तक यहाँ रहते हैं। विदेशी पक्षी प्रजातियों में मुख्य आकर्षण साईबेरियन क्रेन (साईबेरिया का सारण) है। इनके अलावा गीज, व्हाइट स्टार्क बीजंस, मैलाड़,मैडवल, शावलर्स, टील्स, पीपीटस, लैपवीन इत्यादि आते है। स्थानीय प्रजातियों मे मुख्यतया काल्प, वुज्ना, अंजल, अंधा बगुला, घोंघिला, पनडुब्बी, पीहो, भारतीय सारस, कठफोडा कबूतर प्रमुख है।

उपरोक्त उल्लेखनीय अभ्यारण्यों के अतिरिक्त कुछ विशेष महत्व के अभ्यरण्यों का विवरण निम्न प्रकार है।

1. **आबू संरक्षण स्थल सिरोही**--यह अभ्यारण्य माऊण्ट आबू में है जिसे 1960-61 में बनाया गया था। सिरोही जिले में चीते, जंगली सूअर,चिकारा,चौसिघा,हिरण,बाघ, काला भालू, नीलगाय तथा कई अन्य वन्य जीव मिलते हैं जिनकी सुरक्षा के उद्देश्य से राज्य सरकार ने इस अभ्यारण्य की स्थापना कर उनके शिकार पर रोक लगा दी।

2. **सारिस्का वन्यजीव अभ्यारण्य**—यह अलवर से 35 किमी दूर जयपुर-दिल्ली मार्ग पर स्थित है। इस अभ्यारण्य में पशुपक्षी बहुतायत से पाये जाते है। शेर, बघेरा, सांभर,चीतल,नीलगाय,जंगली सूअर, काला खरगोश,मोर लगूर आदि इन में प्रमुख हैं। प्रोजेक्ट टाइगर योजना में सम्मिलित यह अभ्यारण्य पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है।

3. **जय समन्द अभ्यारण्य**—यह अभ्यारण्य उदयपुर से 50 किमी की दूरी पर मनोरम पहाडियों से घिरा क्षेत्र हैं। सांभर, चितकबरे हिरण, जंगली सूअर, तेंदुआ, चीते तथा काला भालू यहाँ प्रमुख रुप से मिलते है।

4. **तालछापर अभ्यारण्य**—चूरू जिले में सुजानगढ़ केसमीप यह स्थित हैं,जहाँ पर हजारों की संख्या में हिरणों के झुण्ड विचरण करते हैं। इस अभ्यारण्य की प्रमुख

विशेषता यह है कि इसमें कृष्ण मृग पाये जाते हैं।

5. दड़ा(दर्राह)वन्यअभ्यारण्य—यह कोटा से लगभग 50 किमी.दक्षिण की ओर स्थित है जो मुकन्दरा पहाड़ियों में विस्तृत हैं। यह अभ्यारण्य वन्य जीवों की दृष्टि से धनी हैं। इसमें चीतल,सांभर, नीलगाय,चिकारा,चीते तथा शेर आदि मिलते हैं। वन्य जीवों की देखभाल के लिये दर्राह लक्ष्मीपुरा व दामोदरपुर में प्रवन्ध किये गये हैं।

चित्तौड़गढ़ जिले में कोई भी पक्षी अभयारण्य नहीं है लेकिन वर्ष 1971 में इस जिले के दक्षिणी भाग में वन्य जीवों के विकास के लिये एक अन्य जीव वन्य शरण की स्थापना की गई थी क्योंकि यहाँ भी बाघ, भालू, जराव, भेड़िया, सांभर, हिरण, सूअर तथा नीलगाय अक्सर पाये जाने वाले वन्य जीव हैं।

□

11 खनिज संसाधन

राजस्थान को खनिजों का अजायबघर कहा जाता है। राजस्थान में खनिज काफी मात्रा में मिलते हैं जिनसे राज्य में अधिक आय व रोजगार के स्रोत बढ़ाये जा सकते हैं। राज्य में अगर धात्विक खनिजों से औद्योगिक सम्भावनाएं बढ़ती है तो उनके फलस्वरूप आय एवं रोजगार में भी वृद्धि होगी।

राजस्थान की खनिज सम्पदा के विषय में डॉ. हेरोन इस विचार के थे कि राज्य ज्ञात खनिज भण्डारों तथा उनकी सम्भाव्यताओं की दृष्टि से धनी नहीं है। लेकिन बाद के सर्वेक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि राजस्थान निश्चित रूप से देश के मुख्य खनिज उत्पादकों में से एक है और खनिज संसाधनों के अधिकतम औद्योगिक सम्भाव्यताओं से परिपूर्ण तथा धनी है। यहां दोनों प्रकार के खनिज पाये जाते हैं—आधारभूत और अधात्विक। वर्तमान में 6 धात्विक एव 28 अधात्विक औद्योगिक खनिजों पर कार्य हो रहा है।

राजस्थान एकीकरण के पूर्व खनन कार्य से सम्बन्धित कोई भी ऐसी नीति नहीं थी जिसका पालन सभी देशी रियासतें करती। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात खनिज संसाधन का समुचित उपयोग करने के लिए केन्द्रीय सरकार की ओर से प्रयास किये गये।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के पूर्व खानों से सिर्फ इमारती पत्थर ही निकाला जाता था। अभ्रक खनन उद्योग स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हुआ था लेकिन संगठित रूप से उद्योग का विकास राजस्थान में राज्यों के एकीकरण के बाद प्रारम्भ हुआ। वे खनिज जिनका राज्य में विदोहन किया जाता है अथवा जिनके सुरक्षित भण्डार पाये जाते हैं उनमें इमारती पत्थर, बेन्टोनाइट, केलसाइट, चीनी मिट्टी, लिग्नाईट, हरसौंठ, सीसा, चूने का पत्थर, फेल्डस्पर, मैंगनीज, अभ्रक, नमक और जस्ता आदि महत्वपूर्ण है। हालांकि राज्य विभिन्न प्रकार के खनिज उत्पन्न करता है फिर भी राज्य में उनके सुरक्षित भण्डारों की प्रकृति, वितरण और जमावों के संदर्भ में इस क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण स्थान खनिज उत्पादन क्षेत्र नहीं कहा जा सकता। देश में राज्य का महत्वपूर्ण स्थान एक खनिज उत्पादक राज्य के रूप में न हो कर बल्कि एक अधातु खनिज के संसाधनों के रूप में है जिनमें सीसा, जस्ता, चाँदी, तांबा, टगंस्टन और औद्योगिक खनिज जैसे अभ्रक, स्टेटाइट और हरसौंठ महत्वपूर्ण है। कोयला एवं लोह अयस्क की कमी न केवल भूतकाल में राज्य के खनन उद्योग के लिए रुकावट सिद्ध हुई बल्कि भविष्य में भी इसके विकास पर इसका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता रहेगा।

राज्य में लगभग 45 प्रकार के खनिज उपलब्ध हैं उनमें से लगभग 34 प्रकार के खनिजों का निरन्तर खनन हो रहा है। राजस्थान का खनिजों की दृष्टि से भारत में दूसरा स्थान है। 1950-51 में खनिजों का उत्पादक मूल्य 3.45 करोड़ रुपये था जो बढ़कर 1960 में 6.2 करोड़, 1965 में 8.8 करोड़ 1970-71 में 14 करोड़, 1980-81 में 107.5 करोड़ तथा 1986 में खनिजों का उत्पादन मूल्य 342 करोड़ रुपये तक हो गया है। इस प्रकार पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत खनिज सम्पति का विकास बड़ी तेजी के साथ योजनाबद्ध ढंग से किया गया है। यहां तक कि अब देश के सीसा, जस्ता, पन्ना व रक्तमणि आदि की अधिकांश पूर्ति राजस्थान से ही होती है।

राजस्थान में खनिजों के विकास का अनुमान इससे लग जाता है कि खड़िया मिट्टी या हरसौंठ, घीया पत्थर, एस्बेस्टस, स्टेटाइट और फेल्स्पार के उत्पादन में राजस्थान का स्थान प्रथम है। राजस्थान समस्त भारत के खड़िया मिट्टी के उत्पादन का 92%, घीया पत्थर 90%, अभ्रक 22%, चांदी 90%, फेल्स्पार 75%, तथा सीमेंट के लिए चूने के पत्थर का 13 % भाग उत्पन्न करता है। आणविक खनिजों-बेरियम, यूरेनियम, लीथीयम आदि की दृष्टि से भी राजस्थान की स्थिति अच्छी है। राजस्थान के खनिज उत्पादन में लगभग 95 % हिस्सा इमारती पत्थर (37%), नमक (12.9%) सीसा और जस्ता सान्द्र (12.8%), अभ्रक (12%) और हरसौंठ (9.5%) आदि खनिजों का है। राष्ट्रीय उत्पादन के सदर्भ में खनिजों का मूल्य 3.8% है। लिग्नाइट, चूने का पत्थर, हरसौंठ की कुछ मात्रा, कांच के लिए बालू और अपशिष्ट अभ्रक आदि खनिज जिनका

1. Heron, A. M. "Mineral Resources of Rajputana", Transaction of Mining and Geological Institute of India, 1953.

शोषण किया जाता है, सामान्यत: राज्य के अन्तर्गत खपत कर लिये जाते हैं। शेष अन्य खनिजों का निर्यात अन्य राज्यों अथवा विदेशों को कर दिया जाता है। अभ्रक और सीसा सान्द्र बिहार को तथा जस्ता जापान को भेजा जाता है। लोह अयस्क और मैंगनीज का निर्यात भी विदेशों को किया जाता है।

इस राज्य में कुल जनसंख्या 3,42,61,862 (1981) में से लगभग 1,48,159 (1986) लोग खनन कार्य में लगे हुए हैं।

पंचवर्षीय योजनाएं एवं खनिज विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राजस्थान में पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत खनिजों के विकास के लिए सुनियोजित ढंग से प्रयास किए गए, जिनसे राज्य में खनिजों के शोषण की सम्भावनायें बढ़ी और खनिजों पर आधारित उद्योगों में त्वरित प्रगति दृष्टिगत होने लगी।

प्रथम योजना—इस योजना के अन्तर्गत सर्वप्रथम खनिजों के उचित विकास पर ध्यान केन्द्रित किया गया। भूगर्भ निरीक्षण विभाग ने देश में कई पर्यवेक्षण किए। राजस्थान में यूरेनियम की कई खानों का पता लगाया गया। 1952 में समस्त खानों में 13,400 लोग संलग्न थे और उत्पादित खनिज का मूल्य 3.04 करोड़ था। सुनियोजित ढंग अपनाये जाने पर लोहे के उत्पादन में 56,000 टन, जिप्सम के उत्पादन में 3 02 लाख टन, अभ्रक के उत्पादन 22,000 टन, घीया पत्थर के उत्पादन में 16,000 टन तथा चूने के पत्थर के उत्पादन में 3.3 लाख टन की वृद्धि हुई। खानों में रोजगार प्राप्त लोगों की संख्या 13,400 से बढ़कर 51,286 हो गई और खनिजों का मूल्य 3.65 करोड़ हो गया।

द्वितीय योजना—इस योजना के दौरान खनिजों का मूल्य जो 1955 में 3.65 करोड़ था, बढ़कर 1960-61 में 6.2 करोड़ हो गया। मैंगनीज का उत्पादन 2.1 हजार टन से 7.5 हजार टन, अभ्रक का उत्पादन 49.5 हजार टन से बढ़कर 164.9 हजार टन, चूने के पत्थर का दुगना तथा जिप्सम का उत्पादन 6.37 लाख टन से बढ़कर 8.41 लाख टन हो गया।

इस योजना अवधि में खनिजों को औद्योगिक विकास का आधार मानकर लोहा, कोयला व चूने के पत्थर आदि खनिजों का उत्पादन बढ़ाया गया।

तृतीय पंचवर्षीय योजना—इस योजना के अन्तर्गत 3.65 करोड़ रुपये खनिज विकास की योजना के लिए प्रदान किये गये। अधिकांश धनराशि 2.75 करोड़ रुपये राजस्थान राज्य खनन निगम के निर्माण पर खर्च की गई। खनिज विकास पर वास्तविक व्यय 95 लाख रुपये का ही हुआ। इस योजना के अन्तर्गत खनिजों के पूर्वेक्षण और शोषण के सघन एवं विस्तृत कार्यक्रमों को क्रियान्वित कर 16 खोज कार्य पूर्ण किये गये। इस योजना के अन्तर्गत खानों में लोगों की संख्या 51 हजार से बढ़कर 76 हजार हो गई। खनिजों का उत्पादन मूल्य बढ़कर 1961 में 6.2 रुपये से बढ़कर 1965-66 में 9.62 करोड़ रुपए हो गया।

तीन वार्षिकी योजनाएं व चतुर्थ योजना—तीन वार्षिकी योजनाओं तथा चतुर्थ योजना में भी खनिज विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया गया। खनिज और भूगर्भ विकास का पुनर्गठन कर उसका विस्तार किया गया चतुर्थ योजना के अन्तर्गत खनिज पदार्थों सम्बन्धी नीति इस प्रकार निर्धारित की गई—

(i) अभी जो खनिज एवं धातुएं पूर्णत: या अंशत: विदेशों से आयात की जाती है उनके कार्यशील भण्डारों का पता लगाना।

(ii) लोहा, जिप्सम, कोयला, चूने का पत्थर आदि खनिजों के अतिरिक्त भण्डारों का पता लगाना जिससे देश की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

(iii) नई खानों एवं नये खनिज भण्डारों का पता लगाना जिससे उनका निर्यात अधिक मात्रा में किया जा सके।

लेकिन इस योजना की अवधि में खनिजों का उत्पादन मूल्य औद्योगिक क्षेत्र मन्दी के कारण कम होने से 1968 में खनिजों का मूल्य 4 करोड़ रुपये ही रहा।

पांचवी योजना—इस में भारत सरकार ने खनिज विकास योजना के अन्तर्गत चार क्षेत्रीय मण्डलों में से

एक मण्डल अजमेर में स्थापित किया जिसका कार्य न केवल राजस्थान बल्कि जम्मू-काश्मीर, पंजाब, हरियाणा हिमाचल प्रदेश, दिल्ली तथा उत्तरप्रदेश में भी खनिज के विकास को देखना है। इस योजना की अवधि में खनिज विकास पर 4.75 करोड़ रुपये की राशि व्यय की गई। फलस्वरूप खनिजों का मूल्य 1978-79 में बढ़कर 49 करोड़ रुपये हो गया। खनिज विकास को अधिक गतिशील बनाने के हेतु 1979 में 'खनिज विकास निगम' की स्थापना की गई।

छठी योजना—इस योजना में 15 करोड़ रुपये खनिज विकास पर व्यय करने का प्रावधान रखा गया था। इस राशि से खनिज क्षेत्रों में व्यापक सर्वेक्षण व सड़कों का निर्माण करवाया गया।

सातवीं योजना—वर्ष 1986 में धात्विक एवं अधात्विक खनिजों के उत्पादन की बिक्री 342 करोड़ रुपये की हुई तथा 1,48,159 श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराया गया। राज्य के खान एवं भू-विज्ञान विभाग द्वारा वर्ष 1986-87 में नये खनिजों की खोज एवं ज्ञात खनिज भण्डारों के विधिवत सर्वेक्षण, पूर्वेक्षण एवं विकास हेतु 63 परियोजनाएँ प्रस्तावित की गई। वर्ष 1988 की मुख्य उपलब्धि चित्तौड़गढ़ जिले के केसरपुरा ग्राम के निकट हीरे की खोज है जहाँ की चट्टानों से दस सेंट का एक रत्न श्रेणी का हीरा प्राप्त हुआ है।

राजस्थान में खनिज जमाव क्षेत्र

अभी हाल के सर्वेक्षणों के फलस्वरूप राजस्थान में कई बहुमूल्य जमाव क्षेत्रों की अवस्थिति का पता लगा है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(i) उदयपुर और भीलवाड़ा के समीप बेरेलियम के जमाव।

(ii) उदयपुर के समीप झामरा-कोटरा में राकफास्फेट के काफी धनी जमाव।

(iii) सीकर जिले में खेरपुरा में ऐपेटाइट के जमाव।

(iv) सीकर जिले में सलादीपुरा में पाइराईट के बड़े जमाव।

(v) अजमेर जिले में मेग्नेसाइट व वरमेकूलेट के जमाव।

(vi) उदयपुर जिले में बेराइट के जमाव।

(vii) झुन्झुनूं जिले में बाबई, सतकुई और अकवाली के समीप अकवाली जमाव, कोलीहान-खेतड़ी में सिंघाना जमाव, तांबा अयस्क के निम्न श्रेणी के विस्तृत जमाव।

(viii) उदयपुर के समीप राजपुरा-दरीबा में सीसा जस्ता के जमाव।

(ix) उमर (बूंदी), बर्र (पाली), फालना और आबूरोड़ (सिरोही) और किशनगढ़ (अजमेर) में संगमरमर के जमाव।

(x) उदयपुर जिले में दारौली के निकट सीमेंट उपयुक्त चूना पत्थर के जमाव।

(xi) डूंगरपुर जिले में कालिया गांव की मन्डों की पाल तथा सीकर जिले के चोकरी-चापोली में फ्लोराइट के जमाव।

(xii) उदयपुर जिले में नाकरा की पाल के समीप लोह अयस्क के जमाव।

(xiii) कोटा जिले के मुकन्दरा व भान्दावर, झालावाड़ के बंदावली तथा चित्तौड़गढ़ के केसरपुरा गांव व निम्बाहेड़ा क्षेत्रों में कांगलोमरेट चट्टानों का जमाव।

(xiv) जैसलमेर एवं नागौर जिलों में स्टीलग्रेड के चूना भण्डार, उदयपुर के पलाना, धामला गांवों में एवं नागौर, झालरापाटन एवं पिड़ावा में उच्च श्रेणी के चूना पत्थर के जमाव।

(xv) कोटा की छबड़ा तहसील के हनुन्तखेड़ा व कुन्दी क्षेत्रों में सिलिकासेंड के जमाव।

(xvi) उदयपुर के अंजनी क्षेत्र में, जगत के खेडो में, बून्दी जिले के गरधारी, देवधुआ व कोरमा क्षेत्रों में सवाईमाधोपुर के खोहरा समपुरा में अलवर के इसरावाल कोयला क्षेत्र में ताम्र अयस्क के जमाव।

(xvii) पाली के नाना करारावाव में टंगस्टन धातु अयस्क के जमाव।

(xviii) नागौर जिले के कसनऊ इग्यार में लिग्नाइट के जमाव।

(xix) राजस्थान के ग्रीन स्टोन क्षेत्र में तांबा और सोने के भण्डार।

भू-विज्ञान और सम्बन्धित खनिज

किसी भी प्रदेश की भूगर्भीय संरचना तथा उनमें उपलब्ध खनिजों के बीच एक घनिष्ठ सम्बंध देखने को मिलता है। इसलिए खनिजों का अध्ययन करते समय प्रदेश की भूगर्भीय संरचना की संक्षिप्त जानकारी आवश्यक हो जाती है।

राजस्थान की भूगर्भीय संरचना आद्यःकल्प की शिलाओं के उत्तरोत्तर जमाव से बनी हुई हैं। इस क्षेत्र की पर्वत श्रेणियों की मुख्य दिशा उत्तर व उत्तर-पूर्व है। बुन्देलखण्ड नीस तथा पट्टिताश्म नीस मिश्रित शिलाओं के ऊपर अरावली समूह की शिलाएँ अवस्थित हैं। जिसमें उत्तरोत्तर ऊपर की ओर कांगलोमिरेट, क्वार्टज, कंकड़, फिलाइट, माइकाशिस्ट तथा चूना पत्थर नामक शिलाओं के जमाव मिलते हैं। इनके ऊपर रायला श्रेणी की संगमरमर की शिलाएँ तथा विक्रान्तयुक्त बायोटाइटशिस्ट नामक शिलाएँ यत्र-तत्र पाई जाती हैं। उक्त शिलाओं के भी ऊपर विस्तृत रूप से अलवर श्रेणी की शिलाओं की मोटी तहें पाई जाती है जिनके अन्तर्गत क्वार्टजाइट तथा निम्न श्रेणी के चूनापत्थर का जमाव है। इन शिलाओं के बीच में कई नितुन्न शिलाओं (Intrusive rocks) का प्रवेश हुआ है जो निराम्लिक तथा अतिनिराम्लिक यौगिक शिलाओं के रूप में मिलती हैं। मकराना और राजसमन्द के संगमरमर, अजमेर तथा उदयपुर के स्टेटाईट आदि खनिज रियालों क्रम से जुड़े हैं जबकि अरावली क्रम की चट्टानों में अभ्रक, मैंगनीज, बिरल, स्टेटाइट, एस्बेस्टॉस, तामड़ा, सीसा, जस्ता, चाँदी और ताँबा के अयस्क पाये जाते हैं। मध्य अरावली क्षेत्र अभ्रक बिरल, पन्ना, फेल्स्पर क्वार्टज, टेन्टेलाइट फ्लोराइट और ताँबा में काफी धनी हैं। इस प्रदेश के समीप चूना पत्थर, मुलतानी मिट्टी और काँच की रेत व मृत्तिका पाई जाती हैं। एरिनपुरा, जालौर तथा शिवाना में मिलने वाली ग्रेनाईट नामक शिलाएं तथा मालानी रायोलाइट नाम की शिलाएँ जो जालौर, बाड़मेर तथा जोधपुर क्षेत्र में मिलती हैं, इन्हीं नितुन्न शिलाओं के अन्तर्गत है। एरिनपुरा ग्रेनाईट शिलाओं में अभ्रक, बिरल, टेन्टेलाईट कोलम्बाईट, रेडियोधर्मी खनिज, पन्ना और कोरन्डम आदि खनिज काफी मात्रा में विद्यमान हैं।

विंध्ययुग की परतदार शिलायें अरावली पर्वत श्रृंखलाओं के पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर फैली हुई हैं किन्तु इनका विस्तार पूर्वी पठारी प्रदेश में अधिक है। सुदूरपूर्व में इन शिलाओं का विस्तार मध्य प्रदेश में होता हुआ उत्तरप्रदेश तथा बिहार राज्य तक चला गया है। मध्य दक्षिणी और पूर्वी राजस्थान की विंध्यन शैलसमूहों में चूने का पत्थर, बलुआपत्थर, सड़कों के लिए अच्छे पदार्थ तथा पट्टियां आदि खनिज पाये जाते हैं। भरतपुर और अलवर में उपलब्ध बेराइट खनिज देहली क्रम की चट्टानों से सम्बन्धित है।

पश्चिमी तथा उत्तरी-पश्चिमी रेतीले क्षेत्र के बालुकामय प्रदेश की नीरसता को बाड़मेर तथा जैसलमेर जिलों में प्राप्त मेसोजोइक युग की फॉसिल शिलाएं कम करती है। टरशरी युग की शिलाएं बीकानेर के पश्चिम तथा दक्षिण में मिलती हैं। जामसर, डीडवाना तथा अन्य कई स्थानों में उपलब्ध, सोडियम सल्फेट, नमक आदि की उपलब्धि इस बात का प्रमाण है कि टरशरी युग में इन क्षेत्रों में टेथिस सागर का निष्क्रमण तथा अतिक्रमण हुआ था। राजस्थान के पश्चिमी प्रदेश में बलुआपत्थर, लिग्नाइट, सगमरमर, टंगस्टन, जिप्सम, मुलतानी मिट्टी आदि मिलते हैं। जैसलमेर में खनिज तेल की संचित रखने वाली चट्टानों की बहुत अधिक सम्भाव्यताएं हैं।

राजस्थान का उत्तरी पूर्वी भाग अधिकांशतः कांपीय है। कहीं-कहीं चट्टानें दृष्टिगोचर होती हैं। वायुढ़ बालू के द्वारा निर्मित विभिन्न आकारों में बालुकास्तूप सांभर झील के पूर्व में दिखलाई देते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान विभिन्न खनिज संसाधनों से परिपूर्ण है। भूगर्भवेताओं के द्वारा राजस्थान को खनिजों का संग्रहालय कहा गया है, वह उचित प्रतीत होता है। राज्य के विभिन्न भागों में किए गये पूर्वेक्षण भूगर्भीय मानचित्रीकरण तथा विशाल खनिज सर्वेक्षण यह स्पष्ट करते हैं कि राजस्थान में अनेक खनिज तथा उपयोगी चट्टानों की दृष्टि से इस राज्य की तुलना अब देश के किसी भी राज्य के साथ की जा सकती है।

खनिजों का क्षेत्रीय वितरण

राजस्थान में खनिजों का क्षेत्रीय वितरण किसी एक प्राकृतिक विभाग में संकेन्द्रित न होकर छितरा हुआ मिलता है तथा साथ ही खनिजों की मात्रा भी असमान है। राज्य के अधिकांश उत्पादित खनिज भीलवाड़ा, कोटा, अजमेर, जोधपुर, जयपुर, सवाईमाधोपुर और टोंक आदि जिलो से खनन किये जाते हैं। इन जिलों में राज्य के खनिज कार्य में लगे कुल व्यक्तियों का लगभग 72 प्रतिशत संलग्न है और कुल खनिज मूल्य का 70 प्रतिशत प्राप्त होता है।

भीलवाड़ा मुख्य रूप से अभ्रक, स्टेटाईट, घीया पत्थर तथा तामड़ा के उत्पादन में राजस्थान में प्रथम है। कोटा चूने के पत्थर तथा अन्य इमारती पत्थरों में धनी है। अजमेर का स्थान अभ्रक, संगमरमर, एस्बेस्टॉस, तामड़ा और इमारती पत्थरों की महत्वता के कारण द्वितीय है। जोधपुर जिला बलुआ पत्थर, संगमरमर इमारती पत्थर, मुल्तानी मिट्टी, वालफ्राम और जिप्सम का उत्पादन करता है। उदयपुर जिला सीसा, जस्ता,पन्ना लोह अयस्क, अभ्रक, रॉकफास्फेट, संगमरमर, चूना पत्थर, स्टेटाइट और एस्बेस्टॉस आदि के उत्पादन प्रमुख है। जयपुर जिले में नमक, घीया पत्थर, अभ्रक, लोह अयस्क और चूना पत्थर तथा सवाईमाधोपुर जिले में इमारती पत्थर आदि का उत्पादन किया जाता है जबकि टोंक जिले में अभ्रक तथा तामड़ा निकाला जाता है।

राजस्थान एवं खनिज

सर्वविदित है कि खनिज पदार्थ मुख्यतः प्राचीन चट्टानों में पाये जाते हैं। राजस्थान में अरावली पर्वत श्रेणियां संरचना की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन हैं, अतः अनेक भागों में खनिज पदार्थ विद्यमान है। राजस्थान में लगभग 34 खनिजों का शोषण छोटे तथा बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। इस समय (1985) राजस्थान में विभिन्न खनिजों की छोटी-बड़ी 3,315 खानें हैं जिनमें खनिज विदोहन के लिए लगभग 2,00,000 व्यक्ति संलग्न हैं।

राजस्थान में विविध प्रकार के खनिजों के भण्डार हैं। कई खनिजों में राजस्थान का एकाधिकार है तथा अन्य कई खनिजों के उत्पादन में राज्य प्रथम स्थान रखता है। भारत में राजस्थान की स्थिति खनिज सम्पदा के सन्दर्भ में निम्न प्रकार है—

1. वे खनिज जिन पर राजस्थान का एकाधिकार है — राजस्थान में मिलने वाले खनिज जैसे जस्ता, सीसा, संगमरमर, चांदी, तामड़ा, पन्ना, रॉकफास्फेट, कैडमियम आदि ऐसे हैं जिन पर राज्य का एकाधिकार है। ये भारत में अन्यत्र कहीं नहीं पाये जाते हैं।

2. वे खनिज जिनके उत्पादन में राजस्थान का महत्वपूर्ण स्थान है—जिप्सम, एस्बेस्टॉस, सिलिका, टंगस्टन, तांबा, इमारती पत्थर, विरल आदि खनिज ऐसे हैं जिनका अधिकांश उत्पादन राजस्थान में ही होता है।

3. वे खनिज जिनकी राजस्थान में कमी है—लोहा मैंगनीज, कोयला, पेट्रोलियम, कियोनाईट, ग्रेफाईट, वेन्टेनाइट स्लेट पत्थर एवं टूरमेलाइन आदि खनिजों की कमी है।

4. वे खनिज जिनमें राजस्थान का हिस्सा तथा उत्पादन नगण्य है — वेराइट, चीनी मृत्तिका और वरमेकूलेट आदि खनिज नगण्य स्थति में है।

राजस्थान में पाये जाने वाले खनिजों को तीन भागों में बांटा जा सकता है—

1. धात्विक खनिज

लोह अयस्क, मैंगनीज, सीसा, जस्ता, चांदी, बेरेलियम, तांबा, केडमियम, वाल्फ्रेमाइट।

2. अधात्विक खनिज

(अ) ऊष्मारोधी, उच्च-तापसह एवं मृत्तिका खनिज एस्बेस्टेस, फेल्सपर, बालूकाँच, क्वार्टज, मेग्नेसाईट, वरमेकूलेट, वॉलेस्टोनाईट, चीनीमृत्तिका, अग्निसह मिट्टी, डोलोमाईट।

(ब) इलेक्ट्रोनिक एवं आणविक खनिज—अभ्रक, यूरेनियम।

(स) बहुमूल्य पत्थर—पन्ना, तामड़ा।

(द) रसायनिक खनिज—नमक, बेराइट, चूनापत्थर, फ्लूरस्पर अथवा फ्लोराइट।

(य) उर्वरक खनिज—जिप्सम, रॉकफास्फेट, पाईराइट।

(र) गौण खनिज—ब्रेन्टोनाइट, मुल्तानी मिट्टी, संगमरमर, ग्रेनाइट तथा इमारती पत्थर।

(ल) अन्य खनिज—स्टेटाइट, केलसाइट, आवरेस।

3. ईंधन—लिग्नाईट खनिज तेल (इनका वर्णन शक्ति संसाधन के अध्याय में किया जायेगा)।

धात्विक खनिज

1. **लोह अयस्क**—राजस्थान लोह अयस्क और सुरक्षित भण्डारों की दृष्टि से एक निर्धन राज्य है। इस राज्य में लोह अयस्क की विभिन्न किस्में छोटे छोटे जमाव क्षेत्रों में मिलती हैं। सभी उत्पादित अयस्क हैमेटाइट श्रेणी का है। मैग्नेटाइट किस्म कुछ स्थानों पर क्वार्टज के साथ मिलती है।

लोह अयस्क का उत्पादन सन 1953 से किया जा रहा है। लोहे का उत्पादन सन् 1960 में 1.28 लाख टन था जो निरन्तर गिरते गिरते सन् 1981 में 65,000 टन रह गया। वर्ष 1985 में लोह अयस्क का उत्पादन 1.31 लाख टन हुआ अभी हाल के वर्षों में लोह अयस्क के उत्पादन में जो कमी आई है उसके दो मुख्य कारण हैं।

1. राजस्थान में लोह अयस्क जमाव काफी दूर स्थित है जिससे परिवहन लागत अधिक आती है। यह दूरी बम्बई तथा कांडला बंदरगाह से क्रमशः 800 और 960 किलोमीटर है।

2. राजस्थान में लोह खनिज घटिया किस्म का है। अयस्क जिसमें 63% से 65% तक लोह तत्व होते है केवल वहीं निर्यात की दृष्टि से उपयुक्त होता है। प्रेषण के लिए उच्चकोटि के खनिज को निकालने के लिए स्वभावतः चयनात्मक खनन पर जोर दिया गया। जोधपुर जिले में चौमूं, मोरीजाव, नीमला, झुन्झुनूं में टोडा व डाबला तथा सीकर जिले में नारदा, नानावास स्थित खदानों से उत्पादनों का विवरण मिलता है।

लोह-खनिज क्षेत्र—राजस्थान में लगभग सभी लोह अयस्क जमाव अरावली श्रेणी पर अथवा इसके पूर्व में स्थित है। दूसरे शब्दों में लोह अयस्क राज्य के उत्तरी-पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी भागों में मिलती है।

(अ) **उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र**—इस क्षेत्र में तीन प्रमुख लोह क्षेत्र हैं

(i) **मोरीजा-बानोल क्षेत्र**—ये जमाव क्षेत्र जयपुर जिले की आमेर तहसील में चोमूं सामोद रेल्वे स्टेशन की ओर लगभग 8-10 किलोमीटर पूर्व में स्थित हैं। राज्य में यह बहुत ही प्रमुख अयस्क जमाव क्षेत्र है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत कई चालू खानें हैं जैसे टोडा-चिपलाटा, थोई वनिया-कावास, तातेरी, वागावास और भाटो की गली। इस क्षेत्र में लोह अयस्क हैमेटाइट किस्म का मिलता है। इसकी पट्टियां अरावली और पूर्व अरावली की नीस और शिस्ट चट्टानों के ऊपर विसंगत रूप से स्थित हैं। मोरीजा में लगभग 10 मीटर मोटी व एक किलोमीटर से भी अधिक लम्बी पट्टी में लोह खनिज हैं। हैमेटाईट क्वार्टज की पट्टी लगभग 3 मीटर मोटी पहाड़ियों के ऊपर विस्तृत है। यहां लोहा अच्छी किस्म का है जिसमें 68 प्रतिशत लोह तत्व मिलते हैं लेकिन इसके भण्डार विस्तृत क्षेत्र पर नहीं है।

(ii) **नीमला-राइसेला क्षेत्र**—इस क्षेत्र में लोह अयस्क जयपुर से लगभग 65 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में और दौसा रेल्वे स्टेशन में 24 किलोमीटर उत्तर में नीमला गांव के निकटवर्ती क्षेत्रों में मिलता है। इस क्षेत्र में अन्य भण्डार भानगढ़, रतनपुरा, राजगढ़ और तेहला आदि में पाये जाते हैं। प्रमुख लोह भण्डार नीमला से एक किलोमीटर पूर्व में स्थित हैं। ताल जैसे अयस्क जमाव की अधिकांश खानें 3-8 मीटर गहरी हैं लेकिन नीमला, गोला का बास आदि 24-30 मीटर गहरी हैं। यह लोह अयस्क अच्छी किस्म का है जो लगभग 67.5 प्रतिशत शुद्धता रखता है। यहाँ लगभग 10 लाख टन लोह अयस्क के भण्डार हैं।

(iii) **डाबला-सिंघाना-नीम का थाना क्षेत्र**—हरियाणा और राजस्थान की सीमा पर खेतड़ी के पूर्व में हैमेटाइट अयस्क के जमाव क्वार्टज के साथ मिलते हैं। इस क्षेत्र में डाबला स्टेशन से लगभग 10-12 किलोमीटर की दूरी पर पश्चिम में पाये जाते हैं। सीओर और नाई धानी क्षेत्रों में तथा कुछ क्षेत्रों में लोह अयस्क बिखरे छोटे क्षेत्रों में तथा कुछ संचायिकाओं में पाये जाते हैं। लेकिन बड़े जमाव टेओन्डा और काली पहाड़ी के समीप स्थित है। टेओन्डा में अयस्क की लगातार नसें पहाड़ी के पश्चिमी ढालों के सहारे लगभग 150 मीटर की दूरी तक मिलती है। नीम का थाना लोह अयस्क

क्षेत्र दो समानान्तर क्षितिजों में मिलता है-(क) नीम का थाना स्टेशन से लगभग 11 किलोमीटर पश्चिम में वागोली-सराय-पाचलांगी क्षेत्र, तथा (ख) सीकर जिले में नीम का थाना स्टेशन से लगभग 18-30 किलोमीटर पूर्व में राजपुर-नानावास-टोडा चिपलादा क्षेत्र। इन लोह अयस्क क्षेत्रों में अयस्क घटिया किस्म का है और फास्फोरस की मात्रा भी उसमें अधिक है।

उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र में नेवर नटेरा, पुनागिर पहाड़ी, राजोली, कलाजपुरी, वासनी आदि स्थानों की खुदाई से खनिज का थोड़ा उत्पादन हुआ है। ये सब छोटे भण्डार हैं और शिस्ट, फिलाईट व डोलोमाईट शिलाओं में इनके वीक्षाकार पिण्ड दृष्टिगत होते हैं।

(ब) दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र—अरावली श्रेणी के दक्षिणी पूर्वी संकेन्द्रीय वक्र में लोह-अयस्क के जमाव क्षेत्र बिखरे हुए पाये जाते हैं। यदि एक रेखा बूंदी से भीलवाड़ा, कांकरोली, उदययुर के पश्चिम से डूंगरपुर होती हुई वांसवाड़ा तक खीची जाये तो वह इस प्रदेश के प्रायः सभी क्षेत्रों की अवस्थति को निर्धारित कर देगी। इस क्षेत्र में तीन प्रमुख क्षेत्र पाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं—

(i) **नाथरा-का-पाल**—ये जमाव उदयपुर शहर से 60 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में और ढ़ेवर झील से लगभग 12 किलोमीटर पश्चिम में थाना गांव के समीप स्थित हैं। लोह अयस्क पिण्ड वीक्ष जैसी आकृतियों में निर्मित हैं जो उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की दिशा में कटक के शिखर के सहारे हैमेटाइट शिस्ट के रूप में मिलते हैं। इनमें थोड़ी सी मात्रा में मेग्नेटाईट भी पाया जाता है। इस क्षेत्र में 20 लाख टन लोह अयस्क के भण्डार है जो लगभग 30 मीटर की गहराई तक मिलते हैं।

(ii) **पूर-हुन्डेर क्षेत्र**—ये जमाव क्षेत्र उदयपुर स्टेशन से 20 किलोमीटर दूर उत्तर पश्चिम में स्थित है। लोह अयस्क हैमेटाईट किस्म का है। यहां लगभग 50,000 टन लोह अयस्क के भण्डार होने का अनुमान है।

(iii) **अन्य क्षेत्र**—लोह अयस्क के अन्य क्षेत्र बूंदी जिले में लोहारपुरा, भीलवाडा जिले में इन्द्रगढ़, वांसवाड़ा जिले में कमलपुरा और लामपा, डूंगरपुर जिले में तलवारा, खामरिया और लोहारिया गांव तथा झालावाड़ जिले में पादरपाल व डाग आदि में मिलते है।

राजस्थान में लोह अयस्क की खानों का विकास राज्य के औद्योगिक क्षेत्र में पिछड़ेपन होने, सस्ती जल विद्युत की सुविधा उपलब्ध न होने, अन्य शक्ति संसाधनों की कमी और यातायात के साधन पर्याप्त न होने के कारण नहीं हो सका। प्रदेश से जितना भी लोह अयस्क निकाला जाता है उससे स्थानीय मांग की पूर्ति करने के पश्चात शेष विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। राजस्थान में लोह अयस्क खनन उद्योग के लिए अधिक रेल्वे भाड़ा तथा अयस्क की अच्छी किस्म पर नियंत्रण जैसी मुख्य समस्यायें हैं जिनके कारण यहां इसका विकास नहीं हो पा रहा है।

2. मैंगनीज

मैंगनीज अयस्क का प्रमुख उपयोग इस्पात के उत्पादन में होता है जहां इसका मुख्य काम गंधक के प्रभाव का प्रतिकार करना है। इसके लिए लोहे और मैंगनीज की धातु का मेल किया जाता है जिसे फैरो-मैंगनीज कहते हैं।

यह सामरिक महत्व की खनिज तो है ही, पर औद्योगिक उत्पादन में भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग रोगन व वार्निश बनाने में, उर्वरकों व रसायनों के उद्योगों में, बिजली की वैटरियों में तथा ब्लीचिंग पाउडर बनाने में होता है। मैंगनीज का उपयोग कई उद्योगों एवं रसायनिक पदार्थों के तैयार करने में होता है। इस्पात निर्माण में इस का मिश्रण अनिवार्य है। प्रति टन इस्पात के लिए 5 किलोग्राम मैंगनीज मिलाया जाता है। अतः एक प्रकार से यह हरफन मौला कहलाता है।

राजस्थान में मैंगनीज की कच्ची धातु मुख्यतया वांसवाड़ा जिले में पायरोल्युसाईट, ब्राऊनाइट, साइलोमिलेन खनिज के रूप में मिलती है। ये अयस्क फिलाईट में व तलवाड़ा के निकट चूने के पत्थर के सहचर्य में भी मिलते हैं। वांसवाड़ा जिले में इसकी खानें लोलवानी; नराड़िया, सिवोनिया, कालाखूटा, घाटियां, कांसला,

सागवा इटाला, तिम्मामीरी, खेड़िया, काचला, वोहरिया साना-लकांई, गोइका-वारीखूटा व तलवाड़ा आदि है। कुछ मैंगनीज अयस्क उदयपुर जिले के नेगड़िया सरुपपुरा व रामीसन गांवों के निकट भी मिले हैं।

जयपुर के निकट अलवर क्वार्टजाइट शिलाओं की दरारों में मैंगनीज अयस्क का पता चला है। सवाईमाधोपुर जिले की वोनली तहसील में गंगवाड़ा के निकट रेवसा में भी यह निकाली जाती है। मैंगनीज के अन्य क्षेत्रों के लिए अनुसंधान जारी है।

राजस्थान में मैंगनीज उद्योग का भविष्य वांसवाड़ा जिले में मैंगनीज की उपलब्धि पर निर्भर करता है। राज्य में यही एक मात्र प्रमुख क्षेत्र है जहां व्यापारिक दृष्टि से मैंगनीज खोदा जाता है। खानों में खुदाई के बाद मैंगनीज खनिज की हाथ से छटाई करनी पड़ती हैं इसलिए इस पर खर्च अधिक होता है। ये खानें आदिवासी क्षेत्रों में है इसलिए इनका महत्व और भी अधिक है क्योंकि उन लोगों को रोजगार मिल जाता है।

राजस्थान से सबसे अधिक मैंगनीज का उत्पादन सन् 1952 में हुआ। उसके बाद के वर्षों में इसके उत्पादन में कमी आई किन्तु 1964 के पश्चात से इसका उत्पादन फिर बढ़ रहा है। राजस्थान में आजकल प्रतिवर्ष लगभग 1000 टन मैंगनीज का उत्पादन होता है तथा अनुमानित भण्डार 20 लाख टन के है। राजस्थान में मैंगनीज खनिज उद्योग का भविष्य जमावों के व्यवस्थित होने पर तथा लाभजनक (Beneficiation) संयंत्रों की स्थापना पर निर्भर करता है जिससे उच्च किस्म का अयस्क बाजार में उपलब्ध कराया जा सके।

3. टंगस्टन

डिगाना के समीप रेवत पहाड़ी में वाल्फ्रोमाईट पाया जाता है। खनिज, लोहे एवं मैंगनीज की टंगस्टेट, ग्रेनाईट और फाईलाइट की शिराओं में मिलती है। नागौर जिले के डेगाना भाकरी स्थित टंगस्टन परियोजना क्षेत्र में बड़ी मात्रा में टंगस्टन प्राप्त होने का अनुमान है जिससे टंगस्टन की उत्पादन क्षमता 3,550 टन तक हो जाने की सम्भावना है। डेगाना स्थित यह खान सम्पूर्ण देश में एक मात्र टंगस्टन की खान है, जहां टंगस्टन का उत्पादन हो रहा है। पाली के नाना कराराबाव में टंगस्टन धातु अयस्क के जमाव मिले हैं जिन के भण्डारों का आकलन किया जाता है। टंगस्टन का उपयोग बिजली के वल्बों व सीमा सुरक्षा हेतु अस्त्र-शस्त्र बनाने में किया जाता है। हीरे के पश्चात टंगस्टन कड़ी से कड़ी वस्तु काटने वाला दूसरा पदार्थ है। टंगस्टन विकास निगम द्वारा इन खानों के विकास हेतु कार्य किया जा रहा है। वार्षिक उत्पादन मूल्य 50 से 60 हजार रुपये आंका जाता है। 1985 में टंगस्टन का उत्पादन 24 टन हुआ।

उत्पादन टंगस्टन की अधिकांश मात्रा का उपयोग रक्षा मंत्रालय करता है। टंगस्टन विकास निगम जयपुर में इसके परीक्षण हेतु एक प्रयोगशाला भी स्थापित कर रहा है।

4. सीसा और जस्ता सांद्र

भारत में सीसा और जस्ता सान्द्र का उत्पादन केवल राजस्थान ही करता है। इन धातुओं का लगभग समस्त उत्पादन उदयपुर के दक्षिण पूर्व में स्थित जावर खानों से प्राप्त होता है। ऐतिहासिक साक्ष्य से इस बात का संकेत मिलता है कि राणा लाखा के राज्य में सन् 1928 ई. तक यहां काम चलता रहा पर राजनैतिक उपद्रव तथा बार-बार आने वाले अकाल के कारण यह काम बन्द हो गया। स्वतन्त्रता के पश्चात देश के उद्योगों के विकास के साथ सीसे तथा जस्ते की धातुओं की कमी स्पष्टतः दिखाई दी, जिसके फलस्वरूप इनका खनन कार्य सुनियोजित तरीके से कर उत्पादन किया जाने लगा। परिणामस्वरूप इनके उत्पादन में वृद्धि हुई। राजस्थान में जस्ते व सीसे का 1986 में क्रमशः 90200 टन तथा 23.9 हजार टन रहा जबकि 1965 में जस्ते व सीसे का उत्पादन क्रमशः 10,980 टन तथा 6500 टन था। इसके अतिरिक्त चांदी अयस्क, सीसा व जस्ता सांद्र में 5.6 से 25.3 औंस प्रति टन के अनुपात में मिलती है। राजस्थान में सीसा और जस्ता सान्द्र का वितरण दो क्षेत्रों तक ही सीमित है।

1. दक्षिण-पूर्वी प्रदेश—जस्ता एवं सीसा के अधिक महत्वपूर्ण जमाव उदयपुर से लगभग 40 किलोमीटर

दूर दक्षिण-पूर्व में जावर में मोचिया मगरा, वरोड़ मगरा और जावरमाला पहाड़ियों में सीसा और जस्ता पाया जाता है किन्तु कार्य अभी केवल मोचिया मगरा में ही किया जाता है। मोचिया मगरा पहाड़ी तीन किलोमीटर से भी अधिक लम्बाई में पूर्व-पश्चिम में फैली है। इसकी चौड़ाई पूर्वी किनारे पर लगभग 2 किलोमीटर और पश्चिम में लगभग 1.6 किलोमीटर है। यहां अयस्क राशि का ऊपरी भाग अधिक संघनित और विस्तृत है जबकि नीचे का भाग कम चौड़ा तथा कम संकेन्द्रित है। मोचिया मगरा में 35 से 40 मीटर के अन्तर पर चार सतहों पर कार्य किया जा रहा है। मौजूदा खानें मोचिया मगरा पहाड़ी पर अवस्थित हैं और उनका उत्पादन प्रतिदिन 200 से 300 टन के बीच होता है। खनन धातुओं में औसतन लगभग 5% सीसा और 7% जस्ता होता है। क्षेत्र के सीसे जस्ते के समुचित उपयोग के लिए उदयपुर व देबारी नामक स्थान पर भारत सरकार का जस्ता शोधक संयंत्र लगाया गया है जो प्रतिवर्ष लगभग 36,000 टन जस्ते के शोधन की क्षमता रखता है। पहले यह एक निजी संस्थान के अधीन था लेकिन अक्टूबर 1965 में इसे केन्द्रीय सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। धातु बनाते समय यहां तेजाब भी प्रचुर मात्रा में निकाला जाता है जो सुपरफास्फेट उर्वरक बनाने के काम में आता है। जिंक सल्फेट से कैडमियम एक सहउत्पाद के रूप में मिलता है। जो सुपरफास्फेट इस कारखाने में बनाया जा रहा है और उसके जो परिणाम सामने आये हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि यह खाद उत्तम कोटि का है।

उदयपुर के ही राजपुरा-दरीबा क्षेत्र में जस्ते व सीसे के भण्डार लगभग 30 लाख टन होने का अनुमान है। अन्य स्थान जहां पर कि सीसा एवं जस्ता उपलब्ध हैं उनमें से मुख्य उदयपुर जिले में रिखभदेव और देबारी, डूंगरपुर जिले में घुघरा और माण्डों तथा बांसवाड़ा जिले में वारडालिया गांव आदि हैं। भीलवाड़ा जिले में आगूंचा गांव के आसपास जस्ते के अपार भण्डार मिले हैं। इनका उपयोग करने के लिए हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड की 670 करोड़ रुपये की परियोजना को केन्द्र सरकार ने अक्टूबर 1988 में स्वीकृति प्रदान की है। रामपुरा-आगूंचा में इस परियोजना के लिए 170 करोड़ रुपये की लागत से खदान परिसर का निर्माण होगा तथा चित्तौड़गढ़ जिले के चंदेरिया में 450 करोड़ रुपये की लागत से सुपर स्मेल्टर संयंत्र ब्रिटेन की सहायता से स्थापित किया जायेगा।

2. उत्तरी-पूर्वी प्रदेश—इस प्रदेश में दो क्षेत्र हैं—
(i) सवाईमाधोपुर जिले में चौथ के बरवाड़ा और
(ii) अलवर जिले में गुढा किशोरी दास।

वर्तमान में देश की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए भारत जस्ते की बहुत बड़ी मात्रा विदेशों से आयात करता है लेकिन इन खदानों से जस्ते की प्राप्ति देश को आत्मनिर्भर बना सकती है। राजस्थान में जस्ते की कच्ची धातु की प्रचुर मात्रा में उपलब्धि देश की समृद्धि और सम्पन्नता में वृद्धि करेगी।

5. बेरिलियम

बेरिलियम पदार्थ बिरल नामक खनिज से प्राप्त होता है। यह षटकोणीय आकृति में मिलता है और एल्युमिनियम का एक सिलिकेट है। यह कई रंगों जैसे हरा, हल्का हरा, पीला, सफेद आदि में मिलता है तथा तोड़ने पर पारदर्शी जैसी झांई देता है। यह राज्य में विभिन्न भागों में मिलने वाले पैगमेटाइट्स में मिलता है। ऐसे पैगमेटाइट्स अधिकांशत: अभ्रक क्षेत्रों में मिलते है। यह 15 से 18 मीटर तक की गहराई तक पाया जाता है। राजस्थान में बेरिलयम बहुतायत में मिलने के कारण इसकी गणना भारत में प्रमुख बेरिलियम उत्पादक राज्यों में की जाती हैं। राजस्थान में अच्छे किस्म का बेरिलियम पाया जाता है जिसमें 11.5 से 14 प्रतिशत तक बेरिलियम आक्साइड पदार्थ मिलता है। बेरिलियम मिश्रित पदार्थ इस्पात के समान मजबूत और साथ ही वजन में हल्के व अचुम्बकीय होते है। बेरिलियम कम्पाउण्ड का प्रयोग मृत्तिका तथा विद्युत उद्योगों में किया जाता है। इसका अणु शक्ति में प्रयोग होने के कारण इसका महत्व और भी अधिक है। इस धातु को खरीदने का एकाधिकार भारत सरकार को ही है। आणविक शक्ति आयोग द्वारा बेरिलियम खरीदे जाने के कारण इसके खनन को काफी प्रोत्साहन मिला है।

देश में राजस्थान व बिहार इसका नियमित उत्पादन करने वाले राज्य हैं। राजस्थान में उदयपुर और जयपुर

जिलों के क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण हैं। अन्य क्षेत्र भीलवाड़ा, सीकर, टोंक और अलवर जिलों में पाये जाते हैं।

उदयपुर जिला—उदयपुर जिले के उत्तर में आमेट के दक्षिण में विरल उत्पादक क्षेत्र पाये जाते हैं। मुख्य क्षेत्र बड़ी शिकारवाड़ी, सिलेका, गुढ़ा, चम्पागुढ़ा और रान आमेट है। प्रथम तीन क्षेत्र चारभुजा रेल्वे स्टेशन से लगभग 5-7 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विरल इन स्थानों की खानों से खनिज की कम मात्रा होने तथा उत्पादन पर अधिक लागत आने के फलस्वरूप नहीं निकाला जा रहा है।

जयपुर जिला—इस जिले में दो महत्वपूर्ण क्षेत्र गुजरवाड़ा और बान्देरसीन्दरी हैं। गुजरवाड़ा खानें किशनगढ़ रेल्वे स्टेशन से लगभग 50 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में स्थित हैं। यहां पर क्वार्टज, फेल्डस्पार और वेरिलियम पहाड़ी भूमि में पाई जाती हैं। वेरिलियम लगभग 15 मीटर की गहराई पर मिलता है। वेरिलियम जमाव क्वार्टज निर्मित उपगिरि में पाये जाते हैं जो किशनगढ़ से लगभग 20 किलोमीटर दूर बान्देरसीन्दरी में स्थित हैं। मुख्य विरल खानें लगभग 9 मीटर से 12 मीटर गहरी हैं।

भीलवाड़ा जिला—भीलवाड़ा में देवड़ा गांव के पास एक पहाड़ी पर बने मन्दिर के निकटवर्ती भागों में यह पदार्थ पाया जाता है। इसके अतिरिक्त तिलोली गांव में जो भीलवाड़ा से लगभग 34 किलोमीटर गंगापुर सड़क पर है, तीन छोटी पहाड़ियों से वेरिलियम निकाला जाता रहा है। इसी प्रकार गुढ़ा नामक गांव में भी खुली खान से घटिया किस्म का अभ्रक तथा वेरिलियम के बड़े-बड़े टुकड़े प्राप्त हुए हैं। मेजा, शिवराती, एकलिंगपुरा आदि गांवों में भी थोड़ा विरल पाया जाता है।

अन्य क्षेत्र—डूंगरपुर की सागवाड़ा तहसील के पदेरी क्षेत्र में अभ्रक के साथ वेरिलियम प्राप्त हुआ है। इन सभी स्थानों पर साधनों के अभाव में काम रुके पड़े हैं। वेरिलियम सीकर जिले में टोरडा, बूचरा, चुरला और सांवलपुरा में तथा टोंक जिले में माधोराजपुरा, संकरवाड़ा और धोली में मिलता है। नीम-का-थाना से लगभग 40 किलोमीटर पूर्व के कुछ गांवों में भी यह खनिज पाया जाता है।

अधिकांशतः खानों से अयस्क मुख्यतया मानव श्रम से निकाला जाता है। राजस्थान की खानों से वेरेलियम का वार्षिक उत्पादन 5-7 टन है। इस धातु को विखण्डनशील तत्वों की सूची में शामिल करने के पश्चात् इसकी महत्ता काफी बढ़ गई है। चम्बल घाटी परियोजना से सस्ती जल विद्युत शक्ति प्राप्त होने के साथ वेरिलियम खनिज संयंत्र भी राज्य में ही स्थापित किया जा सकता है।

6. तांबा

तांबा अलोह-धातु पदार्थों में सबसे महत्वपूर्ण है। तांबा कई क्षेत्रों में अपने शुद्ध रूप में तथा कई स्थानों पर यह अन्य पदार्थों के साथ पाया जाता है। यह अधिकतर आग्नेय एवं कायान्तरित शैलों की नसों से प्राप्त होता है। कच्चे खनिजों में धातु का अंश 3 से 6 प्रतिशत तक रहता है। इसका रंग लाल-भूरा होता है। तांबा बहुत ही लचीला एवं बिजली का उत्तम संचालक है। आज के युग में इसका उपयोग बिजली के तारों व अन्य वैज्ञानिक उपकरणों में किया जाने लगा है। सामान्यतः तांबे की कुल मात्रा का 40 प्रतिशत बिजली के उपकरणों में, 15 प्रतिशत तारों में और 45 प्रतिशत अन्य धातुओं के साथ मिलाकर रसायनिक कार्यों के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

तांबे की खानें वैसे तो राजस्थान में कई स्थानों पर पाई जाती हैं लेकिन झुन्झुनू जिले में खेतड़ी, सिंघाना तथा अलवर जिले में खो-दरीबा खान बहुत महत्वपूर्ण है। उपलब्ध खनिज अधिकांशतः तांबा लोह सल्फाईड है जो सामान्यतया शिस्ट और फाईलाट्स में छितरा हुआ मिलता है। राजस्थान में 1979 में कच्चे तांबे का उत्पादन 11.2 लाख टन, 1981 में 8.06 लाख टन 1984-85 में 12.3 लाख टन तांबे का उत्पादन हुआ।

1. **खेतडी-सिंघाना क्षेत्र**—तांबे की ये खानें मांवड़ा स्टेशन से 23 किलोमीटर दूर स्थित हैं। तांबा अयस्क (अ) कोल्हन और मन्धान पुरानी खदान सिंघाना के समीप; (ब) खेतड़ी क्षेत्र, (स) पपरना के पश्चिम में अखवाली खानें, (द) बबाई के पश्चिम में पुरानी खदानें और (ई) वरखेरा आदि खानों में पाया जाता है। इन खानों में से अधिकांश में तांबा अयस्क शेल, शिस्ट

और क्वार्टज में मिलता है। अयस्क रखने वाली चट्टानें लम्बाई में लगभग 24 किलोमीटर तथा चौड़ाई में 3.2 से 5 किलोमीटर तक उत्तर पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा में फैली है। संस्तरण पश्चिम की ओर तीव्रता के साथ झुके हुए हैं।

तांबे की प्रमुख खान खेतड़ी के निकट सिंघाने में है। सरकारी नवीनतम अनुमान के अनुसार यहाँ 360 मीटर गहराई तक तांबा है। खेतड़ी ठिकाने में सर्वप्रथम यहाँ तांबे की खुदाई 1915 से प्रारम्भ की गई। एक निजी उद्योग जयपुर खनन विभाग ने 1944 से 1955 के बीच खुदाई का कार्य करवाया लेकिन खनिज में तांबे की मात्रा कम होने के कारण इसे बन्द कर दिया गया। तत्पश्चात् खेतड़ी की तांबे की खानों को राष्ट्रीय खनिज विकास निगम को सौंप दिया गया जिसने खुदाई के नवीन साधन अपनाकर इससे लाभ अर्जित करने के प्रयास किये। 1967 में फ्रान्स के बेनेट ग्रुप के साथ इन खानों में कार्य करने के लिए समझौता किया गया। खेतड़ी में औसत किस्म के (1%) लगभग 8 करोड़ टन और 2 प्रतिशत उत्तम किस्म के एक करोड़ टन के भण्डार कोलीहान और खो-दरीबा में निहित हैं। इन्हें निकालने का कार्य हिन्दुस्तान तांबा निगम खेतड़ी द्वारा किया जा रहा है। देश में तांबा शोधक कारखाना, खेतडी में स्थापित किया गया है जो प्रतिवर्ष लगभग 30 से 45 हजार टन तांबा साफ करने की क्षमता रखता है। आशा है कि वर्ष 1987-88 तक यहाँ 10 लाख टन तांबा उत्पादन किया जा सकेगा। हाल ही में यहाँ प्रदूषण निवारण के लिए 3 करोड़ की लागत से एक संयंत्र कायम किया गया है।

2. **खो-दरीबा क्षेत्र**—तांबे की खानें अलवर शहर से लगभग 48 किलोमीटर दूर दक्षिण-पश्चिम में खो-दरीबा गांव के निकट कुछ पहाड़ियों के पास स्थित हैं। खनिज फाइलाईट और क्वार्टज चट्टानों में मिलता है। इनके पुर्न-मूल्यांकन से पता चला है कि यहां 2.48 प्रतिशत शुद्धता वाले तांबा अयस्क के 2.8 लाख टन के भण्डार होने के अनुमान है। दरीबा में तैयार सान्द्र को पिघलाने और शुद्ध करने के लिए खेतड़ी तांबा परियोजना में ले जाया जाता है। आजकल इस खान का विकास हिन्दुस्तान तांबा लिमिटेड कर रहा है। भारत सरकार इस क्षेत्र का भूतात्विक सर्वेक्षण कर चुकी है। अलवर जिले में थाना गाजी, कुशलगढ़ सेनपुरी, भगत का वास नामक गांव के पास भी तांबे की खानें मिली हैं।

3. देलवाड़ा-केरावली क्षेत्र—उदयपुर से लगभग 30-40 किलोमीटर दूर देलवाड़ा गांव के निकट इस क्षेत्र की खानें स्थित हैं। अन्य स्थानों की तरह यहाँ भी तांबा अयस्क क्वार्टज और शिस्ट के साथ मिलता है।

4. अन्य क्षेत्र—तांबा अयस्क **उदयपुर** जिले में देबारी स्टेशन के निकट सीसे की खानों में पाया जाता है। भूपालसागर से लगभग 20 किलोमीटर दूर रेलमगरा और दरीबा गांवों के निकट भी तांबा मिलता है। बीकानेर में बीदासर गांव, भीलवाड़ा में पुर के निकट, चूरू, डूंगरपुर, कोटा और झालावाड़ जिलों में भी विभिन्न बिखरे हुए स्थानों पर मिलता है। उदयपुर के अंजनी क्षेत्र में, जगत के खेड़ी में, बून्दी जिले के गरधारी, देवधुआ व कोरमा क्षेत्रों में, सवाईमाधोपुर के खोहरा समपुरा में अलवर के इसरावाल कोयला क्षेत्र में तांबा अयस्क के भण्डारों का पता लगा है। ये क्षेत्र अभी भी पूर्वेक्षण की अवस्था में है। तांबा एक महत्वपूर्ण धातु है, अतः यह आशा की जाती है कि किसी दिन उचित परिवहन सुविधाओं और यांत्रिक शक्ति के अधिक प्रयोग के साथ ये खनन क्षेत्र प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों के रूप में विकसित होंगे। इस राज्य में तांबा उद्योग का विकास व्यापारिक पैमाने पर किया जा सकता है। खेतड़ी-सिंघाना प्रदेश में इस उद्योग के लिए ऊर्जा की आवश्यकता भाखड़ा नांगल ग्रिड से पूरी की जा सकती है। हमारे देश में इलेक्ट्रोलाइटिक तांबे की बड़ी कमी है और इस प्रकार के तांबे का उत्पादन राज्य में प्रारम्भ किया जा सकता है।

अधात्विक खनिज

उष्मारोधी उच्चतापसह एवं मृत्तिका खनिज

1. ऐस्बेस्टॉस

ऐस्बेस्टॉस शब्द से, जैसा कि वह आजकल प्रयोग में लाया जाता है किसी एक निश्चित खनिज का बोध नहीं होता परन्तु यह एक व्यापारिक नाम है, जिसका प्रयोग ऐसे खनिज के लिए होता है जो बहुत कुछ लचीले तन्तुओं

में अलग किया जा सकता है। मूलतः ऐस्बेस्टॉस ऐम्फीबॉल खनिज का एक रूप था पर अब ऐस्बेस्टॉस के कुछ और महत्वपूर्ण रूपों का जिसमें क्राइसोटाइल एक है, पता चला है और वे संसार भर में मिलते हैं। इसका उपयोग सीमेन्ट की चादरें, टाइलें, फिल्टर्स, बॉयलर्स तथा दूसरी ताप निरोधक वस्तुओं के निर्माण में किया जाता है।

व्यापारिक ऐस्बेस्टॉस दो मुख्य वर्गों जैसे क्राइसोलाइट और एम्फीबॉल के रूप में पाया जाता है परिणामस्वरूप इस खनिज की कई किस्में उपलब्ध होती हैं। एम्फीबॉल किस्म का खनिज घटिया श्रेणी का है जो राजस्थान में मिलता है। एम्फीबॉल में तीन किस्में जैसे ट्रेमोलाइट, एक्टीनेलाइट और ऐस्बेस्टॉस महत्वपूर्ण हैं। इन तीन किस्मों की रासायनिक संरचना और आकृति ऐस्बेस्टॉस से काफी मिलती-जुलती है लेकिन ऐस्बेस्टॉस के रेशे लम्बे होते हैं तथा हाथ से अलग किये जा सकते हैं। परिवर्तित चट्टानों में ट्रेमोलाइट किस्म मिलती है।

राजस्थान देश के कुल उत्पादन का लगभग दो तिहाई उत्पादन करता है। राज्य ने 1981 में 22,700

राजस्थान में खनिजों का वितरण
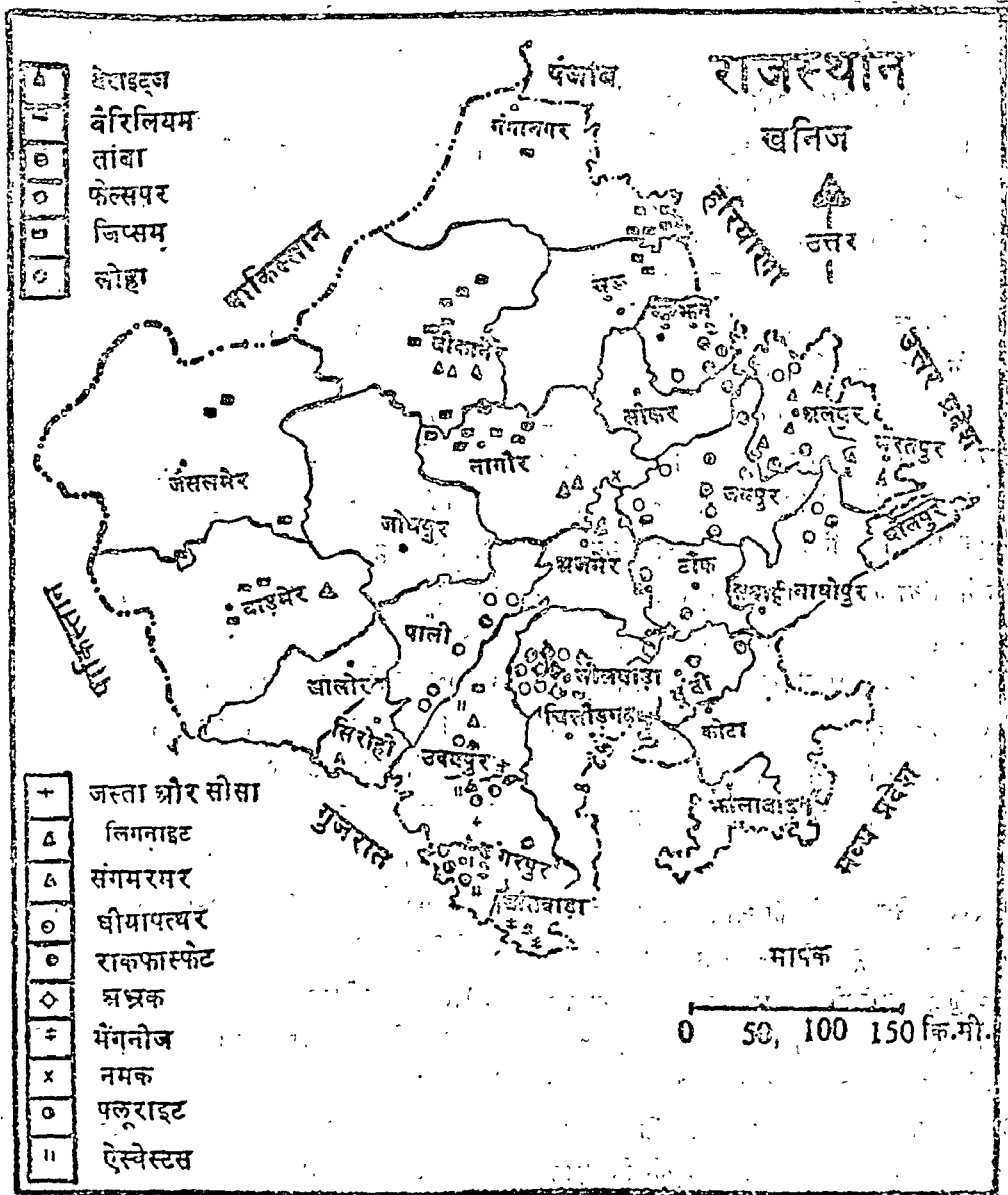
टन ऐस्बेस्टॉस का उत्पादन किया। इसके उत्पादन में सन् 1955 से 22 गुना से भी अधिक वृद्धि हुई है। सन् 1985-86 में खनिज का उत्पादन 26,300 टन हुआ। राजस्थान में इसकी लगभग30 खानें हैं। उत्पादन के मुख्य क्षेत्र उदयपुर जिले में खेरवाड़ा और रिषभदेव में स्थित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बिखरें और छोटे क्षेत्र नाथद्वारा, कान्थल, आसिन्द, डेकलिया,सालुम्बर,बरना और गुजाम में स्थित है। डूंगरपुर जिले के देवल,खेमारु, पीपरदा,मलवा, डूंगरसारभ तथा जकोल की खानों से खनिज मिलता है। इन क्षेत्रों के अलावा कुछ क्राइसोलाइट क्षेत्र अजमेर, उदयपुर और जोधपुर में मिलते हैं। इन खदानों से प्राप्त खनिज साधारणतः भूरापन लिए सफेद रंग का होता है। राज्य में खनन तथा तन्तुओं को प्राप्त करने का कार्य आदिम तरीकों से किया जाता है। खनिजों को घरट्ट में पीसा जाता है। पिसाई के पश्चात् इसे पाउडर अथवा रेशे के रूप में सुखाया जाता है।

2. फेल्स्पार

फेल्स्पार एक विस्तृत नाम है जो सामान्यतः अल-काली एल्युमिना सिलीकेट खनिजों के एक वर्ग के लिए प्रयुक्त होता है। इनमें से सब से महत्वपूर्ण खनिज माइ-क्रोक्लिन, आर्थोक्लेज तथा ऐल्बाइट माने गये हैं। व्यापारिक फेल्स्पार-पोटाश स्पर और सोडास्पर का मिश्रण है। भारत में राजस्थान फेल्स्पार का 61% उत्पादन करता है परन्तु इसका उपयोग पड़ौसी राज्यों के द्वारा अपने उद्योगों में किया जाता है। फेल्स्पार पैग्मे-टाइट शिलाओं में, जो अरावली दिल्ली समूह की शिलाओं में प्रविष्ट हो जाती हैं, मिलता है। यह खनिज अभ्रक युक्त पैग्मेटाईट में पाई जाती है। इसलिए अजमेर, उद-यपुर, अलवर और जयपुर में फेल्स्पार सभी अभ्रक और विरल खानों से बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्त होता है। इस खनिज की प्राप्ति अभ्रक खानों से सह-उत्पाद के रूप में होती है।

अजमेर जिले में फेल्स्पार अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। राजस्थान का 96 प्रतिशत फेल्स्पार अजमेर जिले से ही प्राप्त होता है। अजमेर तथा व्यावर के निकट चक्की के पाटों में इसे पीसा जाता है। पीसा हुआ फेल्स्पार सिरेमिक उद्योग की मांग की पूर्ति के लिए भेजा जाता है।

फेल्स्पार की खुदाई सामान्यतः विस्तृत गर्तों में की जाती है और कई खदानों से लगभग विशुद्ध फेल्स्पार मिल सकता है। इसमें अभ्रक या स्फटिक की कोई मिलावट नहीं होती है। यदि किसी समय पेग्मेटाइट शिलाओं में मिलने वाले स्फटिक फेल्स्पार तथा अभ्रक के पृथक्करण के लिए प्लवन अर्थात फ्लोटेशन विधि को अपनाया जाना जरूरी हुआ तो राजस्थान में फेल्स्पार के प्राप्त उपलब्धियों में कई गुना वृद्धि हो जायेगी।

मुख्य खानें **जयपुर** जिले में डूंगरवाड़ा, दादिया; बान्देरवेनरी, गुजरवाड़ा, **पाली** जिले में चाम्रोन्दिया, प्रतापगढ़, डिगोर, फूलद, बाड़ा और कई छोटी-छोटी खानें **टोंक, सीकर, उदयपुर और बांसवाड़ा** जिलों में पाई जाती हैं। सन् 1955 तथा 1964 में इसका उत्पादन क्रमशः 6,200 व 12,000 टन था जो बढ़कर सन् 1981 में 48,900 टन हो गया। सन् 1985-86 में इसका उत्पादन 53,000 टन हुआ।

साधारणतः इस खनिज का उपयोग चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने, कांच, मीना व अपघर्षकों के बनाने में किया जाता है।

3. कांच बालुका

साधारण सिलिका रेत कांच उद्योग के लिए एक महत्वपूर्ण कच्चा माल है। इसमें अशुद्धियों की मात्रा कम होनी चाहिए।

देश में कांच बालुका के प्रमुख उत्पादकों में से राज-स्थान एक प्रमुख उत्पादक राज्य है। पिछले तीन दशकों में इसके उत्पादन में राजस्थान ने एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है। वर्ष 1981 में इस खनिज का वार्षिक उत्पादन 1 लाख 28 हजार टन हुआ जिसका मूल्य 41 लाख 12 हजार रुपये था। सन् 1986 में इसका उत्पा-दन 1.47 लाख टन रहा।

उत्तरप्रदेश के बाद कांच बालुका का सबसे बड़ा उत्पादक क्षेत्र राजस्थान ही है। राजस्थान से प्राप्त इस खनिज के भण्डार मुख्यतः बूंदी जिले में बारोदिया, जय-पुर जिले में झर, सांगोट, चित्तोड़ी, कुण्डाल, धूलाधोटुर, मानोता, बासखों, बर्थाल, सवाईमाधोपुर जिले में ऐलन-

पुर, नारायणपुर, नरोली, टटवारा, सापोतरा, भरतपुर जिले में जगजीवनपुरा व हथौड़ी; बीकानेर जिले में गढ़; बाड़मेर जिले में शिव तथा कोटा जिले में कुण्डी आदि स्थानों में मिलते हैं। इसमें से बारोदिया (बून्दी), झर, सांगोद (जयपुर) तथा ऐलानपुर सवाईमाधोपुर) के भण्डार सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। जयपुर व कोटा जिलों में अच्छी किस्म की तथा बीकानेर जोधपुर व उदयपुर में अपेक्षाकृत घटिया किस्म की कांच-बालुका मिलती है। कोटा की छबड़ा तहसील के हनुन्तखेड़ा व कुन्दी क्षेत्रों में सिलिका रेत के भण्डार मिले हैं। राजस्थान के कुल उत्पादन का लगभग 65 प्रतिशत जयपुर जिले से तथा 31 प्रतिशत बूंदी जिले से प्राप्त किया जाता है। शेष भाग कोटा, बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर तथा अन्य जिलों से प्राप्त होता है।

धौलपुर के कांच के कारखाने में थोड़ी कांच-बालुका काम में आती है। शेष का यहाँ से उत्तर प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र राज्यों के कांच उद्योगों को निर्यात कर दिया जाता है।

4. चीनी मृतिका

यह सब मिट्टियों में मूल्यवान होती है। यह मृत्तिका प्राय: ग्रेनाइट की फेल्सपार नामक खनिज के क्षय से उत्पन्न होती है। यह साधारणत: सफेद पीलापन लिए सफेद रंग की होती है। पोटाश और सोड़ा मिट्टी में न होने से यह अग्नि-रोधक भी होती है। सिरेमिक सिलिकेट उद्योग के लिए चीनी मृत्तिका महत्वपूर्ण है।

चीनी मृत्तिका के महत्वपूर्ण क्षेत्र राजस्थान में **सवाईमाधोपुर** जिले में बसुव रायसीना, सीकर जिले में बूचारा, टोरड़ा, पुरुषोत्तम पुरा, मांवड़ा, अलवर जिले में बसबागेट और जालौर जिले में पाल आदि है। बूचारा तथा टोरड़ा के भण्डार काफी बड़े हैं। इन मिट्टियों में 34-38 प्रतिशत ऐल्युमिना होता है और वे श्रेष्ठ कोटि की केओलिन मिट्टियां हैं। उदयपुर के समीप खारा बरियाका गुढ़ा में काफी बड़े भण्डार प्राप्त हुए हैं। इन का मुख्यत: दिल्ली की चीनी मिट्टी के बर्तनों के कारखानों में प्रयोग होता है है।

वर्ष 1968 में इसका उत्पादन 37,500 टन था जबकि यह 1981 में बढ़कर 1.99 लाख टन हो गया। मृत्तिका का उचित उपयोग करने के लिए इसकी धुलाई अनिवार्य है। इसकी धुलाई का एक कारखाना निजी क्षेत्र में नीम का थाना में स्थापित किया गया है। लेकिन ऐसे ही और भी कई कारखाने स्थापित किये जाने की आवश्यकता है। जिससे राज्य के भण्डारों का पूर्ण एवं सही उपयोग किया जा सके।

5. अग्नि अवरोधक मिट्टियां

इन मिट्टियों में पोटाश अथवा सोड़ा का अंश बहुत कम होता है। इनके भण्डार बीकानेर जिले में कोलायत तहसील में गढ़, कोटरी, रानेरीं तथा इन्डका बाला स्थानों में मिलते हैं। इन क्षेत्रों में लगभग 50-60 लाख टन परिमाण में मिट्टी मिलती है। ये वास्तव में लेसदार अग्निरोधक मिट्टियां हैं। भीलवाड़ा जिले के मंगरूप तथा बनियाखेड़ा और चित्तौड़गढ़ जिले के एरल स्थान पर भी इसके क्षेत्र मिलते हैं, यहां इनके भण्डार लगभग 70 लाख टन के हैं। राज्य में वर्ष 1968 में इसका उत्पादन 2,500 टन था जबकि वर्ष 1981 में यह बढ़कर 41,000 टन हो गया। सन् 1985-86 में इसका उत्पादन 56,000 टन रहा। इनका उपयोग मिट्टी के बर्तनों, बिजली के पोर्सलीन पदार्थों, काश्म पदार्थों (स्टोनवेयर) तथा अग्निरोधक पदार्थों के निर्माण में किया जा सकता है।

बीकानेर जिले में पलाना में कोयले के नीचे प्राप्त मिट्टी भी अग्नि-रोधक मिट्टी है और जब कोयले को खुली खदान विधि से निकाला जाने लगेगा तो यह उपलब्ध हो सकेगी।

6. डोलोमाईट

डोलोमाइट में कैल्शियम तथा मैग्नीशियम का दुहरा कार्बोनेट होता है। डोलोमाईट युक्त चूना पत्थर में मैग्नीशियम कार्बोनेट का अनुपात कम हो जाता है। जिन्हें डोलोमाईट कहा गया है। उनमें से अधिकतर वास्तविक डोलोमाईट कुछ स्थानों में पाये जाते हैं।

अजमेर, जयपुर, अलवर, जोधपुर तथा सीकर जिलों में अधिकांशत: उच्च मैग्नेसिया वाला चूना पत्थर ही खोद कर निकाला जा रहा है। राजस्थान के कुल उत्पादन का 48 प्रतिशत जयपुर जिले से प्राप्त

होता है। इसके बाद 23 प्रतिशत अलवर व 15 प्रतिशत सीकर जिले से प्राप्त होता है। वर्ष 1976 में इस का उत्पादन 32,900 टन था जबकि वर्ष 1981 में घटकर कुल 13,100 टन ही रह गया। सन् 1985-86 में इसका उत्पादन 19,000 टन रहा।

इसका उपयोग इमारती पत्थर के व्यापार के लिए पत्थर के टुकड़ों तथा चूरे के बनाने में होता है। इसका कुछ भाग चूना बनाने के काम में भी आ जाता है। जहाँ सम्भव हो यह मैग्नेसाइट की जगह प्रयुक्त होता है क्योंकि यह अधिक सस्ता होता है। इसका उपयोग कृषि कार्यों, कागज बनाने की सल्फाइट विधि में अम्लीय द्रव्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

इलेक्ट्रोनिक एवं आणविक खनिज

अभ्रक—अभ्रक आग्नेय और कायान्तरित चट्टानों में सफेद या काले अभ्रक के छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में पाया जाता है। सफेद अभ्रक के टुकड़े धारियों के रूप में बनी हुई है पैग्मेटाईट नामक आग्नेय चट्टानों में ही मिलते हैं। सफेद अभ्रक को रूबी अभ्रक और हल्का गुलाबीपन लिए अभ्रक को बायोटाईट अभ्रक कहते हैं।

आधुनिक विद्युत सम्बन्धी उद्योगों के लिए अभ्रक एक अपरिहार्य पदार्थ है। इसका उपयोग इन्सूलेटर के लिए किया जाता है। यह ऐसा खनिज है जिसे किसी भी स्मेल्टर में सीधा काम में लिया जा सकता है। दवाईयाँ बनाने, सजावट करने, आभूषणों में जड़ने के लिए, छोटे-छोटे डायनमों, बेतार के तार, मोटर और हवाई यातायात में, लालटेन की चिमनियों, नेत्ररक्षक चश्मों, अग्नि प्रतिरोधक पदार्थों के सामान, बॉयलरों के भीतर लगाने आदि में इसे काम में लिया जाता है। युद्ध व सैनिक दृष्टिकोण से भी अभ्रक का महत्त्व अधिक है। अभ्रक के बचे चूरे से चादरें बनाई जाती हैं। इस उद्योग को माइकेनाइट कहा जाता है। माइकेनाइट की चादरों को कोई भी आकार दिया जा सकता है। इस प्रकार अभ्रक का महत्त्व बहुत अधिक है।

राजस्थान के बहुमूल्य खनिजों में अभ्रक का मुख्य स्थान है। यह देश के कुल उत्पादन का लगभग 25 प्रतिशत खनन कर दूसरे स्थान पर है। राज्य में अभ्रक की लगभग 225 खानें है। अभ्रक का उत्पादन सन् 1981 में 1,000 टन था लेकिन वर्ष 1985 में इसका उत्पादन 800 टन हुआ। राजस्थान में अभ्रक लगभग 30,720 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में पाया जाता है। अतः क्षेत्र की दृष्टि से राजस्थान का देश में प्रथम स्थान है।

अभ्रक, पोटेशियम और हाइड्रोजन के सिलीकेट से बनता है। बायोटाइट जैसी किस्म में इसके साथ लोहा व मैग्नेशियम भी मिलता है जिसके कारण इसका रंग गहरा हो जाता है। अतः गहरे रंग की किस्मों में लोहा व मैग्नेशियम भी पाये जाते हैं। यह उन खनिजों में से है जिसका उपयोग किसी भी स्मेलटर में सीधा कर लिया जाता है।

राजस्थान में अभ्रक उत्पादन की प्रमुख पट्टी उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा में फैली है। इस पट्टी को दो क्षेत्रों में विभाजित कर सकते हैं।

(i) उत्तरी-पूर्वी अभ्रक पेटी।

(ii) दक्षिणी-पश्चिमी अभ्रक पेटी।

इनके अतिरिक्त अन्य क्षेत्र डूंगरपुर, बूंदी और सीकर में मिलते हैं।

(1) **उत्तरी-पूर्वी अभ्रक पेटी**—इस अभ्रक पेटी में टोंक जिला और दक्षिणी जयपुर प्रमुख हैं। टोंक जिले की मुख्य अभ्रक खानें बरला, मानखण्ड, शंकरवाड़ा, बारचोला, मिराऊँ, धौली, बारोनी और पालरी आदि हैं। जयपुर में अभ्रक अब बंजारी और लक्ष्मी खानों से प्राप्त किया जाता है। अन्य खानें भोजपुरा, माधोराजपुरा और कर्नवा का बास (फागी तहसील) आदि पाई जाती है लेकिन उनमें वर्तमान में खनन कार्य बन्द हो चुका है। खनन कार्य में से कुछ कार्य मुख्य रूप से बरला खान में काफी यान्त्रिक एवं विद्युतीकृत हैं। इन खानों से अभ्रक 12 मीटर से 27 मीटर की गहराई तक निकाला जाता है।

(2) **दक्षिणी-पश्चिमी अभ्रक पेटी**—यह पेटी अभ्रक के उत्पादन की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। इस पेटी में मुख्यतः भीलवाड़ा और उदयपुर जिलों की खानें हैं। यहाँ अभ्रक की मुख्य पेटी उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में फैली है। नात-की-नेरी, तूनका, सिदिरियास, चापरी, रतनगामा, भानकिया, बन्जारी, घोगास, गोरखन, देमाली, कोचरिया, गोकुलपुरा, धावमण्ड खानें

आदि मुख्य खानें हैं। इनमें से कुछ खानों से अभ्रक लगभग 60 मीटर की गहराई तक निकाल लिया गया है। पैग्मेटाइट मुख्य अभ्रक रखने वाली चट्टान है। मानकिया खान में पैग्मेटाइट कड़ियों के रूप में मिलता है। प्रत्येक कड़ी की दिशा और अवस्थिति भिन्न है जबकि अधिकांश कड़ियां एक दूसरे से जुडी हुई हैं। अन्य खानों जैसे गोरखन, बेमाली में पैग्मेटाईट विशाल किस्म के हैं और पहाड़ियों के पर्वतपदीय पार्श्वों पर अभ्रक दृष्टिगोचर होता है। यहां का अभ्रक हल्के काले धब्बेदार होता है उदयपुर में चम्पागुढ़ा, धोलामेतरा और गालवा महत्वपूर्ण खानें हैं। लगभग सभी खानें उदयपुर के उत्तरी-पूर्वी सीमा में स्थित है और यह पेटी भीलवाड़ा खानों से निरन्तर आगे उत्तर में चली गई है। अधिकांश खानें भूमिगत तरीके से काम में लाई गई हैं। वर्तमान में वित्तीय संसाधन की कमी और इस उद्योग के लिए आवश्यक उपयुक्त यन्त्रों की कमी के कारण उत्पादन में गिरावट आई है।

अभ्रक के अन्य क्षेत्र—इनमें सीकर की अभ्रक खानें मुख्य हैं जो जिले के उत्तर-पूर्व में स्थित हैं। अभ्रकयुक्त चट्टानें अरावली क्रम की शिस्ट के साथ तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि ये देहली क्रम के शिस्टोल शैल समूहों के साथ मेल खाती हैं। मुख्य खानें तेरावाटी तहसील में, काचारड़ा, मकरी और मुण्डा में हैं। इन खानों में अभ्रक हरी किस्म का मिलता है। कुछ छोटी खानें, अजमेर, किशनगढ़, ब्यावर, अलवर, पाली आदि में भी मिलती है।

राज्य से निर्यात होने वाले अभ्रक में से अधिकतर दरातीनुमा काला अभ्रक होता है। राज्य का प्रायः सभी अभ्रक विहार राज्य को भेज दिया जाता है। अतः राज्य के अभ्रक का व्यापार विहार द्वारा नियन्त्रित होता है। विहार में अभ्रक को अलग-अलग पर्तों में कर के विदेशों को भेज दिया जाता है। राज्य में अगर अभ्रक की कटाई छंटाई शुरु हो जाये तथा इसे पर्तों में करने की व्यवस्था हो जाय तो राज्य सीधे ही इसका निर्यात विदेशों को कर सकेगा।

यूरेनियम—यह अणुशक्ति सम्बन्धी खनिज है। इसकी खानें डूंगरपुर, बांसवाड़ा और किशनगढ़ में हैं। ये खानें बहुत छोटी हैं व उत्पादन बहुत ही कम होता है। आणविक खनिजों की खोज की गई है, अतः राजस्थान के अनेक भागों में इनके पाये जाने की सम्भावनाएं हैं।

बहुमूल्य पत्थर

1. पन्ना—पन्ना उन विशिष्ट खनिजों में से एक है जिनमें राजस्थान का देश में एकाधिपत्य है। पन्ना एक सुन्दर मखमल के समान हरे रंग का रत्न है जिसे कभी-कभी 'हरी अग्नि' भी कहा जाता है। यह प्रकाशमयी होता है तथा अपने कठोर रंग, आपेक्षिक घनत्व एवं अपवर्तक विशेषताओं के लिए परिचायक हैं। पन्ना के अलावा अन्य मणि पत्थर जैसे हीरा, रूबी, सेफायर व टोपाज सभी अपनी मौलिक आकृति में मिलते हैं और उपयोग के पूर्व इन्हें तराश कर मनचाही आकृति प्रदान की जाती है।

पन्ना विरल की एक हरी किस्म है और रासायनिक तौर पर यह वेरिलियम और एल्युमिनियम का एक जटिल सिलिकेट यौगिक है। इसका मनोहरी हरा रंग सम्भवतः मणिभ में क्रोमियम की लेशमात्र विद्यमानता के कारण है। शुद्ध एवं उत्तम पन्ना बहुत ही कीमती होता है लेकिन दोष रहित पन्नों का प्राप्त करना बहुत कठिन है। पन्ने के भण्डार बायोटाइट शिस्ट, एक्टीनोलाइट शिस्ट, टॅल्क शिस्ट आदि शिलाओं के साहचर्य में मिलते हैं। पन्ने के उत्पादन क्षेत्र अधिकतर पूर्व अरावली पट्टिताश्म नीस संश्लिष्ट चट्टानों तक ही सीमित हैं। राजस्थान में सर्वप्रथम इसका पता 1943 में उदयपुर जिले में काला गुमान क्षेत्र में लगा।

इसका उत्पादन प्रतिवर्ष लगभग 80,000 केरट हैं। लगभग सभी पन्ना उदयपुर जिले के उत्तर में एक सकड़ी पट्टी में मिलता है जो उत्तर में देवगढ़ से दक्षिण में कांकरोली तक गढ़वाली मारवाड़ जंक्शन रेलवे स्टेशन के सहारे फैली है। इस फैलाव में पन्ना के निम्न क्षेत्र स्थित हैं—

कालगुमान क्षेत्र—पन्ना उत्पादक खानें आमेट स्टेशन से लगभग 12 किलोमीटर पश्चिम में और कालगुमान गाँव से लगभग दो किलोमीटर दूर स्थित है। मौलिक अन्तर्भेदन के फलस्वरूप कायान्तरित प्रक्रियाओं के संपर्क के द्वारा पन्ना का निर्माण हुआ है।

टिखी क्षेत्र—ये क्षेत्र आमेट स्टेशन से लगभग 24 किलोमीटर उत्तर-पूर्व और देवगढ़ स्टेशन से लगभग 7 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में स्थित है। पन्ना की खानें टिखी गाँव से लगभग 1.6 किलोमीटर दक्षिणी-पूर्व में स्थित हैं। यहां पन्ना सामान्यतः बायोटाईट शिस्ट,क्वार्टज शिस्ट और एक्टीनोलाइट शिस्ट आदि शिलाओं के साहचर्य में मिलता है।

गोगुन्दा क्षेत्र—यह क्षेत्र नाथद्वारा स्टेशन से लगभग 26 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित हैं। इनके अतिरिक्त पन्ना गढ़बोर, ढब्रकुसिया, थोना आदि में भी पाया जाता है।

पन्ना स्फटकों का आकार इन क्षेत्रों में मटर के दाने से लेकर 2 5 सेन्टीटीटर तक होता है। 2 सेन्टीमीटर से अधिक होने पर आकार असाधारण माना जाता है। अपरिष्कृत पन्ना अयस्क सर्वप्रथम धोकर साफ किया जाता है और फिर विशेषज्ञों के द्वारा उसे काटकर वांछित आकृति में तराशा जाता है।

वर्तमान में पन्ना के खनन कार्य में शिथिलता आ गई है क्योंकि खनन लागत दिनोंदिन ज्ञात खदानों की अधिक गहराई के कारण बढ़ती जा रही है।

2. तामड़ा—राजस्थान का तामड़ा उत्पादन में एकाधिपत्य है। तामड़ा को रक्तमणि भी कहते हैं। अनेक शताब्दियों से टोंक जिले के राजमहल व अजमेर में सरवाड़ से प्राप्त तामड़ा संसार मे प्रसिद्ध रहे हैं। यह वास्तव में लोहा व एल्युमिनियम का मिश्रण होता है। इसमें पारदर्शी किस्म के पदार्थ भी मिलते हैं जो लाल रंग के सुन्दर व आकर्षण होते हैं।

राजस्थान में यह बहुत से स्थानों में विक्रान्त युक्त क्लोराइट अभ्रक शिस्ट तथा एम्फीबॉल शिलाओं में मिलता है। कुछ क्षेत्रों में यह शिस्ट तथा पैग्मेटाइट शिलाओं के सम्पर्क में मिलता है। तामड़ा की खानें छोटी होती हैं। ये खानें अजमेर जिले में सरवाड़ तथा खरखारी में टोंक जिले में राजमहल, गांवरी कुशलपुरा तथा जनकपुरा में, भीलवाड़ा जिले में कमलपुरा, दादिया व वालियाखेड़ा में एवं सीकर जिले में महवा व वागेश्वर में मिलती है।

राजस्थान में सन् 1979 में अपघर्षी तामड़ा का उत्पादन 1600 टन रिकार्ड किया गया। इसके पूर्व के वर्षों में इसका उत्पादन 200 से 400 टन के बीच रहा तथा सन् 1980 के बाद भी इसके उत्पा- में गिरावट आई। सन् 1982 में इसका उत्पादन 780 टन हुआ।

रसायनिक खनिज

1. नमक—नमक सोडियम और क्लोरीन गैस का मिश्रण होता है। राजस्थान में इसका उत्पत्ति स्थान खारी झीलों में है।

राजस्थान में नमक बनाने के लिए निम्न आदर्श सुविधाएं उपलब्ध हैं।

(1) खारा जल मिलने की सुविधा अर्थात राज्य के आन्तरिक भागों में खारी झीलें जैसे सांभर, पचभद्रा, डीडवाना आदि से जल मिलने की सुविधा है।

(2) वर्षा का अभाव तथा शुष्क ऋतु की अनुकूलता

(3) वेगवती पवनों तथा कड़ी धूप का होना।

(4) अधिक वाष्पीकरण क्रिया की सुविधा जिसके द्वारा नमकीन जल की क्यारियों से जल वाष्प बन कर उड़ सके।

राजस्थान में सांभर, डीड़वाना और डिगाना नमक झीलें हैं। राजस्थान की खारी भूमि और झीलों से नमक की उत्पत्ति के बारे में हालैंड तथा क्रिस्त का विचार है कि अरब सागर में आने वाली मानसून पवनें ग्रीष्म ऋतु में राजस्थान में चलती रहती हैं। उनके साथ कच्छ की खाड़ी से नमक के कण उड़कर चले आते हैं और राजस्थान तक आते आते इन हवाओं का वेग तथा चाल धीमी हो जाती है फलस्वरूप वे नमक के कण राजस्थान में गिर जाते हैं। अन्ततः इस भाग में बहने वाली नदियों जैसे मेढ़ा, रुपनगढ़, खारी और खण्डेला के द्वारा बहाकर सांभर जैसी झीलों में एकत्र कर दिये जाते हैं। यही कारण है कि सांभर झील छोटी हैं। किन्तु वर्षा ऋतु में इसका जल 230 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में फैल जाता है। सांभर झील के तल की मिट्टी में कम से कम 4 मीटर तक 5 प्रतिशत के हिसाब से नमक का अंश है। इस झील के नमक का परिणाम डॉ. क्राइस्ट द्वारा लगभग 5 करोड़ टन होने का कूंता गया है। जब सांभर झील का जल मार्च अप्रेल में सूख जाता है तो झील के ऊपर

नमक जम जाता है तब इसे एकत्र कर लिया जाता है। जो कटु नमक शेष रहता है उसे अलग इकट्ठा कर लेते हैं। इस कटु नमक में 25 प्रतिशत सोडियम सल्फेट और 8 प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट होता है।

डॉ. डनीक्लीफ की गणनानुसार सांभर झील भारत में नमक का सबसे बड़ा स्रोत है। सांभर का नमक राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली व मध्यप्रदेश में खपता है।

इस झील के अतिरिक्त राजस्थान में कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहां पृथ्वी के नीचे बहने वाले नमकीन जल को निकालकर, फिर उसे सुखा कर नमक बनाया जाता हैं। पचभद्रा में 31 मीटर लम्बे तथा 3.5 मीटर गहरे और 15 से 18 मीटर चौड़े कुए बनाकर नमक बनाया जाता है। डीडवाना की झील से सोडियम सल्फेट प्राप्त किया जाता है। सांभर में नमक बनाने का कार्य हिन्दुस्तान नमक कम्पनी द्वारा तथा पचभद्रा, डीडवाना में राजस्थान सरकार द्वारा किया जाता है। राजस्थान में नमक का उत्पादन वर्ष 1981 में 9,43,610 टन रिकार्ड किया गया।

नमक से सम्बन्धित अन्य वस्तुयें जैसे सोडा एश कास्टिक सोडा, सल्फर तथा अन्य रसायनिक वस्तुएं अत्यन्त महत्व रखती है।

2. बेराइट्स—रासायनिक संगठन के अनुसार बेराइट्स बेरियम सल्फेट है और इसे भारी पत्थर भी कहते हैं। यह प्रकृति में सफेद, धूसर हरे या लाल रंग में पाया जाता है। राजस्थान में बेराइट्स दरारों में मिलते हैं। यद्यपि वर्तमान में यह अधिकतर खदान से निकाला जाता है। फिर भी कई स्थानों पर गहराई में शिराओं की स्थिति तथा अधिक अधिभार के कारण खनिज को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त खनन विधियों को ग्रहण करना ठीक रहेगा।

बेराइट्स का व्यापारिक उत्पादन अलवर और भरतपुर जिलों तक ही सीमित हैं। अन्य छोटे क्षेत्र अजमेर, बीकानेर और सीकर जिलों में हैं लेकिन उनका खनन अनार्थिक होगा, इसलिए उनसे यह नहीं निकाला जा रहा है।

अलवर जिले में खनिज दो अलग पेटियों में मिलता है—(1) प्रथम पेटी उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम की दिशा में लगभग 20 किलोमीटर लम्बी है जिनमें राजगढ़, लादिया गूजर, बालूपुरा, उगडण, डहरा, धोकेला, टेकड़ा, जागडोली, खोरा, मकरोड़ा और बावेली-भगत का-बास आदि क्षेत्र आते हैं।

(2) दूसरी पट्टी अलवर तहसील से सैनपुरी से अकबरपुर तक उत्तर-पूर्व से दक्षिण पश्चिम दिशा में लगभग 30किलोमीटर लम्बी है। इस क्षेत्र में सैनपुरी श्योदानपुर, रींगसपुरा, धोनीदूब, झारोली, धौलीधुप, बूरासिन्धु, भानखेड़ा और उमरेन आदि में खनिज के जमाव मिलते हैं।

इन दोनों पट्टियों में कुल 18 गनन पट्टे आवंटित है किन्तु प्रथम पट्टी में खोरा मकरीड़ा, भगत का वास, जागडोली तथा दूसरी पेटी में सैनपुरी, भानखेड़ा, उमरेना व रीगसपुरा की खानें मुख्य हैं जो एक सौ पचास मीटर तक गहरी हैं। अजमेर जिले में पुष्कर के निकट तिलोरा में बेराइट्स के भण्डार दिसम्बर1988 में पाये गये हैं।

यह खनिज क्वार्टज और फ्लाइट्स चट्टानों में बेरियम सल्फेट के रूप में पाया जाता है तथा इसका 4 से 4.5 तक आपेक्षिक घनत्व होता है। सफेद गुलाबी सलेटी और कत्थई रंग में पाया जाने वाला खनिज परत के रूप में न होकर बीच-बीच में/से चट्टानों को फोड़ता हुआ निकलता है। एक अच्छी किस्म के बेराइट्स में 95 प्रतिशत तक बेरियम सल्फेट मिलता है। अलवर जिले में सन् 1984 से ही इस खनिज पर आधारित अनेकों उद्योग स्थापित हैं जिनमें मैसर्स बेरियम रासायनिक फैक्ट्री, बेरियम कार्बोनेट और दूसरे रसायन बनाने की राजस्थान में ही नहीं बल्कि भारत में पहली फैक्ट्री थी। भरतपुर जिले में बेराइट्स बैर कस्बे से 10 किलोमीटर दूर हथोरी, कोरवां व घाटोली गांवों में मिलते है ये बयाना रेल्वे स्टेशन से 18 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित हैं।

इन स्थानों पर पट्टे नियमानुसार दिये हुए है। ये जमाव क्षेत्र छोटे होते है और यहां पर उत्पादन 1964 में 367 मैट्रिक टन था। बूंदी में ऊमर के निकट तथा सीकर में खड़गविनीपुर के पास बेराइट्स मिलता है। वर्ष 1955 में बेराइट्स का उत्पादन केवल 12 टन था जो निरन्तर बढ़कर 1960 में 3,106 टन हो गया फिर

इसके उत्पादन में उतार चढ़ाव आते रहे और 1975 में इसका उत्पादन 5,500 टन रिकार्ड किया गया था लेकिन 1981 में यह घटकर 4,300 टन हो गया। 1983-84 में इसका उत्पादन 5,600 टन रहा।

इस महत्वपूर्ण खनिज का उपयोग तेल के कुएं खोदने, रंग रोगन उद्योग, कागज उद्योग तथा ब्लीचिंग पाउडर बनाने के अतिरिक्त पटाखे बनाने, दवाइयाँ एवं दवा युक्त क्रीम बनाने में भी किया जाता है। लिथोफोन पर आधारित एक मध्यम आकार का उद्योग बाजार की निकटता तथा कच्चे माल की पूर्ति को दृष्ठिगत रखते हुए अलवर में स्थापित किया जा सकता है। इसके विकास की पूर्ण सम्भावनाएं हैं।

3. **चूने का पत्थर**—चूने का पत्थर राजस्थान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण इमारती पत्थर विभिन्न भू-वैज्ञानिक कालों जैसे अरावली, रायलों, अजबगढ़, विध्यन तथा चुतुर्थकीय आदि का राज्य के सभी भागों में मिलता है। अरावली काल का चूना पत्थर बहुत ही अशुद्ध है तथा डोलोमाइट की इतनी अधिक मात्रा रहती है कि चूना बनाते समय यह अधिक काम में नहीं लाया जाता। रायलों श्रेणी के चूना पत्थर को जलाने से अच्छा चूना मिलता है। अजबगढ़ श्रेणी के चूना पत्थर का जयपुर तथा सिरोही जिलों के बहुत से स्थानों पर चूना बनाने के लिए प्रचुरता से उपयोग किया जाता है। विध्यन काल का चूना पत्थर पिछले कई दशकों से पाली और नागौर जिले के सोजत, बिलाड़ा, गोटन, अटबडा, मूंडवा आदि स्थानों में चूने के निर्माण उद्योग का आधार बन गया है। चूना पत्थर एक सर्वव्यापी खनिज उद्योग रहा है और चूने के भट्टे राज्य में सब कहीं दूर-दूर बिखरे हैं जहाँ चूना पत्थर या कंकड़ जला कर अनबुझा चूना तैयार किया जाता है।

निम्बाहेड़ा श्रेणी के विध्यन काल का चूना पत्थर फर्श में जड़ने योग्य चौकों तथा टाइलों की खुदाई के लिए बहुत ही उपयुक्त है। यह पत्थर चित्तौड़गढ़ तथा कोटा जिले में कई स्थानों पर खोदकर निकाला जाता है। यहाँ अन्य महत्वपूर्ण खदानें मानपुरा, भेनेड़ा, सेंथी, सावा, खोडीप, जावड़ा, निम्बाहेड़ा आदि गांवों के निकट स्थित है। विध्यन काल के चूना-पत्थर कोटा से लगभग 64 किलोमीटर दक्षिण में रामगंज मण्डी मोड़क एवं सुकेत के निकट भी विस्तृत रूप से खोदकर निकाले जा रहे हैं। बिलाड़ा, मांडवा, नोखा, कुण्डाल, मावली, भूपालसागर, जगपुरा, बारा, अर्चं, बीकानेर में बीचावल, कंसगर आदि में घटिया किस्म का चूना बनाने के पत्थर की खानें हैं।

यद्यपि चूने के पत्थर का चौके या पट्टियों के रूप में प्रयोग बहुत लम्बे अरसे से होता रहा है, लेकिन इसका प्रमुख उपयोग आधुनिक समय में पोर्टलैण्ड सीमेन्ट के निर्माण में होता है। सवाईमाधोपुर, लाखेरी, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ तथा निम्बाहेड़ा में स्थापित सीमेन्ट कारखानें इसका उपयोग कर रहे हैं।

कुछ अन्य क्षेत्र जहाँ पर चूना पत्थर के पर्याप्त भण्डार हैं, वे सीमेन्ट निर्माण के लिए न केवल उपयुक्त हैं बल्कि उनमें निकट भविष्य में कारखाने लगाये जाने की भी सम्भावनाएँ हैं, जैसे (i) जयपुर जिले में कोटपुतली क्षेत्र, (ii) सीकर जिले पाटन तथा मांडवा क्षेत्र, (iii) उदयपुर में डबोक के समीप का क्षेत्र, (iv) कोटा जिले में दर्राह-रामगंज मण्डी क्षेत्र, (v) डूंगरपुर में सबला-लोहरिया क्षेत्र, (vi) बांसवाड़ा जिले में तलवारा चूना पत्थर क्षेत्र, (vii) बूंदी जिले में सतूर क्षेत्र, (viii) चित्तौड़गढ़ जिले में पारसोली क्षेत्र, (ix) सिरोही जिले में किवरली क्षेत्र तथा (x) अजमेर जिले में ब्यावर के समीप के क्षेत्र।

जैसलमेर जिले की मेहडा डूंगर कानोई की ढ़ाणी, कनोई व केसुआ में एवं नागौर जिले में स्टील ग्रेड के चूना पत्थर भण्डार, उदयपुर के पलाना, घामला गांवों में एवं नागौर, झालरापाटन एवं पिड़ावा में उच्च श्रेणी के चूना पत्थर के भण्डारों का पता लगा है।

सवाईमाधोपुर जिले के रावणजाना में, बूंदी जिले में सरोदड़ा, दाटूंडा गांव में चूने के पत्थर की 40 मीटर मोटी परत पाई गई है। जैसलमेर जिले के सानू क्षेत्र में इस की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिये खुदाई की जा रही है।

चूना पत्थर शैलसमूह उत्तर से उत्तर-पूर्व पाली जिले के सोजत से नागौर जिले के मुण्डवा तक विस्तृत है जिनमें कुछ स्थानों पर उच्च किस्म का चूना पत्थर मिलता है। माण्डला, अटवारा, गोटन तथा मुण्डवा में पहिले से ही इसकी खुदाई की जाती है तथा यहाँ से विभिन्न उद्योगों को जहाँ रसायनिक किस्में प्रयोग में लाई जाती हैं, भेज

दिया जाता है। चूने बनाने का कार्य गोटन,मुण्डवा,अटबारा,सोजत, माण्डला और आबूरोड में भली-भांति हो रहा है। वर्ष 1981 में इसका उत्पादन 28 लाख 12 हजार टन रहा।

4 फ्लोराइट—खान तथा भू-विज्ञान विभाग ने सन् 1956 में डूंगरपुर जिले में मांडव की पाल के निकट इस खनिज को आर्थिक दृष्टि से खोद कर निकालने के लिए उपयुक्त भण्डार की स्थिति मालूम करने में सफलता प्राप्त की थी। यहाँ पर 17.3 प्रतिशत कैल्सियम फ्लोराईट की मात्रा युक्त 10 लाख टन से अधिक के भण्डार उपलब्ध हैं। मांडव की पाल में फ्लोराईट की प्रमुख खान हैं तथा इसके निकटवर्ती गांवों में इसकी छोटी खानें हैं। यह खानें लगभग 24 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत हैं। इन सभी खानों में लगभग 150 लाख टन फ्लोराईट खनिज के भण्डार हैं।

भारत में कहीं अन्यत्र नहीं मिलने के कारण राजस्थान इसके उत्पादन में एकाधिकार रखता है। वर्ष 1981 में इसका उत्पादन 3,800 टन रिकार्ड किया गया।

मांडव की पाल खानों से 1956 से फ्लोराईट का खनन हो रहा है और इसकी गिनती एशिया की प्रमुख फ्लोराईट खानों में होती है। सन् 1975 से पूर्व आधुनिक साधनों एवं सुविधाओं के अभाव के बावजूद भी खानें लाभ अर्जित कर रही थी। सन् 1975 में इनका आधुनिकीकरण हुआ और इसी साल खानें 2.50 लाख घाटे में रहीं। यह घाटा समय के साथ बढ़ता गया। वर्ष 1982-83 में 40 लाख का घाटा दिखाया गया। आश्चर्य की बात यह है कि इधर घाटा बढ़ता जा रहा है उधर अफसर घाटा बढ़ाने वाली परियोजनाओं पर ही धन खर्च करते रहे। गेहूँवाड़ा में 20 लाख रुपये की लागत से बेनी फीशियल संयंत्र लगाया गया जिसका आज तक कोई उपयोग नहीं हैं। इसी तरह वरदा संयंत्र पांच साल से डीजल जनरेटरों के जरिये चलाया जा रहा है जबकि इस गांव को बिजली से जुड़े दस साल हो गये हैं। इसके अलावा फ्लोराइट की बिक्री भी कुछ ऐसी फर्मों को की गई जिन्होंने भुगतान ही नहीं किया। निगम के 23 लाख रुपये ऐसी ही फर्मों में अटके पड़े हैं।

राजस्थान खनिज विकास निगम को यहां की चार खानों को बन्द करने का फैसला करना पड़ा जिसकी मुख्य वजह वे यह बताते हैं कि इन खानों में फ्लोराइट की मात्रा कम है, जबकि दूसरी तरफ अमरीका के भूगर्भ वैज्ञानिकों ने इन खानों का सर्वेक्षण कर अपनी रिपोर्ट में अगले पचास वर्षों तक यहाँ से प्रतिदिन 300 टन फ्लोराईट के खनन की सम्भावना व्यक्त की है। लेकिन इसके बावजूद थोरीवाली, नवागांव, भँवरियों का नाका और भगत की खानों को एक जुलाई,1984 से बन्द कर दिया गया। अब केवल काईला, वरदा और गेहूंवाड़ा की खानों में लगभग 600 मजदूर कार्यरत हैं।

भीलवाड़ा जिले के आसीद तथा उदयपुर जिले के झालरा के निकट फ्लोराईट के क्षेत्रों की खोज का कार्य किया जा रहा है। सिरोही, पाली, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, अजमेर, जयपुर, भीलवाड़ा तथा उदयपुर प्रदेशों में ग्रेनाईट युक्त क्षेत्रों में और फ्लोराईट खनिज प्राप्ति के लिए जांच की जानी चाहिये।

इसका उपयोग रासायनिक उद्योग एवं सिरेमिक उद्योग में किया जाता है। यह सीमेन्ट कैल्सियम कार्बाइड तथा साइनेमाइड, अपघर्षकों, तापरोधकों, ईंटों तथा कार्बन के बने विद्युत द्वारों के निर्माण में भी एक आवश्यक खनिज है। इसका उपयोग शीतकों तथा कीटनाशी पदार्थों के बनाने में किया जाता है।

देश को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इसका आयात करना पड़ता है। इसलिए इस खनिज के भण्डारों की तलाश जितनी जल्दी की जाये उतना ही श्रेयस्कर है।

उवरक खनिज

1. जिप्सम—यह एक खनिज पदार्थ की तहदार किस्म है जो अपने रवेदार रूप में सैलेनाईट कहलाती है। यह खनिज विशेषतः ऊसर भूमि और शुष्क भागों में बहुत होती है। इसका उपयोग मुख्यतः रासायनिक खाद,प्लास्टर ऑफ पेरिस,विशेषत. चिकित्सा एवं नकली दांतों के प्लास्टर, रंग-रोगन आदि में किया जाता है।

भारत में सबसे अधिक जिप्सम राजस्थान में मिलता है। भारत के कुल उत्पादन में राजस्थान का लगभग 90 प्रतिशत हिस्सा है। 1949 में राज्य के जिप्सम उत्पादक क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया गया था। इसका वार्षिक औसत उत्पादन 7 से 10 लाख टन हैं जबकि 1981 में 8.60

लाख टन का उत्पादन हुआ। हालांकि राजस्थान में जिप्सम उत्पादक क्षेत्र विस्तृत रूप से फैले हैं लेकिन मुख्य क्षेत्र राज्य के उत्तरी व पूर्वी भागों में मिलते हैं राज्य में जिप्सम उत्पादन के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं—

(i) **नागौर क्षेत्र**—नागौर जिला जिप्सम जमावों में बहुत धनी है। यह अनुमान लगाया गया है कि देश के कुल 46 8 करोड़ टनों के सुरक्षित भण्डारों में से लगभग दो तिहाई इस क्षेत्र में मिलते हैं। जिप्सम संस्तरण विभिन्न क्षेत्रों में 60 मीटर से 125 मीटर की गहराई तक पाये जाते हैं। नागौर से लगभग 45 किलोमीटर दूर गोठ-मंगलोद में जिप्सम निकालने का कार्य 1965 से प्रारम्भ किया गया है। आजकल यहां प्रति वर्ष लगभग 5,000 टन जिप्सम निकाला जा रहा है। इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण खानें भदवासी, मंगलोद, खैरात, धाकोरिया, भडाना, मालगू और जोधियासी स्थानों पर मिलती हैं।

(ii) **बीकानेर-गंगानगर-चूरू क्षेत्र**—यह सभी क्षेत्र राज्य के उत्तरी भाग में स्थित हैं। इस क्षेत्र में भारत के जिप्सम भण्डारों का अधिकतर भाग विद्यमान हैं। इन क्षेत्रों में से बीकानेर में सबसे बड़े सुरक्षित भण्डार पाये जाते हैं। यहां देश के 17 प्रतिशत तथा राज्य के 19 प्रतिशत सुरक्षित भन्डार कूंते गये हैं। बीकानेर में जामसर गांव राज्य में सबसे बड़ा जिप्सम जमाव क्षेत्र है। यह जमाव 4 किलोमीटर पूर्व से पश्चिम तक और लगभग 920 मीटर से 1,225 मीटर उत्तर से दक्षिण तक विस्तृत है। यह क्षेत्र बीकानेर से भटिण्डा रेल मार्ग पर है। जिप्सम संस्तरण बालू की 0.3 से 1.5 मोटी पर्त के नीचे दबे हुए हैं। जिप्सम की सारी मात्रा जो सिन्दरी और रासायनिक लिमिटेड को भेजी जाती है, की आपूर्ति इन्हीं खानों से की जाती है। वर्तमान में खनन कार्य यान्त्रिक उपकरणों द्वारा किया जाता है। जिप्सम का खनन कार्य लगभग 11 मीटर की गहराई तक होता है तत्पश्चात बालू की परतें पुनः दिखाई देने लगती हैं।

बीकानेर में स्थित दूसरा जिप्सम उत्पादक क्षेत्र लूनकरणसर रेल मार्ग पर जामसर के उत्तर में 52 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। संस्तरण लगभग एक मीटर मोटे हैं और लगभग 5.2 किलोमीटर के क्षेत्र पर विस्तृत है। इन खानों में सैलेनाइट जो जिप्सम की स्फटकीय किस्म है, पाई जाती है। बीकानेर में सियासर, हरकासर, पुगाल की खानों से जिप्सम निकाला जाता है।

चूरू जिले में मुख्य खनन क्षेत्र लगभग 104 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में तारानगर के उत्तर-पूर्व की ओर विस्तृत है। इस क्षेत्र में भालन, भानीन, जगासरी, भादीवाईन, देवगढ़ियां और साथून आदि स्थानों पर जिप्सम संस्तरण 8 सेन्टीमीटर से 150 सेन्टीमीटर की मोटाई के मिलते हैं।

(iii) **जैसलमेर-बाड़मेर-पाली-जोधपुर क्षेत्र**—जैसलमेर में जिप्सम मोहनगढ़, हमीरवाली, धानी और लाखा में मिलता है। संस्तरण की मोटाई 0.6 मीटर से 1 3 मीटर है और जिप्सम के तत्व 80 प्रतिशत तक मिलते हैं।

जोधपुर में जमाव पोकरन से लगभग 50 किलोमीटर दक्षिण में फालसुन्द में स्थित हैं। जोधपुर जिले में यह अधिकतर मंगलोद, कारास, ढाकोरिया, खूतानी मिलसगाली, बादवासी और मनोना की खानों से निकाला जाता है। संस्तरण लगभग एक मीटर मोटे हैं तथा इनके ऊपर लगभग 0.3 मीटर 1 मीटर मोटी परत अन्य मलवे की हैं। जोधपुर में यह अनुमान है कि यह अनुमान है कि जिप्सम के सुरक्षित भन्डार राज्य के सुरक्षित भण्डारों का लगभग 9 प्रतिशत है।

बाड़मेर में प्रमुख उत्पादक क्षेत्र उदयपुर है। अन्य जिप्सम खनन क्षेत्र कावास, कुरला, श्योकर, उत्तरलाई और पार-की-धानी(बाड़मेर जिला) और खूटानी(पाली) आदि हैं। इन स्थानों पर संस्तरण की मोटाई 0.15 से 2 7 मीटर के बीच में है।

हमारे देश में वर्तमान में जिप्सम का उपयोग कई तरीकों से हो रहा है। इसका उपयोग सीमेन्ट, अमोनिम-सल्फेट खाद और पेरिस ऑफ प्लास्टर के निर्माण में होता है। खादों, सल्फ्यूरिक एसिड, सीमेन्ट और दिवार के गत्तों के विनिर्माण में इस । उपयोग कच्चे माल के रूप में हो रहा है। अतः राजस्थान में इसकी भारी सम्भावनाएं निहित हैं।

रॉक फास्फेट—रासायनिक खाद के लिए यह

खनिज बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। राज्य के उदयपुर जिले के झामर-कोटड़ा स्थान पर रॉक फास्फेट के विशाल भण्डारों की खोज ने उस के खनिज इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय जोड़ दिया है। इसके अतिरिक्त उदयपुर जिले के दाकन-कोटरा सीसर्मा, भींडर, नीमचमाता, बैलागढ़, बड़गांव, नीवानियां, भीला, लाखरवास, तथा जैसलमेर जिले के बिरमानिया में भी रॉक फास्फेट के भण्डार हैं। जैसलमेर जिले में 90 किलोमीटर जैसलमेर बाड़मेर सड़क पर फतेहगढ़ के समीप लाठी शैलसमूहों की जुरैसिक चट्टानों में रॉक फास्फेट के संस्तर पाये जाते है। इसमें तत्व की मात्रा कम है लेकिन भण्डार काफी बड़े हैं। भूगर्भ खान विभाग की सीकर जिले में करपूरा के समीप भी ऐपेटाइट के जमाव मिले है। उदयपुर जिले में विदोहन योग्य भण्डार 10 करोड़ टन है उनमें से 4 करोड़ टन के भन्डार अकेले झामर-कोटड़ा में हैं। इसके उत्पादन से देश में अब तक 50 करोड रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत हुई है।

राज्य में सन् 1969 में 64 लाख टन रॉक फास्फेट का उत्पादन हुआ था जो बढ़कर सन् 1986 में 6.2 लाख टन हो गया। सन् 1989 में इसके 7 लाख टन होने का अनुमान है।

गौण खनिज

1. वेन्टोनाईट—वेन्टोनाईट शब्द यथार्थत: एक खनिजात्मक नाम नहीं है। इस खनिज का उत्कृष्ट गुण पानी से इसे भिगोये जाने पर विपुल मात्रा में फूल जाने की योग्यता है। वेन्टोनाईट एक बहुत ही उत्तम दानेदार मृतिका की किस्म है जो प्रधानतः मोन्टमोरीलोनाईट से निर्मित होती है। खनिज बड़े ढ़ेलों के रूप में निकलता है और खुले में पड़े रहने पर टूट-टूट कर छोटे टुकड़ों में विभाजित हो जाता है। यह स्लेटी, पीले या हल्के गुलाबी रंग में मिलता है। कभी-कभी इसमें जिप्सम लोहे युक्त मिट्टी की विशेपतायें होती हैं।

वाड़मेर जिले में वेन्टोनाईट के भंडार सम्भवत: आदि नूतन युग के लाकीप्रक्रम के हैं और साधारणतः दो से तीन मीटर मोटाई के स्तरों में मिलते हैं। कई स्थानों में वेन्टोनाईट 2 से 3 मीटर लोहमय मिट्टी की शिलाओं तथा उड़कर आई बालू से ढका हुआ है।

राजस्थान में इसके भंडार बाड़मेर जिले में स्थित है। इसके कुछ अन्य क्षेत्र बीकानेर तथा सवाई-माधोपुर जिले में भी है। बाड़मेर में उत्तरलाई रेल्वे स्टेशन से लगभग 50 किलोमीटर दूर तथा शिव से 5 किलोमीटर पश्चिम में हाथी की ढ़ाणी में 0.6 मीटर घनी परतों में एक किलोमीटर तक इसकी खानें फैली हैं। उत्तरलाई से लगभग 35 किलोमीटर दूर गिराल नामक स्थान पर और 33 किलोमीटर दूर आकली गांव के निकट यह पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मिलता है। बाड़मेर में अन्य छोटे-छोटे जमाव क्षेत्र हर-वेच्छा गांव, थूंबली, गूगा, शिव, बिसाला, भाद्रेस, सौरी आदि में पाये जाते हैं। बाड़मेर जिले में लगभग 110 लाख टन वेन्टोनईट के भंडार हैं। सवाईमाधोपुर जिले में दरगावन गांव के निकट इसकी खानें लगभग 4 हैक्टेयर में फैली हुई हैं।

वनस्पति तेलों व खनिज तेलों के साफ करने के लिए भारी मात्रा में विदेशों से ब्लीचिंग पाउडर मंगाया जाता है जिसके स्थान पर वेन्टोनाईट ज्यादा अच्छा काम दे सकता है। देश के सिरेमिक(चीनी मिट्टी के वर्तन आदि) बनाने वाली कम्पनियों के लिए यह पॉलिश आदि के काम आ सकता है। इसका उत्पादन, वर्ष 1977 में 1,600 टन था जो बढ़कर वर्ष 1986 में 2,660 टन हो गया।

2. मुल्तानी मिट्टी—मुल्तानी मिट्टी एक प्राकृतिक मिट्टी है जो लेसरहित या थोड़ी लेसदार है। इसमें मोंट मोरिलोनाईट प्रमुख मृत्तिका खनिज होता है। यह तलछटीय उदगम वाली मिट्टी है तथा सामान्यत: आदि नूतन (इयोसीन) युग के नाणकश्न (न्यूमिलिटक) चूना पत्थर व दूसरी शिलाओं के साहचर्य में पाई जाती हैं मुल्तानी मिट्टी विपुल परिमाण में मिलती है और इसके भंडार बहुत बड़े माने गये हैं। खदान से ताजे निकाले गये नमूनों में पानी की मात्रा अधिक रहती है परन्तु सूखने पर इसमें अवशोपण की क्षमता अधिक आ जाती है और बड़ी मजबूती से जीभ पर चिपकने लगती है। इस मिट्टी का रंग ताजी खुदाई के समय धूसर से भूरा तथा सूखने पर क्रीम सफेद से पीला-सफेद होता है।

राजस्थान भारत में मुल्तानी मिट्टी के उत्पादन में अग्रणी है। वार्षिक उत्पादन लगभग 9,000 टन है जो कि भारत के कुल उत्पादन का लगभग90प्रतिशत है। राज्य में इसका

उत्पादन सन् 1955 में 7,900 टन, 1965 में 9,470 टन, 1975 में 10,800 टन हुआ था जो बढ़कर 1985 में 18,900 टन हो गया।

इस मिट्टी के महत्वपूर्ण क्षेत्र बीकानेर जिले में पलाना, केसरदेसर और मुन्ध, बाड़मेर जिले में कपूरड़ी, अलामरिया और सिव, जैसलमेर जिले में मन्धा है।

बीकानेर क्षेत्र—राजस्थान में पलाना के जमाव सबसे अधिक विस्तृत हैं, यहां पर मुल्तानी मिट्टी के जमाव सतह पर अनावृत नहीं हैं बल्कि भूमि की सतह से लगभग 46 मीटर नीचे उपलब्ध हैं। पलाना में मुल्तानी मिट्टी विभिन्न परतों के क्रम में सबसे बाद की परत नाणकाश्न चूना के पत्थर के साथ मिलती है। ये जमाव बीकानेर शहर से लगभग 23 किलोमीटर दूर हैं। यहां मुल्तानी मिट्टी की परत के नीचे लगभग 3 से 9 मीटर के बाद लिग्नाईट के शैलसमूह पाये जाते हैं। कभी-कभी लिग्नाईट के खनन के लिए स्तम्भ खोदे जाते हैं और जब वह असफल सिद्ध होते हैं, वहीं से भूमिगत तरीकों से मुल्तानी मिट्टी निकाली जाती है। यहां ये जमाव लगभग 6 किलोमीटर लम्बे और एक किलोमीटर चौड़े हैं। भूमिगत खनन विधियां उत्पादन की लागत को बढ़ा देती हैं। इस खनिज के अनुमानित सुरक्षित भण्डार लगभग 85 मिलियन टन हैं।

मुन्ध के जमाव श्रीकोलायत जी रेल्वे स्टेशन से लगभग 11 किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ खनिज खुली खुदाई विधि से निकाला जाता है क्योंकि यह सतह पर अनावृत रूप से मिलता है। मिट्टी भी अच्छी किस्म की है। इस जिले में केसरदेसर के जमावों को प्रक्रमों की उच्च लागत आने के कारण वर्तमान में काम में नहीं लिया जा रहा है। भविष्य में तकनीकी विकास हो जाने पर सम्भवतः उनका उपयोग किया जा सकेगा।

बाड़मेर क्षेत्र—बाड़मेर जिले में कपूरड़ी जमाव उत्तरलाई रेल्वे स्टेशन से लगभग 23 किलोमीटर दूर उत्तर में स्थित है। इन संस्तरों की झुकी हुई प्रकृति के कारण खनिज भूमिगत विधियों के द्वारा प्राप्त किया जाता है। कपूरड़ी में सबसे बड़े जमाव पाये जाते हैं जबकि इनके अलावा अलामरिया, सिव और रोहिली में भी मिलते हैं। बाड़मेर जिले से प्राप्त मुल्तानी मिट्टी दूसरी जगह से प्राप्त पदार्थ की अपेक्षा विरंजक के रूप में अधिक प्रभावी है।

जैसलमेर क्षेत्र—जैसलमेर जिले में यह खनिज मन्धा मन्धाऊ,वेहदोई और रामगढ़ आदि जमावों में पाया जाता है। हांलाकि जमाव बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं लेकिन रेल्वे मार्ग से अधिक दूर स्थित होने के कारण यातायात लागत अधिक आती है। अतः इन जमावों से खनन कार्य बड़े पैमाने पर नहीं किया जा रहा है।

इस खनिज का उपयोगी प्राणी, वनस्पतिक खनिज तेलों तथा चिकनाइयों के विरंजन, दुर्गन्ध-हरण, छानने तथा साफ करने में होता है। इसके गौण प्रयोग प्रसाधन सामग्री बनाने में, कागज तथा साबुन में पूरक की तरह रंगों तथा कीटनाशी पदार्थों के वाहक के रूप में, वस्त्रों के सज्जीकरण में, मक्खन तथा व्हिस्की आदि में कुछ रंग वाले पदार्थों की मिलावट का पता लगाने के लिए होता है। मुल्तानी मिट्टी को पैंट्रोलियम में, पैंट्रोलियम पदार्थों के मुख्यतः उप स्नेहकों को छानने व उनके रंग परिशोधन के काम में लिया जाता है।

3. संगमरमर—अभी हाल के दो एक दशकों में, विभिन्न प्रकार की सीमेन्ट मृत्तिका से निर्मित टाइलों का प्रचलन इमारती पदार्थ के रूप में काफी होने लगा है फिर भी अभिरूचि एवं उपयोगिता वाले पत्थर के रूप में अपनी सुन्दरता तथा चमक के कारण संगमरमर अपने महत्व को निरन्तर बनाये हुए हैं। मकराना का संगमरमर भारत में सर्वश्रेष्ठ है। अतः मकराना और संगमरमर एक दूसरे के प्रर्यायवाची हो गये हैं। राजस्थान अपने संगमरमर पत्थरों के लिए विश्व प्रसिद्ध है।

विश्व प्रसिद्ध मकराना संगमरमर राजस्थान के नागौर जिले से आता है। यह राज्य देश के उत्पादित संगमरमर का लगभग शत-प्रतिशत उत्पादन करता है। राजस्थान में संगमरमर के उत्पादन में वर्ष प्रतिवर्ष वृद्धि होती चली गई है। वर्ष 1955 में इसका उत्पादन 19,800 टन; 1965 में 48,800 टन; 1975 में 1,39,200 टन तथा 1986 में 3,19,800 टन रिकार्ड किया गया। वर्ष 1988 में इसका उत्पादन 5 लाख टन होने का अनुमान है। संगमरमर का उत्पादन करने वाले

क्षेत्र राज्य के उत्तर-पूर्व में नागौर, सीकर, जयपुर और अलवर जिलों में तथा दक्षिण-पश्चिम में उदयपुर, जालौर और सिरोही जिलों में स्थित हैं। कुछ संगमरमर जैसलमेर नगर के दक्षिणी-पश्चिमी भाग से भी निकाला जाता है।

उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र—मकराना का संगमरमर अच्छी किस्म के संगमरमर का पर्यायवाची हो गया है। यहाँ पर सफेद, गुलाबी, काले तथा धारीदार किस्म का उत्कृष्ट कोटि का संगमरमर पाया जाता है। वर्तमान समय की कई इमारतें, मस्जिदें व मध्यकालीन मुगल शासकों के स्मारक तथा महल इसी किस्म के सगमरमर से निर्मित हैं। विश्व प्रसिद्ध ताजमहल भी मकराना के संगमरमर से बना है। यहीं के सफेद संगमरमर से ही कलकत्ता का विक्टोरिया मैमोरियल बना हुआ है। सच कहा जाय तो मकराना की खदानों से भवन निर्माण तथा मूर्तिकला के काम के लिए शताब्दियों से संगमरमर प्राप्त होता रहा है। यह जमाव नागौर जिले के उत्तर-पूर्व में मकराना रेल्वे स्टेशन के समीप स्थित हैं। मकराना में संगमरमर की पहाड़ी लगभग 30 मीटर ऊँची है जो उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा की ओर जाती है। दूसरे शब्दों में यह पहाड़ी माता जी के मन्दिर से पश्चिम में काला डूंगरी की ओर जाती है। यह पहाड़ी रेल्वे लाईन के समानान्तर लगभग 20 किलोमीटर दूरी तक फैली हुई है। ये जमाव रियालों शृंखला के स्फटकीय चूने के पत्थर के विशेष दृश्यांश को प्रदर्शित करते हैं। संगमरमर की विभिन्न किस्में एक-दूसरे के हेर-फेर में मिलती हैं। संगमरमर केवल उन क्षेत्रों से निकाला जाता है जहाँ इसके जमाव सतह पर अनावृत होते हैं अथवा दृश्यांश हैं। पहाड़ियों की कुमारी श्रेणी में निम्न संस्तर मुख्य रूप से अनावृत हैं। इस श्रेणी में चारों पहाड़ियां, भनिया-की-भांकरी, कुमारीडूंगर और धौली डूंगरी आदि सम्मिलित हैं। बोरावार के समीप संगमरमर दानेदार नीला-भूरा घटिया है जबकि कटक मार्टिन की पुरानी खानें और भुल्ला कटक जो कि पूर्व में इसके ऊपर है, उत्तम किस्म का सफेद संगमरमर उत्पन्न करती है। निम्न संस्तरों में कुछ गुलाबी संगमरमर कालाडूंगरी में पाया जाता है। मकराना का संगमरमर अधिकांशतः खुरदरा दानेदार है लेकिन कुछ खदानों में उत्तम दानेदार किस्में भी विभिन्न आभाओं में प्राप्त की जाती हैं। इटेलियन और ग्रीक संगमरमर की तुलना में मकराना संगमरमर में बहुत कम अशुद्धता पाई जाती है। इसमें लगभग 98 प्रतिशत कैल्सियम कार्बोनेट होता है। इस क्षेत्र में लगभग 200 खानों में खुली खान खुदाई विधि से खनन कार्य विभिन्न गहराईयों तक हो रहा है। कई खदानों में गहराई 30 से 45 मीटर तक पहुंच गई है।

इन खदानों से खनन कार्य पिछली कई शताब्दियों से होने के बावजूद भी संगमरमर की आपूर्ति कभी न समाप्त होने वाली प्रतीत होती है। कटक के सहारे विभिन्न आकारों की खानें दृष्टिगोचर होती हैं जिनमें से कुछ की गहराई 70 मीटर तक पहुँच चुकी है।

खनन कार्य में लगभग 8,000 श्रमिक संगमरमर के काटने तथा सुरंग लगा कर उड़ाने का कार्य करते हैं क्योंकि यह काम अभी भी छैनी या हथौड़े से किया जाता है। इसलिए संगमरमर के खण्ड बनाते समय संगमरमर काफी मात्रा में व्यर्थ चला जाता है। भारी स्तम्भों को खींचने के लिए कटक पर क्रेन लगाई हुई हैं। खानों से आरा मशीनों तक संगमरमर को ले जाने का कार्य अभी भी बैलगाड़ियों द्वारा होता है।

मकराना कस्बे की जनसंख्या 40,669 (1981) है और इसमें से अधिकांश जनसंख्या अपनी उदरपूर्ति के लिए संगमरमर के कार्य पर निर्भर है। स्वतंत्रता के पश्चात् से इस संगमरमर की मांग बहुत अधिक है फलस्वरूप दरों में काफी वृद्धि हुई है। संगमरमर की अन्य खानें सीकर जिले में मेंअोण्डा, अजमेर में किशनगढ़ और अलवर जिले में जोरी एवं दादमपीर में पाई जाती हैं। किशनगढ़ में संगमरमर के दृशांश नागौर जिले के मकराना संगमरमर की ही निरन्तरता का प्रतीक हैं। विभिन्न रंगों के संगमरमर जैसे सफेद, गुलाबी, काला, धारीदार, हरा आदि इन खानों में मिलते हैं। अलवर का संगमरमर अपने सफेद स्फटकीय गठन के कारण विशिष्ठता रखता है जिसका उपयोग भवन निर्माण में होता है।

(ii) **दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र**—उदयपुर जिले में संगमरमर के विस्तृत जमाव देवीमाता, बाबरमल व राजन-

गर के समीप स्थित हैं। देवीमाता व बावरमल का संगमरमर गुलाबी रंग का होता है। जिसका उपयोग भवन निर्माण में होता है। देवीमाता की खानें उदयपुर शहर से लगभग 24 किलोमीटर दूर दक्षिण-पूर्व में स्थित हैं। सिरोही जिले में भटाना खान आबू रेल्वे स्टेशन से लगभग 32 किलोमीटर पश्चिम में भटाना गांव में स्थित है। जालौर जिले की रूपी खान से भी कुछ संगमरमर प्राप्त होता है लेकिन यह क्षेत्र केवल स्थानीय मांग की ही पूर्ति कर पाता है।

(iii) अन्य क्षेत्र—जैसलमेर का संगमरमर कुछ अलग प्रकार का है। यह जुरेसिक काल के चूने पत्थर से निर्मित है तथा इसमें जीवाश्म मिलते हैं। इन जीवाश्मों की उपस्थिति पालिश के बाद एक विशिष्ट आभा प्रदर्शित करती है। यह एक अच्छा सजावटी पत्थर है। इसका उपयोग सामान्यत: खिलौनों और अन्य सजावट की वस्तुओं के लिए किया जाता है। संगमरमर की खानें फलौदी रेल्वे स्टेशन से लगभग 115 से 130 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इन खानों के विकास में सबसे बड़ी बाधा परिवहन सुविधाओं की कमी है।

हाल ही में कुछ संगमरमर के जमाव जिसमें सभी सात रंग के प्रतिबिम्ब होते हैं, पाली-आबू सड़क मार्ग पर खान्दरा गांव में मिले हैं। संगमरमर पर्याप्त कठोर है और काफी बड़े-बड़े खण्डों में उपलब्ध है। अगर यह पत्थर व्यापारिक पैमाने पर खनन किया जा सके तो यह न केवल भारत में बल्कि कुछ बाहरी देशों में भी अच्छी बाजार सुविधाएं प्राप्त कर सकेगा।

संगमरमर काटने एवं पालिश करने के उद्योग के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप अब राजस्थान में पहले की अपेक्षा बेहतर एवं अधिक पत्थर उपलब्ध होने लगा है।

आज संगमरमर की चिराई क्षमता 7.50 लाख टन प्रतिवर्ष हो गई है। चार वर्ष पूर्व प्रदेश में यह क्षमता मात्र 3.20 लाख टन थी। अब 55 आधुनिक मशीनें प्रदेश में यत्रतत्र स्थापित की जा चुकी हैं। इनकी वार्षिक क्षमता 4,40 लाख टन है। इनमें से 22 उद्योग तो गत दो वर्षो में ही स्थापित किये गये हैं। इनके अलावा प्रदेश में 1,500 परम्परागत चिराई मशीनें पहिले से ही काम कर रही हैं।

नये उद्योगों में लगभग 30 करोड़ रुपये की पूंजी का विनियोजन कराया जा चुका है। इन सभी में आयातित मशीनें स्थापित की हैं जो अधिक कुशल हैं और संगमरमर के कातले बखूबी से वांछित मोटाई में तराशती है।

वर्तमान में मकराना का वर्चस्व कुछ कम हो गया है यद्यपि सर्वाधिक काम यहीं होता है। उदयपुर, बून्दी, अलवर, चित्तौड़गढ़ जैसे क्षेत्रों में संगमरमर की खानों पर कार्य जारी है और वहाँ भी चिरायी की आयातित मशीनें स्थापित हो गई हैं। राजस्थान वित्त निगम एवं रीको ने संगमरमर के आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दोनों ने करीब 8 करोड़ रुपया इन उद्योगों में लगाया है। परम्परागत मशीनों के आधुनिकीकरण के लिए वित्त निगम ने एक नई परियोजना बनाई है। मकराना में स्थित दो ऐसे उद्योगों का आधुनिकीकरण जून 83 में किया जा चुका है।

राजस्थान में संगमरमर के अतुल भण्डार हैं। इतने उद्योगों के बावजूद भी कातले चीरने की दर्जनों आधुनिक मशीनें और स्थापित की जा सकती हैं।

इमारती पत्थर—राजस्थान में चूना पत्थर तथा बलुआ पत्थर बहुत ही महत्वपूर्ण इमारती पत्थर है। देश में बलुआ पत्थर के उत्पादकों में राजस्थान सबसे बड़ा प्रदेश है और खदानों से लगभग तीस लाख टन पत्थर प्रतिवर्ष भवन निर्माण कार्यो के लिए निकाला जाता है। दूसरे इमारती पत्थरों में शिष्ट क्वार्टजाइट, फिलाइट, स्लेट, संगमरमर, ग्रेनाइट सम्मिलित हैं।

दूसरे इमारती पत्थर के उत्पादन की दृष्टि से जोधपुर का प्रथम स्थान है। इसके पश्चात् कोटा, चित्तौड़गढ़ तथा बीकानेर हैं। कोटा, जोधपुर तथा चित्तौड़गढ़ जिलों में एक बड़े क्षेत्र में तथा भीलवाड़ा एवं बीकानेर जिलों में भी फैले हुए मुख्यत: विन्ध्यसमूह के तलों से बलुआ पत्थर प्राप्त होता है। वास्तव में बलुआ पत्थर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राकृतिक पदार्थो में से एक है जो शताब्दियों से ऐतिहासिक भवनों के निर्माण में प्रयुक्त होता रहा है जैसे दिल्ली का लाल किला, आगरा का किला तथा फतेहपुर सीकरी के महल आदि। आधुनिक दिल्ली के निर्माण में बलुआ पत्थर का प्रचुर उपयोग हुआ हैं।

जयपुर जिले के भांकरी में शिस्टयुक्त क्वार्टजाइट शिलाओं की खुदाई एक शताब्दी से अधिक समय से हो रही है। छत पर डालने की पट्टियां जयपुर जिले में जसरापुरा, आमेर (जयपुर) के निकट की पहाड़ियों में तथा आभागढ़ की खदानों में, टौंक जिले में टोडारायसिंह, विशालपुर व थारोली में अजमेर जिले के सिलोरा व उदयपुर में और जयपुर क्षेत्र में थोई, बेराठ, सांगरवा, सहीवाड़, चासन, निवाई आदि स्थानों में स्थित खदानों से निकाली जाती है। अलवर जिले में घाट तथा मोडला के निकट क्वार्टजाइट की खुदाई इमारती पत्थर की पूर्ति के लिए की जाती है। उदयपुर जिले मे अरावली समूह के फिलाईट तथा क्वार्टजाइट की खुदाई विस्तृत रूप से कई स्थानों में की जाती है। सज्जनगढ़ के निकट गोडा, अमरजोट तथा गोगुन्दा के पास एक जगह फिलाईट की पट्टियां निकाली जाती है और मदार व भुवाना के निकट क्वार्टजाइट से इमारती पत्थर निकाला जाता है। जालौर जिले में गुलाबी रंग का ग्रेनाइट पाया जाता है जिस पर बडी आसानी से पालिश हो जाती हैं। राज्य सरकार ग्रेनाइट की चिराई तथा पालिशदार चौके बनाने के लिए एक चिराई व पालिश करने का संयंत्र स्थापित कर चुकी है। इसकी न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी माँग है।

संक्षेप में राजस्थान भारत में इमारती पत्थर उत्पन्न करने वाला सबसे बड़ा राज्य है। जोधपुर में गुलाबी व भूरे रंग के इमारती पत्थरों की खानें है। जोधपुर व भीलवाड़ा की पट्टियां प्रसिद्ध है। उदयपुर व डूंगरपुर मे काला पत्थर और जैसलमेर में पीला व छींटदार पत्थर मिलता हैं। करौली, धौलपुर व भरतपुर के निकट भी लाल रंग का इमारती पत्थर निकाला जाता है।

राजस्थान में इमारती पत्थर का उत्पादन वर्ष 1973 में 6,000 टन था जो बढ़कर सन् 1981 में 16,374 टन हो गया। सन् 1985 में इसका उत्पादन 28,700 टन रहा।

अन्य खनिज

1. घीयापत्थर—घीयापत्थर सामान्यतया मुलायम और सघन सिलखड़ी चट्टाने होती हैं। जो चिकनी व मुलायम होती है। यह सामान्यत: मध्यम से उत्तम दाने वाली नीली-भूरी, भूरी-हरी होता हैं। स्टेटाइट घीयापत्थर की एक अच्छी किस्म है। राजस्थान इसके भण्डारों की दृष्टि में धनी है और भारत के कुल वार्षिक उत्पादन का लगभग 85 प्रतिशत उत्पादन करता है। राज्य में कच्चे माल के रूप में घीया पत्थर के उपलब्ध होने के कारण इनसे चलने वाले उद्योगों के लिए काफ़ी सम्भावनाएं विद्यमान हैं। 1981 में घीयापत्थर का उत्पादन 3,15,700 टन था। 1955 के उत्पादन की तुलना में इसमें लगभग 10 गुना की वृद्धि हुई है। ये खनिज राज्य में सर्वत्र पाया जाता है। राज्य के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न आकारों की खानें अधिक संख्या में पायी जाती हैं लेकिन निम्न तीन क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण हैं जहां घीयापत्थर डोलामाईट के संसर्ग में पाया जाता है।

(i) जयपुर में डागोथा झरना क्षेत्र।
(ii) भीलवाड़ा में घेवरिया और चांदपुरा क्षेत्र।
(iii) उदयपुर में देवपुरा क्षेत्र।

(i) डागोथा झरना क्षेत्र - ये जमाव दौसा रेल्वे स्टेशन से लगभग 26 किलोमीटर उत्तर में डागोथा झरना गाँव के निकट स्थित है। इस क्षेत्र की खानें पक्की सड़क द्वारा जुड़ी हुई हैं। घीया पत्थर के शैलसमूह रियालों क्रम की डोलोमाइट में पाये जाते है और कुछ समुदायों में मौलिक अन्तर्भेदन भी देखने को मिलते हैं। इस क्षेत्र में लगभग एक दर्जन से अधिक स्थानों पर स्टेटाईट निकाला जाता है। अधिकांश खानें दृश्यांशों से सीधी विकसित की गई हैं और नियमित संस्तर दृष्टिगोचर होते हैं। इस क्षेत्र के अलावा अन्य क्षेत्र बावा, गीजगढ़ और गढ़ी मोडा में स्थित है।

(ii) घेवरिया और चांदपुरा क्षेत्र—घेवरिया जमाव क्षेत्र पिछले चालीस वर्षो से ज्ञात हैं। इस क्षेत्र की खानें भीलवाड़ा रेल्वे स्टेशन से लगभग 32 किलोमीटर पूर्व में स्थित हैं तथा अच्छी मौसमीय सड़कों से जुड़ी हुई है। खनिज प्राप्ति क्षेत्र डोलोमाइट में बड़ी संचयिकाओं में अथवा मसूराकार पिण्डों तक सीमित हैं। खनिज संगठित और सघन है और रंग में सफेद है। चांदपुरा खानें भीलवाड़ा के लगभग 48 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में स्थित हैं। ये दोनों जमाव क्षेत्र काफी बड़े हैं हालांकि सुरक्षित भण्डारों का आंकलन उचित रूप से अनुमानित नहीं किया

गया है।

(iii) देवपुरा क्षेत्र—उदयपुर क्षेत्र में देवपुरा, लाखावाली, लोहारगढ़, सालोग, मुंगावत, देवला, नाथरा-का-पाल, रिरभदेव और कई अन्य खानें पाई जाती हैं। देवपुरा की खानें राजस्थान में घीयापत्थर की सबसे बड़ी खानें हैं। ये उदयपुर से लगभग 50 किलो-मीटर दक्षिण में स्थित हैं। घीयापत्थर अरावली युग के डोलोमाइट चट्टानों के संसर्ग में मिलता है जमाव पहाड़ी के पार्श्वों पर लगभग 92 मीटर ऊँचाई पर मिलते हैं। कुछ स्थानों पर जमावों की चौड़ाई 18 मीटर से भी अधिक है। उदयपुर के दक्षिण-पूर्व में तथा सालोज में भी खानें हैं जो उदयपुर से क्रमशः 130 और 135 किलो-मीटर दूर हैं।

(iv) अन्य क्षेत्र—उपरोक्त खनन क्षेत्रों के अलावा यह खनिज कई अन्य स्थानों जैसे सीकर, दरीबा, टौंक में निवाई, बांसवाड़ा में नारावली तथा डूंगरपुर जिले में नाकोल, खेमरा व देवल आदि में पाया जाता है। घीया-पत्थर को आधुनिक मिलों में जो वायु पृथक्करण के उपकरणों से सज्जित है, पीसा जाता है। इस प्रकार 325 छिद्र प्रति इंच की चलनी में से निकलने वाला यह पदार्थ प्राप्त होता है। इसकी सफेदी पर मुख्यतः इसकी किस्म की उत्तमता निर्भर करती है।

इसका उपयोग टेलकम पाऊडर, रंगीन पैन्सिलों, कीटनाशक पदार्थों, खिलौनों व अनेक वस्तुओं के उत्पादन में किया जाता है। उदयपुर में आयुर्वेदिक सेवाश्रम (प्रा.) लि. द्वारा भी टैलकम पाऊडर का उत्पादन कुछ वर्षों पूर्व प्रारम्भ कर दिया गया है। इससे पाऊडर बनाने के कारखानें दौसा, भीलवाड़ा तथा उदयपुर आदि में स्थित हैं।

2. स्लेट पत्थर

स्लेट पत्थर राजस्थान में अलवर जिले से ही पाये जाने के कारण राजस्थान में तो जिले को एकाधिकार प्राप्त है ही, साथ ही उत्तरी भारत से विदेशों में निर्यात होने वाली कुल मात्रा का करीब 80 प्रतिशत स्लेट पत्थर जिले से ही निर्यात होता है। यह पत्थर जिले के बहरोड़, भौंढणा, खुण्डरोट, भोयासर, रासलाना और गीगलाना क्षेत्र में पाया जाता है जहाँ इसके खनन के लिए 38 पट्टे जारी किये हुए हैं। वर्ष 1981-82 में 4,975 टन का उत्पादन हुआ जबकि 1983-84 में 5,393 टन का उत्पादन किया गया। इससे राज्य सरकार को क्रमशः 1.66 लाख तथा 2.55 लाख रुपये रायल्टी के रूप में प्राप्त हुए।

इसी प्रकार बच्चों की स्लेट बनाने के उपयोग में आने वाले स्लेट पत्थर का वर्ष 1983-84 में 36 टन उत्पादन हुआ जिससे लगभग 7,500 रुपये की राशि रायल्टी के रूप में प्राप्त हुई। इस पत्थर की एक किस्म का उपयोग राज्य एवं देश में बच्चों की स्लेट बनाने में होता है। वहीं इसकी बहुरंग किस्म का उपयोग विदेशों में मकान की छत, फर्श एवं दीवारों में लगाने के रूप में होता है। यह पत्थर मुख्यतया पश्चिमी जर्मनी, हॉलैण्ड, आस्ट्रेलिया भेजा जाता है। वर्ष 1983-84 में 5,393 टन स्लेट पत्थर का निर्यात कर एक करोड़ 61 लाख 79 हजार रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित की गई। अलवर जिले में स्लेट पत्थर के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि होने से इसके और अधिक विकास की सम्भावनाएं बढ़ी हैं।

3. कैलसाइट

कैलसाइट खनिज का रसायनिक संगठन कैल्सियम कार्बोनेट है और यह सामान्तर षट्फलक मणियों के रूप में मिलता है। यह साधारणतः हिम शुभ्र से पीलापन लिए सफेद रंग का होता है और इसके पारदर्शक रूप में दिवक्रता का गुण होता है। इसके कारण इसका उपयोग सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के निकल त्रिपार्श्वों के बनाने में किया जाता है। यह कांच कैल्सियम कार्बाइड, ब्लीचिंग पाऊ-डर, विस्फोटक पदार्थ आदि बनाने के काम आता है।

राजस्थान में इस रसायनिक पदार्थ को अभी व्यव-स्थित तथा वैज्ञानिक रूप से निकालने का काम आरम्भ नहीं हुआ है। खनिज के सस्ते होने के कारण इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया और केवल उन्हीं भण्डारों में काम प्रारम्भ किया गया जो रेल्वे स्टेशन के निकट स्थित है।

कैलसाईट के प्रमुख प्राप्ति स्थान सीकर जिले में रायपुर, मांडवा, भामस व बालूपुरा के निकट, सिरोही जिले में पिपरसाल, सिग्रावा, राजपुरा, जनकिया व

पिंडवासी में, पाली जिले में सिरयावरी, बेरी, जनवेड़ा व दौरेरा में, जयपुर जिले में तासकोला, शखून व बरना की चौकी में, झुन्झुनू जिले में माधोगढ़, पापराना में तथा उदयपुर जिले में गुंगरोड, सेवल खेड़ा, तरला, पड़ासली व अरीड़ा में हैं। इन सब स्थानों में यह खनिज शिराओं, छिन्नांशों व वीक्षों के रूप में चूना पत्थर कैल्केनाइस, ग्रेनाईट में मिलता है। एकल भण्डार सामान्यत: वड़े नहीं है। इस खनिज के कई बिखरे हुए प्राप्ति स्थान अन्य क्षेत्रों में मिले हैं।

राजस्थान कैल्साइट उत्पादन में भारत में प्रथम स्थान रखता है। राजस्थान में सबसे अधिक इसका उत्पादन सीकर जिले से लगभग 69 प्रतिशत प्राप्त होता है। उदयपुर जिला 21 प्रतिशत उत्पादन करता है तथा शेष उत्पादन अन्य सभी क्षेत्रों में किया जाता हैं। राज्य में सन् 1964 में कैल्साइट का कुल उत्पादन 4,700 टन हुआ था जो बढ़कर 1981 में 19,300 टन हो गया। राजस्थान में कैल्साइट भण्डारों को व्यवस्थित ढंग से निकालने तथा उनकी संभाव्यता को ठीक से मालूम करने के लिए अन्वेषण कार्य की आवश्यकता है।

राजस्थान में खनन उद्योग की विशेषताएँ एवं समस्याएँ

राजस्थान में खनिज विस्तृत जमावों में, विभिन्न किस्मों के, अलग-अलग महत्व के तथा संभाव्यताओं के पाये जाते हैं। उनमें से कुछ का विकास अनियोजित तरीकों से हुआ है और कुछ बिना विकास के ही रह गये। इस प्रकार राजस्थान के खनन उद्योग में निम्न तथ्य देखने को मिलते हैं।

1. यद्यपि राजस्थान में काफी खनिज पाये जाते हैं लेकिन उनका क्षेत्रीय वितरण असन्तोष जनक है। राज्य के दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भाग खनिजों में धनी है लेकिन उत्तरी भाग में खनिजों की स्थिति ऐसी नहीं है। फिर भी कुछ महत्वपूर्ण खनिज पश्चिमी राजस्थान में पाये जाते हैं।

2. राजस्थान में ईंधन व लौह धात्विक खनिजों की कमी है। इसलिए भारी इंजीनियरिंग उद्योगों की स्थापना तथा उनके विकास की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं।

3. राज्य में कुछ महत्वपूर्ण अधात्विक खनिजों के पर्याप्त भण्डार मिलते हैं तथा साथ ही देश में इन खनिजों की कमी है। इसलिए इन का विदोहन बड़े पैमाने पर कर राजस्थान इन विरल पदार्थों की पूर्ति में बड़ा सहायक सिद्ध हो सकता है।

4. राजस्थान में कुछ उपलब्ध खनिजों का विदोहन उचित तरीके से नहीं किया गया क्योंकि एक तो वे पहाड़ी क्षेत्रों में स्थित हैं, दूसरे परिवहन की सुविधाएं इन क्षेत्रों तक उपलब्ध नहीं हैं, तीसरे परिवहन की सुविधाओं के अभाव फलस्वरूप उत्पादन लागत यहां तक कि अयस्क के बाजार मूल्य से भी अधिक आती है। इस प्रकार इन खनिजों का विदोहन अनार्थिक बन जाता है।

5. ऊर्जा आपूर्ति की कमी तथा खानों से मशीनों के द्वारा विदोहन न होना यह दोनों ही बातें अभ्रक स्टेटाइट तथा संगमरमर की खदानों के लिए पूर्णरूपेण सत्य है। इस प्रकार खानों का आधुनिकीकरण करना समय की आवाज है। इसके लिए वित्तीय सहायता राजस्थान औद्योगिक एवं खनिज विकास निगम को प्रदान करनी चाहिये। सस्ती दर पर विद्युत आपूर्ति राज्य में विकसित की जा रही है जल विद्युत तथा थर्मल योजनाओं के कारण सम्भव हो सकेगी।

6. राज्य में रेल्वे द्वारा ऊंची दर भाड़ा वसूल करना, विशेषकर लोहे के सन्दर्भ में, खनिज के आर्थिक विदोहन के रास्ते में एक अन्य अवरोध है।

7. श्रम की उपलब्धता न केवल मौसमीय है बल्कि काफी अनिश्चित तथा अकुशल है अभ्रक की खानों में स्थानीय श्रमिकों से जो अकुशल हैं, काम लिया जाता है।

8. पीने तथा अन्य उपयोग के लिए पानी की कमी भी एक अन्य समस्या है।

9. खनिज के विदोहन तथा खनिज के उपयोग में उचित तरीके नहीं अपनाये जाने के कारण अपशिष्ट पदार्थ बहुत बच जाता है या तो इसे खानों में ही छोड़ दिया जाता है या इसे उपयोग में न आने वाली खानों में फेंक दिया जाता है। कुछ खनिजों का जैसे संगमरमर

आदि का खनन खनिज संरक्षण के सिद्धांतों के अनुसार नहीं किया गया है।

10. बहुत सी खानें विशेषतया अभ्रक की, आकार में बहुत छोटी हैं जिनमें कुशलतापूर्वक कार्य नहीं हो सकता। कुछ क्षेत्रों में पट्टेधारियों ने अधिक गहराई तक खनन न करके उन्हें छोड़ दिया है। फलस्वरूप अधिक गहराई तक खनिज के जमावों के भण्डारों को निश्चित नहीं किया जा सका।

11. खनिज के ऊपर से भूमि के भार को हटाने, बैन्चनुमा आकृतियां अधिक गहराई तक खनन करते समय विकसित करने, उत्पादन की आधुनिक तकनीकों की कमी और सीमित वित्तीय साधन आदि जैसी समस्याएं खनन उद्योग के सामने अन्य कठिनाईयों के रूप में है।

खनिज संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता

खनन कार्य वनों की कटाई के समान प्रकृति की सम्पत्ति का अपहरण करना हैं। एक बार भूगर्भ से निकाले जाने पर उतनी ही मात्रा में खनिज सदा के लिए समाप्त हो जाते हैं। जिस गति से खनिज पदार्थ निकाले जाते है अथवा उनका अनियोजित उपयोग होता है, उसे देखकर भूगर्भ शास्त्रियों का कहना है कि भविष्य में इन पदार्थों की कमी पड़ सकती है। अतः यह आवश्यक है कि इस सम्पत्ति का संरक्षण और उचित उपयोग किया जाये। इसलिये राजस्थान में सबसे बड़ी आवश्यकता एक खनिज नीति की है जिसके अन्तर्गत खनिज का संरक्षण एवं आर्थिक दृष्टि से खनन कार्य को भविष्य की आवश्यकता को देखते हुए करना चाहिए। खनिज आधारित उद्योगों में अयस्कों के उपयोग के द्वारा एक निर्यात की दृष्टि से नीति का प्रतिस्थापन होना चाहिये।

आर्थिक आधार पर उत्पादन योजना को संगठित करने के क्रम में संसाधनों का औद्योगिक मूल्य तथा विस्तार का निर्धारण करना आवश्यक है।

अयस्क जिन्हें आर्थिक दृष्टि से वर्तमान में खनन करना सम्भव नहीं है उन्हें भविष्य में बिना अधिक नुकसान के निकालने के लिए खान में छोड़ देना चाहिये।

क्षेपण भूमि जिसमें कम औसत के खनिज को इकट्ठा किया जाता है, को भली-भांति जांच करनी चाहिये जिससे बेनीफिशियेशन विधि से बाद में खनिज तत्व को पुनः प्राप्त किया जा सके।

उच्च किस्म के अयस्कों का ही चयन न करके बल्कि सभी किस्मों के अयस्कों का उत्पादन करना चाहिये और जहाँ भी सम्भव हो, बाजारीय आधिक्य का उत्पादन करना चाहिये।

राजस्थान राज्य खनिज विकास निगम लिमिटेड

इस निगम की स्थापना वर्ष 1979 में खनिज सम्पदा के दोहन एवं विपणन कार्य को त्वरित गति देने तथा वैज्ञानिक रीति से उन्हे विकसित करने के लिए की गई थी। स्थापना के समय निगम के पास 22 खानें थी जो बढ़कर 46 हो गई है। राज्य के चौदह जिलों में 24497 हैक्टेयर खनन क्षेत्र हैं। वर्ष 1986 में 7 लाख 87 हजार 473मीट्रिक टन खनिज उत्पादन हुआ। निगम की जनजाति उपयोजना में राज्य के 10 लाख एवं क्षेत्र के 18.84 लाख के वित्तीय आवंटन से 1,01,894 मीट्रिक टन खनिजों का उत्पादन हुआ। इस अवधि में 13.46 करोड़ की आय तथा 13.23 करोड़ रुपये का व्यय हुआ। इस निगम का कार्य जिप्सम, टंगस्टन, फ्लोरस्पर ग्रेनाईट, ग्रेफाइट, बेन्टोनाइट, स्लेट, जस्ता-सीसा और तांबा आदि खनिजों के दोहन एवं विपणन को देखना है।

राजस्थान राज्य खान एवं खनिज निगम--इस निगम का मुख्य कार्य उदयपुर जिले के झामर कोटड़ा क्षेत्र में रॉक फास्फेट के खनन एवं परिशोधन को करवाना है। इस क्षेत्र के लगभग 26 किलोमीटर विस्तार में रॉक फास्फेट के विशाल भण्डारों में 740 लाख मीट्रिक टन खनिज मिलने की आशा है। इसमें से 170 लाख मीट्रिक टन उच्च कोटि का तथा शेष 570 लाख मीट्रिक टन निम्न श्रेणी का रॉक फास्फेट उपलब्ध है। वर्ष 1969 से अब तक 5800 लाख टन रॉक फास्फेट का उपयोग रसायनिक खाद बनाने में किया जा चुका है तथा इससे राज्य सरकार को 270 करोड़ रुपये की आय हो चुकी है।

परिशोधन कार्य को सुचारू रूप से करने हेतु 2.50 करोड़ रुपयों की लागत से एक प्रायोगिक संयंत्र स्थापित किया गया है। इस के परिणाम बड़े अच्छे रहे,

अतः परिशोधन के कार्य को बड़े पैमाने पर करने हेतु मै. सोफरा माइन्स फ्रांस, के प्रोजेक्ट को लागू करने की स्वीकृति मिल गयी है। इस पर प्रथम चार वर्षों में 150 करोड़ रुपये व्यय होने की सम्भावना है।

वर्ष 1986-87 में 2.36 लाख टन रॉक फास्फेट का उत्पादन किया गया तथा राजकोष को 12.49 करोड़ रुपये की आय हुई।

निगम राजस्थान के चूरू, बीकानेर, गंगानगर एवं पाली आदि जिलों में जिप्सम एवं सेलिग्नाइट के खनन तथा विक्रय कार्य को भी करता है। 1987 में 4 लाख टन जिप्सम का उत्पादन एवं 3.19 करोड़ रुपये का विक्रय किया गया।

बीकानेर के गुड़ा ग्राम के समीप प्राप्त लिग्नाइट के भण्डारों के दोहन हेतु भी निगम को अधिकृत किया गया है।

राजस्थान राज्य टंगस्टन विकास निगम लिमिटेड—इस निगम का कार्य विशेषकर टंगस्टन खनिज के दोहन को त्वरित गति प्रदान करना है। नागौर जिले के डेगाना तहसील के रेवत गांव में तथा सिरोही जिले के वालदा में एल्युवियल एवं ग्रेनाईट उपलब्ध है। दोनों ही जगह क्रमशः 25 एवं 10 प्रतिशत खनन सम्भव है। वर्ष 1986-87 में टंगस्टन का 12.06 मी टन तथा फ्लोरस्पर का 255.75 मी. टन का उत्पादन हुआ।

खनिज आधारित उद्योगों का विकास

राज्य के खनिजों का समुचित विदोहन करने के लिए खनिज आधारित उद्योगों का विकास किया गया है जिनमें खेतड़ी में तांबा गलाने का कारखाना तथा उदयपुर में देवारी स्थान पर जस्ता गलाने का कारखाना हिन्दुस्तान जिंक स्मैल्टर स्थापित किया गया है। नीम-का-थाना, ब्यावर, मोड़क, लाखेरी, चित्तौड़गढ़, निम्बाहेड़ा व सिरोही में सीमेंट बनाने के कारखानें स्थापित किये गये हैं तथा वर्तमान में बूंदी में भी एक कारखाना लगाया जा रहा है। डूंगरपुर में फ्लोराईट बेनिफिशेयेशन संयन्त्र स्थापित किया गया है। रॉक फास्फेट व पाइराइट खनिज के उद्योग के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में कारखाना स्थापित किये जाने का प्रावधान हैं। इसके अतिरिक्त डीडवाना में सोडियम सल्फेट का कारखाना स्थापित किया गया है। भीलवाड़ा, दौसा व उदयपुर में घीयापत्थर का पाउडर बनाने के कारखानों का कार्य काफी सन्तोजनक है। इसी प्रकार इमारती पत्थर घिसने, चिप्स आदि की भी अनेक इकाईयां राज्य में विभिन्न स्थानों पर स्थापित हैं। राजस्थान में सिलिका के उपयोग से कांच उद्योग फेल्स्पार, क्वार्टज व चिकनी मिट्टी के बर्तनों के कारखानें स्थापित करने की काफी सम्भावनायें हैं। जैसलमेर में खनिज तेल के भण्डार की सम्भावनायें प्रबल हैं। सवाईमाधोपुर जिले में तेल शोधक कारखाना स्थापित करने की योजना थी, परन्तु राजनीतिक कारणों के फलस्वरूप उत्तर प्रदेश में यह कारखाना स्थापित करने का निर्णय लिया गया।

अत्र पलाना में 2.3 करोड़ टन लिग्नाइट कोयला भण्डारों की सम्भावना का पता लगा है। इस प्रकार राजस्थान में खनिजों के विकास तथा खनिज आधारित उद्योगों का भविष्य काफी उज्जवल है। भीलवाड़ा जिले के आगूंचा गांव में जस्ते-सीसे के अपार भण्डार मिलने से गुलाबपुरा में एक जस्ता शोधक कारखाना स्थापित किये जाने की सम्भावनाए बढ़ गई है। कोटा-चित्तौड़गढ़ रेल मार्ग पर निर्माण शुरू होने से इस क्षेत्र में सीमेन्ट उद्योग स्थापित करने की सम्भावनाए बढ़ गई हैं। चित्तौड़गढ़ जिले के चन्देरिया गांव में सीसे-जस्ते का बड़ा स्मेल्टर संयन्त्र लगाने के प्रस्ताव पर केन्द्र सरकार से स्वीकृति प्रदान कर दी है। भीलवाड़ा जिले में रामपुरा, आगूंचा और बरोई में दो नई खानें शुरू करने की योजना हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड ने तैयार की हैं। यहां पर खान परिसर के निर्माण का कार्य 170 करोड़ रुपये की योजना की स्वीकृति के साथ नवम्बर, 1988 में प्रारम्भ हो चुका है। इन खानों में 6 करोड़ टन से अधिक खनिज भण्डार होने का अनुमान है। इनका उपयोग करने पर देश अपनी मांग की पूर्ति में आत्मनिर्भर हो सकता है।

आधुनिक शक्ति के साधनों में कोयला, पेट्रोल एवं जलविद्युत मुख्य हैं। इनकी आवश्यकता राज्य में कल-कारखानों को चलाने के लिए होती है। किसी क्षेत्र में किस उपलब्ध शक्ति का उपयोग किया जाये, यह कई तथ्यों पर निर्भर करता है. जैसे स्थापित क्षमता की प्रति इकाई पूंजीगत लागत, उत्पन्न की गई जलशक्ति या तापशक्ति की प्रति किलोवाट घण्टा लागत, परियोजना तैयार करने की अवधि और कोयला, पैट्रोलियम या जल की पर्याप्त मात्रा में प्राप्ति। वैसे राजस्थान इन तीनों ही शक्ति संसाधनों में अच्छी स्थिति नहीं रखता है और अभी तक शक्ति संसाधनों में अभाव वाला राज्य माना जाता है। इस अभाव वाली स्थिति से निपटने के लिए अन्य गौण शक्ति संसाधन जैसे वायु, गैस, परमाणु और सौर ऊर्जा आदि से भी शक्ति प्राप्त करने के प्रयास राज्य में किये जा रहे हैं लेकिन कोई विशेष सफलता अभी तक अर्जित नहीं की जा सकी है।

कोयला

राज्य कोयले के सुरक्षित भण्डारों की दृष्टि से गरीब है। राजस्थान लिग्नाईट कोयले का उत्पादन करता है। लिग्नाईट अथवा भूरा कोयला जलने में अधिक धुआं देता है। इसमें कार्बन की मात्रा 45 प्रतिशत से 55 प्रतिशत, जल का अंश 30% से 55% और वाष्प की मात्रा 35 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक होती है। इसमें सल्फर का प्रतिशत भी अधिक होता है, अतः यह कोक के लिए उपयुक्त नहीं है।

राजस्थान में कोयला बीकानेर, जोधपुर व जैसलमेर क्षेत्रों में पाया जाता है। राजस्थान के बीकानेर मण्डल में लिग्नाईट की मुख्य उत्पादन पेटी स्थित है जो बीकानेर शहर के दक्षिण में पूर्व से पश्चिम दिशा में फैली है। इस पेटी में लिग्नाईट उत्पन्न करने वाले क्षेत्र पलाना, खारी, चान्नेरी, गंगा-सरोवर और मुन्ध आदि में स्थित हैं। इस पेटी के बाहर कोयला उत्पादक क्षेत्र जोधपुर जिले में गंगा-सरोवर है। इन सभी क्षेत्रों में पलाना एक प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है। पलाना की खानों से कोयला लगभग 60 वर्षों से निकाला जा रहा है। अकेले बीकानेर क्षेत्र से लगभग 56,000 टन कोयला निकाला जाता है। विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि पलाना का लिग्नाईट संसार का सर्वश्रेष्ठ लिग्नाईट है। पलाना खानें टर्शरी कोयला जमावों के अन्तर्गत जानी जाती हैं। कोयला क्षेत्र बीकानेर के दक्षिण-पश्चिम में लगभग 23 किलोमीटर पर स्थित हैं। राजस्थान के इस भू-भाग में कुछ ग्रामीणों के द्वारा 1898 में एक कुए की खुदाई करते समय इसके भण्डार प्रकाश में आये। कोयले की परतें सतह से लगभग 61 मीटर की गहराई पर पाई गई भूमिगत जल का स्तर लिग्नाईट सतह से लगभग 45 मीटर और नीचे है राजस्थान कोयले में निर्धन होने के कारण तथा बंगाल और मध्य प्रदेश से जो कोयला मंगाया जाता है, उसके महंगा पड़ने के फलस्वरूप कोयले के इन क्षेत्रों ने अपनी ओर अधिक ध्यान आकर्षित किया। बाद में इस क्षेत्र में खनिज भण्डारों की जानकारी प्राप्त करने तथा खनिज का शोषण करने के लिए अन्वेषण और खनन कार्य प्रारम्भ किये गये। कोयले के भण्डारों का निर्धारण करने के लिए कूपक शोधन (Sinking Shaft) खनन विधि को अपनाया गया। बाद में इसी विधि के द्वारा कोयले का विदोहन किया गया तथा ऊर्जा घरों और अन्य छोटे मोटे कार्यों की आवश्यकता की पूर्ति इसी कोयले से की गई।

पलाना क्षेत्र रेगिस्तानी क्षेत्र में स्थित है। वायुढ़ बालू जमाव मरुस्थल भू-गर्भीय शैलसमूहों को अनावृत नहीं होने देते। बालू की गहराई सतह से 0 6 मीटर से 3 मीटर तक है। बाद में 21 मीटर की गहराई तक रेत व कंकड़ के स्तर सामान्यतः पाये जाते हैं। इसके पश्चात् 6 मीटर से 13 मीटर तक चूने व चूने के पत्थर हैं। उसके पश्चात् कठोर संघनित चूना पत्थर आदि ने चूना पत्थर शैल, चिकनी मिट्टी और मुल्तानी मिट्टी के क्रम में तहें पाई जाती हैं। इसके बाद लिग्नाईट कोयले की पट्टियां आरंभ होती हैं। पलाना में औसत रूप से 6 मीटर कोयले की परतें है।

सन् 1,900 के बाद बहुत अधिक संख्या में कूपक खोदे गये और लिग्नाईट इन परतों से प्राप्त किया गया। यह कूपक छतों के गिर जाने अथवा खानों में आग लग जाने के कारण त्याग दिये गये। पलाना क्षेत्रों से लिग्ना-

ईट के खनन कार्य में निम्न कारणों से शिथिलता आ गई।

(i) लिग्नाईट घटिया किस्म का कोयला है।

(ii बाजार केवल ऊर्जा घरों तक सीमित था।

(iii) भारत के अन्य भागों से उत्तम किस्म का कोयला सस्ती दरों पर उपलब्ध कर लिया जाता था।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात पुनः इसका खनन कार्य किया जाने लगा क्योंकि एक तो वाहरी राज्यों जैसे विहार व उड़ीसा से कोयला महंगा पड़ने लगा, दूसरे इसको लाने में परिवहन अड़चनें आने लगी। इसलिए खनन विधियों में सुधार के प्रयास किये जाने लगे तथा अन्य क्षेत्रों में इसकी खोज के लिए पर्यवेक्षण कार्य प्रारंभ किये गये।

वर्तमान में लिग्नाईट का खनन भूमिगत खनन और स्टाल खनन विधियों से किया जाता है। कूपक कोयले को प्राप्त करने के लिए संछिद्र किये जाते हैं। फर्श के साथ दो मीटर ऊंचे और 2 मीटर चौड़े गलियारे परतों में खोदे जाते हैं और 0.6 मीटर से 1.6 मीटर के अन्तराल पर लकड़ी के लट्ठों के द्वारा इनको अलग किया जाता है। यह ऊपरी परतों को आश्रय प्रदान करने में सहायक होते हैं। गलियारों के लिए पतली पतली लकड़ी की परतें वाँछित होती है। इस प्रकार की खनन विधि में वड़े लाभ हैं। इस विधि में कार्य करते हुए आन्तरिक क्षेत्रों में काफी आगे वढ़ना सम्भव होता है अन्यथा अन्य विधियों के द्वारा खुदाई करने पर लिग्नाईट की मुलायम तथा भुरभुरी प्रकृति के कारण छतों के गिर जाने अथवा आग लग जाने का भय रहता है। अतः उपरोक्त कारणों के फलस्वरूप कोयले की उपलब्ध मात्रा का केवल 15 प्रतिशत ही खनन किया जाता है। पलाना लिग्नाईट उत्पादन क्षेत्र में लगभग 20.5 मिलियन टन के कुल सुरक्षित भण्डार पाये जाते हैं। पलाना के उत्तर-पूर्व में देशनोक गांव की ओर 1.5 करोड़ टन लिग्नाईट कोयला होने का अनुमान हैं। हाल के वर्षों में खानों से लिग्नाईट की अधिक मात्रा प्राप्त करने के लिए अन्य विधियों जैसे हाथ द्वारा वालू भराव विधि को काम में लिया जाने लगा है। इस विधि में आग न लगने तथा छत ने गिरने के लिए सतह से वालू लाई जाती है और खनिज निकाले गये क्षेत्रों में भर दी जाती है। इन खानों में वाष्प ऊर्जा का प्रयोग लिग्नाईट को वाहर निकालने तथा खनन श्रमिकों द्वारा पिंजड़ा उठाये जाने के लिए किया जाता है। विद्युत शक्ति का उपयोग रोशनदानों तथा इंजिन को हवा देने के लिए भी किया जाता है।

कुछ प्रारम्भिक जाँच पड़ताल और संछिद्रों के द्वारा पूर्वेक्षण अन्य स्थानों पर लिग्नाइट की उपस्थिति को दर्शाते हैं। ऐसे स्थान खारी, भड़वानिया, चान्नेरी, गंगासरोवर, मुन्ध, केसरदेसर और नापासर हैं। इन क्षेत्रों में लिग्नाईट सतह से 32 मीटर से 67 मीटर की गहराई तक मिलता है। यह अभी तक ज्ञात नहीं किया जा सका है कि उपरोक्त स्थानों पर लिग्नाईट व्यापारिक पैमाने पर निकाला जा सकता है अन्यथा नहीं। अगर सुरक्षित भण्डार बड़े सिद्ध होते हैं तो राजस्थान की ऊर्जा समस्याओं को किसी हद तक सुलझाने में सहायक होंगे।

लिग्नाईट का उपयोग एक ऊर्जा के रूप में हो, इस पर विशेष बल नहीं दिया जा सकता। विहार व मध्य-प्रदेश से कोयला मंगाना, परिवहन की अधिक लागत के कारण अनार्थिक है जबकि राजस्थान के औद्योगिक विकास के लिए सस्ती ऊर्जा की आवश्यकता है। वर्तमान में वीकानेर व गंगानगर शहरों को विद्युत शक्ति प्रदान करने के लिए लिग्नाईट से वाष्प का उत्पादन किया जा सकता है। पलाना का कोयला एक लम्बे समय से वीकानेर और गंगानगर के विजली घरों में एवं रेलवे के उपयोग में आता था। अब इस कोयले का उपयोग ईंटों को पकाने के काम में भी होता है।

अनुसंधान एवं परीक्षण के वाद यह पाया गया है कि पलाना लिग्नाईट को सफलतापूर्वक कम ताप पर सह-उत्पाद कोलतार, तेल, बेंजिल आदि और अर्द्ध-कोक प्राप्त करने के लिए व्यवहार में लाया जा सकता है। अर्द्ध-कोक वंधने के वाद ईंधन वन जाता है। इसमें उच्च क्लोरीफिक मूल्य होता है। इसमें सल्फर की तरह से कोई अवांछनीय तत्व नहीं रहते हैं।

वर्तमान में औद्योगीकरण की मांग को देखते हुए लिग्नाईट की इतनी वड़ी मात्रा को उपयोग में लिए बिना नहीं छोड़ा जा सकता है। खुली खान खुदाई विधि से सभी लिग्नाईट के अछूते भागों में वड़ी आसानी से

उनका शोषण किया जा सकता है। राजस्थान में लिग्नाईट ससाधनों का पूर्ण विकास आवश्यक है क्योंकि यह उद्योग के विकास के लिए ऊर्जा प्रदान करेगा। पलाना लिग्नाईट का उपयोग ईंधन के अच्छे स्त्रोत के रूप में किया जा सकता है और कार्बनाइजेशन और अन्य महत्वपूर्ण डिस्टलेशन उत्पादों के लिए इसे एक अच्छे कच्चे माल के रूप में भी उपयोग में लाया जा सकता है।

अभी हाल में किये गये सर्वेक्षण कार्यो से पता चला है कि नागौर जिले में मेड़तारोड तथा बाड़मेर जिले के कपूरड़ी क्षेत्रों में क्रमश: 30 लाख व 6 करोड़ टन लिग्नाईट भण्डारों का पता लगाया जा चुका है। मेड़तारोड में दो करोड़ नौ लाख टन लिग्नाईट के भण्डार होने का अनुमान है। कपूरड़ी में जो लिग्नाईट मिला है वह अच्छी किस्म का है। इस क्षेत्र में लिग्नाईट प्राप्ति से पूर्व जमीन पर मिलने वाले केटोनाईट आदि खनिज भी काफी उपयोगी है और उसे बेचा जा सकता है। यह 12.37 मीटर से 45 मीटर की गहराई तक मिले हैं। इस क्षेत्र में लिग्नाईट की कहीं तीन मीटर और कहीं 7 मीटर मोटी सतह का पता चला है। लिग्नाईट के नये भण्डारों का पता लगाने हेतु खान एवं भू-विज्ञान के द्वारा वर्ष 1988 में नागौर जिले के इग्यार कसनाऊ, मेड़तारोड व इन्दावर क्षेत्र में तथा बीकानेर क्षेत्र के मांडल, चारण क्षेत्र में कुल 4345 मीटर क्षेत्र में खुदाई करवायी गई हैं, जहां लिग्नाईट की 3 मीटर से 5 मीटर तक की पट्टियां होने के संकेत मिले हैं।

पिछले अकाल वर्षों में केवल जल विद्युत शक्ति पर निर्भर रहने के सम्बन्ध में गम्भीर सन्देह उत्पन्न हो गये हैं। विद्युत उत्पादन क्षमता कम हो गई तथा बिजली के प्रयोग में भारी कटौती लागू की गई हैं। इसलिए विद्युत शक्ति की विश्वसनीय पूर्ति के लिए ईंधन परिचालित बिजलीघरों का महत्वपूर्ण स्थान बना रहेगा। इस प्रसंग में लिग्नाईट पर आधारित बिजलीघरों की स्थापना निम्न अवस्थितियों पर करनी होगी—(i) पलाना मे 260 मेगावाट क्षमता का एक विद्युतगृह स्थापित करने के लिए योजना आयोग की स्वीकृति प्राप्त हो गई है। (ii) बाड़मेर के कपूरड़ी में 6 करोड़ टन लिग्नाईट भण्डार पर आधारित 500 मेगावाट क्षमता का एक ताप विद्युतगृह सातवीं पंचवर्षीय योजना में स्थापित किया जा सकता है।

खनिज तेल

खनिज तेल की प्राप्ति केवल अवसादी शैलों में ही सम्भव होती है और वह भी तब जब तेल निर्माण के लिए प्रयुक्त भूगर्भीय दशायें विद्यमान हो। बालू और चूने की अवसादी शैलों में तेल उसी तरह विद्यमान रहता है। है जैसे स्पंज में जल। खनिज तेल हाइड्रो-कार्बन यौगिकों का मिश्रण होता है। करोड़ों वर्षा की अवधि में वनस्पति एवं जीवों के बड़ी मात्रा में कीचड़, मिट्टी, बालू, आदि में दबे रहने पर उन पर गर्मी, दबाव, रसायन, जीवाणु और रेडियो सक्रियता आदि क्रियाओं के फलस्वरूप खनिज तेल की उत्पत्ति होती है। राजस्थान के बीकानेर व जैसलमेर जिले में तथा पश्चिमी जोधपुर में अवसादी चट्टानें पायी जाती है। इसलिए खनिज तेल की सम्भावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। जैसलमेर के भूतपूर्व महारावल के अनुरोध पर डा. सिरिल एस. फोक्स ने इन क्षेत्रों का अध्ययन कर अपने प्रतिवेदन में पैट्रोलियम पाये जाने की सम्भावनाओं को बतलाया था किन्तु उस समय इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया जा सका।

भारत सरकार ने इस क्षेत्र की विस्तृत जांच करवाने का निर्णय लिया तथा मार्च, 1955 में एक दल ने इस सम्बन्ध में खोज भी की। कोलम्बो योजना के अन्तर्गत एक विदेशी फर्म ने सन् 1956 में जैसलमेर क्षेत्र का हवाई चुम्बकीय सर्वेक्षण सम्पन्न किया तथा तेल के अतुल भण्डार की उपस्थिति को बतलाया। तृतीय पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में तेल और प्राकृतिक गैस कमीशन को यह सौंपा गया जिसने फ्रेन्च विशेषज्ञों की सहायता से जैसलमेर से 55 किलोमीटर दूर भारती ढीबा पर कुए की खुदाई कर खोज कार्य प्रारम्भ किया जिसमें तेल विद्यमान होने के सकेत मिले। जैसलमेर के रामगढ़, खुवालिया व देवा तथा लोंगेवाल क्षेत्रों में कुओं का खनन कार्य सम्पन्न किया गया है। इन सब खोजों के आशाजनक व उत्साहवर्द्धक परिणाम सामने आये हैं। यह उल्लेखनीय है कि भूगर्भीय मानचित्र के अनुसार इन्हीं अंक्षाशों पर स्थित पाकिस्तान के सुई नामक

स्थान पर गैस प्राप्त हुई है जो सुई गैस के नाम से विख्यात है।

सन् 1966 में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग ने जैसलमेर में खोज कार्य किये जिनके परिणामस्वरूप जैसलमेर शहर के उत्तर पश्चिम में मनहेरा टीबा के पास स्थित 'कमली ताल' में गैस निकली है।

राजस्थान में आयोग द्वारा किये गये हवाई चुम्बकीय, सतही चुम्बकीय, घनत्व एवं भूकम्पीय सर्वेक्षण जो बीकानेर एवं जैसलमेर में किये गये उनसे एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक क्षेत्र 'जैसलमेर-मारी महराव' का पता लगा है जिसकी प्रवृति पाकिस्तान के भारी तथा खांडकोट गैस क्षेत्रों की ओर जाती हुई दिखलाई देती है। ये पाकिस्तान के व्यापारिक पैमाने पर गैस के उत्पादन करने वाले क्षेत्र हैं। इस भूगर्भीय संरचना को ध्यान में रखते हुए 9 कुओं की खुदाई की गई जिनमें से मनेहरा टिब्बा के नं. 6 के कुएं में 400 से 500 मीटर की गहराई पर गैस मिली। इस क्षेत्र में अनुमान है कि लगभग 20 करोड़ घनमीटर गैस होगी क्योंकि दवाव कम है। इसलिये गैस का उपयोग जैसलमेर व चानन क्षेत्रों में विद्युत के उत्पादन में किया जा सकता है।

आयोग द्वारा दो अन्य बेसिनों वदेसर के निकट शाहगढ़ तथा लुनार के समीप किशनगढ़ क्षेत्रों की खोज भी आयोग द्वारा की गई है। इन क्षेत्रों की भूगर्भीय संरचना तेल के बड़े भण्डारों की सम्भावनाएं प्रकट करती है क्योंकि जुरेसिक काल के सागरीय तल घाटी के मध्य इस प्रकार के स्रोत के बहुत अधिक आसार हैं।

राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्र में 950 लाख टन भूगर्भीय तेल व गैस के भण्डार की सम्भावना है। इन भण्डारों के दोहन के लिए 28,600 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में तेल गैस की खोज का कार्य आयल इण्डिया ने शुरू कर दिया है। आयल इण्डिया ने जोधपुर, बीकानेर जैसलमेर, श्रीगंगानगर जिलों के निर्धारित क्षेत्रों में 1990 तक 110 तेल कुएं खोदने की योजना बनाई है। इन कुओं की गहराई करीब 3.8 हजार मीटर होगी। इसी क्षेत्र से फंडे, मनिहारी टिब्बा, घोटारू व सादेवाल में प्राकृतिक तेल एवं गैस आयोग ने 19 तेल कुए खोदे हैं। सीमा पार पाकिस्तान में भी तेल के भण्डार मिले हैं। आयल इण्डिया ने जैसलमेर जिले में तनोट के निकट एशिया की सबसे अधिक शक्तिशाली रिंग से तेल कुए की खुदाई का कार्य मार्च, 1988 से शुरू कर दिया है। इस क्षेत्र से लगभग 50 लाख टन तेल व गैस के भण्डार होने के अनुमान हैं। ये भण्डार लगभग 3.5 हजार मीटर गहराई में मिलने की संभावना है। इस कार्य पर सातवीं योजना में 170 करोड़ रुपये के लगभग व्यय होने का अनुमान है। ऐसी सम्भावना है कि तेल निकालने का कार्य वर्ष 1989 के मध्य से शुरू हो जायेगा। देश में सन् 1970-71 में 68 लाख टन तेल और 1 अरब 44 करोड़ 50 लाख घनमीटर गैस निकाली गई। इसकी तुलना में 1986-87 में 3 करोड़ 5 लाख टन तेल और 9 अरब 85 करोड़ 30 लाख घनमीटर गैस निकाली गई। राजस्थान का हिस्सा उत्पादन की दृष्टि से अभी नगण्य है परन्तु नवीन क्षेत्रों में तेल की प्राप्ति के पश्चात यह एक महत्वपूर्ण भूमिका निवाहेगा।

विद्युत

बिजली उत्पादन की रफ्तार को यदि राज्य की प्रगति की गति का सूचक माना जाये तो राजस्थान की प्रगति आश्चर्यजनक कही जा सकती है। वर्तमान में राज्य की विद्युत उत्पादन की संस्थापित क्षमता 2188 मेगावाट (सितम्बर 1988) तक पहुंच चुकी है, जबकि 1949 में राजस्थान निर्माण के समय यह क्षमता मात्र 13.27 मेगावाट थी। मार्च, 1989 तक राज्य में विद्युत उत्पादन की संस्थापित क्षमता 2788 मेगावाट तक होने की सम्भावना है। राज्य में बिजली की खपत भी अब 100 यूनिट प्रति व्यक्ति हो चुकी है जबकि राज्य के निर्माण के समय यह केवल 2.9 यूनिट ही थी।

वर्तमान में राज्य की पूरी योजना का लगभग एक तिहाई भाग विद्युत विकास के लिये ही आवंटित है। इस एक तिहाई हिस्से में से काफी राशि विद्युत उत्पादन क्षमता बढ़ाने तथा ट्रांसमिशन व सब-ट्रांसमिशन का जाल बिछाने के उपयोग में लायी जा रही हैं। औद्योगिक और काश्तकारों के पम्पसेटों में हुई बढ़ोतरी से 'सिन्कनस कण्डेंसर्स' और 'शन्ट केपेसीटर्स'

लगाने की ओर भी समुचित ध्यान दिया जा रहा है ताकि विद्युत सप्लाई व्यवस्था में स्थायी मदद मिल सके।

अड़चनों का निराकरण—राजस्थान में बिजली के उत्पादन और विकास में शुरू से ही काफी अड़चनें आयी हैं। बारह मासी नदियां नहीं होने की वजह से जल विद्युत विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया। कोयला खदान नहीं होने से ताप बिजली उत्पादन की दिशा में भी नहीं बढ़ा जा सका। ऐसी स्थिति में जो भी बेहतर विकल्प हो सकता था वही राजस्थान ने अपनाया और विकल्प यह कि उसने जल विद्युत उत्पादन की दृष्टि से भाग्यशाली राज्यों की साझेदारी में जल विद्युत विकास के प्रयत्न शुरू किये। पंजाब और हरियाणा की साझेदारी में भाखरा-नांगल तथा व्यास परियोजना और मध्यप्रदेश की साझेदारी में चम्बल तथा सतपुड़ा परियोजनायें इसी प्रकार की परियोजनायें हैं।

कृषि और औद्योगिक विकास की भारी सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए कोटा के पास राजस्थान आणविक विद्युत परियोजना प्रारम्भ की गयी तथा वहां 220-220 मेगावाट की दो इकाईयां स्थापित की गयीं ताकि राजस्थान का अपना कोई आधारभूत स्टेशन बन जाये, जिस पर यह राज्य निर्भर रह सके।

कोटा थर्मल विद्युत परियोजना 1978 में कोटा ताप विद्युत केन्द्र का काम हाथ में लिया गया जिसकी अधिकतम उत्पादन क्षमता 850 मेगावाट विद्युत होगी। इसकी 110-110 मेगावाट क्षमता की दो इकाईयां कायम की जा चुकी हैं। ये दोनों इकाईयां अब अपनी पूरी क्षमता से काम करने लगी हैं। इसी परियोजना के दूसरे चरण में 21 -210 मेगावाट क्षमता की दो और इकाईयां स्थापित करने का कार्य प्रगति पर है।

दूसरे चरण की प्रथम इकाई जहां समय से पहले चालू कर दी गई, वहाँ दूसरी इकाई जो जून, 89 में प्रारम्भ होने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, उसके 31 मार्च 1989 तक बिजली उत्पादन प्रारम्भ कर देने की आशा है। वर्ष 1988-89 में कोटा तापीय तृतीय चरण 210 मेगावाट के लिए 3.4 करोड़ रुपये का प्रावधान प्रस्तावित है।

राजस्थान आणविक परियोजना और कोटा ताप विद्युत परियोजना से उत्पन्न होने वाली बिजली और विभिन्न अन्तर्राज्यीय परियोजनाओं सहित वर्तमान में राजस्थान की विद्युत क्षमता कुल 2,188 मेगावाट है। इसमें सिगरौली सुपर पावर स्टेशन से मिलने वाली 123.52 मेगावाट विद्युत भी शामिल है।

नदी घाटी परियोजनायें—राज्य ने रावी, व्यास और सतलज नदियों के पानी पर आधारित जल विद्युत परियोजनाओं में अपने हिस्से को प्राप्त करने के लिए अपना दावा पेश किया है। ये परियोजनायें हैं—नाथपा, झाकड़ी प्रोजेक्ट (1020 मेगावाट), थीन डेम पावर प्रोजेक्ट (480 मेगावाट), आनन्दपुर सा प्रोजेक्ट (134 मेगावाट), यू बी. डी. सी. स्टेज—2 (45 मेगावाट), शापुरकांडी प्रोजेक्ट (94 मेगावाट), बेयरासूल प्रोजेक्ट (180 मेगावाट) तथा सलाल प्रोजेक्ट (330 मेगावाट)।

राजस्थान और हिमाचल प्रदेश के बीच 1981 में हुए समझौते के अनुसार राज्य कोल परियोजना में 51 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त करने का हकदार होगा। अब दोनों सरकारें केन्द्र सरकार को इस परियोजना को स्वीकृति प्रदान करने के लिए अनुरोध कर रही है। सतलज नदी के 6 किलोमीटर ऊपर की ओर 600 मेगावाट क्षमता वाला देहर पावर प्लांट लगाया जायेगा। इसके अलावा हिमाचल प्रदेश 3 × 40 मेगावाट क्षमता की स्थापित की जाने वाली संजय विद्युत परियोजना की अतिरिक्त विद्युत राजस्थान राज्य को बेचेगा।

विद्युत गृहों के निर्माण के सम्बन्ध में राजस्थान सम्बन्धी निम्न परियोजनाएं महत्वपूर्ण हैं—

1. भांखड़ा-नांगल योजना – नांगल बांध से 65 किलोमीटर लम्बी नहर जो शिवालिक पठार से निकाली गई है उस पर दो विद्युत गृह बनाये गये हैं। पहला विद्युत गृह सरगंगूवाल तथा दूसरा कोटला स्थान पर बनाये गये हैं। इन स्थानों पर दोनों विद्युतगृहों में 23-24 हजार किलोवाट वाले तीन-तीन विद्युत-उत्पादक यन्त्र लगाए गए हैं। सरगंगूवाल विद्युतगृह पर लगभग 62 करोड़ रुपये की राशि व्यय की गई और यह सन् 1955 से विद्युत का उत्पादन कर रहा है।

इससे बीकानेर, रतनगढ़ तथा अन्य निकट के नगरों में जल-विद्युत प्रदान की जा रही है। दूसरा विद्युतगृह राजस्थान में गंगानगर तथा चूरू के नगरों को बिजली प्रदान कर रहा है। सभी विद्युत-गृहों की कुल प्रतिस्थापित क्षमता 12 लाख किलोवाट है।

2. **चम्बल योजना**—यह योजना मध्यप्रदेश तथा राजस्थान दोनों राज्यों की योजना है। इस योजना के अन्तर्गत गांधी सागर बांध, राणाप्रताप सागर बांध तथा कोटा बाँध (जवाहर सागर बांध) के साथ-साथ तीन जल विद्युत गृहों का भी निर्माण किया गया है।

गाँधी सागर बांध के अन्तर्गत बिजलीघर में चार संयंत्र 23 मेगावाट तथा एक संयत्र 27 मेगावाट क्षमता का है। इस प्रकार इसकी कुल विद्युत क्षमता 1.19 लाख किलोवाट है।

राणाप्रताप सागर बांध के शक्ति-गृह में 43-43 मेगावाट क्षमता के तीन संयन्त्र लगाये गए हैं। इस प्रकार इसकी कुल विद्युत क्षमता 1.29 लाख किलोवाट है। केन्द्र सरकार द्वारा कनाड़ा के सहयोग से प्रताप सागर बांध के समीप ही **अणुशक्ति परियोजना** पर 180 करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है जिसकी विद्युत क्षमता अभी 2 लाख किलोवाट है और एक अणु भट्टी और पूरी होने पर कुल चार लाख किलोवाट बिजली प्राप्त होगी।

जवाहरसागर बांध के अन्तर्गत शक्तिगृह में 33-33 मेगावाट क्षमता की तीन इकाईयां उत्पादनरत हैं, कुल विद्युत उत्पादन क्षमता 99 हजार किलोवाट है।

चम्बल परियोजना विद्युत उत्पादन की दृष्टि से राज्य के लिए वरदान सिद्ध हुई है। इससे कुल मिलाकर 291 मेगावाट बिजली मिल सकेगी और अणुशक्ति से भी 4 लाख किलोवाट बिजली प्राप्त होगी।

3. **नर्मदा-घाटी-योजना**—खोसला समिति के अनुसार नर्मदा-घाटी योजना के अन्तर्गत प्राप्त 2 हजार मेगावाट जल विद्युत का 100 मेगावाट अंश राजस्थान के सिरोही, जालोर तथा बाड़मेर जिलों को मिलना चाहिये। मध्यप्रदेश सरकार से इस बाबत समझौता हो गया है।

4. **माही विद्युत परियोजना**—बांसवाड़ा के निकट माही जल-विद्युत परियोजना के अन्तर्गत प्रथम विद्युत इकाई के 72 मैट्रिक टन बिजली जनरेटर स्टेटर की स्थापना 21 सितम्बर 1984 को की गई तथा नवम्बर 84 के प्रथम सप्ताह में जनरेटर सेट भी कायम कर दिया गया।

माही योजना के अन्तर्गत निर्माणाधीन दो विद्युत गृहों की चार इकाईयों से 140 मेगावाट विद्युत का उत्पादन हो सकेगा। यह विद्युतगृह माही बाँध के निकट तथा हैंगपुरा ग्राम के निकट बनाये जा रहे हैं। माही में स्थापित किये जा रहे 25-25 मेगावाट के विद्युत घर का भी कार्य चालू है। इससे भी वर्ष 1989 के प्रारम्भ से 45 मेगावाट बिजली मिलने लगेगी।

5. **इन्दिरा गांधी नहर परियोजना**—इन्दिरा गांधी नहर की वितरक नहरों पर कई जल-विद्युत गृह बनाये गये हैं इनसे 22 हजार किलोवाट विद्युत मिल रही है।

इन्दिरा गाँधी नहर पर उपलब्ध जल प्रपातों से बिजली बनाने की प्रस्तावित योजनाओं के अन्तर्गत पूगल शाखा पर दो विद्युतगृह, सूरतगढ़ शाखा पर दो विद्युतगृह तथा चारणवाली योजना के अन्तर्गत एक विद्युतगृह आदि पर कार्य चल रहा है जिनकी वर्ष 1988-89 में पूर्ण होने की सम्भावना है। यह सभी लघु विद्युत योजनायें हैं।

अनूपगढ शाखा पर उपलब्ध जलप्रपातों का उपयोग करने के लिए तीन विद्युतगृह स्थापित किए गए हैं। प्रत्येक की विद्युत क्षमता 1.5 मेगावाट है। बीरसालपुर शाखा पर भी तीन विद्युतगृह स्थापित किए जायेंगे।

6. **सतपुड़ा-व्यास विद्युत गृह**—गुजरात, मध्यप्रदेश एवं राजस्थान तीनों राज्यों का सम्मिलित ताप विद्युत गृह है। इससे राजस्थान को 100 मेगावाट विद्युत प्राप्त होती है। इसकी कुल क्षमता 1,100 मेगावाट की है जो सातवी योजना के अन्त तक तैयार हो जायेगी। इससे एक तिहाई विद्युत राजस्थान को मिलेगी।

7. **व्यास परियोजना व पोंग बांध**—यह राजस्थान, पंजाब व हरियाणा तीनों की संयुक्त परियोजना है। इस

योजना के दो चरण हैं—पहला व्यास, सतलज कड़ी तथा दूसरा, पोंग बांध। प्रथम चरण के अन्तर्गत चार इकाईयों का विद्युत गृह जिसमें प्रत्येक इकाई की क्षमता 165 मेगावाट तथा कुल क्षमता 6.6 लाख किलोवाट होगी। भविष्य में दो ईकाईयां और लगाने की गुंजाइश रखी हैं। दूसरे चरण में एक विद्युतगृह का निर्माण किया गया है। जिसमें विद्युत की अधिष्ठापित क्षमता 2.4 लाख किलोवाट है। भविष्य में दो इकाईयां जिनमें प्रत्येक की क्षमता 60 हजार किलोवाट होगी, स्थापित करने की व्यवस्था रहेगी।

8. **अन्ता विद्युत परियोजना**—अन्ता (कोटा) में 430 मेगावाट क्षमता के विद्युत गृह को केन्द्रीय क्षेत्र में लगाने का निर्णय लिया जा चुका है। यहां गैस पर आधारित विद्युत गृह से वर्ष 1989 से विद्युत उत्पादन होने लगेगा तथा इससे राजस्थान को 95 मेगावाट बिजली मिलने लगेगी।

सिंगरौली सुपर पॉवर स्टेशन—इस से राजस्थान राज्य को कुल 123.52 मेगावाट बिजली प्राप्त होगी। यह केन्द्रीय सरकार की परियोजना है जिसमें पूरी क्षमता से 2000 मेगावाट बिजली का उत्पादन होने पर राजस्थान को कुल 300 मेगावाट बिजली मिलेगी।

नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन कानपुर से जयपुर तक 440 के. वी. लाईन का निर्माण करवा रहा है जिस से राज्य अपने हिस्से की बिजली सिंगरौली से प्राप्त कर सके। राजस्थान राज्य विद्युत मण्डल ने जयपुर में हीरापुरा स्थान पर 440 के.वी. ग्रिड सब-स्टेशन का निर्माण करवाया है।

10. **बम्बई हाई गैस पर आधारित योजना**—बोम्बे हाई गैस पर आधारित दो तापीय विद्युतगृहों की स्थापना बांसवाड़ा व सवाईमाधोपुर में किए जाने हेतु परियोजनाएं तैयार की गई हैं। प्रत्येक विद्युतगृह की क्षमता 400 मेगावाट हैं और इन पर कुल 251 करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है। भारत सरकार ने इन परियोजनाओं को केन्द्रीय क्षेत्र में लेने का नीतिगत निर्णय लिया है।

राज्य की 1988-89 की वार्षिक योजना के अन्तर्गत ऊर्जा क्षेत्र में सर्वाधिक 208 करोड़ 71 लाख रुपये का प्रावधान प्रस्तावित है तो कुल योजना का 29.40 प्रतिशत है। बिजली की कमी को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1989-90 के प्रावधान का 58 प्रतिशत उत्पादन योजनाओं में लगाने का प्रस्ताव है। इनमें मुख्यतया कोटा तापीय परियोजना का द्वितीय चरण, माही पन विद्युत परियोजना ऊर्जा गृह द्वितीय व लघुपन बिजली योजनायें हैं। केन्द्रीय सरकार की परियोजनाओं में रिहन्द सुपर थर्मल पावर स्टेशन से 100 मेगावाट बिजली मिलने की सम्भावना है। इन परियोजनाओं के पूरा होने से वर्ष 1989-90 में 8,100 लाख यूनिट बिजली उपलब्ध होने का अनुमान है।

इन के अतिरिक्त सूरतगढ़, मांडलगढ़, धौलपुर आदि तापीय परियोजनाएं केन्द्र सरकार को भेजी गई हैं जिन की स्वीकृति मिलने की पूर्ण सम्भावना है। मांगरोल, माउन्ट आबू में भी विद्युत उत्पादन संयंत्र लगाने की भी योजना है।

विभिन्न अन्तर्राज्यीय व राज्य के भीतर चल रही योजनाओं से निकट भविष्य में मिलने वाली बिजली की मात्रा को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि बिजली के क्षेत्र में राज्य का भविष्य उज्जवल है।

ट्रांसमिशन का विस्तार—1949 में राजस्थान निर्माण के समय राज्य में व्यावहारिक रूप से कोई भी ट्रांसमिशन लाइन नहीं थी। राज्य में 2501.70 किलोमीटर 220 के.वी. व 5618.80 किलोमीटर 32 के. वी. ट्रांसमिशन लाइनों तथा 132 के.वी. विद्युत उपकेन्द्रों का निर्माण किया गया है। इन केन्द्रों की कुल क्षमता क्रमशः 1970 एम.वी.ए. तथा 2088.5 एम. वी.ए है। इसमें से 1981-84 की अवधि में 2110.76 किलोमीटर एम.वी.ए. तथा 1120.00 किलोमीटर इ. एच.वी. ट्रांसमिशन लाइनें डाली गयी।

इसके अतिरिक्त 15851 किलोमीटर लम्बी 33 के. वी. लाईन तथा 1780.30 एम. वी ए. 33/11 के. वी. क्षमता के सब स्टेशनों का निर्माण कराया गया है। वर्ष 1986-87 में 220 के.वी.की 55 किमी., 132 के.वी. की 208 किमी. तथा 533 के.वी.की 500 किमी. लाइनें खीचने तथा 400 के. वी., 220 के. वी, 132 के. वी. एवं 33 के.वी.के क्रमशः 500,200,89 एवं 100 एम.

वी. ए. क्षमता के सब स्टेशन स्थापित करने का कार्यक्रम बनाया था जिन पर अभी भी कार्य चल रहा है और आशा है कि वर्ष 1988-89 में पूरा कर लिया जायेगा। इन ट्रांसमिशन लाइनों तथा सब-स्टेशनों के निर्माण से एक ओर जहाँ बिजली वितरण का दबाव बनाये रखा जा सकता है व पर्याप्त मात्रा में बिजली के वोल्टेज को समान बनाये रखने में भी मदद मिलती है। राज्य में ऊर्जा के स्रोतों को विकसित करने में केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों ही प्रयत्नशील हैं, अतः ऊर्जा के त्वरित विकास हेतु राजस्थान ऊर्जा विकास अभिकरण (REDA) की स्थापना की गई है, जो विशेषकर गैर-पारम्परिक स्रोतों को विकसित करेगा।

ग्रामीण विद्युतीकरण--राजस्थान निर्माण के समय कुल 42 कस्बों और गांवों में ही बिजली थी तथा कुछ कुएं ही विद्युतीकृत थे। वर्ष 1987-88 की समाप्ति पर राज्य के 23,569 गांवों का विद्युतीकरण और 3,04,944 कुओं का ऊर्जाकरण किया जा चुका था। विद्युतीकृत गांवों का प्रतिशत बढ़कर 62.49हो गया है। वर्ष 1988-89 के लिए 1376 गाँवों के विद्युतीकरण और 15,295 कुओं के ऊर्जाकरण का लक्ष्य प्रस्तावित किया गया है। साथ ही एक हजार हरिजन बस्तियों के विद्युतीकरण और हरिजनों के 2550 कृषि कुओं का ऊर्जाकरण का लक्ष्य भी प्रस्तावित किया गया है।

आज राजस्थान उद्योगों व ग्रामीण क्षेत्र की मांग को पूरा करने के लिए पर्याप्त मात्रा में बिजली उपलब्ध करवाने में सतत् प्रयत्नशील है। वर्तमान में उद्योगों,कृषि क्षेत्र तथा अन्य उपभोक्ताओं को 160 लाख यूनिट बिजली प्रतिदिन दी जा रही है लेकिन फिर भी आये दिन विद्युत की आपूर्ति में कटौती होती रहती है। ऐसी समस्या से बचने के लिए राज्य ने सातवीं पंचवर्षीय योजना में विद्युत योजनाओं को प्राथमिकता दी है।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विद्युत शक्ति का विकास

प्रथम पंचवर्षीय योजना—इस योजना के अन्तर्गत राज्य में थर्मल विद्युत शक्ति को विकसित करने,भाखड़ा नांगल व चम्बल बहुउद्देशीय योजनाओं से प्राप्त बिजली का प्रसार करने तथा शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली की सुविधाओं को उपलब्ध करवाने के लिए 1.05 करोड़ रुपये व्यय किये गए।

थर्मल शक्ति के विकास कार्यक्रम में दो प्रकार के कार्य—पुराने बिजलीघरों में नई मशीनें लगाना और नई ट्रांसमिशन लाइनें डालना आदि को सम्मिलित किया गया। राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में लगभग 180 किलोमीटर लम्बी ट्रांसमिशन लाइनें डाली गयी।

भाखड़ा-नांगल परियोजना के अन्तर्गत गंगानगर व राजगढ़ के आस-पास के 61 नगरों व कस्बों को बिजली की व्यवस्था की गई। लगभग 240 किलोमीटर लम्बी ट्रांसमिशन लाइनें गंगानगर, रायसिंह नगर, रतनगढ़, फतेहपुर, सीकर व जैतसर में सन् 1956 के अन्त तक बिछा दी गई।

चम्बल परियोजना के गांधीसागर बांध पर बनाये जाने वाले विद्युत गृह से राजस्थान को विद्युत उपलब्ध करवाने की व्यवस्था की गयी।

इस योजना काल में विद्युत का उत्पादन सन् 1951 में 13,271 किलोवाट से बढ़कर सन् 1956 में 34,900 किलोवाट हो गया था।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना—इस योजना अवधि में15.14 करोड़ रुपये की राशि व्यय की गई। सन् 1957 में जितने भी विद्युतगृह रियासतों के थे,उन सभी को राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड को सौंप दिया गया।

इस योजना काल में 2,250 किलोमीटर लम्बी ट्रांसमिशन लाइनें बिछाई गई। अधिष्ठापित विद्युत क्षमता में तिगुनी वृद्धि हुई जो 34.8 हजार किलोवाट से बढ़कर 108.9 हजार किलोवाट हो गई। 555 किलोमीटर लम्बी अतिरिक्त उच्च प्रसारण लाइनें डाली गई। इसी प्रकार 33 के.वी. लाइनों की प्रथम पंचवर्षीय योजना की तुलना में पांच गुना बढ़ा दी गयी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना—द्वितीय योजना की समाप्ति पर अधिष्ठापित क्षमता 135.56 हजार किलोवाट थी जो बढ़कर तृतीय योजना के अन्त तक 220.5 हजार किलोवाट हो गई। विद्युत प्रसारण के लिए 220 के.वी. की लाईन सन् 1966-67 में बनकर तैयार

हो गई थी।

इस योजना अवधि में, जोधपुर में 3,000 किलोवाट के सेट का प्रतिष्ठापन कर दिया गया परन्तु बॉयलर्स में निर्माणकारी दोष होने के कारण 9,000 किलोवाट की उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं किया जा सका।

1,233 नगरों व कस्बों को बिजली उपलब्ध करवा दी गई तथा 7,500 कुओं का विद्युतीकरण कर दिया गया। सन् 1968-69 के अन्त में विद्युत क्षमता 2.33 लाख किलोवाट हो गई।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना—इस योजना में विद्युत विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। विद्युत उत्पादन की स्थापित क्षमता योजना के अन्त तक 7.22 लाख किलोवाट और उपलब्ध क्षमता 4.33 लाख किलोवाट थी।

पंचम पंचवर्षीय योजना—पाँचवीं योजना में विद्युत उत्पादन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। इस योजना के अन्तर्गत विद्युत क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ। केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकार के कोटा में थर्मल विद्युत संयंत्र को स्थापित करने के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान कर दी और कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया। सन् 1978 के अन्त तक विद्युत उत्पादन स्थापित क्षमता 906.5 मेगावाट हो गई थी। महत्वपूर्ण उत्पादन की योजनाएं जो कार्यान्वित की, उनमें व्यास परियोजना के प्रथम दो चरण, माही परियोजना का प्रथम चरण तथा कोटा थर्मल प्लांट मुख्य हैं। प्रति व्यक्ति विद्युत की खपत को विकास का सूचकांक माना जाता है। चतुर्थ योजना के अन्त तक प्रति व्यक्ति विद्युत खपत 48 किलोवाट घण्टा थी जो बढ़कर सन् 1977-78 के अन्त में 75 किलोवाट घन्टा हो गई। देश की तुलना में यह औसत बहुत कम है।

इस योजना के अन्तर्गत कोटा-उज्जैन एक ट्रांसमिशन लाइन के कार्य को पूरा किया गया। 220 के. वी. ट्रांसमिशन लाईन की लगभग 114 किलोमीटर लम्बी लाईन इस योजना अवधि में मौजूदा लाइनों में जोड़ी गई।

छठी योजना—इस योजना में विद्युत विकास पर लगभग 905.08 करोड़ रूपये व्यय का प्रावधान था। इस राशि में से 434.8 करोड़ रूपये विद्युत उत्पादन पर, 240 48 करोड़ रूपये ट्रांसमिशन लाइनों के विस्तार पर, 127 करोड़ रूपए सब-ट्रांसमिशन पर, 107.80 करोड़ रूपए ग्रामीण विद्युतीकरण पर तथा 45 करोड़ रूपये सर्वेक्षण व अनुसंधान कार्यों पर व्यय किए। इस योजना अवधि में राज्य की अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए ट्रांसमिशन विस्तार तथा वितरण व्यवस्था एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि की गई। विशेष महत्व एकीकृत ग्रामीण विकास के अनुरूप ग्रामीण क्षेत्रों को विकसित करने पर जोर दिया गया जिससे अधिक से अधिक कुओं तथा ग्रामों को विद्युतीकरण का लाभ पहुँचाया जा सका। इस योजना की अवधि में विद्युत क्षमता 1032.82 मेगावाट (1979-80) से बढ़कर 1713.17 मेगावाट (1984-85) हो गयी।

मौजूदा परियोजनाएं—मौजूदा परियोजनाओं में सतपुड़ा (1250 मेगावाट), गांधीसागर (57.50 मेगावाट), राणा प्रतापसागर (86.0 मेगावाट), जवाहर सागर (49.50 मेगावाट) और भाखड़ा-नांगल (168 5 मेगावाट) आदि के अतिरिक्त डीजल और वाष्पीय केन्द्र (64 मेगावाट) सम्मिलित है।

चालू परियोजनाएं—देहर की प्रथम चार इकाईयों और व्यास के प्रथम चरण के अन्तर्गत पोंग पर प्रथम तीन इकाईयों से विद्युत आपूर्ति की जा रही है। व्यास परियोजना के अन्तर्गत द्वितीय चरण में पांचवीं व छठी इकाई का कार्य चल रहा है तथा पांचवी इकाई का कार्य शीघ्र पूर्ण होने वाला है। माही बजाज सागर परियोजना से 25 मेगावाट विद्युत उपलब्ध है और शेष 45 मेगावाट इस योजना के अन्त तक उपलब्ध होने की आशा है।

नवीन परियोजनाएं—पंजाब में आनन्दपुर साहिब, मुकेरियन, बग्गी और थीन परियोजनाएं वर्तमान में निर्माणधीन हैं जिनकी अधिष्ठापित क्षमता क्रमशः 134 मेगावाट, 207 मेगावाट, 40 मेगावाट और 480 मेगावाट है। इन परियोजनाओं से राजस्थान लाभान्वित होगा। अभी तक इन परियोजनाओं में राज्य का हिस्सा निर्धारित नहीं किया गया है लेकिन राज्य की योजना में

इस कार्य के लिए राज्य के हिस्से का अनुपात में आने वाली लागत का प्रावधान रखा गया है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना—सातवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में विद्युत के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। इसलिए राज्य में बिजली की कमी को देखते हुए सातवीं पंचवर्षीय योजना में विद्युत उत्पादन के साधन उपलब्ध कराने पर विशेष ध्यान दिया गया।

सातवीं योजना में विद्युत विकास हेतु 927.48 करोड़ रुपयों की राशि का आवंटन किया गया जिस से राज्य में विद्युत उत्पादन क्षमता को 1713 मेगावाट से बढ़ाकर 2660 मेगावाट करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया; अतः इसमें 62% वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है। विद्युत का उत्पादन मार्च, 1987 तक 1802.36 मेगावाट एवं सितम्बर 1988 तक 2188 मेगावाट हो गया है और ऐसी आशा की जा रही है कि राज्य वर्ष 1989 तक इसमें 500 मेगावाट की अभिवृद्धि और कर लेगा। माहीपन विद्युत गृह से 103 मिलियन यूनिट का लक्ष्य रखा गया था जबकि दिसम्बर, 1986 तक 146.14 मिलियन यूनिट का उत्पादन हो चुका था क्योंकि इस विद्युतगृह प्रथम की 25 मेगावाट प्रति ईकाई क्षमता की दो इकाईयां फरवरी 1986 में चालू कर प्रतिष्ठापित क्षमता में वृद्धि की गई। इसी प्रकार कोटा ताप परियोजना के दूसरे चरण की प्रथम इकाई को समय से पूर्व चालू कर दिया गया, वहीं दूसरी इकाई से भी विद्युत उत्पादन मार्च, 1989 से प्रारम्भ होने की आशा है। अन्ता में गैस पर आधारित विद्युतगृह 1989 के प्रारम्भ में ही उत्पादन शुरू कर देगा। सूरतगढ़ में तापीय परियोजना (2 × 210 मेगावाट) के लिए 6.6 करोड़ रुपये का प्रावधान वर्ष 1988-89 में रखा गया है। सूरतगढ़, मांगरोल, चारणवाली, पूगल एवं माही की लघुपन बिजली सिंचाई योजनाओं पर भी कार्य प्रगति पर है जिनके वर्ष 1989-90 में पूर्ण होने की सम्भावना है।

पूर्ण होने वाली नई विद्युत उत्पादन योजनाओं से विद्युत विस्तार करने के लिए व उप-वितरण में सुधार करने के लिए 61 करोड़ रुपये से अधिक राशि का प्रावधान प्रस्तावित है।

राज्य के प्रत्येक गाँव व उद्योग को विद्युत उपलब्ध कराने के प्रयास किये जायेंगे। इसके लिए विद्युत उत्पादन के साथ पड़ौसी राज्यों से विद्युत उपलब्ध कराने की भी योजना है। लिग्नाईट पर आधारित पलाना विद्युत गृह सातवीं पंचवर्षीय योजना में पूरा कर लिया जायेगा। केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण ने राज्य की पांच और लघु विद्युत परियोजनाओं के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी है। स्वीकृत योजनाओं में इन्दिरा नहर की पूगल व बीरसालपुर शाखाओं पर उपलब्ध जल-प्रपातों की प्रस्तावित परियोजना, जाखम बांध से बिजली बनाने की परियोजना, माही परियोजना की दाँयी मुख्य नहर पर उपलब्ध जल-प्रपात और चम्बल परियोजना की इटावा शाखा पर उपलब्ध जल-प्रपात से विद्युत बनाने की योजनाएं हैं।

चित्तौड़गढ़ जिले की धारियावाद तहसील में निर्माणाधीन जाखम बांध के जल का उपयोग कर विद्युतगृह स्थापित किया जायेगा। इस विद्युत गृह में दो इकाईयाँ होंगी। प्रत्येक इकाई की क्षमता 4.5 मेगावाट होगी।

चम्बल परियोजना की दाँयी मुख्य नहर की इटावा शाखा पर उपलब्ध जल-प्रपात पर एक विद्युतगृह स्थापित किया जायेगा। इस विद्युतगृह की क्षमता 500 किलोवाट होगी।

सातवीं योजना के प्रथम वर्ष 1985-86 में विद्युत पर 125.99 करोड़ रुपये, 1986-87 में 180.35 करोड़ रुपये, 1987-88 में अनुमानित 189.7 करोड़ रुपये व्यय किये गये जबकि वर्ष 1988-89 में 208.71 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है।

अणु-शक्ति

अणु-शक्ति से विद्युत शक्ति बहुत मात्रा में उत्पन्न की जा सकती है। अनुमान है कि एक किलोग्राम यूरेनियम द्वारा 25 लाख किलोग्राम कोयला से उत्पन्न विद्युत-शक्ति के बराबर विद्युत शक्ति उत्पन्न की जा सकती है।

राजस्थान जैसे राज्य में जहां कोयले व तेल से संचित्र भण्डार सीमित तथा अज्ञात हैं, औद्योगिक विकास के लिए अणु शक्ति का विकास हितकर समझकर कोटा

में अणु शक्ति द्वारा चालित विद्युतगृह की स्थापना की गई। कनाड़ा के सहयोग से वर्ष 1973 में एक रिएक्टर दो इकाईयों वाला 400 मेगावाट शक्ति का राणाप्रताप सागर बांध के जल-विद्युतगृह के निकट रावत भाटा नामक स्थान पर बनाया गया था।

कोटा स्थित परमाणु विद्युतगृह में ईंधन के रूप में प्राकृतिक यूरेनियम तथा इसके साथ भारी पानी का उपयोग किया जाता है। दूसरी इकाई से विद्युत की सुविधा 1980-81 में मिलने लगी लेकिन पहली इकाई में प्रारम्भ से ही कुछ न कुछ तकनीकी खामियाँ आती रही और अन्ततोगत्वा सन् 1981-82 में इस इकाई को बन्द करना पड़ा। लगभग तीन वर्ष पश्चात इसे प्रारम्भ किया गया लेकिन अभी भी यह इकाई पूर्णरूपेण अपनी क्षमता के अनुसार उत्पादन करने में समर्थ नहीं है। इसलिए कोटा का परमाणु संस्थान कभी भी उत्पादन की दृष्टि से नियमित नहीं रहा। केन्द्र सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग ने राजस्थान में 500 मेगावाट क्षमता वाला एक नया परमाणु विद्युतगृह बांसवाड़ा के निकट स्थापित करने की योजना बनायी है परन्तु अभी इसमें वनसंरक्षण एवं राष्ट्रीय वन नीति की पालना के परिणामस्वरूप अवरोध उत्पन्न हो गया है जिसे राज्य सरकार के इस आश्वासन पर कि परमाणु विद्युतगृह के अन्तर्गत आने वाली वन भूमि से कई गुणा अधिक क्षेत्र में वन विकसित करने की व्यवस्था कर देगी, यह बाधा नहीं रहेगी और योजना की क्रियान्विति शीघ्र ही शुरू हो जायेगी। अक्टूबर, 1988 में केन्द्र सरकार ने देश में दस परमाणु ऊर्जा इकाईयों को स्थापित करने की अनुमति दी है। इनमें से चार इकाईयां कोटा परमाणु बिजलीघर पर लगायी जायेंगी। प्रत्येक इकाई 500 मेगावाट की होगी। इनमें प्राकृतिक यूरेनियम और भारी पानी का उपयोग किया जायेगा।

गैस

बिजली की आपूर्ति की कमी को देखते हुए सितम्बर 84 को खेतड़ी कॉपर कॉम्पलेक्स में गैस टरबाइन प्लांट की स्थापना की गयी थी जिस पर लगभग 22 करोड़ रुपये की लागत आयी। इस संयत्र में दो गैस टरबाईन-पैंतीस यूनिट की है जिसकी सप्लाई मैसर्स एशिया स्टॉल स्वीडन ने की। गैस टरबाईन-पैंतीस यूनिट मल्टी शॉफ्ट सीधे चलने वाले डिजाईन के रूप में हैं जो प्रत्येक यूनिट 10-15 मेगावाट विद्युत जनन के लिए उपयुक्त हैं। आये दिन जो खेतड़ी कॉपर को कटौती का सामना करना पड़ता था, उससे कुछ मुक्ति मिली है। गैस टरबाईन पावर प्लांट में भविष्य के लिए हीट रिकवरी प्रणाली की स्थापना का प्रावधान रखा गया है।

प्राकृतिक गैस और तेल आयोग पश्चिमी राजस्थान में वर्ष 1988 से 1990 तक गैस की खोज के लिए 150 करोड़ रुपये खर्च करेगा। पश्चिमी राजस्थान में खोदे जाने वाले कुओं में भाखरी टीबा में दो, शाहगढ़ में पाँच, मनहारी टीबा में एक, ल्यूनार में एक, म्यानराल में एक और सतारवाली में एक है। इन सभी कुओं की खुदाई 2000 मीटर से 5000 मीटर गहराई तक की जायेगी। इस क्षेत्र में अब तक (अक्टूबर, 1988) लगभग 80 करोड़ रूपयों की लागत से 26 तेल कुओं की खुदाई की गई जिनमें से केवल 9 कुओं में गैस मिली है। इस गैस में बहुमूल्य हीलियम गैस भी शामिल है।

जैसलमेर जिले के घोटारू क्षेत्र में 1500 मीटर से 2000 मीटर गहराई तक गैस के भण्डार मिले हैं। गैस मिलने की पुष्टि के बाद कुएं को सील कर दिया गया है तथा विभिन्न वैज्ञानिक परीक्षण गैस की मात्रा कितनी है, उसकी गुणवत्ता का स्तर कैसा है, आदि की जानकारी प्राप्त करने के लिए शुरू किये गए हैं। इस कुएं से गैस दोहन के लिए इसके निकट ही 500 से 1000 मीटर की गहराई तक शीघ्र ही खुदाई की जायेगी।

मनिहारी टिब्बा के आगे दुर्गम सीमान्त क्षेत्र शाहगढ़ में भी तेल व गैस के अच्छे भण्डार होने की सम्भावना है। वहाँ भी शीघ्र खुदाई का कार्य प्रारम्भ कर दिया जायेगा।

जैसलमेर जिले का घोटारू क्षेत्र हीलियम मिश्रित गैस की खोज की दृष्टि से भारत के मानचित्र पर एक महत्वपूर्ण बिन्दु बन गया है। हीलियम गैस का मिलना आज के युग में बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि हीलियम का उपयोग बहु-आयामी है। इसका उपयोग जहां जीवन

रक्षक औषधियां बनाने के लिए किया जाता है, वहीं परमाणु हथियारों और उपग्रहों में ईंधन के रूप में भी इसका उपयोग होता है। घोटारू में यह गैस केवल 295 मीटर गहराई पर उपलब्ध हो गई है। घोटारू क्षेत्र हीलियम की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। जिस स्थान पर गैस मिली है, वहां इसका दबाव इतना है कि उसे नियंत्रित करना भी इंजीनियरों और विशेषज्ञों के लिए एक जबर्दस्त चुनौती है। जो भी हो राजस्थान में हीलियम गैस का मिलना राज्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और इसका लाभ राजस्थान को भी मिलना चाहिए।

सवाईमाधोपुर के निकट गैस पर आधारित एक बिजलीघर का निर्माण नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन द्वारा करवाया जायेगा। इस बिजलीघर की अधिष्ठापित क्षमता 5 सौ मेगावाट होगी। बिजली घर में बाम्बे हाई से प्राप्त गैस का उपयोग बिजली बनाने के लिए किया जायेगा। इसे सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में पूर्ण कर लिया जायेगा।

वायु ऊर्जा

देश की सातवीं योजना में वायु से ऊर्जा उत्पन्न करने के कार्यक्रम के लिए 100 करोड़ रुपये रखे जा रहे हैं। इस निश्चय से इस ऊर्जा स्त्रोत में भारत सरकार का विश्वास प्रकट होता है और जो परीक्षण एवं प्रयत्न अब तक हुए हैं उनकी सफलता भी सिद्ध होती है। ऊर्जा का अधिक सफल प्रयोग गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, लद्दाख और उत्तरी-पूर्वी राज्यों में हो रहा है। प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकृति प्रदत्त प्रसाद को प्राप्त करने वालों में राजस्थान क्यों नहीं है।

वायु वेग राजस्थान को असाधारण रूप से प्राप्त है और वर्ष के प्राय: पूरे भाग में वायु ऊर्जा का उत्पादन राजस्थान में हो सकता है। ग्रीष्म ऋतु एवं मानसून के समय जैसलमेर, फलोदी, बाड़मेर, बीकानेर आदि क्षेत्रों में वायु गति 20-40 किमी. रहती है। ऐसे समय में ऊर्जा प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक प्रयोग व शोध कार्य करने चाहिए। वायु ऊर्जा प्राप्त करने के उपकरण सरल होने चाहिए और जिन गावों ने थोड़ी सी सम्पन्नता प्राप्त कर ली है, वे ऊर्जा में आत्मनिर्भरता इस साधन से प्राप्त कर सकते है

राजस्थान के इस क्षेत्र में पिछड़े रहने का एक कारण यह है कि केन्द्र ने वायु ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए राजस्थान राज्य को नहीं चुना है जबकि प्राकृतिक परिस्थितियों को देखते हुए राजस्थान की प्राथमिकता अपने आप बनती है। राज्य सरकार को अपनी ओर से वायु ऊर्जा बढ़ाने के लिए नये से नये प्रयोग और परीक्षण करने चाहिए और इस स्त्रोत के प्रति उत्साह हर बस्ती और गाँव में जगाना चाहिये।

सौर ऊर्जा

भारत में पहला सौर ऊर्जा फ्रीज जोधपुर जिले में बालेसर उच्चीकृत प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र में स्थापित किया गया है। सौर ऊर्जा प्राप्त करने के लिए छत पर कांच की प्लेटों का पेनल लगाया गया है जिन पर सूर्य की रोशनी पड़ने से 12 वोल्ट क्षमता की ऊर्जा उत्पन्न होती है और फ्रीज की बैटरी में यह सौर ऊर्जा समाहित हो कर फ्रीज का संचालन करती है। धूप न होने की स्थिति में भी चार दिन तक यथावत कार्य करता रहता है।

सौर ऊर्जा का उपयोग ट्यूब-लाईटों के संचालन में काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। वर्ष 1985-86 से 1987-88 तक सौर ऊर्जा से संचालित लगभग 3000 ट्यूब लाईटें 400 से भी अधिक गांवों में गली के प्रकाश हेतु लगवाई जा चुकी है। वर्ष 1988-89 में लगभग 200 स्ट्रीट लाईटें और लगवाये जाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

सौर ऊर्जा से संचालित कूकर लगभग 13000 से भी अधिक वर्ष 1987-88 में जनता को राजस्थान खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड के द्वारा बेचे गए। वर्ष 1988-89 में लगभग 8000 सोलर कूकर बेचने का लक्ष्य है। इस प्रकार गैस व अन्य ईंधन की काफी बचत होती है।

सौर ऊर्जा से संचालित गर्म पानी के संयंत्र एक वर्ष में 1500 यूनिट बिजली की बचत करने में सक्षम हैं। वर्ष 1987-88 में एक लाख लीटर क्षमता के गर्म पानी के संयन्त्र लगाये जा चुके है। वर्ष 1988-89 में लगभग एक लाख लीटर क्षमता के सोलर वाटर हीटर सिस्टम लगवाये जाने का कार्यक्रम प्रस्तावित है।

सोलर थर्मल पावर प्लांट के लिए सब से अधिक उपयुक्त स्थान जोधपुर है क्योंकि इसे सूर्य की रोशनी सब से अधिक उपलब्ध होती है। 30 मेगावाट की क्षमता का एक प्लांट जोधपुर में लगाये जाने हेतु केन्द्र सरकार से अनुरोध किया गया है। यदि सौर ऊर्जा प्राप्त करने के उपकरण सरलता और बहुलता से मिलने लगे तो अपने आप यह विधि लोकप्रिय हो जायेगी।

बायो गैस

राजस्थान में बायोगैस कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1988-89 में 25 लाख रुपये व्यय किये जायेंगे। वर्ष 1985-86 में 5232 बायोगैस संयंत्र लगाये गये थे। 1986-87 में 4321 संयन्त्र, वर्ष 1987-88 में 2911 बायो गैस संयन्त्र स्थापित किये गये। इस के अतिरिक्त 33 ग्रामीण कारीगरों के प्रशिक्षण, 16 बायो गैस प्रदर्शन, 17 ग्रामीण शौचालयों को बायोगैस संयन्त्रों से सम्बद्ध करने के अलावा 28 नई किस्म के संयन्त्र लगाये गये।

केन्द्र सरकार ने बढ़ती ऊर्जा की कमी के पूरा करने के लिए गैर-परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों के उद्देश्य से 1981-82 वर्ष में राष्ट्रीय बायोगैस विकास योजना शुरू की थी।

वर्तमान में अन्तर्राज्यीय विद्युत समझौतों में राजस्थान के हित व अधिकारों की अनदेखी हो रही है। पंजाब पूर्व समझौतों को नहीं मानता और उसने चार बिजली घर बनाने का काम चालू कर रखा है। इनमें से एक रोपड़ में बन चुका है। अतः इस दिशा में राज्य को चिन्ता होना स्वाभाविक है।

राजस्थान को बिजली की जितनी आवश्यकता पड़ती है उससे आधी बिजली ही उसे आमतौर पर मिलती है। इसकी एक वजह तो यह है कि रावत-भाटा के बिजली घर की दोनों इकाईयां आमतौर पर बन्द रहती हैं और उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। यही वजह है कि आये दिन उद्योगों की बिजली में कटौती करनी पड़ती है। राज्य की बिजली की मांग 211 लाख यूनिट प्रतिदिन है और पूर्ति केवल 170 लाख है।

यदि उद्योगों को चलाए रखना है तो यह सुझाव विचारणीय है कि बिजली के उत्पादन में गैर सरकारी लोगों का सहयोग लिया जाए। बड़े उद्योगों को अपने उपभोग की बिजली बनाने की अनुमति देने से काफी हद तक समस्या सुलझ सकती है। महाराष्ट्र में टाटा ग्रुप ने बिजली उत्पादन में काफी सहयोग दिया है। राजस्थान के उद्योगपति अपनी औद्योगिक क्षमताओं के लिए समग्र देश में प्रसिद्ध हैं। इनके लिए राज्य में बिजली की कमी एक चुनौती है और इस क्षेत्र में साहसी लोगों को आगे आना चाहिए।

ऊर्जा न केवल आर्थिक कार्यक्रम को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है अपितु मानव के अस्तित्व के लिए भी बहुत जरूरी है। आज ऊर्जा के बिना काम नहीं चल सकता। अतः लागत को कम करने के लिए अतिरिक्त परियोजनाएं तैयार की जानी चाहिए, डिजाइनों में परिवर्तन किया जाना चाहिए, एवज़ी पदार्थों तथा स्थानीय सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिये, राज्य के ऊर्जा प्रबंधन में सुधार होना चाहिये। राज्य में आज जिस बात की आवश्यकता है वह यह है कि बिजली संयंत्रों की मौजूदा क्षमताओं का अधिकतम उपयोग किया जाये तथा चालू परियोजनाओं के कार्य में तेजी लाई जाए जिससे ऊर्जा संकट को हल करने में बहुत मदद मिलेगी।

ऊर्जा के अक्षय स्त्रोत के रूप में सौर ऊर्जा व आणविक ऊर्जा को आने वाले वर्षों में अधिकाधिक महत्व देना होगा। इसमें आणविक ऊर्जा के रेडियो-धर्मिता सम्बन्धी खतरों को देखते हुए सौर उर्जा को ही प्राथमिकता देना श्रेष्ठ होगा। राज्य की जलवायु में सौर ऊर्जा से बढ़कर कोई स्त्रोत अधिक अनुकूल नहीं हो सकता।

□

उद्योग धन्धे

राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है लेकिन जहां तक औद्योगिक विकास का प्रश्न है, इसकी गणना देश के पिछड़े राज्यों में की जाती है। औद्योगिक धन्धे सापेक्षतया राज्य में रोजगार एवं उत्पादन के स्त्रोतों के रूप में महत्वपूर्ण हैं। भारी उद्योगों के क्षेत्र में राजस्थान उन राज्यों के साथ जो इनमें अधिक विकास किये हुए हैं अपना स्थान बना लेगा, अभी स्वप्नवत प्रतीत होता है। राजस्थान निर्माण के पूर्व देशी रियासतें संसाधनों की दृष्टि से धनी थीं लेकिन साथ ही वे इस स्थिति में भी नहीं थीं कि अपनी अपनी रियासतों में औद्योगिक विकास बड़े पैमाने पर कर सकती। भारत के कई बड़े उद्योगपति बिड़ला, डालमिया, गोयनका, सिंहानिया, बजाज, बांगड़, रामपुरिया, कनोडिया व तोदी आदि राजस्थान राज्य के हैं लेकिन उनमें से कोई भी राज्य में उद्योग का विकास नहीं कर सका। इसके लिए देशी राज्यों में अनुकूल वातावरण की कमी तथा औद्योगिक क्रियाओं के विकास के लिए सुविधाओं के अभाव को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। राजस्थान प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है। यहां अनेक प्रकार के कृषि पदार्थ तथा खनिज पदार्थ मिलते हैं, पशुधन बड़ी संख्या में पाला जाता है, पर्याप्त जनशक्ति है, पूंजी की कमी नहीं है लेकिन फिर भी राज्य औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। इसके लिए निम्न कारणों को गिनाया जा सकता है—

1. **स्थलाकृति**—राज्य के औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े होने के कारणों में स्थलाकृति एक प्रमुख कारण है। राजस्थान का अधिकांश भाग शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क है जो राज्य के लगभग दो तिहाई क्षेत्र पर विस्तृत हैं। इस शुष्क क्षेत्र में लगभग एक तिहाई जनसंख्या रहती है। मध्य का विस्तृत क्षेत्र अरावली श्रेणियों से आवृत होने के कारण उद्योगों की स्थापना में बाधक हैं।

2. **जल का अभाव**—औद्योगिक क्रियाओं के लिए स्वच्छ जल की आपूर्ति प्रचुर मात्रा में होना आवश्यक है। राजस्थान में वर्षा कम होती है और नियतवाही नदियों का अभाव है। पश्चिमी शुष्क जिलों में पानी की कमी उद्योग के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। अनेक क्षेत्रों में पीने का पानी ही बड़ी मुश्किल से उपलब्ध होता है। ऐसे क्षेत्रों में उद्योग की स्थापना व उनके विकास की कठिनाइयों को आसानी से समझा जा सकता है।

3. **शक्ति साधनों का अभाव** – शक्ति संसाधनों में कोयला केवल पलाना क्षेत्र से ही प्राप्त होता है और वह भी घटिया किस्म का है। जल विद्युत केवल चम्बल परियोजना से ही उपलब्ध हो सकती हैं। पेट्रोलियम के लिए राजस्थान के पश्चिमी जिलों में खोज जारी है लेकिन कितनी मात्रा में उपलब्ध होगी, अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। कोटा के परमाणु विद्युत से भी विद्युत प्राप्त हो रही है लेकिन यह अनियमित है। अन्तर्राज्यीय योजनाओं से भी विद्युत प्राप्त हो रही है लेकिन फिर भी शक्ति का अभाव बना हुआ है।

4. **वनों का पर्याप्त न होना**—भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 10.4 प्रतिशत राजस्थान का है जबकि भारत के कुल क्षेत्र का लगभग 4.63 प्रतिशत भाग राजस्थान में है। राजस्थान में वनों की कमी है। फलस्वरूप वन पदार्थों की भी कमी है। इमारती व औद्योगिक लकड़ी का राज्य को आयात करना पड़ता है जो बहुत महंगी पड़ती है।

5. **परिवहन एवं संचार साधनों की कमी**—राजस्थान में परिवहन व संचार की पर्याप्त सुविधा न होने के कारण उद्योगों की स्थापना आवश्यकता के अनुकूल न हो सकी। 1951 में सड़कों की कुल लम्बाई केवल 29,280 किलोमीटर थी। प्रति 160 किलोमीटर में 8.50 किलोमीटर कच्ची-पक्की सड़कें थीं। संचार व्यवस्था की दुर्दशा इस बात से स्पष्ट है कि 247 किलोमीटर में एक डाकघर व 1,902 किलोमीटर में एक तार घर था। अतः इस प्रकार की परिस्थितियों में औद्योगिकीकरण का अविकसित रहना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। वर्तमान में परिवहन व संचार के साधनों की व्यवस्था में काफी प्रगति हुई है। राज्य में 51,636 किलोमीटर लम्बी सड़कें हैं फिर भी मांग को देखते हुए कम हैं। खनिज क्षेत्रों व वन क्षेत्रों में भी इनकी बड़ी कमी है। राज्य के जैसलमेर, बाड़मेर, डूंगरपुर, टोंक, झालावाड़ और जालौर में रेल मार्गों का काफी अभाव

है। जोधपुर, बीकानेर व उदयपुर क्षेत्रों में रेल मार्ग बहुत कम है अतः इनकी कमी औद्योगिकीकरण के विकास में बड़ी बाधक रही है।

6. कच्चे माल की पूर्ति—राज्य में कच्चे माल की मात्रा अपर्याप्त है तथा साथ ही उत्तम किस्म का माल भी उपलब्ध नहीं होता हैं। राज्य का अधिकांश भाग मरुस्थली है तथा सिंचाई के साधनों की कमी है। अतः व्यावसायिक फसलों का उत्पादन अधिक नहीं होता। कपास तथा गन्ने की किस्म अच्छी नहीं है। कोयला भी घटिया किस्म का है। लोहा कम मात्रा में मिलता है। अतः कृषि व खनिजों पर आधारित उद्योग वांछित संख्या में स्थापित नहीं किये जा सके हैं। इनकी आपूर्ति राज्य के बाहर से आयात करने पर बड़ी महंगी पड़ती है।

7. तकनीकी ज्ञान की कमी—राज्य में किसी भी उद्योग की स्थापना करने पर तकनीकी व्यक्तियों को बाहर से बुलाना पड़ता है। तकनीकी ज्ञान की सर्वथा कमी के कारण राज्य से अभ्रक, जिप्सम व मैंगनीज आदि सभी खनिजों को बाहर भेज दिया जाता है अन्यथा उन सभी से सम्बन्धित प्रक्रियाओं को पूर्ण कर अगर उन्हें बाहर जाता तो राज्य को वित्तीय लाभ अधिक होता। इसी प्रकार अधिकांश ऊन को भी तकनीकी ज्ञान अभाव के कारण बाहर निर्यात कर दिया जाता है। राज्य में खाद के कारखानों में भी तकनीकी व्यक्ति बाहर से बुलाये गये हैं।

8 पूंजी—राजस्थान के बहुत से उद्योगपतियों ने अपने राज्य में पूंजी न लगाकर बल्कि अन्य राज्यों में उद्योगों की स्थापना की है। बैंकों के वित्त निगम आदि से ऋण प्राप्ति में बड़ी कठिनाई होती है। राजस्थान में पूंजी निर्माण देश की तुलना में काफी मन्द गति से हो रहा है। डॉ. कोलीन क्लार्क के अनुसार यदि किसी देश की जनसंख्या में एक प्रतिशत की वृद्धि होती है तो उसी जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए चार प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि होती हैं तो उसी जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए चार प्रतिशत का अतिरिक्त वार्षिक विनियोग आवश्यक है। राजस्थान जैसे राज्य में जहां जनसंख्या में वार्षिक वृद्धि 3.25 (1971-81) है वहां इस की बढ़ी हुई जनसंख्या को प्रभावहीन करने के लिए 12.76 प्रतिशत विनियोग की आवश्यकता है। इसी जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए राजस्थान को 18.5 प्रतिशत सकल पूंजी निर्माण की आवश्यकता है। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए ऐसा होना कठिन प्रतीत होता है।

9. केन्द्रीय सरकार की उदासीनता—केन्द्रीय सरकार ने गत दशाब्दी तक राज्य में सार्वजनिक क्षेत्र में अधिक उद्योग स्थापित नहीं किये। परिणामस्वरूप राज्य में औद्योगिकीकरण की गति बड़ी शिथिल रही लेकिन अब राज्य सरकार के आग्रह पर केन्द्र सरकार की ओर से भविष्य में सहयोग मिलने की सम्भावना है फिर भी अन्य राज्यों की अपेक्षा राजस्थान औद्योगिक दृष्टि से काफी पिछड़ा राज्य है।

10. बिगड़ते औद्योगिक सम्बन्ध—देश के स्तर पर बढ़ती महगाई तथा श्रमिकों की हठधर्मी आदि के साथ-साथ उद्योगपतियों में शोषण की प्रवृत्ति से आपसी औद्योगिक सम्बन्धों में दरार उत्पन्न हुई हैं। अतः देश के अन्य राज्यों की भांति राजस्थान भी तालाबन्दी, श्रमिकों के घेराव व हड़तालों आदि से पीड़ित है जिससे औद्योगिक क्रिया का पिछड़ना अपरिहार्य हो जाता है।

11. सीमित बाजार—राजस्थान की अधिकतर जनसंख्या गरीब है तथा उसका जीवनस्तर निम्न है। फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादों की मांग कम है जिसके कारण उद्योगपति उद्योगों की स्थापना करने में हिचकिचाते हैं। परिवहन के साधनों में गत दो दशाब्दियों की अपेक्षा निरन्तर वृद्धि होने से परिवहन की सुविधाएं बढ़ी हैं, जिससे बाजार के क्षेत्र में भी बढ़ोतरी की सम्भावनाएं उज्जवल दृष्टिगत होने लगी हैं। लेकिन अभी भी मांग में आशा के अनुकूल वृद्धि दृष्टिगोचर नहीं होती है।

12. प्रशिक्षित श्रमिकों का अभाव—राजस्थान में भारत की लगभग 5 प्रतिशत जनसंख्या रहती है जबकि क्षेत्रफल 10.5 प्रतिशत है। राज्य के अधिकतर जिलों में जनसंख्या का घनत्व देश के औसत घनत्व से बहुत कम है। राज्य की अधिकतर जनसंख्या गरीबी, अज्ञानता, अशिक्षा, अन्धविश्वास व परम्परागत रूढ़ियों से प्रभावित है फलस्वरूप प्रशिक्षित श्रमिकों का काफी अभाव है। राज्य में शिक्षा का प्रसार सरकारी प्रयासों के बावजूद

भी अभी कम है और साथ ही प्रशिक्षण की सुविधाएं भी कम हैं। औद्योगिकीकरण के लिए प्रशिक्षित श्रमिकों का अभाव बहुत बड़ी बाधा है। सरकार इस ओर काफी सजग व प्रयत्नशील है फिर भी अन्य राज्यों की तुलना में राज्य में अभी प्रशिक्षित श्रमिकों का अभाव है।

13. राजनीतिक हस्तक्षेप – वर्तमान में लोकतन्त्र की व्यवस्था में दुर्भाग्य से एक ऐसी परिपाटी प्रचलित है कि प्राय: प्रत्येक औद्योगिक परियोजना को राजनीतिक स्वीकृति मिलनी चाहिये। लेकिन ऐसी स्वीकृति उद्योगों में हानि का कारण बनती है। कुछ उद्योगपतियों का कहना है कि अगर कोई राजनीतिक व्यक्तित्व इसमें रुचि रखता है तो लाइसैन्स शीघ्र मिल जाता है अन्यथा हतोत्साहित करने के लिए प्रशासनिक स्तर पर ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दी जाती हैं जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

राजस्थान में औद्योगिक विकास की सम्भावनाएं तो अधिक हैं लेकिन उनके व्यवस्थित ढंग से विकसित होने की सम्भावनाएं कम हैं। राज्य में उद्योगों की स्थापना प्रादेशिक योजना पर न होकर स्थान विशेष पर अथवा क्षेत्र विशेष में केन्द्रित होने की प्रवृत्ति रहेगी। कोटा में औद्योगिक विकास शक्ति के साधनों की उपलब्धता के कारण अधिक होगा। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी जहां जहां शक्ति के साधनों की सुविधायें मिलेगी, औद्योगिकरण की गति में वृद्धि होगी। राज्य के जिन जिलों में प्राकृतिक तथा स्थलाकृतिक बाधाएं हैं विशेषकर जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर आदि में औद्योगिक विकास की गति कम रहेगी।

योजनाओं के अन्तर्गत औद्योगिक विकास

राजस्थान के निर्माण के प्रारम्भिक वर्षों में प्रशासनिक व वित्तीय समस्याओं के कारण वित्तीय संसाधन सीमित थे और उनका भी उपयोग औद्योगिक विकास के लिए न्यायोचित रूप से नहीं किया जा सका। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के पूर्व कोई भी प्रभावी कदम उद्योगों के विकास के लिए नहीं उठाया गया। फिर भी राज्य में विभिन्न आकारों की लगभग 905 औद्योगिक इकाईयां कार्यरत थीं जिन्हें राज्य के आकार तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से पर्याप्त नहीं कहा जा सकता था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के पूर्व तक राज्य में अधिकतर औद्योगिक वस्तुओं का आयात किया जाता था। राज्य में कच्ची सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी लेकिन तकनीकी प्रक्रमों के ज्ञान के अभाव में उन्हें अन्य राज्यों को निर्यात करना पड़ता था। यहां तक कि औद्योगिक सम्भावनाओं की जानकारी के लिए सर्वेक्षण तक नहीं किया गया था।

प्रथम पंचवर्षीय योजनाकाल में औद्योगिक कार्यक्रमों पर किसी भी प्रकार का ध्यान नहीं दिया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में अधिक महत्व औद्योगिक सर्वेक्षण कार्यक्रमों पर दिया गया। आर्थिक एवं सर्वेक्षण निदेशालय ने अजमेर, सिरोही, बूंदी, झालावाड़, बांसवाड़ा और डूंगरपुर आदि जिलों में औद्योगिक सर्वेक्षण बड़े पैमाने पर संचालित किये।

इसी प्रकार लघु उद्योग सेवा संघ निदेशालय ने पाली, भीलवाड़ा, धौलपुर, सीकर, भरतपुर, अलवर, उदयपुर, नागौर, गंगानगर और चूरू आदि जिलों में औद्योगिक सर्वेक्षण करवाये। इनके अलावा राज्य सरकार ने चीनी, कागज, कार्डबोर्ड, सीमेन्ट और कांच आदि के उद्योगों के विकास पर प्रतिवेदन तैयार करने के लिए योजना समितियों का गठन किया।

द्वितीय योजना काल में उद्योग पर कुल 326.33 लाख रुपये व्यय किये गये। राज्य में बड़े उद्योगों के अन्तर्गत भरतपुर में वैगन फैक्ट्री चालू की गई। सीमेन्ट फैक्ट्री, सवाईमाधोपुर ने महत्वपूर्ण प्रगति की तथा गंगानगर शुगर मिल सरकारी क्षेत्र में आने से सफलता से चलने लगी। इस योजनाकाल में 14 औद्योगिक बस्तियों के निर्माण का लक्ष्य था किन्तु 11 औद्योगिक बस्तियों का कार्य हाथ में लिया जा सका। इनमें जयपुर भीलवाड़ा, माखुपुरा (अजमेर) की औद्योगिक बस्तियों में 85 शेडों का निर्माण तथा कोटा, जोधपुर, भरतपुर, गंगानगर और उदयपुर में औद्योगिक बस्तियों का निर्माण कार्य सम्पूर्ण हुआ। बड़े इन्जीनियरिंग उद्योगों में जयपुर इलेक्ट्रीकल्स, नेशनल इन्जिनियरिंग इण्डस्ट्रीज, मान इण्डस्ट्रीयल कॉरपोरेशन तथा सूती कपड़ा मिलों ने आधुनिक उपकरण जुटाये।

तृतीय पंचवर्षीय योजनाकाल में औद्योगिक विकास

के लिए राज्य में कुल 228.81 लाख रुपये व्यय किये गये। राज्य भाखड़ा और चम्बल परियोजना से विद्युत सुविधा प्रारम्भ हुई। इससे औद्योगिक विकास के लिये कच्चा माल उपलब्ध हुआ और औद्योगिक उत्पादन सुविधा सुलभ हुई। नये-नये उद्योगों में नई सूती कपड़ा मिलों ने, किशनगढ़ और भीलवाड़ा में पी वी.सी तथा वूलटोप्स फैक्ट्री ने कोटा में, वूलन स्पिनिंग मिल ने जोधपुर में तथा सोडियम सल्फेट संयंत्र ने डीडवाना में उत्पादन कार्य प्रारम्भ किये। इनके अतिरिक्त द्वितीय योजना में प्रारम्भ हुए उद्योगों में उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई।

चतुर्थ योजना में औद्योगिक विकास की ओर विशेष महत्व दिया गया तथा इस अवधि में 8.6 करोड़ रुपया व्यय किया गया।

पांचवीं योजना के प्रथम चार वर्षों (1978-79) में औद्योगिक एवं खनिज विकास पर 25.1 करोड़ रुपये व्यय हुए।

छठी योजना में उद्योग एवं खनिज विकास पर 64.59 करोड़ रुपये की राशि व्यय की गई।

सातवीं योजना में औद्योगिक विकास के लिए उद्योग व खनन के अन्तर्गत 190 5 करोड़ रुपये की राशि प्रस्तावित की गई हैं। वर्ष 1987-88 में वृहद उद्योगों में 40 इकाइयों को आशय पत्र प्राप्त हो चुके हैं जिनमें 180 करोड़ रुपये का विनियोजन होगा और 7400 लोगों को रोजगार मिलेगा। वर्ष 1988-89 में वित्त निगम के लिए 90 करोड़ रुपये के ऋण 6700 औद्योगिक इकाइयों को स्वीकृत करने एवं 75 करोड़ रुपये के ऋण वितरित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

जयपुर में जैम स्टोन उद्योग की प्रतिभा का समुचित उपयोग करने की दृष्टि से आधुनिक तकनीक द्वारा रत्न उद्योग के प्रसार के लिए रीको द्वारा जयपुर में एक जैम स्टोन इण्डस्ट्रियल पार्क की स्थापना की जायेगी। जयपुर में एक कंटेनर फ्रेट स्टेशन जो ड्राई पोर्ट के रूप में कार्य करेगा, की स्थापना के लिए भारत सरकार ने सहमति प्रदान कर दी है। इससे निर्यातकों को लाभ के साथ-साथ राज्य का निर्यात व्यापार तेजी से बढ़ सकेगा। इस योजना पर वर्ष 1989-90 में कार्य प्रारम्भ हो जाने की आशा है।

राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक विकास पर व्यय एवं सहयोग नीति के कारण राज्य में औद्योगिक विकास का एक सुदृढ़ आधार तैयार हो गया है। कोटा, जयपुर फालना, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, भीलवाड़ा, अजमेर आदि राजस्थान के प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गये हैं। जहां 1951 में पंजीकृत फैक्ट्रियों की संख्या 240 थी वह अब बढ़कर 7,000 हो गई है। राजस्थान अब औद्योगिक विकास की स्वयंस्फूर्त (Take off) अवस्था में पहुँच गया है।

राजस्थान में प्रमुख बड़े उद्योग निम्नलिखित हैं—

सूती वस्त्र उद्योग

सूती वस्त्र उद्योग विनिर्माण प्रकार के उद्योगों में एक प्राचीन उद्योग रहा है और आज भी यह विश्व में सबसे महत्वपूर्ण उद्योगों में से एक है। इस उद्योग में से संलग्न श्रमिकों की संख्या, इसमें उत्पादित पक्के माल का मूल्य और विदेशी व्यापार की दृष्टि से यह उद्योग राजस्थान के अन्य बड़े पैमाने के उद्योगों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लेकिन उत्पादित वस्त्र की श्रेष्ठता की दृष्टि में यह काफी पीछे है।

राजस्थान में सर्वप्रथम 1889 में 'दी कृष्णा मिल्स लिमिटेड' की स्थापना देश भक्त सेठ दामोदर दास व्यास ने ब्यावर नगर में की। तत्पश्चात वहीं दूसरी मिल 'एडवर्ड मिल्स लिमिटेड' के नाम 1906 में खोली गई। तीसरी मिल भी ब्यावर में सन् 1935 में 'श्री महालक्ष्मी मिल्स लिमिटेड' के नाम से स्थापित की गई। इस प्रकार सन् 1925 तक केवल ब्यावर में ही सूती वस्त्र मिलें स्थापित की गई थी।

ब्यावर में सूती वस्त्र उद्योग के केन्द्रीयकरण का कारण ब्यावर नगर के संस्थापक कर्नल डिक्सन द्वारा कपास के आयात शुल्क में छूट दिलवाना, पूंजी की प्रचुरता, थर्मल विद्युत शक्ति की उपलब्धता, सेठ दामोदरदास व्यास की बुद्धिमता, यातायात के विकसित साधन तथा सस्ते श्रमिकों की उपलब्धता आदि थे।

इसके पश्चात भीलवाड़ा में 'मेवाड़–टेक्सटाइल मिल्स' के नाम से एक मिल सन् 1938 में स्थापित की गई। सन् 1942 में पाली में 'महाराजा उम्मेद सिंह मिल्स लिमिटेड', सन् 1946 में एक मिल गंगानगर में

'सादुल टैक्सटाइल लिमिटेड' के नाम से स्थापित की गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राजस्थान में किशनगढ़ विजयनगर, गुलाबपुरा (अजमेर) जयपुर, गंगानगर, भवानी मण्डी, कोटा, उदयपुर, भीलवाड़ा आदि केन्द्रों पर सूती मिलें स्थापित की गई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् 1951 में राजस्थान में सूती कपड़े की सात मिलें थी और सूती कपड़े का उत्पादन 301 लाख मीटर था, परन्तु कपड़े की बढ़ती मांग के कारण राजस्थान में नई मिलें स्थापित की गई। तीसरी योजना के अन्त तक सूती मिलों की संख्या बढ़ा कर 16 कर दी गई। सन् 1981-82 में 24 मिलें कार्यरत थीं। वर्तमान में राजस्थान में 21 सूती वस्त्र मिलें हैं जिनमें लगभग 3200 करघे तथा 3.7 लाख तकुएँ हैं। इन मिलों में से ब्यावर व भीलवाड़ा में तीन-तीन, जयपुर एवं किशनगढ़ में दो-दो तथा उदयपुर, पाली, कोटा, भवानीमण्डी, विजयनगर तथा गंगानगर में एक-एक है। राजस्थान में 17 मिलें निजी क्षेत्र में हैं। राजकीय क्षेत्र में तीन (ब्यावर में दो तथा विजयनगर में एक) व सहकारी क्षेत्र में एक मिल (राजस्थान मिल्स गुलाबपुरा) हैं। 1986 में सूत का उत्पादन 40,680 टन व सूती वस्त्र का उत्पादन 372.80 लाख मीटर का था। 10 नये लाइसेन्स दिये गये हैं और उनका कार्य प्रगति पर है। इनमें कुल 1.33 लाख तकुए होंगे। इस प्रकार राजस्थान में शीघ्र ही सूती मिलों की संख्या 34 हो जायेगी जिनमें कुल 4.5 लाख तकुए होंगे। सूती कपड़े का वर्तमान वार्षिक उत्पादन 7.1 करोड़ मीटर है।

साधारणतया सूती वस्त्र उद्योग के स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले तत्व संशलिष्ट हैं। इस उद्योग की स्थापना तथा विकास में प्रत्येक प्रदेश अपना इतिहास रखता है। सर्वप्रथम जिन क्षेत्रों में उद्योग की स्थापना की गई थी वे क्षेत्र निरन्तर वृद्धि की ओर अग्रसर हैं। यहां तक कि मूल कारण जो उद्योग की स्थापना के समय प्रभावी थे, अब उन क्षेत्रों में अस्तित्व नहीं रखते। इस उद्योग की स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक जैसे कच्ची सामग्री, ईंधन, रसायन, यन्त्र, मशीन, श्रम, परिवहन की सुविधाएं, बाजार और पूंजी आदि हैं। इनमें से कोई भी कारक इस उद्योग की अवस्थिति और विकास के लिए उत्तरदायी हो सकता है बशर्ते वह अन्य सूती वस्त्र केन्द्रों से प्रतिस्पर्द्धा में एक निश्चित लाभ प्रदान कर सके।

स्थापना की दृष्टि से रूई को शुद्ध रेशा माना जाता है। क्योंकि निर्माण क्रिया में रूई के भार में अधिक अन्तर नहीं पड़ता। अतः यह आवश्यक नहीं है कि सूती कपड़े के कारखानें कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों के पास ही स्थापित किए जाएं। यह उद्योग बाजार की समीपता से प्रभावित होता है न कि कच्चे माल की निकटता से। इस दृष्टिकोण से देखते हुए राजस्थान में इस उद्योग की अवस्थिति के चयन में कच्ची सामग्री की आपूर्ति जैसे कपास और बाजार को श्रेय दे सकते हैं। कपास यहां 3,56,923 (1980-81) हैक्टेयर में उगाई जाती है जो कुल कृषि भूमि का 2.05 प्रतिशत है। गंगानगर जिले में कपास के क्षेत्र का 66 प्रतिशत भाग मिलता है जहां राज्य के कुल कपास उत्पादन का लगभग आधा उत्पादन होता है। मध्यम और छोटे रेशे वाली कपास इस क्षेत्र में पैदा की जाती है। सिंचित कपास की अधिकतर आपूर्ति गंगानगर में एक फैक्ट्री की अवस्थिति के लिए उत्तरदायी है। अन्य कपास उत्पादक जिले अजमेर, भीलवाड़ा, झालावाड़, चित्तौड़गढ़ और जयपुर हैं। माही योजना से सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध होने के साथ बांसवाड़ा जिले में कपास उत्पादक क्षेत्र में वृद्धि हुई है तथा कपास के रेशे की लम्बाई में सुधार आया है। फलस्वरूप इस क्षेत्र में सूती वस्त्र मिलों की स्थापना की सम्भावनाएं हैं। ब्यावर सूती वस्त्र केन्द्र को कपास राज्य से ही उपलब्ध कराई जाती है लेकिन साथ ही साथ भारत के अन्य कपास उत्पादक क्षेत्रों और बाहर से भी आवश्यकतानुसार मंगाई जाती है। इस उद्योग के विकास में सबसे बड़ा कारक घरेलू बाजार का होना है। यह उद्योग अधिकतर वहीं स्थापित किया गया है जहां श्रमिकों अथवा विस्तृत बाजार की सुविधा उपलब्ध है। कोयले का उपयोग ईंधन के रूप में होता है और दूरस्थ क्षेत्रों से मंगाया जाता है। यह उद्योग अत्यधिक ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार प्रदान करता है।

इस उद्योग को चलाने के लिए कम से कम प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। श्रम शक्ति में

पुरुष, स्त्रियां, बच्चे और यहां तक कि बुजुर्ग भी शामिल होते हैं। विनिर्माण वस्तुओं के लिए बाजार और कच्चे माल की आपूर्ति के अलावा कई अन्य कारक भी सूती वस्त्र उद्योग की अवस्थिति और विकास को प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ जैसे जलवायु दशाएं, हल्के पानी की आपूर्ति, कोयला और भूमि उपयोग दशाएं जो एक विशेष प्रदेश में आर्थिक अवसरों को सीमित करती है, का उल्लेख किया जा सकता है। जलवायु दशाएं आजकल अवरोधक नहीं है क्योंकि अधिकांश फैक्ट्रियों में कृत्रिम आर्द्रता बनाये रखने के संयंत्र लगाये जाते है। राज्य में अधिकतर सूती वस्त्र केन्द्रों में और उनके समीप काफी मात्रा में भूमि उपलब्ध है। राजस्थान में अधिकांश केन्द्र कुशलतापूर्वक नहीं चल पा रहे हैं और उद्योग एक कठिन अवधि से गुजर रहा है जिसके कारण ये फैक्ट्रियाँ देश की अन्य फैक्ट्रियों से वस्तुओं की अच्छी उत्पादकता के आधार पर प्रतिस्पर्द्धा कर पाने में अपने को असमर्थ महसूस करती है। 1956 से 1961 तक उत्पादन में गिरावट की प्रवृति रही है क्योंकि अधिकतर मिलों की मशीनें पुरानी थी लेकिन अब सरकार द्वारा उद्योग के आधुनिकीकरण के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है। यह भी आवश्यक समझा गया है कि इस उद्योग को रंगाई, छपाई और विरंजन के लिए सुसज्जित किया जाये जिससे यह उद्योग अन्य केन्द्रों के साथ अच्छी प्रतिस्पर्द्धा ले सके। सूती कपड़े का वर्तमान वार्षिक उत्पादन 7.1 करोड़ मीटर कपड़ा तथा 36 लाख किलोग्राम सूत है।

राजस्थान में राज्य सरकार ने सूतीवस्त्र की 10 नई मिलों के लिए जो लाइसैन्स दिये हैं उनमें से ये मिलें जयपुर, अलवर, धौलपुर चित्तौड़गढ़, जोधपुर, डूंगरपुर, झुन्झुनूं, हनुमानगढ़ तथा नोहर में स्थापित की जावेगी।

राजस्थान में सबसे बड़ी सूती वस्त्र मिल उम्मेद मिल्स, पाली है। दत्त पूंजी की दृष्टि से आदित्य मिल्स, किशनगढ़ द्वितीय है तथा जयपुर स्पिनिंग मिल तृतीय है परन्तु कृष्णा मिल्स ब्यावर में, सबसे अधिक कार्यशील कर्घे हैं। मेवाड़ मिल्स, भीलवाड़ा रुई की खपत की दृष्टि से द्वितीय है। आकार की दृष्टि से राजस्थान की सूती वस्त्र मिलें छोटी हैं।

राजस्थान में सूती वस्त्र उद्योग एक मुख्य बड़े पैमाने का उद्योग है। इसलिए इसके समक्ष कुछ समस्याओं का होना स्वाभाविक है, जो इस प्रकार हैं—

1. कच्चे माल की आपूर्ति—राजस्थान में कपास का उत्पादन विशेषकर लम्बे रेशे की कपास का बहुत ही कम होता है। सिंचाई की सुविधाओं की ओर ध्यान दिया जा रहा है लेकिन फिर भी मांग की पूर्ति हो सकेगी, संदेहास्पद लगता है।

2. शक्ति के साधनों की आवश्यकता--राज्य में कोयला बिहार से मंगाया जाता है। चम्बल एवं भाखड़ा योजना से विद्युत शक्ति प्राप्त की जाती है। फिर भी कई मिलें अपने पुराने स्टीम संयंत्रों से विद्युत शक्ति उत्पन्न कर काम चलाती हैं अत: इस ओर सरकार विशेष ध्यान दे रही है।

3. अनार्थिक इकाईयाँ—राजस्थान की अनेक मिलें अनार्थिक हैं। पूंजी के अभाव, कुप्रबन्ध तथा कच्चे माल के अभाव में आये दिन मिलें बन्द होती रहती हैं और फिर सरकार को इन्हें अपने हाथ में लेना पड़ता है।

4. घिसी पिटी मशीनें—राजस्थान की बहुत सी मशीनें 80 वर्ष से भी पुरानी हैं ऐसी मशीनों से न केवल उत्पादन व्यय बढता है वरन कपड़े की किस्म भी बिगड़ जाती है और श्रमिकों पर कार्य भार अधिक पड़ता है। अत: यह आवश्यक है कि मिलों में नई मशीनें लगाई जायें।

5. उत्पादन शक्ति कम—राजस्थान की मिलों की उत्पादन शक्ति कम है और कपड़े का उत्पादन व्यय बढ़ जाता है। फलत: बाजार में कपड़े को प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है। अत: कपड़े का उत्पादन कम मूल्य पर करने के लिए उद्योग का नवीनीकरण तथा आधुनिकीकरण करना आवश्यक है।

अन्य समस्याओं में रसायनिक पदार्थों, वित्तीय साधनों तथा अनुसंधान सुविधाओं की कमी है।

चीनी उद्योग

राजस्थान में सर्वप्रथम चित्तौड़गढ़ जिले में भोपाल सागर नगर में एक चीनी मिल 'दी मेवाड़ शूगर मिल्स' के नाम से सन् 1932 में प्रारम्भ की गई। इस मिल ने

मेवाड़ रियासत से 2 प्रतिशत रायल्टी पर चीनी उत्पादन करने का एकाधिकार 32 वर्ष के लिए प्राप्त किया था। चीनी बनाने का दूसरा कारखाना, सन् 1937 में गंगानगर में 'दी गंगानगर शुगर मिल्स' के नाम से बीकानेर के श्री लालचन्द व्यास व श्री पोखरदास द्वारा स्थापित किया गया लेकिन यह कारखाना 8 वर्षों तक उत्पादन नहीं कर सका। परिणामस्वरूप इसे बीकानेर के औद्योगिक निगम ने 1946 में खरीद लिया और इसमें उत्पादन होने लगा। यह निगम भी इसे संतोषजनक ढंग से नहीं चला सका। अन्त में 1 जुलाई 1956 को राजस्थान सरकार ने इस कारखाने के 71.8 प्रतिशत अंश खरीद लिए। इस प्रकार अब यह सार्वजनिक क्षेत्र में चीनी उत्पादन कर रहा है। 1970 में बूंदी जिले के केशोरायपाटन में चीनी बनाने का कारखाना सहकारी क्षेत्र में स्थापित किया गया जो इस क्षेत्र में उत्पन्न गन्ने का उपयोग करता है।

शेष भारत की भाँति राज्य में भी चीनी का उत्पादन गन्ने से किया जाता है जो इस उद्योग के लिए मौलिक कच्चा माल हैं। इसलिए अन्य पदार्थ जो आवश्यक हैं, वे हैं ईंधन, चूने का पत्थर और सल्फर। कच्ची सामग्रियों में से केवल गन्ना ही एक ऐसा है जिसकी प्रक्रिया के दौरान अधिक भार क्षति होती हैं। गन्ने के कुल भार से 9 प्रतिशत से 12 प्रतिशत ही औसतन चीनी का उत्पादन होता है। राजस्थान में गंगानगर में 9.66 प्रतिशत और भोपालसागर व केशोरायपाटन मिलों में 9.8 प्रतिशत ही गन्ने से औसत चीनी उत्पादन मिलता है।

गन्ना एक भारी कच्ची सामग्री है जिसको लम्बी दूरियों तक ले जाना न केवल मुश्किल ही है बल्कि महंगा भी पड़ता है। इसके अतिरिक्त गन्ने में रस की मात्रा भी खेत से कटने के पश्चात् तेजी से कम होने लगती है। इसलिए रस की अच्छी मात्रा प्राप्त करने के लिए शीघ्र ही इसका मिल में पहुँचना जरूरी होता है। अतः खेत से काटने के पश्चात् 24 घण्टों में रस को निकाल लेना लाभदायक होता है। यह कारक कारखानों की अवस्थिति को गन्ना उत्पादक क्षेत्र के समीप ही आकर्षित कर इस उद्योग के अधिक फैलाव की प्रवृति को रोकता है। गन्ने का औसतन मूल्य सफेद चीनी के मूल्य के आधे से थोड़ा ही अधिक होता है। यह और भी अनिवार्य बना देता है कि गन्ने का उद्योग कच्चे माल के समीप ही लगाया जावे। गन्ने की उपयुक्त आपूर्ति, किसी सीमा तक उत्पादक क्षेत्रों की प्रादेशिक आपूर्ति पर निर्भर करती है। राजस्थान कुल कृषि भूमि के लगभग 0.16 प्रतिशत पर गन्ने का उत्पादन करता है जो भारत के कुल उत्पादन का 1.11 प्रतिशत है। राज्य में गन्ने की कृषि वर्ष 1980-81 में 29,407 हैक्टेयर भूमि पर की गई जिससे गन्ने का उत्पादन वर्ष 1981 में 11.61 लाख टन हुआ। चीनी का उत्पादन 14,600 टन हुआ। 1986-87 में चीनी का उत्पादन 15880 टन रहा। गन्ने के उत्पादन का प्रादेशिक केन्द्रीयकरण इस तथ्य को परिलक्षित करता है कि गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्र का लगभग तीन चौथाई भाग बून्दी, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा, भरतपुर, झालावाड़, कोटा, सवाईमाधोपुर तथा टोंक में मिलता है। यह सभी जिले राज्य के पूर्वी भाग में स्थित हैं। वर्ष 1981 में गन्ने के उत्पादन का केन्द्रीयकरण अगर देखें तो यह तथ्य उभर कर सामनें आता है कि अकेला बूंदी जिला राज्य का एक तिहाई उत्पादन करता है। बूंदी और चित्तौड़गढ़ जिले राज्य के उत्पादन का लगभग 41 प्रतिशत भाग रखते हैं। राज्य के उत्तर में स्थित गंगानगर जिला अकेला 9 प्रतिशत उत्पादन करता है सन् 1962-63 में केवल भरतपुर और उदयपुर जिले राज्य के उत्पादन का एक तिहाई उत्पादन करते थे जबकि अकेले गंगानगर जिले में 17 प्रतिशत उत्पादन होता था लेकिन वर्ष 1980-81 में अकेला बूंदी जिला राज्य के उत्पादन का30.20 प्रतिशत तथा उदयपुर के साथ मिलकर 53 प्रतिशत उत्पादन करता है। पूर्वी जिले और गंगानगर जिला राज्य के गन्ने के क्षेत्रफल का 93 प्रतिशत रखते हैं और 92 प्रतिशत उत्पादन करते हैं। इसलिए राज्य में चीनी उद्योग के कारखानों की स्थापना गंगानगर, भोपाल सागर व केशोरायपाटन में की गई हैं। ये तीनों जिले जिनमें कारखाने स्थापित हैं, राज्य के गन्ने के कुल क्षेत्रफल का लगभग 52 प्रतिशत रखते है। गंगानगर क्षेत्र, नियतवाही नहरी सिंचाई जो गंगनहर से होती है, का लाभ उठाता है। इस क्षेत्र में स्थित कारखाने के लिए विश्वसनीय एवं निश्चित उपज

की सुरक्षा सिंचाई की सुविधाओं के कारण है। गन्ने का उत्पादन न केवल इस मिल के लिए पर्याप्त है बल्कि एक और मिल को भी गन्ने की आपूर्ति की जाती है। गंगानगर जिले में बड़े-बड़े चौरस मैदान हैं जिनमें गन्ने की फसल के लिए चक के चक बना दिए जाते हैं। चीनी बनाने के लिये गन्ना पेरने के बाद जो छोई बची रहती है उसी को भट्टों में जलाकर तीनों कारखानों में ईंधन की आपूर्ति कर ली जाती है। कोयला और कभी-कभी विद्युत भी ईंधन की अतिरिक्त मांग की पूर्ति करते हैं। चीनी कारखानों में कार्य करने के लिये अकुशल श्रमिक सस्ती मजदूरी पर समीप के गांवों से मिल जाते हैं तथा साथ ही बड़ी मात्रा में पानी की सुविधा का लाभ भी प्राप्त होता है। वर्तमान में बाजार जैसे महत्वपूर्ण कारक का एक सीमित महत्व है। क्योंकि यह सरकार द्वारा नियन्त्रित उत्पाद है। चीनी उद्योग का बाजार निकट भविष्य में राज्य में और देश में अच्छा है इसलिए इसके विकास की अच्छी सम्भावनाएं हैं। कोटा, उदयपुर व भरतपुर जिलों में गन्ने का अच्छा उत्पादन होता है लेकिन इन जिलों में कोई भी ऐसी बड़ी मिल स्थापित नहीं की गई है जो गन्ने के उत्पादन का उपयोग कर सके। गन्ने का औसत वार्षिक उत्पादन 12 लाख टन है। यह मानते हुए कि लगभग 25 प्रतिशत गन्ने का उपयोग अन्य कार्यों के लिए होगा फिर भी लगभग 9 लाख टन गन्ना चीनी उद्योग के लिए बच जाता है। एक मिल को आर्थिक दृष्टि से कार्य करने के लिए उसे औसतन लगभग 1.25 लाख टन गन्ने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार या तो मौजूदा मिलों की क्षमता बढ़ाई जाये अथवा पूर्वी गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में दो नई मिलें भरतपुर और उदयपुर में स्थापित की जावें। पूर्वी मैदानी क्षेत्र में गन्ने की कृषि भली-भांति वितरित है। इसलिए लघु पैमाने की इकाईयाँ जिनकी पिराई क्षमता 20 से 30 टन प्रति दिन हो, की स्थापना की जा सकती है। लघु पैमाने की इकाईयां विकास की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत चीनी उद्योग की तीव्र गति से प्रगति हुई है। सन् 1951 में दो चीनी मिलें क्रमशः भोपालसागर व श्रीगंगानगर में थी। एक नई मिल की स्थापना केशोरायपाटन में सन् 1970 में सहकारी क्षेत्र में की गई। चीनी उत्पादन में 1951 में 1.5 हजार टन, 1962 में 15.5 हजार टन था जो बढ़कर 1978 में 36 हजार टन हो गया लेकिन 1981 में पुनः घटकर 18 हजार टन ही रह गया। सन् 1986-87 में चीनी का उत्पादन 15880 टन ही रह गया है। सवाई-माधोपुर, कोटा, अलवर व भीलवाड़ा में अब चीनी उद्योग के विकास की सम्भावनाएं बढ़ गई हैं क्योंकि इन क्षेत्रों में गन्ने के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है तथा उत्पादन निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

चुकन्दर से भी चीनी बनाने के लिए गंगानगर शूगर मिल्स लिमिटेड में एक योजना 1968 में आरम्भ की गई थी जहाँ चुकन्दर से रस निकाला जाता है। चुकन्दर की खेती के लिए यहाँ की मिट्टी तथा जलवायु अनुकूल सिद्ध हुई है। अतः यहाँ चुकन्दर से चीनी का उत्पादन धीरे-धीरे बढ़ रहा है लेकिन फिर भी गन्ना मुख्य कच्ची सामग्री है।

सीमेन्ट उद्योग

सीमेन्ट का उत्पत्ति स्थान भारत है। देश में संगठित ढंग से पहली बार सीमेन्ट तैयार करने का श्रेय मद्रास को है जहाँ 1904 में सर्वप्रथम समुद्री सीपियों से सीमेन्ट बनाने का प्रयास किया गया किन्तु वह पूर्णरूप से सफल नहीं हो सका। सन् 1912-13 में राजस्थान में लाखेरी-बून्दी में क्लीक निकसन कम्पनी द्वारा सर्वप्रथम एक सीमेन्ट संयंत्र स्थापित किया गया। अनेक कठिनाईयों को पारकर उद्योग निरन्तर गति से प्रगति की ओर अग्रसर रहा। दूसरा सीमेन्ट संयंत्र सन् 1953 में सवाईमाधोपुर में साहू जैन ग्रुप का जयपुर उद्योग लिमिटेड है जो दक्षिणी-पूर्वी एशिया में सबसे बड़ा है। तीसरी फैक्ट्री चित्तोड़गढ़ में बिड़ला बन्धुओं की है। अन्य कारखानें निम्बाहेड़ा, उदयपुर, मोड़क तथा ब्यावर में स्थापित हैं।

सीमेन्ट उद्योग में भारी वस्तुओं का अधिक उपयोग होता है। अनुमानतः एक टन सीमेन्ट तैयार करने में 1.6 टन चूना पत्थर, 0.38 टन जिप्सम और 3.8 टन कोयला आवश्यक होता है। इनमें चूना पत्थर व कोयला भारी होने के साथ-साथ सस्ते भी होते हैं, अतः उन्हें ढोने में व्यय भी अधिक होता है। इस कारण अधिकांश कारखानें इन पदार्थों के निकट स्थापित होते हैं।

सीमेन्ट के निर्माण में कच्चे माल के रूप में मुख्यतया चूना पत्थर व जिप्सम काम में आता है। सीमेन्ट का उत्पादन करते समय काफी उच्च तापक्रम लगभग 1350° सेंटीग्रेड से 1650° सेंटीग्रेड की आवश्यकता होती है। कोयला प्रयुक्त ईंधन की दृष्टि से बड़ा महत्व-पूर्ण है। भट्टी की कार्य कुशलता पर कोयले की मात्रा निर्भर करती है। साधारणतया औसतन 60 किलोग्राम कोयले की आवश्यकता एक बैरल सीमेन्ट के उत्पादन मे होती है। राजस्थान में चूना-पत्थर समस्त आवश्यक गुणों के साथ सही अनुपात में उपलब्ध हैं। लाखेरी की सीमेन्ट फैक्ट्री में तो मिट्टी की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के मिट्टीदार चूना-पत्थर को ही आपस में मिलाकर उपयुक्त रसायनिक मिश्रण तैयार कर लिया जाता है जबकि अन्य सीमेन्ट कारखानों में मृत्तिका मिट्टी चूने में मिलाई जाती हैं। जिप्सम का भाग कच्ची सामग्री में लगभग 5 प्रतिशत होता है। लाखेरी व सवाईमाधोपुर की फैक्ट्रियाँ खानों के समीप ही परिवहन की सुविधा के रूप में उपलब्ध है।

दोनों मिलों की स्थिति कच्ची सामग्री के पास होने के कारण लाभदायक है किन्तु कोयले की पूर्ति सुदूर भागों से होने के कारण इसका महत्व कम हो जाता है।

सीमेन्ट संयंत्र की अवस्थिति चूना-पत्थर की आपूर्ति से अधिक प्रभावित होती है। साधारणतया, मृत्तिका अथवा सलेटी पत्थर, कई स्थानों में उपलब्ध है। इसका उपयोग कच्ची सामग्री के कुल भार का लगभग एक तिहाई किया जाता है। यहाँ तक कि अगर ये आस-पास के क्षेत्रों में नहीं उपलब्ध होता है, तो इसे संयंत्र की अवस्थिति पर ले जाया जाता है। कोयले का वहन चूने के पत्थर के क्षेत्रों की ओर होता है क्योंकि कोयले की मात्रा की आवश्यकता अन्य कच्ची सामग्रियों की अपेक्षा बहुत कम होती है।

चित्तौड़गढ़ के आस-पास चूना-पत्थर के शैलसमूह विध्यनकाल के हैं और निम्बाहेड़ा ग्राम से सम्बन्धित हैं। यह उत्तम दाने वाली अस्फटकीय, सघन, चिकनी और सुगठित कच्ची सामग्री है। चूने के पत्थर के संस्तर काफी मोटे हैं जिनकी मोटाई 30 सेन्टीमीटर से 75 सेन्टीमीटर है।

चित्तौड़गढ़ सीमेन्ट उद्योग की अवस्थिति के लिए अनुकूल है। यहाँ चूना पत्थर के बड़े सुरक्षित भण्डार हैं। इस सीमेन्ट कारखाने में पोर्टलैण्ड सीमेन्ट बनाई जाती है।

चित्तौड़गढ़ में चट्टानीय पत्थर की आपूर्ति काफी अच्छी है। यहां काफी समतल भूमि है और जलवायु भी अच्छी है। स्थानीय श्रम शक्ति उपलब्ध है और साथ ही परिवहन की सुविधायें उपलब्ध हैं। विद्युत शक्ति चम्बल शक्ति ग्रिड से उपलब्ध होती है। पानी की नियमित आपूर्ति गम्भीर नदी से उपलब्ध है। जिप्सम राजस्थान के क्षेत्रों से तथा कोयला अन्य सीमेन्ट कारखानों की भाँति बिहार या मध्यप्रदेश से मगाया जाता है।

सन् 1951 में दो कारखानें लाखेरी व सवाईमाधोपुर में थे जिनसे प्रतिवर्ष लगभग 2.58 लाख टन सीमेन्ट प्राप्त होता था। योजनाओं के अन्तर्गत चार कारखाने स्थापित किये गये और इन चारों कारखानों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि कर दी गई। 1951 के बाद सीमेन्ट उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई है। सन् 1985-86 में सीमेन्ट का उत्पादन 39.4 लाख टन था। ब्यावर के कारखानें में सीमेन्ट का उत्पादन प्रारम्भ हो गया है। वर्ष 1986-87 में सीमेन्ट का उत्पादन 36.6 लाख टन रहा। निजी क्षेत्र में कारखानें नीम-का-थाना, रास, (पाली) व बनास (सिरोही) में स्थापित किये गये हैं।

सीमेन्ट उद्योग के सम्मुख कुछ समस्यायें भी है जैसे अत्यधिक पूंजी की आवश्यकता, पूंजी पर लाभ कम, कम उत्पादकता तथा सरकारी नीति आदि। इसलिए उद्योग को भविष्य में अधिक विकसित करने हेतु सरकार को इन समस्याओं की तरफ न्यायोचित ध्यान देकर आवश्यक कदम उठाने चाहिये।

सीमेंट के छोटे कारखानें—भारतीय सीमेन्ट अनुसंधान संस्थान के अध्यक्ष श्री विश्वेश्वरैया ने सीमेन्ट उत्पादन के छोटे कारखानों को आर्थिक दृष्टि से लाभदायक बताया है क्योंकि लघु सीमेन्ट संयंत्र बड़े संयंत्रों की अपेक्षा कम खर्चीले होते हैं और इनसे प्रदूषण भी कम होता है। राजस्थान में 8,000 लाख टन अच्छे किस्म का चूना पत्थर के भण्डार है, जो कि देश में पाये जाने वाले चूने के पत्थर का 14% है। राज्य में औद्य-

पुर-सिरोही क्षेत्र में सबसे अच्छे किस्म के चूने का पत्थर उपलब्ध है।

कुछ वर्ष पूर्व छोटे सीमेन्ट कारखानों की स्थापना का कार्य आरम्भ हुआ था और राजस्थान में भी ये अभियान चला लेकिन अब तक राज्य में दो सीमेन्ट कारखाने लगे जबकि बड़े सीमेन्ट कारखानों की स्थापना का काम तेजी से हो रहा है। सीमेन्ट अनुसंधान की ओर से 38 छोटे सीमेन्ट कारखाने स्थापित किये जा रहे हैं जिनमें से छह राजस्थान में हैं। 200 टन प्रतिदिन क्षमता के दो कारखानों में से एक नीम-का-थाना तथा दूसरा बांसवाड़ा में है। बूंदी और चित्तौड़गढ़ के मध्य जो विद्यमान क्रम के भण्डारों की पट्टी में शामिल हैं और अब बड़ी रेल्वे लाइन द्वारा इस क्षेत्र को परिवहन की सुविधायें प्रदान की जा रही हैं, आदि का उपयोग करने के लिए तीन लघु सीमेन्ट संयंत्र स्थापित किये जा रहे हैं। हिन्डौन सिटी व कोटपुतली में भी लघु सीमेन्ट संयंत्र स्थापित किये जा रहे हैं। इस पर 50 लाख रुपए की लागत आयेगी जिसमें से राजस्थान वित्त निगम 26 लाख रुपये का ऋण स्वीकृत कर चुका है। यह उद्योग पूर्वी राजस्थान का इतनी बड़ी लागत से लगाया जाने वाला लघु उद्योग क्षेत्र में प्रथम होगा।

केन्द्रीय उद्योग मंत्रालय देश में छोटे सीमेन्ट कारखानों की स्थापना पर जोर देता है। राजस्थान में चूना पत्थर के भण्डार 80,000 लाख टन के कूंते गये हैं यदि इनका उपयोग किया जाये तो राजस्थान, सीमेंट उत्पादन में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर सकता है। राज्य में बड़े सीमेन्ट कारखानो के साथ-साथ छोटे कारखाने स्थापित किये जायें तो उत्पादन तीव्रता से बढ़ेगा। छोटे कारखानों में कम पूंजी लगती है तथा इसके क्षेत्र को उत्पादन कर एवम् बिक्री की कुछ रियायतें मिली हुई हैं। इसके अतिरिक्त छोटे उत्पादन के कारखानों को आस-पास के क्षेत्रों का बाजार मिलेगा तथा अधिक दूर ले जाने से जो अतिरिक्त लागत आती है उसका भार भी नहीं पड़ेगा। अन्त में यह स्मरण रहे कि राज्य में लगाये जाने वाले लघु सीमेन्ट उद्योग तकनीकी व आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ रहें, यह उत्तरदायित्व सीमेन्ट अनुसंधान संस्थान को लेना होगा।

कांच उद्योग

कांच बनाने के लिए जिन वस्तुओं का उपयोग किया जाता है उनमें बालू मिट्टी के अतिरिक्त अनेक प्रकार के रसायनिक पदार्थ और शक्ति के लिए कोयला काम में लाया जाता है। इनमें से बालू मिट्टी काफी भारी होती है। कांच की वस्तुओं को स्थानान्तरण करने में बड़ी कठिनाई होती है। अत: स्वभावत: कांच उद्योग बड़े नगरों के निकट ही स्थापित किया जाता है। अन्य कच्चा माल वहीं मंगा लिया जाता है।

राज्य में कांच उद्योग के लिए निम्न सुविधायें उपलब्ध हैं—

(i) उत्तम कांच बनाने के लिए स्वच्छ बालू की और सिलिका की अधिकाधिक मात्रा (99% तक) होना आवश्यक है। राज्य बालू के उत्पादन की दृष्टि से देश भर में प्रसिद्ध है। जयपुर, बीकानेर, बूंदी तथा धौलपुर आदि जिलों में उत्तम श्रेणी के बालू पत्थर पाये जाते हैं।

(ii) बालू को 1600° सेन्टीग्रेड से 1650° सेन्टीग्रेड के ताप पर पिघलना पड़ता है। अत: अच्छे किस्म के कोयले या विद्युत शक्ति की आवश्यकता है। धौलपुर के कारखानों के लिए कोयला बिहार की खानों से प्राप्त किया जाता है।

(iii) धौलपुर के कारखानों को सबसे बड़ा लाभ आगरा के कुशल मजदूरों का पर्याप्त मात्रा में मिल जाना है। आगरा के निकट कुछ मुस्लिम जातियाँ मिलती हैं जो पीढ़ियों से कांच का सामान तैयार करती आ रही हैं। ये कुशल मजदूर आधुनिक ढंग के कांच बनाने के काम में भी बहुत जल्दी सिद्धहस्त हो जाते हैं।

(iv) कांच बनाने में प्रयुक्त दूसरे मुख्य पदार्थ सोडा मिट्टी, सोडा सल्फेट और शोरा है। राजस्थान की नमकीन झीलों से भी सोडा के कार्बोनेट और सल्फेट दोनों मिलते हैं। कई शुष्क भागों में कहीं-कहीं भूमि पर रेह नामक पदार्थ एकत्रित हो जाता है। यह भी कांच बनाने के प्रयोग में लिया जाता है।

(v) चूने का पत्थर सोजत, गोटन, चित्तौड़गढ़, लाखेरी, सवाईमाधोपुर आदि में बहुतायत से मिलता है।

राजस्थान में कांच का सामान बनाने के कारखाने जयपुर, भरतपुर, बीकानेर, जोधपुर, कोटा, उदयपुर व धौलपुर में थे किन्तु इस समय धौलपुर में स्थित दो कारखानें महत्वपूर्ण हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(i) धौलपुर ग्लास वर्क्स—यह कारखाना निजी क्षेत्र में हैं। इसमें 8.67 लाख रु. विनियोजित है। प्रति वर्ष औसतन 1000 टन कांच का सामान इस कारखाने में तैयार होता है तथा इसमें लगभग 825 श्रमिक कार्य करते हैं।

(ii) दी हाई टेक्नीकल प्रीसीजन ग्लास वर्क्स—यह कारखाना सार्वजनिक क्षेत्र में राजस्थान सरकार का है। इसकी अधिकृत पूंजी 50 लाख रुपये है। इसमें मार्च 1964 से उत्पादन किया जा रहा है। यह बोतलें, बीकर्स, पैन्सिलीन वायलर्स, कवर ग्लास, माइक्रोस्लाईडस् एवं फ्लास्क भी तैयार करता है। सन् 1964-65 में इसका उत्पादन 7 लाख रुपये का था जो अब बढ़कर 10.37 लाख रुपये का हो गया है। लेकिन 1965-67 की अवधि में इसे हानि उठानी पड़ी इसलिये इसे 1967 में बन्द कर देना पड़ा। पुनः इसमें उत्पादन वर्ष 1968 में प्रारम्भ किया गया। इसमें 778 व्यक्ति कार्य कर रहे हैं।

उदयपुर का कांच का कारखाना उत्पादन की दृष्टि से नगण्य है। इस उद्योग के विकास की सम्भावनाएं जयपुर, सवाईमाधोपुर, बीकानेर, बूंदी तथा उदयपुर में है। लेकिन कुशल श्रमिकों के अभाव को दूर करने के लिये उन्हें उत्तरप्रदेश से लाना पड़ेगा जो काफी महगें सिद्ध होते हैं।

ऊन उद्योग

भारत में 4 करोड़ भेड़ें हैं जिससे 3.50 करोड़ किलोग्राम ऊन प्रति वर्ष पैदा होती है, उसमें से राजस्थान में 135 लाख भेड़ें हैं और उनसे प्रति वर्ष दो करोड़ 36लाख किलोग्राम ऊन प्राप्त होती है। किन्तु खेद का विषय है कि राजस्थान में ऊन का इतना अधिक उत्पादन होने पर भी ऊन उद्योग अधिक विकसित न हो सका। राजस्थान के उत्तर एवं पश्चिम में स्थित शुष्क व अर्द्ध शुष्क जिलों में ऊन का उत्पादन अधिक होता है। शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क भागों में स्थित जिले चूरु, सीकर, नागौर, बीकानेर, जोधपुर, पाली, जालौर, बाड़मेर, जैसलमेर, गंगानगर और झुन्झुनू हैं जहां कुल 110 लाख भेड़ें मिलती हैं। औद्योगिक स्तर पर ऊन का उपयोग करने के लिये दो कारखानें बीकानेर में तथा एक कारखाना जोधपुर में स्थापित किया गया हैं। जोधपुर, कोटा, बीकानेर, नवलगढ़ तथा चूरू में ऊनी वस्त्र तथा धागा तैयार करने के कारखाने हैं। ग्रामीण उद्योग परियोजना के अन्तर्गत दो मिलें क्रमशः लाडनू व चूरू में स्थापित की गई हैं।

ऊनी वस्त्र उद्योग की प्रमुख क्रियायें ये हैं—(i) कच्ची ऊन की छंटाई, (ii) धुलाई तथा सफाई, तथा (iii) कताई और बुनाई। ऊन के लच्छे बनाने के लिये ऊन की सफाई अपेक्षित होती है जिससे उन लच्छों का उपयोग ऊनी वस्त्र उद्योग के वर्स्टेड कताई अनुभाग द्वारा किया जा सके। राज्य में ऊन की सफाई एवं प्रेसिंग का कार्य मुख्यतः कुटीर उद्योग के रुप में होता है इस समय ऊन साफ करने और प्रेसिंग का कार्य करने की लगभग29 फैक्ट्रियां (1981) काम कर रही हैं जो मुख्यतः बीकानेर, जोधपुर, ओसियां, सीकर, ब्यावर, केकड़ी, पाली व भीलवाड़ा आदि केन्द्रों में स्थित हैं।

राज्य में उत्पादित ऊन का अधिकांश भाग नमदा या गलीचा ऊन के रूप में वर्गीकृत किया गया है और इसका अधिकतर भाग निर्यात कर दिया जाता है। अभी हाल के प्रयोग इस बात की पुष्टि करते हैं कि यह ऊन उत्तम किस्म की है और इस का उपयोग ऊनी वस्त्रों के तैयार करने में किया जा सकता है।

राजस्थान में ऊन उद्योग की बड़ी इकाईयां निम्न हैं—

(i) स्टेट वूलन मिल्स, बीकानेर—यह कारखाना सरकारी क्षेत्र में बीकानेर शहर में स्थापित किया गया है। इस फैक्ट्री में लगभग 1,250 तकुए हैं तथा ऊनी धागा तैयार किया जाता है।

(ii) जोधपुर ऊन फैक्ट्री—यह जोधपुर में स्थित है। इसमें ऊनी धागा तैयार करने के लिये 720 तकुएँ, कालीन तैयार करने के लिए 10 हाथ कर्घे तथा कम्बल बनाने के लिये 10 कर्घे लगे हुए हैं।

(iii) विदेशी आयात-निर्यात संस्था, कोटा—इसके अन्तर्गत एक कलगी-संयंत्र (कॉम्बिग प्लाण्ट) है जिसकी वार्षिक क्षमता 35 लाख किलोग्राम ऊन की है।

(iv) वर्स्टेड स्पिनिंग मिल्स, चूरू—राजस्थान लघु उद्योग निगम द्वारा चूरू में रेल्वे स्टेशन के समीप यह फैक्ट्री लगाई गई है। इसमें 400 तकुएं काम करते हैं।

(v) वर्स्टेड स्पिनिंग मिल्स, लाडनूं—चूरू जिले के लाडनूं कस्बे में राजस्थान लघु उद्योग निगम द्वारा यह फैक्ट्री स्थापित की गई है।

अभी कुछ समय पूर्व तक पंजाब ऊनी उद्योग क्षेत्र में प्रसिद्ध था। पंजाब का कम्बल; ब्लेजर, ट्वीड्स; होजरी, महिलाओं के शाल एवं अन्य ऊनी सामान पर वास्तव में एकाधिकार था लेकिन विगत दो वर्षों से पंजाब के उत्पादन में 50 प्रतिशत की कमी आ गई जिससे मांग एवं पूर्ति का संतुलन खराब हो गया इस बिगड़ती हुई मांग एवं पूर्ति की व्यवस्था को सुधारने के लिये पड़ोसी राज्यों से पूर्ति की जा सकती है। राजस्थान में उपस्थित असीमित साधनों के कारण सीधा प्रतिस्थापन किया जा सकता है।
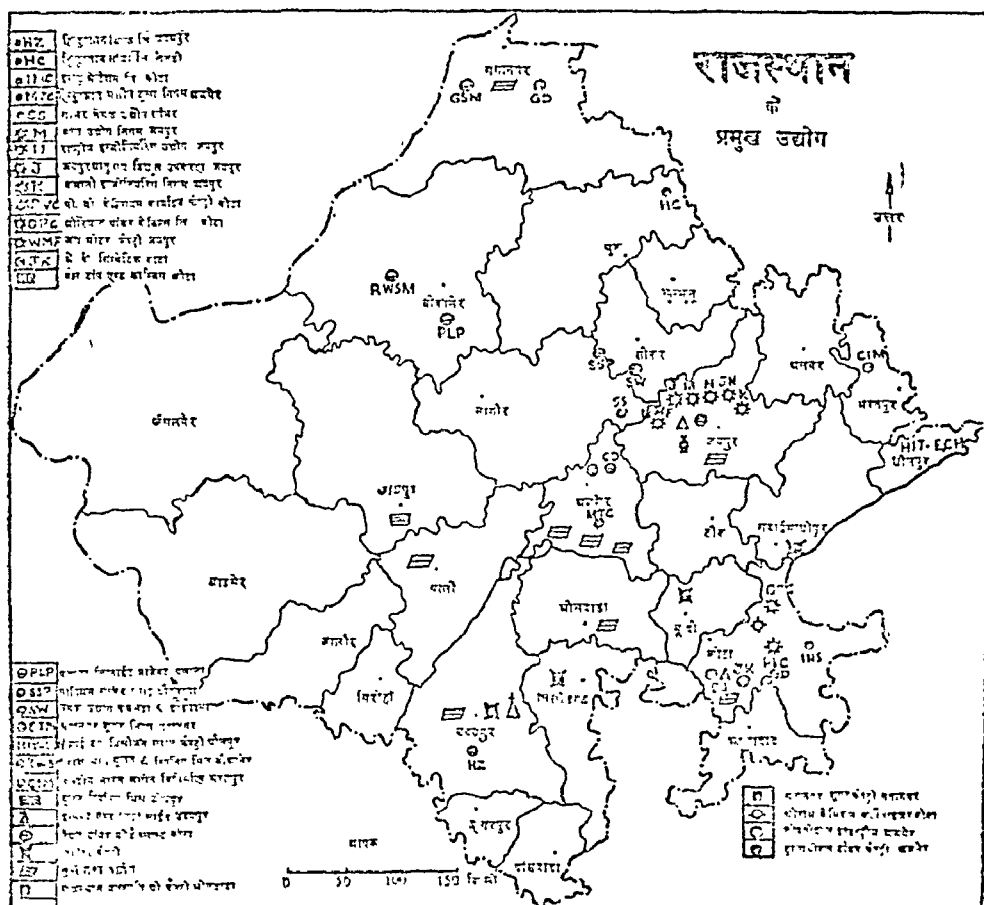
राजस्थान के प्रमुख उद्योग

ऊनी वस्त्र उत्पादन का तरीका बिल्कुल सीधा एवं स्पष्ट है इसे केवल वार्पिग वाइंडिंग व लूमिंग की जरूरत है। लूमिंग चाहे पावरलूम या हैण्डलूम ही क्यों न हो। इस कार्य में आने वाली तमाम मशीनें यहां आसानी से उपलब्ध हैं। इसके अलावा बुनाई के तरीकों के लिए तीन साधनों की आवश्यकता पड़ती है।

ऊनी कपड़ा बनाने के लिए जिस धागे का प्रयोग किया जाता है उसके बनाने वाले 6 कारखानें राज्य में काम कर रहे हैं। उनमें से तीन तो भीलवाड़ा में हैं जो प्रतिमाह 2.5 लाख किलोग्राम कम्बल बनाने के धागे का उत्पादन करते हैं जिससे 1.25 लाख कम्बल प्रतिमाह या 15 लाख कम्बल प्रतिवर्ष बनाये जा सकते हैं। इन्हीं उद्योगों में महिलाओं के शॉल, ब्लेजर्स, ट्वीड्स तथा अन्य ऊनी वस्त्र उद्योग के लिए धागा तैयार किया जाता

है। राज्य के आधे से अधिक धागा उत्पादन भीलवाड़ा की मिलों में ही होता है।

ऊनी माल तैयार करने के बाद मुख्य समस्या कपड़े के प्रोसेसिंग की है। ऊनी कपड़े की प्रोसेसिंग का एक भी कारखाना राज्य में नहीं होने से यहां निर्मित सभी कम्बल एवं कपड़े को प्रोसेसिंग के लिए लुधियाना तथा अमृतसर के प्रोसेसिंग घर पर निर्भर रहना पड़ता है। माल लम्बे समय तक वहां पड़ा रहता है, इससे उत्पादन खर्च भी बढ़ जाता है और भी कई समस्यायें सामने आती हैं। अभी हाल में एक प्रोसेसिंग हाऊस का निर्माण भीलवाड़ा में हुआ है। जिसकी प्रोसेसिंग क्षमता 6 लाख कम्बल प्रतिवर्ष की है।

भीलवाड़ा सिन्थेटिक माल के उत्पादन में करीब तीन सौ शक्ति कर्घे लगे हुए हैं। सिन्थेटिक लूम्स तथा पावर लूम्स की कार्य प्रणाली समान हैं, इसलिए थोड़े से प्रशिक्षण से एक बुनकर ऊन के कर्घे भी आसानी से चला सकता है। इस प्रकार प्रशिक्षित बुनकर को भी विकासपूर्ण क्षेत्र यहाँ उपलब्ध होगा। पंजाब में भी अधिकांश बुनकर बिहार एवं उत्तरप्रदेश के हैं जो कि वर्तमान वातावरण में वहां नहीं जा रहे हैं। उन्हें राजस्थान में नियोजन प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है जिससे प्रशिक्षण कारीगरों की समस्या का समाधान हो सकता है।

माल के बेचने की समस्या नहीं है क्योंकि देश में प्रतिवर्ष 70 लाख कम्बलों की मांग रहती है। जिसमें से 28 लाख कम्बलों का उत्पादन बड़ी मिलें करती हैं। 30 लाख कम्बलों का उत्पादन अकेला अमृतसर करता है तथा 12 लाख कम्बलों का उत्पादन पानीपत में होता है लेकिन पंजाब के उत्पादन क्षेत्रों में अब कमी आ गई है। अब कम्बल का निर्यात भी होने लगा है। वर्ष 1982-83 में 12 करोड़ मूल्य के कम्बल निर्यात किये गये। कम्बलों का मुख्यत: निर्यात मध्य-पूर्व व खाड़ी राष्ट्रों को किया जाता है। कम्बल का क्रय बड़ी संख्या में घरेलू उपभोक्ताओं के अलावा सुरक्षा अस्पताल व अन्य संस्थाओं द्वारा भी किया जाता है।

वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए सरकार को चाहिए कि भीलवाड़ा में ही वूलन काम्पलेक्स की स्थापना कर दें जिसके अन्तर्गत कम्बलों का प्रोसेसिंग हाऊस, कम्बल बनाने के लिये पावरलूम तथा हाथ करघा लगा दिये जायें तो इन वूलन उद्योगों में बनने वाला धागा भी यहीं खप जायेगा, कई श्रमिकों को रोजगार मिलने लगेगा तथा राज्य सरकार को आय होगी।

नमक उद्योग

राजस्थान में नमक उद्योग बड़े पैमाने के उद्योगों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत में राजस्थान खारी झीलों से नमक बनाने के लिए प्रसिद्ध है। यह देश का लगभग 10% नमक तैयार कर उत्पादन की दृष्टि से भारत में चतुर्थ स्थान रखता है। जहाँ तक झीलो से नमक उत्पादन का प्रश्न है, यह प्रथम स्थान रखता है। वर्ष 1955 में नमक का उत्पादन 2.9 लाख टन हुआ था लेकिन वर्ष 1986 में इसके उत्पादन में तीन गुने से भी अधिक की वृद्धि हुई अर्थात 9.06 लाख टन उत्पादन रिकार्ड किया गया।

19वीं शताब्दी के मध्य तक नमक विनिर्माण कार्य देशी तरीकों से किया जाता था। नमक की कई लघु इकाईयां काचो, रेवासा, भरतपुर, लूनकरनसर, कानोड़ और लूनी आदि स्थानों पर स्थापित थीं। लेकिन जैसे ही ब्रिटिश सरकार ने सांभर, पचपदरा और डीडवाना में नमक निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया, इन सभी इकाइयों में नमक बनाने का कार्य सन् 1887 से बन्द हो गया।

राजस्थान में सार्वजनिक क्षेत्र में नमक के कारखानें सांभर, डीडवाना, पचपदरा में तथा निजी क्षेत्र में कई छोटे आकार के नमक कारखानें फलौदी, कुचामन सिटी, पोकरन और सुजानगढ़ में स्थित हैं। राजस्थान में कुल नमक उत्पादन का लगभग 70 प्रतिशत भाग सार्वजनिक क्षेत्र से और शेष निजी क्षेत्र से प्राप्त होता है। राजस्थान में नमक के सभी स्त्रोतों में सांभर झील सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण है। यहां नमक आधुनिक मशीनों की सहायता से निकाला जाता है जबकि अन्य स्त्रोतों पर नमक का उत्पादन पुरानी व देशी विधियों से किया जाता है।

नमक उद्योग एक निष्कर्षण उद्योग होने के कारण मौलिक रूप से उन क्षेत्रों में स्थापित है जहां कच्ची सामग्री उपलब्ध होती है। महत्वपूर्ण कारक जो राज्य में इस उद्योग की स्थापना में सहायक होते हैं, वे हैं—पर्याप्त परिवहन की सुविधाएं, सस्ता श्रम, व्यापारिक नमक की

निश्चित मात्रा, कायिक क्षेत्रों में शुद्ध जल की उपलब्धता।

सांभर झील स्त्रोत—देश में सांभर झील स्त्रोत ही सबसे बड़ा आन्तरिक नमक स्त्रोत है और भारत के कुल उत्पादन का लगभग 8 प्रतिशत उत्पन्न करता है। सांभर झील स्त्रोत कई अन्य नमक स्त्रोतों की अपेक्षा सुस्पष्ट विशेषताएं रखता है जैसे इनमें नमक के जमाव अपार हैं और नमक की किस्म भी उत्तम है।

सांभर झील, जयपुर, जोधपुर रेलमार्ग पर जयपुर से लगभग 60 किलोमीटर पश्चिम में समुद्र के औसत तल से लगभग 360 मीटर की उंचाई पर अरावली शिस्ट और नीस के गर्त में स्थित है। इसका विस्तार 26° 53' उत्तरी अक्षांश से 27° 1' उत्तरी अक्षांश तक तथा 74° 54' पूर्वी देशान्तर से 75°14' पूर्वी देशान्तर तक है। यह झील एक द्रोणी है जो कांपीय लवणमय गाद से भरी हुई है और जिसमें 65 मिलियन टन नमक की मात्रा होने का अनुमान है। झील के दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पश्चिम के सहारे अरावली पर्वतस्कन्ध एक अवरोध बनाकर इसकी सुरक्षा करते हैं जिससे इसके अन्दर वायुड़ रेतीली बालू न भर सके। यह झील आन्तरायिक है, अतः वर्षा ऋतु में पानी प्राप्त करती है। जब यह पूर्ण भर जाती है तब इसकी गहराई मध्य श्रेणियों के बीच 1.8 मीटर से 3.20 मीटर होती है और लगभग 234 वर्ग किलोमीटर पर इसका विस्तार होता है।

ग्रीष्मकाल में इस झील में जल का विस्तार सिकुड़ कर 130 वर्ग किलोमीटर हो जाता है तथा पानी झील के विभिन्न भागों में छोटे-छोटे तालाबों या गड्ढों में दृष्टिगोचर होता है। झील चार छोटी मौसमीय धाराओं जैसे मेन्ढ़ा, रुपनगढ़, खरीयन और खान्डेल से भी पानी प्राप्त करती है जिनका कुल आवाह क्षेत्र लगभग 5,720 वर्ग किलोमीटर है।

नमक द्रोणी आन्तरिक प्रवाह के क्षेत्र में स्थित है जहाँ जलवायु की दशायें नमक के विनिर्माण के लिए काफी अनुकूल हैं। अर्द्धशुष्क भूभाग में वर्षा कम और अक्सर अनियमित व तूफानी होती है। सांभर कस्बे में औसत वार्षिक वर्षा 50 सेन्टीमीटर तथा नावां में 42 सेन्टीमीटर है। वर्षा की विषमता इस क्षेत्र में 13 सेन्टीमीटर से 70 सेन्टीमीटर के बीच परिलक्षित होती है। ग्रीष्म ऋतु में औसत तापक्रम 40° से 45° सेन्टीग्रेड तक पाया जाता है। आर्द्रता कम से कम 27 प्रतिशत तक मिलती है और वाष्पीकरण लगभग 110 सेन्टीमीटर तक होता है। यह परिस्थितियाँ नमक विनिर्माण के लिये अनुकूल सिद्ध होती हैं। झील के आस-पास का क्षेत्र रेतीला और बंजर प्रायः है। झील के पूर्वी किनारे पर सांभर कस्बा तथा उत्तरी किनारे पर नावां कस्बा नमक विनिर्माण तथा नमक व्यापार में संलग्न हैं।

झील के ऊपरी सिरे पर नमक की परत जम जाती है। मानसून के बाद झील से पानी का वाष्पीकरण होता है तब गाद में लवण जलसतह तक केशिका-प्रक्रिया के द्वारा ऊपर आ जाता है। सतही वाष्पीकरण लवण-जल को सुखाता है। इस प्रक्रिया द्वारा नमक की परत प्रति वर्ष झील के ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाती है।

मार्च से जुलाई तक सूर्य वाष्पीकरण विधि से नमक का निर्माण किया जाता है। बन्द जलाशयों का निर्माण मुख्य झील से खारी पानी को एकत्रित करने के लिए करवाया गया है। शुद्ध जल तेजी से झील की गाद से लवणता 3° से 5° Be[1] तक प्राप्त कर लेता है। लवणजल को तब मुख्य जलाशय में पम्प के द्वारा पहुंचा दिया जाता है। जब इसका घनत्व 15° से 16° Be तक पहुंच जाता है तब इसे नमक विनिर्माण इकाइयों जिन्हें क्यार (Kayar) कहते हैं, में भर दिया जाता है। इस क्षेत्र में 6 क्यार हैं जो लगभग 8 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत हैं। नमक निष्कर्षण प्रक्रिया तब प्रारम्भ होती है जब लवणजल स्फटकीय क्यारों में 25° से 26° Be तक घनत्व प्राप्त कर लेता है तथा साथ ही नमक की पर्याप्त मोटी परत क्यारों में दृष्टिगत होती है। इस प्रकार जो नमक बनाया जाता है, उसे क्यार नमक कहते हैं।

सांभर में दूसरी किस्म का नमक जो वायु प्रवाह (Wind swept) द्वारा बनाया जाता है उसे रेशता नमक के नाम से जाना जाता है। यह छोटे स्फटकों के रूप में स्फटकीय क्यारों के पार्श्व के सहारे एकत्रित किया जाता है। यह नमक औद्योगिक कार्यो के लिए बहुत ही उपयुक्त माना जाता है।

1. Be = Beaume, a measure of brine.

कुछ नमक नहरी रिसाव द्वारा भी अलग-अलग क्यारों में प्राप्त किया जाता है। इस नहरी लवणजल का रंग सफेद होता है। इसमें सोडियम क्लोराईड तत्व की मात्रा अधिक होती हैं। इसे कढ़ाई नमक के नाम से जाना जाता है। क्यार व कढ़ाई नमक की किस्म में सुधार यांत्रिक धुलाई की प्रक्रिया के द्वारा किया जाता है।

जल में नमक की मात्रा में कमी तथा अधिकता वाष्पीकरण प्रक्रिया पर निर्भर करती है वाष्पीकरण की प्रक्रिया तापक्रम, आर्द्रता, वर्षा, हवाओं की दिशा एवं वेग और बादलोच्छादन दिनों की मात्रा आदि से प्रभावित होती है। नमक का उत्पादन प्रत्यक्ष रूप से वर्षा की मात्रा एवं अवधि से प्रभावित होता हैं।

सांभर झील से नमक के उत्पादन का काम सरकारी

सांभर नमक उद्योग

प्रतिष्ठान "सांभर साल्ट्स लिमिटेड" द्वारा किया जा रहा है जिसकी स्थापना 25 जनवरी 1960 में की गयी थी।

देश भर में नमक के उत्पादन के लिए मशहूर राजस्थान का सांभर नमक उद्योग इन दिनों संकट के दौर से गुजर रहा है। एक तरफ सरकारी उपेक्षा के कारण नमक का उत्पादन बराबर घटता जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ इस उद्योग में लगे मजदूरों, कर्मचारियों में असन्तोष फैल रहा है। भविष्य में यह उद्योग देश में अपनी छवि कायम रख सकेगा, ऐसा नहीं लगता।

सांभर साल्ट्स लिमिटेट के नियन्त्रण में 4,200 हैक्टेयर भूमि है लेकिन इस समय केवल 185 हैक्टेयर में ही नमक का उत्पादन हो रहा है। लगभग 370 हैक्टेयर भूमि सतह को नमक बनाने के लिए पानी पकाने

में प्रयुक्त किया जाता है। सांभर झील से नमक का निर्माण प्राकृतिक संसाधनों जमीन, हवा, पानी और सूर्य की रोशनी के द्वारा होता है। भूमि सतह पर जमा खारा पानी सूरज से गर्मी पा कर गाढ़ा व कठोर हो जाता है और धीरे-धीरे नमक की शक्ल में आ जाता है। जिस 370 हेक्टेयर भू-सतह पर सूरज की गर्मी से पानी को पकाया जाता है उसे निर्धारित प्रमाणों के अनुसार 24 से 27 डिग्री तक पहुँचने के बाद 185 हेक्टेयर भूमि पर बने विभिन्न आकारों के 'क्यारों, पेनों' में भेज दिया जाता है, जहां पानी नमक निर्माण की प्राकृतिक प्रक्रिया रफ्तार पकड़ लेती है, इसके अलावा लगभग 500 हेक्टेयर भूमि ऐसी है जहाँ हमेशा पानी भरा रहता है। यह जगह पानी का भण्डार मानी जाती है। कभी भी कमी पड़ने पर यहाँ से कण्डेन्सरों के द्वारा पानी वितरित किया जाता हैं। लगभग 160 हेक्टेयर भूमि पर सांभर साल्ट्स के प्रशासकीय एवं आवासीय भवन है तथा 205 हेक्टेयर भूमि पर नमक लाने के लिए परिवहन सुविधाओं का जाल बिछा है। 280 हेक्टेयर भूमि पर बालू मिट्टी के टीले हैं इसलिए यहां से नमक उत्पादन की आशा करना निरर्थक हैं। इस प्रकार 'सांभर साल्ट्स लिमिटेड' कुल 1,700 हेक्टेयर भूमि का किसी न किसी रूप में उपयोग कर रही हैं। इस भूमि की वार्षिक उत्पादन क्षमता लगभग तीन लाख टन है। 1980-81 में कम्पनी ने 2.90 लाख टन नमक का रिकार्ड उत्पादन किया था। 1986-87 में यह उत्पादन केवल 1.90 लाख टन रहा जो कुल क्षमता का 60 प्रतिशत है। शेष 2,500 हेक्टेयर भूमि का उपयोग किसी भी रूप में नहीं किया जा रहा है। इस विशालकाय झील में या तो बरसाती पानी या फिर खारा पानी भरा रहता है। इतनी क्षारीय भूमि उपलब्ध होते हुए भी संस्थान के प्रबन्ध संचालकों का ध्यान इस बात की ओर नहीं जा रहा कि इस भूमि सतह की नमक उत्पादन क्षमता एवं उपयोगिता क्या है।

किसी भी क्षेत्र का औद्योगिक विकास वहां के प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है और यह गौरव की बात है कि सांभर झील का यह प्राकृतिक स्रोत इतना विशाल और उपयोगी है जो इस क्षेत्र की सम्पन्नता के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है।

इस समय अतिरिक्त रूप से बेकार पड़ी 2500 हैक्टेयर भूमि में से 875 हैक्टेयर में और पानी भरा रहने दिया जाये तो भी लगभग 1625 हैक्टेयर भूमि ऐसी बचती है जिस पर नमक उत्पादन कार्य संभव है। इसे विकसित कर नमक उत्पादन के लिये विभिन्न प्रकार के क्यारें व पेन आदि बनवाकर लगभग 15 लाख टन नमक की अतिरिक्त वार्षिक उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। एक समय था जब सांभर का नाम केवल नमक से जाना जाता था क्योंकि यहाँ का नमक गुणवत्ता एवं सफाई में इतना बढ़िया था कि लोग सांभर के नाम से ही नमक खरीदते थे। स्वतन्त्रता से पूर्व सांभर का नमक व्यवसाय इतने चरमोत्कर्ष पर था कि यहाँ की नमक मण्डी एशिया की सबसे बड़ी नमक मंडी मानी जाती थी। 'सांभर साल्ट्स' की स्थापना के बाद नमक व्यवसाय निरन्तर कमजोर होता गया और आज तो इस जर्जर अवस्था में आ चुका है कि कब खत्म हो जाये, कोई भरोसा नहीं क्योंकि सांभर के नमक में न तो वह गुणवत्ता रही और न ही किसी तरह की सफाई। अतः सरकार को इस तरफ ध्यान देना चाहिये जिससे यह पुनः अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके।

पचपदरा मक स्रोत—पचपदरा नमक उत्पादन क्षेत्र जोधपुर से लगभग 128 किलोमीटर दूर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यह नमक स्रोत एक गर्त से बना है जिसका विस्तार 83 वर्ग किलोमीटर पर है। पचपदरा झील में नमक लगभग 1040 वर्ग किलोमीटर के प्रवाह क्षेत्र से वर्षा जल के साथ घुल कर आता है। नमक के अधिकांश गड्ढे गर्त के पश्चिमी भाग में मिलते हैं। नमक के कारखानें हीरागढ़ और साम्बरा में स्थित है। अन्य नमक कारखानें गर्त के पूर्वी भाग में पोसाली और छोटा साम्बरा में हैं। पचपदरा का नमक समुद्री नमक से बहुत मिलता-जुलता है। इस क्षेत्र में जलवायु और प्राकृतिक दशायें नमक विनिर्माण के अनुकूल हैं। ग्रीष्म ऋतु बहुत उष्ण तथा वर्षा (28 सें.मी.) विरल है। वाष्पीकरण की वार्षिक दर लगभग 150 सेन्टीमीटर है।

'खरवाल' जाति के लोग कई पीढ़ियों से नमक का कार्य करते चले आ रहे थे। बेसिन में आयताकार गड्ढे 2.7 मीटर से 3.7 मीटर गहरे और 15 मीटर से 30 मीटर चौड़े खोदे जाते हैं जिनमें क्षारीय जल पहुंचाया जाता है ये गड्ढे लगभग 5000 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र पर यत्र-तत्र बिखरे हुये हैं। यह पूर्ण बेसिन तीन क्षेत्रों—हीरागढ़, साम्बरा और पोसाली में विभाजित हैं।

उत्पादन के आंकड़े प्रदर्शित करते हैं कि गड्ढों से
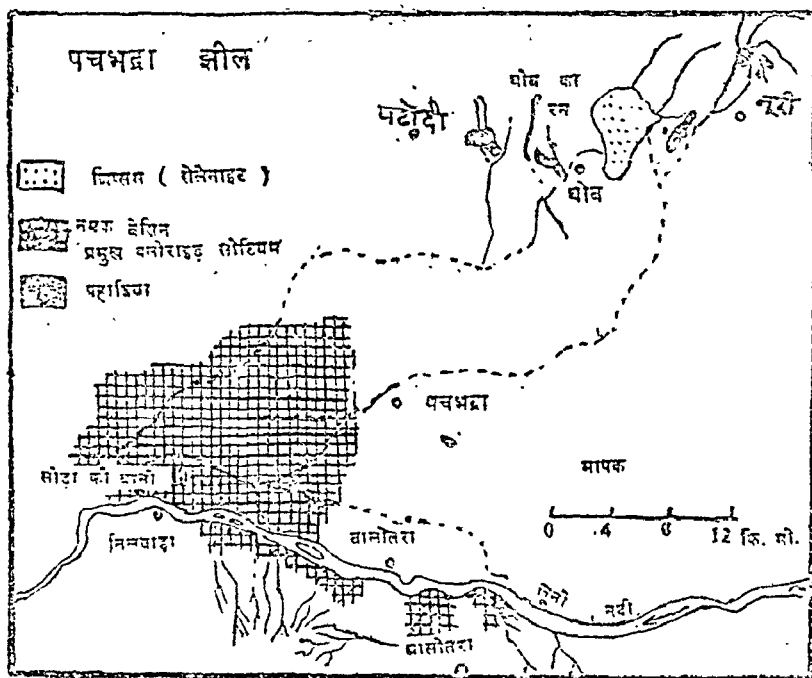
पचपदरा नमक उद्योग

उत्पादन समय के साथ गिरता जा रहा है। नमक गड्ढों के पेटों में जमने के कारण उनकी गहराई को कम कर देता है तथा साथ ही गड्ढों के पेटों तथा पार्श्वों दोनों को अपरगम्य बना देता है जिससे शुद्ध खारी जल का बहाव रुक जाता है और नमक का उत्पादन कम हो जाता है।

इस क्षेत्र में कई दोष देखने को मिलते हैं जैसे पानी की कमी, अति शुष्क जलवायु दशायें, अपर्याप्त और अकुशल श्रमिक, उचित माल ढोने व परिवहन सुविधाओं की कमी और प्रारम्भिक वर्षों में रेल्वे के ऊँची भाड़ा दरें आदि। इन अवगुणों में से कुछ को दूर कर दिया गया है लेकिन पानी की कमी अभी भी बनी हुई हैं।

डीडवाना नमक क्षेत्र—यह नमक उत्पादन क्षेत्र सांभर झील से लगभग 50 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित है। इसका विस्तार लगभग 10 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में है। यह गर्त सिवाय पश्चिम के बाकी सभी दिशाओं में बालू की पहाड़ियों से घिरा है। पश्चिम में अरावली शृंखला का एक पर्वत-स्कन्ध इस क्षेत्र की सीमा को बांधता है। डीडवाना कस्बा इसके उत्तरी-पूर्वी सिरे पर स्थित है। इस गर्त के अन्तर्गत दो बांध एक सिरे से दूसरे सिरे तक बनाये गये हैं जिससे गर्त के केन्द्र की ओर सतही जल के प्रवाह को जहाँ नमक बनाने का कार्य किया जाता है, कम से कम किया जा सके।

गर्त के पेटे में काली मिट्टी मिलती है। इस झील की आकृति सांभर झील से मिलती-जुलती है। इस गर्त में खारे पानी के रिसाव लवणजल की घनत्वता 20° के समरूप दर्शाते हैं। जलवायु और प्राकृतिक दशायें इस क्षेत्र में नमक के निर्माण के लिए बहुत अनुकूल हैं। गर्मी का औसत तापक्रम लगभग 46° सेंटीग्रेड है और औसत वार्षिक वर्षा केवल 37 सेंटीमीटर होती है। वर्षा का प्रभाव इस क्षेत्र में नमक के उत्पादन पर परिलक्षित नहीं होता है क्योंकि इस गर्त की अधः मिट्टी में लवण जल के

सुरक्षित भण्डार पर्याप्त हैं। यहाँ तक कि सूखे के वर्षों में भी यह लवण जल कुओं के लिए पर्याप्त जल आपूर्ति बनाये रखने में समर्थ है।

इस क्षेत्र में नमक का निर्माण निजी संस्थाओं के द्वारा किया जाता है जिन्हें स्थानीय भाषा में 'देवल' कहा जाता है। देवल सरकार से लाइसेंस प्राप्त किये हुए हैं। वर्तमान में भी नमक निष्कर्षण का कार्य शताब्दियों से प्रचलित पुराने तरीकों से किया जाता है। लवणजल कूप 2.4 मीटर से 4.6 मीटर की विभिन्न गहराईयों तक खोदे जाते हैं। इन कूपों में अधः भूमि लवणजल का
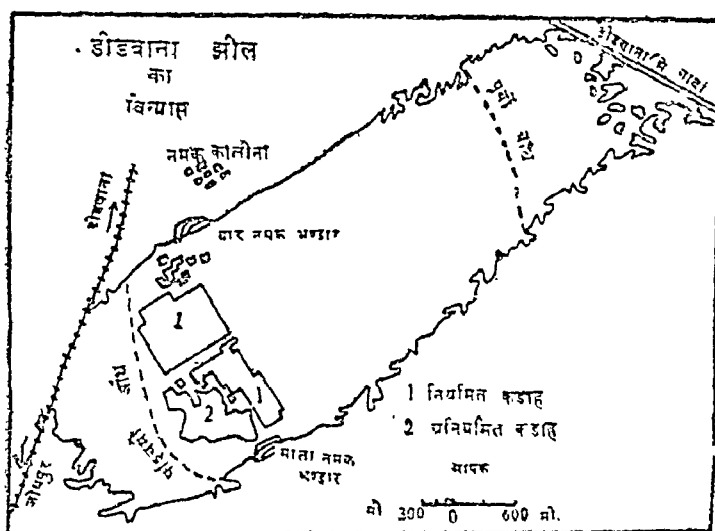
डीडवाना नमक क्षेत्र

घनत्व 10° से 26° सेन्टीग्रेड के बीच होता है। कड़ाह छिछली जल निकास नालियों से भरे जाते हैं। नौ महीने की शुष्क अवधि में लगभग 6 या 7 बार नमक का उत्पादन किया जाता है। पहली फसल लगभग एक महीने के वाष्पीकरण के बाद ली जाती है तथा दूसरी 20 दिनों के बाद। इसके पश्चात ताप और कठोर पश्चिमी हवाओं के वेग के बढ़ने के साथ-साथ नमक एकत्रीकरण की अवधि मानसून से पूर्व कम होती चली जाती है।

डीडवाना नमक उत्पादन क्षेत्र राज्य में नमक उद्योग के लिए बहुत अधिक क्षमतायें रखता है। यहाँ नमक की उत्पादन लागत अन्य क्षेत्रों से कम आती है। यह स्त्रोत क्योंकि वर्षा पर निर्भर नहीं करता, इसलिए उत्पादन का स्तर,यहाँ तक कि सूखे के वर्षों में भी बनाये रखा जा सकता है। डीडवाना में सोडियम सल्फेट का कारखाना भी है जिसे राजस्थान सरकार चला रही है।

उपरोक्त के अतिरिक्त पोकरन,कुचामन, फलौदी और सुजानगढ़ की झीलों में भी नमक तैयार किया जाता है। यहाँ झीलें छोटी हैं अतः उत्पादन भी कम होता है। पोकरन से लगभग 6 हजार टन, कुचामन से 12 हजार टन, फलौदी से 1 लाख टन तथा सुजानगढ़ से 24 हजार टन का उत्पादन प्रतिवर्ष होता है। पोकरन भारत में नमक उत्पादन क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ का उत्पादित नमक सबसे उत्तम श्रेणी का नमक है। यहाँ के नमक का निर्यात न केवल राजस्थान को बल्कि भारत के कई अन्य राज्यों को किया जाता है लेकिन फिर भी इस उद्योग के लिए सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं। शहर से लवण क्षेत्र तक पक्की सड़क का न होना, रेल्वे द्वारा समय पर डिब्बों का उपलब्ध न कराया जाना तथा बिजली की कमी आदि ये सभी सुविधायें यथाशीघ्र उपलब्ध कराई जानी चाहिये।

राजस्थान क्षेत्रीय वितरण के अनुसार अनेक राज्यों को नमक का निर्यात करता है। सैनिकों के लिए भी नमक राजस्थान से ही भेजा जाता है लेकिन नियमित आपूर्ति के लिए रेलवे वैगन उपलब्ध नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त गौण पदार्थों का भी समुचित उपयोग नहीं हो

पा रहा है। राजस्थान सरकार यदि गौण पदार्थों के उत्पादन में रूचि ले तो बहुत आय प्राप्त कर सकती है।

नमक को आधार मानकर इस क्षेत्र के औद्योगिक, विकास की अनगिनत संभावनाएं हैं। नमक पर आधारित सांभर झील कस्बे में सोड़ा एश का कारखाना खोला जाये परन्तु भारतवर्ष में सोड़ा एश की बढ़ती मांग एवं विदेशी व्यापार की व्यापक संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार ने हाल ही में इलाहाबाद के निकट एक सोडा एश संयंत्र स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान की है। इस संदर्भ में यह कहना गलत न होगा कि सोड़ा एश की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मांगों की पूर्ति करने में सांभर का सोडा एश कारखाना ही सक्षम होगा क्योंकि—

(i) यहां सोडा एश निर्माण के लिये कच्चे माल के रूप में क्रिस्टल साल्ट भारी मात्रा में और न्यूनतम लागतों पर उपलब्ध है।

(ii) सांभर नामक केलशियम और मैग्नेशियम नमक तत्वों को नहीं रखता है क्योंकि यह दोनों ही सोडा एश की किस्म में अशुद्धियों के लिए उत्तरदायी माने जाते हैं।

(iii) यहां मानवीय श्रम के स्रोत भी प्राप्त हो सकते हैं।

(iv) सांभर झील का पानी खारी जरूर है लेकिन औद्योगिक प्रयोजन के लिए मीठे पानी की भी यहां कोई कमी नहीं है। जल यहाँ कंलाक बांध अथवा छप्पर बाड़ा बांध जो सांभर से केवल 29 किलोमीटर दूर है, से पाईप द्वारा लाकर उपलब्ध कराया जा सकता है।

(v) अच्छी किस्म का चूना सोजत में तथा जोधपुर के गोटन में उपलब्ध है।

(iv) विद्युत ऊर्जा सांभर में ही उपलब्ध है।

सांभर झील कस्बे में सोडा एश कारखाना स्थापित किये जाने के पक्ष में सबसे महत्वपूर्ण बात यही है कि हिन्दुस्तान की आजादी के बाद इस क्षेत्र के औद्योगिक विकास की ओर सरकार द्वारा बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया गया। जिससे यह क्षेत्र उद्योगों की दृष्टि से अपने आप अविकसित क्षेत्रों की श्रेणी में आ गया।

रासायनिक उद्योग—वर्तमान में रासायनिक उद्योग की बढ़ती हुई महत्ता के कारण राजस्थान में रासायनिक उद्योगों के विकास को विशेष महत्व दिया गया है। डीडवाना में सोडियम सल्फेट का एक कारखाना राज्य सरकार ने स्थापित किया है। सोडियम सल्फेट का प्रयोग कांच, कागज, सूती, रेशमी व ऊनी कपड़ों के बनाने में किया जाता है। डीडवाना तथा सांभर झीलों के लवण जल से काफी मात्रा में वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा सोडियम सल्फेट प्राप्त किया जाता है। डीडवाना के लवण जल का विश्लेषण करने पर उसमें सोडियम क्लोराईड 19%, सोडियम सल्फेट 6.5%, सोडियम कार्बोनेट 0.5%, सोडियम बाईकार्बोनेट 0.35%, पानी 73.65% आदि मिले। लवण जल से पहिले सोडियम सल्फेट निकाला जाता है और फिर बचे हुए पानी से शुद्ध नमक बनाया जाता है।

रासायनिक उर्वरकों के उत्पादन के लिए कोटा में श्रीराम फर्टीलाइजर कारखाना तथा देवारी के जिंक स्मेल्टर से रासायनिक खाद का उत्पादन किया जा रहा है। खाद बनाने के कारखाने घोसुन्डा तथा सवाईमाधोपुर में बनाने के प्रावधान हैं।

इन्जीनियरिंग उद्योग—राजस्थान निर्माण के पश्चात् योजनाओं के अन्तर्गत इन्जीनियरिंग से सम्बन्धित उद्योगों का तेजी से विकास करने के लिये अधिक महत्व दिया गया। वैसे तो पहली शुरूआत 1943 में जयपुर मैटल की स्थापना से हुई तथा बॉलबियरिंग बनाने का कारखाना खोला गया परन्तु अब वर्तमान में इन्जीनियरिंग उद्योग की कई इकाइयां स्थापित की जा चुकी हैं।

जयपुर मैटल्स बिजली के मोटर बनाता है। लोहे की खिड़कियाँ व दरवाजे आदि इमारती सामान बनाने के लिए मान इण्डस्ट्रियल कॉरपोरेशन है। पानी के मीटर, केप्स्टन मोटर कम्पनी बनाती है। योजनाओं के अन्तर्गत राज्य में सार्वजनिक क्षेत्र में भी कई इकाइयाँ स्थापित की गई हैं जिनमें से हिन्दुस्तान मशीन टूल्स का कारखाना, अजमेर में व इन्स्ट्रूमेंटेशन लिमिटेड, कोटा में स्थापित किया है। यह कारखाना थर्मोकपल्स, थर्मामीटर व बिजली के उपकरण तैयार करता है।

केबिल बनाने के कारखाने कोटा व पिपलियाँ में

स्थापित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त रेल्वे वैगन कारखाना, भरतपुर में, कृषि औजार बनाने का कारखाना जयपुर में स्थापित किया है।

कृषि उपकरणों का उत्पादन करने के लिये सरकार द्वारा नागौर, दिगोद, सिरोही, चित्तौड़गढ़ व सोजत में वर्कशाप स्थापित किये गये हैं। जे. के. के द्वारा कोटा में टेलीविजन कारखाना भी स्थापित किया गया है।

इस प्रकार राजस्थान में इन्जीनियरिंग उद्योग भी विकास की ओर अग्रसर है और 1978 में लगभग 20 इन्जीनियरिंग कारखाने कार्यरत थे। अब इन कारखानों की संख्या में वृद्धि हुई है।

विविध उद्योग

वनस्पति तेल उद्योग—योजनाओं के अन्तर्गत किए गये विकास कार्यों में वनस्पति घी बनाने के उद्योग की प्रगति उल्लेखनीय है। राज्य में वनस्पति घी बनाने के छह नये कारखाने खोले गये हैं जिनमें से चार जयपुर में, एक चित्तौड़गढ़ तथा एक भीलवाड़ा में हैं। 1970 में वनस्पति तेल का उत्पादन 13,000 टन था वह बढ़कर 1983 में 20 हजार टन हो गया। कोटा में भी वनस्पति घी के कारखाने स्थापित किये जाने की प्रबल सम्भावनायें हैं।

अभ्रक की ईंटें बनाने का कारखाना—भीलवाड़ा में भोपाल माईका के द्वारा स्थापित किया गया है जिसमें प्रतिमाह लगभग 70 हजार टन ईंटें बनती है।

घीया पत्थर पाऊडर उद्योग—राजस्थान में घीया पत्थर पीसने के कारखाने दौसा, भीलवाड़ा और उदयपुर में स्थापित हैं। इनसे प्राप्त पॉउडर अनेक प्रकार के उद्योगों में काम आता है तथा विदेशों को भी निर्यात किया जाता है।

अन्य उद्योग—चिप्स बनाने के छोटे-छोटे कारखाने चित्तौड़गढ़, बांसवाड़ा, नाथद्वारा, मकराना, अलवर आदि स्थानों पर हैं। उदयपुर में एक पिग आयरन कारखाना खोला गया है।

राजस्थान में सार्वजनिक क्षेत्र के महत्वपूर्ण उद्योग

राजस्थान में तीव्र औद्योगीकरण के लिये सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत काफी प्रयास किये हैं। सरकार के इन प्रयासों में सार्वजनिक क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण उद्योग स्थापित किये गये हैं जिन्हें दो शीर्षकों में बांट कर उनका वर्णन किया जा सकता है।

(अ) भारत सरकार के औद्योगिक उपक्रम

1. हिन्दुस्तान जिन्क लिमिटेड, देवारी (उदयपुर)—भारत सरकार ने उदयपुर के निकट देवारी में हिन्दुस्तान जिन्क लिमिटेड के नाम से जस्ता गलाने का संयंत्र 10 जनवरी, 1966 में स्थापित किया था। इसने व्यापारिक स्तर पर सन् 1968 से उत्पादन प्रारम्भ कर दिया था। जावर खानों से निकाले गए कच्चे जस्ते को शुद्ध जस्ते का रूप देने की प्रक्रिया हिन्दुस्तान जिन्क लिमिटेड के दूसरे विभाग देवारी संयंत्र में होती है। देवारी एक गांव का नाम है। यहाँ जस्ता परिद्रावक संयंत्र 5 भागों में कार्यरत है—

(1) फ्लूओसोलिड रोस्टर
(2) सलफ्यूरिक एसिड प्लांट
(3) लीचिंग और प्यूरीफिकेशन प्लांट
(4) इलेक्ट्रोलाइसिस और मेल्टिंग प्लांट, तथा
(5) सुपर फास्फेट प्लांट

कच्चा जस्ता जो कि खानों में उपलब्ध होता है, सर्वप्रथम 'रोस्टर' में भेजा जाता है। जहाँ माल को तपाकर जिंक सल्फाइड से जिंक आक्साइड तैयार किया जाता है। इस प्रक्रिया की दो उपलब्धियां हैं—सल्फर डाई आक्साइड नामक गैस तथा 'केलसीन' नामक एक अन्य रसायनयुक्त जस्ता सम्मिश्रण। सल्फर डाई आक्साइड गैस का उपयोग एक अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण सहयोगी उत्पादन सुपर फास्फेट नाम की रसायनिक खाद के निर्माण में किया जाता है। इसके लिए देवारी में ही संयंत्र लगा हुआ है। वर्तमान में यहाँ लगभग 1 लाख टन सुपर फास्फेट बनाया जा रहा है।

'रोस्टर' से प्राप्त 'कैलसिन' युक्त जस्ता मिश्रण से 'इलेक्ट्रोलाइट प्रोसिस द्वारा 'जिन्क कैथोड़' रूप में जस्ते की चद्दरें तैयार कर ली जाती हैं, जिन्हें बाद में एक भट्टी में पका कर शुद्ध जस्ते की ईंटे बनाई जाती हैं। यहाँ इस संयंत्र से जिन्क कैडमियम, चांदी, सिंगल सुपर फास्फेट व गन्धक का तेजाब आदि उत्पन्न किये जाते हैं। 1971-72 में हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड ने कुल 13,175 टन जस्ते का उत्पादन किया था, जो अब बढ़कर वर्तमान में

36,000 टन हो गया है। 1984-85 में इस संयंत्र को शुद्ध लाभ 83 लाख रुपये का हुआ था।

2. **हिन्दुस्तान कॉपर लिमिटेड,खेतड़ी**—झुन्झुनूं जिले में खेतड़ी गांव के निकट भारत सरकार ने संयुक्त राज्य अमेरिका की वेस्टर्न नैप इंजीनियरिंग कम्पनी की सहायता से तांबा शोधक संयंत्र नवम्बर, 1967 में लगाया। यह कम्पनी निम्न इकाईयों का संचालन करती है—(i) खेतड़ी तांबा कॉम्पलेक्स, (ii) भारतीय तांबा कॉम्पलेक्स, घाटशिला (बिहार) तथा (iii) पंजीकृत कार्यालय कलकत्ता में, दिल्ली, बम्बई व मद्रास में ब्रान्च कार्यालय। यहाँ 600 टन प्रतिदिन सल्फ्यूरिक एसिड तैयार करने वाला यन्त्र भी लगाया गया है जिससे सिंगल सुपर फास्फेट खाद बनाया जा सकता है।

खेतड़ी तांबा परियोजना में एक और सॉर्टर प्लाण्ट की स्थापना जून 1984 को की गई। जिसका मुख्य कार्य कन्सनट्रेटर की क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से उपयुक्त ताम्र अयस्क की छंटाई करना है। 31 मार्च, 1985 को इसकी अधिकृत पूंजी 250 करोड़ रुपये थी। 1984-85 में विलेस्टर कॉपर का उत्पादन 41021 टन हुआ था तथा इसके घाटे की राशि 3.14 करोड़ रु. रही थी। हिन्दुस्तान कॉपर लिमिटेड तांबे की कुल राष्ट्रीय मांग का बड़ा अंश पूरा करता है। तांबे के उत्खनन के कई कार्यक्रम तैयार किये गये है। परिणामस्वरूप वानवास भण्डार, खेतड़ी खान, कोलिहान खान, चांदमारी खानें, दरीबा खानें तथा बसन्तगढ़ की खानें हैं। मोसावोनी में गहराई तक खनन का कार्य चल रहा है।

3. **हिन्दुस्तान मशीन टूल्स निगम, अजमेर**—अजमेर में भारत सरकार ने विभिन्न किस्म की प्रीसिजन ग्राइडिंग मशीनों का निर्माण करने के लिए सन् 1967 में दी मशीन टूल फैक्ट्री की स्थापना की थी जिसका नाम बाद में बदल कर हिन्दुस्तान मशीन टूल्स निगम कर दिया गया। इसे चेकोस्लोवाकिया सरकार की सहायता से स्थापित किया गया है। इसमें अब गाइंडिंग मशीनों के यन्त्रों के अलावा कई अन्य प्रकार के यन्त्र तथा मशीनों का निर्माण किया जा रहा है। जो समस्त इंजीनियरिंग सुरक्षा व ऑटोमोबाइल उद्योगों में प्रयुक्त होते हैं। एच. एम. टी. की भारत में 6 इकाइयां कार्यरत है जिनमें अजमेर की इकाई का छठा स्थान है। इसकी अन्य इकाइयां घड़ी व डेयरी मशीनरी आदि से सम्बन्ध रखती है। इस प्रकार कुल 13 इकाइयां है। अजमेर में चचियावास (वैशालीनगर के समीप) घड़ियाँ बनाने का कारखाना भी कार्यरत है।

4. **इन्स्ट्रूमेन्टेशन लिमिटेड, कोटा**—इसकी स्थापना मार्च,1964 में हुई थी। इसके अंतर्गत स्टील, थर्मल पावर व केमिकल प्लाण्टों में काम आने वाले प्रोसेस-कण्ट्रोल के व अन्य औद्योगिक यन्त्रों का निर्माण होता है जैसे मेग्नेटिक इलेक्ट्रिक इन्स्ट्रूमेन्ट्स, इलेक्ट्रोनिक आटोमेटिक इण्डीकेट्र्स, रिकोर्डिंग एण्ड कण्ट्रोल इन्स्ट्रूमेण्ट्स, ट्रान्समीटर्स आदि। इसकी एक इकाई पालघाट (केरल) में स्थित हैं।

5. **सांभर साल्ट्स लिमिटेड, सांभर**—सन् 1964 में हिन्दुस्तान साल्ट्स की सहायक संस्था के रूप में इसे प्रारम्भ किया गया है। इस संस्थान के द्वारा कई तरह के नमक तैयार किये जाते है। सांभर साल्ट्स में 60% अंश हिन्दुस्तान साल्ट्स के तथा 40% अंश राजस्थान सरकार के है। गत वर्षों में इसे घाटा उठाना पड़ा।

6. **मॉडर्न बेकरीज इण्डिया लिमिटेड विश्वकर्मा औद्योगिक क्षेत्र, जयपुर**—यह मॉडर्न फूड इन्डस्ट्रीज (इण्डिया) लिमिटेड के अन्तर्गत है। यह 13 ब्रेड इकाईयां संचालित करती है।

स्मरण रहे कि केन्द्रीय सरकारों के उपक्रमों में विनियोगों का वितरण विभिन्न राज्यों के बीच अत्यधिक विषमता को दर्शाता है। वर्ष 1966-67 में केन्द्रीय सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में राजस्थान में केवल पूंजी विनियोजन लगभग 17 करोड़ रुपयों का था जबकि यह बढ़कर 1984-85 में लगभग 535 करोड़ रु. का हो गया है। वर्ष 1985 में राजस्थान का समस्त राज्यों के केन्द्रीय औद्योगिक विनियोगों में 1.4% अंश था। यह एक प्रेरणास्पद तथ्य है कि गत वर्षों में राजस्थान में केन्द्रीय सरकार की तरफ से औद्योगिक उपक्रमों में विनियोगों की राशि में वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय थर्मल पॉवर निगम द्वारा अन्ता (कोटा) में गैस-आधारित पॉवर प्रोजेक्ट को स्थापित करने पर राज्य में केन्द्रीय क्षेत्र में विनियोगों की राशि में और वृद्धि होगी।

गत वर्षों में राज्य में औद्योगिक उत्पादन बढ़ा है तथा इसमें विविधता भी आयी है। अब राजस्थान में

सिन्थेटिक यार्न, सीमेन्ट, रसायनों व उर्वरकों, टी. वी. सेट्स व पिक्चर ट्यूब्स, टायर व ट्यूब्स, इलेक्ट्रोनिक उपकरणों, जस्ता, तांबा, कॉपर फायल एण्ड लेमिनेट व अन्य कई प्रकार की वस्तुयें बनने लगी हैं। राजस्थान देश के इलेक्ट्रोनिक्स के उत्पादन में लगभग 5% का योगदान कर रहा है।

भिवाड़ी में मई, 1987 में Keihzle Indian Samay Ltd. द्वारा क्वार्ट्ज क्लॉक टाइमिंग मूवमेन्ट का उत्पादन करने के लिए एक प्रोजेक्ट की आधारशिला रखी गई है जिससे भिवाड़ी औद्योगिक क्षेत्र का विकास त्वरित गति से होगा। इसकी लागत 4.9 करोड़ रु. है जिसमें रीको की ईक्विटी 18.50 लाख रु. है। भिवाड़ी में ही अप्रेल 1987 में 'मल्टीलेयर फिल्म प्रोजेक्ट' का प्रारम्भ रीजेन्सी प्रोपर्टीज लिमिटेड ने किया है जिसमें खाद्य, तेल, वनस्पति आदि का पैक करने वाली फिल्म तैयार की जायेगी। इस प्रोजेक्ट हेतु रीको 90 लाख रु. तथा राजस्थान वित्त निगम 40 लाख रु. का सवधि ऋण दे रहा है। भिवाड़ी में ही राजस्थान टेलीफोन इण्डस्ट्रीज लिमिटेड (RTIL) की स्थापना स्वीडन की टेक्नोलॉजी के सहयोग से की गई है। इसमें इलेक्ट्रोनिक्स पुश बटन टेलीफोन उपकरण बनाये जायेंगे। निकट भविष्य में भारत सरकार द्वारा राजस्थान में सलादीपुर (सीकर) के पायराइट तथा झामर कोटड़ा (उदयपुर) के रॉकफास्फेट के भण्डारों के विदोहन हेतु उर्वरक कारखाने स्थापित करने का प्रावधान है।

(ब) राज्य सरकार के औद्योगिक उपक्रम

1. दी गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड, श्रीगंगानगर—इस उपक्रम का नाम जनवरी, 1957 से पूर्व बीकानेर औद्योगिक निगम लिमिटेड था। 1984-85 में इसकी अधिकृत पूंजी 2.5 करोड़ रुपये थी जो 50 रुपये प्रति शेयर के अनुसार 5 लाख हिस्सेदारों में विभक्त थी। इसकी परिदत्त पूंजी लगभग 2.2 करोड़ रुपये की थी। इसके अन्तर्गत निम्न चार इकाइयां कार्यरत हैं।

(i) **शुगर फैक्ट्री, श्रीगंगानगर**—जिसमें गन्ने व चुकन्दर से चीनी का उत्पादन किया जाता है।।

(ii) श्रीगंगानगर एवं अटक में स्थित डिस्टलरीज व राज्य के अन्य क्षेत्रों में स्थित मदिरा गृह। डिस्टलरीज में शोधित प्रासव (Rectified Spirit) का उत्पादन होता है तथा लाईसेन्स प्राप्त व्यापारी मदिरा गृहों से मदिरा भी क्रय कर सकते हैं।

(iii) कोटा व उदयपुर संभाग में जनजाति क्षेत्रों में देशी मदिरा की दुकानों का संचालन भी इसी के द्वारा होता है।

(iv) **हाइटेक ग्लास फैक्ट्री, धौलपुर** में कांच का सामान, बोतलें, प्रयोगशालाओं में काम आने वाले उपकरण तथा रेल्वे के जार्स आदि बनाये जाते हैं। इसे 1 जुलाई, 1986 से लीज पर चलाया जा रहा है। यह मदिरा विभाग के लिये बोतलों का निर्माण भी करता है।

प्रायः यह उपक्रम लाभ अर्जित करता रहा है लेकिन गत तीन वर्षों अर्थात 1985-1988 में इसे पानी की कमी, अकाल व पायरोला नामक कीड़े के कारण यह अपनी क्षमता के अनुसार चीनी का उत्पादन नहीं कर सका। आशा की जाती है कि वर्ष 1988-89 में इसे लगभग 12 लाख रुपयों का लाभ होगा।

2. राजस्थान स्टेट केमिकल वर्क्स, डीडवाना—इस के अन्तर्गत तीन इकाइयां कार्यरत हैं—

(i) **सोडियम सल्फेट वर्क्स**—नमक के क्यारों में शीत ऋतु में सल्फेट अलग होकर धीरे-धीरे परतों में जम जाता है और जब 10 या 15 वर्षों में इसकी परत मोटी हो जाती है तो इसे क्रूड़ सोडियम सल्फेट कहा जाता है। इसका उपयोग सल्फेट सल्फाइड के उत्पादन हेतु विभागीय सल्फाइड इकाई द्वारा किया जाता है।

(ii) **सोडियम सल्फेट संयन्त्र**—ब्राइन से सोडियम सल्फेट निकाल कर शुद्ध नमक निर्माण की योजना 1960 से प्रारम्भ की गई। सितम्बर, 1981 से इसे 33.91 लाख रुपये के वार्षिक पट्टे (लीज) पर मेसर्स डीडवाना केमिकल्स प्राइवेट लिमिटेड को दिया गया लेकिन वर्तमान में यह विवाद के कारण बन्द पड़ा हुआ है।

(iii) **सोडियम सल्फाइड फैक्ट्री**—क्रूड सल्फेट व कोयले की रसायनिक प्रक्रिया से सोडियम सल्फाइड निर्मित होता है। इस का प्रारम्भ 1966 में हुआ। सोडियम सल्फाइड चमड़ा व रंगाई उद्योग में प्रयुक्त किया जाता है।

3. राजकीय लवण स्रोत, डीडवाना व पचपदरा—राजकीय लवण स्रोत, डीडवाना जो केन्द्र सरकार द्वारा संचालित था, को सन् 1960 में राज्य उद्योग विभाग

को तथा उद्योग विभाग ने सन् 1964 में राजकीय उपक्रम विभाग को हस्तान्तरित कर दिया। इस स्रोत का विस्तार 1910 एकड़ क्षेत्र पर है जहां लगभग 400 क्यारों पर पुश्तैनी लोगों द्वारा तथा 800 क्यारों पर विभाग द्वारा 10 वर्ष के पट्टे पर नमक का निर्माण किया जा रहा है। क्यारों में एकत्र पानी रिसकर नमक उत्पादन क्षेत्रों में आता है जिसे ब्राइन कहते हैं। डीडवाना क्षेत्र में ब्राईन से नमक के अतिरिक्त सोडियम सल्फेट भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है जिसका उपयोग खाने में नहीं होता। इस स्रोत से लगभग 85% तक अखाद्य नमक का निर्माण होता है। विभाग द्वारा 1985-86 वर्ष में 15.60 लाख क्विंटल का उत्पादन तथा 12.50 लाख क्विंटल का विक्रय किया गया।

बाड़मेर जिले की पचपदरा तहसील के 85 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत राजकीय लवण स्रोत पचपदरा की वार्षिक उत्पादन क्षमता 6 लाख क्विंटल है। नमक का उत्पादन पुश्तैनी रूप से खारवाल लोग करते हैं। वर्ष 1985-86 में उत्पादन 4.90 लाख क्विंटल तथा विक्रय 3.85 लाख क्विंटल रहा।

4. **स्टेट वूलन मिल्स, बीकानेर**—इस मिल की स्थापना सन् 1960 में ऊनी धागा बनाने के लिए की गई। राजकीय उपक्रम विभाग में इस के हस्तान्तरित हो जाने के पश्चात यह मिल 11 अप्रेल, 1968 से निरन्तर घाटे में चलने के फलस्वरूप इसे जून, 1976 को मेसर्स जगन्नाथ जीवतमल वूलन मिल्स प्राइवेट लिमिटेड को 10 वर्ष के लिए 18.12 लाख रुपये वार्षिक लाइसेन्स राशि पर पट्टे पर दे दिया गया। पट्टा राशि के न मिलने के कारण पुनः अप्रेल, 1986 से न्यायालय के आदेश से इसे अधिग्रहीत कर लिया गया। वर्तमान में इसके विक्रय के प्रयास किये जा रहे हैं। इस मिल में तकुओं की संख्या 1200 है।

5. **राजस्थान स्टेट टेनरीज लिमिटेड, टोंक**—सन् 1971 में पंजीकृत इस उपक्रम का कार्यालय जयपुर में तथा फैक्ट्री टोंक में स्थित है। इस की उत्पादन क्षमता 2500 खालें प्रतिदिन हैं। यहां लेदर फोम, स्किन। हाइडस व सोल लेदर बनाये जाते है। मुख्य उत्पाद के रूप में भेड़ की खाल से निर्मित चमड़ा है जिसका विक्रय देश-विदेश में होता है। चमड़े का मुख्यतया उपयोग चमड़े के वस्त्र, दस्तानें तथा बैग्स बनाने में किया जाता है तथा उत्पादन का 50% माल निर्यात कर दिया जाता है। वर्ष 1986-87 में 5.10 लाख वर्ग फुट चमड़े का उत्पादन तथा 108.5 लाख रुपये का विक्रय किया गया।

6. **चूरू-लाडनू की वर्स्टेड स्पिनिंग मिल्स**—इन दोनों मिलों को राजस्थान लघु उद्योग निगम ने स्थापित किया है जिनमें ऊन की कताई की जाती है। चूरू में राजस्थान वूल कॉम्बर्स नामक इकाई भी इसी निगम ने स्थापित की है।

7. **फ्लोर्सपार बेनिफिशियेशन संयन्त्र-मांड़ों की पाल, डूंगरपुर**—यह संयन्त्र राजस्थान राज्य औद्योगिक एवं खनिज विकास निगम के द्वारा स्थापित किया गया है जो अब राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व विनियोग निगम लिमिटेड अथवा रीको के अन्तर्गत कार्यरत है। यहां स्टील एवं फाऊन्ड्री कार्य में प्रयुक्त होने वाले एसिड ग्रेड फ्लोर्सपार को तैयार किया जाता है। अतः इससे विदेशी मुद्रा की बचत होती है।

8. **सेन्ट्रल इण्डिया मशीनरी मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी (CIMMCO), भरतपुर**—इस कारखाने की स्थापना सन् 1957 में की गई थी। इस की वैगन-उत्पादन करने की वार्षिक क्षमता लगभग 6000 वैगन है। भरतपुर में ही रेल्वे कोच फैक्ट्री की स्थापना के प्रयास सरकारी स्तर पर जारी है।

राजस्थान में औद्योगिक विकास में तीव्र गति लाने हेतु सरकार ने निम्न निगमों का गठन किया है जिन्होंने इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा अभी भी जिनके प्रयास जारी है।

1. **राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एवं विनियोजन निगम (RICO)**—राजस्थान सरकार ने 28 मार्च, 1969 को इसकी स्थापना की थी लेकिन नवम्बर, 1979 में खनिज विकास निगम को इससे पृथक कर दिया गया। वर्तमान में इसका कार्य क्षेत्र केवल औद्योगिक विकास तक ही सीमित हैं। अतः इस निगम का मुख्य उद्देश्य उद्योगों की स्थापना में सहायता करना तथा औद्योगिक विकास हेतु अनुकूल सुविधायें उपलब्ध करवाना है। इस की स्थापना केवल 5 करोड़ रुपये की

प्रारम्भिक पूंजी से की गई थी। वर्तमान में रीको निम्न कार्यों में संलग्न है—

(i) नवीन औद्योगिक क्षेत्रों व बस्तियों का निर्माण करवाना।

(ii) औद्योगिक इकाईयों के शेयर क्रम करना उनका अभिगोपन करना।

(iii) औद्योगिक उपक्रमों को तकनीकी मार्ग दर्शन प्रदान करना, उनकी परियोजनाओं के प्रतिवेदन तैयार करवाना।

(iv) उद्यमियों को विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन, सुविधाएं एवं रियायतें देना।

(v) औद्योगिक परियोजनाओं का संचालन करना।

(vi) नवीन उद्योगो के लिए प्रवर्तक के रूप में कार्य करना।

स्मरण रहे कि सितम्बर, 1976 में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के द्वारा इसे वित्तीय संस्था के रूप में मान्यता प्रदान करने पर इसके विनियोग सम्बन्धी क्रियाओं में बढ़ोतरी हुई है। रीको संयुक्त क्षेत्र की परियोजनाओं में 26% शेयर पूंजी अंश लेता है तथा सहायता प्राप्त परियोजनाओं की 10% से 15% तक शेयर पूंजी अंश अधिग्रहीत करता है और 3 करोड़ रुपयों से अधिक की परियोजनाओं में यह उनकी इक्विटी (Equity) में शामिल होता है।

रीको की स्वयं तीन परियोजनाएं-टी.वी. घड़ी व टू-वे रेडियो संचार-उपकरणों आदि है। टी.वी. इकाई में टेलीविजन सेट्स का उत्पादन जैसे 51 सेमी तरंग, 51 सेमी. रंगीन व 37 सेमी. मिनी टीवी सेट्स का होता है। रीको की वाच एसेम्बली ने लाउडस्पीकर, डिजीटल क्लाक, विद्युत इमरजेन्सी लाइट्स आदि के निर्माण की योजना तैयार की है। सन् 1986 तक रीको की कुल 155 परियोजनाओं के अन्तर्गत उत्पादन कार्य हो रहा था। रीको ने अलवर नगर को एक औद्योगिक नगर का स्वरूप प्रदान करने हें काफी सहायता की है। रीको की सहायता इकाईयों में (i) मोदी एल्केलीज एण्ड केमिकल्स लिमिटेड, अलवर (ii) केल्विनेटर्स आफ इण्डिया लिमिटेड, अलवर (iii) अशोक लीलेण्ड, अलवर, (iv) अजय पेपर मिल्स, भिवाड़ी, (v) इण्डेग रबर लिमिटेड, भिवाड़ी तथा (vi) मंगलम सीमेन्ट लिमिटेड मोडक आदि मुख्य हैं।

2. राजस्थान राज्य वित्त निगम (RFC)—इस निगम की स्थापना 8 अप्रैल, 1955 को लघु एवं मध्यम उद्योगों को उन के विकास हेतु दीर्घकालीन वित्तीय सुविधायें प्रदान करने के लिए की गई थी। इसकी प्रारम्भिक अधिकृत पूंजी 3 करोड़ रुपये थी जो 100-100 के 3 लाख पूर्णदत्त अंशों में विभाजित है जिसमें से 1.5 करोड़ रुपये के 15 लाख अंश निर्गमित किये गये हैं। यह 5 वर्ष की अवधि के लिए अपनी चुकता पूंजी के बराबर जमाऐं भी प्राप्त कर सकता है।

इस निगम का कार्य एक कार्यकारिणी, एक सलाहकार परिषद तथा एक संचालक मण्डल द्वारा चलाया जाता है। इस निगम का अध्यक्ष निजी अंशधारियों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों में से होता है।

इस निगम को निम्न कार्य करने का अधिकार अधिनियम की धारा 25 के अन्तर्गत प्राप्त हैं—

(i) औद्योगिक संस्थानों द्वारा निर्गमित अंशों, स्टॉक, बाण्ड तथा ऋण पत्रों का अभिगोपन करना।

(ii) औद्योगिक संस्थानों के ऋण तथा अग्रिम स्वीकार करना तथा उनके ऋण पत्रों में धन लगाना।

(iii) राज्य में औद्योगिक संस्थाओं द्वारा लिए गये ऐसे ऋण पत्रों की गारन्टी देना जो 20 वर्षों से अधिक के न हो तथा जिन्हें बाजार में बेचा गया हो।

यह निगम निर्माण तथा उत्पादन के कार्य, वस्तु संरक्षण के कार्य, वस्तु की तैयारी (Processing) के कार्य, खनन कार्य तथा विद्युत शक्ति अथवा अन्य प्रकार की शक्ति के कार्यों से जुड़ी संस्थाओं, फर्मों, कम्पनियों तथा व्यक्तियों को आर्थिक सहायता देता है। यह कम से कम दस हजार और अधिक से अधिक पन्द्रह लाख रुपये का ऋण एक औद्योगिक संस्थान को देने में सक्षम है। एक करोड़ से अधिक पूंजी वाले लघु औद्योगिक संस्थानों को यह ऋण प्रदान नहीं करता है। वर्ष 1986-87 में निगम से 72 करोड़ रुपयों के ऋण स्वीकृत किये तथा 52 करोड़ रुपये का वितरण किया। राज्य के विभिन्न हस्त व शिल्प कलाओं में निपुण लोगों को प्रोत्साहन के

लिए राजस्थान वित्त निगम की ओर से शुरू की गई शिल्प वाड़ी योजना पर वर्ष 1988-89 में 5 करोड़ रुपये खर्च किये जायेंगे तथा सौ शिल्प वाड़ी केन्द्र खोले जायेंगे।

राज्य के वित्त विभाग व वित्त निगम में अन्तर—राज्य सरकार का वित्त विभाग प्रदेश की वित्तीय योजनाओं का न केवल क्रियान्वयन करता है बल्कि समस्त वित्तीय संस्थाओं पर नियंत्रण भी रखता है। वित्त विभाग पर सरकारी नियंत्रण होता है तथा इसके कार्यों का उत्तरदायी वित्तमन्त्री होता है।

वित्त निगम एक स्वायत्तशासी निगम है जिसका गठन राज्य वित्त निगम अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत हुआ है। इसका मुख्य कार्य औद्योगिक विकास हेतु लघु एवं मध्यम उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इसके आधीन राज्य वित्त विभाग कार्य करता है।

3. राजस्थान लघु उद्योग निगम (RAJSICO)—इस की स्थापना 3 जून, 1961 को राज्य की लघु इकाईयों एवं हस्तशिल्पियों को सहायता, प्रोत्साहन तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के समुचित विपणनको ध्यान में रखते हुए की गई थी। प्रारम्भ में इसकी पूंजी 2करोड़ रुपये थी जबकि 31 मार्च, 1987 को निगम की अधिकृत पूंजी 5 करोड़ रुपये तथा प्रदत्त पूंजी 3.83 करोड़ रुपये थी। निगम द्वारा निम्न कार्य प्रमुख रूप से किये जाते हैं—

(i) लघु उद्योग इकाईयों के लिए विभिन्न कच्चे मालों का उपार्जन एवं वितरण।

(ii) अपने एम्पोरियमों के द्वारा हस्त-शिल्प के प्रसार प्रचार व विपणन की व्यवस्था करना।

(iii) सांगानेर एयरपोर्ट पर स्थित एयर कारगो का संचालन कर हस्तशिल्पियों को सीधे निर्यात की सुविधा प्रदान करना।

(iv) लाडनूं तथा चूरू में स्थित मिलों में ऊन की कताई करवाना।

(v) टोंक स्थित बीड़ी फैक्ट्री द्वारा मयूर बीड़ी का उत्पादन करना।

(vi) उत्पादकों तथा दस्तकारों को वित्तीय सहायता एवं अग्रिम देना।

(vii) प्रशिक्षण की व्यवस्था करना एवं नये डिजाइनों को विकसित करवाना।

(viii) उत्पादन इकाइयों का संचालन करना। जयपुर में फर्नीचर बनाने का केन्द्र स्थापित किया गया है।

राजस्थान की हस्तकला का पत्रिका के माध्यम से प्रचार करना आदि भी इसके कार्य क्षेत्र में शामिल हैं।

4. राज्य उपक्रम निगम—इस के संरक्षण में राज्य की अनेक लघु एवं मध्यम औद्योगिक इकाइयां कार्यरत है जैसे राजकीय लवण स्रोत, पचपदरा व डीडवाना, राजस्थान स्टेट टेनरीज लि. टोंक, राजस्थान स्टेट केमिकल वर्क्स, डीडवाना, दी गंगानगर शुगर मिल्स लि. श्रीगंगानगर, स्टेट वूलन मिल्स, बीकानेर। इनके अतिरिक्त काफी संख्या में हस्तकला, चमड़े का कार्य, पत्थर का सामान बनाने के कारखाने भी इस विभाग की देखरेख में कार्यरत है।

राजस्थान की उपरोक्त वित्तीय संस्थाओं के अतिरिक्त अखिल भारतीय वित्तीय संस्थानों के द्वारा भी राज्य के लघु एवं मध्यम उद्यमियों को वित्तीय सहायता उपलब्ध करवायी जाती है। इस दृष्टि से भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFC), भारतीय औद्योगिक साख व विनियोग निगम तथा भारतीय औद्योगिक विकास बैंक प्रमुख है।

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम ने राजस्थान को 1948-86 की अवधि में लगभग 202 करोड़ रुपयों की वित्तीय सहायता स्वीकृत की जो इस निगम की कुल सहायता का 6.2% है।

भारतीय औद्योगिक साख व विनियोग निगम ने वर्ष 1986 तक राज्य को लगभग 216 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता प्रदान की जो इसकी कुल सहायता का 4.7 है।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने वर्ष 1987 तक राज्य को लगभग 1028 करोड़ रुपये की सहायता स्वीकृत की है जो उसकी कुल सहायता का 4.4% है। बैंक द्वारा नाबार्ड के साथ वर्ष 1988-89 में राज्य 12500 लघु उद्योग शुरू करने की योजना है।

लीड बैंक योजना के अन्तर्गत समन्वित विकास हेतु राजस्थान में बैंक ऑफ बड़ौदा, स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर, यूको बैंक, पंजाब नेशनल बैंक तथा सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया आदि अपने-अपने क्षेत्रों में पर्याप्त वित्तीय ससाधन उपलब्ध कराने का कार्य कर रहे हैं।

देश की विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं ने राजस्थान को अन्य राज्यों की अपेक्षा काफी कम मात्रा में वित्तीय सहायता प्रदान की है। इसको दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार ने अपने औद्योगिक क्षेत्र में प्राथमिकताओं के क्रम को निश्चित कर दिया है और क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करने तथा बीमार लघु औद्योगिक इकाइयों को पुनः प्रारम्भ करने हेतु विशेष महत्व दिया है।

इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में किये गये नियोजित प्रयासों के फलस्वरूप प्राय. सभी उद्योगों के उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक श्रमिकों की संख्या में वृद्धि, पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास व औद्योगिक क्षेत्रों में वृद्धि परिलक्षित होती है।

कुटीर एवं लघु उद्योग

आप जब वैज्ञानिक अनुसंधानों व आविष्कारों के फलस्वरूप मनुष्य वृहत्तर उद्योगों के क्षेत्र में इतना विकास कर चुका है, तब कुटीर उद्योगों की कल्पना करना नितान्त असंगत प्रतीत होता है। अगर मनुष्य वर्तमान औद्योगिक ढांचे पर दृष्टिपात करे तो यह स्पष्ट होता है कि एक ओर तो बड़े उद्योगों का बड़ी शीघ्रता के साथ प्रसार हो रहा है और दूसरी ओर बेकारी की समस्या विकट होती जा रही है। इस विकट समस्या से निपटने का एकमात्र उपाय है कि राज्य में कुटीर उद्योगों की तरफ समुचित ध्यान दिया जाये।

राजस्थान में कुटीर एव लघु उद्योगों का और भी अधिक महत्व है क्योंकि यह राज्य औद्योगिक एवं कृषि दोनों क्षेत्रों में काफी पिछड़ा हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों के विकास के साथ-साथ गांवों की भी उन्नति होती हैं और वे धीरे-धीरे नगर का स्थान ग्रहण कर लेते हैं। फलस्वरूप ग्रामीण श्रमिकों का शहरों की ओर जाना रुक जाता है और श्रमिक प्रवसन की समस्या भी खड़ी नहीं होती। कुटीर लघु उद्योगों में पूंजी का निवेश कम करना पड़ता है जिसमें राज्य में बेकार पड़ी हुई पूंजी तथा श्रमिक दक्षता का प्रयोग हो जाता है। इन उद्योगों में वितरण लागत कम आने के कारण उपभोक्ताओं को उत्पाद उचित कीमतों पर उपलब्ध हो जाते हैं।

राज्य सरकार ने लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया है जहाँ 1969-70 में पंजीकृत लघु औद्योगिक इकाईयों केवल 8216 थी उनकी संख्या 1985-86 में बढ़कर 54,020 हो गई। इन लघु एवं कुटीर उद्योगों में खादी उत्पादन का नया कीर्तिमान स्थापित हुआ है जहाँ 1976-77 में खादी एवं ग्रामोद्योग इकाईयों के उत्पादन का मूल्य 13.7 करोड़ रुपये था वह अब बढ़कर लगभग 42 करोड़ से भी अधिक हो गया है। दोनों में लगभग 3.9 लाख श्रमिकों को रोजगार प्राप्त है।

राज्य सरकार लघु उद्योगों की स्थापना के लिए अनेक रियायतें देती हैं। लघु उद्योगों के विकास के लिए लघु उद्योग निगम स्थापित किया गया तथा वित्तीय साधनों की पूर्ति करने के लिए राज्य वित्त निगम भी कार्यरत हैं। राज्य में इन उद्योगों के विकास का परिचय इससे होने वाली आय से स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ 1954-55 में सरकार को केवल 6 लाख रुपये की आय प्राप्त होती थी वही अब बढ़कर लगभग 46 लाख रुपये की हो गई है।

राजस्थान के लघु एवं कुटीर उद्योग राज्य के सभी भागों में फैले हुए हैं। यह विभिन्न स्रोतों जैसे कृषि, खनिज, वन, पशु तथा रसायन आदि पर आधारित हैं। अत: इनका अध्ययन करने से पूर्व इनका आशय समझ लेना आवश्यक है।

कुटीर उद्योग से आशय ऐसे उद्योग से है जिसे मुख्य रूप से श्रमिक द्वारा अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से भू-गृहादि में पूर्णकालिक अथवा अंशकालिक व्यवसाय के रूप में चलाया जाता हो तथा कारखाना अधिनियम 1948 उस पर लागू न होता हो। कुटीर उद्योग में डेयरी फार्मिंग, मधुमक्खी तथा मुर्गीपालन भी सम्मिलित है।

लघु उद्योग से तात्पर्य ऐसे उद्योग से है जो उद्योग श्रमिक के भू-गृहादि में नहीं चलाया जाता हो, जिसमें पूंजी का निवेश 10 लाख रुपये से कम हो, श्रमिकों की संख्या 10 से 50 तक हो तथा राज्य सरकार द्वारा समय

समय पर निर्देश दिये जाने पर लघु उद्योगों में काम आने वाले सहायक तथा अंगभूत उपकरणों का उत्पादन भी करें।

सरकारी स्तर पर लघु-स्तरीय उद्योगों को दो भागों में बांटा गया है—(i) परम्परागत लघु उद्योग—इस प्रकार के उद्योग ग्रामीण एवं अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों में लगाये जाते हैं। इनमें विनियोग कम होता है फलस्वरूप अधिकतर ये अल्पकालीन रोजगार प्रदान करते हैं। इनमें खादी एवं हाथकर्घा, हस्तकला, नारियल जटा, रेशम कीड़ा पालन, ग्रामीण उद्योग शामिल है। (ii) आधुनिक लघु उद्योग—ऐसे उद्योग प्रायः शहरों, बड़े औद्योगिक केन्द्रों तथा इनके समीपीय शहरों में अवस्थित होते है। इनमें शक्ति चालित मशीनों तथा परिष्कृत उत्पादन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार इनमें शक्ति चालित करघा, मशीन व पुर्जे बनाने वाली इकाइयां, इन्जिनियरिंग वस्तुएँ तथा आधुनिक मशीनों के द्वारा उत्पादन करने वाली लघु इकाइयों को सम्मिलित करते है।

कृषि पर आधारित लघु एवं कुटीर उद्योग

तेल घाणी उद्योग—राज्य के जयपुर, भरतपुर, सवाईमाधोपुर, श्रीगंगानगर, कोटा, बून्दी, अजमेर और पाली जिलों में तिलहन का उत्पादन काफी पर्याप्त मात्रा में होने के कारण इन जिलों में तेल कोल्हू या घाणी द्वारा निकाला जाता है। यह उद्योग लघु उद्योगों में सम्मिलित है। भरतपुर का सरसों ईंधन छाप तेल काफी मशहूर हैं। अजमेर में मूंगफली का तेल निकालने के कई कारखाने हैं।

गुण खाण्डसारी उद्योग—राज्य में गन्ने से गुड़ खाण्डसारी बनाने का कार्य एक कुटीर उद्योग के रूप में बहुत प्रचलित है। इसमें करीब 55 हजार व्यक्ति लगे हुए हैं।

दाल बनाना—राज्य में साबुत दानों से दालें जैसे अरहर, मूंग, उड़द व मोठ आदि की छिलकेदार दालें बनाने का कार्य स्त्रियां अपने घरों अथवा दुकानों पर करती हैं। मशीनों के द्वारा दालों का मोगर तैयार किया जाता है। ये उद्योग अजमेर, कोटा, उदयपुर, गंगानगर, चित्तौड़गढ़, पाली, भीलवाड़ा, अलवर, भरतपुर व टोंक आदि जिलों में चलते हैं।

हाथ कर्घा उद्योग—राज्य में यह उद्योग महत्वपूर्ण है। राज्य में लगभग 1.29 लाख कर्घे चल रहे हैं जिन पर लगभग 5.4 लाख व्यक्तियों की उदर-पूर्ति निर्भर करती है। इनमें खादी, चादर, कैशमेन्ट, तौलिये, मोटा कपड़ा, साड़ी आदि तैयार किये जाते हैं। कोटा में मसूरिया साड़ी, जोधपुर व जयपुर में चुनरियाँ व लहरिया साड़ियां बनाई जाती है। गोविन्दगढ़, करौली एवं जालोर का बना हुआ कपड़ा भी प्रसिद्ध है। गुढ़ा, बालोतरा, फालना, सुमेरपुर आदि स्थानों में खेसला, धोती व टुकड़ी तथा उदयपुर व जयपुर में पगड़ियाँ प पेचे अच्छे तैयार किये जाते हैं। अतः इन क्षेत्रों का इन विशिष्ट प्रकार के वस्त्र उत्पादन में अपना प्रमुख स्थान है।

गोटा उद्योग—यह उद्योग जयपुर, अजमेर और खन्डेला में व्यवस्थित रूप से सक्रिय है तथा अच्छी किस्म के गोटे का उत्पादन इनमें किया जाता है।

खादी उद्योग—राजस्थान में खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड की स्थापना की गई है जो गांव के जुलाहों को खादी बनाने के लिए सभी प्रकार की सुविधायें जुटाता है। फलस्वरूप राज्य में खादी का उत्पादन काफी होने लगा है।

बंधाई छपाई व रंगाई—रंगाई उद्योग का कार्य पाली, पीपाड़, सांगानेर तथा कोटा में, बंधेज का कार्य जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, कोटा, कुचामन व नागौर में तथा छपाई का कार्य जोधपुर, जयपुर, भरतपुर व चित्तौड़गढ़ में किया जाता है। रंगाई के कार्य को प्रायः पुरुष तथा बंधाई के कार्य को स्त्रियां करती हैं।

दरी व निवार उद्योग—राजस्थान की जेलों में सुन्दर, मजबूत तथा बढ़िया दरियां बनाई जाती है। राज्य में अनेक स्थानों पर मुसलमान कारीगरों द्वारा सुन्दर व मजबूत दरियां बनाई जाती है। निवार बनाने का कार्य अनेक नगरों व शहरों में तथा साथ ही बेसिक पाठशालाओं में भी किया जाता है।

पशुओं पर आधारित कुटीर एवं लघु उद्योग

चर्म उद्योग—भारत में राजस्थान का स्थान पशु संख्या की दृष्टि से तृतीय है। चमड़े को साफ करके

मद्रास, कानपुर, आगरा व बाटानगर को भेज दिया जाता है। गांवों तथा नगरों में चमड़े से जूते, जूतियां, चरस, मशक, बटुए व घोड़े की जीन, अटेचियां, थैले तथा कई अन्य प्रकार की वस्तुएं बनाई जाती है। जोधपुर, जयपुर व भीनमाल की जूतियां अपनी सुन्दरता तथा मजबूती के कारण बहुत प्रसिद्ध हैं। चमड़े की इन जूतियों को **नागरी और मौजड़िया** कहते हैं। अन्य वस्तुओं में पर्स, बैल्ट, बैग, आसन व ऊंट की खाल के अन्य सामान शामिल है, जो बीकानेर में बनाये जाते हैं। चमड़ा कमाने के पदार्थ राजस्थान में उपलब्ध हैं, अतः इस उद्योग के सुधार तथा विकास के लिए सरकार प्रयत्नशील है।

हड्डी पीसना—राजस्थान में पशुओं की संख्या अधिक है, इसलिए जयपुर, जोधपुर, पलाना, कोटा तथा घोघुण्डा
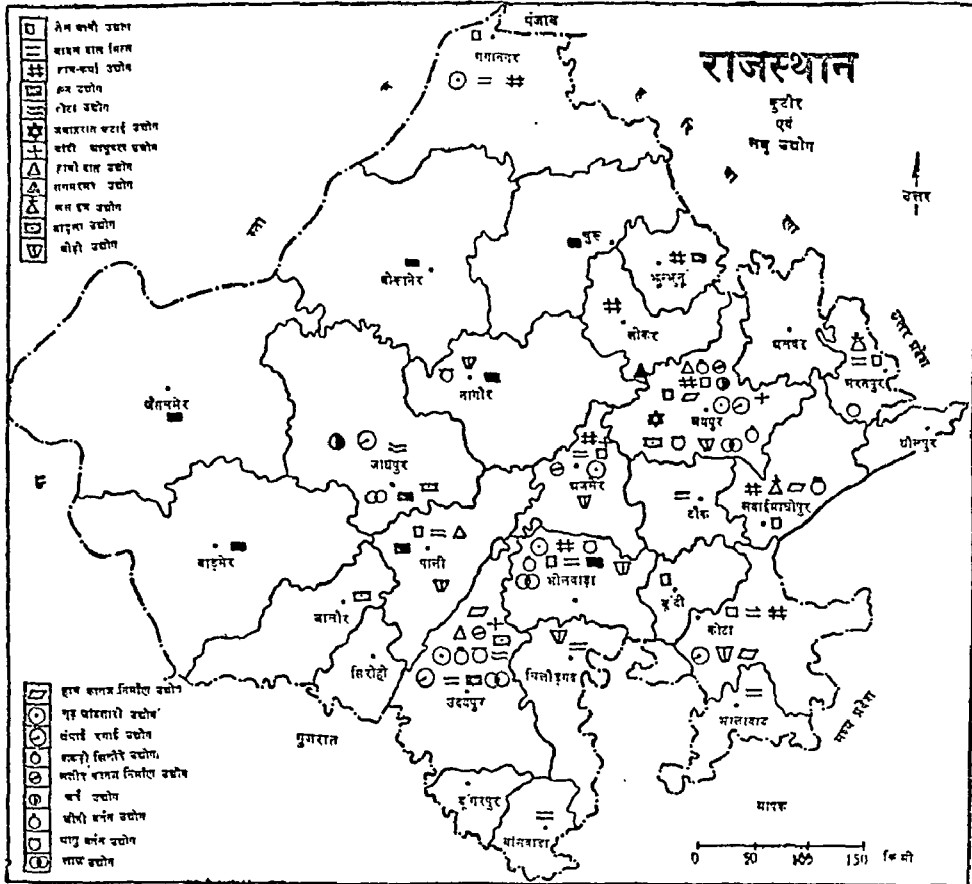
राजस्थान के कुटीर एवं लघु उद्योग

में हड्डी पीसने के कारखाने हैं।

हाथी-दांत (Ivory Work) का काम—जयपुर का हाथी-दांत कार्य पूरे देश में विख्यात है। पाली व जोधपुर में भी यह काम होता है। इनसे बनी सुन्दर चीजों का निर्यात विदेशों को भी किया जाता है।

ऊनी वस्त्र उद्योग—राजस्थान में भेड़ों की संख्या 134 लाख है जिनसे प्राप्त ऊन का उपयोग न केवल कारखानों द्वारा किया जाता है बल्कि लघु एवं कुटीर उद्योग के रूप में स्थानीय लोगों के द्वारा भी किया जाता है। राज्य में उनके नमदे, कम्बल, आसन, स्वेटर, घोड़ों व ऊंटों की जीन तथा मोटा ऊनी कपड़ा बनाया जाता है। बीकानेर, चूरू, लाडनूं में ऊनी मिलें लघु उद्योग के अन्तर्गत कार्यरत हैं तथा जोधपुर, जैसलमेर व जयपुर भी ऊनी वस्त्र के प्रमुख केन्द्र हैं।

खनिज पदार्थों पर आधारित उद्योग

संगमरमर उद्योग—राजस्थान में उत्तम कोटि का

सफेद, गुलाबी व धारीदार संगमरमर विभिन्न स्थानों पर मिलता है। मकराना (नागौर) का संगमरमर विश्व प्रसिद्ध है। सिरोही जिले में मोरथला व आबूरोड, अलवर जिले में झिरी व खोह दरवा, जयपुर जिले में राजनगर तथा अजमेर जिले में दौलतपुरा, झाक, कनवालाई, कायमपुरा आदि स्थानों पर संगमरमर पत्थर का कार्य किया जाता है।

संगमरमर पत्थर के कप, खिलौने, चकले, मेजों के ऊपरी पाट, चिप्स एवं पाऊडर, मूर्तियाँ तथा अन्य कई उपयोगी वस्तुएं कुटीर उद्योगों में बनायी जाती है। जयपुर में बनायी जाने वाली मूर्तियाँ काफी विख्यात हैं। इनका निर्यात भी किया जाता है।

पीतल-तांबे व स्टील के वर्तन—जयपुर का पीतल का काम बहुत सुन्दर एवं विख्यात है। इस कार्य में प्राय: मुसलमान कारीगर ही संलग्न हैं। जयपुर में पीतल पर पच्चीकारी व रंगाई का बहुत अच्छा काम होता है जो विदेशी मुद्रा अर्जित करने में विशेषतया महत्वपूर्ण है। जयपुर, पाली, जोधपुर, भरतपुर तथा किशनगढ़ में पीतल व तांबे के वर्तन बनाने के कारखाने हैं। किशनगढ़ में स्टील के वर्तन भी बनाये जाते हैं। कांसे के वर्तन भीलवाड़ा में कुछ परिवारों द्वारा बनाये जाते हैं।

सोना-चांदी के आभूषण व वर्तन—राज्य के प्राय: सभी नगरों में चांदी व सोने के आभूषण बनाये जाते हैं। अजमेर में सोने-चांदी के वर्तन बनाने का एक कारखाना है। जयपुर में सोने-चांदी के वर्तनों व जेवर पर मीने तथा जवाहरात का बढ़िया काम होता है।

लोहा उद्योग—राजस्थान में लोहे की कढ़ाई, चाकू छुरे, कैंची, उस्तरा, अंगीठी, कृषि औजार आदि बनाने का कार्य लुहार करते हैं। राजस्थान में एक घुमक्कड़ जाति के "गाडिये लौहार" भी स्थान-स्थान पर घूम कर इस कार्य को करते हैं।

वनों पर आधारित उद्योग

लकड़ी का कार्य—लकड़ी से खिलौने बनाने के कारखानें उदयपुर, सवाईमाधोपुर तथा जोधपुर में स्थित हैं। बांस से पंखे, टोकरियां, चिकें प्राय: समग्र राजस्थान के शहरों तथा नगरों में बनाई जाती हैं। ढाक के पत्तों से दोने, पत्तल आदि बनाये जाते हैं।

लोक वाद्य यन्त्रों जैसे ढ़ोल, ढप, नगाड़े आदि में रोहेडा और शीशम की लकड़ी तथा सितार व हारमोनियम में शहतूत व सागवान की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है।

बांस उद्योग—इस उद्योग के अन्तर्गत टोकरियां, हल्की मेजें व कुर्सियां, चिकें आदि बनायी जाती है। जयपुर, अजमेर व जोधपुर जिलों के ग्रामवासी इन कार्यों में संलग्न है।

कागज बनाना—कोटा में एक स्ट्रावोर्ड का कारखाना है। घोसुण्डा में हाथ से कागज बनाया जाता है। राजस्थान में उदयपुर, बांसवाड़ा, चित्तौड़गढ़, कोटा व अजमेर आदि क्षेत्रों में बांस अथवा घास प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के कारण इन जिलों में कागज के कारखाने सफलतापूर्वक चलाये जा सकते हैं।

बीड़ी उद्योग—राजस्थान में अजमेर, ब्यावर, कोटा, चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा व जोधपुर आदि नगरों में तेन्दू की पत्तियों से बीड़ियां बनाई जाती हैं। प्राय: यह कार्य स्त्रियों के द्वारा किया जाता है। बीड़ी बनाने के कुछ छोटे कारखाने भी हैं। तम्बाकू से सूंघनी बनाने के कारखाने ब्यावर में है।

कत्था, लाख, तथा गोंद उद्योग—राजस्थान के वनों से कत्था, लाख व गोंद तथा अन्य वस्तुएं प्राप्त की जाती हैं जिन पर कई उद्योग आधारित हैं। कत्था राजस्थान के वन क्षेत्रों में विशेषत: चित्तौड़गढ़, कोटा, बूंदी, झालावाड, सवाईमाधोपुर, अलवर, धौलपुर व जोधपुर के जंगलों से निकाला जाता है। कत्था के साथ-साथ केटेचिन भी निकलती है जो उबलते पानी में घुलती नहीं है। यह चमड़े की और सूती व रेशमी कपड़ों की रंगाई तथा छपाई में काम आती है।

राजस्थान प्रदेश की जलवायु **गोंद उत्पादन** के लिए उपयुक्त है। कूमठा, बबूल, और कडाया का गोंद उल्लेखनीय है। घावड़ा का गोंद कागज़ उद्योग और दवाईयों के काम आता है। खैर, रोंझा, गूरजन का गोंद भी काफी इकठ्ठा किया जाता है।

लाख पेड़ की मुलायम और छोटी-छोटी टहनियों पर एक कीटाणु "लेसीफरस लेक्का" द्वारा जमा किया हुआ पदार्थ है जो आरी और कुंकी के नाम से प्रसिद्ध है लाख से चूड़ियाँ बनाई जाती हैं। जयपुर व जोधपुर में निर्मित लाख की चूड़िया बहुत प्रसिद्ध हैं। जयपुर में

विशेषत: लाख की सुन्दर चूड़ियां, खिलौने व अन्य वस्तुएँ बनाई जाती हैं जिन्हें निर्यात कर दिया जाता है।

माचिस उद्योग—अजमेर तथा अलवर में माचिस बनाने के कारखाने हैं। अलवर में उपयुक्त लकड़ी 'सालरवुड' काफी मात्रा में उपलब्ध है।

अन्य उद्योग—उपरोक्त के अतिरिक्त राज्य में कुछ अन्य उद्योग भी कार्यरत हैं—जैसे पत्थर की मूर्तियां व अन्य वस्तुएं (जयपुर, डूंगरपुर, मकराना, जैसलमेर), हाथी दांत के खिलौने व वस्तुएं (जयपुर, नागौर, पाली), कागज की कुट्टी के खिलौने (जयपुर, कोटा व उदयपुर) खस का इत्र व पंखे (सवाईमाधोपुर व जयपुर), रस्सियां, साबुन बनाना ईंट बनाना, ताड़-गुड़ बनाना आदि।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्व स्वर्गीय पं. जवाहरलाल नेहरू के इस कथन "भारत के अवनति काल में भी राजस्थान कुटीर एवं विविध कलाओं का केन्द्र रहा है और अब भी अच्छे शिल्पकार यहां है", से स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है। राजस्थान में इनके अधिक महत्वपूर्ण होने के कारणों में रोजगार में वृद्धि, आर्थिक श्रम व कम पूंजी की स्थिति में उपयुक्त, शीघ्र उत्पादन की सुविधा, आयात पर कम निर्भरता, अधिक शक्ति का समान वितरण, सरल तकनीक कार्य प्रणाली, परम्परागत प्रतिभा व कला की रक्षा, औद्योगिक समस्याओं का प्रभाव, कृषि पर जनसंख्या के दबाव को कम करना, राज्य का सन्तुलित एवं क्षेत्रीय विकास, रोजगार की स्थिरता व सुरक्षा तथा निर्यात में सहायक आदि प्रमुख है जिसके परिणामस्वरूप राज्य की अर्थव्यवस्था में यह प्राचीनकाल से अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुये हैं।

परन्तु राज्य की अर्थव्यवस्था में एक समय ऐसा भी आया जब ये उद्योग अवनत दशा की ओर धकेल दिये गये। अवनति की ओर ले जाये जाने वाले कारणों में विदेशी वस्तुओं से प्रतियोगिता, रूचि में परिवर्तन, कच्चे माल की कठिनाई, बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा, शिक्षा का अभाव, संगठन का अभाव, कारीगरों की बिगड़ती आर्थिक दशा तथा विक्रय की समुचित व्यवस्था का अभाव आदि प्रमुख रहे लेकिन फिर भी इनका अस्तित्व वर्तमान में भी बना हुआ है जिसके लिए हम पैतृक व्यवसाय, जाति प्रथा, कृषि अर्थव्यवस्था, वैयक्तिक निपुणता तथा सरकारी, धनी व्यक्तियों के संरक्षण को उत्तरदायी ठहरा सकते हैं।

वर्तमान में नियोजन के द्वारा इनके विकास हेतु सरकार ने अथक प्रयास किए हैं फिर भी इन्हें कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जैसे—कच्चे माल की समस्या, वित्त, तकनीकी विपणन की समस्या, प्रबन्ध में योग्यता का अभाव, बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता प्रमापीकरण का अभाव, अत्यधिक कर-भार, कारीगरों की शिक्षा एवं प्रशिक्षण का अभाव, उत्पादित वस्तुओं में कम लोगों की रूचि का होना आदि।

लघु एवं कुटीर उद्योगों को समस्याओं से मुक्त करने के लिए कुछ सुधारात्मक उपायों को अपनाया जाना चाहिए जिनमें से वित्त व्यवस्था, उत्पादन विधियों में अच्छी तकनीकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था, सहकारी समितियों का विकास, अनुसंधान एवं प्रशिक्षण, विपणन व्यवस्था में सुधार, लघु उद्योग प्रदर्शनियों की व्यवस्था, उत्पादन की किस्म पर नियन्त्रण, लघु एवं वृहत उद्योगों में समन्वय, सलाहकार संस्थाओं की स्थापना तथा औद्योगिक विकास हेतु सर्वेक्षण आदि प्रमुख हो सकते हैं। नागौर में कच्चे माल का डिपो खोला जा रहा है और इसका उप-कार्यालय जोधपुर में होगा। लघु-उद्योगों के आधुनिकीकरण, बेहतर तकनीकी ज्ञान और कुशल प्रबन्ध के माध्यम से लघु उद्योगों का विकास किया जा सकता है। लघु उद्योगों से उत्पादित माल के लिए राज्य में और राज्य से बाहर बाजार तलाश करना तथा उत्पादन में सुधार करना भी इनके विकास के लिए आवश्यक है।

औद्योगिक क्रियाओं का क्षेत्रीय केन्द्रीयकरण

राजस्थान में औद्योगिक क्रियाओं के क्षेत्रीय वितरण पर अगर दृष्टिपात किया जाये तो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में असन्तुलन की स्थिति परिलक्षित होती है। राज्य के पश्चिमी शुष्क प्रदेश में औद्योगिक क्रियाएं सबसे अधिक पिछड़ी प्रतीत होती हैं। इस प्रदेश में उद्योगों के अन्तर्गत कार्यकारी जनसंख्या का अनुपात नगण्य सा है हालांकि कुछ जिलों जैसे गंगानगर, बीकानेर तथा जोधपुर आदि में फैक्ट्रियों की संख्या अधिक है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मुख्य शहरों में अधिकतर फैक्ट्रियां छोटे पैमाने की है तथा स्थानीय कच्ची सामग्रियों को काम में लेते हुए उप-

भोग सम्बन्धी हल्की वस्तुओं का निर्माण करती है। इस क्षेत्र में धात्विक एवं अधात्विक खनिजों एवं शक्ति संसाधनों की कमी है। परिवहन की सुविधाएं सीमित है। नगर छोटे आकार के हैं। केवल गंगानगर, बीकानेर तथा जोधपुर शहर ही अपने उद्योगों के कारण कुछ रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि उत्पादन की छोटी इकाइयों का केन्द्रीयकरण भी जिला केन्द्रों में ही दृष्टिगत होता है क्योंकि इनमें जल आपूर्ति, शक्ति और परिवहन व संचार की सुविधाएं आसानी से उपलब्ध होती हैं। राज्य के उत्तरी भाग में कृषि पर आधारित उद्योगों के लिये कुछ कच्ची सामग्रियाँ जैसे कपास, गन्ना व तिलहन आदि प्राप्त होती हैं। भाखड़ा से जल विद्युत तथा रेल सुविधाएं इस क्षेत्र में उद्योगों के विकास को गति प्रदान करती है। इसलिए गंगानगर में, जोधपुर तथा बीकानेर जिलों की अपेक्षा कृषि पर आधारित उद्योगों में कार्यकारी जनसंख्या का अनुपात अधिक है।

यद्यपि राजस्थान में गत 34 वर्षों में औद्योगिक क्रियाओं के विकास के लिए काफी तेजी के साथ प्रयास किए गए हैं लेकिन अत्यधिक विकास राज्य में अरावली श्रेणी के पूर्वी भागों में ही हुआ क्योंकि इस भाग में उद्योगों के लिए विभिन्न प्रकार की कच्ची सामग्रियां उपलब्ध होती है तथा एक विकसित आधारीय ढांचा भी उद्योगों के लिए मौजूद है। इस सन्दर्भ में अगर देखा जाये तो राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्रों की उपेक्षा हुई प्रतीत होती है हालांकि इस क्षेत्र में नमक उद्योग काफी पनपा है।

अरावली श्रेणी के पूर्व में स्थित भू-भाग के उत्तरी भागों में, जिसमें अजमेर, जयपुर, अलवर, भरतपुर तथा इसके आस-पास के क्षेत्र सम्मिलित हैं, औद्योगिक दृष्टि से अधिक विकसित है। उत्तरी भाग में उद्योगों में संलग्न श्रमिकों की संख्या दक्षिणी भाग विशेषतया उदयपुर और डूंगरपुर की अपेक्षा अधिक है। इन क्षेत्रों के औद्योगिक विकास में इस प्रकार के अन्तर्प्रदेशीय असंतुलन के कारण स्पष्ट हैं। उत्तरी भाग उत्तर भारत के अधिक विकसित क्षेत्रों के समीप स्थित है, परिवहन की सुविधाएं अच्छी हैं, जनसंख्या का घनत्व अधिक है और कच्ची सामग्रियाँ काफी उपलब्ध हैं जबकि दक्षिणी भाग अधिक पहाड़ी व जंगलों की स्थलाकृति वाला है, परिवहन की सुविधाएँ तथा जनसंख्या का घनत्व भी कम है। फलस्वरूप खपतकर्त्ताओं के बाजार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कोटा व इसके समीपवर्ती क्षेत्रों में औद्योगिक क्रियाएं काफी विकसित हैं क्योंकि यहाँ जल विद्युत शक्ति तथा बड़ी रेल लाइन की सुविधाएं उपलब्ध हैं। जनसंख्या का घनत्व भी अधिक है परिणामस्वरूप उत्पादित वस्तुओं के लिए एक अच्छा बाजार मिल जाता है।

मुख्य उद्योग जो राज्य में कृषि, खनिज, वन, पशु आदि से प्राप्त कच्ची सामग्रियों पर आधारित है, राज्य के विभिन्न क्षत्रों में पाये जाते हैं। उद्योगों के वितरण के आधार पर उनका केन्द्रीयकरण निम्न क्षेत्रों में परिलक्षित होता है।

1. खेतड़ी-जयपुर क्षेत्र
2. मकराना-अजमेर-ब्यावर क्षेत्र
3. भीलवाड़ा-चित्तौड़गढ़ क्षेत्र
4. उदयपुर क्षेत्र
5 अलवर क्षेत्र
6. कोटा-बूंदी-सवाईमाधोपुर क्षेत्र
7 भरतपुर-धौलपुर क्षेत्र
8. गंगानगर क्षेत्र
9. बीकानेर क्षेत्र
10. जोधपुर-पचपदरा क्षेत्र

खेतड़ी-जयपुर क्षेत्र—इस क्षेत्र में खेतड़ी, नीम-का-थाना, श्रीमाधोपुर, आमेर और जयपुर आदि तहसीलें सम्मिलित हैं। 1981 में कुल श्रमिकों का लगभग 20.14 प्रतिशत औद्योगिक कार्यों में संलग्न था। जयपुर में औद्योगिक श्रमिकों का प्रतिशत 25.30 था। अन्य कई फैक्ट्रियों के अलावा इन्जिनियरिंग और बिजली से सम्बन्धित इकाइयां भी इसमें केन्द्रित हैं। खेतड़ी अपने तांबा संयत्रक के फलस्वरूप काफी प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र में निकट भविष्य में इन्जिनियरिंग और बिजली आदि वस्तुओं के उद्योगों के काफी विकसित होने की सम्भावनाएं हैं।

जयपुर राजधानी शहर है और साथ ही यह राज्य तथा देश के सभी महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्रों से रेल

व सड़क मार्ग द्वारा सुगम्य है। जयपुर का नेशनल इंजीनियरिंग उद्योग उल्लेखनीय है जिसने अकेले 2800 व्यक्तियों को रोजगार दे रखा है। अन्य महत्वपूर्ण उद्योगों में जयपुर स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स लि., मान इण्डस्ट्रियल कॉरपोरेशन, सांभर साल्ट्स लि., जयपुर मेटल एण्ड इलेक्ट्रीकल लि., पोदार स्पिनिंग मिल्स लि., कमानी इंजीनियरिंग कॉरपोरेशन आदि हैं।

2. मकराना-अजमेर-ब्यावर क्षेत्र—इस क्षेत्र में नागौर जिले की पर्वतसर तहसील, अजमेर जिले की किशनगढ़, अजमेर व ब्यावर तहसीलें तथा जयपुर जिले की फुलेरा तहसील में सांभर झील के समीप का कुछ भाग सम्मिलित हैं। कुल श्रमिकों का लगभग 32 प्रतिशत औद्योगिक श्रमिक ब्यावर तहसील में आलेखित किए गए। ब्यावर तहसील समग्र अरावली प्रदेश में औद्योगिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मकराना-अजमेर-ब्यावर क्षेत्र का उत्तरी भाग अधात्विक तथा रसायन उद्योगों जैसे सांभर व पर्वतसर में नमक उद्योग, सांभर में सोडा एश और मकराना में संगमरमर उद्योग आदि में संलग्न हैं जबकि दक्षिणी आधा भाग सूती वस्त्र उद्योग में तथा धात्विक उद्योगों जैसे रेल्वे वर्कशाप आदि में संलग्न हैं। इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण उद्योग जैसे कैरिज एण्ड वैगन वर्कशाप, लोकोमोटिव सैन्ट्रल वर्कशाप, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स कॉरपोरेशन, कृष्णा मिल्स लिमिटेड, एडवर्ड मिल्स लिमिटेड और महालक्ष्मी मिल्स लिमिटेड आदि हैं।

3. भीलवाड़ा-चित्तौड़गढ़ क्षेत्र—यह क्षेत्र दो औद्योगिक खण्डों के रूप में अजमेर-खण्डवा पश्चिमी रेलमार्ग पर स्थित है। भीलवाड़ा व चित्तौड़गढ़ तहसीलों में क्रमशः 19 प्रतिशत व 14 प्रतिशत औद्योगिक श्रमिकों का अनुपात है। भीलवाड़ा नगर में 29 प्रतिशत औद्योगिक श्रमिक है। दो सूती वस्त्र मिलें श्री मेवाड़ टेक्सटाइल्स लि. व राजस्थान स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स लि., ऊनी मिलें, एक वनस्पति घी फैक्ट्री, अभ्रक, ईंटों का उद्योग, आरा मशीन मिलें, दाल फैक्ट्री और अन्य फैक्ट्रियों के साथ भीलवाड़ा एक औद्योगिक क्रोड बन गया है।

चित्तौड़गढ़ नगर के उद्योगों में 22 प्रतिशत श्रमिक संलग्न है। चित्तौड़गढ़ में सीमेन्ट उद्योग ने काफी विकास किया है। काला बलुआ पत्थर चित्तौड़गढ़ से 12 किलोमीटर दूर चन्देरी में खनन किया जाता है। बिड़ला सीमेन्ट वर्क्स, चित्तौड़गढ़ व मेवाड़ शुगर मिल्स लिमिटेड, भोपालसागर, जे.के. सीमेन्ट वर्क्स निम्बाहेड़ा व मेहता वेजीटेबिल प्रोडक्ट्स, चन्देरिया बड़े उद्योग हैं।

4. उदयपुर क्षेत्र—इस क्षेत्र में जिंक स्मेल्टर, सीमेंट फैक्ट्री, कपास कताई मिल, शराब फैक्ट्री, रसायन एवं औषधीय फैक्ट्री, लकड़ी के खिलौने तथा सामान आदि के कारखाने मिलते हैं। इनके अतिरिक्त लकड़ी निर्मित अन्य पर्यटन उद्योग उदयपुर के समीपीय प्राकृतिक सौन्दर्यमयी दृश्यों तथा इसकी अच्छी जलवायु के कारण काफी फल फूल रहा है। गिरवा तहसील में जिसमें उदयपुर शहर स्थित है, उद्योगों में कुल श्रमिकों का 13 प्रतिशत अनुपात है तथा उदयपुर शहर लगभग 22.5 प्रतिशत श्रमिक उद्योगों में कार्यरत हैं।

आयुर्वेद सेवाश्रम प्राइवेट लिमिटेड तथा उदयपुर सूती मिल है। इसके अलावा कुछ खनिजों व वनों पर आधारित लघु उद्योग इकाइयाँ भी पिछले कुछ वर्षों से प्रारम्भ हुई है। इनमें धातुगत उत्पादों सीमेन्ट तथा चूने की निर्मित वस्तुएं सामान्य औजार तथा हार्डवेयर, लोहे तथा स्टील की ढलाई धातु के बर्तनों का निर्माण आदि अन्य अनेक उद्योग शामिल हैं। यह इस क्षेत्र के औद्योगिक विकास के लिए सहायक इकाइयों के रूप में कार्य करती हैं।

5. अलवर क्षेत्र—यह क्षेत्र देहली-अहमदाबाद राष्ट्रीय मार्ग नं. 8 पर एवं पश्चिमी रेल्वे के अजमेर देहली छोटी लाईन मार्ग पर स्थित है। यहां वनस्पति तेल, दाल मिलें, रासायनिक तथा अन्य कारखाने पाये जाते हैं। अलवर तहसील में कुल श्रमिकों में से लगभग 16 प्रतिशत श्रमिक उद्योग क्षेत्र में संलग्न हैं। कुल श्रमिकों का 23 प्रतिशत एवं 26 प्रतिशत क्रमशः राजगढ़ व अलवर के उद्योगों में पाया जाता है।

अलवर में माडर्न सिन्थेटिक इण्डिया लि., राठी एलायज् एवं स्टील लि., बहरोड में जयपुर सिन्थेटिक, भिवाड़ी में सुपर टूल्स इण्डिया व अरावली फोर्सजिंग्स लि., अलवर इन्जिन प्लांट, भारत एलम्स एण्ड केमिकल लि., यूनीवर्सल सिलैण्डर लि. आदि अलवर में स्थित हैं।

रीको के द्वारा इस क्षेत्र में भिवाड़ी, बहरोड, खैरथल, खेडली, राजगढ़ व मत्स्य (अलवर) में औद्योगिक क्षेत्रों का विकास भी किया गया है।

6. कोटा-बून्दी-सवाईमाधोपुर क्षेत्र—इस क्षेत्र में लाडपुरा, बूंदी, केशोरायपाटन, सवाईमाधोपुर तहसीलें तथा इनके समीपवर्ती भू-भाग सम्मिलित हैं। इनमें सब से अधिक उद्योग का केन्द्रीयकरण कोटा शहर में परिलक्षित होता है क्योंकि इसे चम्बल परियोजना से सस्ती जलविद्युत आपूर्ति की सुविधा प्राप्त है। साथ ही जल की प्रचुरता, अणुशक्ति, पर्याप्त भूमि, बड़ी रेल्वे लाइन, पर्याप्त श्रम शक्ति, सरकार द्वारा प्रदत्त सुविधाएं व पूंजी की प्रचुरता जैसी सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। भारत सरकार ने एक बहुत ही सूक्ष्म यन्त्र बनाने का कारखाना कोटा में स्थापित किया है। इस क्षेत्र का सबसे महत्वपूर्ण उद्योग वस्त्र उद्योग हैं। कोटा में स्थित उद्योगों में से जे. के. सिंथेटिक्स लिमिटेड, श्रीराम रेयन्स, श्रीराम वाईनिल एण्ड केमिकल इंडस्ट्रीज, ओरियन्टल पावर केबिल्स एवं राजस्थान केबिल इंडस्ट्रीज प्रमुख हैं। अन्य महत्वपूर्ण प्रादेशिक उद्योग सीमेन्ट व कांच के हैं। दो सीमेंट के कारखाने लाखेरी (बूंदी) एवं सवाईमाधोपुर में स्थित हैं जो पर्याप्त स्थानीय कच्ची सामग्री पर आधारित हैं।

बूंदी व सवाईमाधोपुर जिलों में उत्तम कांच-बालुका के जमाव पाये जाते हैं जिन पर बड़े पैमाने के कांच के कारखाने स्थापित किये जा सकते हैं। कोटा एवं बूंदी के बीच रेल मार्ग के प्रसार फलस्वरूप यह क्षेत्र प्रादेशिक स्तर के उद्योगों में और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जायेगा।

7 भरतपुर-धौलपुर क्षेत्र—इस क्षेत्र में भरतपुर, डीग, बयाना, धौलपुर आदि तहसीलें सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह क्षेत्र दो खण्डों में विभाजित दृष्टिगत होता है एक तो उत्तर की तरफ भरतपुर शहर तथा इसके समीपवर्ती डीग व बयाना आदि के क्षेत्र तथा दूसरा धौलपुर नगर क्षेत्र।

भरतपुर में सैन्ट्रल इण्डिया मशीनरी मेन्यूफेक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड (सिमको) व परफेक्ट पोटरीज कम्पनी लिमिटेड स्थित हैं। धौलपुर में कांच उद्योग काफी महत्वपूर्ण है इस उद्योग के दो महत्वपूर्ण कारखाने दी हाई टेक. प्रिसीजन ग्लास फैक्ट्री व धौलपुर ग्लास वर्क्स, धौलपुर में स्थित हैं। राजस्थान एक्सप्लोसिव व कैमिकल लिमिटेड भी इस क्षेत्र का एक बड़े पैमाने का उद्योग हैं। इस क्षेत्र की औद्योगिक सम्भावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व निवेश निगम द्वारा इस क्षेत्र में भरतपुर, डीग, बयाना में औद्योगिक क्षेत्र क्रमशः सन् 1972, 1978 व 1980 में स्थापित किये गये। इस क्षेत्र में प्लास्टिक का काम, साबुन व पीतल का सामान बनाने वाली इकांइयाँ, तेल व आटे की मिलें व ओटोमोबाइल व इंजीनियरिंग उद्योग की इकाइयाँ हैं। भविष्य में इस क्षेत्र में उद्योगों के अधिक केन्द्रीयकरण होने की सम्भावनाएँ हैं।

8. गंगानगर क्षेत्र—इस क्षेत्र में गंगानगर शहर तथा इसके समीपवर्ती भू-भाग ही सम्मिलित हैं। इस औद्योगिक क्षेत्र के लिए वे सभी भू-भाग जो नहरी सिंचाई सुविधाओं से परिपूर्ण हैं, पृष्ठभूमि के रूप में हैं। इस प्रकार यह क्षेत्र स्थानीय कृषि उत्पादों पर अपनी औद्योगिक क्रियाओं के लिये अत्यधिक निर्भर है। कृषि उपजों में गन्ना, कपास, तिलहन, गेहूं व दालें प्रमुख हैं जिनसे सम्बन्धित बड़े व लघु उद्योग इस क्षेत्र में केन्द्रित हैं। यहाँ निजी क्षेत्र में सादुल टेक्सटाइल मिल और सार्वजनिक क्षेत्र में गंगानगर शुगर मिल में गन्ने व चुकन्दर से चीनी बनाने के अतिरिक्त डिस्टलरी भी है। मध्यम श्रेणी के उद्योगों में गुप्ता इंडस्ट्रीयल कॉरपोरेशन और श्रीगंगानगर फर्टीलाइजर कॉरपोरेशन भी उल्लेखनीय हैं। इस क्षेत्र की स्थानीय कच्ची सामग्रियों के संदर्भ में यहां इन पर और भी उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं।

9. बीकानेर-पलाना क्षेत्र—इस क्षेत्र में बीकानेर तहसील को ही सम्मिलित किया गया है। यह क्षेत्र अभी औद्योगिक दृष्टि से पनप नहीं पाया है। इसका कारण तकनीकी कमी व औद्योगिक प्रगति के लिये वांछित वातावरण की कमी है। इस क्षेत्र में बीकानेर शहर व इसके समीप कई लघु व मध्यम स्तर के उद्योग स्थापित हैं। जे. के. वूलन मिल व उर्मल डेयरी उनमे मुख्य हैं। अन्य इकाइयाँ मुख्यतः बर्तन बनाने, ऊन आधारित उद्योग रसायन, आयुर्वेदिक फार्मेसी, बिजली के उपकरण, परिष्कृत जल व बैटरी का तेजाब बनाने में कार्यरत हैं। इस क्षेत्र के प्रदेश में ऊन ही औद्योगिक दृष्टि से मुख्य कच्चा माल हैं। अतः इस क्षेत्र मे ऊन संसाधन उद्योग के

अधिकाधिक विकास के बहुत अच्छे अवसर हैं।

10. जोधपुर-पचपदरा क्षेत्र—यह क्षेत्र औद्योगिक दृष्टि से काफी अविकसित हैं। भारत सरकार ने जोधपुर जिले को औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ घोषित किया है जिसके फलस्वरूप अब यहां पर पूंजी का निवेश औद्योगिक क्रियाओं को विकसित करने के लिए काफी किया जा रहा है। 1971 में यहां मसूरिया पहाड़ियों के निकट एक औद्योगिक क्षेत्र था। राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एवं निवेश निगम लिमिटेड जोधपुर में मण्डोर, मथानिया, खींचन में औद्योगिक क्षेत्र विकसित कर चुका है। एक नया औद्योगिक क्षेत्र जोधपुर नगर के बासनी नामक स्थान पर निर्मित किया गया है। इस क्षेत्र में सबसे बड़ा प्रतिष्ठान उत्तर रेल्वे कार्यशाला है। अन्य प्रमुख कारखाने एलकोवेक्स मेटल्स प्रॉ. लिमिटेड, जोधपुर वूलन मिल्स, पश्चिमी राजस्थान दुग्ध उत्पादक संघ लिमिटेड, हीरा क्राशिंग प्रा. लिमिटेड आदि हैं। अन्य उल्लेखनीय कारखानें मुख्यतः विभिन्न प्रकार के खाद्य तेलों, सूती वस्त्र उद्योग (सिन्थेटिक, फाईबर, रेयन्स, नाईलोन आदि) मांप के यन्त्र बनाना, रसायनों का निर्माण, पत्थर की आकृतियां, लाइफ टाईम स्टोन आदि औद्योगिक क्रियाओं से सम्बन्धित है। लघु उद्योगों के अन्तर्गत बन्धेज, कढ़ाई वाले जूते व जूतियां, बाड़ला (पानी की बोतलें) आदि भी बड़े पैमाने पर बनाये जाते हैं। लघु उद्योगों के क्षेत्र में इंजीनियरिंग तथा प्लास्टिक उद्योगों का एक इन्जीनियरिंग काम्पलैक्स बनाया गया है। ऊन, चमड़ा व खाल के औद्योगिक प्रयोग से स्थानीय संसाधनों के अधिकाधिक उपयोग के रास्ते खुल गये हैं।

राजस्थान में औद्योगिक सम्भावनाएं

राजस्थान में अनेक प्रकार के खनिज उपलब्ध हैं, विभिन्न प्रकार की कृषि उपजें प्राप्त की जाती हैं। बड़ी संख्या में पशु हैं, वन सम्पत्ति है अर्थात् प्रकृति ने राज्य को विपुल आर्थिक-संसाधन प्रदान किये हैं। इन्हीं के परिणामस्वरूप राजस्थान ने गत 40 वर्षों में कृषि, सिंचाई, पशुपालन, उद्योग आदि सभी क्षेत्रों में काफी प्रगति की है तथा अभी भी विकास के पथ पर है। राजस्थान में औद्योगिक संभाव्यताओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए सन् 1972 में सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं के द्वारा एक सर्वेक्षण करवाया गया जिससे यह स्पष्ट हुआ कि राज्य में कृषि, वनस्पति तथा खनिज सम्पदा पर आधारित उद्योगों के लिए काफी सम्भाव्यताएं (Potentialities) है, इसलिए इनका उपयोग राज्य के औद्योगिक विकास के लिए किया जा सकता है।

1. कृषि पर आधारित उद्योग—राज्य की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। गेहूँ, तिलहन, गन्ना, कपास, दालें, चना, मूंगफली आदि अनेक ऐसी उपज हैं जिनसे सम्बन्धित अनेक उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं।

राज्य में सूती वस्त्र कारखानें जयपुर, अलवर, धौलपुर, चित्तौड़गढ़, जोधपुर, डूंगरपुर, झुन्झुनू, हनुमानगढ़, व नोहर आदि में स्थापित किये जा सकते हैं। चीनी के कारखानें कोटा, भरतपुर, उदयपुर में, वनस्पति घी का कारखाना कोटा में, तेल मिलें भरतपुर, अलवर, गंगानगर व सवाईमाधोपुर आदि केन्द्रों पर स्थापित किये जाने की सम्भावनाएं हैं। राजस्थान तो बाजरा और मक्का का घर है। यहां फूड प्रोसेसिंग पर आधारित उद्योग खोले जा सकते हैं।

2. वनों पर आधारित उद्योग—अरावली श्रेणी के पूर्वी ढालों और राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी भागों में वन पाये जाते है। इन वनों से विभिन्न प्रकार की उपजें प्राप्त होती हैं लेकिन अधिकांशतः छोटी उपजें ही मिलती है। इसलिए वनों पर आधारित बड़े उद्योगों के विकास व स्थापना की सम्भावना कम है किन्तु लघु व कुटीर उद्योगों के विकास की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं। दियासलाई उद्योग और पैकिंग का कागज बनाने के कारखानें स्थापित किये जा सकते हैं।

3. पशुओं पर आधारित उद्योग—राज्य पशुओं की संख्या की दृष्टि से धनी है। अतः राज्य के पश्चिमी शुष्क मैदान के नगरीय केन्द्रों में चमड़ा उद्योग की स्थापना की जा सकती हैं। डेयरी उद्योग के विकास से दूध का पाऊडर, मक्खन, पनीर, पशु आहार उद्योग आदि की भी विपुल सम्भावनाएं हैं। राज्य के जोधपुर व बीकानेर क्षेत्रों में ऊनी कपड़ा बनाने व ऊनी होजरी के कारखाने स्थापित किये जा सकते हैं। हड्डी पीसने के कारखानें बीकानेर, अलवर, भरतपुर, सवाई माधोपुर आदि में स्थापित किये जाने की सम्भावनाए बड़ी बलवती है।

राज्य में प्रतिवर्ष 5 हजार टन मछलियां पकड़ी जाती हैं जिनमें से केवल 5% का उपभोग राज्य कर पाता है, अतः मछलियों को डिब्बों में बंद करने के कारखानें उदयपुर में तथा अलवर अथवा भरतपुर क्षेत्र में स्थापित किये जा सकते हैं।

4. खनिज पदार्थों पर आधारित उद्योग -- इनके लिए निम्न परियोजनाएं विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं जिनके लिए सरकार प्रयत्नशील है।

(i) हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड की मौलिक क्षमता 18,000 टन से बढ़ाकर 48,000 करना।

(ii) कोटा, बूंदी, सिरोही एवं चित्तौड़गढ़ आदि जिलों में चूने के पत्थरों के भण्डारों के प्रयोग के लिए सीमेन्ट के कारखाने लगाना। अभी हाल में राजकॉन के एक सर्वेक्षण के अनुसार जैसलमेर जिले में 5 लाख टन वार्षिक क्षमता वाले एक बड़े सीमेन्ट कारखाने के अच्छे आसार हैं।

(iii) नाथरा की पाल एवं चोमूं-मरीजा के कच्चे लोहे के उपयोग हेतु उदयपुर में पिग आयरन संयंत्र लगाना।

(iv) तेल शोधक कारखाना सवाईमाधोपुर में सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किया जा सकता है।

(v) फेल्सपार, क्वार्टज एवं चिकनी मिट्टी से चीनी के बर्तन बनाने का उद्योग।

(vi) सिलिका के उपयोग से कांच उद्योग।

(vii) सेलेनाइट खनिज भण्डारों के उपयोग से प्लास्टर आफ पेरिस व खिलौने के उद्योग तथा जिप्सम पर आधारित उद्योग की सम्भावनाएं हैं।

(viii) मैथनोल रसायन बनाने का 75 करोड़ रुपये की लागत का संयंत्र कोटा में सम्भवतः लगेगा। इसके क्रियान्वयन के लिए रीको ने राष्ट्रीय कैमिकल्स एण्ड फर्टीलाईजर लिमिटेड का चयन किया है। मैथनोल एक ऐसा रासायनिक आधार है जिसके द्वारा अनेक महत्वपूर्ण रासायनिक जैसे फोरमैल्डीहाइड, एसिटिक एसिड, एसिटिक एनहाइड्राइड, डाई मिथाइल टेफथालेट, डी.डी.टी. मैलाथियोन तथा नाना प्रकार की प्लास्टिक की वस्तुएँ बनाई जाती है। इससे पोलिस्टर फाइबर भी बनता है जिसका उपयोग सिंथेटिक कपड़ा बनाने में होता है।

(ix) राष्ट्रीय थर्मल पावर निगम द्वारा अन्ता(कोटा) में गैस आधारित पॉवर प्रोजेक्ट की स्थापना की जायेगी।

रसायन आधारित उद्योगों में एल्युमिनियम फ्लोराइड परियोजनाएं, फॉस्फेरिक उर्वरक, सोडा एश से सम्बन्धित कारखानें स्थापित किये जा सकते हैं। ग्वार का गोंद बनाना भी सम्भव है।

राजस्थान में निम्न बड़े उद्योगों के स्थापित किये जाने के प्रस्ताव विचाराधीन हैं।

(i) चित्तौड़गढ़ जिले में पेट्रो-रसायन कारखाना।

(ii) सीकर के सलादीपुर में राक-फॉस्फेट पर आधारित खाद कारखाना।

(iii) सांभर के आस-पास नमक पर आधारित कास्टिक सोडा कारखाना।

(iv) बूंदी के पायराइट पर आधारित खाद कारखाना

(v) भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स के ट्रांसफार्मर आदि का कारखाना।

(vi) प्रतिरक्षा उपकरण कारखाना।

(vii) बम्बई हाई गैस पर आधारित दो कारखाने। एक विलोना (सवाईमाधोपुर के निकट) में लगेगा।

(viii) एक सुपर सीमेन्ट संयंत्र लगाने का कार्य।

(ix) सवाईमाधोपुर में खाद का कारखाना।

(x) गैस सिलेण्डर भरने का कारखाना सवाईमाधोपुर में।

(xi) भीलवाड़ा में हंगरी के सहयोग से विद्युत उपकरणों का कारखाना स्थापित करने के प्रयास चल रहे हैं।

(xii) रायला में माडर्न थ्रेड रीको की 30 प्रतिशत साझेदारी से औद्योगिक धागा बनाये जाने का कारखाना स्थापित किया जायेगा।

अन्त में निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि राजस्थान में आर्थिक संसाधनों की कमी नहीं है इसलिए औद्योगिक सम्भावनाएं अत्यन्त आशाप्रद हैं। इन सम्भाव्यताओं का समुचित उपयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार, उद्योगपतियों तथा साहसिक उद्यमियों के बीच सहयोग एवं सामंजस्य की भावना हो और वे एकजुट होकर राज्य के औद्योगिक विकास के लिए कार्य करें।

मानव संसाधन

किसी भी क्षेत्र का आर्थिक विकास उस क्षेत्र के मानव संसाधन पर आश्रित होता है। मानव ही प्राकृतिक साधनों का उपयोग करता है। यह उपयोग श्रमपूर्ति या मानव शक्ति पर आधारित होता है। वास्तव में प्राकृतिक साधन निष्क्रय होते हैं। ये केवल आर्थिक विकास की सुविधा मात्र प्रदान करते हैं जबकि मानव का कार्य उनसे अधिकतम सम्पत्ति का उत्पादन करना होता है। इसलिए राज्य में मानव संसाधन का अध्ययन एवं उनका विश्लेषण करना सबसे अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है।

वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की कुल जनसंख्या 342.62 लाख थी जो 342.2 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है। यद्यपि राजस्थान का कुल क्षेत्रफल देश के समग्र क्षेत्रफल का 10.43 प्रतिशत है किन्तु यहाँ भारत की कुल जनसंख्या का केवल 5.13 प्रतिशत भाग ही निवास करता है। जनसंख्या की दृष्टि से राजस्थान का देश में नवम् स्थान है। जनसंख्या का आकार और क्षेत्रफल जिस पर यह वितरित है, जनसांख्कीय अध्ययन के लिये महत्वपूर्ण कारक हैं क्योंकि ये मनुष्यों के जीवन स्तर को प्रभावित करते हैं।

समग्र राज्य में जनसंख्या का वितरण एक सा नहीं है। राज्य में जनसंख्या का औसत घनत्व 100 व्यक्ति (1981) प्रति वर्ग किलोमीटर घनत्व के सन्दर्भ में देश में सोलहवें स्थान पर है। हिमाचलप्रदेश, मनीपुर, मेघालय, जम्मू-काश्मीर, नागालैण्ड तथा सिक्किम आदि देश के ऐसे राज्य है जहाँ राजस्थान राज्य से कम घनत्व पाया जाता है इन राज्यों में औसत घनत्व 45 से 77 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। इस प्रकार राजस्थान इन उपरोक्त राज्यों के अलावा अन्य शेष सभी राज्यों से कम घनत्व रखता है। राजस्थान में जनसंख्या का औसत घनत्व कम इसलिये है क्योंकि राज्य का पश्चिमी और उत्तरी पश्चिमी भाग शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क है तथा इस पर स्थायी एवं परिवर्तनशील बालुका-स्तूप भी पाये जाते हैं। भारत के अन्य राज्यों से राज्य की जनसंख्या की तुलना करने पर औसत घनत्व, कुल जनसंख्या तथा प्रादेशिक वितरण में तीव्र विषमताएं दृष्टिगत होती हैं।

भारत की जनसंख्या (1981)[1]

राज्य	जनसंख्या (लाखों में)	जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग कि. मी.
केरल	254.5	655
पश्चिमी बंगाल	545.6	615
बिहार	699.2	402
उत्तरप्रदेश	1108.6	377
तामिलनाडु	484.1	372
पंजाब	167.9	333
हरियाणा	129.2	292
आसाम	198.9	254
महाराष्ट्र	627.8	204
आन्ध्र प्रदेश	535.5	195
कर्नाटक	371.4	194
त्रिपुरा	20.5	196
गुजरात	340.8	174
उड़ीसा	263.7	169
मध्यप्रदेश	521.8	118
राजस्थान	**342.6**	**100**
हिमाचल प्रदेश	42.8	77
मनीपुर	14.2	64
मेघालय	13.4	60
जम्मू-काश्मीर	59.8	59
नागालैण्ड	7.7	47
सिक्किम	3.2	45
भारत	**6851.4**	**216**

जनसंख्या का घनत्व (Density of Population)

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में एवं जिलों में जनसंख्या का घनत्व प्रतिवर्ग किलोमीटर अलग-अलग है। राजस्थान राज्य का औसत घनत्व 100 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। यह घनत्व देश के पन्द्रह राज्यों से कम तथा छह राज्यों से अधिक है। राजस्थान निर्माण के पश्चात् राज्य में जनसंख्या का घनत्व लगभग 112 प्रतिशत बढ़ गया है

1. India, 1983, Govt. of India P. 9.

जिसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति पीछे कृषि योग्य भूमि की उपलब्धि की मात्रा 0.75 हैक्टेयर रह गयी है। यह घनत्व प्रति दशाब्दी में बढ़ा है। वर्ष 1951 में औसत घनत्व 47 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था। वर्ष 1961 में यह औसत घनत्व 59 व्यक्ति, वर्ष 1971 में 75 व्यक्ति, वर्ष 1981 में 100 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया।[2]

राजस्थान की घनी जनसंख्या वाले क्षेत्रों में पूर्वी मैदानी जिले आते हैं भरतपुर, जयपुर, अलवर व झुन्झुनू आदि जिलों का औसत घनत्व 200 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से अधिक है। शेष मैदानी जिले जैसे धौलपुर, टोंक, सवाईमाधोपुर, सीकर तथा भीलवाड़ा आदि में औसत घनत्व 108 से 195 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर तक मिलता है। राजस्थान के मध्य
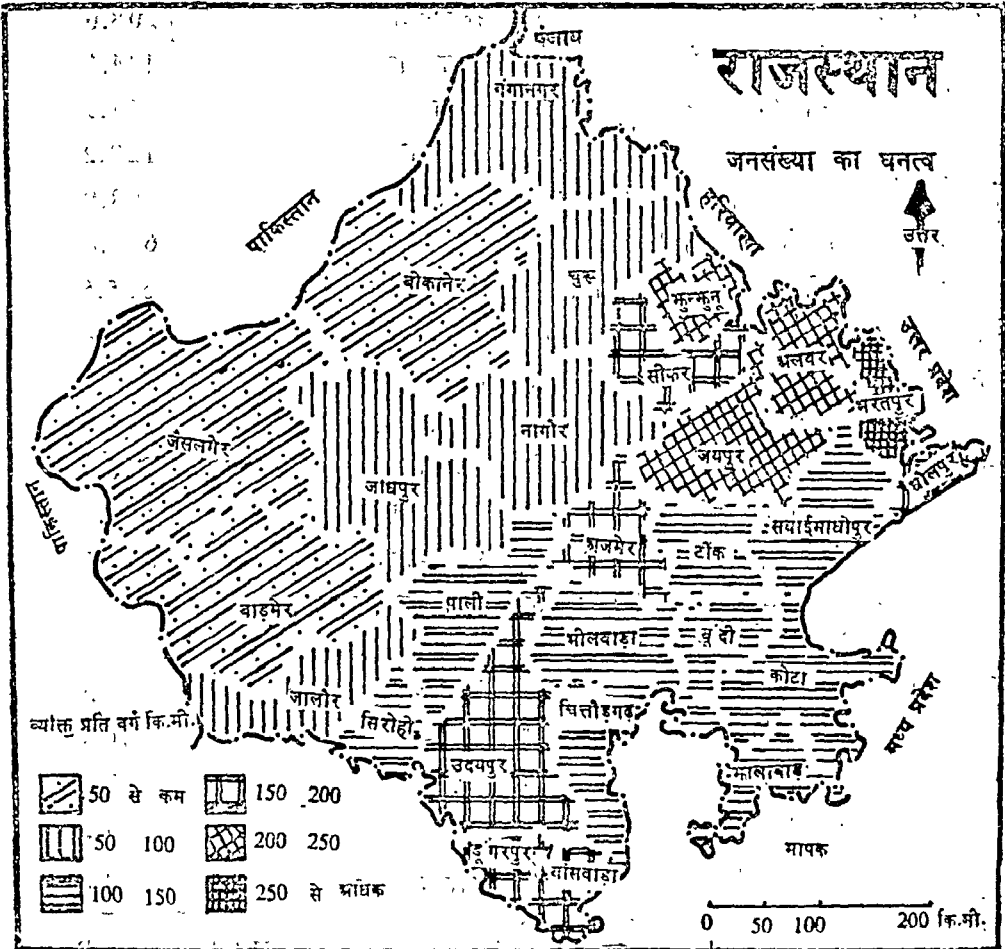
राजस्थान में जनसंख्या का घनत्व

पहाड़ी प्रदेश के जिलों में जनसंख्या का घनत्व 170 से 195 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जबकि पठारी प्रदेश के जिलों में औसत घनत्व 107 से 127 व्यक्ति के बीच मिलता है। राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी मरुस्थलीय भाग पाली के अतिरिक्त शेष सभी जिलों में जनसंख्या का औसत घनत्व (100) से भी कम है। इस प्रकार राज्य में 19 जिले जिनमें धौलपुर जिला भी शामिल है, ऐसे हैं जिनका घनत्व राज्य के घनत्व से अधिक है और वे सभी 104 से 254 के बीच औसत घनत्व रखते हैं।

जनसंख्या के घनत्व मानचित्र को देखने से यह स्पष्ट होता है कि अरावली के पूर्व में स्थित जिलों में जनसंख्या का औसत घनत्व 106 से 254 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के बीच है। ट्रान्स-यमुना भू-भाग में राज्य के उत्तर-

2. India, 1983, P. 9-13.

पूर्व में स्थित झुन्झुनू, सीकर, जयपुर, भरतपुर और अलवर आदि जिलों में तथा दक्षिण में स्थित डूंगरपुर व बांसवाड़ा जिलों में भी जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है। इन जिलों में औसत घनत्व 174 से 254 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। बीकानेर, बाड़मेर और जैसलमेर जिलों में जनसंख्या का घनत्व 40 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी कम है। राज्य में केवल जैसलमेर जिले में ही सबसे कम घनत्व पाया जाता है जहां केवल 6 व्यक्ति ही प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करते हैं। जनसंख्या के इस असमान वितरण के लिये जो कारण उत्तरदायी हैं वे सभी मानचित्र से स्वयं स्पष्ट हो जाते हैं। राज्य की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण है तथा वह कृषि पर निर्भर है। इसलिये कृषि उपयुक्त क्षेत्रों में जहां जल आपूर्ति निश्चित और धरातल समतल है, जनसंख्या का घनत्व अधिक देखने को मिलता है।

जनसंख्या घनत्व कई कारणों का परिणाम है। इनमें प्राकृतिक, सामाजिक, कृषि और ऐतिहासिक आदि कारकों को गिनाया जा सकता है। इन सभी में प्राकृतिक कारक अधिक महत्वपूर्ण है। राज्य में जनसंख्या के केन्द्र की अवस्थिति प्राय: उपजाऊ भूमियों के चारों ओर दिखाई देती है। यह न केवल गांवों के लिये लागू होता है वल्कि वड़े नगरों के लिये भी। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये अगर कोई विशेष कारण न हो तो गांव की सबसे अच्छी भूमि सीमान्त पर दूसरे गांव की अवस्थिति पर मिलेगी। सामान्यत: प्रदेश के अत्यधिक उपजाऊ भू-भाग पर जनसंख्या का घनत्व सघन बसे होने के कारण अधिक है। राजस्थान में जनसंख्या के औसत घनत्व की प्रवृत्ति को देखते हुये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जनसंख्या पूर्व से पश्चिम की ओर कम होती जाती है तथा पश्चिमी शुष्क प्रदेश में दक्षिण से उत्तर की तरफ बीकानेर तक कम होती जाती है। गंगानगर में अगर सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध न होती तो यह प्रवृत्ति गंगानगर जिले पर लागू होती।

राजस्थान के प्राकृतिक प्रदेशों के औसत घनत्व का आंकलन करने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि जनसंख्या का सबसे अधिक औसत घनत्व (185) पहाड़ी प्रदेश में मिलता है जब कि पूर्वी मैदानी प्रदेश में यह 166 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। औसत घनत्व पठारी प्रदेश में 119 व्यक्ति तथा शुष्क प्रदेश में 55 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर मिलता है। पहाड़ी प्रदेश में सबसे अधिक घनत्व इसलिये मिलता है क्योंकि एक तो उदयपुर तथा अजमेर जिले में जनसंख्या का अधिक केन्द्रीयकरण है तथा दूसरे अन्य जिलों का आकार छोटा होने के कारण क्षेत्रफल का कम होना है।

जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting the Density of Population)

1. **उच्चावचन**—राज्य में जनसंख्या के वितरण और घनत्व के निर्धारण में भू-आकृतियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। जनसंख्या के बड़े-बड़े केन्द्र मैदानी भू-भागों में, जहाँ जल की आपूर्ति अच्छी है, पाये जाते हैं। जल की आपूर्ति चाहे वर्षा अथवा सिंचाई के द्वारा ही क्यों न हो। जल की पर्याप्त आपूर्ति, उपजाऊ मिट्टी और खाद्यान्नों का उत्पादन मुख्य उत्तरदायी कारक है। राज्य में जनसंख्या का अधिक केन्द्रीयकरण अरावली के पूर्व में स्थित मैदानी क्षेत्रों की नदी घाटियों में तथा अरावली के पश्चिम में लूनी बेसिन तथा उपपर्वतीय क्षेत्र की समतल भूमियों में भी पाया जाता है। साधारणत: इन मैदानी क्षेत्रों में विशेष रूप से ट्रान्स-यमुना के क्षेत्र में जनसंख्या का अधिकतम घनत्व इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि यह क्षेत्र श्रेष्ठ खाद्यान्न उत्पादक क्षेत्र है। पहाड़ी क्षेत्र से नदी द्वारा अपरदित पदार्थों के फलस्वरूप इस क्षेत्र की मिट्टियों का नवीनीकरण होता रहता है जिससे निम्न-भूमियों में स्थित भू-भाग हमेशा उपजाऊ बने रहते हैं।

राज्य के दक्षिणी-पूर्वी भाग में कुछ क्षेत्र सघन जनसंख्या वाले हैं। ये सभी क्षेत्र निम्न भूमियों में स्थित हैं जिनमें वर्षा पर्याप्त मात्रा में तथा नियमित रूप से होती है। अत: जल की आपूर्ति पर्याप्त है। दक्षिणी-पूर्वी भाग में सामान्यत: मिट्टी अधिक उपजाऊ है। यहाँ काली मिट्टी के विस्तृत क्षेत्र पाये जाते हैं जिसमें गेहूं और जौ की कृषि की जाती है।

सिरोही, पाली, सीकर और झुन्झुनू जिलों के अलावा अरावली श्रृंखला के पश्चिम में स्थित सभी जिले पश्चिमी रेतीले मैदान पर विस्तृत हैं। पश्चिमी रेतीला मैदान शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों से निर्मित है। इस क्षेत्र

के अधिकांश भाग में अति शुष्क दशायें पायी जाती हैं। वर्ष के अधिकांश महीनों में बहुत ऊँचे तापक्रम पाये जाते हैं। इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र को छोड़कर सिंचाई की सुविधाएँ नगण्य हैं और भूमि सतह विस्तृत रेत के प्रसार से ढ़की हुई है। जिसके परिणामस्वरूप वहाँ जनसंख्या का घनत्व बहुत कम पाया जाता है। पश्चिमी भू-भाग में केवल लूनी नदी ही अनित्यवाही है जो अपने बेसिन में सिंचाई की सुविधाएं प्रदान करती है। कुछ छोटी सहायक नदियां इस बेसिन में प्राय: बाढ़ ले आती हैं जिसके परिणामस्वरूप काँपीय पदार्थ का जमाव बेसिन के कुछ भागों में हो जाता है। इन कांपीय पदार्थ जमाव क्षेत्रों में गेहूं की कृषि की जाती हैं। लूनी बेसिन क्षेत्र में पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक जनसंख्या निवास करती है।

वर्षा—जनसख्या के घनत्व और वर्षा इन दोनों के बीच काफी गहरा सम्बन्ध परिलक्षित होता है। प्राय: यह कहा जाता है कि उपजाऊ मिट्टी के साथ वर्षा और धरातल यह दोनों मिलकर जनसंख्या के घनत्व को निर्धारित करते हैं। हालांकि यह एक विस्तृत सामान्यीकरण है जिसमें कई-अपवाद हो सकते हैं और इसे हमेशा लागू भी नहीं किया जा सकता। राजस्थान में जनसंख्या का घनत्व पश्चिम से पूर्व की ओर तथा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ता है। जैसलमेर में जनसंख्या का घनत्व सबसे कम मिलता है क्योंकि यह राज्य का सबसे शुष्कतम भाग है जहाँ वर्षा की मात्रा 10 सेन्टीमीटर से भी कम है। अलवर और भरतपुर जो राज्य के पूर्व में स्थित है। सबसे अधिक जनसंख्या का घनत्व क्रमश: 213 व 254 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर रखते हैं। दक्षिण-पूर्व में स्थित कुछ जिलों में जैसे झालावाड़ जहां उत्तरी-पूर्वी प्रदेश की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। जनसंख्या का घनत्व 127 व्यक्ति ही प्रति वर्ग किलोमीटर पाया जाता है। दक्षिण में अरावली के पूर्वी किनारों पर स्थित डूंगरपुर लगभग 90 सेन्टीमीटर वर्षा प्राप्त करता है तथा साथ ही इसका धरातल पश्चिम में पहाड़ी व ऊबड़-खावड़ है फिर भी इसका घनत्व 185 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। उदयपुर में जनसंख्या का घनत्व 193 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा जिलों का एक तो आकार छोटा है। दूसरे, कृषि के लिये अच्छी और उपजाऊ भूमि उपलब्ध है। तीसरे, अधिकतर जनसंख्या भील व मीणा जाति की है जिनका जीवनस्तर निम्न हैं। इन सभी कारणों के फलस्वरूप डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा जिलों में जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

अधिवास—पश्चिमी राजस्थान में मारवाड़ का शुष्क मैदान, जैसलमेर, बाड़मेर और बीकानेर आदि के भाग सम्मिलित हैं। बीकानेर, बाड़मेर, तथा जैसलमेर में जनसंख्या का घनत्व 40 व्यक्ति से भी कम प्रति वर्ग किलोमीटर मिलता है। जैसलमेर में सबसे कम महत्व केवल 6 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। इस समस्त प्रदेश में वर्षा कम होती है। जलवायु की दशायें अनुकूल नहीं हैं। धरातल आकृतियाँ वायुढ़ वालू कटक द्वारा बनी है तथा जलप्रवाह मुख्यरूप से आन्तरिक है। इन सबके बावजूद, राज्य के दूरस्थ भागों में भी मनुष्य ने अपने अधिवास बनाने में सफलता पायी है। बहुत से अधिवास जैसे नोखा, बाप, बीकमपुर, निरासर, सिहार और कई अन्य इस प्रदेश में विकसित हो चुके हैं। जल आपूर्ति कुओं से उपलब्ध करवायी जाती है। इस क्षेत्र के कुओं में पानी काफी गहराई पर मिलता है। फलौदी के उत्तर-पश्चिम में जहाँ वार्षिक वर्षा 20 सेन्टीमीटर से भी कम होती है। जल कभी-कभी 50 मीटर या इससे भी अधिक गहराई से निकाला जाता है। इस क्षेत्र में अर्द्ध चन्द्राकार वालुकास्तूपों की शृंखला जिसकी औसत ऊँचाई 30 मीटर से अधिक है, धरातल को ढ़के हुए है। गंगानगर जिले के उत्तर-पश्चिम में स्थित भूमि के कुछ भागों को इन बालुकास्तूपों से मुक्त करा कर पुन: कृषि कार्य सिंचाई सुविधा सम्भव होने के कारण प्रारम्भ कर दिये गए हैं। जैसलमेर के अति दूरस्थ पश्चिमी भाग, बीकानेर और उत्तरी-पश्चिमी बाड़मेर आदि 10 सेन्टीमीटर से 25 सेन्टीमीटर तक वर्षा प्राप्त करते हैं। यह वर्षा की मात्रा कृषि कार्यो के लिये पूर्णतया अपर्याप्त होती है। जैसलमेर मरुस्थलीय भाग और दक्षिणी बाड़मेर मरुस्थलीय भाग के बीच गड़रा-रोड से फालसुण्ड तक की सड़क एक विभाजक रेखा के रूप में स्थित है। उत्तरी रेगिस्तान में सीफ अथवा पवनानुवर्ती वालुकास्तूप पाये जाते हैं जबकि दक्षिणी भाग में बरखान अथवा अनुप्रस्थ वालुकास्तूप मिलते हैं। दक्षिण में स्तूपों की ऊँचाई भूमि सतह से 50 मीटर 100 मीटर के

बीच है तथा इनकी प्रकृति स्थिर है क्योंकि ये हवाओं के द्वारा स्थानान्तरित नहीं होते हैं। ये स्थिर स्तूप वाले क्षेत्र जनसंख्या के अधिक घनत्व को दर्शाते हैं उदाहरणार्थ औसतन 25 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर का घनत्व (6) की अपेक्षा कहीं अधिक है। रेल मार्ग बाड़मेर से भीमर-लाई तक जाता है, इस क्षेत्र के छिछले बेसिन के बीचों-बीच से गुजरता है। यह छिछले बेसिन ग्रामीण अधिवासों से घिरे हुए हैं। बाड़मेर की जनसंख्या 55,554 है। यह इस क्षेत्र का सबसे बड़ा व्यापारिक नगर है। बाड़मेर गिरिपद निम्नीकरण की सतह के पूर्वी पार्श्व के ढ़ाल पर स्थित है जो जुरेसिक बलुआ पत्थर पहाड़ियों के कटाव फलस्वरूप बनी है। अवशिष्ट पहाड़ियाँ भी यत्र-तत्र दिखाई देती हैं।[3] राज्य के पश्चिमी भाग में पृथक और अवशिष्ट पहाड़ियों के शैलसमूह मिलते हैं जो गर्म शुष्क धरातल की विशेषताओं को प्रदर्शित करते हैं। अधिवासों की प्रकृति किसी सीमा तक बालुकास्तूपों के आकार और अवस्थिति द्वारा निर्धारित होती हैं। लूनी नदी के पूर्व में बालुकास्तूपों स्थिर प्रकृति के हैं। जनसंख्या का घनत्व 85 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है जो इस प्रदेश में सबसे अधिक है।

जैसलमेर जिला तथा इसके समीपवर्ती भू-भाग अधिक जनशून्य हैं और स्थानान्तरित बालुकास्तूप जो स्थानीय भाषा में 'धरियन' के नाम से जाने जाते हैं, से ढका हुआ है। शाहगढ़ के पश्चिम में धरियन शृंखला के रूप में विस्तृत हैं और बहुत ही संश्लिष्ट प्रकार के हैं। मरुस्थली के बालगर्तो में ही मनुष्य ने आश्रय प्राप्त किया हुआ है। अनिश्चित आस्तित्व वाले ऐसे अधिवासों की संख्या 120 से अधिक नहीं है। इस प्रकार के अधिवासों की अधिक संख्या जैसलमेर के पेडीप्लेन में पाई जाती है। यह जुरेसिक बलुआ पत्थरों की सतह पर हुए अपरदन से बने हैं। छोटी, आवर्तक और अनिरन्तर जलधारायें जैसलमेर पेडीप्लेन को पार करती हैं जिसके शुष्क पेटे और किनारे भूमिगत जल के लिये बड़ी आसानी से खोदे जा सकते हैं जहाँ कहीं भी जल-आपूर्ति अधिक या कम मात्रा में निश्चित होती है वहीं अधिवासों का आविर्भाव ही जाता है। जैसलमेर के उत्तर में बड़ी संख्या में प्लाया झीलें जिन्हें 'खडीन' कहा जाता है, मिलती है जो प्रायः निम्न कागारों से घिरी रहती है। ये झीलें यद्यपि केन्द्रोन्मुख प्रवाह से जुड़ी हैं फिर भी वर्षा की अधिकांश अवधि में सूखी रहती हैं परन्तु उनकी महत्वता इस तथ्य से है कि वे नमक का उत्पादन करती हैं। यहाँ के कई अधिवास मोहनगढ़, जो सबसे बड़ा गांव है और जिसकी जनसंख्या लगभग 2500 है, की स्थिति इन खडीनों में नमक जमावों के फलस्वरूप है।[4] अरावली के समीप वर्षा उत्तर में 50 सेन्टीमीटर और दक्षिण में 65 सेन्टीमीटर तक होती है। अतः पहाड़ियों से कई धारायें नीचे बह कर आती हैं। परिणामस्वरूप अरावली के पर्वतपदीय खण्ड में जनसंख्या का केन्द्रीयकरण मिलता है, विशेषकर त्रिकोणीय क्षेत्र में जो उत्तर में लूनी नदी और दक्षिण-पूर्व में जवाई, सुकड़ी नदियों द्वारा क्रमशः परिसीमित है। इस उपजाऊ भू-भाग में कई नगर स्थित हैं जिनमें पाली नगर मुख्य है। अधिवास, नमक की झीलों और संगमरमर की खानों के चारों तरफ भी विकासित हो चुके हैं। उत्तर-पूर्व में डीड़वाना और दक्षिण-पश्चिम में पचभद्रा विशिष्ट नमक नगर हैं। मकराना संगमर की खानों का प्रसिद्ध केन्द्र है। इस प्रदेश में जोधपुर शहर चट्टानीय सतह पर एक बहुत बड़े प्राचीन किले के चारों तरफ बसा हुआ है। लूनी के दक्षिण में स्थित कुछ पृथक-पृथक चट्टानी पहाड़ियां जो कि नग्न और जनशून्य हैं, इस क्षेत्र की धरातलीय विशेषताओं को प्रकट करती हैं जबकि अरावली के आधार पर बड़ी संख्या में गांव पाये जाते हैं जो पानी की आपूर्ति पहाड़ी जल-धाराओं से मानसून काल में प्राप्त करते हैं।

अरावली शृंखला जिसका विस्तार लगभग 550 किलोमीटर खेतड़ी से खेड़ब्रह्मा तक है व राज्य में उत्तरी-पूर्वी दिशा से दक्षिणी-पश्चिमी दिशा में विस्तृत है, मानवीय अधिवासों के लिये उपयुक्त परिस्थितियां प्रदान करने में बाधक सिद्ध होती है क्योंकि अरावली पहाड़ियां जो कठोर क्वार्टजाईट चट्टानों से निर्मित हैं, संलग्न मैदानों से एक दम ऊपर उठ गई है। अरावली

3. Population Map, Rajkot plat 112, Survey of India, 1/1 Million, 1962.
4. Ibid, 1962.

शृंखला में एक तो गांवों की संख्या बहुत कम है और दूसरे दूर-दूर स्थित हैं। बहुत से मामलों में अधिवास बहुत छोटे हैं जिनमें कुछ ही परिवार रहते हैं। ये अधिवास या तो जंगलों की सफाई करके बना दिये गये हैं अथवा ऊबड़-खाबड़ क्वार्टज कटकों के बीच गर्तों में स्थित हैं। जनसंख्या का कुछ केन्द्रीयकरण ऊबड़-खाबड़ कटकों के बीच जहाँ विस्तृत समतल सतह मिलती है, दृष्टिगत होता है जैसे कुम्भलगढ़ और गोगुन्दा के बीच भोराट पठार पर। ब्यावर के उत्तर में कई अन्तराल नगर मिलते हैं जिनमें अजमेर शहर सब नगरीय केन्द्रों में बड़ा है। सांभर झील के उत्तर में भी इसी प्रकार का एक अन्तराल है जिसके चारों ओर कई अधिवास विकसित हो चुके हैं। राज्य के दक्षिण में एक कृत्रिम झील जयसमन्द और झीलों का नगर उदयपुर स्थित है। अरावली के उत्तरी भाग में जो अधिक कटा-फटा है, कुछ अधिवास मिलते हैं जबकि अलवर अरावली पहाड़ियों के पूर्वी किनारे पर स्थित है।

पूर्वी राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से पश्चिमी राजस्थान की अपेक्षा थोड़ा ही बड़ा है लेकिन पश्चिमी भाग की अपेक्षा जनसंख्या कहीं अधिक पाई जाती है। मेवाड़ का मैदान पूर्वी राजस्थान के दक्षिणी और पूर्वी भागों में विस्तृत है। इस क्षेत्र में बनास नदी तथा इसकी सहायक नदियां बहती हैं। यहाँ वर्षा अधिक होती है। मिट्टियाँ उपजाऊ है तथा सिंचाई की सुविधा कुओं और तालाबों से सम्भव है। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ इस प्रकार की सुविधायें हों, जनसंख्या छितरी हुई मिलती है। ग्रामीण जनसंख्या नदियों के सहारे और तालाबों के समीपवर्ती सिंचित क्षेत्र पर केन्द्रित है। प्रसिद्ध नाथद्वारा मन्दिर नगर इस क्षेत्र में स्थित है। जयपुर का मैदान पूर्वी राजस्थान के उत्तरी भागों में विस्तृत है और कांपीय मिट्टी व बालू प्रवाह से निर्मित है। जयपुर कांपीय मैदान के उत्तरी किनारे पर अरावली के बाह्य क्षेत्र में स्थित है। पूर्वी राजस्थान में पठार और वनस्पति से ढके कटक विरल जनसंख्या वाले क्षेत्र हैं। ये पठार और कटक विन्ध्यन युग की बलुआ पत्थर चट्टानों से निर्मित हैं। बून्दी नगर एक बलुआ पत्थर कटक पर स्थित है। चम्बल, कालीसिन्ध और पार्वती नदियों द्वारा सिंचित समतल भूमि के किनारे पर कोटा शहर बसा हुआ है।

राजस्थान में जनसंख्या का सामान्य वितरण
(General Distribution of Population)

वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की जनसंख्या 342.62 लाख है जिसका वितरण राज्य के विभिन्न भागों तथा जिलों में एक सा नहीं है। जनसंख्या के वितरण मानचित्र से स्पष्ट होता है, कि जनसंख्या के वितरण को कई प्रकार के कारक प्रभावित करते हैं। राज्य की भूगर्भीय संरचना, उच्चावचन, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति तथा विभिन्न क्षेत्रों की कृषि क्षमताओं के सन्दर्भ में जनसंख्या के प्रतिरूपों तथा वितरण की व्याख्या की जा सकती है। अरावली शृंखला राज्य में उत्तर-पूर्व से दक्षिण पश्चिम दिशा में विस्तृत है। यह राज्य में जनसंख्या विभाजक का कार्य करती है। सामान्यतया अरावली शृंखला के पश्चिम और उत्तर-पश्चिम की तरफ जनसंख्या का घनत्व कम होता जाता है जबकि इसके पूर्व और उत्तर-पूर्व में घनत्व बढ़ता जाता है।

पूर्व की नदी घाटियों में तथा उत्तरी पूर्वी मैदानों में सघन जनसंख्या पाई जाती है। नदी घाटियों से अरावली पर्वत की ओर जाने पर जहां कहीं भी पहाड़ियां बीच में आ जाती हैं, जनसंख्या की सघनता का क्रम टूट जाता है। अरावली प्रदेश में जनसंख्या का केन्द्रीयकरण कुछ उपजाऊ भूमि खण्डों तक ही समिति है। पश्चिम रेतीले मैदान की अधिकतर जनसंख्या इसके पूर्वी एवं उत्तरी भागों में निवास करती है। मरुस्थलीय भागों में जनसंख्या बिखरे जलस्त्रोतों के चारों तरफ केन्द्रित दिखलाई देती है। इन सभी से यह निष्कर्ष निकलता है कि जल की सुविधा व उत्तम खेतिहर भूमि तथा घनी जनसंख्या के बीच घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है। राज्य की 68·91% जनसंख्या कृषि पर आधारित है। अतः कृषि प्रधान क्षेत्र औसत से अधिक घने बसे हुए हैं। न केवल राज्य की नदी घाटियों के मैदानों में बल्कि राज्य के उत्तरी भागों में भी जनसंख्या अधिक पाई जाती है। कृषि की सुविधाओं में वृद्धि होने के साथ ही जनसंख्या में भी वृद्धि हो जाती है।

राज्य में सबसे अधिक जनसंख्या जयपुर जिले (34·21 लाख) में और सबसे कम जनसंख्या जैसलमेर (2.42 लाख) जिले में मिलती है। इस प्रकार राजस्थान की कुल जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत जयपुर जिले में तथा 0·71 प्रतिशत जैसलमेर में निवास करता है। राजस्थान की घनी जनसंख्या वाले जिलों में भरतपुर, जयपुर, अवलर, झुन्झूनू, धौलपुर, उदयपुर आदि मुख्य हैं। इन जिलों में अधिक जनसंख्या समतल एवं उपजाऊ भूमि, जल आपूर्ति, सुखद जलवायु तथा खनिजों की सम्पन्नता के कारण केन्द्रित है। अतः जनसंख्या के वितरण पर भौगोलिक प्रभाव स्पष्ट देखा जाता है। घनी जनसंख्या राजस्थान के उन्हीं भागों में पाई जाती है जहाँ उपजाऊ कच्छारी मैदान हैं, जहाँ सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध हैं अथवा जहाँ अच्छी वर्षा होती है। इसके
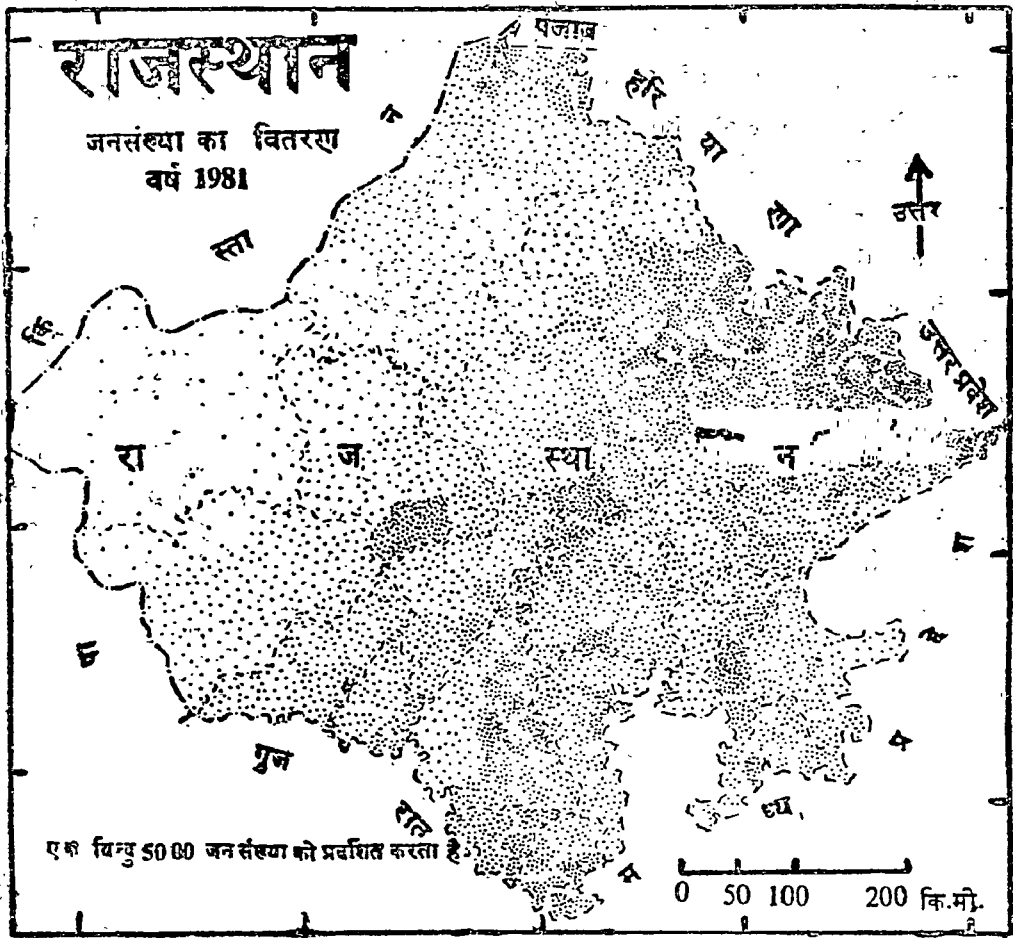
राजस्थान में जनसंख्या का वितरण

विपरीत न्यूनतम जनसंख्या शुष्क अथवा पहाड़ी भागों में पायी जाती हैं। जनसंख्या के वितरण से सम्बन्धित तथ्य पृष्ठ 241 पर दी गयी तालिका में दर्शाये गये है।

जनसंख्या का प्रादेशिक वितरण (Regional Distribution of Population)

राजस्थान राज्य प्रशासनिक दृष्टि से 27 जिलों में विभक्त है जिनकी अपनी-अपनी सीमायें हैं। ये सीमायें प्राकृतिक भागों से मेल रखती हो, यह अनिवार्य नहीं है। बल्कि प्रत्येक प्राकृतिक विभाग के अन्तर्गत एक से अधिक जिले सम्मिलित होते हैं। दूसरे, राज्य की प्राकृतिक दशा सर्वत्र समान नहीं है। कहीं पहाड़ है तो कहीं मैदान, एक ओर रेगिस्तान है तो दूसरी ओर लहलहाते हुए मैदान, इसलिये जनसंख्या के वितरण पर प्राकृतिक दशाओं का प्रभाव पड़ता है। किसी प्राकृतिक विभाग में

सन् 1901 से राजस्थान में दशाब्दी विषमता

वर्ष	शताब्दी विषमता (लाखों में)		शताब्दी विषमता (प्रतिशत में)		सन् 1901 से शताब्दी विषमता प्रगामी प्रतिशत में	
	भारत	राजस्थान	भारत	राजस्थान	भारत	राजस्थान
1901 आधार वर्ष						
1911	+ 136.97	+ 6.90	+ 5.75	+ 6.70	+ 5.75	+ 6.70
1921	— 7.72	— 6.91	— 0.31	— 6.29	+ 5.42	— 0.01
1931	+ 276.56	+14.55	+11.00	+14.14	+ 17.02	+ 14.12
1941	+ 396.83	+21.16	+14.22	+18.01	+ 33.67	+ 34.68
1951	+ 424.20	+21.07	+13.31	+15.20	+ 51.47	+ 55.15
1961	+ 776.83	+41.85	+21.51	+26.20	+ 84.25	+ 95.80
1971	+1089.25	+56.10	+24.80	+27.83	+129.94	+150.30
1981	+1356.50	+84.96	+24.75	+32.36	+186.84	+232.83

जनसंख्या का विकास (Growth of Population)

राजस्थान भारत का नवां सबसे बड़ा राज्य है। राजस्थान राज्य देश के लगभग 10.43 प्रतिशत क्षेत्रफल पर विस्तृत है लेकिन इस पर समग्र देश की केवल 5.13 प्रतिशत जनसंख्या ही निवास करती है। राज्य की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है और गत तीन दशकों में यह दुगनी हो गयी है अर्थात् जनसंख्या वर्ष 1951 में 1.59 करोड़ से बढ़कर वर्ष 1981 में 3.42 करोड़ हो गयी। देश में 1951-61 के दशक में जनसंख्या वृद्धि 21.51 प्रतिशत थी लेकिन राज्य में इस दशक की अवधि में 26.2 प्रतिशत आलेखित की। इसी भांति 1971-81 के दशक में देश की तुलना में 24.75 प्रतिशत की अपेक्षा 32.97 प्रतिशत थी। इस प्रकार अगले 20 वर्षों में राजस्थान की जनसंख्या में 70 प्रतिशत बढ़ोतरी का अनुमान है। दूसरे शब्दों में राज्य की जनसंख्या शताब्दी के अन्त तक 5.50 करोड़ से अधिक होने की सम्भावना है। ऊपर दी हुई तालिका में सन् 1901 से राष्ट्रीय वृद्धि दर की तुलना में दसवर्षीय वृद्धि दर तथा आगामी वृद्धि दर दर्शायी गई हैं। जनसंख्या की वृद्धि आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि राज्य ने केवल 1911-21 के दशक में ऋणात्मक वृद्धि आलेखित की जबकि इस शताब्दी के सभी उत्तरोत्तर दशकों में देश की तुलना में अधिक वृद्धि दर को निरन्तर बनाये रखा। सबसे अधिक वृद्धि दर दशक 1971-81 में रिकार्ड की गई। वास्तविक अंकों में यह वृद्धि सन 1901 से 1981 तक अर्थात 80 वर्षों में 238 लाख हुई। प्रारम्भिक 50 वर्षों में जनसंख्या में वृद्धि लगभग 57 लाख की हुई जबकि केवल 1971-81 वाले गत दशक में राज्य की जनसंख्या में वृद्धि 83 लाख की रिकार्ड की गई जो 50 वर्षों की वृद्धि की संख्या से भी 26 लाख अधिक है।

राष्ट्रीय वृद्धि दर से तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि राज्य में जनसंख्या की वृद्धि दर राष्ट्रीय वृद्धि दर से भी अधिक रही। राज्य के पश्चिमी जिलों में वृद्धि विशेषकर असाधारण परिलक्षित होती है हालांकि कोई भी वैज्ञानिक विश्लेषण इस असाधारण वृद्धि के लिये प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। फिर भी मुख्य कारकों में उच्च जन्मदर, निम्न मृत्यु दर, आवास तथा सिंचाई की सुविधाओं को जनसंख्या की वृद्धि के लिये उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

वृद्धि दर को प्रभावित करने वाले अन्य मुख्य कारकों में स्थानान्तरण को भी एक कारक माना जा सकता है। राज्य के पश्चिमी जिलों में उच्च वृद्धि दर के लिये स्थानान्तरण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये
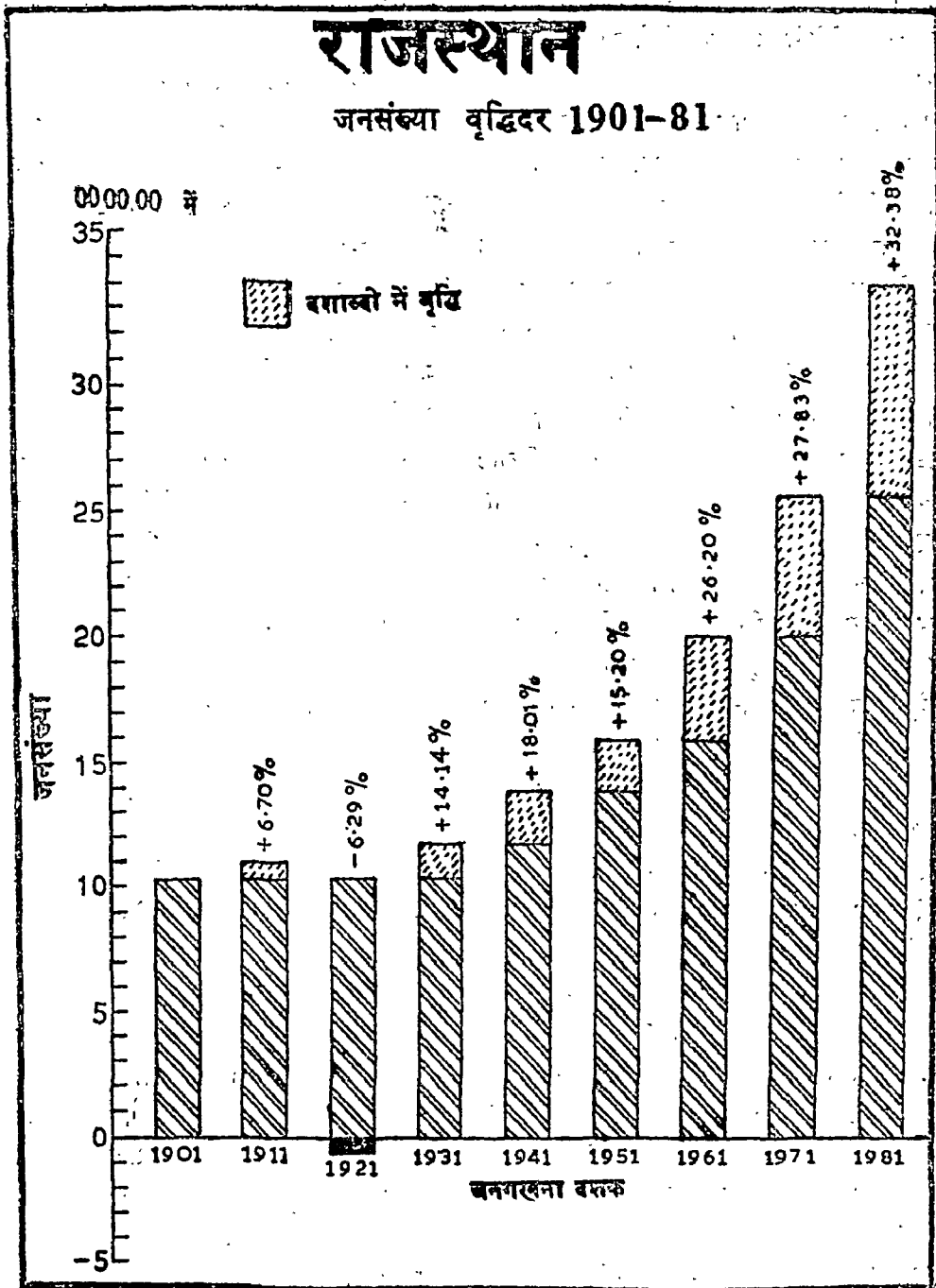
राजस्थान में जनसंख्या का विकास

जिले अपने पड़ौसी जिलों या राज्यों से जनसंख्या के आवास को आकर्षित करते हैं क्योंकि—

(i) इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र में भूमि का आवंटन तथा विकास सम्बन्धी क्रियाओं का होना।

(ii) इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र में पोंग बांध से विस्थापित लोगों को भूमि का आवंटन किया जाना।

(iii) भारत-पाक युद्ध 1971 के पश्चात् शरणार्थियों का इन जिलों में आगमन।

(iv) सिंचाई की सुविधाओं के फलस्वरूप कृषि योग्य क्षेत्रफल में वृद्धि होने से अधिक लोगों का अन्य राज्यों से आगमन।

इस प्रकार जनसंख्या में प्राकृतिक वृद्धि तथा अन्य उपरोक्त कारणों के अलावा अकाल से प्रभावित पश्चिमी जिलों से प्रवासियों की संख्या में काफी कमी आई है क्योंकि चरागाह तथा जल आपूर्ति सुविधा पिछले दशकों की अवधि में काफी विकसित की गई हैं जिससे अधिवासीय दशाओं में स्थायित्व आया है और परिणामस्वरूप जनसंख्या की वृद्धि में काफी तेजी आई है।

राजस्थान के समस्त जिलों में बीकानेर जिले ने सबसे अधिक वृद्धि दर लगभग 48.8 प्रतिशत रिकार्ड की है। यद्यपि राजस्थान के विभिन्न जिलों में छोटी प्रशासनिक इकाईयों के लिये रिकार्ड की गई वृद्धि दरों का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट होता है कि अधिकतम वृद्धि के क्षेत्र वास्तव में कहीं और ही पाये जाते हैं। तहसील स्तर पर वृद्धि की बहुत सुनिश्चित विषम दरें देखने को मिलती हैं उदाहरणार्थ गंगानगर जिले की अनूपगढ़ तहसील में वृद्धि की अधिकतम दर 152 प्रतिशत रही। तत्पश्चात् हनुमानगढ़ में 56 प्रतिशत तथा सूरतगढ़ में 54 प्रतिशत वृद्धि दर रिकार्ड की गई। यह सभी तहसीलें गंगानगर ज़िले की हैं और इनमें इतनी अधिक वृद्धि दर होने के लिये मुख्य कारण इन्दिरा गांधी नहर के सहारे मरुभूमि के नये क्षेत्रों को खोलना तथा भूमि का आवंटन करना है। राज्य के अन्य जिलों की तहसीलों जैसे जयपुर, फलौदी, जोधपुर, शिव, चोहटन, रामगंज मण्डी तथा लाडपुरा आदि ने गत दशक (1971-81) में जिलों में सबसे अधिक वृद्धि दर 48 प्रतिशत रिकार्ड करने वाले बीकानेर जिले की तुलना में अधिक वृद्धि दर रिकार्ड की है। राज्य के बहुत अधिक वृद्धि दर रिकार्ड करने वाले प्रदेश में स्थित 37 तहसीलें ऐसी हैं जहां वृद्धि 35 प्रतिशत से भी अधिक आलेखित की गई। इस क्षेत्र में अधिकतम वृद्धि 152 प्रतिशत अनूपगढ़ तहसील में मिलती है। कुल मिलाकर 53 तहसीलें ऐसी हैं जो राज्य की औसत वृद्धि दर 33 की अपेक्षा अधिक वृद्धि दर रखती हैं।

ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में अलग-अलग वृद्धि दरों का विश्लेषण किया जावे तो 86 तहसीलें ऐसी हैं जो ग्रामीण क्षेत्र के औसत वृद्धि दर 27 प्रतिशत से अधिक वृद्धि दर रखती हैं।

राज्य की 197 तहसीलों (1981) में से 57 तहसीलों में एक भी नगरीय केन्द्र नहीं है अर्थात् तहसील मुख्यालय भी नगर इकाई नहीं है। राज्य के नगरीय क्षेत्रों में औसत वृद्धि दर 57 प्रतिशत आंकलित की गई है। बड़े शहरों तथा नगरों की वृद्धि दर का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि जयपुर, जोधपुर, कोटा, उदयपुर, सीकर, भीलवाड़ा तथा भरतपुर आदि शहरों की जनसंख्या में गत दो दशकों में दुगनी से भी अधिक वृद्धि हुई है। 1971 की जनगणना में कोई भी शहर दसलाखी नहीं था लेकिन अब जयपुर ने वह स्थान प्राप्त कर देश के प्रथम 12 शहरों में अपनी गिनती करवा ली है। जैसलमेर नगर जो कि सबसे कम आबादी वाले जिले का मुख्यालय है, में भी वर्ष 1951 के बाद से जनसंख्या में ढाई गुना वृद्धि हुई है।

राजस्थान की जनसंख्या से सम्बन्धित तथ्यों के सांख्यिकी विवरण का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि राजस्थान के प्रत्येक जिले में गत 80 वर्षों में जनसंख्या में वृद्धि हुई है। जिन जिलों में पहले से जनसंख्या अधिक थी, लोग कृषि, व्यापार व अन्य व्यवसायों में संलग्न थे वहाँ जनसंख्या की वृद्धि दर कम रिकार्ड की गई है। उदाहरणार्थ सवाईमाधोपुर में 149.75 प्रतिशत, अजमेर में 172.72 प्रतिशत व सीकर में 186.20 प्रतिशत वृद्धि हुई लेकिन कई जिलों में सिंचाई व परिवहन की सुविधाएं सुलभ होने तथा उनमें विकास होने से तथा राज्य के पश्चिमी जिलों में इन्दिरा गांधी नहर के सहारे भूमि का आवंटन किये जाने पर जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि आलेखित की गई है। उदाहरणार्थ गंगानगर जिले में सिंचाई की सुविधाओं की सुलभता के कारण राज्य में सबसे अधिक वृद्धि 1315.60 आलेखित की गई। डूंगरपुर जिले में खनन व्यवसाय के विकसित होने के कारण 583 प्रतिशत; चूरू तथा बीकानेर तथा बांसवाड़ा आदि जिलों में कृषि तथा पशुपालन की सुविधाएं सुलभ होने के साथ-साथ इन पर आधारित उद्योगों के परिणामस्वरूप क्रमश: 453.64, 446.70 तथा 443.17 प्रतिशत वृद्धि रिकार्ड की गई। अत: निष्कर्ष के रूप में यह कह

सकते हैं कि राज्य में कृषि, वनस्पति, खनिज तथा पशुओं से सम्बन्धित संसाधन विपुलता में हैं, सिंचाई की सुविधाएं निरन्तर विकसित की जा रही हैं, शक्ति अधिक से अधिक उत्पादित करने तथा अन्तर्राज्यीय समझौतों से अधिक प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं जिससे निकट भविष्य में राज्य का औद्योगीकरण तेज गति से होगा और राज्य भविष्य में जनसंख्या की अपनी वृद्धि-दर को बनाये रखेगा ।

लिंग अनुपात

राजस्थान की कुल जनसंख्या में 178.54 लाख पुरुष तथा 164·08 लाख स्त्रियां हैं। इस प्रकार राज्य में एक हजार पुरुषों के पीछे 919 स्त्रियाँ हैं। यह अनुपात राष्ट्रीय अनुपात 935 से कम है लेकिन फिर भी जहाँ तक राजस्थान का प्रश्न है, इसके लिंगानुपात की स्थिति में गत दशकों के लिंगानुपात की अपेक्षा कुछ सुधार हुआ है। सन 1901 में राज्य में 1000 पुरुषों के पीछे 905 स्त्रियाँ थी। उसके तत्पश्चात यह अनुपात निरन्तर बढ़ते हुए वर्ष 1951 में 921 हो गया। लेकिन वर्ष 1961 में यह घटकर 908 ही रह गया। वर्ष 1971 से पुनः इसमें सुधार आया और वर्ष 1971 में 911 तथा वर्ष 1981 में 919 लिंग अनुपात रिकार्ड किया गया। राजस्थान के लिंगानुपात में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में विषमता दृष्टिगत होती है। जिला स्तर पर इस अनुपात में 811 (जैसलमेर) से 1045 (डूंगरपुर) के बीच विषमता प्रतिलक्षित होती है। तहसील स्तर पर और भी कम अनुपात देखने को मिलता है। धौलपुर जिले की बसेड़ी तहसील में यह अनुपात 792 मिलता है जबकि डूंगरपुर जिले की आसपुर तहसील में यह अनुपात 1,100 है जो अपनी ओर अत्यधिक ध्यान आकर्षित करता है। तहसील स्तर के आंकड़ो से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि राजस्थान की 197 तहसीलों (1981) में से 94 तहसीलों में राज्य के औसत अनुपात 918 से अधिक लिंग-अनुपात पाया जाता है।

गत 80 वर्षो के आंकड़ो का अवलोकन करने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि आदिवासी जिले जैसे बांसवाड़ा तथा डूंगरपुर राज्य के अन्य क्षेत्रों व जिलों की अपेक्षा अधिक अनुपात रखते हैं जबकि जैसलमेर जिला सन 1951 से निरन्तर राज्य में कम अनुपात को बनाये हुए है।

राज्य स्तर पर ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों के लिये लिंगानुपात क्रमशः 934 और 885 है। यह भी देखा गया है कि जिला स्तर पर नगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में लिंगानुपात सामान्यतया अधिक है। राजस्थान के जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में लिंगानुपात में विषमता भरतपुर जिले के 830 से डूंगरपुर जिले के 1,056 के बीच मिलती है जबकि नगरीय क्षेत्रों में यह विषमता जैसलमेर जिले में 801 से सीकर जिले के 892 तक मिलती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि डूंगरपुर जिले के ग्रामीण क्षेत्र राज्य में सबसे अधिकतम लिंगानुपात रखते हैं और एक अपवाद स्वरूप है।

अन्त में राजस्थान में डूंगरपुर जिले के अलावा बाकी सभी जिलों में पुरुषों से स्त्रियों की संख्या कम है। मुख्यतः गंगानगर, बीकानेर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, सवाईमाधोपुर, जयपुर, जैसलमेर बूंदी तथा कोटा जिलों में तो 1000 पुरुषों के पीछे 900 से भी कम स्त्रियाँ है' इस तथ्य की पुष्टि राजस्थान की जनसंख्या के सांख्यिकीय विवरण से हो जाती है।

कार्यिक जनसंख्या

राजस्थान में मुख्य श्रमिक (Main Workers), सीमान्त श्रमिक (Marginal Workers) तथा अकार्यरत श्रमिक (Non-Workers) आदि के आँकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग 63 प्रतिशत भाग अकार्यरत श्रमिकों का है। मुख्य कार्यिक जनसंख्या लगभग 30 प्रतिशत से कुछ अधिक है जबकि सीमान्त कार्यिक जनसंख्या कुल जनसंख्या की केवल 6 प्रतिशत है। जिला स्तर पर भीलवाड़ा में सबसे अधिक अनुपात लगभग 38.41 प्रतिशत मुख्य कार्यिक जनसंख्या का है जबकि निम्नतम 24.45 प्रतिशत झुन्झुनू जिले में है। इस प्रकार सीमान्त श्रमिकों का अधिकतम प्रतिशत 17.21 डूंगरपुर जिले में मिलता है और सबसे कम 3.18 प्रतिशत अजमेर जिले में है। कुल जनसंख्या के अकार्यरत श्रमिकों का अधिकतम अनुपात सीकर जिले में पाया जाता है जबकि चित्तौड़गढ़ में यह सबसे कम है। राजस्थान की कुल कार्यिक

जनसंख्या में कृषि तथा अन्य आर्थिक क्रियाओं में संलग्न श्रमिकों के आंकड़ों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि राज्य की कुल कार्यिक जनसंख्या का 61.58 प्रतिशत कृषि कार्यों में और 7.32 प्रतिशत कृषि श्रमिकों के रूप में संलग्न है जबकि 1971 में इनमें क्रमशः 64.9 और 9.2 प्रतिशत कार्यिक जनसंख्या लगी हुई थी। वर्ष 1971 में 3.3 प्रतिशत श्रमिक घरेलू उद्योगों में थे जो बढ़कर वर्ष 1981 में 3.5 प्रतिशत हो गये। वर्ष 1971 में 22.3प्रतिशत की तुलना में वर्ष 1981 में 27.60 प्रतिशत अन्य उत्पादक और आर्थिक क्रियाओं जैसे, पशुपालन, जंगलात, मत्स्य, वृक्षारोपण, बाग खनन कार्य, विनिर्माण, मरम्मत, भवन निर्माण, व्यापार, वाणिज्य, परिवहन, गोदाम, भण्डारण, संचार तथा अन्य सेवाओं आदि में संलग्न हैं।

राज्य की कुल पुरुष जनसंख्या का लगभग 49.65
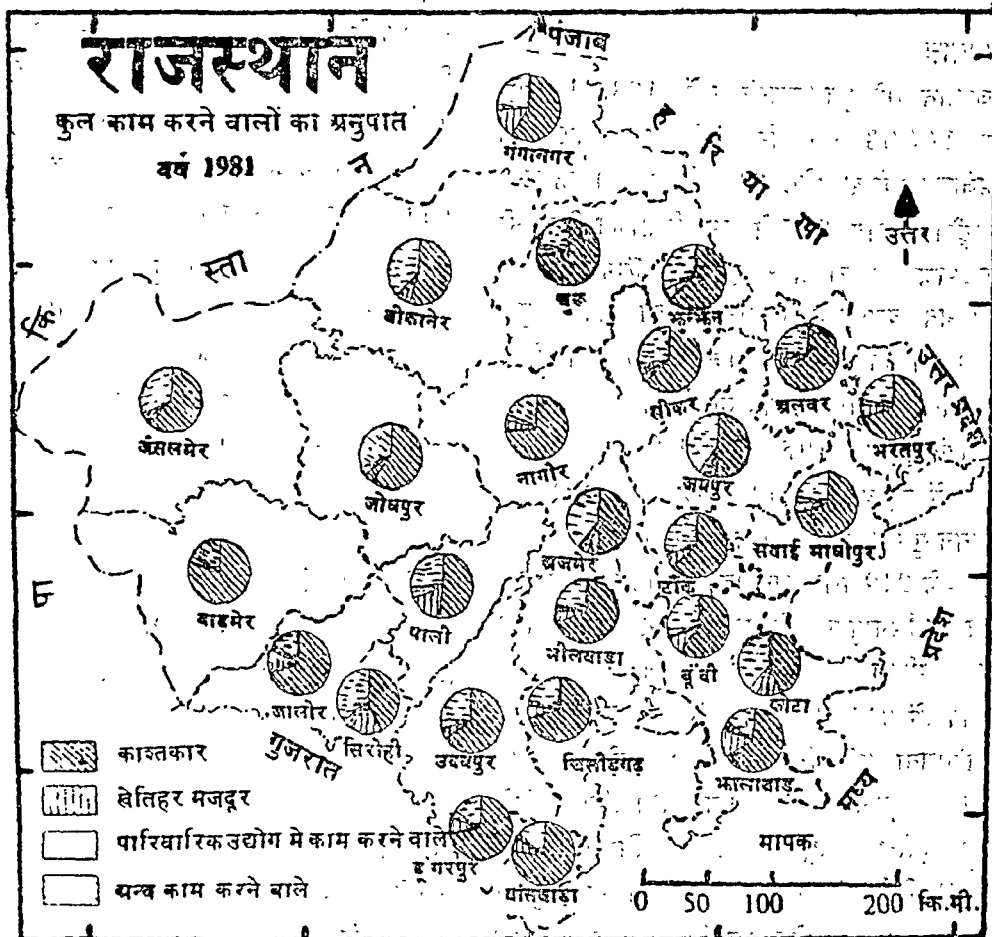
राजस्थान में कार्यिक जनसंख्या का अनुपात

प्रतिशत पुरुष कार्यिक जनसंख्या है। पुरुष कार्यिक जनसंख्या में से विभिन्न वर्गों में जैसे कृषि कार्यों में 61.4 प्रतिशत, खेतिहर श्रमिक के रूप में 5.97 प्रतिशत, परिवारिक उद्योगों में 3.7 प्रतिशत और अन्य आर्थिक क्रियाओं में 28.9 प्रतिशत कार्यिक श्रमिक संलग्न थे। पिछले एक दशक में छोटे पैमाने पर स्त्रियों ने आर्थिक क्रियाओं में हिस्सा लेना प्रारम्भ किया है। कुल स्त्रियों की जनसंख्या में से लगभग 9.44 प्रतिशत मुख्य श्रमिक, 11.71 प्रतिशत सीमान्त श्रमिक तथा शेष 78.85 अकार्यरत श्रमिकों के रूप में हैं। मुख्य स्त्री श्रमिकों का सबसे अधिक केन्द्रीयकरण अजमेर जिले में (18.95) मिलता है और निम्नतम भरतपुर जिले (2.75) में है। जहाँ तक सीमान्त स्त्री श्रमिकों का प्रश्न है, डूंगरपुर (आदिवासी जिले) में 30.98 प्रतिशत अधिकतम केन्द्रीयकरण दृष्टिगत होता है

जहाँ आदिवासी साधारणतया वनों की उपज तथा स्थानान्तरित कृषि अथवा मजदूरी पर निर्भर हैं । अजमेर जिले में सीमान्त स्त्री श्रमिकों का सबसे कम प्रतिशत (5.71) मिलता है । अकार्यरत स्त्रियों की संख्या का अधिकतम केन्द्रीयकरण गंगानगर जिले (90.06 प्रतिशत) में है जबकि निम्नतम प्रतिशत (61.90) डूंगरपुर जिले में मिलता है । कुल कार्यिक स्त्री जनसंख्या में से 66.6 प्रतिशत कृषि में एवं 15.6 प्रतिशत खेतिहर श्रमिकों के रूप में, 3.1 प्रतिशत पारिवारिक उद्योगों में तथा 14.6 प्रतिशत अन्य सेवाओं में संलग्न है ।

जिला स्तर पर कार्यिक जनसंख्या के विभिन्न वर्गों में संलग्न कार्य करने वालों के अनुपात का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि कार्यिक जनसंख्या का निम्नतम प्रतिशत 41.52 कोटा में तथा अधिकतम प्रतिशत 79.16 बाड़मेर जिले में काश्तकारों के रूप में है । खेतिहर मजदूरों का निम्नतम प्रतिशत 2.71 व 2.85 क्रमश: बीकानेर व बाड़मेर में तथा अधिकतम प्रतिशत 16.02 पाली व सिरोही जिलों में मिलता है । पारिवारिक उद्योगों में काम करने वालों का सबसे कम प्रतिशत 2.22 व 2.33 क्रमश: गंगानगर व बांसवाड़ा में तथा अधिकतम प्रतिशत 5.71 जयपुर में परिलक्षित होता है । अन्य काम करने वालों का निम्नतम प्रतिशत 15.22 बाड़मेर में तथा अधिकतम प्रतिशत 40.76 जयपुर में मिलता है । इस प्रकार औद्योगिक दृष्टि से विकसित होने के कारण कोटा जिले में काश्तकारों का कम प्रतिशत मिलता है । बीकानेर व बाड़मेर जिलों में कृषि कार्य परिवार तक सीमित होने तथा पशुपालन बड़े पैमाने पर होने के फलस्वरूप खेतिहर मजदूरों का प्रतिशत कम पाया जाता है जबकि सिरोही व पाली में इस वर्ग में अधिक लोग संलग्न हैं । पारिवारिक उद्योगों तथा अन्य काम करने वालों में जयपुर जिला प्रमुख है क्योंकि एक तो यह राजधानी शहर है दूसरे औद्योगिक क्रियाओं के विकसित होने के कारण अन्य कार्यों के लिए बहुत अवसर उपलब्ध रहते हैं ।

साक्षरता के अनुसार जनसंख्या का अनुपात

देश के अन्य राज्यों की तुलना में राजस्थान के साक्षरता बहुत कम है । भारत में साक्षरता का औसत 36.2 प्रतिशत है जबकि राजस्थान में यह 24.38 प्रतिशत ही है ।

गत 80 वर्षों की साक्षरता की प्रवृति से यह स्पष्ट होता है कि सन् 1901 में साक्षरता की दर 3.47 थी जो बढ़कर सन् 1981 में 24.38 प्रतिशत हो गई । इस प्रकार 20.91 प्रतिशत की वास्तविक वृद्धि परिलक्षित होती है । प्रथम पचास वर्षों की अवधि में वृद्धि केवल 4.55 प्रतिशत ही रिकार्ड की गई । जबकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 1951 से 1981 के बीच की अवधि में यह बढ़कर 24.38 प्रतिशत हो गयी जो वर्ष 1951 के स्तर पर लगभग 16.04 प्रतिशत की वास्तविक वृद्धि को परिलक्षित करती है । इसमें से 5.31 प्रतिशत अकेले गत दशक (1971-81) में साक्षरता में वृद्धि हुई जो कि सन् 1901-1951 की अवधि से भी अधिक है ।

राज्य में पिछले दशकों में निश्चित रूप से साक्षरता दर की प्रवृति वृद्धि की ओर रही है । पुरुषों तथा स्त्रियों के बीच साक्षरता दर में महत्वपूर्ण विषमता देखने को मिलती है । राज्य के सभी भागों में स्त्रियों की साक्षरता दर पुरुषों की साक्षरता दर से कम है । इसी प्रकार का प्रतिरूप ग्रामीण क्षेत्रों में भी देखने को मिलता है । राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों की साक्षरता दर 29.24 प्रतिशत तथा स्त्रियों की 5.41 प्रतिशत है जबकि नगरीय क्षेत्रों में पुरुषों की साक्षरता दर 60.02 प्रतिशत एवं स्त्रियों की 34.24 प्रतिशत है ।

राज्य में ग्रामीण क्षेत्रों की औसत साक्षरता दर 17.73 प्रतिशत है । जिला स्तर पर बाड़मेर जिलों में यह 9.11 प्रतिशत है जो कि राज्य में ग्रामीण क्षेत्रों की दृष्टि से सबसे कम है । झुन्झुनू जिले में साक्षरता दर अधिकतम 24.81 प्रतिशत मिलती है । राज्य में नगरीय क्षेत्रों की साक्षरता दर लगभग 48 प्रतिशत है । बांसवाड़ा जिला जो कि आदिवासी जिला है, राज्य में नगरीय क्षेत्रों की दृष्टि से सबसे अधिकतम 59.28 प्रतिशत साक्षरता दर परिलक्षित करता है जबकि सबसे कम 36.12 प्रतिशत साक्षरता दर नागौर जिले में मिलती है ।

समग्र राज्य को दृष्टिगत रखते हुए अगर देखें तो यह

स्पष्ट होता है कि जिला स्तर पर अजमेर जिले में सबसे अधिक साक्षरता दर 35·01 प्रतिशत तथा सबसे निम्नतम बाड़मेर जिले में 11.97 प्रतिशत पाई जाती है। इसी प्रकार बिल्कुल एक सा प्रतिरूप पुरुषों और स्त्रियों की साक्षरता दर में पाया जाता है।

तहसील स्तर पर यद्यपि राज्य में जयपुर तहसील में सबसे अधिकतम तथा उदयपुर की कोटड़ा तहसील में सबसे कम साक्षरता दर पाई जाती है। यह पुरुष की साक्षरता दर के सम्बन्ध में सत्य है लेकिन स्त्रियों की साक्षरता दर से जहाँ तक सम्बन्ध है, जयपुर तहसील में सबसे अधिक तथा बाड़मेर जिले की चोहटन तहसील में सबसे कम मिलती है।

राज्य के नगरीय केन्द्रों से सम्बन्धित साक्षरता को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि झुन्झुनूं जिले का विद्या विहार नगर केन्द्र अधिकतम 82·15 प्रतिशत तथा पाली जिले का नीमाज नगर निम्नतम 20·74 प्रतिशत साक्षरता दर परिलक्षित करते हैं। बिल्कुल ऐसा ही प्रतिरूप स्त्रियों की साक्षरता में देखने को मिलता है लेकिन सबसे अधिक पुरुषों की साक्षरता दर विद्या विहार नगर में तथा निम्न साक्षरता दर गंगानगर जिले के रावतसर में पाई जाती है।

ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या

1981 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या में ग्रामीण जनसंख्या 270·51 लाख तथा नगरीय जनसंख्या 72·11 लाख है। राज्य की जनसंख्या का लगभग 79 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है जबकि समग्र देश के लिये यह प्रतिशत 76.27 आता है। राज्य की कुल जनसंख्या का नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 1971 के 17.6 प्रतिशत की तुलना में 21 प्रतिशत आता है जो लगभग 3.4 प्रतिशत अधिक है। राष्ट्रीय स्तर पर नगरीय जनसंख्या का अनुपात 23.73 प्रतिशत है।

राजस्थान मौलिक रूप से कृषि और ग्रामीण राज्य है। राजस्थान में औद्योगिक क्रियाओं का विकास अभी हाल का विकास है और यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है कि यह ग्रामीण और नगरीय केन्द्रों में रहने वाली जनसंख्या के अनुपात को प्रभावी रूप से बदल सके। ग्रामीण जनसंख्या लगभग 33,305 गांवों में रहती है। कुल गांवों में से लगभग 60 प्रतिशत गांव छोटे आकार के हैं जिनकी जनसंख्या 500 से भी कम हैं जो ग्रामीण जनसंख्या का 28.8 प्रतिशत बनाते हैं। लगभग 23.42 गांव ऐसे हैं जिनकी आबादी 500-999 के बीच है जहाँ जनसंख्या का 27 प्रतिशत (निवास करता है)। इस प्रकार 84 प्रतिशत गांव 1000 या इससे कम आबादी वाले गाँव हैं जिनमें राज्य की लगभग 55 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। ये आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि राजस्थान छोटे आकार के कृषि गांव रखता है। इन गांवों का प्रादेशिक वितरण बताता है कि ये अधिकांशतः पश्चिमी रेतीले मैदानी क्षेत्र और अरावली पहाड़ी प्रदेश में छितरे हुए स्थित हैं। इन प्रदेशों में शुष्कता और उच्चावचन की दशायें बड़े आकार के गांवों के विकास के लिये अनुकूल नहीं है। सामान्यतया कृषक अपने खेतों के समीप छोटे-छोटे गांव में बसना अधिक पसन्द करते हैं। ग्रामीण जनसंख्या का लगभग 5 प्रतिशत बड़े गांवों में जिनकी आबादी 5,000 से ऊपर है, में निवास करता है।

ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि राज्य में नगरीयकरण की क्रिया के साथ जुड़ी है। विभिन्न प्रदेशों में ग्रामीण जनसंख्या का स्थिर प्रवाह नगर केन्द्रों की ओर रहा है। यह प्रवृति ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि को विपरीत रूप से प्रभावित कर चुकी है। राज्य में औद्योगिक विकास के कारण नगरीय जनसंख्या में उच्च दर पर वृद्धि काफी प्राकृतिक एवं स्वाभाविक है।

सन 1921 से 1951 की अवधि के बीच ग्रामीण जनसंख्या में निरन्तर गिरावट आई है। 1921 में यह प्रतिशत 86.7 था, 1931 में 86.3 प्रतिशत और 1941 में 85.7 प्रतिशत था। 1951 में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत 81.5 ही रह गया। अकाल और महामारी जन्म दर में गिरावट के लिये मुख्य रूप से उत्तरदायी रहे। इसके परिणाम स्वरूप वृद्धि दर में कमी आई और साथ ही ग्रामीण जनसंख्या में भी। 1961 की जनगणना में ग्रामीण जनसंख्या ने थोड़ी सी वृद्धि दर्शायी है। राज्य में लगभग 84 कस्बे 1961 की जनगणना में अपना स्तर खोकर ग्रामीण केन्द्रों में डाल दिये गये जिन्हें 1951 की जनगणना में नगर केन्द्रों की श्रेणी में सम्मिलित कर दिया गया था। इन ग्रामीण

केन्द्रों की कुल जनसंख्या 1961 में 4,50,000 थी। ये व्यक्ति 1951 में नगरीय जनसंख्या में गिने गये लेकिन 1961 में इन्हें पुनः ग्रामीण केन्द्र घोषित कर ग्रामीण जनसंख्या में शामिल करवा दिया गया। इस प्रकार ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत 1951 में 81.5 से बढ़कर 1961 में 83.7 प्रतिशत हो गया इसके साथ ही कृषि क्षेत्र में विस्तार तथा कृषि उत्पादन में भी वृद्धि हो गई जिससे ग्रामीण रोजगार के अवसर भी बढ़ गये। 1961 के पश्चात से पुनः ग्रामीण जनसंख्या में गिरावट अभिलेखित की गई। 1971 में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत 82.3 तथा वर्ष 1981 में यह और भी घट कर 79 प्रतिशत ही रह गया। इस प्रकार ग्रामीण जनसंख्या में 3.4 प्रतिशत की ऋणात्मक वृद्धि रिकार्ड की गई। इसका मुख्य कारण वर्ष 1981 में 44 ग्रामीण केन्द्रों को नगर के रूप में घोषित कर दिया जाना है। राज्य में 22 जिले औसत से अधिक ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात रखते हैं और इनमें से बांसवाड़ा जिला अधिकतम अनुपात 93.77 रखता है। ग्रामीण जनसंख्या डूंगरपुर में 93.52, जालोर में 92.94, बाड़मेर में 91.37 और अलवर में 89.18 प्रतिशत मिलती है। अजमेर, बीकानेर,
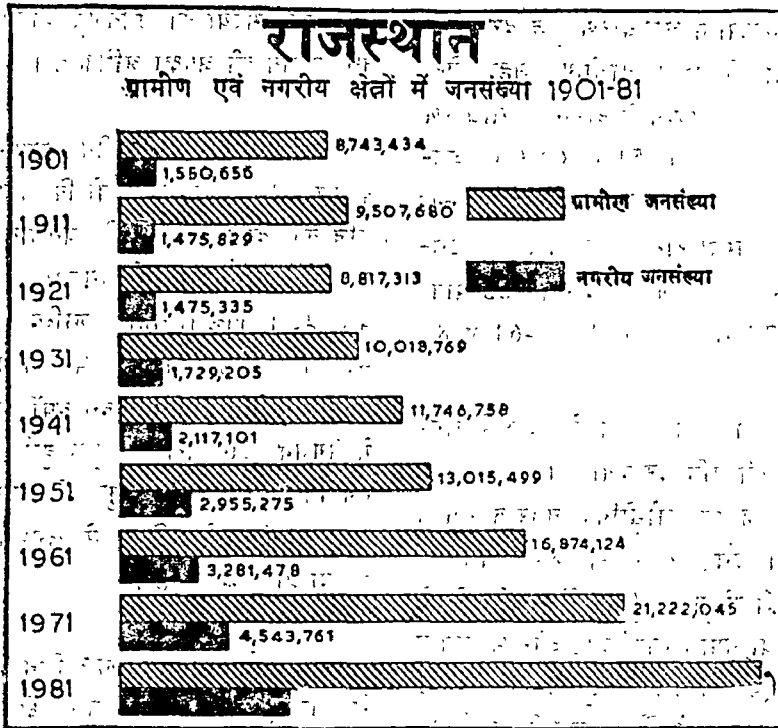
राजस्थान में ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या

जयपुर, जोधपुर, कोटा, और चूरू जिलों में नगरीय प्रतिशत राज्य के औसत की तुलना में अधिक पाया जाता है। सिवाय चूरू के शेष सभी जिलों में एक-एक मुख्य शहर स्थित है। कोटा जिले में सबसे अधिकतम नगरीय वृद्धि 7 प्रतिशत परिलक्षित होती है। वर्ष 1971 में यह 24.05 प्रतिशत थी जो बढ़कर 1981 में 31.47 प्रतिशत हो गई। जयपुर दूसरे स्थान पर रहते हुए 6.35 प्रतिशत की वृद्धि दर को दर्शाता है। बीकानेर शहर ने 1971 की वृद्धि दर की अपेक्षा सन् 1981 में 2.37 प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाया।

नगरीय क्षेत्रों में 1971-81 के दशक वृद्धि दर के प्रतिरूप का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि जालोर जिले में सबसे अधिक वृद्धि 146.49 प्रतिशत की रही। इसका मुख्य कारण आहोर तथा सांचोर केन्द्रों को नगरीय केन्द्रों के रूप में घोषित किया जाना। इस प्रकार पाली जिले के छः मुख्य केन्द्रों जैसे रानीखुर्द

खंडेला, नीमाज, जैतारण, तख्तगढ़ और रायपुर जो 1971 में ग्रामीण केन्द्र थे, को वर्ष 1981 में नगरीय केन्द्रों में सम्मिलित कर लेने के फलस्वरूप पाली जिले में नगरीय वृद्धि दर 115.72 पाई गई। अन्य जिले जहाँ राज्य के औसत से अधिक वृद्धि दर पाई गई वे इस प्रकार हैं। गंगानगर (80.29), कोटा (77.00), बाड़मेर (70.97), जयपुर (66.23), बांसवाड़ा (66.20), चित्तौड़गढ़ (65.96), भीलवाड़ा (61.87) तथा उदयपुर (58.67)। सिवाय बांसवाड़ा के शेष इन सभी जिलों में नये नगरीय केन्द्रों को शामिल किया गया है जिसके कारण इन जिलों की नगरीय जनसंख्या में असाधारण वृद्धि दर दृष्टिगत होती है। राजस्थान के प्रमुख औद्योगिक शहर कोटा ने पिछले तीन दशकों की अवधि के दौरान असाधारण वृद्धि को प्रदर्शित किया है। 1951 में 65,000 जनसंख्या के साथ इसने 1981 में 3,46,928 जनसंख्या आलेखित करने में एक लम्बा रास्ता तय किया है। इसकी वृद्धि दर 1971-81 के दशक में लगभग 63 प्रतिशत, 1961-71 में 77 प्रतिशत तथा 1951-61 में 85 प्रतिशत रही।

जयपुर राज्य की राजधानी ने पिछले दशक में लगभग 57.12 प्रतिशत की वृद्धि दर दर्शायी। इस अन्तिम दशक की अवधि में यह एक औद्योगिक नगर के रूप में उभर कर आया है। इसके अतिरिक्त, जयपुर जिले में सात नये ग्रामीण केन्द्रों को वर्ष 1981 में नगरीय केन्द्रों के रूप में घोषित किया गया। चित्तौड़गढ़ और भीलवाड़ा अन्य औद्योगिक केन्द्र हैं जो क्रमशः 73.61 एवं 48.91 प्रतिशत की वृद्धि दर दर्शाते हैं। कई नई औद्योगिक इकाईयां इन नगरों में एवं इनके चारों ओर उभर कर विकसित हो गई हैं। इनके अतिरिक्त चित्तौड़गढ़ में एक नगर और भीलवाड़ा में दो नगर वर्ष 1981 में नगरीय जनसंख्या में सम्मिलित किये गये हैं। चित्तौड़गढ़ को विकसित पर्यटक उद्योग से भी लाभ प्राप्त हुआ है।

नगरीयकरण

देश के अन्य राज्यों की भांति राजस्थान में नगरीय जनसंख्या ग्रामीण जनसंख्या की अपेक्षा बड़ी तेजी से बढ़ रही है। राज्य में नगरीय जनसंख्या वर्ष 1971 में 17.63 थी जो वर्ष 1981 में 21 प्रतिशत हो गई। इस प्रकार 3.4 प्रतिशत की वृद्धि आलेखित की गई जो कि राष्ट्रीय वृद्धि 3.8 प्रतिशत से कुछ ही कम है। देश में राजस्थान नगरीयकरण की दृष्टि से 10 वें स्थान पर है। सबसे ऊपर महाराष्ट्र का स्थान है जहां नगरीय जनसंख्या 35.03 प्रतिशत है। हिमाचल प्रदेश में निम्नतम प्रतिशत 7.72 नगरीय जनसंख्या का पाया जाता है। राजस्थान अभी भी नगरीयकरण की श्रेणी में काफी निम्न स्थान पर है। राज्य की कुल जनसंख्या में ग्रामीण का अनुपात कुछ बड़े राज्यों की तुलना में कम है। लेकिन नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत हरियाणा, केरल, उड़ीसा तथा पंजाब की अपेक्षा अधिक है।

गत 80 वर्षों में नगरीय जनसंख्या 16 लाख से बढ़कर 72 लाख हो गई जो कि लगभग साढ़े चार गुना वृद्धि को दर्शाती है, जबकि वर्तमान शताब्दी के प्रथम पचास वर्षों में नगरीय जनसंख्या में केवल 14 लाख की वृद्धि हुई। पिछली तीन दशाब्दियों में वास्तविक वृद्धि 42 लाख की हुई जो कि प्रथम पचास वर्षों में हुई वृद्धि से तीन गुनी है। पिछले दस वर्षों में नगरीय जनसंख्या में लगभग 26 लाख की वृद्धि हुई। इस प्रकार ग्रामीण नगरीय जनसांख्यिकीय सन्तुलन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। जनसंख्या के प्रतिशत में लगभग 3 प्रतिशत से कुछ ज्यादा ही वृद्धि हुई हैं।

राज्य के सभी बड़े शहर जिनकी जनसंख्या 1 लाख से ऊपर है वे जनसंख्या तथा क्षेत्रफल के सन्दर्भ में निरन्तर वृद्धि की ओर अग्रसर हैं। कोटा में 62.9 प्रतिशत वृद्धि हुई है। जयपुर में 57.1 प्रतिशत वृद्धि आलेखित की गई हैं। यह दोनों शहर गत दशक में नगरीयकरण के क्रम में अपने पूर्ववत स्थान को बनाये हुए हैं। दोनों की वृद्धि दर 1961-71 में क्रमशः 77 प्रतिशत तथा 53 प्रतिशत थी जबकि दूसरी तरफ जोधपुर ने 55 प्रतिशत और अजमेर ने 41 प्रतिशत वृद्धि दर अधिक रिकार्ड कर क्रमशः तीसरा तथा पांचवा स्थान प्राप्त किया है। इन दोनों का स्थान 1961-71 के दशक में क्रमशः चौथा और सातवां था।

निम्न तालिका में सन् 1901 से राजस्थान में नगरीयकरण की प्रवृत्ति को दर्शाया गया है।

वर्ष	नगरीय जनसंख्या (000 में)	दशाब्दी विषमता (000 में)	दशाब्दी विषमता प्रतिशत में	सन् 1901 से विषमता प्रतिशत में	कुल जनसंख्या का नगरीय जनसंख्या प्रतिशत
1901	1551	—	—	—	15.06
1911	1476	— 75	— 4.83	— 4.83	13.44
1921	1475	— 1	— 0.03	— 04.86	14.33
1931	1729	+ 254	+17.21	+ 11.51	14.72
1941	2117	+ 388	+22.43	+ 36.53	15.27
1951	2955	+ 838	+39.59	+ 90.58	18.50
1961	3281	+ 326	+11.04	+111.62	16.28
1971	4544	+1263	+38.47	+193.02	17.63
1981	7140	+2596	+57.15	+360.48	20.93

राज्य के मुख्य बड़े शहरों के द्वारा गत दो दशकों में रिकार्ड की गई वृद्धि दर को निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

राजस्थान के प्रमुख शहरों की वृद्धि दर 1961-1981

शहर	1961-71	स्थान	1971-81	स्थान
कोटा	77.0	1	62.9	1
जयपुर	52.5	2	57.1	2
उदयपुर	45.1	3	42.5	4
जोधपुर	41.3	4	55.4	3
अलवर	38.1	5	39.5	6
बीकानेर	25.3	6	30.4	7
अजमेर	14.3	7	41.6	5

1981 की जनगणना के अनुसार राज्य में 201 नगरीय केन्द्र पाये जाते हैं जबकि 1971 में इनकी संख्या 157 थी। इस प्रकार गत दशक 1971-81 में 44 नगरों की वास्तविक वृद्धि हुई। इन नये जोड़े गये नगरों में से 26 नगर ऐसे हैं जिन्हें पूर्व की जनगणनाओं में नगर माना गया था लेकिन बाद में जिन्हें ग्रामीण केन्द्र घोषित कर दिया गया। पुनः उन्हें 1981 की जनगणना में नगर का स्तर प्रदान कर दिया गया। शेष 18 नगरीय केन्द्रों को 1981 की जनगणना में प्रथम बार नगर घोषित किया गया। नगरीय समूहीकरण के वर्गीकरण के अन्तर्गत एक संकल्पना 1971 की जनगणना की अवधि में आरम्भ की गई। चार उदाहरण इस प्रकार के हैं जिनमें शहर पड़ोसी नगर व कस्बों से निरन्तर नगरीय प्रसार की क्रिया के द्वारा आपस में जुड़कर एक नजर आने लगे हैं। उदाहरणार्थ बीकानेर शहर अपने नगरीय समूह जैसे गंगाशहर और भीनासर नगरों के साथ मिल चुका है। जयपुर शहर अपने सांगानेर तथा आमेर नगरों से मिल चुका है, सवाईमाधोपुर अपने में माननगर को समेट चुका है तथा पिलानी अपने विद्याविहार नगरीय क्षेत्र के साथ मिल चुका है। जनसंख्या आकार श्रेणियों के द्वारा नगरीय केन्द्रों का वर्गीकरण करने के उद्देश्य से इन छह नगरों जैसे गंगाशहर, भीनासर, आमेर, साँगानेर, माननगर और विद्याविहार जिन्हें नगरीय समूहीकरण का अंग माना गया है, को स्वतन्त्र इकाई के रूप में वर्ष 1981 की जनगणना में नहीं दर्शाया गया है। इस प्रकार राज्य में केवल 195 नगर और नगरीय समूह दृष्टिगत होते हैं।

अगले पृष्ठ की तालिका में नगरों की श्रेणी के अनुसार उनके विकास को दर्शाया गया है।

राजस्थान में नगरों का विकास 1901–1981

नगर की श्रेणी	1901	1911	1921	1931	1941	1951	1961	1971	1981	1981 की कुल नगरीय जनसंख्या का %
I	1	1	2	2	4	4	6	7	11	46.5
II	4	3	2	2	2	4	4	7	11	10.0
III	8	9	7	9	13	20	23	31	52	22.0
IV	26	24	20	26	28	37	52	64	98	18.7
V	64	60	58	64	74	96	51	38	22	2.6
VI	32	41	58	47	36	66	9	4	1	0.1
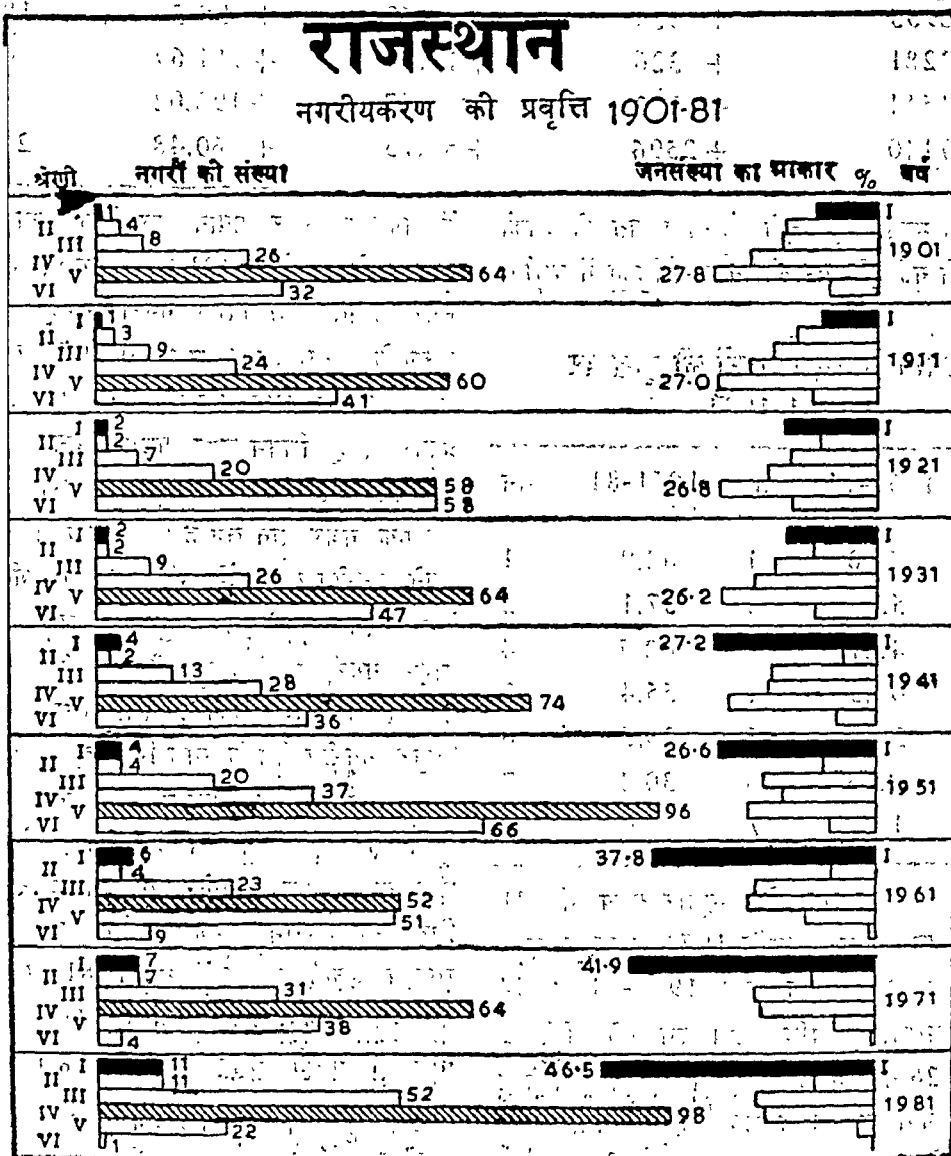
राजस्थान में नगरों की संख्या तथा जनसंख्या का आकार

पिछले पृष्ठ की तालिका से यह स्पष्ट है कि राज्य में प्रथम श्रेणी से चतुर्थ श्रेणी के नगरों की संख्या में वर्ष 1901 से वृद्धि हुई है जबकि पांचवीं व छठी श्रेणी के नगरों की संख्या में महत्वपूर्ण गिरावट आई है। इसका मुख्य कारणगत तीन दशकों में औद्योगीकरण का विकास और जनसंख्या में प्राकृतिक वृद्धि है जिसने इन श्रेणी के नगरों की जनसंख्या में वृद्धि हो जाने के कारण इन्हें ऊपर की श्रेणी के नगरों में स्थान दिलवा दिया है। कुछ नगरों की नगरपालिकाओं ने अपनी सीमाओं में विस्तार कर दिया परिणामस्वरूप सीमा के अन्तर्गत बसे ग्रामीण केन्द्रों की जनसंख्या को भी नगरीय जनसंख्या में सम्मिलित कर लिया गया जिससे नगर की श्रेणी में परिवर्तन आ गया।

कुल जनसंख्या के संदर्भ में जनसंख्या का अनुपात जो श्रेणी प्रथम में निवास करता है वह वर्ष 1901 में 10.3 प्रतिशत था जो बढ़कर वर्ष 1981 में 46.5 प्रतिशत हो गया। केवल 10 प्रतिशत जनसंख्या का केन्द्रीयकरण द्वितीय श्रेणी के नगरों में मिलता है। तीसरी श्रेणी के नगरों में द्वितीय नगरों की अपेक्षा कुछ जनसंख्या का प्रतिशत वर्ष 1971 की तुलना में बढ़ा है जबकि चतुर्थ से छठी श्रेणी के नगरों में जनसंख्या का प्रतिशत कम हुआ है।

अगले पृष्ठ की तालिका में दशक 1971-81 की अवधि में नगरों की विभिन्न श्रेणियों में नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर का तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है। राज्य की औसत वृद्धि दर 57.15 की अपेक्षा राज्य के 26 नगरों तथा नगरीय समूहों ने अधिक वृद्धि दर रिकार्ड की है। प्रथम श्रेणी के नगरों में कोटा ने अधिकतम वृद्धि दर 62.80 प्रतिशत आलेखित की है, जबकि निम्नतम वृद्धि दर 34.21 बीकानेर नगर समूह के द्वारा
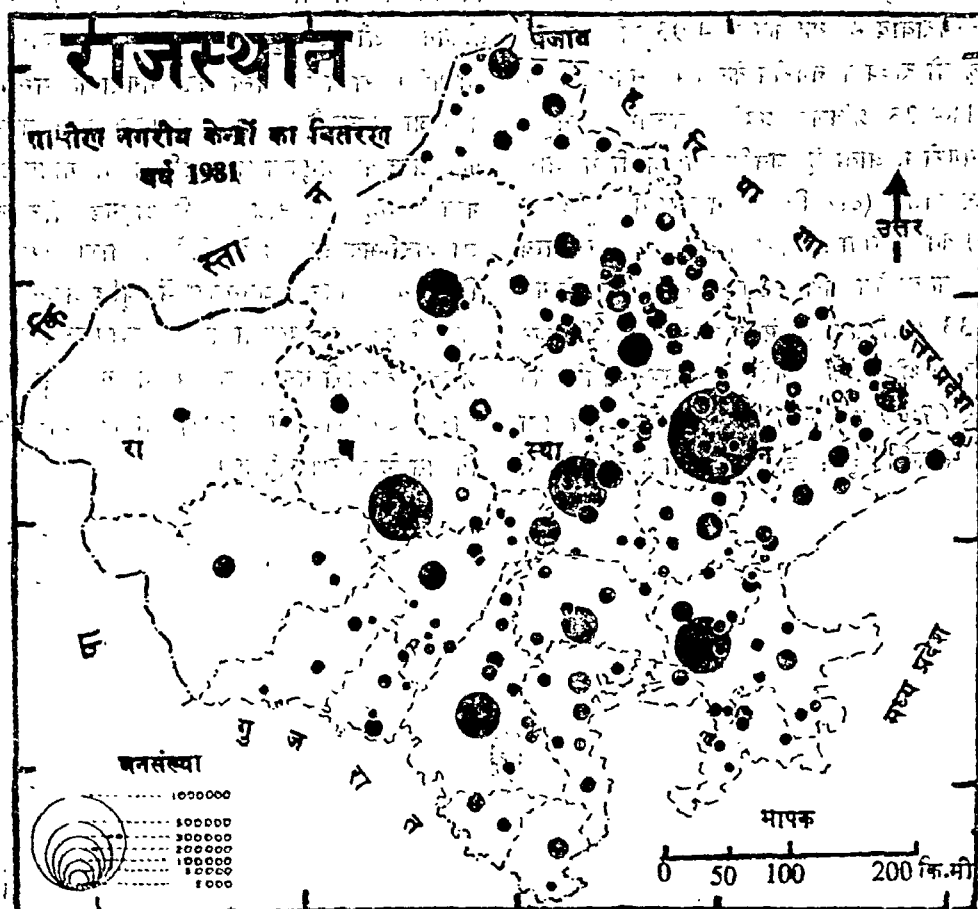
राजस्थान के ग्रामीण एवं नगरीय केन्द्र

नगरों की श्रेणी	जनसंख्या में कुल वृद्धि 1971-81 1000 में	प्रतिशत वृद्धि दर 1971-81	प्रतिशत वृद्धि दर 1961-71	1961-71 की जनसंख्या पर 1971-81 में वास्तविक वृद्धि/कमी
राजस्थान	+2,597	+57.15	+ 38.47	+ 18.68
I.	+1,419	+74.62	+ 50.42	+ 24.20
II.	+ 229	+46.95	+102.49	—55.54
III.	+ 642	+69.01	+ 39.39	+29.62
IV.	+ 440	+48.99	+ 28.28	+20.71
V.	— 122	—39.54	— 18.31	—21.23
VI.	— 12	—74.68	— 46.42	—28.26

रिकार्ड की गई है। द्वितीय श्रेणी के नगरों में हनुमानगढ़ सबसे ऊपर है जो 83 प्रतिशत वृद्धि दर को प्रदर्शित करता है जबकि चूरू में सबसे कम वृद्धि दर केवल 16·69% पायी जाती है। नोखा 114·62 प्रतिशत वृद्धि दर के साथ तृतीय श्रेणी के नगरों में सबसे ऊपर है जबकि नसीराबाद में यह केवल 4·93 प्रतिशत ही है। अनूपगढ़ जो राज्य के नगरीय केन्द्रों में सबसे अधिक वृद्धि दर 184·23 प्रतिशत प्रदर्शित करता है, चतुर्थ श्रेणी के नगरों में आता है जबकि इसी श्रेणी में आने वाला नगर देवली (टोंक जिला) नकारात्मक वृद्धि दर (—9·25) को दर्शाता है क्योंकि बंगला देश से आये शरणार्थियों के वापिस चले जाने से वृद्धि दर, जो गत दशक में 133·2 प्रतिशत थी, में बड़ी तीव्रता से गिरावट आई। पांचवीं श्रेणी के नगरों में अलवर जिले का खेरली नगर *67·69* प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ बड़ी तीव्रता से विकसित हुआ जबकि झालावाड़ जिले में पिड़ावा नगर में 13·4 प्रतिशत निम्नतम दर आलेखित की गई। अकेला इन्द्रगढ़ जो अन्तिम श्रेणी में आता है, 57·33 प्रतिशत की दर को परिलक्षित करता है।

राज्य में नगरीय जनसंख्या में वृद्धि सदैव औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप नहीं रही। कुछ शहर जैसे बीकानेर और उदयपुर जिनकी स्थापना जान बूझ कर की गई। राज्य के अन्य कई नगरों के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि उनकी स्थापना करते समय सुरक्षा की दृष्टि के अनुकूल अवस्थितियों को मापदण्ड बनाया गया उदाहरणार्थ जोधपुर, चित्तौड़गढ़ और लक्ष्मणगढ़ जो आरम्भिक अवस्था में किले के चारों तरफ विकसित किये गये। नगरीय जनसंख्या में वृद्धि अंशतः गांवों की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के विकेन्द्रीयकरण के कारण, अंशतः बाजारी नगरों के रूप में गांवों के विकास के कारण और राज्य में संचार, व्यापार और उद्योगों के विकास के कारण रही है।

15 परिवहन

राज्य के आर्थिक विकास के लिये परिवहन के साधन बड़े महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक समय में परिवहन के साधनों के विस्तार को आर्थिक समृद्धि का सूचक माना जाता है। राजस्थान जैसे कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाले प्रदेश में परिवहन के साधन एक प्राथमिक आवश्यकता के रूप में महत्व रखते हैं। यहाँ की मुख्य समस्या अधिक उपज वाले क्षेत्रों की पैदावार को कमी या सूखे वाले क्षेत्रों में पहुंचाने की है क्योंकि राजस्थान में किसी न किसी क्षेत्र में प्रायः अकाल की स्थिति रहती ही है। अधिक एवं अच्छी परिवहन सुविधाओं का विकास होने पर ही किसान अपनी उपज उचित कीमत पर बाजार में बेच सकता है और अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकता है। राजस्थान राज्य का औद्योगिक विकास, बहुमूल्य खनिज सम्पत्ति का उपयोग तथा कुशल प्रशासन केवल परिवहन के साधनों के विकास पर ही निर्भर है।

राजस्थान में सड़कें, रेलमार्ग व वायुमार्ग तीनों ही हैं किन्तु राज्य की विशालता को देखते हुए अभी मार्गों की लम्बाई बहुत ही कम है। अतः इनके विकास की आवश्यकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। राजस्थान में मुख्य परिवहन के साधनों के रूप में रेलमार्ग व सड़कें है। राज्य में रेलों की लम्बाई 6227.5 किलोमीटर और सड़कों की लम्बाई 51,636 किलोमीटर है। इन दोनों परिवहन के साधनों में लगभग 2,14,500 व्यक्ति लगे हुए हैं जो राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग 0.6 प्रतिशत है। राज्य में मौजूदा रेलों को राज्य के आर्थिक परिवेक्ष में कई कार्यों को करना है। उन क्षेत्रों में जहां कृषि उत्पादन आधिक्य में है वहां से खाद्य, अनाज, कपास, तिलहन आदि को उन क्षेत्रों में जहां इनकी आवश्यकता है, स्थानान्तरण करना है। ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर वस्तुओं को ले जाना तथा अन्य राज्यों को भी जैसे मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तर-प्रदेश और देहली को भी इन वस्तुओं का अच्छे वर्षों में कृषि उत्पाद का औसतन एक तिहाई पड़ोसी राज्यों को निर्यात किया जाता है। खाद्य अनाजों का लगभग 1,25,000 टन मौजूदा परिवहन साधनों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों को भेजा जाता है। लकड़ी, चारकोल और जलाने की लकड़ी का वितरण भी राज्य के सभी भागों में किया जाता है। कपास की लगभग 2,50,000 गांठें स्थानीय मिलों में ओटाई तथा अन्य कार्यों के लिये भेजी जाती हैं जिसमें से लगभग आधी गांठें राज्य में और आधी बाहर सूती वस्त्र उद्योगों के लिये भेज दी जाती हैं।

इसके अलावा 25,000 टन तिलहन का स्थानान्तरण भी तेल मिलों को किया जाता है तथा लगभग 50,000 टन अन्य राज्यों को भेजा जाता है। सड़कों और रेलों के अलावा अन्य परिवहन के साधन जैसे बैल-गाड़ी, ऊँट गाड़ियां तथा अन्य लारी भी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को स्थानान्तरित करती हैं। प्रत्येक वर्ष लगभग 6,50,000 टन गन्ना चीनी मिलों और गुड़ का निर्माण करने वाले केन्द्रों पर भेजा जाता है। समग्र राज्य में इन सभी उत्पादों के वितरण के कार्य को एक से मापक पर नहीं किया जा सकता। राज्य के उपजाऊ क्षेत्र जहाँ अनाज, तिलहन और गन्ना आदि आधिक्य में हैं, वे पश्चिमी शुष्क और बालू भू-भागों की अपेक्षा अधिक सुविधाओं की इच्छा रखते हैं इसी प्रकार कच्चे माल और पक्के माल को परिवहन करने के लिये न केवल रेल एवं सड़कों की आवश्यकता है बल्कि इन पर अधिकांशतः निर्भर भी हैं। राज्य से 4,00,000 टन नमक का स्थानान्तरण अन्य राज्यों को किया जाता है। यह पूर्ण रूप से सड़कों और रेलों पर निर्भर है। नमक स्थानान्तरण के लिये पचपद्रा, डीडवाना और सांभर रेल्वे स्टेशन महत्वपूर्ण हैं। औद्योगिक विकास और विभिन्न प्रकार के खनिजों के उत्पादन में वृद्धि होने के कारण मौजूदा परिवहन साधनों पर दबाव अधिक बढ़ता जा रहा है। खनिजों में जिप्सम, चूना, कांच बालुका, घीया पत्थर और बलुआ-पत्थर, मैंगनीज अयस्क, संग-मरमर, इमारती वस्तुए आदि मुख्य वस्तुएं हैं जिन्हें परिवहन सुविधाओं की आवश्यकता होती है। इन सभी वस्तुओं का स्थानान्तरण विभिन्न केन्द्रों जैसे सोजत, गोटन, जामसर, नागौर, रामगंज मण्डी, चित्तौड़गढ़, निम्बाहेड़ा, जयपुर, कटनी, जग्गर, कोटा, करौली, भरतपुर, धौलपुर, जावर और झुन्झुनू आदि से किया जाता है। अतः इन

पर यातायात का दबाव अधिक है। सीमेन्ट उद्योग भी परिवहन व्यवस्था पर अपना प्रभाव बनाये हुए हैं क्योंकि सीमेन्ट उत्पादक क्षेत्रों पर कच्ची सामग्री को एकत्रित करने के लिये तथा राज्य में और उसके बाहर लगभग 26 लाख टन सीमेन्ट का वितरण करने के लिये परिवहन अनिवार्य बन जाता है। राजस्थान में कोयले की कमी के कारण परिवहन साधनों को लगभग 6,50,000 टन कोयले और कोक को राज्य में लाना पड़ता है और औद्योगिक केन्द्रों को भेजना पड़ता है। कोयले का स्थानान्तरण भटिण्डा, सरायरोहिल्ला, आगरा पूर्व और रतलाम के द्वारा होता है जहाँ कोयले का दूसरे डिब्बों में लदान जरूरी है। कोयले को ताप विद्युत केन्द्रों, सीमेन्ट और सूती वस्त्र मिलों, चूने के पत्थर के भट्टों और विभिन्न अन्य औद्योगिक केन्द्रों पर पहुंचाने का भी काम परिवहन साधनों को करना पड़ता है।

सड़कें

राजस्थान विस्तृत आकार का प्रदेश है और परिवहन की दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ है। राजस्थान में सड़क विस्तार का आधारभूत महत्व है और राज्य के विकास की यह सशक्त कड़ी है। सड़कों से व्यापार में वृद्धि तथा कृषि उपज को अच्छे बाजार व मूल्य भी मिलते हैं। मोटर ट्रांसपोर्ट के विकास से इनकी महत्ता और भी बढ़ गयी है। वर्ष 1951 में सड़कों की कुल लम्बाई 18,300 किलोमीटर थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना अवधि में सड़कों के विकास के फलस्वरूप सड़कों की कुल लम्बाई 1955-56 में 22,511 किलोमीटर हो गई थी। इसी प्रकार 1965-66 और 1977-78 में सड़कों की कुल लम्बाई क्रमश: 30,186 व 30,300 किलोमीटर थी जो बढ़कर 1982-83 के अन्त तक 42,600 किलोमीटर हो गई। पंचवर्षीय योजनाओं में सड़क विकास पर लगभग 200 करोड़ रुपये व्यय किये गये जिससे सड़कों की लम्बाई में 25,000 किलोमीटर की वृद्धि हुई है। अब प्रति 100 वर्ग किलोमीटर में सड़कों की कुल लम्बाई 18.69 किलोमीटर है जबकि प्रति लाख जनसंख्या पर इसका औसत 141 किलोमीटर के आस-पास है। 1,500 से अधिक की जनसंख्या वाले सभी गाँव अभी सड़क से जुड़े हुए नहीं हैं लेकिन सन् 1990 तक इन्हें सड़कों से जोड़ दिया जायेगा।

वर्ष 1984-85 में 8,590 गांवों को 85-86 में 9,230 गांवों को तथा 86-87 में 9385 गांवों को सड़कों से जोड़ा गया। 1987-88 वर्ष में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत 9710 गांवों को सड़कों से जोड़ने का लक्ष्य है। वर्ष 1987-88 में सड़कों के लिये 17 करोड़ 90 लाख का बजट अनुमान रखा गया है।

उल्लेखनीय है कि राज्य में कुल 50,430 किलोमीटर सड़कें हैं, जिनमें 34,777 कि.मी. डामर की सड़कें, 4,210 कि.मी. डब्लू.बी.एम. तथा 889 कि.मी. मौसमी सड़कें हैं। राज्य के 34 वर्षों के योजनाकाल में 33,097 कि.मी. सड़कों का निर्माण कराया गया है।

रेलमार्गों की तुलना में सड़क मार्ग काफी मितव्ययी होते हैं और निर्माण में भी कम समय लगता है। खुश्क मौसम सड़क मार्ग (Unmetalled fair weather) एवं रख रखाव वाले सड़क मार्ग (Dressed up tracks) आदि के निर्माण में कोई बड़ी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है। हालांकि इनकी लागत रेलमार्गों की तुलना में काफी कम होती है फिर भी सड़क मार्गों में कुछ कमियां दृष्टिगोचर होती हैं जैसे बिना रोड़ी वाली कच्ची सड़कें (Unmetalled Roads) अधिक उपयोगी तथा लम्बे समय तक सेवा योग्य नहीं होतीं। अरावली के पूर्वी और दक्षिण पूर्वी क्षेत्रों में विशेष रूप से वर्षा काल में ऐसी सड़कें सेवा योग्य नहीं रहतीं जबकि मरुभूमि के अधिकांश भागों में विशेषत: ग्रीष्म ऋतु में धूल की आँधियां यहाँ की सड़कों को प्राय: रेत से ढ़क देती हैं। इस प्रकार इन दोनों क्षेत्रों में सड़कों की उपयोगिता संचार की दृष्टि से अवरोधित हो जाती है।

राज्य में सड़क व्यवस्था पूर्णरूपेण विकसित नहीं है क्योंकि राजस्थान में प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में सड़कों की लम्बाई 18.69 किलोमीटर है। 51,636 किलोमीटर (1986-87) लम्बे सड़क मार्गों में से 32 प्रतिशत पक्की सड़कें (Painted); 23 प्रतिशत रोड़ीदार पक्की सड़कें; 18 प्रतिशत कंकरीट सड़कें और 27 प्रतिशत खुश्क मौसमीय रख रखाव वाली सड़कें (कच्ची सड़कें) हैं। अलवर और कोटा जिलों में लगभग

44 किलोमीटर सीमेन्ट कंकरीट की सड़कें हैं जिसमें से 34 किलोमीटर नगरीय केन्द्रों में पाई जाती हैं।

परिवहन मानचित्र से यह स्पष्ट होता है कि अरावली के पूर्वी क्षेत्रों में सड़कों की लम्बाई अधिक है जबकि इसके पश्चिमी क्षेत्र में इनकी लम्बाई कम दृष्टिगत होती है। राज्य में अगर सड़कों का वितरण प्रादेशिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो उनके वितरण को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक उच्चावचन, कृषि व पशुपालन क्रियाएं तथा औद्योगिक क्रियाएं आदि हैं। दक्षिणी अरावली क्षेत्रों में तथा पश्चिमी मरुभूमि प्रदेशों में सड़कों की बड़ी कमी है तथा जो सड़कें मौजूद हैं वे प्राय: निकृष्ट श्रेणी की सड़कें हैं। अरावली के पूर्व में स्थित क्षेत्र राज्य के कुल क्षेत्रफल का लगभग 37 प्रतिशत है जबकि उनमें सड़कों की कुल लम्बाई का लग-

राजस्थान में परिवहन के साधन
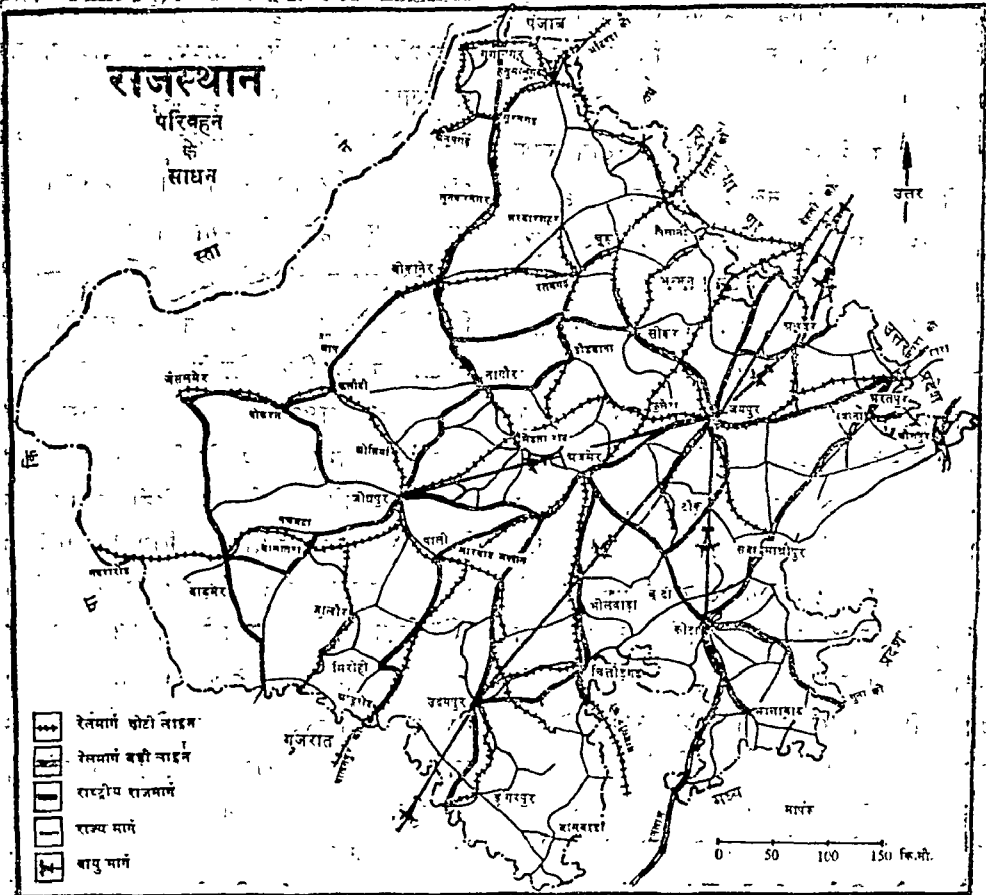
भग 60 प्रतिशत पाया जाता है।

राज्य के अजमेर, अलवर, भरतपुर, जयपुर, जोधपुर तथा उदयपुर ज़िलों में पक्की सड़कों की कुल लम्बाई का लगभग 53 प्रतिशत पाया जाता है जबकि रोड़ीदार पक्की सड़कों की लम्बाई का लगभग एक तिहाई भाग केवल 5 जिलों जैसे अजमेर, अलवर, भरतपुर, जयपुर तथा उदयपुर में मिलता है। राज्य की रोड़ीदार सड़कों का लगभग 55 प्रतिशत भाग बाड़मेर, जोधपुर, नागौर तथा जोधपुर तक ही सीमित है। इसी प्रकार अरावली श्रेणी क्षेत्रों में तथा दक्षिणी-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रों में राज्य की खुश्क मौसमीय तथा रख रखाव वाली सड़कों का लगभग 41 प्रतिशत भाग सात जिलों अर्थात् बांसवाड़ा, भीलवाड़ा, बूंदी, डूंगरपुर, जालौर, कोटा व उदयपुर में मिलता है। राज्य के पश्चिमी शुष्क व रेतीले मैदान में स्थित बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर जिलों में, जोधपुर के पश्चिमी भाग में और जालौर के कुछ पश्चिमी व

उत्तरी भागों में सड़कें निकृष्ट दशा में मिलती हैं तथा उनकी व्यवस्था भी ठीक नहीं है।

केन्द्रीय सरकार की सहायता से सवाईमाधोपुर जिले के करौली संभाग के दस्यु प्रभावित क्षेत्रों में सड़कों के विकास तथा नवनिर्माण के लिये 4 करोड़ 44 लाख रुपये की राशि स्वीकृत की गई हैं। ऊंटगिरि से करणपुर के लिये लगभग 40 लाख रुपये की एक अन्य सड़क की भी स्वीकृति दी गई है जिसका कार्य गंगापुर खण्ड के माध्यम से होगा।

राजस्थान राज्य में से गुजरने वाले राष्ट्रीय सड़क मार्ग कुल तीन हैं। एक नेशनल हाईवे नम्बर 8 है जो देहली से अलवर, जयपुर, अजमेर, ब्यावर, उदयपुर, खेरवाड़ा, रतनगढ़, अहमदाबाद, बड़ौदा होता हुआ बम्बई जाता है। इसकी कुल लम्बाई 1,436 किलोमीटर है। लेकिन राजस्थान में इसकी लम्बाई 694 किलोमीटर ही है। इस राष्ट्रीय मार्ग को यथासम्भव सीधा कर समय, गति, दूरी की दृष्टि से और अधिक प्रभावी बनाया गया है। राजस्थान में अधिक यातायात वाले कुछ प्रमुख मार्गों में से जयपुर-दिल्ली वाला मार्ग ऐसा है जिस पर सर्वाधिक दबाव रहता है। बनावट के हिसाब से भी सड़क ऐसी है कि मोड़ और कई ढलानों पर आये दिन दुर्घटनाएँ होती रहती है। सड़क सकड़ी होने और यातायात के दबाव भी दुर्घटना के कारण है। राज्य सरकार ने इस पूरे मार्ग को चौड़ा करने की 70 करोड़ की योजना केन्द्र सरकार के पास भेजी हुई थी। दिसम्बर 1988 में केन्द्र ने देहली से अजमेर तक के राष्ट्रीय मार्ग को नई योजना के अनुसार चार लेन का किया जाने की अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है। अब राज्य सरकार को इसके प्रति तेजी से कार्यवाही करनी चाहिये।

नेशनल हाई-वे नम्बर 3 जो आगरा से धौलपुर होता हुआ ग्वालियर, शिवपुरी, इन्दौर, नासिक होता हुआ बम्बई तक जाता है। यह राष्ट्रीय मार्ग राजस्थान के एक मात्र जिले धौलपुर से ही निकलता है।

नेशनल हाई-वे नम्बर 11 जो आगरा से जयपुर होता हुआ बीकानेर जाता है। यह इकहरा मार्ग है जिसकी कुल लम्बाई 586 किलोमीटर है।

अन्तर्राज्यीय यातायात के विकास के लिये राजस्थान के सवाईमाधोपुर और मध्यप्रदेश के श्योपुर सड़क मार्ग पर पालीघाट के निकट चम्बल पर राजस्थान राज्य पुल एवं निर्माण निगम की ओर से बनाया जा रहा पुल न केवल अभियांत्रिकी दृष्टि से ही उत्कृष्ट होगा बल्कि राजस्थान के टोंक, सवाईमाधोपुर, जयपुर जिलों, उत्तरी मध्यप्रदेश के शिवपुरी, खजुराहो सांची, भोपाल तथा उत्तरप्रदेश के झांसी, कानपुर, इलाहाबाद, प्रयाग आदि महत्वपूर्ण स्थानों से सीधा सम्पर्क तथा आवागमन की सुविधाएँ भी इस पिछड़े क्षेत्र को उपलब्ध कराते हुये इस क्षेत्र के सर्वांगीय विकास में सहायक होगा। इसके 1989 वर्ष तक पूरा होने की सम्भावना है।

राजस्थान की पश्चिमी सीमा की लम्बाई 1,070 किलोमीटर लम्बी है जो पाकिस्तान से सटी हुई है। सुरक्षा एवं सामरिक दृष्टि से इस अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर सड़कों का निर्माण होना अत्यन्त जरूरी है। सीमा सड़कों का सम्पूर्ण व्यय केन्द्रीय सरकार वहन करती है इसलिये उसने देश की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं पर सड़कों के निर्माण तथा सुधार के लिये 1960 में एक सीमा सड़क विकास मण्डल की स्थापना कर उसे यह कार्य सौंप दिया है जो तत्परता से यह कार्य कर रहा है।

राजस्थान में सड़कों का विकास होना अपरिहार्य है क्योंकि बिना इन्हें विकसित किये हुऐ और नये सड़क मार्ग बनाये बिना खनिज पदार्थों का उचित विदोहन, गंगनहर, इन्दिरानहर क्षेत्र में कृषि उत्पादों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में सुगमतापूर्वक पहुंचाना सम्भव नहीं होगा। पर्यटकों की दृष्टि से अच्छी सड़कों का निर्माण होना भी आवश्यक है। अत: सड़कों का विस्तार राज्य की कृषि, व्यापार, उद्योग, आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिये आवश्यक है।

राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम—राजस्थान सरकार द्वारा अक्टूबर 1964 में स्थापित राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम जनता को शीघ्र एवं सुरक्षित यात्रा सेवा प्रदान करने के उद्देश्य से स्थापित किया गया है। इस निगम को आठ संभागों में बांटा गया है तथा उनके अन्तर्गत 34 डिपो कार्यरत है। राष्ट्रीयकृत

मार्गों पर परिवहन व्यवस्था का एकाधिकार इस निगम को है। राजस्थान के कुछ बड़े शहरों में शहरी परिवहन व्यवस्था का कार्य भी यह निगम कर रहा है। वर्ष 198⁻-88 में 1910 किमी. लम्बे 42 नये बस मार्ग खोले गये हैं अभी तक 2000 से अधिक आबादी वाले अधिकांश गांवों को बस सेवा उपलब्ध है। सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 1000 से अधिक आबादी वाले गांवों को बस सेवा से जोड़ने के प्रयासों को तेज किया जा रहा है।

रेलमार्ग

राजस्थान के एकीकरण के पूर्व जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर व धौलपुर रियासतों के अपने निजी रेलमार्ग थे जिनमें से बीकानेर व जोधपुर के रेलमार्ग प्रथम श्रेणी के वर्ग में माने जाते थे। सन् 1950 में राजस्थान की सभी रियासतों के रेलमार्गों को भारत सरकार ने अपने नियन्त्रण में कर उनका पुनर्गठन कर दिया। इस पुनर्गठन व्यवस्था के अन्तर्गत जयपुर व उदयपुर के रेलमार्ग पश्चिमी रेल्वे के अन्तर्गत तथा जोधपुर व बीकानेर के रेल मार्गों को उत्तर रेल्वे के अन्तर्गत शामिल कर लिया गया। इस प्रकार उत्तर रेलमार्ग राजस्थान के उत्तरी एवं पश्चिमी क्षेत्रों जैसे जोधपुर तथा बीकानेर डिवीजन के जिलों से गुजरता है जबकि राजस्थान के शेष अधिकांश भाग में पश्चिमी रेल मार्ग हैं। रियासतों के एकीकरण के समय जैसलमेर, बांसवाड़ा और डूंगरपुर रियासतों में रेलमार्ग नहीं थे। जयपुर तथा कोटा डिवीजनों में रेलमार्गों का विकास अच्छा हुआ था परन्तु जोधपुर, बीकानेर व उदयपुर डिवीजनों में रेलों का विकास सन् 1950 तक सन्तोषजनक नहीं था।

राजस्थान राज्य का क्षेत्रफल 3,42,267 वर्ग किलोमीटर है लेकिन इतने बड़े विशाल राज्य में केवल 6228 किलोमीटर लम्बे रेलमार्ग हैं। इसमें से लगभग 5820.2 किलोमीटर लम्बा रेलमार्ग मीटर गेज का है (93.5 प्रतिशत), 293 किलोमीटर ब्रॉडगेज और 114.3 किलोमीटर सकड़ी गेज का रेलमार्ग है। रेल्वे मण्डल के आधार पर राज्य में उत्तरी, पश्चिमी और मध्य रेल्वे लाइनें पाई जाती हैं। विभिन्न जिलों में रेल मार्ग की लम्बाई का वितरण निम्नांकित तालिका में

मण्डल	लम्बाई (किलोमीटर)	गेज	जिले
उत्तरी	328.5	मीटर	बीकानेर, जोधपुर, गंगानगर, चूरू, जिले और हनुमानगढ़
पश्चिमी	2523.5	मीटर	आबू, अलवर, उदयपुर, जयपुर, अजमेर, चित्तौड़गढ़, सवाईमाधोपुर
	272.0	ब्रॉड	कोटा और सवाईमाधोपुर
मध्य	133.6	ब्रॉड सकड़ा	धौलपुर, गंगापुर भरतपुर

दिया गया है। राजस्थान के प्रति 2600 वर्ग किलोमीटर के भू-भाग पर रेलों की औसत लम्बाई 44.8 किलोमीटर है जबकि भारत के लिये यह औसत 45.2 किलोमीटर का है। राज्य में जनसंख्या छितरी हुई है इसलिये जनसंख्या के सन्दर्भ में रेलमार्ग की लम्बाई का औसत भारत के औसत की अपेक्षा अच्छा है। राजस्थान में 10,000 जनसंख्या के पीछे 3.09 किलोमीटर लम्बा रेलमार्ग है जबकि भारत का औसत 1.43 किलोमीटर ही आता है। ये औसत चाहे राजस्थान के हों अथवा भारत के हों, रेलों की प्रकृति का सही चित्रण नहीं करते जब तक इनकी तुलना अन्य देशों के साथ न की जाये। जब अन्य विकसित और औद्योगिक देशों के साथ इन्हीं औसतों की तुलना की जाती है तो यह महसूस होता है कि न केवल राजस्थान बल्कि समग्र भारत रेलमार्गों की सेवायें पर्याप्त नहीं रखता है। राजस्थान में विभिन्न प्रकार के रेलमार्गों के होने के कारण माल ढुलाई या यात्रियों के लिये भरतपुर, धौलपुर और सवाईमाधोपुर स्टेशनों पर कई प्रकार की समस्यायें खड़ी हो जाती हैं। राज्य के बाहर अन्य केन्द्र जैसे रतलाम, आगरा पूर्व, सरायरोहिल्ला और भटिण्डा जो रेलों द्वारा अन्तर्राज्यीय यातायात के लिये महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह राज्य

में कोयला, कोक और अन्य वस्तुओं को बड़े पैमाने पर लाने के लिये स्थानान्तरण-केन्द्र हैं। राज्य में आने वाली वस्तुएँ जाने वाली वस्तुओं की अपेक्षा अधिक हैं। राजस्थान के औद्योगिक विकास के साथ यह प्रवृति भविष्य में भी निरन्तर वनी रहेगी।

पिछले दशक में राज्य में यातायात काफी बढ़ गया है और कई केन्द्रों जैसे सवाईमाधोपुर, फुलेरा, हनुमानगढ़, रतनगढ़, सादुलपुर और गंगानगर आदि पर कई प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई है इन केन्द्रों पर अत्यधिक भीड़, सामान के आदान-प्रदान के लिए रेलमार्गों की सीमित क्षमता, यार्डस् में डिब्बों को रोके रखना तथा स्थानान्तरण जैसी कई समस्यायें देखने को मिलती हैं।

राजस्थान में रेलमार्ग का वितरण क्षेत्रीय दृष्टि से नहीं है। परिवहन मानचित्र दर्शाता है कि जैसलमेर, वांसवाड़ा, डूंगरपुर, टोंक, झालावाड़ और जालौर आदि ज़िले राजस्थान के लगभग 27 प्रतिशत क्षेत्र पर विस्तृत है लेकिन इनमें रेलमार्गों की लम्बाई बहुत ही कम है। इस प्रकार राजस्थान के लगभग 20 प्रतिशत क्षेत्र को प्राय: नाम की रेल सेवा उपलब्ध है। मुख्य कारण यह है कि जैसलमेर जो राजस्थान के शुष्क एवं रेतीले भाग में स्थित है, वहुत ही कम जनसंख्या रखता है तथा कृषि के लिए किसी सीमा तक निषेधात्मक क्षेत्र है। अत: रेलमार्ग के विकास की आवश्यकता पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया लेकिन अव इन्दिरा गांधी नहर के प्रस्तावित विस्तार को दृष्टिगत रखते हुए यह अनुमान कर सकते हैं कि भविष्य में सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध होने पर कृषि कार्यो में वृद्धि होगी और परिणामस्वरूप रेल मार्गों के विकास पर ध्यान दिया जायेगा। वांसवाड़ा और डूंगरपुर जिले अरावली पहाड़ियों में स्थित हैं। पहाड़ी भू-भाग और अविकसित प्रकृति के कारण इस क्षेत्र में भी रेलमार्गों की लम्बाई कम है। परिवहन मानचित्र में रेलमार्गों की सामान्य विशेषताओं का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि अरावली के पश्चिम में रेलमार्ग काफी दूरी तक सीधे हैं। पहाड़ियों की अनुपस्थिति इसमें सहायक है जवकि अरावली प्रदेश में रेलमार्ग टेढ़े-मेढ़े रास्तों को अपनाते हैं। भूमि की प्रकृति के अनुसार कई स्थानों पर रेलमार्ग को प्राकृतिक वाधाओं से वचाने के लिए लम्वे-लम्वे मुड़ाव देने पड़े हैं।

पंचवर्षीय योजना काल में प्रत्येक रेलमार्ग के सहारे ग्रामीण जनसंख्या तथा कृषि उत्पादों के हेतु परिवहन की सुविधा प्रदान करने के लिये कई छोटे-छोटे स्टेशन वना दिये गये हैं जहाँ पर यात्रियों के लिये प्रतीक्षा गृह, आराम गृह, जल की व्यवस्था, स्नान गृह, तथा शौचालय की सुविधाएं भी प्रदान की गई है। योजना काल में नये रेल कारखाने, यार्डों का सुधार, दोहरी रेल लाईन का निर्माण आदि कार्य भी किये गये हैं।

राजस्थान में प्रमुख रेलमार्ग निम्नलिखित हैं—

1. देहली-अहमदावाद रेलमार्ग
2. फुलेरा-देहली रेलमार्ग
3. जयपुर-लुहारू रेलमार्ग
4. सीकर-चूरू रेलमार्ग
5. जयपुर-सवाईमाधोपुर रेलमार्ग
6. जोधपुर-देहली रेलमार्ग
7. बीकानेर-देहली रेलमार्ग
8. बीकानेर-गंगानगर रेलमार्ग
9. आगरा-बीकानेर और आगरा-जोधपुर रेलमार्ग
10. उदयपुर-मारवाड़ रेलमार्ग
11. उदयपुर-अजमेर रेलमार्ग
12. उदयपुर-हिम्मतनगर रेलमार्ग
13. पोकरन-जैसलमेर रेलमार्ग
14. गंगानगर-हिन्दूमल कोट रेलमार्ग
15. भरतपुर-वम्वई रेलमार्ग (वड़ी लाईन)

राजस्थान में चलने वाली प्रमुख गाड़ियां

(1) **पिंकसिटी एक्सप्रेस**—प्रारम्भ में इसे जयपुर से दिल्ली के लिए चलाया गया था किन्तु वाद में इसे उदयपुर तक वढ़ा दिया गया। यह उदयपुर सप्ताह में तीन दिन जाती है।

(2) **आश्रम एक्सप्रेस**—यह सुपर फास्ट ट्रेन दिल्ली से अहमदावाद के मध्य चलती है। यह गाड़ी दिल्ली से अहमदावाद तक की यात्रा वहुत कम समय में तय करती है।

(3) **चेतक एक्सप्रेस**—उदयपुर से दिल्ली तक चलने वाली यह गाड़ी महाराणा प्रताप के घोड़े चेतक की याद में 1909 में चलाई गई थी।

(4) **मरुधर एक्सप्रेस**—आरम्भ में यह जयपुर से जोधपुर तक चलती थी किन्तु बाद में इसे बढ़ाकर लखनऊ तक कर दिया गया।

(5) **गंगानगर एक्सप्रेस**—यह एक्सप्रेस सवारी गाड़ी जयपुर से गंगानगर को बीकानेर होती हुई जाती है।

(6) **पैलेस ऑन व्हील्स**—भारतीय रेल्वे एवं राजस्थान पथ परिवहन विभाग के संयुक्त उपक्रम के अन्तर्गत यह शाही रेलगाड़ी प्रारम्भ की गयी है। इस रेलगाड़ी में प्राचीन राजशाही रहन-सहन दृष्टिगोचर होता है। यह पैलेस ऑन व्हील्स दिल्ली से प्रारम्भ होकर राजस्थान के विभिन्न पर्यटन स्थलों से होकर गुजरती है। शाही रेलगाड़ी को चलाने का मुख्य उद्देश्य विदेशी भ्रमणकारी को आकर्षित करना है।

बीकानेर फुलेरा के बीच चलने वाली ट्रेन अब बीकानेर से जयपुर तक तथा जोधपुर से भीलड़ी जाने वाली ट्रेन साबरमती (अहमदाबाद) तक चलेगी।

रेल परिवहन विकास कार्य केन्द्रीय सरकार के हाथ में है। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत फतेहपुर-चूरू उदयपुर-हिम्मतनगर तथा गंगानगर-हिन्दूमल कोट रेल मार्गों का निर्माण किया गया है।

राजस्थान एक विस्तृत राज्य है। इसके क्षेत्रफल के दृष्टिगत रखते हुए अगर रेल सुविधाओं को देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि रेल मार्गों का विकास बहुत कम हुआ है। इसलिये राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों को रेल सुविधायें उपलब्ध करवाने के लिये निम्न रेल मार्गों का निर्माण किया जाना चाहिये उनमें से कुछ केन्द्रीय सरकार के समक्ष अभी विचाराधीन है।

1. अजमेर-कोटा रेलमार्ग
2. बाड़मेर-जैसलमेर रेलमार्ग
3. अजमेर-पुष्कर-जोधपुर रेलमार्ग
4. देवली-चित्तौड़गढ़ रेलमार्ग
5. कोलायत-फलौदी रेलमार्ग
6. कोटा-बूंदी-देवली-टोडारायसिंह-मालपुरा डिग्गी-जयपुर रेलमार्ग
7. फालना-बाली-सादड़ी-देसूरी रेलमार्ग
8. रतलाम-बांसवाड़ा-डूंगरपुर रेलमार्ग

जयपुर-सवाईमाधोपुर रेलमार्ग को बड़ी लाईन में बदलने का सर्वे पूरा हो गया है। इस 131 क़िलोमीटर लम्बे मार्ग पर अनुमानित लागत 55.09 करोड़ रुपये आने की संभावना है। ऐसी आशा है कि इस लाईन को बिछाने के कार्य को शीघ्र ही स्वीकृति मिल जायेगी।

कोटा से चित्तौड़गढ़ होते हुए नीमच (मध्य प्रदेश) तक बड़ी रेल लाईन डालने का प्रस्ताव वर्ष 1982-83 में किया गया था और 1987-88 तक इस परियोजना को पूरा किया जाना था। इसकी मूल लागत 97 करोड़ रुपये आंकी गई थी लेकिन अब यह मार्च, 1989 तक पूर्ण होने पर इस पर लागत लगभग 120 करोड़ आयेगी। तत्पश्चात मालगाड़ियों का आवागमन शुरू हो जायेगा।

जोधपुर-जैसलमेर रेलमार्ग पर चलने वाली रेलों की गति सौ किलोमीटर प्रति घण्टा करने के लिये रेल्वे ने एक योजना बनाई है। करीब दो करोड़ रुपये लागत की इस योजना को शीघ्र ही क्रियान्वित किया जायेगा। इस योजना के अन्तर्गत राई का बाग से जैसलमेर तक की रेल लाईन में सुधार करने के साथ ही सिग्नल पद्धति को क्रमोन्नत किया जायेगा। योजना पूरी होने में तीन-चार वर्ष लगेंगे। इस योजना के बाद फुलेरा से जोधपुर के रेलमार्ग में सुधार किया जायेगा।

राज्य में 6,228 किलोमीटर लम्बे रेलमार्ग हैं जो भारत के कुल रेल-मार्गों का 9.28% है। राजस्थान का रेल माईलेज जनसंख्या की दृष्टि से भारत से अधिक परन्तु क्षेत्रफल की दृष्टि से कम है। राजस्थान में जनसंख्या का घनत्व कम है क्योंकि इसके अधिकांश भाग पर मरुस्थलीय परिस्थितियां विशेषकर अरावली के उत्तरी-पश्चिमी भाग पर पाई जाती हैं जिनके कारण राज्य में रेल सुविधाएं औसत स्तर से अधिक नहीं है। पश्चिमी रेल्वे मण्डल क्षेत्र में माल की ढुलाई से रेल्वे की आमदनी लगातार बढ़ रही है और निकट भविष्य में तो उसके बहुत बढ़ जाने की आशा है। ऐसी दशा में राजस्थान में रेल का विस्तार न किया जाना अत्यन्त खेदजनक है। राज्य के उद्योगपति और व्यवसायी वर्ग भी निरन्तर राज्यों में बड़ी रेल लाईन डालने की मांग

करता रहा है लेकिन इसे सदा गम्भीरता से नहीं लिया गया है।

वायु मार्ग

वायु परिवहन की दृष्टि से राजस्थान बहुत ही पिछड़ा हुआ राज्य है। राजस्थान निर्माण के पूर्व किसी भी देशी रियासत में वायुपरिवहन का विकास नहीं हो पाया था। सन् 1929 में प्रथम प्रयास जोधपुर के महाराजा श्री उम्मेदसिंह जी ने एक फ्लाईंग क्लब खोल-कर किया था।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व सन् 1939 में राजस्थान में तीन विदेशी हवाई कम्पनियाँ बी. ओ. ए सी., के. एल. एम. (डच), व एयर फ्रांस थीं जो अपनी सेवाएं जोधपुर होकर प्रदान कर रही थीं। अतः जोधपुर का हवाई अड्डा बहुत अच्छी तरह से बनाया हुआ था। युद्धकाल में तीन विदेशी सेवाएं बन्द हो गई। केवल देहली-जोधपुर-करांची मार्ग पर इण्डियन नेशनल एयरवेज लिमिटेड के द्वारा सैनिक कार्यों के लिये वायु-सेवा जारी रही।

सन् 1946 में इण्डियन नेशनल ऐयरवेज लिमिटेड सन् 1947 में अम्बिका एयरलाईन्स ने बीकानेर व जोधपुर होकर वायु सेवाएं प्रारम्भ कर दी।

राजस्थान के निर्माण के एक वर्ष पश्चात् राज्य में जुलाई 1950 में दो वायु सेवाएं कार्य कर रही थीं। एक एयर इण्डिया जो बम्बई-अहमदाबाद-जयपुर-देहली मार्ग पर तथा दूसरी इंडियन नेशनल एयरवेज कम्पनी देहली-जोधपुर-करांची मार्ग पर अपनी सेवाएं क्रमशः जयपुर तथा जोधपुर को प्रदान कर रही थी।

एक अगस्त 1953 में वायु परिवहन का राष्ट्रीय-करण कर दिया गया। अब राज्य में जयपुर, उदयपुर तथा जोधपुर, दिल्ली, अहमदाबाद तथा बम्बई हवाई सेवाओं से जुड़े हुए हैं। ये सब स्थान इण्डियन एयरलाईन्स कार्पोरेशन से सम्बन्धित हैं।

आज राजस्थान में निम्नलिखित हवाई अड्डे हैं—

(i) जयपुर—सांगानेर एयरपोर्ट
(ii) उदयपुर—डबोक एयरपोर्ट
(iii) जोधपुर—रतनदा एयरपोर्ट
(iv) कोटा—कोटा एयरपोर्ट

कुछ वर्षों पूर्व गंगानगर, बीकानेर और झुन्झुनू को भी वायु सेवाएँ उपलब्ध थीं। बीकानेर तथा अजमेर को भी शीघ्र ही वायुदूत सेवा से जोड़ने का प्रावधान है।

राज्य में मुख्य तीन वायुमार्ग हैं—

(i) दिल्ली-आगरा-जयपुर
(ii) दिल्ली-जयपुर-जोधपुर-उदयपुर-अहमदाबाद-बम्बई
(iii) दिल्ली-जयपुर-उदयपुर-औरंगाबाद-बम्बई

कुछ वर्षों पूर्व बीकानेर, गंगानगर और झुन्झुनू को भी वायु सेवाएं उपलब्ध थीं। बीकानेर तथा अजमेर को शीघ्र ही वायुदूत सेवा से जोड़ने का प्रावधान है लेकिन विमानों की उपलब्धता, सेवाओं के लिए सुविधा व आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद होने पर ही इन स्थानों पर सेवा का शुरू किया जाना निर्भर करेगा। अजमेर के स्थान पर पहले वायुदूत सेवा का लाभ जैसलमेर नगर को प्रदान करने का प्रावधान रखा गया था लेकिन इस क्षेत्र में रक्षा सेवाओं की महत्वता को देखते हुए इसे क्रियान्वित नहीं किया जा सकता। जोधपुर और बीकानेर के हवाई अड्डे सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। बीकानेर का हवाई अड्डा भूमिगत और भारत के सर्वश्रेष्ठ सैनिक हवाई अड्डों में से एक है। जोधपुर अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का वायुसेना का हवाई अड्डा है जहाँ प्रशिक्षण-सुविधा भी उपलब्ध है। जयपुर को अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा बनाया जाये तथा राज्य के कुछ अन्य महत्वपूर्ण शहर व नगर जैसे जैसलमेर, बीकानेर, गंगानगर, अजमेर तथा कोटा यदि हवाई नक्शे पर आ जायें तो अर्थव्यवस्था और तेज गति पकड़ लेगी।

राजस्थान के परिवहन साधनों की वर्तमान प्रगति को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अभी भी यहाँ भावी विकास की सहज सम्भावनाएं हैं क्योंकि राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में औद्योगिक, कृषि तथा खनिज संसाधनों के बढ़ते उपयोग तथा विकास के कारण परिवहन के साधनों की आवश्यकता की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही है जिनके पूर्ण किये जाने पर ही राज्य के विकास की योजनाएं सफल हो सकेंगी और राजस्थान प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकेगा।

किसी भी प्रदेश की आर्थिक सम्पन्नता उसके अन्य प्रदेशों के साथ होने वाले व्यापार की प्रकृति और मात्रा के द्वारा मापी जा सकती है। सभी प्रदेश अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं वस्तुओं का उत्पादन कर नहीं कर सकते क्योंकि विभिन्न वस्तुओं को उत्पन्न करने के लिये विभिन्न कारक उत्तरदायी होते हैं चाहे ये वस्तुएं कृषि औद्योगिक अथवा खनिजों से सम्बन्धित हों अथवा आर्थिक मूल्य के कोई अन्य पदार्थ हों। **वस्तुओं व सेवाओं के लेनदेन को व्यापार कहते हैं।** व्यापार से तात्पर्य है कि कीमत लेकर दूसरों को उनकी आवश्यकता की वस्तुएं बेचना अथवा सेवा करना और इस प्रकार जीविकोपार्जन करना। यह आवश्यक नहीं है कि बेचने वाला उस वस्तु को स्वयं ही उत्पन्न करे। वह उसे किसी अन्य से क्रय कर विक्रय कर सकता है। इस प्रकार राज्य अथवा प्रदेश व्यापार के द्वारा अपनी आवश्यकता की वस्तुएं खरीद कर तथा अपने आधिक्य (Surplus) उत्पादन को बेच कर अपनी समृद्धि को बढ़ा सकता है। आर्थिक विकास के कारकों में व्यापार का महत्वपूर्ण स्थान है। समुचित व्यापार क्रिया के लिये यातायत एवं संचार के साधन, उत्पादन-आधिक्य, वस्तुओं में विभिन्नता, व्यापार की इच्छा एवं सहयोग भावना तथा समुचित राजनीतिक स्थिरता आदि तथ्य अपेक्षित होत हैं।

समाज के विकास के साथ-साथ मानव की आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं और स्वावलम्बता समाप्त हो जाती है। जब एक राज्य दूसरे राज्य से माल मंगाता है तो इसे आयात कहते हैं और जब एक राज्य अपनी सीमा से बाहर माल भेजता है तो उसे निर्यात कहते हैं।

आधुनिक युग में विज्ञान के आविष्कारों तथा संदेशवाहन के साधनों की प्रगति ने व्यापार के क्षेत्र को बहुत बढ़ा दिया है।

राजस्थान निर्माण के पूर्व व्यापार—सन् 1950 के पूर्व राजस्थान के जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, भरतपुर, मेवाड़ और अलवर रियासतों में व्यापारी मिलते थे जो ऊनी, सूती व रेशमी वस्त्र तथा रियासतों में बनाये जाने वाली वस्तुओं का व्यापार करते थे। प्रत्येक बड़े गांव के बाजार में दैनिक उपयोग की वस्तुयें मिलती थीं जहाँ प्रायः 10-12 किलोमीटर की दूरी तक बसे छोटे-छोटे गांव के निवासी आकर वस्तुओं का क्रय करते थे। कुछ बड़े केन्द्रीय गांवों में सप्ताह अथवा पक्षीय हाट लगती थी जहाँ विलासिता की वस्तुयें, लोहे व पीतल के बर्तन, कांच की चूड़ियाँ, कुटीर उद्योग में बनी वस्तुयें आदि मिलती थीं।

जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर तथा पश्चिमी जोधपुर आदि के मरु क्षेत्रों में दूर-दूर स्थित होने तथा जनसंख्या कम होने के कारण तहसील अथवा प्रशासन के मुख्यालयों पर थोक बाजार लगाये जाते थे जहाँ स्थानीय उत्पादों की बिक्री होती थी। सब रियासतों में हाट या बाजार लगते थे। इन बाजारों में एक ठेकेदार जिसे 'नापा'[1] कहते थे, कर वसूल किया करता था। यह ठेकेदार राजा को कुछ नजराना देकर कर वसूल करने का अधिकार प्राप्त कर लिया करता था।

रेलों व सड़कों के विकास से राजस्थान में भी वस्तुओं का आयात व निर्यात बढ़ा। दोनों विश्वयुद्धों का परिणाम भी बाजार पर पड़ा, जिससे विदेशों से विभिन्न प्रकार की वस्तुएं मंगाकर बाजार में बिकने लगीं। इस काल में कुटीर उद्योग धीरे-धीरे पिछड़ने लगे तथा वे उद्योग जिनके माल की खपत सेना में हो जाती थी, समुचित विकास करने लगे। परिणामस्वरूप कुटीर उद्योग पुनः विकसित नहीं हो पाये और बड़े उद्योग दिनों-दिन उन्नति करने लगे तथा साथ ही बाजारों का भी विस्तार होता चला गया।

राजस्थान के निर्माण के पश्चात् राज्य ने पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत सभी क्षेत्रों में विकास किया। राज्य में कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, औद्योगीकरण की दिशा में ठोस कदम उठाये गये जिससे राज्य निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर हो सका। रेलमार्ग तथा सड़कों का समुचित विकास किया गया जिसका प्रभाव जनजीवन के सभी पहलुओं पर पड़ा। ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े गांवों व

1. P. S. Chaudhary, Rajasthan between the two Wars, 1968, P. 155.

नगरों का आविर्भाव हुआ जिनमें निरन्तर जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। इस प्रकार राजस्थान अविकसित राज्य से विकासशील अवस्था में पहुंच गया है तथा स्वयं-स्फूर्त विन्दु (Take off Point) पर है। इससे व्यापार में उन्नति होना स्वाभाविक है।

राजस्थान कृषि प्रधान राज्य है। राजस्थान का अधिकांश भाग मुख्यतया अरावली श्रेणी के पश्चिम में मरुभूमि के रूप में है। ऐसे प्रदेशों में कृषि क्रियाएं विभिन्न तत्वों के परिणामस्वरूप सीमित है। यहाँ बाजरा और दालें मुख्य कृषि उत्पाद है तथा जहाँ कहीं भी सिंचाई की सुविधाएं सम्भव है जैसे गंगनहर, इन्दिरा गांधी नहर के क्षेत्रों में, कपास, चना और गेहूं उगाया जाता है। राज्य के पूर्वी तथा दक्षिणी-पूर्वी भाग कृषि की दृष्टि से उपयुक्त हैं। यहाँ पर हस्तशिल्प व कुटीर उद्योग उन्नति पर थे। हस्त शिल्प कला का विकास किया जा रहा है। कुछ कुटीर उद्योगों का स्थान धीरे-धीरे बड़े उद्योग ले रहे हैं।

राज्य खनिजों की दृष्टि से धनी है लेकिन वर्तमान में उत्पादन केवल कुछ चयनित क्षेत्रों तक ही सीमित है। कोयले के सुरक्षित भण्डार अल्प हैं। खनिज पदार्थों का खनन अब काफी होने लगा है। इन पर आधारित उद्योग धन्धे निरन्तर विकास कर रहे हैं।

राजस्थान कृषि प्रधान राज्य होने के कारण इसके व्यापार में अधिकांशतः कृषि तथा उससे सम्बन्धित उत्पादों का ही बाहुल्य रहता है। इनके अलावा खनिज पदार्थ, वनस्पति पदार्थ, हस्तशिल्प की वस्तुएं, भेड़, बकरी, बैल आदि भी व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

राजस्थान का निर्यात केवल अन्तर्राज्यीय क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है बल्कि विदेशों को भी अपने उत्पादों का निर्यात कर रहा है। राजस्थान ने वर्ष 1983-84

राजस्थान के मुख्य निर्यात

मद	कुल निर्यात ('000 क्विंटल में)		मुख्य राज्य जिन्हें निर्यात किया जाता है
	1964-65	1983-84	
चौपाये (नम्बर में)	9	85	मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तरप्रदेश
भेड़ व बकरियां (नम्बर में)	211	41	मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र
अन्य जानवर (नम्बर में)	13	38	उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात
हड्डियां	81	151	गुजरात, केरल, महाराष्ट्र
सीमेन्ट	8015	23520	उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र
चना तथा चने के उत्पाद	711	4435	उत्तरप्रदेश तथा गुजरात
दालें	431	1684	उत्तरप्रदेश तथा गुजरात
जौ	158	93	उत्तरप्रदेश, पंजाब
चावल	24	435	मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र
अन्य अनाज, दालें व आटा	120	392	उत्तरप्रदेश
चूना व चूना पत्थर	—	565	गुजरात, महाराष्ट्र
खल	301	505	पंजाब, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश
सरसों व राई	284	476	पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश
नमक	2094	2083	पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार
कपास (कच्ची-भारतीय किस्म)	125	130	पंजाब, हरियाणा
सरसों का तेल	37	132	उत्तरप्रदेश

में 112.8 करोड़ रुपये एवं 1984-85 में 128.8 करोड़ रुपये मूल्य के उत्पादों का निर्यात किया। इस प्रकार निर्यात के क्षेत्र में इसका व्यापार निरन्तर बढ़ रहा है। आशा की जाती है कि वर्ष 1988-89 में इसका निर्यात लगभग 230 करोड़ रुपये का होगा।

राजस्थान से निर्यात किये जाने वाले उत्पादों में प्रमुख स्थान जवाहरात एवं आभूषणों का है क्योंकि निर्यात किये जाने वाले कुल मूल्य का लगभग 37 प्रतिशत इन्हीं से निर्मित है। अन्य निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में हस्तकला की वस्तुएं, नमदें, ऊनी गलीचे, संगमरमर व उसकी मूर्तियां, हाथ से छपाई व रंगाई किये गये वस्त्र, खनिज व इंजीनियरिंग की वस्तुएें आदि प्रमुख है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

1. **जवाहरात एवं आभूषण**—राजस्थान से प्रतिवर्ष लगभग 47 करोड़ के हीरे, जवाहरात व आभूषण निर्यात किये जाते है। जयपुर इनका सबसे बड़ा केन्द्र है। इसमें वृद्धि की काफी सम्भावनाऐं है क्योंकि अब उत्कृष्ट डिजाइन में सोने, चांदी, प्लेटीनम के आभूषण का निर्माण किया जाने लगा है तथा इसके साथ ही रत्न, अर्द्ध-मूल्यवान रत्न, कृत्रिम रत्न व जवाहरात आदि में भी विदेशियों की रूचि काफी बढ़ गई है।

2. **नमदें व ऊनी गलीचे**—ऊनी उत्पादों में राजस्थान का स्थान सदैव प्रमुख रहा है। लगभग 30 करोड़ रुपये मूल्य के नमदें, ऊनी गलीचे तथा अन्य ऊनी वस्तुओं का निर्यात इस राज्य से किया जाता है।

3. **वस्त्र**—हाथ की छपाई, रंगाई तथा बन्धेज के कपड़े विदेशों को भेजे जाते है। लगभग 5 करोड़ रुपये मूल्य के वस्त्र राज्य से प्रतिवर्ष निर्यात किये जाते है। इनके अतिरिक्त हाथ कर्घे पर बुने वस्त्र, चादरें तथा सिले-सिलाये वस्त्रों का भी निर्यात होता है।

4. **हस्तकला की वस्तुऐं**—राजस्थान में हाथीदांत तथा लकड़ी की कलात्मक वस्तुऐं, मूर्तियां, राजस्थानी पेंटिंग, चीनी मिट्टी के नीले वर्तन, पीतल व ब्रोन्ज धातुओं के वर्तन व खिलौने, चमड़े की जूतियाँ व पर्स आदि, गुडियाऐं, पेपरमेसी का सामान, जरी के काम की वस्तुऐं आदि हस्तकला की वस्तुओं में प्रमुख है। इनसे लगभग 2 करोड़ रुपये मूल्य का निर्यात सम्पन्न होता है।

5. **खनिज एवं अन्य वस्तुऐं**—संगमरमर व इससे बनी मूर्तियाँ, सोपस्टोन, अभ्रक, तांबा, फासफोरस, जिप्सम, ग्रेनाइट व सीमेन्ट आदि का निर्यात लगभग दो करोड़ रुपये मूल्य का किया जाता है।

6. **पशु पर आधारित वस्तुऐं**—पशुओं की हड्डियाँ व इनका चूरा, चमड़े व इससे बनी वस्तुऐं, बकरी व ऊंट के बालों से निर्मित वस्तुऐं आदि प्रमुख है जिनका निर्यात किया जाता है।

7. **रसायन सम्बन्धी उत्पादन**—राज्य से रसायन सम्बन्धी उत्पादों में नमक, प्लास्टिक का सामान, प्लास्टिक के जूते, चप्पल आदि कीटनाशक औषधियां, कांच का सामान, बुलेट प्रूफ कांच आदि प्रमुख है जिनके निर्यात से लगभग तीन करोड़ रुपये की राशि अर्जित होती है।

8. **इंजीनियरिंग उद्योग के उत्पाद**—इसके अन्तर्गत बालबियरिंग, तार व केबल्स, बिजली व पानी की मोटर, बिजली के तारों को लगाने के लिये खंभे, तार की जालियां तथा इलेक्ट्रोनिक सामान आदि सम्मिलित है। प्रतिवर्ष लगभग दो करोड़ रुपये मूल्य का इंजीनियरिंग सामान निर्यात किया जाता है।

9. **कृषि उत्पाद**—कृषि उत्पादों में चना व चने के उत्पाद, दालें, चावल, सरसों, राई, खल, कपास, सरसों का तेल, ग्वांर गम, मक्का व इसके उत्पाद आदि सम्मिलित है जिनका अधिकतर निर्यात अन्य राज्यों के साथ किया जाता है।

10. **अन्य वस्तुऐं**—इनके अतिरिक्त बहुत सी ऐसी छोटी-छोटी वस्तुऐं तथा सामान है जिनका निर्यात राज्य से होता है। उनमें प्रमुख हैं-मेंहदी, ताड़ का तेल, अचार, मुरब्बे, पापड़, भुजिया, बीड़ी, शराब, अगरबत्ती, साइकिल व आटोमोबाइल्स के पुर्जे आदि। इनके निर्यात से लगभग 41 करोड़ रूपयों की राशि राज्य को प्राप्त होती है।

राजस्थान की अर्थ व्यवस्था में निरंतर सुधार हो रहा है क्योंकि यहाँ पर सभी प्रकार के उद्योगों में निरन्तर विकास की दर में बढ़ोत्तरी हो रही है। परिणामस्वरूप

राजस्थान के मुख्य आयात

मद	कुल आयात ('000 क्विंटल में) 1964-65	1983-84	मुख्य राज्य जहाँ से आयात होता है
कोयला व कोक	9,146	14,630	बिहार, पश्चिमी बंगाल, मध्यप्रदेश
कांच	37	13	उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल
गेहूं	2,648	1,334	पंजाब, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र
लोहा व इस्पात	1,530	1,831	पश्चिमी बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र उत्तरप्रदेश
मिट्टी का तेल	450	1,547	महाराष्ट्र
मूंगफली का तेल	37	82	महाराष्ट्र
अन्य तेल	—	91	गुजरात, पंजाब
तिलहन-कपास विनोले	70	204	मध्यप्रदेश, गुजरात, पंजाब
तिल	48	28	उत्तरप्रदेश
चीनी	433	1,062	उत्तरप्रदेश, पंजाब
खाँडसारी चीनी	65	37	उत्तरप्रदेश, पंजाब
गुड़	568	315	उत्तरप्रदेश, पंजाब
चाय	8	47	गुजरात, पश्चिमी बंगाल
तम्बाकू	32	35	मध्यप्रदेश
इमारती लकड़ी	338	838	उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश
कच्ची कपास	—	57	पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात
मशीनरी सामान	—	45	दिल्ली, महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात
खनिज तेल	—	6,858	गुजरात, उत्तरप्रदेश

सभी क्षेत्रों अर्थात खनिज, कृषि, पशुपालन, उद्योग आदि में उत्पादन बढ़ रहा है। अत: राज्य के निर्यात में वृद्धि होने की सम्भावनाएँ स्वाभाविक ही है।

राजस्थान में व्यापार का भविष्य—प्राचीन काल में सांभर का नमक, चूना, संगमरमर तथा अन्य वस्तुएं निर्यात की जाती थीं लेकिन वर्तमान में परिस्थितियां बदल जाने के फलस्वरूप क्रम बदल गया है।

राजस्थान के पश्चिमी मरूस्थलीय क्षेत्रों में इंदिरा गांधी नहर के निर्माण के कारण तथा खनिजों, वनों एवं पशुओं पर आधारित उद्योगों के विकसित होने के फलस्वरूप राज्य के व्यापार में परिवर्तन होना जरूरी है। अत: आज व्यापार की दृष्टि से सूती, ऊनी कपड़ा, गलीचे, रासायनिक खाद, दवाईयाँ, चमड़े का सामान, दूध, मक्खन आदि वस्तुएं महत्वपूर्ण हैं। खनिजों में जस्ता, तांवा, अभ्रक, घीया पत्थर, ऐस्वेस्टॉस, इमारती पत्थर, सीमेन्ट, लोहे के सामान और मशीनें आदि मुख्य हैं जिनके निर्यात की अत्यधिक सम्भावनाएं हैं।

कृषि के विकास के साथ ट्रैक्टर, मोटरें, ट्रालियाँ, कम्बाईण्ड हारवेस्टर, क्रीम तैयार करने की मशीनें, ऊन काटने की मशीनें आदि एवं दवाईयां, खाद्य सामग्रियां रेफ्रीजरेटर, ट्रांसमीटर व विजली की मशीनें, खानें खोदने की मशीनें, कागज आदि आयात किये जायेंगे।

आजकल राजस्थान के मारवाड़ी व्यापारियों की रूचि भी राजस्थान के औद्योगिक विकास की ओर बढ़ती जा रही है, अत: राजस्थान के व्यापार का भविष्य बहुत ही उज्जवल प्रतीत होता हैं।

भौगोलिक प्रदेश

राजस्थान के निर्माण के पूर्व राज्य कई देशी रियासतों एवं ठिकानों में विभक्त था। प्रत्येक रियासत अथवा ठिकाने की अपनी-अपनी निश्चित सीमाएं तथा क्षेत्रीय विस्तार था। अजमेर-मेरवाड़ा इन देशी रियासतों के मध्य स्थित था तथा ब्रिटिशों के नियन्त्रण में था। ये देशी रियासतें एक अथवा एक से अधिक भौगोलिक प्रदेशों में विस्तृत थीं। राज्य एकीकरण अधिनियम, 1956 के परिणामस्वरूप राजस्थान राज्य को अपनी वर्तमान सीमाओं के साथ वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ। राज्य की पश्चिमी और उत्तरी पश्चिमी सीमा जो पाकिस्तान की पूर्वी सीमा से निर्धारित है, प्राकृतिक सीमा नहीं है। उत्तर और उत्तर पूर्व में इसकी सीमा पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश राज्यों से, दक्षिण में मध्यप्रदेश से व दक्षिण-पश्चिम में गुजरात राज्य से सीमांकित होती है। राज्य की पूर्वी सीमा का निर्धारण कुछ दूरी तक चम्बल नदी करती है, तत्पश्चात यह प्राकृतिक सीमा से मेल नहीं खाती है। समस्त राजस्थान देश के किसी एक भौगोलिक प्रदेश पर विस्तृत नहीं है। अतः राज्य की सीमाएं विभिन्न प्रादेशिक सीमाओं को अनुप्रस्थ रूप से काटती है। राज्य की सीमाएं एक कृत्रिम योजना से व्यवस्थित हैं तथा प्रकृति में मुख्य रूप से राजनीतिक है। इसलिये ऐसी सीमाएं राजस्थान के भौगोलिक प्रदेशों के अनुरूप हों, आशा नहीं की जा सकती। राजस्थान राज्य एक विस्तृत राज्य है। राजस्थान के विभिन्न भागों में प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विषमता स्पष्ट रूप से मिलती है। अतः समस्त राज्य को एक इकाई मानकर अध्ययन करने से उसका सम्यक् एवं विस्तृत भौगोलिक ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। फलस्वरूप राजस्थान जैसे विस्तृत राज्य को छोटी भौगोलिक इकाइयों में विभक्त कर अध्ययन करना अधिक वैज्ञानिक माना गया है। ऐसी इकाइयों को प्रदेश तथा उनके विभाजन की क्रिया को प्रादेशिकता की संज्ञा दी जाती है।

प्रोफेसर हरबर्टसन के अनुसार भौगोलिक प्रदेश पृथ्वीतल का वह क्षेत्र है जिसमें मानव-जीवन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ समान होती हैं। अतः स्पष्ट है कि इस क्षेत्र को सादृश्य करने में प्राकृतिक विशेषताएं अथवा उस क्षेत्र में मानव कार्यकलापों द्वारा प्रदत्त दशायें सहायक होती हैं। साथ ही उसमें पूर्णता, सामाजिक एकता तथा समांगता भी दिखाई देती है। पर प्रश्न यह है कि इस एकता तथा समांगता का आधार क्या है? हार्टशोर्न ने अपनी व्याख्या में आनुवंशिक सिद्धान्त को प्रदेशों के चिह्नित करने का आधार माना है। पर कुछ सीमा तक आनुवंशिक सिद्धान्त विशेषकर भू-आकृति, जलवायु, वनस्पति प्रदेशों के विभाजन में अधिक सहायक सिद्ध होता है। वर्तमान काल में सांस्कृतिक कार्यकलापों का भी प्रदेशों की विभिन्नता एवं विशेषता पर विशेष प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

प्रादेशिक अध्ययन की सबसे बड़ी कठिनाई क्षेत्रीय समांगता की सीमा निर्धारण करने में आती है। कुछ भूगोलवेत्ताओं ने प्राकृतिक वातावरण, धरातल, जलवायु, मिट्टी, वनस्पति में एकरूपता को क्षेत्रीय समांगता का आधार माना है परन्तु भूगोल के अध्ययन का आदर्श वर्तमान युग में अधिक परिवर्तित हो गया है। मनुष्य अपने कार्यकलापों द्वारा प्राकृतिक वातावरण में परिवर्तन कर एक समान सांस्कृतिक नये प्रदेशों को जन्म देने में समर्थ हुआ है। इस प्रकार प्रदेश विशिष्ट के निर्माण में प्राकृतिक विशेषताओं की समानता के साथ उसके सांस्कृतिक विकास की एकरूपता को भी ध्यान में रखना आवश्यक हो जाता है। साथ ही प्रदेशों में आपसी पदानुक्रम दृष्टिगत होता है, उनके आकार-प्रकार में असमानता होती है, अतः उन्हें श्रेणीबद्ध करना तर्कसंगत प्रतीत होता है। एक बड़े प्रदेशों को उप-प्रदेशों तथा उनसे छोटे प्रदेशों में उनकी समांगता के अनुसार विभक्त किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रदेशों की सीमा राज्य के विभिन्न जिलों, तहसीलों आदि की सीमा से मेल खाये, यह आवश्यक नहीं है।

राजस्थान का प्रादेशिक विभाजन—प्रदेशों की सीमाओं का निर्धारण करने के लिये जो मापदन्ड अपनाये जाते हैं, वे उद्देश्यों पर निर्भर करते हैं। जब राज्य में उन उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिये प्रादेशिक पुनर्निर्माण करना आवश्यक होता है तब प्रदेशों की सीमाएं उन्हीं के अनुरूप निश्चित की जाती है। इस प्रकार के मामलों में

प्रादेशिक सीमांकन मुख्यतया उन कारकों पर आधारित होते हैं जो इन प्रदेशों की सीमाएं निर्धारित करने में सहायक हों। ऐसे कारकों में भौगोलिक कारक सांस्कृतिक सम्बद्धता, विशिष्ट आर्थिक लक्षण, तकनीकी एवं कल्याण-कारी विचार महत्वपूर्ण हैं। परन्तु प्रादेशिक पुनर्निर्माण के लिये ऐसे मापदण्डों का व्यावहारिक पहलू यह स्पष्ट करता है कि उनमें से कोई भी कारक ऐसे निर्माण के लिये पूर्णरूपेण पर्याप्त नहीं है। साथ ही यह भी जरूरी नहीं है कि भौगोलिक, सांस्कृतिक अथवा आर्थिक इकाइयाँ राज्य की सीमाओं से मेल खाती हों।

राजस्थान को भौगोलिक प्रदेशों में बांटते समय विभिन्न कारकों पर विचार किया गया है। इन कारकों में से उल्लेखनीय कारक भू-आकृति विज्ञान, जलवायु, वनस्पति, मिट्टी, कृषि, खनिज, उद्योग, जनसंख्या, सामाजिक और परम्परागत कारक हैं। प्रादेशिक विभाजन के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न प्रदेशों के द्वारा अधिग्रहीत क्षेत्रों में बड़ी विषमता है। प्रदेश के अन्तर्गत मनुष्य-भूमि का सम्बन्ध, आर्थिक विकास की प्रकृति और प्रदेश की सम्भाव्यताएँ आदि जो विशिष्ट विशेषताएँ पाई जाती हैं, वे भौगोलिक प्रदेशों को सजीव बना देती हैं। हॉल ने बतलाया है कि प्रदेश की सीमांकन एक विवेचित कारक नहीं है बल्कि क्षेत्र की विशेषताएं जो इसमें अन्तर्निहित हैं वे मुख्य रूप से भौगोलिक महत्व की होती हैं।

आधुनिक समय में योजनाबद्ध विकास पर अत्यधिक महत्व दिया जाता है। उसे दृष्टिगत रखते हुए अगर देखा जाये तो राज्य में जिलों की प्रशासनिक सीमाएं उनके अनुकूल नहीं है और न ही वे प्रादेशिक इकाईयों से मेल खाती हैं परन्तु परम्परागत सीमांकन के कारण वे निरन्तर चली आ रही हैं। राज्य में जिलों के आकार के सन्दर्भ में बहुत सी असमानताएँ दिखाई देती हैं। डूंगरपुर जिले (3781 वर्ग किलोमीटर) का आकार सबसे छोटा है जबकि जैसलमेर आकार में (38,454 वर्ग किलोमीटर) सबसे बड़ा है। यह आकार में डूंगरपुर से लगभग 10 गुना से भी अधिक बड़ा है। राजस्थान भारत के उन राज्यों में से एक है जहां एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में अधिक विषमताएँ मिलती हैं। यह विषमताएँ धरातल, जलवायु, मिट्टी, वनस्पति, कृषि प्रक्रम (Agricultural Practices) और खनिज संसाधन के सन्दर्भ में प्रमुख हैं। इन के अतिरिक्त मानवनिर्मित कारक जैसे सिंचाई सुविधाएँ, औद्योगिक विकास और संचार के साधन आदि में भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में अधिक विषमताएँ देखी जा सकती है। इस प्रकार भौगोलिक वातावरण, प्राकृतिक एवं आर्थिक दृष्टि से काफी विषम है और यहां तक कि एक छोटा सा क्षेत्र भी दूसरे क्षेत्र से भिन्न हैं। उपरोक्त तमाम वातावरणीय दशायें न केवल विभिन्न क्षेत्रों और प्रदेशों में विषमताएँ दर्शाती हैं बल्कि सामाजिक जीवन पर उनके प्रभाव को भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर अलग-अलग परिलक्षित करती हैं।

राजस्थान को भौगोलिक प्रदेशों में बांटने का सबसे पहला प्रयास डा. वी. सी. मिश्रा[1] ने किया था। उन्होंने राजस्थान को सात भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त कर उन सभी की एक सामान्य जानकारी प्रस्तुत की। दूसरा प्रयास सुप्रसिद्ध भूगोल शास्त्री तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूगोल विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो. रामलोचनसिंह[2] ने समग्र भारत को प्रदेशों में विभाजित करते समय राजस्थान को भी दो मध्यम स्तर प्रदेशों में विभक्त किया। फिर इन दो मध्यम स्तर प्रदेशों को चार प्रथम श्रेणी प्रदेशों में तथा 13 द्वितीय श्रेणी प्रदेशों में विभक्त किया। डा.आर.एल.सिंह की प्रादेशिक विभाजन की इस योजना में प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दोनों प्रकार की समानता एवं समांगता पर ध्यान देने के अतिरिक्त स्थानीय विशेषताओं पर भी ध्यान दिया गया है। यहां पर राजस्थान को भौगोलिक प्रदेशों में बांटने के दोनों प्रयासों का विवरण दिया जा रहा है क्योंकि जहां डॉ.वी.सी मिश्रा

---

1. Misra, V. C. : 'Geographical Regions of Rajasthan'. The Indian Journal of Geography, Vol. I. Jan. 1966 P. P. 37-48.
2. Singh, R. L. : 'India-A Regional Geography' 1971, P.P. 40-41.

का विभाजन अत्यन्त सरल एवं बोधगम्य है और उसमें केवल प्रमुख भौगोलिक एवं सांस्कृतिक कारकों को प्रधानता दी गई है, वहीं डॉ आर एल सिंह का विभाजन विशिष्ट है तथा उसमें न केवल प्रादेशिक वल्कि स्थानीय स्तर के कारकों को भी दृष्टिगत रखा गया है।

डॉ वी. सी. मिश्रा ने राजस्थान को निम्न सात भौगोलिक प्रदेशों (मानचित्र पृष्ठ 271) में विभक्त किया है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1. पश्चिमी शुष्क प्रदेश—यह प्रदेश जैसलमेर, वाड़मेर, जोधपुर के उत्तरी पश्चिमी भाग, बीकानेर के दक्षिणी-पूर्वी भाग, दक्षिणी-पश्चिमी चूरू और नागौर के पश्चिमी भागों पर फैला हुआ है। इस प्रदेश में विशिष्ट रेगिस्तानी दशाएं दृष्टिगत होती हैं। इसकी पूर्वी सीमा 25 सेन्टीमीटर की वर्षा रेखा द्वारा अंकित है जबकि इसकी पश्चिमी सीमा पाकिस्तान के साथ अन्तर्राष्ट्रीय सीमा बनाती है। आकारीय विस्तार की दृष्टि से यह प्रदेश राज्य में सबसे बड़ा है। इस प्रदेश की स्थलाकृति इस क्षेत्र पर विस्तृत विभिन्न प्रकार के वालुकास्तूपों द्वारा परिलक्षित होती है। साथ ही कुछ स्थानों पर चट्टानें भी धरातल पर अनावृत हैं। इस प्रदेश के पूर्वी भागों में वर्षा 25 सेन्टीमीटर होती है लेकिन पश्चिमी भागों की ओर अग्रसर होने पर वर्षा की मात्रा में कमी आती जाती है और यह घट कर मात्रा 10 सेन्टीमीटर ही रह जाती है। ग्रीष्म ऋतु में तापक्रम 32°सेन्टीग्रेड से 48°सेन्टीग्रेड तक रिकार्ड किये जाते हैं। फसलों में बाजरा प्रमुख है जबकि कुछ दालों व तिलहन आदि का उत्पादन बीकानेर, जोधपुर तथा वाड़मेर में होता है। लगभग 35%से 45% व्यक्ति कृषक हैं और बिखरे हुए छोटे-छोटे ग्रामीण अधिवासों में रहते हैं। इन अधिवासों के बीच दूरियाँ ज्यों-ज्यों पश्चिमी सीमा की ओर बढ़ते जाते है, अधिक से अधिक होती जाती हैं। कृषि के अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण व्यवसाय पशु पालन है जो मरुभूमि निवासियों, मुख्य रूप से घुमक्कड़ जनजातियों के लिये पूरक व्यवसाय के रूप में है। इस प्रदेश में थारपारकर और राठी नस्ल के चौपाए प्रमुख हैं। यह प्रदेश जिप्सम में धनी है और महत्वपूर्ण जिप्सम उत्पादक क्षेत्र जामसर गांव और लूनकरनसर (बीकानेर) है। इनके अतिरिक्त जैसलमेर में मोहनगढ़, हमीरवाली, धानी व लाखा तथा बाड़मेर जिले में कावास, कुटला, सिवकर और उत्तरलाई भी महत्व के है। इस प्रदेश में रेल सेवा काफी अविकसित है। केवल महत्वपूर्ण स्थान ही रेल की सुविधा रखते है। राजस्थान का यह भौगोलिक प्रदेश बहुत ही शुष्क एवं अविकसित है। इसके कम विकसित होने का मुख्य कारण अतिशुष्कता हैं जो वर्षा की कमी और उच्च तापक्रम का परिणाम है। अच्छे परिवहन साधनों की कमी एक अन्य कारण है। जैसलमेर क्षेत्र का काफी भाग बंजर के रूप में है जहाँ पर कृषि नहीं की जाती है। क्षेत्र की प्राकृतिक और आर्थिक सम्भाव्यताएँ (Potentialities) निवासियों को अपनी ओर आकर्षित नहीं करती हैं। प्रदेश के सुदूरवर्ती पश्चिमी भागों में जनसंख्या का घनत्व केवल 6 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो भारत में सबसे कम है।

बीकानेर शहर जिसकी जनसंख्या 2,80,366 (1981) है, थार मरुभूमि के पश्चिमी भाग में वालुकास्तूपों के विस्तृत जमावों से परे स्थित है। और एक प्रादेशिक केन्द्र के रूप में अपनी सेवायें प्रदान करता है। वाड़मेर जिसकी जनसंख्या 53 427 है इस प्रदेश में सबसे बड़ा व्यापारिक नगर है। यह नगर पेडीप्लेन के पूर्वी किनारे पर स्थित है। यह पेडीप्लेन बलुआ पत्थर पहाडियों के अपक्षयित होने से बना है तथा यत्र-तत्र अवशिष्ट पहाडियां मिलती हैं। जैसलमेर (जनसंख्या 20,355) पश्चिमी भाग में स्थित है। यह रेगिस्तानी नगर का एक विशिष्ट उदाहरण है। पीली वालू के शुष्क विस्तृत क्षेत्र के मध्य इस नगर के पीले पत्थरों से निर्मित किले, मंदिर और महल बड़े ही आकर्षक लगते हैं। इस प्रदेश में अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र फलौदी, पोकरन, वाप और शिव हैं।

2. अर्द्ध-शुष्क प्रदेश—यह प्रदेश अरावली के पश्चिम में स्थित है जो उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा में फैला है। इसकी पश्चिमी सीमा 25 सेन्टीमीटर वर्षा रेखा द्वारा अंकित है। दक्षिण में इसकी पूर्वी सीमा का कुछ भाग अरावली पहाडियों के पश्चिमी पार्श्व द्वारा निर्धारित होता है और उत्तरी सीमा 50 सेन्टीमीटर वर्षा रेखा द्वारा दर्शायी जाती है। यह प्रदेश जालौर, पाली,

दक्षिण पूर्वी जोधपुर, नागौर, सीकर, झुन्झुनूं और उत्तरी पूर्वी चूरू आदि ज़िलों में विस्तृत हैं।

इस प्रदेश के दक्षिणी भाग में लूनी और इसकी सहायक नदियां बहती है जबकि इसका उत्तरी भाग आन्तरिक जल प्रवाह का क्षेत्र है। अधिकांश प्रवाह सांभर झील जो नमक उत्पादन के लिये प्रसिद्ध है, पर केन्द्रित होता है। तापक्रम ऊँचे रहते हैं और वर्षा पश्चिम में 25 सेन्टीमीटर और पूर्व में 50 सेन्टीमीटर होती है। इस प्रदेश में कुल बोया गया क्षेत्र का प्रतिशत पश्चिमी शुष्क मैदान में स्थित क्षेत्र की तुलना में अधिक है। इस प्रदेश के लगभग 40 प्रतिशत से 60 प्रतिशत क्षेत्र पर कृषि की जाती है जिसमें से लगभग आधे क्षेत्र पर बाजरा बोया जाता है। अन्य फसलें जैसे ज्वार, दालें और तिलहन आदि अच्छी उपजाऊ भूमियों पर तथा जहां सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उगाई जाती हैं। इस प्रदेश में लगभग सभी सिंचाई कुओं तथा नलकूपों से की जाती है। पाली जिले में सिंचाई की सुविधाएँ तालाबों के निर्माण के कारण सम्भव हो सकी है।

यह प्रदेश पशुधन में धनी है। यहाँ चौपाए मुख्यतया तीन प्रकार की नस्लों के पाये जाते हैं। उत्तर में हरियाणा नस्ल, मध्य में नागौरी नस्ल तथा दक्षिण में सांचौर नस्ल के चौपाए मिलते हैं। यह अधात्विक खनिजों में भी धनी है। अच्छी किस्म का जिप्सम जोधपुर, पाली, बाड़मेर और नागौर आदि जिलों में मिलता है।

प्रदेश के उत्तरी और केन्द्रीय भागों में पश्चिमी शुष्क प्रदेश की अपेक्षा रेल सेवा अच्छी है। पूर्वी भाग में सड़कों की लम्बाई काफी है। बाड़मेर जिले के दक्षिणी भाग को रेल सेवा का लाभ कम मिल पा रहा है। पानी की कमी इस प्रदेश में मुख्य समस्या है। जल आपूर्ति या तो नहरों द्वारा अथवा भूमिगत जल संसाधनों के विकास द्वारा हल की जा सकती है। नहरों के द्वारा अब चूरू जिले को जल आपूर्ति उपलब्ध करवाई जा रही हैं। इस क्षेत्र को निकट भविष्य में एक अच्छी कृषि पेटी के रूप में विकसित किया जा सकता है।

जोधपुर (जनसंख्या 4.93 लाख) इस प्रदेश का सबसे बड़ा नगर है और प्राचीन किले के चारों तरफ चट्टानी सतह पर केन्द्रीय स्थिति रखता है। पाली नगर (90,711) उपजाऊ भूमि पर स्थित है और मुख्य रूप से व्यापारिक नगर है। उत्तर में डीडवाना (23,994) और सांभर (17,632) तथा दक्षिण में पचपदरा नमक नगरों के विशिष्ट उदाहरण हैं। मकराना (40,669) संगमरमर की खानों के लिये विश्व प्रसिद्ध है। इस प्रदेश में अन्य नगर झुन्झुनूं (47,481) और सीकर (1,02,946) उत्तर-पूर्व में तथा जालौर (24,099) और सिरोही (23,906) दक्षिण पश्चिम में स्थित हैं।

3. नहरी प्रदेश—राज्य के उत्तरी-पश्चिमी भागों में यह प्रदेश स्थित है। इस प्रदेश के अन्तर्गत, बीकानेर जिले के पश्चिमी भाग तथा जैसलमेर के उत्तरी भाग आते हैं। यह एक विशिष्ट प्रदेश है जहाँ मनुष्य का प्रभाव बहुत स्पष्ट परिलक्षित होता है। यह समस्त क्षेत्र हालांकि मोटे तौर पर पश्चिमी शुष्क प्रदेश में आता है परन्तु इन्दिरा गांधी नहर के निर्माण के फलस्वरूप यह एक विशिष्ट इकाई बन गया है। इस क्षेत्र की मुख्य कमी पानी का अभाव था। गंगानगर जिले में गंग नहर ने इस प्रदेश की पूरी अर्थव्यवस्था को ही बदल दिया है। जल आपूर्ति के कारण बाजरा के अन्तर्गत आने वाली भूमि में काफी कमी आई है जबकि अन्य फसलों जैसे गेहूं, जौ, चना, दालें, गन्ना और कपास आदि के क्षेत्र में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। समग्र राज्य में यह जिला अकेला गेहूं का 17 प्रतिशत, चने का 43 प्रतिशत, गन्ने का 9 प्रतिशत और राज्य की दो तिहाई कपास का उत्पादन करता है। जिले की अर्थव्यवस्था कृषि तथा कृषि पर आधारित उद्योग जैसे चीनी और कपास आदि पर निर्भर है।

इन्दिरा गाँधी नहर के पूर्ण हो जाने पर बीकानेर का पश्चिमी भाग एवं जैसलमेर के उत्तरी भाग को जल आपूर्ति पर्याप्त मात्रा में होने लगेगी और यह आशा की जाती है कि इस उत्तरी कृषि क्षेत्र का विस्तार दक्षिण की ओर और अधिक होगा और यह समस्त प्रदेश राजस्थान का अनाज भण्डार बन जायेगा। गंगानगर में रेल सेवायें अच्छी उपलब्ध हैं जबकि जैसलमेर में इनका अभाव महसूस होता है। यहाँ तक कि यह बीकानेर से सीधा भी जुड़ा हुआ नहीं है।

इस प्रदेश के अन्य मुख्य नगरों में गंगानगर (1,21,516), हनुमानगढ़ (59,534), सूरतगढ़ (29,549) और रायसिंहनगर (16,024) सभी उत्तर में स्थित हैं। दक्षिणी-पश्चिमी भाग में कोई भी अभी तक बड़ा नगर नहीं है। छोटे अधिवास जैसे बिरसीलपुर और लूनकरनसर महत्व के हैं।

4. अरावली प्रदेश—यह प्रदेश लगभग समस्त उदयपुर, पाली और सिरोही के दक्षिणी-पूर्वी और डूंगरपुर के पश्चिमी भागों पर विस्तृत है। यह राजस्थान में सबसे अधिक विशिष्ट प्रदेश हैं जो अरावली शृंखला तथा पहाड़ी प्रदेश के फलस्वरूप दक्षिण-पश्चिम में अपना प्रभुत्व रखता है। पश्चिमी सीमा पहाड़ियों के पार्श्वों द्वारा तथा पूर्वी सीमा बनास तथा छप्पन के मैदानों से अंकित है। प्रदेश के उत्तरी भाग में पहाड़ियां लगभग 50 किलोमीटर की चौड़ाई में फैली हुई हैं। अरावली शृंखला दक्षिण-पश्चिम तथा दक्षिण-पूर्व की ओर शाखाओं में विभक्त हो जाती है। सिरोही के दक्षिणी-पूर्वी भाग अरावली की मुख्य श्रेणियों द्वारा घिरे हैं। गुरुशिखर (1,727 मीटर) राजस्थान की सबसे ऊँची चोटी इस भाग में स्थित है। इस प्रदेश का सबसे ऊँचा भाग कुशलगढ़ और गोगुन्दा के बीच में स्थित है। यह क्षेत्र भोराट पठार के नाम से जाना जाता है जिसकी समुद्र तल से औसत ऊँचाई 1225 मीटर है। वर्षा की मात्रा 50 सेन्टीमीटर है जिसकी अधिकांश मात्रा वर्षा ऋतु की अवधि में ही प्राप्त होती है। इस प्रदेश के उत्तर-पश्चिम में लाल-पीली मिट्टी और दक्षिणी-पूर्वी भाग में लोहमयी लाल मिट्टी मिलती है। पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण केवल थोड़ी सी भूमि पर ही सिंचाई सम्भव है। उदयपुर में भूमि का दो तिहाई भाग बंजर है और कृषि उपयोग के लिये उपयुक्त नहीं है। भूमि का लगभग 10 वाँ भाग वनों के अन्तर्गत और लगभग 27 प्रतिशत स्थायी चरागाह एवं वृक्षों, उपवनों के अन्तर्गत है। इस प्रकार केवल 22.5 प्रतिशत शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल हैं जिस पर गेहूं, ज्वार, मक्का, जौ, चना, दालें कपास और तिलहन आदि फसलें उगाई जाती हैं। मक्का की फसल कृषि योग्य भूमि के लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्र पर उत्पन्न की जाती है।

प्रदेश खनिज सम्पदा में धनी है। उदयपुर से लगभग 40 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में जावर खानों में सीसा और जस्ता; आमेट के उत्तर और दक्षिण में बाड़ी, सिकारवाड़ी, सिलेका गुढ़ा में विरल की खानें हैं। उत्तरी उदयपुर में अभ्रक, देवगढ़ (उत्तर में) से कांकरोली के बीच में पन्ना और उदयपुर में स्टेटाइट व घीया पत्थर के विस्तृत भण्डार पाये जाते हैं। अन्य खनिज जैसे फेल्सपार और ऐस्बेस्टॉस भी इस क्षेत्र में मिलते हैं। कोयले व लोह अयस्क का इस प्रदेश में अभाव है लेकिन गांधी सागर ऊर्जा गृह से शक्ति उपलब्ध होने के कारण यह राजस्थान में मुख्य खनन क्षेत्र के रूप में विकसित हो चुका है तथा भविष्य में इसके और अधिक विकसित होने की सम्भावना है। उदयपुर शहर (2,29,762) जो सूर्योदय शहर एवं झीलों के नगर के नाम से विख्यात है, इस प्रदेश का सबसे बड़ा नगरीय केन्द्र हैं। यह अरावली गर्त में उदयसागर झील के पश्चिम में स्थित है। उदयपुर पश्चिमी रेल्वे की चित्तौड़-उदयपुर शाखा के मिलन विन्दु पर है और अजमेर (298 किलोमीटर) तथा मारवाड़ (191) से रेल द्वारा जुड़ा है। उदयपुर से 40 किलोमीटर दूर नाथद्वारा अजमेर-उदयपुर उच्च मार्ग पर स्थित है। द्वारकाधीश का मन्दिर कांकरौली में है जो नाथद्वारा से 16 किलोमीटर दूर राजसमन्द झील के पार्श्व पर स्थित हैं। माउन्ट आबू (11,418) प्रदेश के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में समुद्रतल से 1220 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। माउन्टआबू आबूरोड रेल्वे स्टेशन से 29 किलोमीटर लम्बी एक पक्की सड़क से जुड़ा हुआ है।

5. पूर्वी कृषि-औद्योगिक प्रदेश—यह प्रदेश जयपुर, अजमेर, सवाईमाधोपुर, भीलवाड़ा, बूंदी, अलवर, भरतपुर, धौलपुर और कोटा जिले के उत्तरी पश्चिमी भाग आदि में विस्तृत हैं। प्रदेश की पश्चिमी सीमा 50 सेन्टीमीटर वर्षा रेखा से निर्धारित होती हैं। उत्तरी सीमा उत्तर प्रदेश और हरियाणा से; पूर्वी और दक्षिणी सीमा चम्बल बीहड़ों से और दक्षिण-पूर्वी सीमा दक्षिणी कृषि प्रदेश से बनती हैं। इस प्रदेश में बनास नदी और इसकी सहायक नदियां बहती हैं।

इस प्रदेश में कई प्रकार की मिट्टियां मिलती हैं।

कांपीय, लाल और पीली मिट्टी अजमेर के अधिकांश भाग में और मिश्रित लाल और काली मिट्टी पूर्वी भीलवाड़ा, बूंदी और दक्षिणी पश्चिमी टोंक में मिलती है। उत्तरी भाग का अधिकांश हिस्सा सिवाय अलवर के दक्षिणी भागों व भरतपुर के उन भागों के जहाँ अरावली पहाड़ियों की उपस्थिति दृष्टिगत होती हैं, कांपीय मिट्टी से ढ़का है। वर्षा की मात्रा 50 सेन्टीमीटर से 100 सेन्टीमीटर के बीच है। इस प्रदेश की मुख्य आर्थिक क्रियाएं कृषि एवं उद्योग हैं। कृषि के अन्तर्गत भूमि का प्रतिशत उत्तरी भागों से दक्षिणी एवं पश्चिमी भागों की ओर कम होता जाता है। भरतपुर और अलवर में लगभग 72 प्रतिशत क्षेत्र पर फसलें उगाई जाती हैं। मुख्य फसलों में गेहूं, ज्वार, बाजरा, सरसों, राई, चना और दालें आदि हैं जहां सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध हैं वहाँ कुछ कपास और गन्ना भी उगाया जाता है। फसलों के अन्तर्गत भूमि क्षेत्र जयपुर, सवाईमाधोपुर और टोंक में अधिक है उदाहरणार्थ लगभग 43 प्रतिशत से 51 प्रतिशत तक जबकि भीलवाड़ा, अजमेर और बूंदी में यह केवल 23 प्रतिशत से 38 प्रतिशत के बीच है। भीलवाड़ा जिले के पश्चिमी भागों के पहाड़ी होने के कारण कृषि के लिये कम क्षेत्र उपलब्ध हो पाता है।

इस प्रदेश में अगर फसल प्रतिरूप पर दृष्टिपात किया जाये तो स्पष्ट होता है कि दक्षिण की ओर अग्रसर होने पर बाजरा फसल के अन्तर्गत बोया गया क्षेत्र कम होने लगता है। सिंचाई की सुविधाएँ अच्छी हैं और मिट्टी उपजाऊ है। अन्य फसलें जैसे गेहूं, ज्वार, जौ, मक्का, चना, और तिलहन आदि उगाई जाती हैं। अजमेर और भीलवाड़ा जिलों में कपास का भी उत्पादन होता है। इस प्रदेश के लगभग 40 प्रतिशत लोग कृषक हैं और 70 प्रतिशत से 88 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। जनसंख्या का सामान्य घनत्व दक्षिण में 106 व्यक्ति से उत्तर की ओर 254 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर तक बढ़ता है। जयपुर और भरतपुर जिलों में जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक क्रमशः 244 तथा 254 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। इस प्रदेश में कृषि क्रियाओं के अलावा अच्छे पैमाने पर औद्योगिक क्रियाएं भी मुख्यतया जयपुर, अजमेर, कोटा, अलवर, भरतपुर, भीलवाड़ा, और शाहपुरा में केन्द्रित हैं। इस प्रदेश के दक्षिणी भाग में उत्तरी व पूर्वी भागों की अपेक्षा रेल सेवा की सुविधाएँ कम हैं। सड़कें परिवहन का मुख्य साधन हैं।

जयपुर (10,04,669) जो प्रादेशिक केन्द्र और राज्य की राजधानी है, पश्चिमी रेल्वे के देहली-अहमदाबाद रेल मार्ग पर स्थित है। राष्ट्रीय सड़क मार्ग जो अलवर से उदयपुर को वाया अजमेर जाता है तथा दूसरा राज्य उच्च मार्ग जो भरतपुर से सीकर के बीच है, दोनों ही जयपुर से गुजरते हैं। राजस्थान के औद्योगिक नगरों में जयपुर प्रमुख है। अजमेर शहर (3,74,350) राज्य में केन्द्रीय स्थिति रखता है तथा एक विकसित होता हुआ औद्योगिक शहर है। कोटा (3,46,928) चम्बल नदी के बांयें पार्श्व पर स्थित है और राज्य के एक बड़े औद्योगिक केन्द्र के रूप में जाना जाता है। भीलवाड़ा (1,22,338) एक अन्य प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है। टोंक (77,655) बनास नदी के दायें पार्श्व पर स्थित है जो इस प्रदेश का एक महत्वपूर्ण नगर है। अलवर (1,39-973) देहली और जयपुर के बीच स्थित है और बड़ी तेजी से औद्योगिक केन्द्र बनता चला जा रहा है। इस प्रदेश के अन्य प्रमुख केन्द्र भरतपुर (1,05,239), धौलपुर (43,771), सवाईमाधोपुर (59,070) तथा शाहपुरा (19,329) आदि हैं।

6, **दक्षिणी-पूर्वी कृषि प्रदेश**—इस प्रदेश के अन्तर्गत पूर्वी डूंगरपुर, बांसवाड़ा, चित्तौड़गढ़, कोटा शहर के अतिरिक्त सम्पूर्ण कोटा जिला व झालावाड़ आदि के क्षेत्र आते हैं। विन्ध्यन पठार की औसत ऊँचाई 350 मीटर से 580 मीटर हैं। यह बलुआ पत्थर और स्लेटी पत्थर से निर्मित हैं। इस प्रदेश का कुछ भाग कोटा, झालावाड़ क्षेत्र में पत्थरी उच्च प्रदेश से बना है और कोटा-बूंदी पठार के कुछ भाग को अपने में शामिल करता है। इस क्षेत्र में मुख्यतया गहरी काली मिट्टी पाई जाती है। चम्बल नदी और इसकी सहायक नदियां इस प्रदेश पर एक कांपीय बेसिन का निर्माण कर चुकी हैं।

इस प्रदेश में कृषि मुख्य व्यवसाय है। कोटा और झालावाड़ जिलों में लगभग 42 प्रतिशत से 53 प्रतिशत भूमि फसलों के अन्तर्गत है। बांसवाड़ा और चित्तौड़गढ़

पहाड़ी होने के कारण इन जिलों में कृषि क्षेत्र भूमि लगभग 32 प्रतिशत से 39 प्रतिशत के बीच में है। मुख्य फसलों में गेहूं, ज्वार, मक्का, चना और तिलहन आदि उगाई जाती हैं। झालावाड़, भीलवाड़ा के दक्षिणी भाग और चित्तौड़गढ़ जिलों में कपास, काली मिट्टी के क्षेत्रों पर उगाई जाती हैं जहां सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध है। चम्बल घाटी योजना के कारण यह समस्त क्षेत्र दक्षिण-पूर्व में एक महत्वपूर्ण फसल उत्पादक क्षेत्र बन गया है। इस प्रदेश में रेल सेवा का बहुत ही अभाव है यहां तक कि बांसवाड़ा और झालावाड़ नगर तक रेल्वे लाइन द्वारा जुड़े हुए नहीं हैं। झालावाड़ और कोटा में सड़क परिवहन सुविधाएं चित्तौड़गढ़ और बाँसवाड़ा की अपेक्षा अच्छी है।

इस प्रदेश में बांसवाड़ा (46,744), चित्तौड़गढ (44,994), झालावाड़ (29,240) आदि नगर महत्वपूर्ण हैं। बांसवाड़ा नगर मालवा पठार के अति सुदूर पश्चिमी पार्श्व पर स्थित हैं।
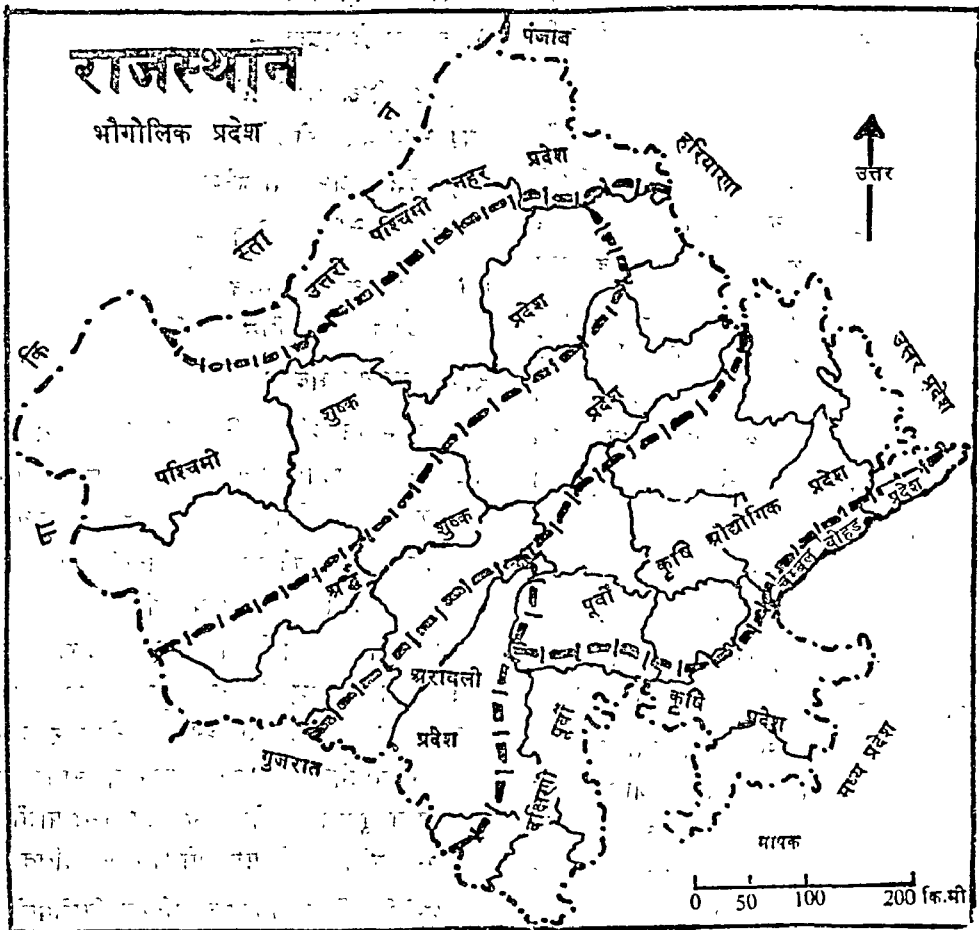
मानचित्र संख्या 37—राजस्थान के भौगोलिक प्रदेश (वी. सी. मिश्रा के अनुसार)

7. चम्बल बीहड़ प्रदेश—यह प्रदेश चम्बल के सहारे स्थित है जहाँ यह नदी राजस्थान और मध्यप्रदेश के बीच सीमा बनाती हैं। राजस्थान के अन्तर्गत बीहड़ भूमियां सकड़ी पटी के रूप में फैली है जो सवाईमाधोपुर और धौलपुर जिलों में 5 किलोमीटर से 20 किलोमीटर के बीज चौड़ी है। बीहड़ राजस्थान की तरफ की सीमा तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि ये मध्यप्रदेश में भी फैले हुए हैं और यहां तक कि उत्तरप्रदेश तक जहां चम्बल नदी

यमुना नदी से मिलती है, उस विन्दु तक विस्तृत हैं। राज्य में चम्बल घाटी की स्थलाकृति पहाड़ियों और पठारों से निर्मित हैं। इस सम्पूर्ण घाटी में नवीन कांपीय जमाव पाये जाते हैं। घाटी का सामान्य ढाल दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर है। इसमें बाढ़ के मैदान, नदी कागर बीहड़ व अन्तसरिता स्थलाकृतियां पाई जाती हैं। राजस्थान में चम्बल नदी के मार्ग के सहारे अनियन्त्रित पानी जो ऊपरी भागों से धाराओं के रूप मे वह कर आता है, कृषि के लिये अधिकांश क्षेत्रों को अनुपयुक्त वन चुका है। कोटा व-बूंदी जिलों में यह अनुमानित किया गया हैं कि क्षेत्र का 10 प्रतिशत आवरण अपरदन से और 23 प्रतिशत बीहड़ और नालियों से प्रभावित हैं। बूंदी के उत्तर का क्षेत्र मानसून काल में बूंदी पहाड़ियों से जल के अति वहाव के कारण प्रभावित होता है।

यह प्रदेश मिट्टी अपरदन की समस्या से पीड़ित है परिणामस्वरूप वनस्पति की किस्म प्रभावित हुई हैं। जल-धारायें समोच्च रेखाओं को काट कर बहती हैं। ये जल-धारायें अपनी सहायक नालियों के साथ जो आकार में बढ़ जाती हैं, अच्छी भूमियों का अपरदन कर प्राय: उन्हे कृषि के लिये अनुपयुक्त बना देती हैं। क्षेत्र का लगभग एक चौथाई भाग अनुपजाऊ है क्योंकि अच्छी भूमियां बीहड़ों में बदल दी गई हैं। नदी के सहारे कटाव काफी भयंकर हैं। बीहड़ों के समीप कृषि भूमियों को हमेशा साफ हो जाने का भय बना रहता है।

प्रोफेसर रामलोचनसिंह ने राजस्थान के भौगोलिक प्रदेशों का विभाजन करते समय इसे सर्व प्रथम दो वृहत स्तर के प्रदेशों में, फिर उपप्रदेशों तथा लघु प्रदेशों में बांट कर इसका प्रादेशिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। ये भौगोलिक प्रदेश क्षेत्र की प्राकृतिक, सांस्कृतिक तथा स्थानीय विशेषताओं की समानता एवं समांगता के आधार पर वर्गीकृत किये गये हैं। इसलिये इनके द्वारा राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन किया जाना काफी उपयोगी एवं तर्क संगत प्रतीत होता है। डा. सिंह के भौगोलिक प्रदेशों के नामकरण में थोड़ा हेर-फेर कर उसे मूल रूप में ही लेखक के द्वारा अपनाया गया है जो निम्न प्रकार है—

राजस्थान का मैदान

1. मरुस्थली प्रदेश—

(अ) जैसलमेर मरुस्थली

(ब) बाड़मेर मरुस्थली

(स) बीकानेर-चूरू मरुस्थली

2. राजस्थान बांगड़ प्रदेश—

(अ) घग्घर प्रदेश

(ब) शेखावाटी प्रदेश

(स) नागौर प्रदेश

(द) लूनी प्रदेश

राजस्थान का पठार

3. अरावली प्रदेश—

(अ) उत्तरी अरावली प्रदेश

(ब) मध्य अरावली प्रदेश

(स) दक्षिणी अरावली प्रदेश

4. चम्बल बेसिन प्रदेश—

(अ) निम्न चम्बल बेसिन

(ब) मध्य चम्बल बेसिन

राजस्थान का मैदान

इस मैदान की स्थिति 24° 31′ उत्तर से 30° 12′ उत्तरी अक्षाशों एवं 69° 15′ पूर्व से 76° 42′ पूर्व देशान्तरों के बीच है। यह मैदान सिन्ध तथा सतलज नदियों के सिंचित प्रदेश तथा अरावली के पूर्वी पार्श्वो के बीच विस्तृत है। इसके पश्चिम में पाकिस्तान, उत्तर में पंजाब का मैदान, पूर्व में राजस्थान की अरावली श्रेणियां तथा दक्षिण में कच्छ का रन स्थित हैं। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 1,96,750 वर्ग किलोमीटर है। इसमें जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, बीकानेर, जालौर, नागौर, गंगनगर व चूरू जिलों के समग्र भाग तथा पाली, सीकर और झुन्झुनू जिलों के पश्चिमी भाग सम्मिलित हैं।

भू-ऐतिहासिक तथा पुरातात्विक विश्लेषणों से पता चलता है कि प्राचीनकाल में इस क्षेत्र की नदी घाटियों में मानव बसाव अधिक केन्द्रित था। वैदिक काल में सरस्वती इस क्षेत्र से प्रवाहित होती हुई अरब सागर में

गिरती थी। इस क्षेत्र में हड़प्पाकालीन संस्कृति का विकास था। ह्वांगसाग के समय में इस समग्र भू-भाग का नाम गुर्जर देश था। नवीं शताब्दी के आस-पास राजपूतों का अधिक प्रभाव था। मुस्लिम काल तक यह क्षेत्र ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण बना रहा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक इस प्रदेश पर कई छोटी-छोटी रियासतों का आस्तित्व था। राजस्थान का मैदान पुनः दो उप प्रदेशों में विभाजित किया जाता है जिसका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है।

मरुस्थली प्रदेश

मरुस्थली राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर जिलों तथा चूरू एवं जोधपुर जिलों के पश्चिमी भागों पर विस्तृत है। हालांकि राजस्थान बांगड के पश्चिमी भागों पर मरुस्थलीय क्षेत्र पाये जाते हैं लेकिन इन भू-भागों में जल नहरों से तथा भूमिगत स्रोतों से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाता है इसलिये मरुस्थलीय क्षेत्रों में जल अभाव के फलस्वरूप जो मानवीय क्रियाएं सम्पन्न नहीं हो सकतीं, वे राजस्थान बांगड़ प्रदेश के अन्तर्गत स्थित मरुस्थलीय क्षेत्रों में बड़ी सुविधा के साथ सम्पन्न हो रही है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मरुस्थलीय के भागों पर इन्दिरा नहर द्वारा जल-आपूर्ति उपलब्ध करवा दिये जाने पर वे भाग राजस्थान बांगड़ प्रदेश के अन्तर्गत आ जायेंगे। यह तथ्य प्रथम दृष्टि में सन्देहास्पद प्रतीत होता है लेकिन प्रदेशों की सीमाएं प्राकृतिक तथा मानव क्रियाओं के फलस्वरूप बदलती रहती हैं और इसलिये यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मरुस्थली का भूगोल इन्दिरा गांधी नहर के पूर्ण हो जाने पर अवश्य बदलेगा जैसा कि गंगानगर के उदाहरण से इस तथ्य की पुष्टि होती है। प्रदेशों के निर्धारण में वर्तमानकाल में सांस्कृतिक कारक बहुत ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

मरुस्थली का भौतिक भूदृश्य — मरुस्थली भारत का एक अद्वितीय प्रदेश है जो शुष्क रेगिस्तान (मरुस्थल) और बालुका-स्तूपों का क्षेत्र है। रेत के बहुत ऊंचे और विविध आकृतियों वाले स्तूप तथा बालू की दीर्घाकार भयावह कटकों के बीच-बीच में जहां-तहां नग्न चट्टानें दिखाई देती हैं। इस प्रदेश की शुष्क जलवायु, कम और अनिश्चित वर्षा के साथ-साथ ऊँचे तापमान होने से सम्पूर्ण क्षेत्र में प्राकृतिक वनस्पति बहुत कम, छोटे पत्तों की ओर प्रायः नुकीली झाड़ियों के रूप में होती हैं तथा वह भी बहुत असमान वितरित हैं। इस प्रकार के वातावरण में भू-भौमिकी प्रक्रियाओं, मृदा, जल और वनस्पति की प्रक्रियाओं में पारस्परिक सामंजस्य की बड़ी सूक्ष्म समस्या रहती है।

धरातल—इसकी धरातलीय सतह का बहुत बड़ा भाग बालू से ढका हुआ है परन्तु बीच-बीच में कहीं-कहीं चट्टानी सतहें अथवा छोटी-छोटी पहाड़ियां पायी जाती हैं। इस प्रकार मरुस्थली को स्थलाकृतियों के आधार पर पुनः दो भागों में बांट सकते हैं—

(i) रेतीला मरुस्थल
(ii) पथरीला मरुस्थल

रेतीला मरुस्थल—यह मरुस्थल सम्पूर्ण मरुस्थली के लगभग 80 प्रतिशत भाग पर विस्तृत है। इस प्रदेश में बालुका-स्तूप का एक विशिष्ट भू-आकृतिक लक्षण है। रेतीले मरुस्थल के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के स्तूप और उनका समूहीकरण देखने को मिलता है। पवनानुवर्ती बालुकास्तूप उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रचलित हवाओं के समानान्तर फैले हैं। ये स्तूप इस प्रदेश के दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग में पाये जाते हैं। इनकी ऊँचाई 60 मीटर तक होती है। बरखान प्रकार के बालुका-स्तूप जैसलमेर व बाड़मेर में जहाँ मरुस्थल अधिक शुष्क हैं, अधिक संख्या में पाये जाते हैं। बरखान किस्म के बालुका-स्तूपों के जलीय भागों में एक छोटा व समतल सा भू-भाग दृष्टिगोचर होता है जहाँ वर्षा ऋतु में पानी का संचय हो जाता है फलस्वरूप ये भाग कृषि कार्यों के लिये बड़े उपयोगी होते हैं। अनुप्रस्थ बालुकास्तूप पूर्वी तथा उत्तरी भागों में साधारणतया पाये जाते हैं। इस प्रकार के स्पूतों के पवनाविमुखी पार्श्वों पर बड़े-बड़े वृक्ष दिखाई देते हैं। इस प्रदेश में बालू के कण विभिन्न आकार के परिलक्षित होते हैं। रेतीले मरुस्थल के उत्तरी भागों में प्रायः बालू के कण मोटे हैं फलस्वरूप उनका स्थानान्तरण धीमी गति से होता है लेकिन जैसलमेर के समीपवर्ती क्षेत्रों में बालुका-स्तूपों का स्थानान्तरण होना
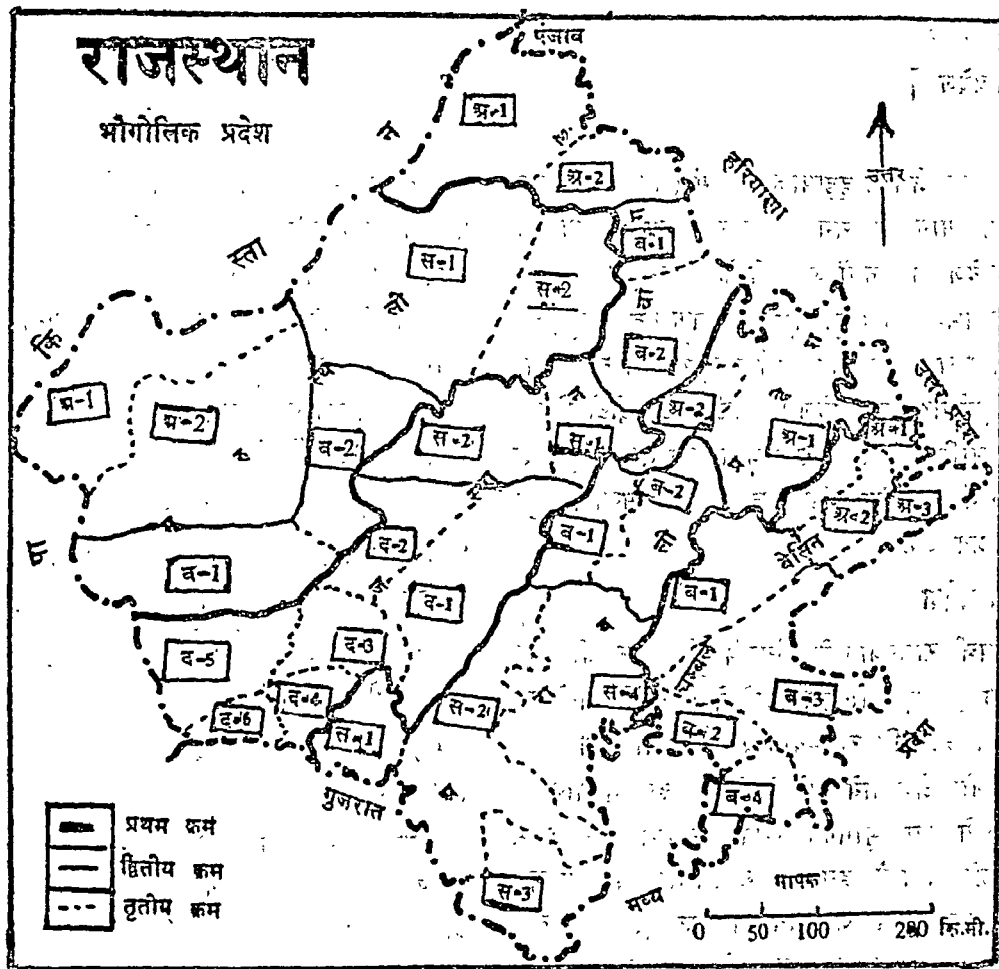
मानचित्र संख्या 38—भौगोलिक प्रदेश (डॉ. आर. एल. सिंह के वर्गीकरण पर आधारित)

मरुस्थली प्रदेश—

(अ) जैसलमेर मरुस्थली—(अ—1) पश्चिमी जैसलमेर मैदान, (अ—2) पूर्वी जैसलमेर मैदान।
(ब) बाड़मेर-फलौदी मरुस्थली—(ब—1) बाड़मेर क्षेत्र, (ब—2) फलौदी क्षेत्र।
(स) बीकानेर-चूरू मरुस्थली—(स—1) बीकानेर मैदान, (स—2) दक्षिणी-पश्चिमी चूरू मैदान।

राजस्थान बांगड़ प्रदेश—

(अ) घग्घर मैदान—(अ—1) गंगानगर मैदान, (अ—2) नोहर-भादरा मैदान।
(ब) शेखावाटी प्रदेश—(ब—1) उत्तरी-पूर्वी चूरू क्षेत्र, (ब—2) पश्चिमी सीकर-झुन्झुनू मैदान।
(स) नागौर प्रदेश—(स—1) सांभर-डीडवाना क्षेत्र, (स—2) नागौर-ओसियन क्षेत्र।
(द) लूनी बेसिन प्रदेश—(द—1) दक्षिणी-पूर्वी जोधपुर मैदान, (द—2) पाली-सोजत मैदान, (द—3) लूनी-सूकड़ी द्रोणी, (द—4) जालौर-भीनमाल मैदान, (द—5) लूनी खाड़ी क्षेत्र, (द—6) दक्षिणी-पूर्वी बाड़मेर मैदान।

अरावली प्रदेश—

(अ) उत्तरी अरावली प्रदेश—(अ—1) अलवर पहाड़ी क्षेत्र, (अ—2) सांभर बेसिन।
(ब) मध्य अरावली प्रदेश—(ब—1) मेरवाड़ा पहाड़ी क्षेत्र, (ब—2) मालपुरा उच्च भूमि क्षेत्र।
(स) दक्षिणी अरावली प्रदेश—(स—1) आबू खण्ड क्षेत्र, (स—2) मेवाड़ पहाड़ी क्षेत्र, (स—3) मध्य माही बेसिन, (स—4) बनास मैदान।

चम्बल बेसिन प्रदेश—

(अ) निम्न चम्बल बेसिन—(अ—1) भरतपुर मैदान, (अ-2) करौली पठार, (अ-3) धौलपुर मैदान।
(ब) मध्य चम्बल बेसिन—(ब—1) निम्न बनास बेसिन, (ब—2) कोटा उच्च भूमि क्षेत्र, (ब—3) कोटा मैदान, (ब-4) ऊपरी माही बेसिन।

एक सामान्य लक्षण है। स्तूपों के स्थानांतरण को रोकने तथा उन्हें स्थिर बनाने के उद्देश्य से केन्द्रीय मरुस्थल प्रदेश अनुसंधान संस्था पेट्रोलियम छिड़क कर एवं स्तूपों के पार्श्वों पर वनस्पति उगाने जैसी विधियों को काम में ले रही है और इसमें इस संस्था को काफी सफलता भी मिली है। मरुस्थली के स्तूपों की उत्पत्ति का कारण पवनों का प्रचण्ड वेग होने के साथ-साथ स्थलाकृतियों का उच्चावचन, भूतल की शैल-रचना और पवन की दिशा भी है। इस प्रदेश का सामान्य ढाल पूर्व से पश्चिम की ओर है तथा औसत ऊँचाई 150 मीटर से 300 मीटर है।

पथरीला मरुस्थल—यह मरुस्थली के लगभग 20 प्रतिशत भाग पर विस्तृत है तथा जैसलमेर, बीकानेर के उत्तरी भाग तथा जोधपुर की फलौदी तहसील के कुछ भागों में दृष्टिगत होता है। चूना पत्थर और बलुआ पत्थर चट्टानें इस क्षेत्र में अनावृत है जो जुरेसिक एवं ईयोसीन शैल समूहों से सम्बन्धित है। जैसलमेर नगर जुरेसिक बालू पत्थरों से निर्मित चट्टानी मैदान पर स्थित है। कुछ स्थानों पर ग्रिट, कांग्लोमिरेट, नीस, शिस्ट और ग्रेनाइट चट्टानें भी अनावृत हैं। मिट्टी काफी पथरीली है। जैसलमेर के निकट पीला पत्थर मिलता है जो रामगढ़ से पाकिस्तान सीमा तक चला गया है। बीकानेर के उत्तर में बलुआ पत्थर धरातलीय-सतह पर ही मिलता है। इसकी तुलना जोधपुर के बलुआ पत्थर से की जा सकती है।

जलवायु—इस प्रदेश में उष्ण मरुस्थलीय जलवायु की दशायें पाई जाती हैं जो अधिक शुष्क और कठोर है। औसत तापमान ग्रीष्म ऋतु में 34° से अधिक व शीत ऋतु में 12°—16° सेन्टीग्रेड रहते है दिन काफी गर्म लेकिन रात्रियां इस प्रदेश की ठण्डी होती हैं। दैनिक ताप परिसर अधिक है। वास्तविक तापमान औसत तापमान की अपेक्षा काफी अधिक आलेखित किये जाते है। जैसलमेर के तापमान वर्ष 1971 में 54° सेन्टीग्रेड तक अंकित किये गये हैं। ग्रीष्म ऋतु में सापेक्षिक आर्द्रता 15 प्रतिशत से भी कम हो जाती है।

इस प्रदेश में वर्षा अल्प मात्रा में होती है और वह भी विलक्षण प्रकृति को दर्शाती है। वर्षा के आंकड़ों का अवलोकन करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कई बार वर्ष की वर्षा की कुल औसत मात्रा एक या दो दिन में ही हो जाती है। वर्षा की मात्रा पूर्व से पश्चिम की ओर जाने पर कम होती जाती है। वर्षा की औसत मात्रा बीकानेर में 20 सेन्टीमीटर, बाड़मेर में 15 सेन्टीमीटर, जोधपुर में 35 सेन्टीमीटर तथा जैसलमेर में 10 सेन्टीमीटर पाई जाती है। वर्षा अनियमित है। वास्तविक जल उपलब्धता ऋणात्मक है अर्थात् जितनी वर्षा यहाँ होती है, उससे अधिक वाष्पीकरण की क्षमता इस प्रदेश में परिलक्षित होती है। इसलिये जल का सदैव अभाव महसूस किया जाता है।

वनस्पति—मरुस्थली के लगभग 5 प्रतिशत से भी कम भू-भाग पर वनस्पति आवरण दृष्टिगत होता है। इसका अधिकांश भाग मरुस्थल होने के कारण वनस्पति रहित है और स्थान-स्थान पर छोटी कांटेदार झाड़ियाँ नजर आती हैं। बबूल, नागफनी, झरबेरी, कीकर, खेजड़ा, कटीले गुच्छों वाली घास आदि मिलती है। पेड़ प्रायः उन क्षेत्रों में मिलते है जहाँ भूमिगत जल स्तर रेखा काफी ऊँची है जबकि झाड़ियाँ सर्वत्र पायी जाती हैं।

मिट्टियाँ—रेतीली बालू मिट्टी में लगभग 90 प्रतिशत से 95 प्रतिशत तक बालू और लगभग 5 प्रतिशत से 7 प्रतिशत तक मृत्तिका पाई जाती है। मिट्टी में जैवीय पदार्थों की कमी तथा लवणता की मात्रा अधिक मिलती है। खारी मिट्टियाँ इस प्रदेश की निम्न भूमियों तथा गर्तो में मिलती हैं इसलिये ऐसे क्षेत्रों में कृषि सम्भव नहीं है।

खनिज सम्पदा—मरुस्थली में जिप्सम, लिग्नाईट, मुल्तानी मिट्टी, तापसह मिट्टियाँ आदि खनिज पाये जाते हैं। राज्य के 19 प्रतिशत जिप्सम के सुरक्षित भण्डार बीकानेर के जामसर व लूणकरनसर क्षेत्रों में अनुमानित किये गये हैं। बीकानेर में सियासर, हरकासर, पुगाल की खानों से भी जिप्सम निकाला जाता है। जैसलमेर में जिप्सम मोहनगढ़, हमीरवाली, धानी और लाखा में मिलता है। बाड़मेर में प्रमुख उत्पादक क्षेत्र मधुपुर है लेकिन इनके अलावा कावास, कुरला, ग्योकर, उत्तरलाई और खूटानी आदि क्षेत्रों से भी जिप्सम प्राप्त किया जाता है।

लिग्नाईट—यह भूरे रंग की किस्म का कोयला होता है जो जलने में बहुत अधिक धुआ देता है। इसके जमाव की मुख्य उत्पादन पेटी बीकानेर के दक्षिण में स्थित है जिसमें पलाना, खारी, चान्नेरी, गंगासरोवर और मुन्ध आदि प्रमुख क्षेत्र हैं। अकेला यही क्षेत्र 56,000 टन कोयले का खनन करता है। बाड़मेर जिले के कपूरड़ी क्षेत्र में 6 करोड़ टन के जमाव मिले हैं जो अच्छी किस्म के हैं। इस पर आधारित 500 मेगावाट क्षमता का एक ताप विद्युत् गृह सातवीं पंचवर्षीय योजना में स्थापित किये जाने का प्रावधान है।

मुल्तानी मिट्टी--इसके जमाव बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर आदि जिलों के विभिन्न क्षेत्रों में पाये जाते हैं। यह खनिज बीकानेर में पलाना व मुन्ध क्षेत्रों से, बाड़मेर में कपूरड़ी, अलामारिया, शिव, रोहिली से तथा जैसलमेर

जिले में मुन्धा, बेहदोई व रामगढ़ आदि क्षेत्रों से प्र किया जाता है।

तापसह मिट्टियाँ और भवन निर्माण सामग्री के अन्य खनिज व बलुआ पत्थर इस प्रदेश में कहीं-कहीं मिलते हैं। जिप्सम पर आधारित रसायनिक उद्योगों का विकास निम्न तापमान पर कोयला धोकर उनसे उत्पादन प्राप्त करने का उद्योग विकसित किया जा सकता है लेकिन स्मरण रहे कि इस प्रदेश में राज्य की लगभग 9 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है इसलिये यहाँ पर सम्भावित उद्योगों की स्थापना केवल सार्वजनिक क्षेत्र में ही सम्भव हो पायेगी। इन्दिरा गांधी नहर के वर्तमान विस्तार से भी यह प्रदेश भविष्य में काफी लाभान्वित होगा।

मरुस्थली का सांस्कृतिक भूदृश्य

जनसंख्या—मरुस्थली की जनसंख्या वर्ष 1981 में लगभग 33 लाख थी और घनत्व 42 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था। जनसंख्या इसके उत्तरी-पूर्वी तथा पूर्वी भाग में ही अधिकांशतः पाई जाती है। साथ ही पूर्व से पश्चिम की ओर जनसंख्या के घनत्व में गिरावट दृष्टिगत होती है।

जनसंख्या का घनत्व चूरू के भागों में 69 व्यक्ति, बीकानेर में 31 व्यक्ति, बाड़मेर में 39 व्यक्ति तथा जैसलमेर में 6 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। यद्यपि प्रदेश की भूमि एवं जलवायु दोनों ही मानव जीवन के लिये सुविधाजनक नहीं है फिर भी मानवीय प्रयासों के द्वारा आर्थिक क्रियाएं सुलभ करवाने पर उस क्षेत्र की जनसंख्या में वृद्धि होती जा रही है।

गत शताब्दी के आंकड़ों का अवलोकन करें तो इस प्रदेश में सबसे अधिक वृद्धि दर बीकानेर में 48 प्रतिशत तथा निम्नतम बाड़मेर में 44.4 प्रतिशत रही जबकि वर्ष 1901-81 के बीच बीकानेर ने 446.70 प्रतिशत तथा जैसलमेर ने 222.60 प्रतिशत वृद्धि दर आलेखित की। यह वृद्धि इन क्षेत्रों में सिंचाई के साधनों में हुई वृद्धि के कारण है।

स्त्री-पुरुष अनुपात जैसलमेर में 811 तथा चूरू के पश्चिमी भागों में 954 मिलता है। कार्य भागिता दर सबसे कम बीकानेर में 29.30 तथा अधिकतम जैसलमेर में 32.10 रिकार्ड की गई। जनसंख्या अधिकांशतः छोटे गांवों में केन्द्रित है। कुछ जिलों में इस अनुपात में कुछ कमी दिखाई पड़ती है यथा जोधपुर में 68 प्रतिशत, पश्चिमी चूरू में 70 प्रतिशत और बीकानेर में 59 प्रतिशत। मरुस्थली प्रदेश में अधिवासों का दूर-दूर स्थिर होना स्वाभाविक है तथा ये अधिवास प्रायः जल की उपस्थिति द्वारा निर्धारित होते हैं यद्यपि इनका समूहीकरण सुरक्षा की दृष्टि से भी परिलक्षित होता है।

मरुस्थली के गांवों में अधिकांश घर गोलाकार हैं जो झौनपा के नाम से जाने जाते हैं। यहां अधिकतर चिकनी मिट्टी तथा कच्ची ईंटों का उपयोग घरों के निर्माण में किया जाता है। इस प्रदेश के बड़े गांवों में किलाबन्दी अभी भी दृष्टिगत होती है और यह राजपूताना रियासतों का एक सामान्य लक्षण रहा है। इसलिये प्रत्येक गांव में केन्द्रीय क्षेत्र गांव के मध्य तथा उसके बाद सीमान्त बाह्य क्षेत्र दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रदेश में बाड़मेर, जैसलमेर तथा बीकानेर मुख्य नगरीय केन्द्र है। अभी इस प्रदेश में नगरीयकरण की प्रवृत्ति अधिक जोर नहीं पकड़ पायी है क्योंकि इसकी आर्थिक पृष्ठभूमि कृषि पर कम परन्तु पशुपालन पर अधिक निर्भर है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य मुख्य केन्द्र जैसे कोलायत, लूणकरनसर, देशनोक, फलौदी, पोकरन, बालोतरा, पचपदरा, समदरी, शेरगढ़ आदि भी उल्लेखनीय हैं। अधिकतर कस्बे पांचवीं श्रेणी स्तर के हैं। इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के विकास के साथ-साथ इस क्षेत्र में नगरीय जनसंख्या में वृद्धि हो सकेगी ऐसी सम्भावना है।

मरुस्थली का आर्थिक प्रतिरूप

भूमि उपयोग—मरुस्थली के निवासियों का मुख्य उद्यम कृषि एवं पशुपालन है। उपयुक्त भूमि न होने के कारण कृष्य क्षेत्र का प्रतिशत कम है। जैसलमेर में शुद्ध कृषि की जाने वाली भूमि का क्षेत्रफल केवल 7.07 प्रतिशत हैं जबकि बीकानेर में 31.5 प्रतिशत, बाड़मेर में 53.80 प्रतिशत शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल मिलता है। फलस्वरूप कृषि योग्य खाली भूमि का क्षेत्रफल इन क्षेत्रों में अधिक है कृषि योग्य खाली भूमि जैसलमेर में 29.71 लाख हैक्टेयर तथा बीकानेर में 13.91 लाख हैक्टेयर मिलती है। इस प्रकार राज्य की कुल कृषि योग्य खाली भूमि का 66 प्रतिशत इन दोनों जिलों के अन्तर्गत है। बाड़मेर के दक्षिण-पूर्व में लूनी बेसिन की स्थिति के कारण कृषि अधिक विकसित हुई हैं। साथ ही बाड़मेर तथा जोधपुर के पश्चिमी क्षेत्रों में भूमिगत जल सुगमता से उपलब्ध हो जाता है। इसलिये कृषि क्रियाएँ नियमित हैं। बीकानेर में नहरी जल की प्राप्ति के कारण विकास तेजी से हुआ है।

फसलें—फसलों में खाद्यान्न फसलें जैसे बाजरा, ज्वार महत्वपूर्ण हैं। इस प्रदेश में जैसलमेर कुल बोये गये क्षेत्रफल के 69 प्रतिशत तथा बाड़मेर के 68.4 क्षेत्र पर बाजरा बोया जाता है। तिलहन मुख्य नकदी फसलें हैं लेकिन जैसलमेर में इनका उत्पादन बिलकुल ही नहीं किया जाता है। प्रदेश के अधिकांश भाग में कृषि उपज काफी

कम है जिसका मुख्य कारण पानी का अभाव है। प्राकृतिक वातावरण को दृष्टिगत रखते हुए यहां के कृषकों ने कुछ ऐसी प्रणाली ज्ञात कर ली है जिससे वे कुछ शुष्क कृषि कर लेते हैं। इस में जुताई, फसल-चक्र एवं खाद का उपयोग आदि विधियों द्वारा वर्षा न होने पर भी कुछ फसलें उगा ली जाती हैं। जिन क्षेत्रों में बाजरा सकेन्द्रित हैं उनमें मूंग और मोठ भी उत्पन्न किये जाते हैं। बीकानेर में दालें खरीफ की फसल हैं। बाड़मेर में अरण्डी का उत्पादन भी होता है।

सिंचाई—मरुस्थली में भूमि-मानव अनुपात अनुकूल है लेकिन इनका विकास जल की अपर्याप्त उपलब्धता के कारण सीमित है। इस प्रदेश की मिट्टी बलुई है, वर्षा काफी विरल है तथा शुष्कता का साम्राज्य है। अतः सिंचाई की आवश्यकता इस प्रदेश को कहीं अधिक है जिससे अनुकूल भूमि-मानव अनुपात का लाभ उठाया जा सके। मरुस्थली के उत्तरी क्षेत्र के कुछ भागों को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। बीकानेर क्षेत्र के पश्चिमी भागों पर लगभग 3 लाख हैक्टेयर भूमि पर नहरों से सिंचाई हो रही है जहां पहले इस क्षेत्र में बाजरा, मूंग, मोठ व घास का उत्पादन किया जाता था, वहां अब वर्तमान में चना, दालें, तिलहन तथा गेहूं की कृषि हो रही है। जैसलमेर में नहर के पानी को उपलब्ध तो कराया गया है लेकिन वहां कृषि के प्रकारों तथा रूप को बदलने में समय लगेगा। इसी भांति पश्चिमी चूरू के क्षेत्र भी इससे शीघ्र लाभ उठा सकेंगे।

जैसलमेर के समीपवर्ती भागों तथा पश्चिमी जोधपुर के क्षेत्रों में भूमिगत जल स्रोतों से नलकूप के द्वारा जल सिंचाई के लिये उपलब्ध करवाया जा रहा है। इन नलकूपों की गहराई 300 मीटर से 400 मीटर तक है। इन नलकूपों के जल का उपयोग पशु, मानव तथा चारे की फसलों के लिये किया जाता है। जैसलमेर में 'खड़ीन' सिंचाई के साधन के रूप में उपलब्ध है लेकिन उनका उपयोग सीमित है। पश्चिमी जोधपुर के शेरगढ़ व औसिया तथा बाड़मेर के पचपदरा आदि स्थानों पर जल पर्याप्त मात्रा में मिलता है। यह पानी कृषि कार्यों के लिए उपयुक्त प्रमाणित हुआ है।

बाड़मेर के पूर्वी क्षेत्रों के समीप लूनी नदी की स्थिति होने के कारण शिवाना तहसील व चौहटन के पूर्वी समीपवर्ती क्षेत्रों में कम गहराई पर जल उपलब्ध हो जाता है। परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों से वर्ष में दो फसलें प्राप्त कर ली जाती है वर्तमान में कुल बोये गये क्षेत्रफल के लगभग 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक क्षेत्र ही सिंचाई के अन्तर्गत है।

पशु सम्पदा—राजस्थान के पशु क्षेत्र में मरुस्थली एक महत्वपूर्ण पशु क्षेत्र है। पशुपालन इस प्रदेश का एक आर्थिक संसाधन है। मरुस्थली प्रदेश का सब से महत्वपूर्ण पशु ऊंट है। ऊंट मरुस्थल का जहाज कहलाता है। यहाँ के ऊंट काफी विख्यात हैं। बाड़मेर में ये अधिक संख्या में पाये जाते हैं। गौवंश की काकरेज नस्ल बाड़मेर में, थारपारकर नस्ल जैसलमेर, बाड़मेर व पश्चिमी जोधपुर में, राठी नस्ल बीकानेर में तथा जैसलमेर के उत्तरी पूर्वी भागों में एवं हरियाणा नस्ल पूर्वी बीकानेर में मिलती है। गौवंश की अधिकता तथा उनकी उत्तम नस्लों के फलस्वरूप यह क्षेत्र दुग्ध व्यवसाय में भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बीकानेर दुग्ध व्यवसाय का एक प्रमुख केन्द्र है। भैंसें इस क्षेत्र में बहुत कम पायी जाती हैं। भेड़ों की दृष्टि से यह प्रदेश काफी महत्व रखता है। भेड़ों की नाली नस्ल बीकानेर में, मगरा नस्ल जैसलमेर व जोधपुर में तथा पूगल नस्ल बीकानेर की पूगल तहसील में मिलती हैं। यहां की भेड़ों से ऊन का वार्षिक औसत उत्पादन 2.4 से 3·5 किलोग्राम मिलता है। भेड़ों की नस्ल सुधारने के लिये सरकार ने बीकानेर, कोडमदेसर में नस्ल सुधार केन्द्र खोल रखे हैं। भेड़ों का उपयोग मांस के लिये भी होता है। अतः इनका निर्यात दिल्ली, पंजाब, अहमदाबाद को किया जाता है। मालानी घोड़े बाड़मेर व जोधपुर में पाये जाते हैं जो समग्र देश में विख्यात हैं।

राज्य की अधिकांश बकरियां जो मारवाड़ी व लोही किस्म की है मरुस्थली क्षेत्र में पाई जाती हैं। ये मांस आपूर्ति के लिये महत्वपूर्ण है। सबसे अधिक बकरे-बकरियों की संख्या बाड़मेर में मिलती है जहां इनकी संख्या 1977 की पशु गणना के अनुसार 11.10 लाख थी। इस प्रदेश में खच्चर व अन्य पशु भी मिलते हैं जो प्रायः भारवाहन के काम में लाये जाते हैं।

उद्योग-धन्धे—मरुस्थली में औद्योगिक क्रियाएँ सब से अधिक पिछड़ी प्रतीत होती हैं। इस प्रदेश में उद्योगों के अन्तर्गत कायिक जनसंख्या का अनुपात नगण्य सा है। मरुस्थली प्रदेश के विभिन्न जिलों में अगर अन्य व्यवसायों के अन्तर्गत संलग्न कायिक जनसंख्या का वितरण देखा जाये तो सबसे कम बाड़मेर में 18 प्रतिशत तथा बीकानेर में 42 प्रतिशत दृष्टिगत होती हैं। बीकानेर जिले में फैक्ट्रियों की संख्या अधिक है लेकिन ये सभी

छोटे पैमाने की हैं तथा स्थानीय कच्ची सामग्रियों का उपयोग करती है। मरुस्थली में अकेला बीकानेर जिला ही कुछ विकसित है अन्यथा जैसलमेर तथा बाड़मेर औद्योगिक दृष्टि से अभी पनप नहीं पाये हैं।

इस प्रदेश के बड़े केन्द्रों में माध्यम स्तर की इकाईयां स्थापित की गई हैं। बीकानेर शहर के आस-पास कई लघु व मध्यम स्तर के उद्योग स्थापित किये गये है। जे. जे. वूलन मिल एवं उमंल डेयरी उसमें मुख्य है अन्य इकाईयां मुख्यत: बर्तन बनाने, स्टील संसाधन, ऊन आधारित उद्योग आदि में संलग्न हैं। इनमें से अधिकतम 64 कारखानें (35.20 प्रतिशत) ऊन के है जिनमें 44 प्रतिशत श्रम शक्ति लगी है। विद्युत सुविधाओं के अभाव के कारण इस प्रदेश के जैसलमेर, बाड़मेर जिला पश्चिमी चूरू तथा पश्चिमी जोधपुर के क्षेत्रों में बड़े उद्योग पनप नहीं पाये लेकिन लघु व कुटीर उद्योग जो यहां मिलते हैं उनमें वस्त्र, ठप्पों द्वारा छपाई, तेल उद्योग, रंगाई और बुनाई उद्योग है। नमक उद्योग भी पंचपदरा, पोकरन तथाफलौदी में केन्द्रित है। बीकानेर में कांच उद्योग को स्थापित किये जाने की सम्भावनाएं है। जहां तक विद्युत आपूर्ति का प्रश्न है, बीकानेर को भाखड़ा-नांगल से विद्युत मिल रही है तथा नर्मदा घाटी परियोजना की क्रियान्विती पर बाड़मेर को यह सुविधा मिल सकेगी। बाड़मेर में पिछले दशक में प्रिन्टिंग व्यवसाय अधिक विकसित हुआ है।

परिवहन—इस प्रदेश में छोटी लाईन के रेल मार्गों से परिवहन की सुविधा है। मरुस्थली में भारत-पाकिस्तान युद्ध, 1965 के बाद जोधपुर-जैसलमेर मार्ग, बाड़मेर-मुनाबाव रेल मार्ग विकसित किये गये। राष्ट्रीय उच्च मार्ग नं. 14 गंगानगर से बीकानेर, जोधपुर, बालोतरा, बाड़मेर होते हुए गुजरात की ओर चला गया है। जैसलमेर से बीकानेर, का सम्बन्ध सीमा सुरक्षा सड़क के द्वारा है। यह सड़क मार्ग डामर से निर्मित है तथा काफी चौड़ा है जिससे इस क्षेत्र में यातायात काफी सरल हो गया तथा सहायक सड़कें भी विकसित हो गई हैं। वायुमार्ग सेवा इस प्रदेश में अनुपस्थिति है लेकिन भविष्य में बीकानेर को वायुदूत सेवा से जोड़ने का प्रावधान है। बीकानेर का हवाई अड्डा सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मरुस्थली को पुनः तीन लघु विभागों में बांटा जा सकता है—

(अ) जैसलमेर मरुस्थलीय—यह लघु प्रदेश मरुस्थली का सबसे शुष्क प्रदेश है। इसमें जनसंख्या न्यूनतम, बोया गया क्षेत्रफल निम्नतम तथा अधिकतम परती भूमि पाई जाती है। यहाँ का मुख्य व्यवसाय पशु पालन है। थारपारकर तथा राठी पशु यहाँ पाले जाते है। यह जिप्सम का निर्यात करता है। यह क्षेत्र जोधपुर से रेल मार्ग द्वारा तथा बीकानेर, बाड़मेर व जोधपुर से सड़क द्वारा जुड़ा हुआ है। जनसंख्या का घनत्व यहाँ 6 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। जैसलमेर (20,355) तथा पोकरन (10,645) दो मुख्य बड़े नगर हैं। इसका भविष्य इन्दिरा गाधी नहर परियोजना की सफलता से जुड़ा हुआ है। इसे पुनः दो उप विभागों में बांटा जा सकता है।

(अ—1) पश्चिमी जैसलमेर मैदान—मरुस्थली का शुष्कतम क्षेत्र है। इसमें कोई भी नगर स्थित नहीं है। इन्दिरा गांधी नहर परियोजना से सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध होने पर इसकी काया ही पलट जायेगी।

(अ—2) पूर्वी जैसलमेर मैदान—किसी सीमा तक जिप्सम जमावों के साथ मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताऐं रखता हैं। यह रेल सेवा द्वारा जोधपुर तथा सड़कों के द्वारा समीपवर्ती नगरों से जुड़ा है फलस्वरूप जिप्सम का निर्यात करता है। नहरी सुविधा उपलब्ध होने पर इसके विकास की सम्भावनाएं कृषि, पशुपालन एवं खनिज आदि क्षेत्रों में अच्छी है।

(ब) बाड़मेर-फलौदी मरुस्थल—यह उपप्रदेश एक शुष्क प्रदेश है। यहाँ का जीवन कृषि और पशु पालन पर निर्भर है। यह क्षेत्र जैसलमेर मरुस्थली की अपेक्षा कुछ अधिक हरा-भरा है। सिंचाई की सम्भावनाएं भूमिगत जल के शोषण के कारण समिति है। जनसंख्या का घनत्व 39 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। कृषि की गहनता कम दृष्टिगत होती है। इसका भविष्य खनिज तेल उत्पादन की सफलता से जुड़ा हुआ है। बाड़मेर (53,247) तथा फलौदी (27,535) दो मुख्य नगर हैं जो रेल द्वारा जोधपुर से सम्बन्धित हैं।

इस उपप्रदेश को पुनः दो विभागों में विभक्त किया जाता है—

(ब—1) बाड़मेर क्षेत्र—जिप्सम, बेन्टोनिक और खनिज बाड़मेर नगर के चारों ओर मिलते हैं।

(ब—2) फलौदी क्षेत्र में किसी भी प्रकार के खनिज नहीं पाये जाते हैं।

(स) **बीकानेर चूरू-मरुस्थली**—यह अपनी सापेक्षिक आर्थिक समृद्धता के कारण मरुस्थली के अन्य उपप्रदेशों में विख्यात हैं। यहाँ वास्तविक बोया गया क्षेत्रफल का प्रतिशत अधिक है और फसलों का प्रतिरूप तुलनात्मक दृष्टि से मिश्रित हैं। यहां ज्वार-बाजरा फसलों के अतिरिक्त चना और दालें भी बोयी जाती हैं। जिप्सम, लिग्नाईट, मुल्तानी मिट्टी, कांच-बालुका तथा मृत्तिका खनिज की उपलब्धि से इस क्षेत्र की आर्थिक दशा और मरुस्थली क्षेत्रों की अपेक्षा अच्छी है जिसमें भाखड़ा-नांगल परियोजना से उपलब्ध विद्युत शक्ति का बड़ा योगदान है। इस उपप्रदेश को पुनः दो लघु विभागों में बांटा जाता है—

(स—1) **बीकानेर मैदान** मिश्रित अर्थव्यवस्था रखता है क्योंकि यहां उद्योगों का केन्द्रीयकरण तथा खनिजों का शोषण अधिक है। बीकानेर मैदान का अधिकांश भाग इन्दिरा गाँधी परियोजना के अन्तर्गत सिंचाई की सुविधाएँ प्राप्त करता है और भविष्य में गहन सुविधाएँ प्राप्त करेगा, इसलिये यहां मिश्रित अर्थव्यवस्था अच्छी पनपेगी। बीकानेर नगरीय समूहीकरण केन्द्र घोषित कर दिया गया है इसलिये इसके समीपवर्ती नगर गंगाशहर (21,193) व भीनासर (10,457) को भी बीकानेर शहर में सम्मिलित कर लिया गया है। इसलिये बीकानेर की जनसंख्या 2,80,366 है। अन्य नगर नोखा (24,085), नेपासर (12,259) और देशनोक (10,995) आदि भी बीकानेर मैदान में मुख्य हैं।

(स—2) **दक्षिणी-पश्चिमी चूरू मैदान** की अर्थ व्यवस्था बीकानेर मैदान के विपरीत पूर्णतया कृषि पर आधारित हैं। सरदारशहर (56,481), सुजानगढ़ (55,546), रतनगढ़ (43,366), डूंगरगढ़ (29,056) बिदासर (17,818), राजलदेशर (15,243), छापड़ (11,705) इस मैदान के अन्य नगर हैं।

2. राजस्थान बांगड़ प्रदेश

अरावली पर्वत शृंखला ने राजस्थान को वास्तव में उत्तर-पश्चिमी भाग तथा दक्षिणी-पूर्वी भाग में विभक्त कर दिया है। उत्तरी-पश्चिमी भाग में पाकिस्तान की सीमा से सटा हुआ वह भू-भाग जो बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर जिलों में तथा जोधपुर एवं चूरू जिलों के पश्चिमी भाग में स्थित हैं, मरुस्थली कहलाता है। इस मरुस्थली के पूर्व में तथा अरावली के पश्चिमी पार्श्वों के समीप स्थित भू-भाग को राजस्थान बांगड़ कहा जाता है। इस अर्द्ध शुष्क भू-भाग में भूमिगत जल की उपलब्धता सरल है। उत्तरी भाग अर्थात गंगानगर में नहरी जल की सरल उपलब्धता तथा पुरातन जलोढ़ (Bangar) के कारण ही इस प्रदेश को बांगड़ की संज्ञा दी गई हैं। इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप इस विचार धारा पर एक प्रश्न चिन्ह भी लग जाता है कि क्या भविष्य में इस प्रदेश का विस्तार उन भू-भागों पर होगा जिन पर इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना से सिंचाई की सुविधाएं सुलभ होगी।

राजस्थान बांगड़ का भौतिक भूदृश्य

विस्तार—इस प्रदेश का देशान्तरीय विस्तार 72° 30′ पू. से 76° पू. तक तथा अक्षांशीय विस्तार 24° 30′ उत्तर से 30° 15′ उत्तर तक है। इसके अन्तर्गत गंगानगर, चूरु के पूर्वी भाग, झुन्झुनूं, सीकर, नागौर, जोधपुर के पूर्वी भाग, पाली, जालौर तथा बाड़मेर के कुछ दक्षिणी भाग सम्मिलित है।

धरातल—स्थलाकृतियों की दृष्टि से इस प्रदेश में उत्तर से दक्षिण की ओर काफी विषमताएँ परिलक्षित होती है। उत्तर में घग्घर का मैदान है जहां बालुका-स्तूप और छोटी-छोटी बालू की पहाड़ियां छितरी हुई मिलती हैं। भूदृश्य बालुकास्तूपों की विशिष्टता प्रदर्शित करता है। घग्घर नदी के अलावा और कोई नदी नहीं पाई जाती हैं। शेखावाटी भू-भाग की स्थलाकृति ऊबड खाबड़ व बालू के टीलों द्वारा परिलक्षित होती है। यहां पवनानुवर्ती बालुकास्तूपों का केन्द्रीयकरण अधिक पाया जाना है। नागौरी उच्च भूमि की स्थलाकृति चट्टानी व पहाड़ी धरातल के कारण इस प्रदेश में अपने आप में विशिष्ट है। शेखावाटी व नागौरी उच्च भूमि के भू-भाग या तो अन्तर्वर्ती जल प्रवाह के क्षेत्र है अथवा नदियों से रहित हैं। भूदृश्य कई निम्न गर्तों से परिपूर्ण है जिनमें सांभर, डीडवाना, कुचामन तथा डिगाना की नमक झीलें मिलती है। राजस्थान बांगड़ के दक्षिण में स्थित लूनी

बेसिन क्षेत्र की स्थलाकृतियों में पहाड़ियाँ तीव्र ढाल वाली तथा विस्तृत कांपीय मैदान मिलते हैं। पश्चिमी कांपीय मैदान और पादगिरि के दक्षिणी-पश्चिमी भाग वायु द्वारा लाई गई बालू के जमावों से ढके हुए हैं। लूनी नदी तथा इसकी सहायक नदियाँ राजस्थान बांगड़ प्रदेश के केवल दक्षिणी भाग में प्रभावित होती हैं जबकि शेष प्रदेश आन्तरिक प्रवाह का क्षेत्र है। इस प्रकार इस प्रदेश की स्थलाकृतियां वायु अपरदन एवं जल अपरदन के क्रिया-कलापों के परिणामस्वरूप निर्मित हुई हैं।

जलवायु—राजस्थान बांगड़ प्रदेश की जलवायु मरुस्थली प्रदेशों की अपेक्षा अधिक अनुकूल है हालांकि शुष्क प्रदेश के लक्षण इसमें भी मिलते हैं। राज्य में सबसे उच्चतम तापमान इस प्रदेश के उत्तरी भू-भाग में स्थित गंगानगर में 50° सेन्टीग्रेड रिकार्ड किये गये है। इसी प्रकार निम्नतम तापमान जो कभी-कभी -2.8°सेन्टीग्रेड 1950) तक गिर जाते है, यहीं रिकार्ड किये गये हैं। ग्रीष्म ऋतु में औसत तापमान 32° सेन्टीग्रेड से 36° सेन्टीग्रेड तथा शीत ऋतु में 10° सेन्टीग्रेड से 17° सेन्टीग्रेड तक पाये जाते हैं। इस प्रदेश के उत्तरी क्षेत्र में शीत ऋतु छोटी व शुष्क होती है। वर्षा 20 सेन्टीमीटर से 40 सेन्टीमीटर तक होती है। वर्षा की मात्रा पूर्व से पश्चिम की तरफ कम होती जाती है। वर्षा की प्रकृति अनिश्चित तथा तूफानी है। इसलिये जब कभी भी वर्षा होती है तो प्राय: बाढ़ें आ जाती हैं। आर्द्रता सबसे कम अप्रैल के महीने में तथा सबसे अधिक अगस्त के महीने में होती है। ग्रीष्म ऋतु में धूल की आंधियां सामान्यरूप से चलती हैं जिनकी बारंबारता जून में सबसे अधिक होती है।

वनस्पति—इस प्रदेश में पश्चिमी शुष्क प्रदेश तथा पूर्वी आर्द्र प्रदेश की मिश्रित वनस्पति मिलती है। इस प्रदेश की पहाड़ियों पर वन बिखरे-बिखरे पाये जाते हैं जो उष्ण कटिबन्धीय कांटेदार वनों की श्रेणी के हैं। ये इस प्रदेश के पाली, दक्षिणी-पूर्वी जोधपुर, झुन्झुनू व नागौर आदि जिलों के मैदानों में, निम्न पहाड़ी ढालों एवं ऊबड़-खाबड़ भूमियों पर पाये जाते हैं जहां औसत वर्षा 25 सेन्टीमीटर से 50 सेन्टीमीटर के बीच होती है। इस प्रदेश के अन्य भागों में रेतीली भूमि तथा शुष्कता के कारण खेजड़ा, रोहिड़ा, बेर, जाल, कंटीले बबूल, कैर आदि मिलते हैं। गंगानगर में वनस्पति नगण्य है। सीकर, झुन्झुनू व चूरू आदि जिलों में घास के बीड़ पाये जाते है। इस प्रकार उत्तर से दक्षिण की ओर तथा पश्चिम से पूर्व की ओर मुख्यत: वर्षा के वितरण के अनुसार तथा धरातल के कारण वृक्षों, झाड़ियों तथा घास आदि में स्थानीय विषमताएँ पाई जाती है।

मिट्टियाँ—इस प्रदेश में मिट्टियां मौलिक रूप से रेतीली हैं जिनमें सामान्यत: 90 से 95 प्रतिशत बालू तथा 5 से 10 प्रतिशत मृत्तिका सम्मिलित रहती है। रेतीली मिट्टी गंगानगर, चूरू, पश्चिमी नागौर, पश्चिमी पाली तथा दो तिहाई दक्षिणी-पश्चिमी जालौर आदि जिलों में मिलती है जबकि भूरी रेतीली मिट्टी झुन्झुनू, सीकर, नागौर तथा पाली के क्षेत्रों में पायी जाती है। रेतीली मिट्टियों में फॉस्फेट व नाइट्रोजन की उपस्थिति जहाँ जल की आपूर्ति नियमित है, ने इनको उपजाऊ बना दिया है। भूरी रेतीली मिट्टी के क्षेत्रों में मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि पूर्व और उत्तर-पूर्व की ओर परिलक्षित होती है। लाल पीली मिट्टी केवल जालौर के उत्तरी-पूर्वी भागों में मिलती है। भूरी रेतीली कछारी मिट्टी गंगानगर जिले के घग्घर नदी के प्रवाहित क्षेत्रों में दृष्टिगत होती है। जल की उपलब्धता के कारण इनका उपयोग कृषि कार्यों में सम्भव है।

खनिज सम्पदा—इस प्रदेश में खनिज पदार्थों की संख्या तथा किस्में बहुत अधिक है परन्तु गुण एवं मात्रा की दृष्टि से जिप्सम, तांबा, संगमरमर तथा नमक ही अधिक महत्वपूर्ण है। इनमें जिप्सम सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। जिप्सम के जमाव गोठ मंगलोद (नागौर) में, तारानगर के उत्तर-पूर्व में (चूरू) में, तथा फालसुन्द, मंगलोद, कारास, मिलसगासी, बादवासी और मनोना आदि (जोधपुर) में मिलते हैं। इस प्रदेश के अकेले नागौर जिले में 46.8 करोड़ टन के भण्डार मिलते हैं। तांबा के क्षेत्र खेतड़ी-सिंघाना में पाये जाते हैं जिनमें कोल्हन-मधान, खेतड़ी, पपरना के पश्चिम में अखवाली, बबाई तथा बरखेड़ा खानें प्रमुख है। संगमरमर इस प्रदेश के मकराना स्थान का जगत प्रसिद्ध है। संगमरमर के क्षेत्र नागौर में मकराना, सीकर में मेओण्डा तथा जालौर में रूपी खान आदि मिलते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य खनिज

टंगस्टन डिगाना भांकरी (नागौर) में, **बेरिलियम** टोरड़ा बूचरा, चुरला (सीकर) में, **फेल्स्पार** चाग्रोन्दिया, प्रतापगढ़, डिगोर, फूलद (पाली) में, **चीनी मृत्तिका** सीकर व जालौर में, **डोलोमाईट** सीकर व जोधपुर में, **अभ्रक** तोरावटी तहसील (सीकर) में, **तामड़ा** महवा व बागेश्वर (सीकर) में, **चूने का पत्थर** सोजत, बिलाड़ा, गोटन, अटबड़ा, मूंडवा (पाली व नागौर) में तथा **नमक** सांभर, डीडवाना व डिगाना में मिलते हैं। इस प्रकार यह प्रदेश खनिजों की दृष्टि से काफी धनी है।

राजस्थान बांगड़ का सांस्कृतिक भूदृश्य

जनसंख्या—राजस्थान बांगड़ की जनसंख्या 1981 में 102.57 लाख की थी और घनत्व 113 व्यक्ति प्रति-वर्ग किलोमीटर था। जनसंख्या का सामान्य वितरण शेखावाटी क्षेत्र में सर्वाधिक, तत्पश्चात पाली क्षेत्र में उससे कम तथा अन्य शेष भागों में सबसे कम मिलता है। इस प्रकार जनसंख्या का निम्नतम घनत्व (69) चूरू के क्षेत्रों में तथा अधिकतम घनत्व (202) झुन्झुनूं में मिलता है। गत80 वर्षों के दौरान सबसे अधिक वृद्धि दर1315 60 प्रतिशत गंगानगर जिले ने तथा न्यूनतम वृद्धि दर 186.30 सीकर जिले ने आलेखित की। गत दशताब्दी में नागौर में न्यूनतम वृद्धि दर 29 प्रतिशत रिकार्ड की जब कि गंगानगर अपनी अधिकतम वृद्धि दर स्थान को दशाब्दी वृद्धि दर(45)में बनाये रहा। इस प्रदेश में स्त्री-पुरुष अनुपात सबसे कम 874 गंगानगर में तथा अधिकतम 963 सीकर में मिलता है। जनसंख्या की कार्यभागिता दर न्यूनतम 25 प्रतिशत झुन्झुनूं जिले में तथा अधिकतम 43 प्रतिशत सीकर जिले में मिलती है। जनसख्या की वृद्धि इस प्रदेश के उत्तरी व दक्षिणी प्रदेशों में कृषि के फलस्वरूप तथा शेखावाटी व नागौरी क्षेत्रों में मिश्रित अर्थव्यवस्था के कारण निरन्तर बढ़ी है।

राजस्थान बांगड़ प्रदेश की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। जल की सुलभता अधिक होने के कारण गांवों की संख्या मरुस्थली की अपेक्षा अधिक है। सबसे अधिक गांव गंगानगर व नागौर में मिलते हैं। इन दोनों जिलों में अधिकांश जनसख्या 1,000—5,000 की आबादी वाले गांवों में मिलती है। गंगानगर में 45 प्रतिशत, नागौर में 42 प्रतिशत गांव इसी आकार के हैं। अधिकतर गांवों का प्रारूप परम्परागत है। इस प्रदेश में अधिवासों के बीच दूरी सापेक्षतया मरुस्थली के अधिवासों की अपेक्षा कम है।

राजस्थान बांगड़ में कुल 76 नगर व शहर हैं जिनमें से अधिकांश उत्तर-पूर्व में स्थित है। गंगानगर में 16, चूरू में 11, झुन्झुनूं में 14 नगर पाये जाते हैं। प्रथम श्रेणी के गंगानगर, सीकर व जोधपुर एवं द्वितीय श्रेणी के चूरू तथा पाली तथा शेष अधिकांश नगर तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के नगर हैं। प्रारम्भ में इस प्रदेश के अधि-कांश नगर प्रशासनिक एवं सैनिक केन्द्र के रूप में उदय हुए थे। बड़े नगर व शहर रियासतों की राजधानियाँ थी जो राजाओं के द्वारा बसाये गये नगर हैं। उदाहरणार्थ बीकानेर, जोधपुर। वर्तमान काल के कुछ नगर बाजार व व्यापार केन्द्र के रूप में परिवहन मार्गों के विकास के फलस्वरूप विकसित हुए हैं।

राजस्थान बांगड़ का आर्थिक प्रतिरूप

इस प्रदेश की अर्थव्यवस्था का आधार पशु पालन, दुग्ध व्यवसाय, कृषि एवं प्राथमिक उद्योग है। यद्यपि वर्तमान में स्थानीय कच्ची सामग्रियों पर कई नवीन औद्योगिक इकाईयों को धीरे-धीरे विकसित किया जा रहा है लेकिन अर्थव्यवस्था में इनकी भूमिका प्रमुख होने में अभी समय लगेगा।

भूमि उपयोग—इस प्रदेश का मुख्य व्यवसाय कृषि है। इस प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल विषम है। गंगानगर, चूरु तथा झुन्झुनूं के जिलों में शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल के अन्तर्गत 72 प्रतिशत से 76 प्रतिशत है जबकि लूनी बेसिन के क्षेत्र में स्थित पाली में 43 प्रतिशत, जालौर में 55 प्रतिशत क्षेत्रफल ही कृषि के अंतर्गत है। इस प्रकार पाली व जालौर में कृषि योग्य खाली भूमि अधिक पायी जाती है।

फसलें—फसलों में खाद्यान्न फसलें जैसे गेहूं, बाजरा, चना व दालें महत्वपूर्ण हैं। तिलहन भी शेखावाटी क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य सभी भू-भागों में महत्वपूर्ण हैं। राजस्थान बांगड़ प्रदेश के गंगानगर, झुन्झुनूं व सीकर जिलों में बाजरा, दालें, गेहूँ व चना आदि फसलें, चूरु व पश्चिमी नागौर जिलों में बाजरा, दालें व तिलहन आदि फसलें तथा पूर्वी नागौर, पाली व जालौर में बाजरा, तिलहन व गेहूँ आदि फसलें महत्वात

के क्रम में उत्पन्न की जाती हैं। इन्दिरा गाँधी नहर द्वारा सिंचित क्षेत्र में उपज अधिक प्राप्त की जाती है। गंगानगर में नकदी फसलों के अन्तर्गत बोये गये क्षेत्रफल का प्रतिशत अधिक है। बाजरा के अन्तर्गत सबसे अधिक क्षेत्रफल नागौर (44.60 प्रतिशत) में तथा सबसे कम क्षेत्रफल गंगानगर (4.9 प्रतिशत) में है। इसी प्रकार गंगानगर जिला राज्य के चना उत्पादन का 42 प्रतिशत अकेला उत्पादन करता है। गन्ना, चावल तथा कपास फसलों के उत्पादन की दृष्टि से भी गंगानगर महत्वपूर्ण है। नागौर जिले में तिल 18.70 प्रतिशत पर बोया जाता है जिससे 14.62 प्रतिशत उत्पादन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त जौ, अलसी, अरन्डी, सरसों व राई, तम्बाकू आदि फसलें इस क्षेत्र में उत्पन्न की जाती है। इस प्रदेश की घग्घर घाटी में एक यान्त्रिक कृषि फार्म रूस की सहायता से सूरतगढ़ में स्थापित किया गया है जो प्राचीन बालू के टीलों को समतल करके बनाया गया है। यह क्षेत्र उपजाऊ मिट्टी, आवागमन के साधनों से लाभान्वित तथा सिंचाई संसाधनों से परिपूर्ण हैं।

सिंचाई—इस प्रदेश के उत्तरी भाग में सिंचाई के साधन के रूप में नहरें हैं। जिनका उपयोग कर गंगानगर जिला कृषि के क्षेत्र में काफी आगे है। शेखावाटी व नागौरी उच्च भूमि क्षेत्र में अन्तर्वर्ती प्रवाह क्रम दृष्टिगत होता है। यह नदियों से रहित है इसलिए यहां भूमिगत जल स्रोतों का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता है। लूनी बेसिन में सिंचाई की सुविधायें, लूनी नदी तथा इस की सहायक नदियां तथा तालाब आदि प्रदान करते हैं। इस प्रकार इस प्रदेश में एक तरफ गंगानहर, इन्दिरा नहर तथा भाखड़ा-नांगल की नहरो से सिंचाई की सुविधाएँ सुलभ हैं तो दूसरी तरफ जवांई बांध व बाकली बांध पाली व जालोर जिलों को यह सुविधाएँ उपलब्ध करवा रहे हैं। अभी कुछ और भी सिंचाई योजनाएँ विचाराधीन हैं।

पशु सम्पदा—बांगड़ प्रदेश राजस्थान का सबसे महत्वपूर्ण पशुपालन क्षेत्र है। यहां गोवंश की कांकरेज नस्ल पाली व जालोर में, नागौरी नस्ल नागौर में, राठी नस्ल गंगानगर में हरियाणा नस्ल चूरू, सीकर व गंगानगर में, तथा सांचोरी नस्ल जालोर में पाली जाती हैं। भेड़ों में नाली नस्ल गंगानगर में, मगरा नस्ल नागौर में, शेखावाटी व चोकला नस्ल चूरु, झुन्झुनूं व सीकर में, मारवाड़ी नस्ल पाली, सीकर व झुन्झुनूं में तथा पूगल नस्ल नागौर में मिलती हैं। बकरियों की सर्वाधिक संख्या नागौर तथा चूरु जिलों में मिलती है। नागौरी क्षेत्र के बैल बड़े ताकतवर होते हैं जो कृषि कार्यों में प्रयुक्त किए जाते हैं। ऊंट भी भार ढोने के काम आता है। पशु पालन में सुधार लाने के लिए इस प्रदेश में कई पशु सुधार कार्यक्रमों को लागू किया गया है।

उद्योग धन्धे—बांगड़ प्रदेश में औद्योगिक विकास के लिए किये गये प्रयास अभी नवीन ही कहे जा सकते हैं। सूती वस्त्र मिलें पाली व गंगानगर में, ऊनी वस्त्र उद्योग के कारखाने जोधपुर, नवलगढ़, चूरु व लाडनूं में, चीनी बनाने का कारखाना गंगानगर में तथा नमक उद्योग सांभर डीडवाना, कुचामन व सुजानगढ आदि मे केन्द्रित हैं। वर्तमन में विभिन्न प्रकार के मध्यम व वृहत उद्योगों का तेजी से विकास हुआ है लघु उद्योग भी विकसित हुए हैं। बांगड़ प्रदेश में सार्वजनिक क्षेत्र में सांभर साल्ट्स लिमिटेड, सांभर; गंगानगर शुगर मिल्स, गंगानगर; राजस्थान स्टेट केमीकल वर्क्स, डीडवाना तथा राजस्थान लघु उद्योग लाडनूं व चूरु आदि कारखाने स्थापित किये गये हैं। अभी सरकार द्वारा सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना जोधपुर, झुन्झुनूं, हनुमानगढ़, नोहर आदि केन्द्रों पर करने के लिए सरकार ने नये लाईसेन्स जारी किये हैं। सीमेन्ट का एक कारखाना नीम-का-थाना में लगाया गया है। तथा पाली में रास नामक स्थान पर एक और सीमेंट कारखाना निर्माणधीन है। जोधपुर में ट्रैक्टर का एक कारखाना है। इस प्रदेश के कुटीर उद्योगों में से कुछ कुटीर उद्योग जैसे तेल घाणी उद्योग श्रीगंगानगर व पाली में, बन्धेज का कार्य जोधपुर, कुचामन व नागौर में, छपाई जोधपुर में, रंगाई पाली में, बर्तन उद्योग जोधपुर तथा पाली में, जूतियों को बनाने का कार्य भीनमाल व जोधपुर में, कत्था व लाख उद्योग जोधपुर में कार्यरत हैं। जोधपुर केन्द्र रंगाई छपाई की नई तकनीक के लिए प्रसिद्ध है। मकराना संगमरमर की विभिन्न किस्मों के लिए विख्यात है। पाली टेक्सटाइल रंगाई के लिए जाना जाता है। गंगानगर शुगर मिल के फलस्वरूप विख्यात है लेकिन फिर भी यह प्रदेश अभी औद्योगिक क्रियाओं में

राज्य के पूर्वी प्रदेश की अपेक्षा पिछड़ा हुआ है।

परिवहन—बांगड़ प्रदेश में सड़क यातायात का विकास गत दो दशकों में तेजी से हुआ है। इसका मुख्य कारण देश की सामरिक नीति है जिसके अन्तर्गत इस प्रदेश के क्षेत्रों को परिवहन की सुविधाएँ आसानी से सुलभ हो सकी। वर्तमान में इसके अधिकांश भाग राष्ट्रीय राज्य मार्गों से या प्रमुख राज्य मार्गों से जुड़े हुए हैं। इस क्षेत्र से होकर राष्ट्रीय राज्य मार्ग नम्बर 14 अ गुजरता है। गंगानगर को बीकानेर से 1965 में जोड़ा गया। इस प्रदेश के मुख्य सड़क मार्ग इस प्रकार है (i) गंगानगर-बीकानेर, (ii) बीकानेर-फतेहपुर-सीकर-जयपुर, (iii) जोधपुर-पाली-सिरोही, (iv) रतनगढ़-नागौर-जोधपुर, (v) गंगानगर-सरदार शहर, (vi) जालौर-पाली-ब्यावर-अजमेर आदि मार्ग है। इस प्रदेश में छोटी रेल्वे लाईन के द्वारा सभी जिला मुख्यालय सिवाय सिरोही जिला केन्द्र के जुड़े हुए हैं। प्रमुख रेलमार्गों में (i) बीकानेर-जोधपुर-पाली-मारवाड़, (ii) जोधपुर-मेड़ता-फुलेरा-दिल्ली, (iii) बीकानेर-रतनगढ़-चूरू-दिल्ली, (iv) बीकानेर-गंगानगर आदि मुख्य है। सूरतगढ़ से अनूपगढ़ के बीच के रेल मार्ग को चौड़ी लाईन में बदल दिया गया है। इस रेल मार्ग पर रेल सेवा 3-4-85 से प्रारम्भ हो गई है। इस प्रदेश के समीप से ही दिल्ली अहमदाबाद राष्ट्रीय मार्ग सिरोही से होता हुआ तथा दूसरा जोधपुर-अहमदाबाद सड़क मार्ग जालौर होता हुआ गुजरता है। प्रदेश में गत कुछ वर्षों में परिवहन साधनों का विस्तार नहीं किया गया है।

राजस्थान बांगड़ प्रदेश को पुनः चार उप प्रदेशों में विभक्त किया जा सकता है—

(अ) घग्घर मैदान—इस उपप्रदेश में श्री गंगानगर जिला सम्मिलित किया जाता है। यह अपनी नहरी सिंचित कृषि और कृषि पर आधारित औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था के लिए विख्यात है। यहाँ पर कृषि गहन प्रकार की है तथा मिश्रित फसलों के प्रतिरुप को प्रदर्शित करती है। राजस्थान बांगड़ में केवल यही एक ऐसा उपप्रदेश है जहाँ फसली क्षेत्र का काफी अच्छा प्रतिशत नकदी फसलों जैसे गन्ना, कपास और तिलहन आदि के अन्तर्गत है। खाद्यान्नों में चना और दालें, गेहूं, जौ और मोटे अनाज आदि फसलें महत्वता के क्रम से उगाई जाती हैं। कृषि-जन्य उद्योग-आटा मिलें, चीनी मिलें, सूती तथा ऊनी वस्त्र व्यवसाय मुख्य है। जनसंख्या का घनत्व 98 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। यातायात संसाधनों के विकास एवं नगरीयकरण की वृद्धि दर तीव्र है। परिवहन मार्ग भी रेलों और सड़कों के रुप में विद्यमान है। सूरतगढ़ व अनूपगढ़ के बीच के रेलमार्ग को बड़ी रेल लाईन में बदल दिया गया है। इस पर रेल सेवा 3-4-85 से प्रारम्भ कर दी गई है। गंगानगर (1,21,568), नोहर (22,680), भादरा (22,568,) सांगारिया (18,997), रायसिंहनगर (16,024) तथा करनपुरा (15,248) आदि मुख्य नगर है।

इस उपप्रदेश को पुनः दो लघु विभागों में बांटा जाता है।

(अ–1) **गंगानगर मैदान** नहरी सिंचाई सुविधाओं से परिपूर्ण है तथा गहन कृषि कर अधिक उपज प्राप्त की जाती है।

(अ–2) **नोहर-भादरा मैदान** सिंचाई सुविधाओं से वंचित भू-भाग है और इसलिए निर्वाह कृषि अर्थ व्यवस्था की विशेषताओं को परिलक्षित करता है।

(ब) शेखावाटी मैदान—यह उपप्रदेश मुख्य रूप से कृषि अर्थव्यवस्था प्रधान प्रदेश है जो मौलिक रूप से कुंओं तथा नलकूपों की सिंचाई पर निर्भर हैं।

खाद्यान्नों में चना, दालें, बाजरा, जौ मुख्य है लेकिन इनके अतिरिक्त सरसों व राई, अलसी, तम्बाकू आदि भी बोये जाते हैं। मोटे अनाज मुख्य न होते हुए भी कुल फसली क्षेत्र के लगभग 50 प्रतिशत भाग पर बोये जाते हैं। इस प्रदेश में रेल व सड़कों की अच्छी सेवाएं उपलब्ध हैं और यह राजस्थान, हरियाणा व देहली से भली-भांति जुड़ा हुआ है। भाखड़ा-नांगल से इसे जल-विद्युत प्राप्त होती है। सभी सुविधाओं के फलस्वरुप यहाँ पर जनसंख्या का घनत्व लगभग 190 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। इस प्रदेश में चूरु (62,061), झुन्झुनू (47,481), रतनगढ़ (43,366), तारानगर (15,435) मंडवा (12,891), चिरावा (20 878), पिलानी (17,026), नवलगढ़ (38,719), सीकर (1,02,946) फतेहपुर (51,082), लक्ष्मणगढ़ (29,215), व रामगढ़

(19,555) आदि प्रमुख नगर व शहर हैं।

सामान्य आर्थिक वृद्धि और नगरों के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति व मात्रा के आधार पर इस प्रदेश को दो लघु विभागों मे बांटा जाता है—

(ब—1) उत्तरी-पूर्वी चूरू क्षेत्र में केवल चार नगरीय केन्द्र स्थित हैं इसलिए यहाँ ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत अधिक पाया जाता है।

(ब—2) पश्चिमी सीकर-झूंझूनू मैदान में नगरीय केन्द्रों की संख्या 24 के लगभग है। इसलिये अन्य व्यवसायों में संलग्न कार्यिक जनसंख्या का प्रतिशत 35 है जो उत्तरी-पूर्वी चूरू क्षेत्र की अपेक्षा अधिक है।

(स) नागौर प्रदेश—यह उपप्रदेश अन्तर्वर्ती जलप्रवाह क्रम, खारे पानी की झीलें और चट्टानी पहाड़ी सतह क्षेत्रों के फलस्वरुप एक विशिष्ट प्रदेश है। यह प्रदेश आर्द्र लूनी बेसिन और तुलनात्मक रुप से शुष्क उत्तरी-पूर्वी बांगड़ के क्षेत्रों के बीच में संक्रमण विशेषताओं से परिलक्षित है। इसमें मिलने वाली झीलें सांभर, डीडवाना लाडनूं आदि नमक के मुख्य स्रोत हैं जिनसे नमक बनाया जाता है। यह प्रदेश नमक उद्योग की दृष्टि से प्रसिद्ध है। 50 प्रतिशत से भी अधिक कृषि क्षेत्र पर बाजरा की फसल बोई जाती है लेकिन चना व दालें तथा तिलहन भी इस प्रदेश की मुख्य फसलों में गिनी जाती हैं। थोड़ा बहुत गेहूं का भी उत्पादन किया जाता है। इस प्रदेश का मकराना क्षेत्र संगमरमर के लिए विश्व प्रसिद्ध है। जिप्सम तथा अन्य भवन निर्माण सामग्री का भी यहा खनन होता है।

नागौर (48,009), मकराना (40,669), लाडनूं (36,009), कुचामन (26,880), डीडवाना(23,994) मेड़ता (22,112), नावां (9,771) तथा पर्वतसर (7,378) आदि मुख्य नगर हैं।

इस प्रदेश के पुनः दो लघु विभाग बनाये गये हैं जो प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं के आधार पर किये गये हैं—

(स—1) सांभर डीडवाना क्षेत्र मुख्यतया नमक उद्योग जैसी महत्वपूर्ण आर्थिक क्रियाओं से पहचाना जाता है।

(स—2) नागौर ओसियन क्षेत्र प्रधानतया कृषि क्षेत्र है लेकिन खनिज संसाधन की संभाव्यताएँ भी इस में अच्छी दृष्टिगत होती है।

(द) लूनी बेसिन—यह उपप्रदेश राजस्थान बांगड़ का एक अति विशिष्ट प्रदेश है क्योंकि यह एक विकसित जल अपवाह क्रम रखता है। यह अरावली श्रेणी के पश्चिम में स्थित राजस्थान मैदान का एक अति आर्द्र प्रदेश हैं। घग्घर के मैदान पश्चात इस प्रदेश में सबसे अधिक वास्तविक बोया गया क्षेत्रफल मिलता हैं। सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं। नदियों के साथ ही तालाबों से भी सिंचाई की जाती है। बाजरा के साथ-साथ गेहूँ, जौ, तिलहन का भी उत्पादन होता है। जनसंख्या का घनत्व तुलनात्मक रूप से अधिक है। खनिज संसाधनों की कमी है तथा औद्योगिक क्रियाएँ अविकसित दशा में हैं। जोधपुर (4,93,609) इस प्रदेश के पश्चिमी सीमान्त पर स्थित है और एक महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र है। अन्य नगर पीपर (21,242), बिलाड़ा (24,006), सोजत रोड (7,879), पाली (90,711), सादड़ी (18,468) बालोतरा (28,099)तथा जालौर (24,099)आदि हैं।

इस उपप्रदेश को जल प्रवाह सम्बन्धी दशाओं के आधार पर छह लघु विभागों में विभाजित किया गया है—

(द—1) दक्षिणी पूर्वी जोधपुर मैदान एक आन्तरिक जल प्रवाह का क्षेत्र है और बांगड़ तथा मरुस्थली के बीच संक्रमण पट्टी की रचना करता है।

(द—2) पाली सोजत मैदान ऊपरी लूनी बेसिन में स्थित है।

(द—3) लूनी सूकड़ी द्रोणी तुलनात्मक रुप से एक ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति का भू-भाग है।

(द—4) जालौर भीनमाल मैदान लूनी नदी की कई छोटी-छोटी जल धाराओं से जिनमें जवाई नदी सब से अधिक महत्वपूर्ण है, सिंचित है।

(द—5) लूनी खाड़ी क्षेत्र कच्छ की खाड़ी के समीप स्थित होने के कारण अत्यधिक लवणता की विशेषताओं को परिलक्षित करता है।

(द—6) दक्षिणी पूर्वी बाड़मेर मैदान राजस्थान बांगड़ के सभी उपप्रदेशों की तुलना में अधिक शुष्कता वाला प्रदेश है।

3. अरावली प्रदेश

अरावली प्रदेश का अक्षांशीय विस्तार 23° 20' से

28° 20' उत्तर तथा देशान्तरीय विस्तार 72° 10' से 77° पूर्व तक है। इसका क्षेत्रफल 92,771 वर्ग किलोमीटर तथा जनसंख्या 146.42 लाख (1981) है। इस के अन्तर्गत मुख्यतया अलवर, जयपुर, अजमेर, भीलवाड़ा उदयपुर, चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, सिरोही जिले झुन्झुनूं की खेतड़ी तहसील तथा सीकर जिले की नीम-का-थाना, श्रीमाधोपुर व दातारामगढ़ तहसीलें सम्मिलित हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रदेश अधिक महत्वपूर्ण रहा है। आर्यों के आगमन के पूर्व विराट एवं पुष्कर अरण्य इस प्रदेश की राजधानियाँ रह चुकी हैं। बुद्धकालीन युग में पुष्कर एक महान बौद्ध स्थल था। मगध, कुशान तथा गुप्तकालीन साम्राज का यह अंग रह चुका है। मुगलों के पूर्व इस क्षेत्र में केनेक राजपूत राजाओं का राज्य था जो मुगल बादशाहों के लिए सदैव सिरदर्द बने रहे। अंग्रेजों के प्रशासन में पुनः राजपूत सत्ता में आये। यह प्रदेश कई देशी रियासतों में विभक्त था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात ये सभी वर्तमान राजस्थान राज्य के अंग बने।

अरावली प्रदेश का भौतिक भूदृश्य—

अरावली पर्वतीय क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीपीय के आर्कियन युग की निमित चट्टानी प्रदेश का एक भाग है। आर्कियन युग के तलछट के ऊपर उठने के फलस्वरूप अरावली की पर्वतमालाओं का निर्माण हुआ। डॉ. वाड़िया के शब्दों में पेलियोजोइक युग में इस पर्वतीय क्षेत्र का कई बार उत्थान हुआ। पहिले इसका आकार विस्तृत था जो दक्षिणी प्रायद्वीपीय से उत्तर हिमालय तक विस्तृत रहा होगा। अरावली का निर्माण एक समाभिनति में, अरावली तथा दिल्ली क्रमों के चट्टानों के भरने तथा नीस और ग्रेनाईट के अन्तर्भेदन से हुआ है। अरावली श्रेणियां इस प्रदेश की प्रमुख स्थलाकृतियां है। ये समग्र प्रदेश के आर-पार दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व को फैली हुई हैं। सम्पूर्ण अरावली क्रम उन दो पंखों की तरह दिखाई पड़ता है जिनकी हैण्डिलें आपस में बांध दी गई हों। अजमेर बन्धन स्थल का कार्य करता है।

धरातल—अरावली श्रेणी और पहाड़ी प्रदेश की चौड़ाई सर्वत्र एक सी नहीं है। यह श्रेणी एक निरन्तर श्रेणी न होकर बीच-बीच में टूटी हुई है। अतः इस प्रदेश का धरातल विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न हैं। इस प्रदेश के उत्तरी-पूर्वी भाग में पहाड़ियां चरटी तथा दो पहाड़ियों के बीच में उपजाऊ घाटियां मिलती हैं। मध्य के क्षेत्र बालू पहाड़ियां, निचले गर्तों तथा अन्तर्वर्ती जलप्रवाह से परिपूर्ण हैं। मेरवाड़ा पहाड़िया 600-800 मीटर ऊँची तथा कहीं-कहीं दुग्राह्य है जबकि मेवाड़ पहाड़ियों की औसत ऊँचाई 1225 मीटर है। कुछेक चोटियां 1300 मीटर से भी अधिक ऊँची है। यह समग्र मेवाड़ पहाड़ियां क्षेत्र काठियों से परिपूर्ण है। साबरमती, सेई, बकाल और सोम प्रसिद्ध नदियां हैं। प्रदेश के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में आबूखण्ड स्थित है जहां प्रक्षेपों के कारण पहाड़िया अधिक टूट-फूटी हैं। माउण्ट आबू असमान तथा अनेक प्रक्षेपित चोटियों से घिरा हुआ है। इस क्षेत्र में प्रदेश की सबसे ऊंची चोटी गुरु शिखर (1727 मी.) स्थित है। यह प्रदेश अरबसागर और बंगाल की खाड़ी प्रवाह क्रम के बीच जल विभाजक का कार्य करता है। बनास चम्बल की मुख्य सहायक नदी है जो अरावली के पूर्वी पार्श्वों से निकलकर चम्बल में मिलती है जबकि पश्चिम की ओर इससे अनेक छोटी-छोटी नदियाँ निकाल कर लूनी नदी में गिरती हैं। इनमें साबरमती, सुकरी, जवाई, जोजरी बाँडी मुख्य हैं। ये नदियां प्रायः गर्मी के दिनों में सूख जाती हैं।

जलवायु—यह प्रदेश पूर्व में आर्द्र जलवायु क्षेत्र तथा पश्चिम में शुष्क जलवायु क्षेत्र के बीच में स्थित होने के कारण एक सक्रमणक क्षेत्र है। ऊँचाई के अनुसार तापमान में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। आबू पर्वत पर ग्रीष्म ऋतु के दिनों में सुहावनी ठडक पड़ती है जबकि शीतऋतु में मौसम काफी ठण्डा रहता है। प्रायः जनवरी में तापमान 10°—16° सेन्टीग्रेड के मध्य रहते है। हालांकि समय-समय पर शीत लहर के कारण हिमांकबिन्दु तक तापमान गिर जाते हैं। मई-जून के महीनों में तापमान 28°—34° सेन्टीग्रेड के लगभग रहते हैं जबकि अत्यधिक तापमान 44 सेन्टीग्रेड अलवर में आलेखित किए गये हैं। यहाँ की सापेक्षिक आर्द्रता ग्रीष्म ऋतु में 28 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक रहती है। इस प्रदेश में वर्षा की मात्रा उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम में बढ़ती जाती है। प्रदेश के उत्तरी और मध्य क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा

40 सेन्टीमीटर से 80 सेन्टीमीटर के बीच तथा दक्षिणी भागों में माऊन्ट आबू पर 150 सेन्टीमीटर या इससे भी अधिक रिकार्ड की जाती है।

वनस्पति—इस प्रदेश में मिश्रित-पर्णपाती और उपोष्ण सदाबहार से लेकर बिखरी हुई वनस्पतियां तक पाई जाती हैं। वृक्षों तथा झाड़ियों की किस्में तथा सघनता वर्षानुसार निर्धारित होती हैं। अधिकांश पहाड़ियां नग्न एव वनस्पति विहीन हैं। यहाँ इस प्रदेश में अनवरत कटाई तथा चरागाही के कारण प्राकृतिक वनस्पति का सबसे अधिक विनाश हुआ है। सामान्य रूप से मिलने वाले वृक्ष धोकड़ा, बरगद, गूलर, आम, जामुन, बबूल व खैर आदि हैं। लेकिन आबू पर्वत के ढलानों तथा तल के आस-पास पाये जाने वाले वृक्षों तथा झाड़ियों में बांस, आम, धाऊ, सिरिस, बेल, रोहिड़ा मुख्य हैं। आबू के उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में अम्बरतरी पाई जाती है। राजस्थान में आबू वनस्पति की दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न है।

मिट्टियां—इस प्रदेश में कई प्रकार की मिट्टियां मिलती है—

(i) **भूरी रेतीली कछारी मिट्टी**—यह इस प्रदेश के अलवर जिले में मिलती है जिसका प्राय: रंग कुछ ललाई व भूरापन लिये हुए होता है। इसमें चूने, फास्फोरस और ह्यूमस की कमी होती है।

(ii) **कछारी मिट्टी**—यह मिट्टी जयपुर व मालपुरा में मिलती है। यह लाल रंग की होती है। प्राय: यह मिट्टी अच्छी उत्पादकता के लिए प्रसिद्ध है।

(iii) **लाल पीली मिट्टी**—यह मिट्टी इस प्रदेश के अजमेर, पश्चिमी भीलवाड़ा, पश्चिमी उदयपुर तथा सिरोही में मिलती है। इसमें कार्बोनेट व ह्यूमस की कमी है। लाल या पीला रंग इसमें लोह अंश की उपस्थिति को प्रमाणित करता है।

(iv) **लाल लोमी मिट्टी**—यह डूंगरपुर, उदयपुर के मध्य एवं दक्षिणी भाग में मिलती है। इस मिट्टी में चूने, पोटाश, लोह-ऑक्साइड और फास्फोरस की मात्रा कम पाई जाती है।

(v) **मिश्रित लाल-काली मिट्टी**—यह मिट्टी भीलवाड़ा व उदयपुर के पूर्वी भागों में एवं चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर व बांसवाड़ा आदि जिलों में मिलती है। लाल मिट्टी ग्रेनाइट और नीस की चट्टानों से बनी है और काली मिट्टी मालवा पठार की काली मिट्टी का ही विस्तार है। काली मटियारी मिट्टियों में कृषि अच्छी होती है जबकि छिछली, कंकरीली लाल मिट्टियों की किस्म अच्छी नहीं होती है। सामान्यतया यह उपजाऊ मिट्टी है।

खनिज सम्पदा—राजस्थान के खनिज उत्पादन का लगभग तीन चौथाई से भी अधिक भाग इस प्रदेश में ही पाया जाता है। इनमें लोह अयस्क, सीसा-जस्ता, बेरिलियम, तांबा अभ्रक, ऐस्बेस्टॉस, पन्ना, मैंगनीज, बेराइट्स व संगमरमर आदि खनिज उल्लेखनीय हैं। इस प्रदेश में **लोह अयस्क** मोरीजा बानोल, नीमला रायसेला, डाबला-सिंघाना, नीम-का-थाना, नाथरा-की-पाल, थूरहुन्डेर क्षेत्र तथा अन्य कई छोटे क्षेत्रों में पाया जाता है। **सीसा जस्ता सांद्र** मोचिया मगरा, राजपुरा-दरीबा (उदयपुर), घुघरा, मांडो (डूंगरपुर), बारडालिया (बांसवाड़ा), अगूंचा (भीलवाड़ा), गुढा किशोरीदास (अलवर) में, **बेरिलियम** शिकार बाड़ी, चम्पा गुढ़ा, रान आमेट (उदयपुर), बांदेर-सींदरी, गुजरवाड़ा (जयपुर), तिलोली, देवड़ा (भीलवाड़ा) पादेरी (डूंगरपुर) में, **तांबा** खो-दरीबा क्षेत्र (अलवर), देलवाड़ा-केरावली क्षेत्र (उदयपुर), पुर (भीलवाड़ा) तथा डूंगरपुर में, **ऐस्बेस्टॉस** खेरवाड़ा, बरना, रिषभदेव, कान्थल, आसिन्द, डेकालिया, सालूम्बर (उदयपुर), देवल, खेमारू, पीपरदा, जाकोल (डूंगरपुर) तथा अजमेर में, **अभ्रक** बंजारी, लक्ष्मी-भोजपुरा, माधोराजपुरा (जयपुर), नाथ-की-नेरी, तूनका, रतनगामा, मानकिया, बेमाली (उदयपुर-भीलवाड़ा) में, **पन्ना** कालागुमान, टिखी व गोगुन्दा क्षेत्र (उदयपुर) में, **मैंगनीज** कांसला, सांगवा, तिम्मामोरी, नलवाड़ा, बोहरिया, गोइका-वारी (बांसवाड़ा), नेगाडिया, सरूपपुरा, रामोसन (उदयपुर) में, **संगमरमर** किशनगढ़ (अजमेर), जीरो, दादमपीर (अलवर), देवीमाता, बाबर माल, राजनगर (उदयपुर) में, **बेराइट्स** राजगढ़, बालूपुरा, डहरा, लादियागूजर, मकरोड़ा, बाबेली, सैनपुरी से अकबरपुर तक (अलवर) में मिलते हैं।

इनके अतिरिक्त फेल्सपार (जयपुर), कांच बालुका (जयपुर), चीनी मृत्तिका (अलवर-उदयपुर), डोलोमाइट (अजमेर, जयपुर, अलवर), यूरेनियम (डूंगरपुर, बांसवाड़ा, किशनगढ़) तामड़ा (सरवाड़, भीलवाड़ा), चूने का पत्थर (निम्बाहेड़ा, चित्तौड़गढ़) घीया पत्थर (जयपुर, भीलवाड़ा, डूंगरपुर तथा बाँसवाड़ा), स्लेट पत्थर (अलवर, उदयपुर, जयपुर) तथा इमारती पत्थर चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा, जयपुर, अलवर, डूंगरपुर) आदि खनिज भी इस प्रदेश में मिलते है।

अरावली प्रदेश का सांस्कृतिक भू दृश्य

जनसंख्या—इस प्रदेश की जनसंख्या का घनत्व राज्य के घनत्व (100 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर) से अधिक (155 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर) हैं परन्तु इस प्रदेश की विशेषता यह है कि जनसंख्या का एकत्रीकरण कुछ विशेष स्थलों पर ही हुआ है। उत्तरी अरावली क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व अधिक है। मध्य अरावली क्षेत्र में जयपुर, अजमेर के समीपवर्ती भागों में जनसंख्या का घनत्व अधिक है जबकि दक्षिणी अरावली क्षेत्र के पहाड़ी भागों में जनसंख्या विरल है परन्तु यहाँ पर भी जनसंख्या का जमाव डूंगरपुर और बांसवाड़ा में अधिक मिलता है। अलवर की पहाड़ियों के कुछ भागों में जनसंख्या का घनत्व 240 व्यक्ति से भी अधिक है वैसे औसत घनत्व अलवर जिले में 213 तथा जयपुर जिले में 244 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर मिलता है।

गत 80 वर्ष मे हुई जनसंख्या वृद्धि दर का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि अरावली प्रदेश के दक्षिणी भाग जिनमें चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर और बांसवाड़ा स्थित है, ने सर्वाधिक वृद्धि दर परिलक्षित की है। सबसे अधिक वृद्धि दर डूंगरपुर में 583 प्रतिशत बांसवाड़ा में 443 17 प्रतिशत तथा चित्तौड़गढ़ में 426.40 प्रतिशत परिलक्षित होती है जबकि सबसे कम वृद्धि दर अजमेर में केवल 172.70 प्रतिशत ही आलेखित की गई। इस प्रकार इस प्रदेश में अकेला अजमेर जिला ही ऐसा है जिसने राज्य की औसत वृद्धि दर (232.83) से भी कम वृद्धि दर को दर्शाया है। गत दशाब्दी की जनसंख्या वृद्धि दर के अनुसार जयपुर जिले ने सर्वाधिक (38%) जनसंख्या वृद्धि दर को परिलक्षित किया है और सबसे कम भीलवाड़ा (24%) ने। प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या 892 (अलवर) और 1,045 (डूंगरपुर) के बीच है जबकि राज्य का अनुपात 1000:919 है।

इस प्रदेश की अधिकाँश जनसंख्या ग्रामों में रहती हैं। गांवों का आकार कुछ झोपड़ों की बिखरी हुई छोटी-छोटी बस्तियों से लेकर 1, 000 परिवार की सघन बस्तियों तक है। गावों के वितरण पर यहां के भौतिक, सांस्कृतिक कारकों जैसे सिंचाई की सुविधाओं, कृषि जनित व्यवहार, भूमि आकार, खेतों का वितरण, सांस्कृतिक बन्धन तथा कृषक के परिश्रमी स्वभाव का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। यहां के गांव, सघन, विसर्जित. पल्लीदार एवं अर्धपुंजीय है।

इस प्रदेश की लगभग 23 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में रहती है। प्रमुख शहरों में जयपुर (10,04,669), अजमेर (3,74,350), उदयपुर (2,29,762), अलवर (1,39,973), भीलवाड़ा (1,22,338) तथा नगरों में ब्यावर (90,007), टौंक (77, 655), किशनगढ़ (61, 911) आदि उल्लेखनीय है। यहाँ के अधिकांश नगर मध्यकालीन है। अधिकांश नगरों के चारो तरफ परकोटे मिलते है तथा सुरक्षा के लिये नहरों, झीलों, तालावों, किलों आदि का भी सहारा लिया गया हैं। इस प्रदेश के अधिकांश नगर तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के है।

अरावली प्रदेश का आर्थिक प्रतिरुप

भूमि उपयोग—इस प्रदेश में अधिकांश भूमि पहाड़ी व चट्टानी, वर्षा की मात्रा कम तथा सिंचाई के साधनों के अविकसित होने के कारण केवल 44 प्रतिशत भूमि में कृषि होती है। 3.7 प्रतिशत क्षेत्र वनाच्छादित है तथा 20 प्रतिशत कृषि के अयोग्य है। इस प्रदेश के विभिन्न जिलों के कुल क्षेत्रफल के सन्दर्भ में शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल निम्नतम 17 प्रतिशत (उदयपुर) तथा अधिकतम 62 प्रतिशत (अलवर) के बीच मिलता है। इसी प्रकार सबसे अधिक कृषि योग्य खाली भूमि भीलवाड़ा में 22.70 प्रतिशत है जबकि न्यूनतम 2.01 प्रतिशत कृषि योग्य खाली भूमि अलवर में मिलती है। अलवर तथा

उदयपुर जिलों में एक बार से अधिक बोये गये क्षेत्रफल का प्रतिशत अधिक पाया जाता हैं।

कृषि—सिंचाई की सुविधाएं पर्याप्त नहीं होने के कारण कृषि कार्य सीमित है। बांसवाडा के पूर्वी भाग में आर्द्र खेती तथा डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा में वालरा कृषि (स्थानान्तरित कृषि) की जाती है फलस्वरूप फसलों का क्रम उत्तर से दक्षिण की ओर विषमता परिलक्षित करता है। अलवर क्षेत्र में बाजरा, गेहूं, चना व तिलहन आदि फसलें, जयपुर में बाजरा, दालें, गेहूँ चना आदि फसलें, अजमेर व टौंक में ज्वार, गेहूं व तिलहन आदि फसलें, उदयपुर, डूंगरपुर तथा पश्चिमी भीलवाड़ा में मक्का, गेहूँ, दालें तथा भीलवाड़ा के पूर्वी भाग, चित्तौड़गढ़ व बाँसवाड़ा में मक्का, गेहूँ, दालें व कपास आदि फसलें महत्वता के क्रम के अनुसार प्राप्त की जाती हैं। इस प्रकार इस प्रदेश में विभिन्न फसलें जैसे गेहूँ, जौ, बाजरा, ज्वार, मक्का, चावल दालें चना, गन्ना, मूंगफली, अलसी अरण्डी, तिल, सरसों व राई, तम्बाकू तथा कपास आदि उत्पन्न की जाती हैं। कुल बोई गई भूमि के 68.4 प्रतिशत पर खाद्यान्न जैसे बाजरा, ज्वार, मक्का, गेहूँ, जौ तथा चावल आदि, 21.5 प्रतिशत पर दालें, 5.8 प्रतिशत पर तिलहन तथा शेष पर विविध फसलें बोई जाती हैं।

सिंचाई—सिंचाई के प्रायः सभी साधनों का उपयोग इस प्रदेश में किया जाता हैं। कुओं के द्वारा सिंचाई की सुविधाएँ अलवर, उदयपुर, जयपुर तथा अजमेर में सुलभ कराई जाती है क्योंकि जलस्तर यहाँ पर 6 मीटर से 12 मीटर के बीच मिलता है। कुओं और नलकूपों के द्वारा सिंचित क्षेत्र का सबसे अधिक प्रतिशत 16.50 जयपुर में मिलता है। अजमेर व भीलवाड़ा में भी नलकूपों से सिंचाई सुलभ करायी जाती है। इस प्रदेश में तालाब सिंचाई की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण साधन हैं। तालावों से सिंचाई की सुविधा का लाभ सबसे अधिक भीलवाड़ा प्राप्त करता है जहाँ कुल सिंचित भूमि का 22.5 प्रतिशत तालावों से सिंचित हैं। तालावों से सिंचाई उदयपुर, पाली, चित्तौड़गढ़ जिलों में अधिक तथा बाँसवाड़ा, अजमेर, जयपुर, डूंगरपुर आदि में कम होती है। इस प्रदेश में घाटी योजनाओं से भी सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है जैसे माही बजाजसागर (बांसवाड़ा), मेजा बांध (भीलवाड़ा), जाखम परियोजना (उदयपुर), ओराई योजना (चित्तौड़गढ़) तथा अड़वान (भीलवाड़ा व शाहपुरा) आदि।

इस प्रदेश में कई घाटी योजनाएें निर्माणाधीन तथा प्रस्तावित है जिनके पूर्ण हो जाने पर सिंचाई की सुविधाएं और भी सुलभ होंगी।

उद्योग धन्धे—इस प्रदेश में औद्योगीकरण एक नवीन प्रघटना है। स्वतन्त्रता के पूर्व सीमित तकनीकी ज्ञान, परिवहन की असुविधा, स्थानीय प्रशासन की अन्तर्मुखी नीति के कारण उपलब्ध साधनों का भी उपयोग आधुनिक उद्योगों के प्रसार में नहीं किया जा सका था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समय से इस प्रदेश में उद्योग धन्धा का विकास किया गया। औद्योगिक दृष्टि से इस प्रदेश का उत्तरी भाग (अजमेर, जयपुर, अलवर दक्षिणी भाग की तुलना में अधिक विकसित हैं। इस समय प्रदेश के प्रधान उद्योग धन्धे कृषि खनिजो, वनों तथा पशुओं पर आधारित हैं। वितरण के आधार पर कम से कम पांच क्षेत्रों में औद्योगिक क्रियाओं का केन्द्रीयकरण दृष्टिगत होता है।

(i) अलवर क्षेत्र—इस क्षेत्र में वनस्पति तेल, दाल मिलें, रसायनिक तथा अन्य कारखानें पाये जाते है। अलवर में माडर्न सिन्थेटिक इण्डिया लि, राठी एलायज एवं स्टील लि बहरोड़ में जयपुर सिन्थेटिक, भिवाडी में सुपर टूल्स इण्डिया, अलवर इंजन प्लाण्ट, केल्वीनेटर्स स्कूटर कारखाना, भारत एलम्स एण्ड केमीकल लि. आदि अलवर में स्थित है।

(ii) खेतड़ी-जयपुर क्षेत्र—इस क्षेत्र में खेतड़ी, नीम-का-थाना, श्रीमाधोपुर, आमेर और जयपुर आदि तहसीलें सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में इन्जीनियरिंग, विद्युत, ताम्र-प्रमालन (स्मेल्टर), सीमेंट तथा नमक विनिर्माण क्रियाएं केन्द्रित है। नेशनल इंजीनियरिंग उद्योग, जयपुर स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स लि., मान इण्डस्ट्रियल कॉरपोरेशन. सांभर साल्ट्स लि., जयपुर मेटल एण्ड इलेक्ट्रीकल लि. आदि उद्योग इस क्षेत्र के उल्लेखनीय उद्योग है।

(iii) मकराना-अजमेर-ब्यावर क्षेत्र— इस क्षेत्र में अजमेर, किशनगढ़, परवतसर, फुलेरा, ब्यावर, आदि सम्मिलित है। इस क्षेत्र का उत्तरी भाग अधात्विक तथा रसायन उद्योगो जैसे सांभर व पर्वतसर में नमक उद्योग साँभर में सोडा एश और मकराना में संगमरमर उद्योग आदि में संलग्न है जबकि दक्षिणी भाग सूती वस्त्र उद्योग तथा धात्विक उद्योग जैसे रेल्वे वर्कशाप आदि में संलग्न है।

(iv) भीलवाड़ा-चित्तौड़गढ़ क्षेत्र—यह क्षेत्र दो औद्योगिक खण्डों के रूप में अजमेर-खण्डवा पश्चिमी रेलमार्ग पर स्थित है। इस क्षेत्र के भीलवाड़ा औद्योगिक क्रोड में सूती वस्त्र मिलें, ऊनी मिले, वनस्पति घी फैक्ट्री, अभ्रक दाल मिलें आदि मिलती हैं। जबकि चित्तौड़गढ़ क्षेत्र में सीमेंट उद्योग काफी विकसित हुआ है। बिड़ला सीमेंट वर्क्स, चित्तोड़गढ़, मेवाड़ शुगर मिल्स लि. भोपाल सागर, जे. के. सीमेंट वर्क्स, निम्बाहेड़ा व मेहता वेजी-टेबिल प्रोडक्टस, चन्देरिया बड़े उद्योग है।

(v) उदयपुर क्षेत्र- इस क्षेत्र में जिन्क स्मेल्टर, सीमेंट फैक्ट्री, कपास कताई मिल, शराब फैक्ट्री, रसायन एवं औषधीय फैक्ट्री, लकड़ी के खिलौने आदि के कारखानें मिलते हैं। इसके अलावा कुछ खनिजों व वनों पर आधारित लघु उद्योग इकाईयां भी मिलती है जो धातुगत उत्पादों, सीमेंट तथा चूने की निर्मित वस्तुएं, सामान्य औजार तथा हार्डवेयर, लोहे व स्टील की ढलाई, धातु के बर्तनों का निर्माण आदि अन्य अनेक उद्योग शामिल है।

परिवहन—इस प्रदेश में रेलमार्ग की लम्बाई 1,050 किलोमीटर तथा सड़क मार्गों की लम्बाई 4 ,396 किलोमीटर है। नगरीयकरण प्रवृत्ति, औद्योगिक विकास तथा बढ़ती पर्यटक सुविधाओं तथा उनकी संख्या के फलस्वरूप इस प्रदेश के परिवहन एवं संचार विकास को एक उत्प्रेरक गति मिली है। इस प्रदेश के जयपुर, उदयपुर तथा अलवर को वायुमार्ग की सुविधा उपलब्ध हैं। शीघ्र ही अजमेर भी यह सुविधा प्राप्त कर लेगा। इस प्रदेश में उत्पादन एवं वितरण केन्द्रों के बीच यातायात की सुविधा कम विकसित है। राष्ट्रीय राज-मार्ग नं. 8 सामान एवं यात्री परिवहन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अन्य राजमार्गों व पक्की सड़कों में आगरा-जयपुर-बीकानेर नं. 11, अजमेर-कोटा, अजमेर-भीलवाड़ा, भीलवाड़ा-चित्तौड़गढ़, उदयपुर-चित्तौड़गढ़ विशेष महत्व के हैं। दिल्ली-अहमदाबाद रेल-मार्ग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अजमेर-खण्डवा, दूसरा महत्वपूर्ण रेलमार्ग है। इस प्रदेश में इतनी सुविधाएं उपलब्ध होने पर भी परिवहन के साधनों की कमी है जिसकी ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

अरावली प्रदेश को पुनः तीन उपप्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) उत्तरी अरावली क्षेत्र
(ब) मध्य अरावली क्षेत्र
स) दक्षिणी अरावली क्षेत्र

इन तीन उपप्रदेशों को सीमांकित करने में उच्चावचन सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उत्तरी अरावली लगभग सम-धरातल, उपजाऊ भूमि, पर्याप्त सिंचाई की सुविधाऐं और जनसंख्या का अधिक केन्द्रीय-करण जैसी विशेषताओं से परिलक्षित है जबकि मध्य अरावली अपने दो मुख्य शहरों—जयपुर तथा अजमेर के कारण विशिष्ट है। दक्षिणी अरावली क्षेत्र काफी ऊबड़-खाबड़, पहाड़ी पर्याप्त वनस्पति, छितरी जनसंख्या व बिखरे अधिवासों जैसी विशेषताओं से परिपूर्ण है।

(अ) उत्तरी अरावली क्षेत्र—यह क्षेत्र 24,651 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है। इस प्रदेश के अन्तर्गत अलवर जिला तथा नागौर, सीकर, जयपुर और झुंझुनूं आदि के भाग आते हैं। इस प्रदेश को पुनः दो लघु विभागों में बांटा जाता है—

(अ–1) सांभर बेसिन—यह बेसिन लगभग 5,773 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर फैला हुआ है। इस बेसिन के अन्तर्गत नागौर जिले की नावां और पर्वतसर तहसीलें, जयपुर की फुलेरा तहसील और अजमेर की किशनगढ़ तहसील का उत्तरी भाग शामिल है। यह क्षेत्र लगभग 360 मीटर की ऊँचाई पर अरावली शिस्ट और नीस के एक गर्त में स्थित है। सांभर झील के पूर्व का क्षेत्र समतल तथा उपजाऊ है जबकि पश्चिमी क्षेत्र रेतीला व बंजरमय है। बेसिन का मुख्य प्राकृतिक स्थलाकृति सांभर

झील है जो लगभग 175 वर्ग किलोमीटर पर विस्तृत है। नमक वेसिन अन्तर्वर्ती प्रवाह क्षेत्र में स्थित है जहाँ जलवायु की दशायें नमक उत्पादन के अनुकूल हैं। औसत वार्षिक वर्षा 40-50 सेन्टीमीटर है। इस क्षेत्र में बाजरा, जौ, ज्वार आदि मुख्य फसलें हैं। यह क्षेत्र रासायनिक उद्योगों के लिए बहुत अच्छी संभाव्यताएं रखता है। सांभर (17,632), नावां (9,771) और फुलेरा (15,651) मुख्य नगरीय केन्द्र हैं।

(अ–2) अलवर पहाड़ियां—इस क्षेत्र का विस्तार 18,878 वर्ग किलोमीटर पर है। अलवर पहाड़ियाँ अलवर जिले, सीकर और झुंझुनू जिलों के पूर्वी भाग और जयपुर जिले के अति सुदूर उत्तरी भागों पर विस्तृत है। इस क्षेत्र के पश्चिमी व मध्य भाग पहाड़ियों से घिरे हैं। सबसे ऊँची चोटी रघुनाथगढ़ 1051 मीटर ऊँची है। मध्य भाग कटा-फटा है जिस पर पर्याप्त वनस्पति मिलती हैं। इसका पूर्वी भाग ट्रान्स-यमुना मैदान का ही भाग है। इस पर साबी, गम्भीरी और बाणगंगा बहती हैं। कांपीय मिट्टी तथा ऊँची जलस्तर रेखा के फलस्वरूप यह भाग इस क्षेत्र का सबसे अधिक सघन जनसंख्या वाला क्षेत्र है। यहां घनत्व 315 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर मिलता है। पश्चिमी प्रदेश में मिट्टीयां रेतीली से कांपीय अथवा दोमट मिलती हैं। वर्षा का औसत 40-60 सेन्टीमीटर के बीच मिलता है। इस भाग में घास के क्षेत्र जिन्हें बीड़ कहते हैं, मुख्य हैं। लगभग 48 प्रतिशत से 72 प्रतिशत क्षेत्र कृषि के अन्तर्गत है। पूर्वी भाग में खेती सघन तथा वर्ष में दो फसलें उत्पन्न की जाती हैं। फसलों में बाजरा, गेहूँ, जौ, तिलहन और गन्ना मुख्य हैं। अलवर (1,39,973), राजगढ़ (39,379), सीकर (1,02,946), नीम-का-थाना (15,270), कोट-पुतली (21,715), खेतड़ी (12,594) आदि मुख्य नगरीय केन्द्र हैं। उदयपुरवटी क्षेत्र में तांबे की उपलब्धि के कारण इस क्षेत्र में औद्योगिक विकास ने अच्छी गति प्राप्त की है।

ब—मध्य अरावली क्षेत्र - यह लगभग 20,919 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है। इस प्रदेश में अजमेर, जयपुर जिले तथा टोंक जिले का दक्षिणी-पश्चिमी भाग शामिल है। इस प्रदेश में लगभग 47 लाख जनसंख्या रहती है तथा यहाँ 223 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर का घनत्व मिलता है। इसे पुनः दो लघु विभागों में बांटा जा सकता है।

(ब–1) मेरवाड़ पहाड़ियाँ—इसका क्षेत्रफल 4,400 वर्ग किलोमीटर है जिसमें लगभग 9 लाख जनसंख्या रहती है तथा जनसंख्या का घनत्व 201 मनुष्य प्रति वर्ग किलोमीटर है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत अजमेर जिले की ब्यावर, अजमेर तथा किशनगढ़ तहसीलों के भू-भाग सम्मिलित हैं। तारागढ़ (869 मीटर) अजमेर में स्थित है। क्षेत्र का पश्चिमी भाग रेतीला है। वर्षा का औसत 50 सेन्टीमीटर है वनस्पति विरल है जो कुल क्षेत्रफल के लगभग 3 प्रतिशत पर मिलती है। बाजरा, मक्का, जौ, गेहूं, तिलहन महत्वपूर्ण फसलें है। कुएँ व तालाब सिंचाई के मुख्य साधन हैं।

कार्यिक जनसंख्या का लगभग 33 प्रतिशत उद्योगों में संलग्न हैं जो कि अधिकांशतः कृषि व खनिज पर आधारित हैं जैसे सूती वस्त्र उद्योग, घीया पत्थर और सीमेन्ट। अजमेर (3,74,350), ब्यावर (90,007), किशनगढ़ (61,911), नसीराबाद, पुष्कर आदि महत्वपूर्ण नगरीय केन्द्र हैं। अजमेर एक प्रादेशिक धुरी के रूप में है।

(ब–2) मालपुरा उच्च भूमि क्षेत्र—इस क्षेत्र का विस्तार 16,519 वर्ग कि. मी पर है। इस प्रदेश के अन्तर्गत अजमेर के दक्षिणी-पूर्वी भाग फुलेरा, वैराठ व कोटपुतली तहसीलों के अलावा सम्पूर्ण जयपुर जिला तथा टोंक जिले के दक्षिणी-पश्चिमी भाग शामिल है। यह क्षेत्र एक समतल उच्च भूमि की स्थलाकृति है लेकिन कहीं-कहीं कटक मिलते हैं। जयपुर के समीप अरावली श्रेणी काफी महत्वपूर्ण बन जाती है। इस क्षेत्र में पहाड़ियों के शिखर वनों से आच्छादित हैं। कुल भूमि के लगभग 3 प्रतिशत क्षेत्र पर शुष्क कटिबन्धीय वन मिलते हैं, गहरी भूरी मिट्टी समग्र प्रदेश में मिलती है। पश्चिमी और उत्तरी भागों में सिंचाई का मुख्य साधन कुएँ हैं जबकि दक्षिण और दक्षिणी-पूर्वी भागों में तालाब मुख्य हैं। शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल में से लगभग 62 प्रतिशत

खाद्यान्नों के अन्तर्गत हैं। मुख्य नगरीय केन्द्र जयपुर (10,04,669), सांगानेर (21,938), दौसा (27,142), मालपुरा (17,994) तथा टोडारायसिंह (13,879) आदि हैं। जयपुर राजस्थान का सबसे बड़ा शहर तथा क्षेत्र का प्रादेशिक केन्द्र है जो पश्चिमी रेलवे के देहली-अहमदाबाद छोटी लाईन पर स्थित है।

(स) दक्षिणी-अरावली क्षेत्र—यह क्षेत्र एक विशिष्ट स्थलाकृति वाला है जिसमें ऊबड़-खाबड़ धरातल विभिन्न जलधाराओं की छोटी-छोटी नाली गर्तकाएँ, विस्तृत जनशून्य भू-भाग, छोटे घने बसे गाँव, उनके बीच खाली पड़े क्षेत्रों में बिखरे-बिखरे अधिवास जिनमें आदिवासी लोग रहते हैं, इन अधिवासों के चारों ओर पर्याप्त कृषि भूमि बिखरी हुई आदि विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। दक्षिणी अरावली क्षेत्र की पहाड़ियों को अगर ध्यान से देखा जाये तो यह स्पष्ट होता है कि ये समतल चोटियां एक बड़े कटे-फटे समप्राय मैदान के अवशिष्ट भाग हैं। इस उपविभाग को पुनः चार लघु विभागों में बांटा जाता है—

(स—1) आबू खण्ड—यह लगभग 5,180 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है। इसमें प्रायः समग्र सिरोही जिला सम्मिलित है। पश्चिमी भाग के अतिरिक्त यह पूर्ण रूप से पहाड़ी भू-भाग है। इसके पूर्वी भाग में आबू पर्वत जिसकी ऊँचाई 1,300 मीटर है, एक अनियमित पठार के रूप में विस्तृत है। यह क्षेत्र पश्चिमी बनास और जवाई नदियों से प्रवाहित हैं। वर्षा का औसत 50 सेन्टीमीटर हैं लेकिन आबू पर्वत 150 सेन्टीमीटर या इससे भी अधिक वर्षा प्राप्त करता है। आबू पर्वत के समीपवर्ती भागों में वनस्पति सघन मिलती है जिसमें उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन पाये जाते हैं। इस क्षेत्र के पश्चिमी पार्श्वों में वनस्पति के रूप में कंटीली झाड़ियाँ व घास दृष्टिगोचर होती है। इस क्षेत्र में लाल व पीली मिट्टी जो कि कम उपजाऊ है, मिलती है। यहाँ पर केवल 30 प्रतिशत ही शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल मिलता है जिसमें से लगभग 65 प्रतिशत क्षेत्र खाद्यान्नों के अन्तर्गत है। मक्का, गेहूं, जौ, तिलहन और गन्ना अन्य मुख्य फसलें है। सिंचाई के मुख्य साधन कुएं हैं। इस क्षेत्र के मध्य भू-भाग में रेल व सड़क परिवहन की सुविधाएं अच्छी है। देहली-अहमदाबाद छोटी रेल लाईन इस क्षेत्र से होकर गुजरती है। इस क्षेत्र की कुल जनसंख्या 5.42 लाख है। जनसंख्या का घनत्व 106 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो कि समग्र अरावली प्रदेश में न्यूनतम है। मुख्य नगरीय केन्द्र सिरोही (23,906), आबू रोड (31,268) और माऊन्ट आबू (11,418) है।

(स—2) मेवाड़ पहाड़ियाँ—इस लघु विभाग में उदयपुर की पूर्वी तीन तहसीलें मावली, राजसमन्द और वल्लभनगर के अतिरिक्त सम्पूर्ण जिला, पाली जिले के दक्षिणी-पूर्वी सीमान्त भाग इसमें सम्मिलित हैं। यह बनास मैदान और आबू खण्ड क्षेत्र के बीच स्थित होने के कारण अति विशिष्ट पहाड़ी प्रदेश है जो लगभग 17,007 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में विस्तृत है। मेवाड़ पहाड़ियों में भोराट पठार जो सबसे ऊँची स्थलाकृति है, पाया जाता है तथा ये पहाड़ियाँ महान भारतीय जलविभाजक को भी परिलक्षित करती हैं। वर्षा की मात्रा 50-100 सेंटीमीटर के बीच है। इस क्षेत्र के लगभग 10 प्रतिशत भू-भाग पर उष्णकटिबन्धीय शुष्क पतझड़ के वन मिलते है। उत्तरी-पश्चिमी भागों में लाल-पीली मिट्टी तथा दक्षिणी भागों में लाल लोमी मिट्टी मिलती है। केवल 22 प्रतिशत क्षेत्र पर कृषि की जाती है। मुख्य फसलें मक्का, गेहूँ, जौ, चना और तिलहन आदि हैं। मक्का के अन्तर्गत कुल बोये गये क्षेत्रफल का लगभग 27 प्रतिशत क्षेत्र है। गत कुछ वर्षों में इस क्षेत्र में काफी उद्योग स्थापित किये गये हैं, जैसे जिन्क, कपास, सीमेंट आदि। प्रदेश की कुल जनसंख्या लगभग 18.5 लाख है। घनत्व 186 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। क्षेत्र के दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भागों में सामान्यतया भील जाति के लोग मिलते हैं मुख्य नगरीय केन्द्रों में उदयपुर (2,29,762), डूंगरपुर और नाथद्वारा आदि हैं। उदयपुर नगर 'पूर्व के वेनिस' के नाम से जाना जाता है।

(स—3) मध्य माही बेसिन—यह 7,056 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है। क्षेत्र के अन्तर्गत डूंगरपुर जिला सम्मिलित है। इस क्षेत्र का पश्चिमी भाग पहाड़ी है लेकिन मध्य व पूर्वी भाग उपजाऊ मैदान

हैं और छप्पन के नाम से जाना जाता है। वर्षा का औसत 100 सेंटीमीटर है। शुष्क सागवान वन कुल क्षेत्र के लगभग 5 प्रतिशत पर फैले हैं। सागवान और बांस के वृक्ष बहुतायत से मिलते हैं। भूमि का लगभग 38 प्रतिशत कृषि के अन्तर्गत है जिस पर मक्का, चावल, गन्ना और चना आदि मुख्य फसलों का उत्पादन किया जाता है। मध्य माही बेसिन उत्तम कृषि उत्पादन के कारण एक आधिक्य कृषि प्रदेश है। क्षेत्र में सुगम्यता की कमी होने के कारण इस क्षेत्र में भील व गिरासिया आदि आदिवासी जातियाँ बसी हुई हैं। वे स्थानान्तरित खेती जिसे वालरा कहते है, करते है। बागेश्वर भील लोगों के लिये तथा गलियाकोट बोहरा जाति के लोगों के लिये धार्मिक महत्व के केन्द्र है।

(स—4) बनास मैदान—यह मैदान अरावली के पूर्व से उत्तर-पूर्व और पूर्व में मालपुरा उच्च भूमि के क्षेत्र तक विस्तृत है। भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़ और उदयपुर की तीन तहसीलें राजसमन्द, मावली और वल्लभनगर इस क्षेत्र में सम्मिलित है। यह प्रदेश 21,740 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है। यह एक उत्थित मैदान है जिस पर बनास और उसकी सहायक नदियां, जैसे खारी, कोठारी, बिडाच आदि प्रवाहित होती है। वर्षा का औसत 75 सेन्टीमीटर है। इसके उत्तरी भाग पर शुष्क जंगल छितरे हुए मिलते है तथा दक्षिणी भाग साधारणतया शुष्क सागवान के जंगलों से ढ़का है। मिट्टी प्रदेश के पश्चिमी भाग में कम गहरी और पथरीली हैं जबकि दक्षिणी और पूर्वी भागों में मिश्रित लाल और काली मिट्टी पाई जाती है जिस पर मक्का, गेहूँ, कपास गन्ना आदि की विस्तृत कृषि की जाती हैं। कुल भूमि का लगभग 29 प्रतिशत कृषि के अन्तर्गत है। यह प्रदेश इमारती पत्थरों की विभिन्न किस्मों के लिये भी धनी है। निम्बाहेड़ा, चित्तौड़गढ़ और माण्डलगढ़ इन पत्थरों के लिये महत्वपूर्ण व्यापार केन्द्र है। खनिजों एव कृषि उत्पादों पर निर्भर कुछ उद्योग जैसे सूती वस्त्र उद्योग तेल, घीया पत्थर और सीमेन्ट उद्योग भीलवाड़ा व चित्तौड़गढ़ नगरों के बीच स्थापित किये गये है। इस प्रदेश की कुल जनसंख्या लगभग 28 लाख है तथा घनत्व 157 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हैं। जनसंख्या का वितरण प्रदेश मे सम है तथा छोटे आकार के सघन गांव दृष्टिगत होते है। रतलाम-अजमेर रेलमार्ग के सहारे भीलवाड़ा (1,29,338), चित्तौड़गढ़ (44, 994) और मांडल (13,386) महत्वपूर्ण नगरीय केन्द्र हैं।

4. चम्बल बेसिन प्रदेश

इस प्रदेश का विस्तार 23° 50′ उत्तर से 27° 50′ उत्तर तथा 75° 15′ पूर्व से 78° 15′ पूर्व के बीच है। इसका कुल क्षेत्रफल 50, 026 वर्ग किलोमीटर तथा जनसंख्या 71.35 लाख है इस प्रकार यह 143 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर का घनत्व परिलक्षित करता है। इसके अन्तर्गत राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर, सवाईमाधोपुर, बूंदी, कोटा, झालावाड़ तथा टोंक जिले सम्मिलित है। चम्बल नदी, यमुना की एक प्रमुख सहायक नदी है, जो विन्ध्यन पठार के उत्तरी-पश्चमी लोब तथा अरावली पर्वत के मध्य जलोढ़ संरचना से होकर प्रवाहित होती है। इसलिये इस प्रदेश को चम्बल बेसिन का नाम दिया है।

संरचना के दृष्टिकोण से इस प्रदेश के दक्षिण की ओर विस्तृत मध्य भारत की विन्ध्यन श्रेणियों का विस्तार चम्बल बेसिन में भी हुआ है। निचले विन्ध्यन की चट्टानें करौली के पठार पर अधिक स्पष्ट मिलती है। जिसका विस्तार सवाईमाधोपुर से बूंदी व कोटा तक है। उत्तर-पश्चिम की ओर अरावली और ऊपरी विन्ध्यन की चट्टानों के समांगत से यह अनुमान लगाया जाता है कि यहाँ एक लम्बा भ्रंश रहा होगा। मेसोजोइक युग में इस क्षेत्र में प्रथम बार समप्रायण हुआ और फिर दशरी एवं प्लीस्टोसीन युग में भी इसको ऊंचाई में काफी कमी आयी। क्षेत्र में कांच बलुका के जमाव नूतन काल के है। बालू कणों का जमाव भी इसी युग की देन है जो चम्बल और उसकी सहायक नदियों के तटीय प्रदेशों में अधिक प्राप्त होते है।

चम्बल बेसिन प्रदेश का भौतिक भू-दृश्य

धरातल—चम्बल घाटी की स्थलाकृतियां पहाड़ियों और पठारों से निर्मित हैं। इसकी सम्पूर्ण घाटी में नवीन कांपीय जमाव पाये जाते हैं। इस प्रदेश मे बाढ़ के मैदान,

नदी कागार, बीहड़ व अन्त-सरिता आदि स्थलाकृतियां पाई जाती हैं जो इस प्रदेश में अच्छी तरह से विकसित हैं। कोटा, बूंदी, टोंक, सवाईमाधोपुर और धौलपुर आदि जिलों में बीहड़ों से कुल प्रभावित क्षेत्र लगभग 4,500 वर्ग किलोमीटर है। इन बीहड़ों का निमाण सम्भवतः पुनः यौवन के द्वारा हुआ होगा लेकिन ये भूमि के दुरुपयोग के कारण और भी गम्भीर बन गये हैं। इस प्रदेश के दक्षिणी-पूर्वी भागों में कोटा अथवा हडौती उच्च भूमि की स्थलाकृतियां जो विन्ध्यन कागार भूमि व दक्कन लावा पठार से सम्बन्धित है, दृष्टिगोचर होती है। विन्ध्यन कागार भूमियों की ऊँचाई 350 मीटर से 550 मीटर के बीच है। यह कागार भूमि क्षेत्र बड़े-बड़े बलुआ-पत्थरों से निर्मित हैं जो स्लेटी पत्थरों के द्वारा पृथक दृष्टिगत होते है। उत्तर-पश्चिम में चम्बल के बांय किनारे पर तीव्र ढाल वाले कागार दिखलाई देते हैं तत्पश्चात् एक कागार खण्ड स्थित है जो धौलपुर और करौली के क्षेत्रों पर फैला है। कोटा व बूंदी के पठारी भाग विस्तृत और पथरीली उच्च भूमियाँ हैं जिनकी नदी घाटियों म कहीं-कहीं काली मिट्टी के जमाव दिखलाई देते हैं। चम्बल और इसकी सहायक नदियां जैसे काली सिन्ध और पार्वती ने कोटा में एक त्रिकोणमयी कांपीय बेसिन का निर्माण किया है। बून्दी व मुकन्दवाड़ा की पहाड़ियां इसी क्षेत्र में है जो चम्बल से कोटा के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में होती हुई झालरापाटन तक विस्तृत हैं। नदियों ने पठारीय भाग को काट-काट कर काफी विच्छेदित कर दिया है।

राजस्थान के इस प्रदेश में राज्य का सबसे महत्वपूर्ण नदी क्रम, चम्बल नदी क्रम हैं। चम्बल नदी सबसे बड़ी नदी है और केवल यही एक ऐसी नदी है जिसमे जल वर्ष भर प्रवाहित होता रहता है। इसकी सहायक नदियों में बनास, काली सिन्ध व पार्वती महत्वपूर्ण है।

जलवायु—इस प्रदेश में आर्द्र जलवायु की दशायें मिलती हैं। वर्षा की मात्रा 60 सेंटीमीटर से 100 सेंटीमीटर के बीच है। इस प्रदेश के उत्तरी-पूर्वी तथा मध्य के भाग वर्षा 60-80 सेन्टीमीटर प्राप्त करते हैं जबकि दक्षिणी भागों में वर्षा 80 सेन्टीमीटर से अधिक होती है। इस प्रकार की जलवायु में ग्रीष्म ऋतु के तापमान ऊँचे होते हैं। औसत तापमान ग्रीष्म ऋतु में 32° सेंटीग्रेड से 34° सेंटीग्रेड तथा शीत ऋतु में 14° सेंटीग्रेड से 17° सेंटीग्रेड तक रहते हैं। शीत ऋतु में कुछ वर्षा चक्रवातों के द्वारा हो जाती है।

वनस्पति—वर्षा की मात्रा पर्याप्त होने के कारण इस प्रदेश में मुख्यतः शुष्क सागवान तथा शुष्क पतझड़ के वन मिलते हैं। इस प्रदेश की वनस्पति में यथेष्ठ विविधताएँ पाई जाती हैं। सामान्य रूप से मिलने वाले वृक्ष धोकड़ा, आम गूलर, जामुन, बबूल, बरगद आदि हैं। कुछ उपयुक्त स्थानों में जहाँ वर्षा और मिट्टियां अच्छी हैं वहाँ सागवान के वृक्ष भी पाये जाते हैं।

मिट्टियां—इस प्रदेश में कछारी मिट्टी भरतपुर, धौलपुर, सवाई माधोपुर तथा टोंक जिलों के भागों में मिलती हैं। यह लाल रंग की होती है। इसमें चूना, फास्फोरिक अम्ल व ह्यूमस की कमी पाई जाती है। लाल-पीली मिट्टी सवाईमाधोपुर में, मध्यम काली मिट्टी झालावाड़, बूंदी, कोटा के क्षेत्रों में मिलती है। यह मिट्टी गहरे भूरे रंग की मटियार और दोमट के रूप में मिलती है तथा उपजाऊ होती है। सामान्यता ये सभी मिट्टियां कृषि कार्यों के लिये उपयुक्त होती हैं।

खनिज—इस प्रदेश में खनिज पदार्थों की संख्या तथा किस्में अधिक हैं परन्तु गुण एवं मात्रा की दृष्टि से कांचबालुका, चीनी मृतिका चूने का पत्थर ही अधिक महत्वपूर्ण है। कांचबालुका के जमाव जगजीवनपुरा, हथौडी (धौलपुर) में; ऐलानपुर, नारायणपुर, नरौली, टटवारा, सागोतरा (सवाईमाधोपुर) में; कुण्डी (कोटा) में तथा गारोदिया (बूंदी) में मिलते हैं। धौलपुर में कांच के कारखानें स्थापित है जबकि बूंदी और सवाईमाधोपुर में कांच उद्योग की स्थापना की सम्भावनाएं हैं। चीनी-मृत्तिका के महत्वपूर्ण क्षेत्र बसुव और रायसीना (सवाईमाधोपुर) में; चूने के पत्थर के क्षेत्र रामगज मण्डी, मोड़क, सुकेत (कोटा) में स्थित है। इनके अतिरिक्त अन्य खनिज जैसे लोहा पादरपाल, डाग (झालावाड़) में; सीसा-जस्ता चौथ के बरवाड़ा (सवाई माधोपुर) में बेरीलियम माधोराजपुरा, संकरवाड़ा, धोली (टोंक) में;

तांबा कोटा व झालावाड में; अभ्रक वरला, मानखण्ड, संकरवाड़ा, बारचोला, मिराऊ, धौली, बारोनी-आलरी (टोंक) में; तामड़ा राजमहल, गांवरी, कुशलपुरा, जनकपुरा (टोंक) में; बेराईट्स अमर के निकट बूंदी में तथा बेन्टोनाईट दरगांवन गांव सवाईमाधोपुर आदि में मिलते हैं। इस प्रकार इस प्रदेश के उत्तरी पूर्वी भागों की अपेक्षा खनिज मध्य व दक्षिणी भागों में अधिक उपलब्ध होते हैं।

चम्बल वेसिन प्रदेश का सांस्कृतिक भूदृश्य

जनसंख्या—चम्बल वेसिन की जनसंख्या 1981 जनगणना के अनुसार 71.35 लाख है और जनसंख्या का घनत्व 143 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या का सामान्य वितरण भरतपुर व धौलपुर जिलों में सर्वाधिक है फिर बूंदी तक यह वितरण कम होते-होते इस प्रदेश का न्यूनतम रह जाता है पुनः कोटा में अधिक, फिर झालावाड़ में कम दृष्टिगत होता हैं। इस प्रकार जनसंख्या का न्यूनतम घनत्व (107) बूंदी जिले में तथा अधिकतम (254) भरतपुर जिले में मिलता हैं गत 80 वर्षों की अवधि में सबसे अधिक वृद्धि दर 337·70 प्रतिशत कोटा जिले में तथा न्यूनतम 149.75 सवाईमाधोपुर जिले में आलेखित की है। गतदशाब्दी (197-81) में टोंक जिले में न्यूनतम वृद्धि दर (25 प्रतिशत) तथा भरतपुर व कोटा जिलों में अधिकतम वृद्धि दर (36 प्रतिशत) रिकार्ड की गई है। इस प्रदेश में स्त्री-पुरुष अनुपात न्यूनतम 831 भरतपुर जिले में तथा अधिकतम 928 टोंक में पाया गया है। इस प्रदेश में कार्य भागिता दर 27—36 के बीच विषमता दर्शाती हैं। प्रायः यह देखा जा रहा है कि जिन क्षेत्रों के आर्थिक विकास में अधिक तीव्रता है जनसंख्या में भी उतनी ही तीव्र गति से बढ़ोत्तरी हो रही है।

चम्बल वेसिन की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है लेकिन इस प्रदेश का ग्रामीण जनसंख्या प्रतिशत (84) राजस्थान के औसत ग्रामीण प्रतिशत (79) से अधिक है। गांव अधिकतर इस क्षेत्र में 500-2000 की जनसंख्या के आकार के मिलते हैं जो इस प्रदेश के कुल गांवों का 49 प्रतिशत परिलक्षित करते हैं। गांवों के वितरण पर जल की सुलभता, भूमि आकार तथा उपजाऊ मिट्टी की उपस्थिति का प्रभाव अत्यधिक परिलक्षित होता है। भरतपुर क्षेत्र में गांव अक्सर 400 आबादी वाले मिलते हैं जब कि करौली पठार में 500 जनसंख्या वाले गांव, मालपुरा उच्च भूमि प्रदेश में 700 जनसंख्या वाले गांव दृष्टिगत होते हैं। लगभग 42 प्रतिशत ऐसे गांव है जिनकी आबादी 500 से कम है तथा शेष गांव 2,000 से अधिक जनसंख्या वाले मिलते हैं।

चम्बल वेसिन प्रदेश में कुल 51 नगर व शहर हैं जिनमें से अधिकांश कोटा, सवाईमाधोपुर व भरतपुर जिलों में स्थित है। कोटा में 11. सवाईमाधोपुर में 10 तथा भरतपुर में 10 नगर पाये जाते हैं। प्रथम श्रेणी के नगरीय केन्द्र कोटा व भरतपुर एवं द्वितीय श्रेणी के टोंक व सवाईमाधोपुर तथा शेष अधिकांश तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के नगर है। छठी श्रेणी का नगर समग्र राज्य में केवल एक इन्द्रगढ़ है और वह इस प्रदेश के कोटा जिले में स्थित है। इस प्रदेश की जनसंख्या का नगरीय औसत (16 प्रतिशत) राज्य के नगरीय औसत (21 प्रतिशत) से कम है। इसलिये यह प्रदेश नगरीयकरण की सामान्य प्रवृत्ति को भी परिलक्षित नहीं कर पाता है। कोटा एक औद्योगिक केन्द्र के रूप मे विकसित हुआ है। लाखेरी उत्तर में स्थित होते हुए एक औद्योगिक नगर है जिसमें एक विशाल सीमेन्ट फैक्ट्री स्थित है। सवाईमाधापुर नगर भी अपनी सीमेंट फैक्ट्री के लिये विख्यात है। टोंक अपनी मध्ययुगीन संस्कृति के साथ एक महत्वपूर्ण नगर हैं। अन्य महत्वपूर्ण नगरों में भरतपुर, धौलपुर, बून्दी, झालावाड़ तथा करौली आदि है। इस प्रकार चम्बल में हर प्रकार के नगर प्राचीन, मध्यकालीन एवं वर्तमान युग के मिलते हैं।

चम्बल वेसिन प्रदेश का आर्थिक प्रतिरूप—

यह प्रदेश मुख्यतया कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाला प्रदेश है जहां कुल कार्यशील जनसंख्या का 83% कृषि कार्यों में संलग्न है। यहां खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत कुल फसली क्षेत्र का लगभग 86% हैं लेकिन प्रति हैक्टेयर उत्पादन राज्य के औसत प्रति हैक्टयर उत्पादन से लगभग 20% कम है। मिश्रित कृषि इस प्रदेश की विशेषता हैं।

भूमि उपयोग—इस प्रदेश की कुल भूमि का लगभग 46 प्रतिशत शुद्ध बोया गया क्षेत्र है लेकिन क्षेत्रीय विभिन्नताएं देखने को मिलती है। सर्वाधिक शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल टोंक (66.5 प्रतिशत) तथा भरतपुर (63.4 प्रतिशत) में मिलता है क्योंकि यहां सिंचाई की सुविधाएं अच्छी उपलब्ध हैं। इन दोनों जिलों में वर्ष में दो फसलों के अन्तर्गत भी अधिक क्षेत्र मिलता है। कोटा में शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल का औसत 59.3 प्रतिशत हैं लेकिन कोटा मैदान में सिंचाई की सुविधाओं व उपजाऊ मिट्टियों के फलस्वरूप सघन खेती की जाती है। बून्दी जिले में पहाड़ी धरातल, बंजर भूमियां तथा कृषि योग्य खाली भूमि के कारण न्यूनतम शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल लगभग 40 प्रतिशत ही मिलता है। झालावाड़ जिले में भी यह प्रतिशत कम है।

फसलें—इस प्रदेश में रबी की फसलें अधिक महत्वपूर्ण है। चना-ज्वार-बाजरा-गेहुं का क्रम काफी लोकप्रिय हैं। जौ, तूर और तिलहन की फसलें भी इनके बाद अपना महत्व रखती है। चावल, मक्का और गन्ना फसलों के उत्पादन पर इतना अधिक ध्यान नहीं दिया जाता हैं। उत्पादन तथा महत्व की दृष्टि से गेहुं सभी फसलों में प्रमुख हैं। इसके अन्तर्गत बोया जाने वाला क्षेत्रफल बूंदी में 30 प्रतिशत, सवाईमाधोपुर में 17 प्रतिशत, कोटा में 16 प्रतिशत, भरतपुर व धौलपुर में 13.5 प्रतिशत हैं। दालों में चना महत्वपूर्ण है जो कुल दालों के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र के लगभग 17 प्रतिशत पर बोया जाता हैं। इसका अत्यधिक उत्पादन सवाईमाधोपुर तथा भरतपुर जिलों से प्राप्त होता है। ज्वार, बाजरा कोटा (21%), बूंदी व टौंक (18.7) में, तिलहन फसलें भरतपुर, धौलपुर, कोटा व बूंदी में तथा जौ की फसल टौंक, सवाईमाधोपुर, बूंदी तथा भरतपुर मे महत्वपूर्ण हैं। गन्ना बूंदी (30% क्षेत्रफल) भरतपुर, झालावाड़, कोटा व सवाईमाधोपुर में, चावल बूंदी (10%), कोटा, भरतपुर, सवाईमाधोपुर व झालावाड़ में उत्पन्न किया जाता है। आर्द्र खेती झालावाड़ व कोटा में की जाती हैं। अन्य फसलों में मूंगफली अलसी, तिल, सरसों, तम्बाकू, कपास आदि भी उल्लेखनीय हैं।

सिंचाई—इस प्रदेश की अर्द्ध शुष्क दशाओं के कारण कृषि कार्यों के लिये सिंचाई की बड़ी आवश्यकता हैं। शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल का बड़ी मुश्किल से लगभग 14% क्षेत्र ही यह सुविधा प्राप्त कर पाता हैं। सबसे अधिक सिंचाई की सुविधाएं भरतपुर जिले में उपलब्ध है। सिंचाई के अन्तर्गत आने वाला क्षेत्रफल भरतपुर में 24.5%, टौंक में 15%, सवाईमाधोपुर में 13%, बूंदी में 12% और कोटा में 8% है। सिंचाई नहरों के द्वारा कोटा तथा बूंदी में, कुओं के द्वारा भरतपुर में तथा तालाबों के द्वारा भरतपुर, सवाईमाधोपुर, टौंक, बूंदी कोटा में की जाती हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिंचाई योजना चम्बल घाटी परियोजना है। भरतपुर में छोटी नहरों का जाल मिलता है जिनमें भरतपुर नहर, गुडगाँवा नहर मुख्य है। इसके अतिरिक्त पार्वती योजना (धौलपुर) व बीसलपुर योजना (टौंक, बूंदी, सवाईमाधोपुर) भी मुख्य हैं। बिलास योजना, इन्दिरा लिफ्ट सिंचाई योजना भी निर्माणाधीन है। भविष्य में इन सभी के पूर्ण हो जाने पर इस प्रदेश के सिंचित क्षेत्रफल में वृद्धि होगी।

पशु सम्पदा—चम्बल बेसिन प्रदेश में गौवंश की मेवात, रथ, हरियाणा व मालवी नस्लें प्रमुख रूप से मिलती हैं। इस प्रदेश के भरतपुर व धौलपुर में मेवात नस्ल मिलती है जो प्रजनकों द्वारा प्राकृतिक और मिट्टी की दशाओं के अनुकूल विकसित की गई है। भरतपुर व धौलपुर जिलों के पश्चिमी भागों में चौपायों की रथ नस्ल तथा सवाईमाधोपुर व टोंक जिलों में इनकी हरियाणा नस्ल पाली जाती हैं जबकि झालावाड़ व कोटा जिलों में मालवी नस्ल के चौपाये पाले जाते हैं। राजस्थान के कुल गौवंश का लगभग 22 प्रतिशत इस प्रदेश में मिलता है जिसमें से सबसे अधिक कोटा जिले में 5 प्रतिशत पाया जाता है। भैंसों की प्रसिद्ध नस्ल मुर्राह सवाईमाधोपुर, उदयपुर, भरतपुर, धौलपुर, कोटा व बून्दी जिलों में मिलती है। यह भैंसें मुख्यतया दूध के लिये पाली जाती हैं। राजस्थान की कुल भैंसों का लगभग 39% इस प्रदेश में मिलता है जिनमें अकेला उदयपुर जिला राज्य की कुल भैंसों का 10% रखकर

प्रथम स्थान पर है। भेड़ें इस प्रदेश में बहुत कम पाई जाती हैं। मालपुरी भेड़ें टोंक व सवाईमाधोपुर में मिलती हैं। बकरियों की संख्या सबसे अधिक इस प्रदेश में सवाई-माधोपुर जिले में मिलती है। यहाँ राज्य की कुल बकरियों का 3.72 प्रतिशत पाया जाता है। घोड़े झालावाड़ व कोटा जिलों में मिलते हैं। इस प्रकार यह प्रदेश गौवंश तथा भैंसों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है और यहाँ की अर्थ-व्यवस्था में अपना एक स्थान रखता है।

उद्योग धन्धे—चम्बल बेसिन औद्योगिक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। प्रदेश में कार्यशील जनसंख्या का केवल 5.2 प्रतिशत ही उद्योगों मे संलग्न है। कोटा इस प्रदेश में अकेला एक ऐसा नगरीय केन्द्र है जो चम्बल परि-योजना, थर्मल प्लांट तथा परमाणु विद्युत गृह आदि से विद्युत की सुविधा का लाभ प्राप्त कर रहा है तथा एक विकसित औद्योगिक शहर है। कोटा में मुख्य रूप से सूती वस्त्र उद्योग, रसायनिक उद्योग, इंजीनियरिंग उद्योग तथा कई अन्य कुटीर उद्योग पाये जाते हैं। चीनी उद्योग, केशोरायपाटन (बून्दी) में; सीमेन्ट उद्योग, लाखेरी (बून्दी), सवाईमाधोपुर में; कांच उद्योग धौलपुर में; खाद बनाने के कारखाने कोटा, घोसुन्डा, सवाईमाधोपुर आदि में केन्द्रित हैं। वर्तमान में कई लघु व मध्यम उद्योग विकसित हुए हैं और बड़ी तेजी के साथ नवीन लाइसेंस दिये जाकर उन्हें शीघ्र स्थापित करने के लिये प्रोत्साहन भी दिया जा रहा है। इस प्रदेश में सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण उद्योग जैसे इंस्ट्रूमेंटेशन लि. कोटा, रेल्वे वैगन फैक्ट्री, भरतपुर, चमड़ा बनाने का कारखाना, टोंक तथा दी हाई टेक प्रिसीजन ग्लास फैक्ट्री, धौलपुर आदि स्थापित किये गये हैं जिनके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में औद्योगिक विकास की गति तेज हुई है। इस प्रदेश में चीनी के कारखानें भरतपुर, कोटा व सवाईमाधोपुर में; कांच के कारखानें सवाई-माधोपुर व बून्दी में तथा वनस्पति उद्योग के कोटा में स्थापित किये जाने की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं। इस प्रदेश के कुटीर उद्योगों में तेल घाणी उद्योग भरतपुर, सवाई-माधोपुर, कोटा व बून्दी में; बन्धेज का कार्य कोटा में; छपाई का कार्य भरतपुर में; बर्तन उद्योग भरतपुर में, बीड़ी उद्योग कोटा में, लकड़ी का कार्य सवाईमाधोपुर में तथा कत्था उद्योग कोटा, बून्दी, झालावाड़, सवाई-माधोपुर तथा धौलपुर आदि में किये जाते हैं। झालावाड़ जिला औद्योगिक क्रियाओं में काफी पिछड़ा हुआ है।

परिवहन—चम्बल बेसिन में परिवहन की स्थिति बड़ी दयनीय है क्योंकि यहाँ की स्थलाकृति तथा जल व्यवस्था सम्बन्धी कठिनाइयाँ इसके विकास में अवरोधक रही हैं। साथ ही समग्र प्रदेश में यात्रियों की अपर्याप्त संख्या तथा माल ढुलाई की कमी ऐसे कारक रहे हैं जिनके परिणामस्वरूप भी इनके विस्तार को प्रोत्साहन नहीं मिल सका। कुछ ही नगरीय केन्द्रों में आर्थिक क्रियाओं के केन्द्रीयकरण के कारण परिवहन की सुविधाएं उन्हीं तक सीमित दृष्टिगोचर होती हैं। वर्तमान में उच्चावचन की कठिनाइयों के कारण सड़कों के जाल को नियोजित तरीके से विकसित कर परिवहन की सुविधाएं इस प्रदेश के अधिकांश भाग को उपलब्ध कराई गई हैं। एक प्रमुख राष्ट्रीय राजमार्ग नं. 11 भरतपुर से होता हुआ बीकानेर तक गया है। दूसरा राष्ट्रीय मार्ग नं. 3 धौलपुर से होता हुआ बम्बई तक जाता हैं। इनके अति-रिक्त प्रमुख राजमार्गों में एक राजमार्ग अजमेर-बूंदी-कोटा-झालावाड़ होता हुआ उज्जैन को चला गया है तथा दूसरा जयपुर-टोंक-देवली को जाता है। इस प्रदेश में रेलमार्ग की सुविधाएं अपर्याप्त हैं। दिल्ली-भरतपुर-कोटा-रतलाम-बम्बई ब्रॉड गेज रेलमार्ग सर्वाधिक महत्व-पूर्ण है। इस पर सबसे अधिक यात्री व माल ढोये जाते हैं। दूसरा ब्रॉडगेज रेलमार्ग ग्वालियर-आगरा प्रमुख है जो धौलपुर से होकर गुजरता है। इस प्रदेश में ब्रॉडगेज रेलमार्ग की कुल लम्बाई 272.5 किलोमीटर है। एक अन्य मीटर गेज रेलमार्ग सवाईमाधोपुर-जयपुर है जो अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। इस प्रदेश में रेलमार्ग विभिन्न प्रकार के होने के कारण माल ढुलाई तथा यात्रियों के लिये भरतपुर, धौलपुर और सवाईमाधोपुर स्टेशनों पर कई प्रकार की समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। इसलिये इन्हें यथासम्भव दूर करने के प्रयास किये जाने चाहियें। भविष्य में इस प्रदेश में बढ़ती औद्योगिक क्रियाओं के कारण परिवहन की सुविधाओं को और अधिक विकसित किया जाना जरूरी है।

चम्बल बेसिन प्रदेश को पुन: दो उपप्रदेशों में विभक्त किया जाता है—

अ. निम्न चम्बल बेसिन—यह बेसिन भरतपुर व सवाईमाधोपुर जिलों पर विस्तृत है। यह प्रधानतया एक निम्न भूमि है जो कांपीय स्थलाकृतियों से निर्मित है। इसके निर्माण में चम्बल व बाणगंगा तथा उनकी सहायक नदियां काफी सहायक सिद्ध हुई हैं। करौली का पठार इस प्रदेश में सुविधा के फलस्वरूप सम्मिलित कर लिया गया है, कटे-फटे विन्ध्यन कगारों से परिलक्षित होता है। इस क्षेत्र के उन भू-भागों में जिनमें चम्बल नदी अपनी घाटी बनाते हुए प्रवाहित है, गहरे खड्ड तथा बीहड़ों से भरा पड़ा है। मिट्टियां सामान्यत: उपजाऊ है। वनस्पति अत्यधिक विरल है। कृषि की दृष्टि से यह प्रदेश महत्वपूर्ण है क्योंकि कुल क्षेत्रफल का लगभग 72 प्रतिशत कृषि के अन्तर्गत है। औद्योगीकरण की दृष्टि से यह प्रदेश विकास के पथ पर अग्रसर है। इसे पुन: तीन लघु विभागों में बांटा जाता है।

(अ—1) भरतपुर मैदान—इस क्षेत्र के अन्तर्गत करौली पठार के उत्तर में स्थित सवाईमाधोपुर व भरतपुर के मैदानी क्षेत्र आते हैं। बाणगंगा और उसकी सहायक नदियों जैसे रुपारेल आदि के द्वारा उत्पन्न कांपीय बेसिन भ्रंश जैसी विशेषताएं इसमें मिलती है। इस क्षेत्र के उत्तरी और दक्षिणी भागों में अलग थलग पहाड़ियाँ और निम्न श्रेणियाँ दृष्टिगत होती है। उपजाऊ दोमट मिट्टी इसके अधिकांश भागों मे मिलती हैं। कुल भूमि के लगभग 70–75 प्रतिशत क्षेत्र पर कृषि की जाती है। अत: यह कृषि की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। वर्षा की सीमित मात्रा से प्राप्त जल को यह प्रदेश बन्ध व तालाबों के फलस्वरूप निरन्तर बनाये रखता हैं। वर्षा की सीमित मात्रा बन्ध सिंचाई तकनीक के फलस्वरूप वर्षा ऋतु में इस क्षेत्र के निम्न क्षेत्र में बाढ़ का सा दृश्य उत्पन्न कर देती है। औद्योगिक दृष्टि से यह क्षेत्र अधिक विकसित नहीं है। यह चम्बल बेसिन के सघन बसे क्षेत्रों में से एक है। भरतपुर (1,05.239) सबसे बड़ा नगरीय केन्द्र है। यह प्राचीन समय में अपने व्यापार तथा किले के कारण अधिक विख्यात था। इस समय यह सिमको (वैगन फैक्ट्री) तथा सघन घी के लिये प्रसिद्ध है। अन्य उल्लेखनीय नगरों में गंगापुर (46,025), डीग (28,085), बयाना (20,672) और कामां (19,451) आदि है।

(अ—2) करौली पठार—यह ऊपरी विंध्य बलुआ पत्थर से निर्मित है। अत: इसका धरातल असमतल तथा चट्टानी है जिस पर गोलाश्म, खण्ड और गर्त छितरे हुए दृष्टिगत होते है। वर्षा की मात्रा सीमित है लेकिन तालाब सिंचाई के द्वारा वर्ष भर जलआपूर्ति बनी रहती है यहां वनस्पति छितरी व झाड़ीनुमा मिलती है। कृषि की दृष्टि से यह प्रदेश पिछड़ा हुआ है क्योंकि आकृषित क्षेत्र का प्रतिशत 54 प्रतिशत से 78 प्रतिशत के बीच विभिन्न भागों में मिलता है। इस क्षेत्र में पशु पालन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जनसंख्या बहुत ही छितरी हुई है। करौली (37,908) प्रमुख नगर है जो कि पहले जाट रियासत की राजधानी रही है। हिन्डौन (42,706) अन्य मुख्य नगर हैं जो कि सवाईमाधोपुर जिले में स्थित है।

(3) धौलपुर मैदान—यह धौलपुर में स्थित निम्न चम्बल मैदान पर विस्तृत है। इस क्षेत्र में खराब स्थलाकृति जो चम्बल बीहड़ों से निर्मित है, परिलक्षित होता है। यहां काफी उपजाऊ मिट्टियां मिलती हैं लेकिन इस क्षेत्र को मिट्टी अपरदन की बड़ी विकट समस्या का सामना करना पड़ता है। अकाल, अभाव तथा डाकू इस क्षेत्र के संसाधनों को नष्ट कर चुके हैं और इसे उन्होंने एक समस्याजन्य क्षेत्र बना दिया है। इस क्षेत्र की मुख्य अर्थ-व्यवस्था कृषि हैं जो अत्यधिक पिछड़ी हुई हैं। धौलपुर में सिवाय कांच उद्योग के, औद्योगिक क्रियाएं इतनी अधिक विकसित नहीं है। चम्बल खड्ड और बीहड़ आदि इस प्रदेश की सुगम्यता में बाधक है। फलस्वरूप यहाँ की आर्थिक व सामाजिक प्रगति भी प्रभावित हुई है। यह भरतपुर मैदान की भांति सघन बसा हुआ नहीं है। धौलपुर (43,771), बाडी (27,398) इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण नगर हैं।

ब मध्य चम्बल बेसिन इस बेसिन का धरातल बड़ा ऊबड़ खाबड़ है परन्तु चम्बल घाटी परियोजना के

फलस्वरूप इसमें औद्योगिक विकास तथा सामाजिक परिवर्तन अधिक देखने को मिलता है। कोटा इस क्षेत्र की प्रादेशिक राजधानी है। इस प्रदेश को चार लघु विभागों में बांटा जा सकता है—

(ब—1) निम्न बनास बेसिन—निम्न बनास मैदान एक समप्रायः मैदान है जिस पर बनास और उसकी सहायक नदियां खारी, सोडरा, मोसी, मोरेल, बेड़च और गोलवा प्रवाहित होती हैं। कांपीय जमाव उत्तर और दक्षिण में पतली पर्तों वाले हैं जहां पहाड़ी श्रेणियाँ समरूपता को खण्डित करती है। बूंदी पहाड़ियां जो दक्षिण की ओर उन्मुख ढालों पर प्राय प्रपाती स्कन्ध बनाती हैं, कोटा मैदान और निम्न बनास मैदान के बीच पार न कर सकने योग्य अवरोध उत्पन्न करती हैं। बूंदी पहाड़ियों की सबसे ऊँची चोटी (581 मीटर, बूंदी नगर से लगभग 16 किलोमीटर पश्चिम में सातूर के निकट स्थित है। इस क्षेत्र का उत्तरी धरातल समुद्रतल से लगभग 300 मीटर ऊँचा है। यहां मुख्यतः झाड़ियों के जंगल पाये जाते हैं। यह एक महत्वपूर्ण कृषि प्रदेश है क्योंकि यहाँ उपजाऊ मिट्टियां और सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध हैं। जनसंख्या का वितरण सम है। टोंक तथा सवाईमाधोपुर इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण नगर हैं।

(ब—2) कोटा उच्च भूमि क्षेत्र—कोटा उच्च भूमि क्षेत्र कोटा के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में और बूंदी जिले तक ही सीमित है। इस उच्च भूमि भू-भाग की समुद्रतल से ऊँचाई लगभग 300 मीटर है। मुकन्दवाड़ा श्रेणी की चोटियों को 510 मीटर ऊँचाई की एक कटक रेखा मिलाती है। यह श्रेणी उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की दिशा में फैली है। यहाँ चम्बल नदी एक गहरे गर्त में से प्रवाहित होती है। यह क्षेत्र गोलाश्म अथवा शिला खण्डों से परिपूर्ण हैं। वनस्पति का आवरण काफी सघन है फलस्वरूप कृषि भूमि बहुत कम है। धरातलीय कठिनाइयों के फलस्वरूप यह प्रदेश बहुत ही कम सुगम्य है। इस प्रदेश में कोई भी महत्वपूर्ण नगरीय केन्द्र नहीं है तथा जनसंख्या बहुत ही छितरी हुई मिलती है।

(ब—3) कोटा मैदान—कोटा मैदान मध्य चम्बल बेसिन का मुख्य भाग है। यह उपजाऊ कांप मिट्टी का क्षेत्र है। चम्बल, पार्वती, कालीसिन्ध और कुरल नदियाँ इनमें प्रवाहित होती हैं। वर्षा की मात्रा लगभग 75 सेंटीमीटर है। इसकी ऊँचाई 215 से 275 मीटर के बीच है। यह गहन कृषि क्षेत्रों में से एक है। यहां लगभग 60-70 प्रतिशत क्षेत्र कृषि के अन्तर्गत है क्योंकि यह मैदान उपजाऊ होने के साथ-साथ पानी की सुविधाएं भी रखता है। चम्बल घाटी परियोजना की नहरों का जाल जो कोटा बैराज से निकलती है, मैदान पर फैला हुआ है। यह पर्याप्त रूप से रेल व सड़कों की सुविधाओं से युक्त है। प्रदेश में जनसंख्या सम वितरित तथा साधारण है। कोटा (3,46,928) एक औद्योगिक केन्द्र के रूप में उभर कर सामने आया है। बून्दी (48,052) कोटा से 39 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थिति है। लाखेरी (20,071) उत्तर में स्थित होते हुए एक औद्योगिक नगर है और एक विशाल सीमेन्ट फैक्ट्री रखता है। बारां (42,014) कोटा जिले में प्रदेश का तीसरा सबसे बड़ा नगर है।

(ब—4) ऊपरी माही बेसिन—यह काफी ऊबड़-खाबड़ तथा कटी-फटी स्थलाकृति का क्षेत्र है। नदियों के पार्श्व बड़े ऊँचे है तथा उनमें गोलाश्म मिलते है। पहाड़ी ढाल बांस के वृक्षों से ढके हैं तथा अन्य प्रकार के ऊँचे स्कन्धों के बीच जहाँ काली मिट्टी मिलती है, पाये जाते हैं। भील जाति के लोगों के अधिवास कृषि भूमियों के समीप मिलते है। वर्षा का औसत 75-85 सेंटीमीटर हैं। मक्का, चना, चावल और ज्वार मुख्य फसलें है। झालावाड़ इस क्षेत्र का मुख्य नगरीय केन्द्र हैं।

भाग II

सभ्यता एवं इतिहास

राजस्थान की प्राचीन सभ्यता एवं इतिहास

राजस्थान का नाम आते ही युद्ध स्थल में खड़कते खाड़े, सौभाग्यवती पद्मिनियों के जौहर, मातृभूमि की रक्षा में प्राणोत्सर्ग करते हुए साहसी व निडर वीर आदि के संस्मरण एवं दृश्य साक्षात प्रतीत हो उठते हैं, जिन्होंने राजस्थान की भूमि के सुनहरी बालू के कण-कण को ओज-ऊर्जा-श्रम और त्याग का प्रतीक बना दिया और इसके इतिहास को गरिमा प्रदान की। वहीं दूसरी ओर राजस्थान में प्राचीन सभ्यता के अनेक अवशेष मिले हैं, जिन्होंने राजस्थान की प्राचीन सभ्यता को सिन्धु-घाटी सभ्यता के समकक्ष ला खड़ा किया है।

राजस्थान की प्राचीन सभ्यता

कोई पाँच लाख वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई मानव सभ्यता की एक कड़ी राजस्थान के दक्षिण में पूर्वी तथा पूर्वी भू-भागों में बनास, गंभीरी, वेड़च आदि नदियों के क्षेत्रों में प्राय: एक लाख वर्ष पहले रहने वाले उन मानवों की है जो प्रस्तर युग के आयुधों द्वारा शिकार करते थे तथा जीवनोपयोगी कार्यों में उनका उपयोग करते थे। प्रस्तर सभ्यता के चिन्ह चम्बल तथा अन्य नदियों के आस-पास से भी प्राप्त हुये हैं।

विश्व विख्यात **सिन्धु घाटी सभ्यता** के क्षेत्र में राजस्थान का बहुत बड़ा भू-भाग था। पीली बंगा, काली बंगा, रंग महल आदि से मिले अवशेषों से पता चलता है कि इस सभ्यता का यहाँ विकास हुआ जो कालान्तर में विलुप्त हो गई।

काली बंगा सभ्यता के बारे में कहा जाता है कि यह सरस्वती नदी के आस-पास फैली थी। यह नदी गंगानगर जिले में बहती थी जो अब लुप्त हो गई है। पुरातत्ववेत्ता इस बात से पूर्ण सहमत हैं कि हड़प्पा व मोहनजोदड़ों के समय के प्रागैतिहासिक अवशेष जोधपुर, बीकानेर, जयपुर संभागों में बिखरे हैं।

आहड़ सभ्यता— उदयपुर जिले में आहड़ नदी के आस-पास फैली हुई थी। यह सभ्यता करीब 3500 वर्ष पुरानी है जबकि आर्य-सभ्यता के यहाँ होने के प्रमाण अनूपगढ़ और तरखानवाला डेरा की खुदाई में मिले मिट्टी के बर्तनों से मिलता है। तीर्थराज पुष्कर और अर्बुदाचल का महाभारत काल में भी उल्लेख मिलता है। आहड़ (उदयपुर), बागौर (भीलवाड़ा), रंगमहल (गंगानगर), बैराठ (जयपुर), रैंठ (जयपुर), सांभर (जयपुर) तथा नोह (भरतपुर) से भी ईसा पूर्व की अनेक शताब्दियों के अवशेष प्राप्त हुये है जिनसे इन क्षेत्रों की प्राचीनता सिद्ध होती है।

राजस्थान का इतिहास

पौराणिक काल— ईसा की छठीं शताब्दी पूर्व राजस्थान के भू-भागों का उल्लेख मिलता है। रामायण व महाभारत काल में मरू-जांगल, मत्स्य प्रदेश विद्यमान थे। वनवास के समय श्री रामचन्द्र वर्तमान जयपुर के दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित रामेश्वर तीर्थ पर यात्रा करते हुए एक रात का विश्राम किया। पाण्डवों ने वन-प्रवास का तेरहवां वर्ष राजा विराट के राज्य (वर्तमान बैराठ) में बिताया। ऐसी मान्यता है कि पांडव पुष्कर में भी रहे। उलूक प्रदेश (वर्तमान अलवर) के राजा ने महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से युद्ध किया।

मौर्य काल—बैराठ से मौर्यवंशी सम्राट अशोक के दो लेख 250 ई.पू. के मिले हैं। इनमें त्रिरत्न अभिलेख महत्वपूर्ण है। कणसवा गाँव (कोटा) से मिले शिलालेख से यह पता चलता है कि वहाँ किसी मौर्य वंशज धवल का राज्य था। कई इतिहासज्ञों की मान्यता है कि वर्तमान राजस्थान का सम्पूर्ण क्षेत्र मौर्य साम्राज्य में था। मेवाड़ राज्य संस्थापक बप्पा रावल ने 733-34 ई. में चित्तौड़ विजय किया, उस समय वहाँ मौर्य राजा 'मान' का राज्य था। मौर्यकाल में राजस्थान, सिन्ध, गुजरात मिलकर **अपर जनपद** कहलाता था।

यवन: मालवगण-शुंग-शक-कुषाण:— यूनानी इतिहास में उदयपुर की मध्यमिका (वर्तमान नगरी) का उल्लेख

190 ई. पू. मिलता है। यूनानी राजा मिनेंडर ने 150 ई. पू. के मध्यमिका नगरी को आधीन कर अपने राज्य की स्थापना की। यूनानी राजाओं के सिक्के राजस्थान के नलियासर, बैराठ तथा नगरी से प्राप्त हुये हैं।

यूनानियों के प्रभाव के विस्तार के कारण मालवगण पंजाब से चम्बल के पास आ बसे। इसी समय पुष्यमित्र ने पूर्वी मालवे में शुंग राज्य की स्थापना की। यूनानी राज्यों व शुंग साम्राज्य के बीच राजस्थान में संघ राज्य फिर उठ खड़े हुए जो बौद्ध संघ से मित्रता प्रकट करने हेतु गण शब्द का प्रयोग करने लगे।

साँभर के निकट नलियासर से मिले चांदी के सिक्कों से शकों के आगमन तथा लोप होने का पता चलता है। सौराष्ट्र से प्राप्त उपवदात के लेख के अनुसार शकों का राजा उज्जयनी पुष्कर (राजस्थान) होता हुआ मथुरा आया था तथा 57 ई. पू. तक वे राज्य करते रहे।

कनिष्क के शिलालेख (83 ई. से 119 ई. तक) से राजस्थान के पूर्वी भाग पर कुषाणों का प्रभुत्व रहा, इस की जानकारी मिलती है। सुदर्शन झील अभिलेख 150ई. से यह पता चलता है कि कुषाणों का राज्य मरु-प्रदेश से साबरमती के आसपास था। शकों के निर्बल होते ही अजमेर, टोंक, मेवाड़ के मालव गण पुनः स्वतन्त्र हो गये।

गुप्त काल—गुप्त वंश के उदय होने के समय (309 ई.) में दक्षिणी राजस्थान में क्षत्रप वंश का स्वामी रुद्रदामा द्वितीय महाक्षत्रप बना हुआ था। समुद्रगुप्त ने 351 ई. में दक्षिणी राजस्थान के जनपदों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। चन्द्रगुप्त ने राजस्थान के अधिकांश भाग को अपने आधीन कर लिया था। भरतपुर में गुप्त राजाओं के अनेकों सिक्के मिले हैं। अतः इतिहासज्ञों की मान्यता है कि राजस्थान के विभिन्न भागों पर गुप्त राजाओं का आधिपत्य 275 ई. से 533 ई. तक रहा।

हूणों का आक्रमण—हूणों को कुषाण वंशियों की ही शाखा माना जाता है। राजा तोरमाण हूण ने 503 ई. में गुप्त राजाओं से राजस्थान छीन कर अपना आधिपत्य जमाया, लेकिन इसके पुत्र मिहिरकुल हूण से लगभग 30 वर्ष बाद गुप्त सम्राट नरसिंह गुप्त बालादित्य ने यशोधर्मा की सहायता से राजस्थान पर पुनः अधिकार कर लिया।

गुर्जर–मैत्रक–मौखिर–बैस–चालुक्य वंश—यशोधर्मा (यशोवर्द्धन) के बाद उत्तर-पूर्व में थानेसर में बैस वंश तथा सौराष्ट्र में मैत्रक-वंश प्रभावशाली हुए, जिनके सिक्के राजस्थान में प्राप्त हुए हैं। राजस्थान के पूर्वी क्षेत्र पर मौखिर-वंश का अधिकार था। भारत के उत्तर-पश्चिम से गुर्जर लोगों ने आकर राजस्थान पर अधिकार जमा लिया। इनकी राजधानी जालौर जिले में स्थित भीनमाल थी। इनका राज्य कई वर्षों तक रहा।

पूर्वी राजस्थान के शासक महासेन गुप्त के भानजे प्रभाकरवर्द्धन ने थानेसर से राजस्थान के दक्षिणी तथा पश्चिमी क्षेत्र पर अधिकार जमा लिया। इसके पुत्र हर्ष-वर्द्धन ने गुर्जरों से भीनमाल छीन लिया और मालवे को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। इतिहासकारों की मान्यता है कि राजस्थान का अधिकांश भाग हर्ष के साम्राज्य में था। हर्ष ने लगभग 643 ई. तक राज्य किया।

राजपूतों का आगमन—64?-646 ई में अरबों ने भारत के उत्तरी-पश्चिमी भाग पर आक्रमण किये। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात राजस्थान में राजपूतों के कई वंश आये। यद्यपि राजपूतों का उद्गम अभी तक ऐतिहासिक शोध का विषय है लेकिन इतना निश्चित है कि ये राजस्थान के मूल निवासी नहीं थे। ये लोग छठी शताब्दी से 11वीं शताब्दी के बीच में यहाँ आये।

विदेशी आक्रान्ता—जिस समय राजपूत वंश राजस्थान के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपने राज्य स्थापित कर रहे थे। लगभग उसी समय विदेशी आक्रान्ता भी राजस्थान को अपने अधिकार में लेने की चेष्टा करने लगे। मुगल साम्राज्य के पतन तक राजस्थान के ऐतिहासिक रंगमंच पर इन्हीं राजपूत-वंशों के आपसी हमले तथा विदेशी आक्रान्ताओं से इनके युद्धों का ही दृश्य देखने को मिलता है।

राजस्थान में आने वाले राजपूत वंशों से चावड़ा, प्रतिहार (परिहार), चौहान, राठौड़, यादव, गहलोत, सोलंकी, कछवाहा आदि प्रमुख हैं। 739 ई. के लगभग जब अरबों ने दक्षिणी राजस्थान में भीनमाल तथा चित्तौड़ को लूटा, तो भीनमाल के **प्रतिहार राजा वाणभट्ट** ने उन्हें खदेड़ दिया। 1023ई. में महमूद गजनी ने सोमनाथ जाते हुये जालौर को लूटा, लेकिन **परमार राजा भोज** के डर से गजनी पुनः राजस्थान के रास्ते से नहीं आया। 1030-40 ई. के बीच तुर्कों के कई आक्रमण राजस्थान पर किये गये लेकिन तत्कालीन राजा भोज से बराबर वे हारते गये। 1178 में शाहबुद्दीन गौरी ने जब आक्रमण किया तो उसे आबू के पास कायन्द्रा गाँव से भागना पड़ा। वस्तुतः विदेशी आक्रान्ताओं ने राजस्थान पर आक्रमण करने का साहस राजा पृथ्वीराज के गौरी से 1192 ई. में हार जाने के बाद ही किया।

पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु के पश्चात दिल्ली सल्तनत के प्रत्येक राजा ने अपना प्रभुत्व राजस्थान पर कायम करने की कोशिश की। इस प्रयास में राजस्थान का कोई भाग कुछ समय के लिये उनके अधिकार में आ गया, लेकिन कोई भी आक्रान्ता अपना प्रभुत्व लम्बे समय तक नहीं रख पाया। **अल्तमश** ने 1230-34 ई. में रणथम्भौर तथा मालवा पर आक्रमण किया तो मेवाड़ के राजा जैतसिंह से हारकर उसे भागना पड़ा। **चौहान राजा वाग्भट** ने रणथम्भौर भी गुलाम वंशियों से पुनः ले लिया। **बलबन** ने 1245-47 तथा 1259-60 में मेवाड़ पर हमला किया, लेकिन असफल रहा। 1266 ई. में बलबन के स्वयं सुलतान बनने पर पुनः आक्रमण किया तो 1273-1302 में चित्तौड़ के राजा समरसिंह से हार कर लौट गया। 1291 में जलालुद्दीन खिलजी का रणथम्भौर पर आक्रमण विफल रहा। 1293-94ई. में अल्लाउद्दीन ने पूर्वी मालवे को जीत लिया। 1297 में अल्लाउद्दीन खिलजी के भाई उलूगखां तथा उसके सेनापति नसरत खां को मेवाड़ के रास्ते से जाते हुए राजा समरसिंह ने मार भगाया। 1301 ई. में अल्लाउद्दीन ने चौहान राजा हमीर को हरा कर रणथम्भौर ले लिया। 1302 ई. में उसने समरसिंह के पुत्र रत्नसिंह को हरा कर चित्तौड़ ले लिया। राजा रत्नसिंह की रानी पद्मिनी के जौहर की गाथा विश्व प्रसिद्ध है। अल्लाउद्दीन ने चित्तौड़ का राज्य अपने बेटे खिजर खां को देकर उसका नाम खिजराबाद रखा। 1305-11 तक अल्लाउद्दीन की सेनाओं से सिवाना, जालौर, भीनमाल, सांचोर आदि के गढ़ जीत लिये तथा जैसलमेर में भी लूट की।

खिलजी के बाद गयासुद्दीन तुगलक के आधीन राजस्थान का अधिकांश भाग रहा। किन्तु मुहम्मद तुगलक के समय 1326 में मेवाड़ स्वतन्त्र हो गया। वहाँ का राजा हमीर तब केवल सिसोदा गांव का जागीरदार मात्र रह गया था। उसने पुनः मेवाड़ पर आधिपत्य जमा लिया तब से उसके वशंज सिसोदिया कहलाने लगे। 1382-1433 ई. के बीच मेवाड़ के राजा लाखा या लक्षसिंह, राणा मोकल तथा मण्डोर के राठौड़ रावचूंडा तथा राव रिड़मल ने जालौर, अजमेर, नागौर तथा सांभर तुर्कों से छीन लिये। राठौड़ राव चूंडा ने अपनी बेटी हंसा का विवाह मेवाड़ के राणा लाखा से कर दिया। लाखा के बेटे मोकल ने अपने मामा राठौड़ राव चूड़ा के पुत्र रिड़मल को मण्डोर का सामान्त नियुक्त किया। महमूद खिलजी ने मोकल का बेटा राणा कुम्भा (1433-68) से तीन बार युद्ध किया। तीसरे आक्रमण में महमूद खिलजी ने बयाना गढ़ को जीत लिया। इसके अतिरिक्त लगभग समस्त राजस्थान पर कुम्भा ने अधिकार जमा लिया। 1451-59 में गुजरात के सुलतान कुतुबशाह तथा महमूद खिलजी दोनों ने संयुक्त आक्रमण मेवाड़ पर किया लेकिन हार गये। कुम्भा के समय ही राव जोधा ने जोधपुर की स्थापना की। जोधा के बेटे बीका ने बीकानेर स्थापित किया जहाँ तब तक जैसलमेर तथा पूगल के भाटियों तथा योद्धेय सरदारों का आधिपत्य था।

सन् 1509 में मेवाड़ की गद्दी पर संग्रामसिंह बैठा जो राणा सांगा के नाम से विख्यात हुआ। दिल्ली में लोदियों का प्रभुत्व था। सांगा बड़ा महत्वकांक्षी था। वह दिल्ली में अपनी पताका फ़हराना चाहता था। सिकन्दर लोदी के बेटे इब्राहिम लोदी ने राजस्थान पर दो बार (1517-18) आक्रमण किये किन्तु हार गया। सन् 1526 में बाबर ने पानीपत के मैदान में सुल्तान

इब्राहिम लोदी को हराकर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। 1527 में सांगा ने वावर के सेनापति को खानवे में हराया लेकिन 17 मार्च, 1527 के खानवा के युद्ध में बावर विजयी हुआ।

खानवा के युद्ध ने मेवाड़ की कमर तोड़ दी। अब राजस्थान का नेतृत्व मेवाड़ के सिसोदियों के हाथ से निकल कर मारवाड़ के राठौड़ मालदेव के हाथ में चला गया और सन् 1553 में मारवाड़ की गद्दी पर बैठा। उसने मारवाड़ राज्य का भारी विस्तार किया इस समय शेरशाह सूरी ने हुमायूं को हराकर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। शेरशाह ने 1544 के लगभग मालवा को जीतकर मालदेव पर आक्रमण किया और अजमेर, आबू व जोधपुर जीत लिये। जब 1545 ई. में शेरशाह मर गया तो हुमायू ने दिल्ली पर पुनः अधिकार सन् 1555 में कर लिया, पर वह अगले वर्ष ही मर गया। अतः अकबर बादशाह बना।

इस बीच में उदयसिंह ने रणथम्भौर और अजमेर जीतकर आमेर और आबू से अपना आधिपत्य मनवा कर उदयपुर रियासत की स्थापना करली। मालदेव स्वयं 1562 में मर गया। 1562 में अकबर ने आमेर के राजा भारमल की बेटी से विवाह किया और उसके पोते मानसिंह को अपने दरबार में रखा। अकबर ने मारवाड़ पर आक्रमण कर अजमेर, जैतारण, मेड़ता आदि भू-भाग छीन लिये। सन् 1567 में अकबर ने मेवाड़ पर चढ़ाई की और चित्तौड़ जीत लिया। अकबर के लौटते ही उदयसिंह ने कुम्भलगढ़ को राजधानी बना, पुनः मुगलों से लड़ाई प्रारम्भ कर दी।

1573 में उदयसिंह के निधन के बाद राणा प्रताप मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। प्रताप ने मुगल सेनाओं को लूटना जारी रखा। अकबर ने सन् 1576 से 1586 तक पूरी शक्ति के साथ मेवाड़ पर कई आक्रमण किये पर वह प्रताप को अपने आधीन नहीं कर पाया।

राणा के बेटे अमरसिंह ने जहांगीर के बेटे परवेज से, फिर महावतखां से और फिर शहजादा खुर्रम से निरन्तर 17 वर्ष तक लड़ने के बाद 1614 ई. में हार मान कर मुगल सम्राट जहांगीर से सन्धि कर ली।

जहाँगीर के बाद औरंगजेब के समय फिर राजपूत वंश ने मुगलों से स्वतन्त्र होने का प्रयास किया। 1681-87 तक मारवाड़ औरंगजेब के कब्जे में रहा। 1687 में दुर्गादास ने मारवाड़ से मुगलों को निकाल बाहर किया। 1690 में दुर्गादास ने अजमेर पर आक्रमण किया परन्तु राजपूतों का भारी संहार हुआ। ब्रह्मपुरी पहुँचकर 1698 में दुर्गादास ने सन्धि करली। 1701 ई. में औरंगजेब का बेटा आजम जब सूबेदार बना तो दुर्गादास को मारने का असफल प्रयास किया। औरंगजेब के मरते ही अजीतसिंह ने जोधपुर ले लिया। आजम के मारे जाने के बाद औरंगजेब का दूसरा बेटा शाह आलम बहादुरशाह सम्राट बना तो उसने सवाई जयसिंह से आमेर रियासत को ले लिया क्योंकि जयसिंह ने आजम की सहायता की थी और अजीतसिंह को आमेर की सूबेदारी दे दी।

सन् 1710 ई. में मेवाड़, मारवाड़ तथा आमेर के राजा पहली बार उदयसागर (उदयपुर) पर मिले और मुगलों को राजस्थान से खदेड़ने का निश्चय किया। आमेर और जोधपुर से मुगल अधिकारियों को निकाल दिया गया किन्तु बहादुरशाह के दक्षिण से वापिस आने पर उससे समझौता कर लिया।

सन् 1712 में बहादुर शाह के मरते ही अजीतसिंह ने शाही हाकिमों को निकाल कर अजमेर ले लिया था लेकिन हुसैन अली के अजमेर पर आक्रमण करते ही अजीत ने सन्धि कर ली। बेटी का फर्रुखसियर से ब्याह कर सम्बन्ध स्थापित कर लिये।

मराठा-पिंडारी-अंग्रेज—औरंगजेब के समय से ही दक्षिण भारत में मराठा प्रभावशाली हो गये थे। उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार करना शुरू किया और 1732ई. में सवाई जयसिंह को, जो मालवे का सूबेदार था; घेर लिया। जयसिंह के पराजय स्वीकार करते ही उसे 28 परगने मराठों को देने पड़े। तबसे ही मराठे राजस्थान में स्थापित हो गये। उन्होंने राजाओं की आपसी कलह का लाभ उठा कर राजस्थान के कई राज्यों पर अधिकार जमा लिया। सन् 1787 में राजाओं ने संगठित होकर तुंगा (जयपुर) नामक स्थान पर मराठों को पराजित किया। लेकिन इस समय तक अंग्रेजों ने दक्षिण

भारत में अपने पांव जमा लिये थे और राजस्थान में घुसने का अवसर ताक रहे थे।

सन् 1804 में जब होल्कर ने जयपुर पर आक्रमण किया तो अंग्रेज उसे बचाने आये। उन्होंने होल्कर को कोटा से भी आगे खदेड़ दिया और भरतपुर हथिया लिया। सन् 1899 तक राजस्थान के लगभग सभी राजाओं को सन्धियों द्वारा अपने आधीन कर लिया। अंग्रेजों ने 'विभाजित करो व शासन करो' की कूटनीति को अपनाते हूए राजस्थान के जितने भी छोटे-बड़े टुकड़े किये जा सकते थे, कर राजाओं को अलग-अलग रियासतों का राजा बना दिया। इस प्रकार 23 रियासतें तथा कुशलगढ़ एवं लावा के दो मुख्तियार ठिकाने बनाकर राजस्थान को टुकड़ों में बांट दिया। अजमेर में अपना 'पोलिटिकल एजेन्ट' नियुक्त कर दिया।

भारत में 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों का वर्चस्व सम्पूर्ण भारत पर हो गया तथा देशी रियासतें अंग्रेजों के संरक्षण में पूर्णरूपेण से आ गई यद्यपि कहने को इकाईयाँ स्वतन्त्र थीं। इन परिस्थितियों में राजस्थान की रियासतों में तिहरी गुलामी स्थापित थी। आर्थिक, पिछड़ेपन व शिक्षा के अभाव में राजनीतिक चेतना जागृत नहीं थी। राज्य में राजनीतिक चेतना जागृत करने में स्वामी दयानन्द सरस्वती का बहुत बड़ा योगदान है। 1903 में शाहपुरा में बारहट केशरीसिंह ने एडवर्ड सप्तम के राज्यारोहण समारोह का विरोध किया। 1905 में स्वामी गोविन्ददास ने पंचायतों को पुनर्जीवित कर जिम्मेदारी हुकूमत का आन्दोलन चलाया। राजस्थान में प्रथम सत्याग्रह विजयसिंह पथिक के नेतृत्व में उदयपुर के बिजोलिया में हुआ जिसे बेरहमी से दबाया गया। 1930 के पश्चात् लगभग सभी रियासतों में जागीरी, जुल्म के विरुद्ध प्रजा परिषदें व अन्य नामों से संगठन बनने आरम्भ हो गये तथा आन्दोलन चले। 1942 में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन से इन क्षेत्रों में तेजी आई और नेताओं की बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां हुई। राजस्थान में देशी राज्य लोक परिषद के नेता जयनारायण व्यास रहे।

1947 में भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर रियासती सरकारों का केन्द्र में अपना संरक्षण हट गया और उन्होंने सत्ता का हस्तान्तरण जनता को कर दिया। इस प्रकार देशी रियासतों के एकीकरण के बाद राजस्थान वर्तमान के रूप में आया।

राजस्थान के इतिहास में राजपूतों का उदय

स्वतन्त्रता से पूर्व राजस्थान में 20 रियासतें 2 ठिकानें व अजमेर-मेरवाड़ा के अंग्रेज शासित प्रदेश थे। रियासतों व ठिकानों के नाम इस प्रकार है :—

रियासतें :

1. जयपुर, 2. जोधपुर, 3. जैसलमेर, 4. बीकानेर, 5 उदयपुर, 6. अलवर, 7. भरतपुर, 8. करौली, 9. धौलपुर, 10. किशनगढ़, 11. कोटा, 12 झालावाड़, 13. टोंक, 14. डूंगरपुर, 15. प्रतापगढ़, 16. बांसवाड़ा, 17. बून्दी, 18 शाहपुर, 19. सिरोही, 20. दांता।

ठिकाने —

1. कुशलगढ़ 2. लावा

अंग्रेज शासित प्रदेश—

1. अजमेर-मेरवाड़ा—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद, भारत सरकार ने सरदार पटेल के प्रयासों द्वारा इन सब राजपूत रियासतों को मिला कर इसे राजस्थान का नाम दिया। इसलिये राजपूतों का राजस्थान के इतिहास में उदय किस प्रकार हुआ, कितने वंश यहाँ राज्य करते थे, आदि का अध्ययन करना श्रेयस्कर होगा।

सातवीं सदी में **राजपूतों के उदय** से पूर्व राजस्थान में जातियों की संकरता के कारण वर्ण-व्यवस्था का परम्परागत ढांचा बिगड़ रहा था। अरब आक्रमणों ने भी सम्भवतः इस अव्यवस्था को बढ़ाया। ऐसे समय में विभिन्न राजपूत कुलों का उद्भव आलोच्य विषय रहा है।

टॉड तथा क्रुक जैसे विद्वानों ने राजपूतों को सीथियन मानकर उन्हें मध्य एशिया से आए हुये बताया है। अन्य अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान भी इसी धारणा के अनुरूप विचार रखते है। परन्तु डा. दशरथ शर्मा राजपूतों को विशुद्ध भारतीय माना है। श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इन्हें क्षत्रिय तो माना है, परन्तु कुषाणों, पह्लवों, शकों आदि को भी क्षत्रियों में सम्मिलित कर लिया है। उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार

पर अब यह प्रमाणित किया गया है कि प्रतिहार, गुहिल तथा चौहान कुलों का उद्गम ब्राह्मणों से हुआ है। ब्राह्मण राजा दाहिर (मेवाड़), सिकन्दर कालीन ब्राह्मणवाद के ब्राह्मणजन वघारावल आदि मूल में ब्राह्मण थे तथा क्षत्रिय का दायित्व ग्रहण करने से क्षत्रिय कहलाये। ब्राह्मण वंशों द्वारा शास्त्र-ग्रहण का यह समय अरब आक्रमणकारी जुनैद के हमलों का था। ऐसे समय में ही चालुक्यों, गुर्जरों तथा प्रतिहारों ने न केवल उसका प्रतिरोध किया बल्कि उसके पुनराक्रमण की सम्भावना ही मिटा दी। सिन्ध से भागे हुए राजकुलों तथा अन्य अनेक जातियों को मरू प्रदेश तथा अन्य क्षेत्रों में शरण भी दी गई। एसे समय में गुहिलों, चौहानों, प्रतिहारों आदि का उदय हुआ।

मुख्य-मुख्य राजपूत समूह जिन्होंने सातवीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक अपने राज्य स्थापित कर लिये, थे, वे इस प्रकार है :—(i) मारवाड़ के प्रतिहार और राठौड़ (ii) मेवाड़ के गुहिल (iii) सांभर के चौहान (iv) चित्तौड़ के मौर्य, (v) भीनमाल तथा आबू के चावड़ा, (vi) अम्बेर के कछवाहा (vii) जैसलमेर के भाटी।

चौहान वंश—इन्होंने सांभर, अजमेर, जालौर, बूंदी तथा सिरोही में अपना राज्य स्थापित किया। इनमें प्रमुख शासक वासुदेव था। पृथ्वीराज के प्रथम पुत्र अजयराज ने 1113 ई. मे अजमेर को बसाया। चौहान वंश में सबसे शक्तिशाली राजा पृथ्वीराज चौहान तृतीय हुआ। इसने कन्नौज के राजा जयचन्द को पराजित किया तथा उसकी पुत्री संयोगिता से विवाह किया। 1191 ई. में तराइन के प्रथम युद्ध में मोहम्मद गोरी को भी हराया परन्तु 1192 ई. में तराइन के द्वितीय युद्ध में पराजित होना पड़ा। पृथ्वीराज चौहान की इस हार से राजपूतों का प्रभुत्व एवं वर्चस्व राजस्थान से समाप्त हो गया।

गहलोत वंश—हूण राजा मिहिरकुल के पश्चात 7वीं शताब्दी में राजपूतों का जो वंश सबसे प्रमुख और प्रबल हुआ है, वह गहलोत वंश था। इस राजपूत वंश को सिसोदिया वंश के नाम से भी जाना जाता है। इस वंश का संस्थापक गुहिल नामक ग्वाला माना जाता है। गुहिल के उत्तराधिकारियों में बप्पा का नाम उल्लेखनीय है। बप्पा को रावल की उपाधि दी गई थी। इसी के द्वारा 8वीं सदी में मेवाड़ राज्य की नींव डाली गई थी। बप्पा के उत्तराधिकारियों में भोज, सिलादित्य, अपराजित, कालभोज, खम्माण प्रथम, मत्तर, भर्तृभट्ट, खम्माण द्वितीय, सहत्यक, अल्लट, नरवाहन, शालिवाहन, शक्तिकुमार, अम्बाप्रसाद, विजयसिंह, विक्रमसिंह, रणसिंह आदि हुये हैं।

13वीं सदी में जैत्रसिंह ने नाडौल के चौहन वंशीय उदयसिंह को पराजित किया, फिर मालवा के परमारों को हराया। इल्तुतमिश व नसीरूद्दीन की सेनाओं का सामना कर उन्हें वापिस लौटने के लिए विवश कर दिया। इसके उत्तराधिकारियों में तेजसिंह, समरसिंह और रत्नसिंह के नाम प्रमुख है। राणा रत्नसिंह बड़े वीर थे, उनकी रानी पद्मिनी अति सुन्दर थी जिसे अलाउद्दीन खिलजी प्राप्त करना चाहता था और उसने 1303 में चित्तौड़ पर आक्रमण किया परन्तु पद्मिनी ने जौहर कर अपने सतीत्व की रक्षा की। चित्तौड़ पर खिलजी का शासन हो गया और उसने अपने बेटे के नाम पर चित्तौड़ का नाम खिज्राबाद रखा। अल्लाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात सिसोदिया सरदार हमीर ने पुनः चित्तौड़ को जीतकर सिसोदिया वंश की पुनः स्थापना की।

सन् 1443 ई में मेवाड़ का शासक राजा कुम्भा बना। कुम्भा इस वंश का सर्वाधिक प्रतापी राजा था। सन् 1457 ई में उसने गुजरात व मालवे की संयुक्त सेनाओं को परास्त किया। राणा कुम्भा की हत्या उसके पुत्र ऊदा ने कर दी। इसके बाद मेवाड़ में काफी आपसी फूट रही और इसका लाभ 1527 ई. में बाबर ने महाराणा सांगा को खानवा के युद्ध में पराजित कर उठाया।

राणा सांगा के बाद उदयसिंह पन्नाधाय के बलिदान स्वरूप मेवाड़ का शासक बना जिसने उदयपुर नगर की स्थापना की। फिर महाराणा प्रतापसिंह मेवाड़ के शासक बने। उन्होंने अनेक संकट झेले, लेकिन अकबर से सन्धि नहीं की। परिणामस्वरूप हल्दी घाटी का युद्ध 1576 ई. में हुआ। यद्यपि मुगल सेना विजयी हुई लेकिन महाराणा

प्रताप भाग निकले और अपने मन्त्री भामाशाह से धन की सहायता मिलने पर मेवाड़ की कुछ खोई हुई भूमि प्राप्त की। चांवड नामक अपनी राजधानी बनाई। सन् 1597 ई. में राणा प्रताप की मृत्यु हो गई।

राणा प्रताप के बाद अमरसिंह मेवाड़ का शासक बना। कुछ समय तक मुगल शासकों का सामना करने के बाद उसने सन्धि कर ली। इसके बाद मेवाड़ के शासकों जैसे कर्णसिंह, जगतसिंह व राजसिंह आदि ने भी संधियां कर लीं। 1818 ई. में मेवाड़ के राजपूतों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सन्धि हो गई जिससे वहां शान्ति स्थापित हो गई।

राठौड़ वंश राजस्थान के उत्तरी और पश्चिमी भागों में राठौड़ वंशीय राजपूतों का शासन स्थापित हुआ जिसे मारवाड़ के नाम से पुकारते हैं। इसमें बीकानेर व जोधपुर के राज्य सम्मिलित हैं। राठौड़ शब्द राष्ट्रकूट से बना है जो दक्षिण की एक जाति है। कुछ लोग इनको हिरण्य-कश्यप की सन्तान मानते है, परन्तु जोधपुर का राठौड़ वंश बदायूं के वंश से उत्पन्न हुआ माना जाता है। यहां के एक राव सीहा जो बदायूं छोड़कर आये थे, ने सोलंकियों की प्रार्थना पर सिन्धु के मारुलाखा को तथा भीनमाल के ब्राह्मणों के निवेदन पर मुसलमानों को परास्त किया। इसके बाद इन्होंने भात्रियों, भाटियों वालेचा, चौहानों, लाखा फुलांड़ी आदि परास्त कर क्षेत्र में अपनी धाक जमा ली। राव सीहा के बाद उसके पुत्र आसथान ने राठौड़ों की शक्ति को मजबूत किया परन्तु जलालुद्दीन की सेनाओं से लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुआ।

राठौड़ वंश का प्रथम बड़ा शासक राव चूड़ा था, जिसने अपने राज्य का काफी विस्तार किया। मण्डोर तथा नागौर पर अपना आधिपत्य किया लेकिन वह भाटियों के विरुद्ध युद्ध में मारा गया। राव चूड़ा के बाद राव रणमल शासक बना। उसने राणा लाखा से मिलकर अजमेर तथा माण्डू पर अपना अधिकार कर लिया। राणा लाखा की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र मोकल का शासन भी वह देखने लगा। इस प्रकार वह मेवाड़ व मारवाड़ दोनों का शासक हो गया। उसी के सरदारों के द्वारा किले में ही सन् 1438 ई. में उसकी हत्या कर दी गई।

रणमल के बाद उसका पुत्र राव जोधा मारवाड़ का शासक बना। 1459 ई. उसने जोधपुर नगर बसाया। राव जोधा के पुत्र राव बीका ने बीकानेर नगर बसाया। मारवाड़ में गंगा का पुत्र मालदेव भी एक महत्वपूर्ण शासक हुआ। उसने गुजरात के शासक बहादुरशाह से मारवाड़ की रक्षा की तथा नागौर, मेड़ता, अजमेर तथा जालौर पर भी अपना अधिकार स्थापित किया। मालदेव ने हुमायूं को सहायता नहीं दी। बाद में शेरशाह से मालदेव पराजित हो गया। अन्त में राठौड़ वंश को आपसी फूट के कारण जोधपुर अकबर के हाथों चला गया। मारवाड़ के इतिहास में वीर दुर्गादास का नाम भी उल्लेखनीय है। उसने जसवन्तसिंह के पुत्र अजीतसिंह को औरंगजेब से बचाकर मारवाड़ की गद्दी पर बिठाया। सन् 1818 ई. में मानसिंह ने अंग्रेजों से सन्धि करली।

कछवाहा वंश—सिकन्दर के आक्रमण के समय कछवाहा जयपुर के आसपास बस गये। इनके वंशज **दूलाहराव** ने 1137 ई. में बड़गुजरों को हरा करके ढूंढार राज्य की स्थापना की थी। फिर इसी वंश के **कोकिलदेव** ने 1207 में मीणों को परास्त कर आमेर पर अपना आधिपत्य कर लिया। इसी वंश के शेखा ने अपना अलग राज्य शेखावाटी के नाम से स्थापित किया। बाद में इन्होंने अपने सम्बन्ध मुगलों से स्थापित कर लिये। कछवाहा वंश में भारमल एक प्रसिद्ध कुशल शासक व कूटनीतिज्ञ था जो 1547 ई में आमेर का शासक बना। उसने अपनी पुत्री का विवाह अकबर से कर उसके प्रभाव का काफी लाभ उठाया। फिर मानसिंह आमेर का शासक बना जिसे राणा प्रताप के विरुद्ध मुगलों का नेतृत्व प्रदान करते हुए हल्दी घाटी के युद्ध में भेजा गया। अकबर ने मानसिंह को बंगाल तथा बिहार का सूबेदार भी नियुक्त किया।

सवाई जयसिंह इस वंश का महत्वपूर्ण शासक हुआ। जिसने जयपुर नगर को बसाया। जयसिंह के बाद आमेर की गद्दी पर प्रतापसिंह बैठा। परन्तु इस समय मराठों के आक्रमण और आन्तरिक फूट के कारण राज्य की शक्ति

क्षीण हो गई थी, इसलिये जगतसिंह ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि करली।

उपर्युक्त वर्णित राजपूतों के अतिरिक्त राजस्थान में अन्य राजपूत वंश भी उत्पन्न हुये।

प्रतिहार वंश—आठवीं से दसवीं सदी तक राजस्थान के प्रतिहारों की तुलना में दूसरा कोई राजपूत वंश नहीं रहा। प्रतिहारों को कई समकालीन शिलालेखों में 'गुर्जर' कहा गया है। प्रतिहार गुर्जर प्रदेश के स्वामी होने के कारण ये गुर्जर कहलाये। इनका आधिपत्य न केवल राजस्थान के पर्याप्त बड़े भू-भाग पर था बल्कि सुदूर कन्नोज और बनारस पर भी था। उन की राजधानी भीनमाल (जालौर) थी। इतिहासज्ञों के अनुसार प्रतिहारों की दो शाखाएं—भीनमाल (जालौर) शाखा तथा मण्डोर शाखा राजस्थान में पाई जाती है।

परिमार वंश—राजपूतों के परिमार वंश के राज्य भी आठवीं से तेरहवीं सदी तक आबू, जालौर, बागड़ आदि में स्थापित हुए थे।

चावड़ वंश—इस वंश के राजपूत अपना राज्य भीनमाल में स्थापित कर सके थे।

भाटी वंश—जैसलमेर में भाटी राजपूतों का राज्य भी बारहवीं शताब्दी तक कायम रहा था।

यादव वंश—भरतपुर, करौली, धौलपुर आदि में यादव वंश के राजपूत फैल गये थे जो बाद में अलवर के पास जाकर बस गये।

हाड़ा वंश—हाड़ौती अथवा कोटा-बूंदी क्षेत्र में भी हाड़ा राजपूतों ने अपने राज्य स्थापित किये और 16वीं सदी से 18वीं सदी तक मुगलों के सामन्त बने रहे।

राजस्थान के इतिहास की विशेषताऐं

राजस्थान का इतिहास भारत के अन्य राज्यों के इतिहासों से भिन्नता लिये हुये है और इसीलिये भारत में अपना एक विशिष्ट स्थान निम्न विशेषताओं के कारण रखता है—

1. संस्कृति की प्राचीनता—गंगनगर जिले के कालीबंगा में सिन्धु घाटी सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए है। आहड़ में फैली सभ्यता भी इसी के समकालीन है। जयपुर जिले के बैराठ नामक स्थान पर खुदाई द्वारा प्राप्त चिन्हों से भी ज्ञात होता है कि राजस्थान का इतिहास पुराना है। यहाँ आर्य आये और अपने राज्य स्थापित किये। तत्पश्चात् यहाँ मौर्य, शक, कुशाण तथा हूण आदि ने भी राज्य स्थापित किये। इसके बाद गुप्त वंश का आधिपत्य रहा। इन तथ्यों से संस्कृति की प्राचीनता परिलक्षित होती है जो राजस्थान के इतिहास की एक विशेषता है।

2. शासकों की वीरता, साहस एवं बलिदान—राजस्थान के राजाओं और शासकों की वीरता, साहस एवं बलिदान की कई घटनाएँ है जो अन्य राज्यों के इतिहास में नहीं मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप राणा सांगा, महाराणा प्रताप, जयमल व पत्ता, वीर दुर्गादास, पृथ्वीराज चौहान, हाड़ी रानी आदि के नाम इस श्रेणी में है। इनके बलिदानों ने ही राजस्थान को महानता प्रदान की है।

3. स्त्रियों के त्याग, बलिदान एवं भक्ति—राजस्थान के इतिहास की तीसरी विशेषता स्त्रियों का साहस, बलिदान, त्याग व भक्ति है। राजस्थान में उत्पन्न पन्ना धाय ने कुंवर उदयसिंह की प्राण रक्षा हेतु अपने पुत्र की बलि दे दी। रानी पद्मिनी ने अपने सतीत्व की रक्षा हेतु जौहर कर दिखाया। यहाँ मीरा बाई ने धर्म प्रचार कर कृष्ण-भक्ति की धारा प्रवाहित की। इन सबमें महानता व चरित्र बल था जो राजस्थान के इतिहास को गरिमा प्रदान करता है।

4. साहित्य—राजस्थान साहित्य के क्षेत्र में भी अग्रणीय रहा है। भक्ति साहित्य का भी बहुत प्रचार हुआ। दादू और सुन्दरदास की रचनाओं में निर्गुण ब्रह्म की उपासना, मीरा बाई की रचनाओं में कृष्ण भक्ति की झलक मिलती है। वीर-गाथा काल में पृथ्वीराज-रासो, हमीर-रासो, खुमाण-रासो और बीसलदेव-रासो, वीर-रस पर आधारित रचनाएँ हैं। बिहारी ने 'बिहारी सतसई', महाकवि पद्माकर ने 'जगत विनोद' नामक रचनाएँ लिखी हैं। महाकवि माघ ने 'शिशुपाल वध' तथा ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त' की रचना संस्कृत भाषा में की। अतः राजस्थान के इतिहास के साहित्यिक क्षेत्र में इस प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं।

5. संगीत—राजस्थान ने कई महान संगीतकार संगीत क्षेत्र में प्रस्तुत किये हैं जिनमें उदयपुर के राणा कुम्भा, जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह, बीकानेर के राजकवि भाव भट्ट प्रसिद्ध है। राणा कुम्भा ने 'संगीत राज' तथा 'संगीत मीमांसा', महाराजा प्रतापसिंह ने 'संगीतसार' तथा 'राग-मंजरी' एवं राजकवि राजभट्ट ने 'अनूप-संगीत विलास' तथा 'अनूप रत्नाकर' नामक पुस्तकें व ग्रन्थ लिखे हैं। अतः राजस्थान संगीत के क्षेत्र में भी अद्वितीय स्थान रखता है।

6 स्थापत्य कला एवं चित्रकला—इस क्षेत्र में राजस्थान को विशेष स्थान प्राप्त है। आबू के दिलवाड़ा जैन-मन्दिरों की स्थापत्य कला सर्वोत्तम व उत्कृष्ट है। चित्तौड़ रणथम्भौर तथा भरतपुर के किले अपना मुकाबला नहीं रखते हैं। जैसलमेर, बीकानेर, डीग, आमेर के राजप्रासाद अपनी स्थापत्य कला के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। बाड़ौली और रणकपुर के मन्दिर अपनी मूर्ति कला के लिये विख्यात है।

चित्रकला में किशनगढ़ तथा बूंदी शैली अपनी मौलिकता के लिये जानी जाती है।

राजस्थान का इतिहास इन उपरोक्त सभी विशेषताओं के कारण देश के अन्य राज्यों के इतिहास की अपेक्षतया विभिन्नता प्रदर्शित करता है।

2 राजस्थान की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ

विराट के गौधन का अपहरण—यह घटना राजस्थान के इतिहास की प्राचीनतम घटना है। कांगडा के राजा सुशर्मा ने विराट नगरी के राजा विराट की गायों का अपहरण कर लिया। जब राजा विराट ने गायों को छुड़ाने के लिये प्रयास किया तो उसे बन्दी बना लिया। इस पर अर्जुन ने सहायता की और विराट अपने गौधन को प्राप्त कर सका। यह घटना महाभारत के काल से सम्बन्धित है।

पाण्डवों का आगमन—राजस्थान के अलवर, भरतपुर व जयपुर क्षेत्र मत्स्य महाजनपद के अन्तर्गत थे और इस की राजधानी विराट नगर थी। महाभारत काल के राजा विराट का इस पर शासन था। इन्हीं राजा विराट की राजसभा में पाण्डवों ने अपने वनवास काल का अन्तिम वर्ष गुप्त वेश में व्यतीत किया था।

ह्वानसांग का राजस्थान भ्रमण—चीनी यात्री ह्वानसांग राजस्थान के भीनमाल नामक स्थान पर कन्नौज के राजा हर्षवर्धन (606-647) के समय आया था।

बप्पा रावल का उदय—गहलोत वंश में बप्पा रावल का उदय एक ऐतिहासिक घटना के रूप में है। ऐसा माना जाता है कि पहले बप्पा रावल हारीत ऋषि की गायें चराता था। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर हारीत ऋषि ने देवी या महादेव की उपासना कर उनसे बप्पा के लिये राज्य मांगा। देवी या महादेव ने प्रसन्न होकर बप्पा की मांग को पूरा करने के लिये बप्पा को किसी गुप्त स्थान से मोहरें निकाल कर सैन्यशक्ति तैयार करने का आदेश दिया। बप्पा ने ऐसा किया और मौर्य से चित्तौड़ का राज्य छीन कर अपने आधिपत्य में ले लिया। बप्पा रावल ने उदयपुर के निकट एकलिंग महादेव का मन्दिर बनवाया था।

तराइन का द्वितीय युद्ध—सन् 1192 ई. में तराइन का यह युद्ध मुहम्मद गौरी तथा पृथ्वीराज चौहान के बीच लड़ा गया। तराइन का यह युद्ध भारतीय इतिहास की एक परिवर्तनकारी घटना है जिसने न केवल चौहान शक्ति को नष्टभ्रष्ट कर दिया बल्कि पहली बार मुहम्मद गौरी को हिन्दुस्तान के बीचों-बीच तुर्की राज्य की नींव डालने का अवसर दिया। सभी विजित स्थानों में हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े गये और उनके स्थान पर मस्जिदों को खड़ा किया गया। विजित स्थानों पर इस्लाम राज्य-धर्म की घोषणा की गई। इतिहास की इस घटना से केवल चौहान वंश का ही नाश नहीं हुआ बल्कि हिन्दू धर्म पर विनाश के बादल मड़राने लगे।

जलालुद्दीन खिलजी का रणथम्भौर पर आक्रमण—सन् 1292 ई. में दिल्ली के वृद्ध सुल्तान ने रणथम्भौर

पर आक्रमण किया। उस समय रणथम्भीर का शासक राजा हमीर था जिसने पड़ौसी राज्यों की मदद लेकर घमासान युद्ध किया। वृद्ध सुल्तान राजपूतों का साहस व अभेद्य दुर्ग की संरचना देखकर घबरा गया और दिल्ली वापिस लौट गया। इस सफलता से राजा हमीर का प्रभाव बढ़ गया।

हाड़ी रानी का बलिदान—मेवाड़ के सरदार चूड़ावत की पत्नी हाड़ीरानी ने अपना सिर काट कर अपने पति को भेंट कर दिया था क्योंकि उसका पति उसके प्रेम में लिप्त था और रणभूमि में जाना नहीं चाहता था।

चित्तौड़ पर आक्रमण एवं रानी पद्मिनी का जौहर-राजस्थान के इतिहास में रानी पद्मिनी तथा अन्य राजपूत स्त्रियों का जौहर करना एक बहुत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना रही है। अल्लाउद्दीन खिलजी रानी पद्मिनी की सुन्दरता पर मुग्ध था तथा उसे प्राप्त करना उसने लक्ष्य बना लिया था। सन् 1303 ई. में उसने इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु चित्तौड़ के राजा रतनसिंह पर आक्रमण किया। राजा ने तुर्कों का सामना बड़ी वीरता से किया लेकिन जब रतनसिंह को विजय की आशा न रही तो रानी पद्मिनी ने हजारों वीरांगनाओं के साथ आग में कूद कर अपने धर्म की रक्षा करते हुये जौहर किया।

महाराणा कुम्भा का उदय—सन् 1433 में मोकल की मृत्यु के बाद महाराणा कुम्भा मेवाड़ का शासक बना। वह बहुत ही बड़ा शासक, गुणवान, साहित्य एवं कला प्रेमी था। सर्वप्रथम उसने देशद्रोही सामन्तों का अन्त किया। फिर उसने भीलों की शक्ति को अपनी ओर मिलाया। उसने महमूद खिलजी को हराकर मालवा पर विजय प्राप्त की। इस विजय के उपलक्ष में उसने कीर्ति स्तम्भ का निर्माण कराया। राणा कुम्भा ने अपने साम्राज्य को बूंदी, माण्डलगढ़, अजमेर, आमेर, रणथम्भीर, मालवा आदि स्थानों तक विस्तृत किया।

महाराणा कुम्भा केवल वीर ही नहीं था बल्कि वह साहित्य व कला का पोषक भी था। वह कलाकारों का संरक्षक, विद्वानों का आश्रयदाता और संगीत नाट्य, वास्तुकला आदि कलाओं का महान् प्रेमी था। महाराणा कुम्भा ने 'संगीतराज', 'संगीत मीमांसा', 'संगीत मृत' नामक ग्रन्थ तथा 'गीत-गोविन्द' और चंडीशतक की टीका और चार नाटक लिखे थे।

खानवा का युद्ध—यह युद्ध 1527 ई. में मुगल शासक बाबर तथा राणा सांगा के बीच हुआ जिसमें बाबर विजयी रहा। राणा सांगा की हार तथा उसकी मृत्यु से पूरे राजस्थान को सदियों पुरानी स्वतन्त्रता तथा प्राचीन हिन्दू संस्कृति से विमुख होना पड़ा तथा राजस्थान के इतिहास में पूर्व आधुनिक काल का प्रारम्भ इस खानवा के निर्णायक युद्ध के दिन से माना जाना चाहिये।

पन्नाधाय का त्याग—पन्नाधाय का त्याग राजस्थान के इतिहास में एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक घटना है। बनवीर नामक एक सरदार ने मेवाड़ के राजा विक्रमादित्य को मार कर उसके छोटे भाई उदयसिंह को मारने के उद्देश्य से उदयसिंह के महलों में घुस गया। जब उदयसिंह की धाय माँ को इस बात की जानकारी हुई तब उसने अपने पुत्र को उदयसिंह के स्थान पर लिटा दिया। बनवीर ने पन्नाधाय के पुत्र को उदयसिंह समझकर मार डाला। पन्नाधाय ने उदयसिंह को फलों के टोकरे में छिपाकर कुम्भलगढ़ भेज दिया। बाद में उदयसिंह ही मेवाड़ का राजा बना।

हल्दी घाटी का युद्ध—18 जून, 1576 को महाराणा प्रताप तथा अकबर के सेनापति मानसिंह के मध्य हल्दीघाटी के मैदान में घमासान युद्ध हुआ। अकबर ने मानसिंह को महाराणा प्रताप के पास, उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिये भेजा था। महाराणा प्रताप ने मानसिंह के साथ खाना खाने से इन्कार कर दिया, परिणाम-स्वरूप युद्ध हुआ। मुगल सेना की जीत हुई लेकिन महाराणा प्रताप राजस्थान के इतिहास में अमर हो गये। यह घटना प्रताप की मातृभूमि के प्रति प्रेम का अनन्य प्रमाण थी।

शेरशाह सूरी एवं मालदेव का युद्ध—जोधपुर शासक मालदेव दिल्ली के सिंहासन को पुनः प्राप्त करने के लिये हुमायूं को आमन्त्रित किया। शेरशाह सूरी ने ऐसा करने से मालदेव को मना किया। ऐसी स्थिति में मालदेव तटस्थ रहा परन्तु शेरशाह मालदेव के इस व्यवहार से

नाराज था तथा उसे दण्ड देने की खातिर सन् 1543 ई. में मारवाड़ पर आक्रमण किया परन्तु दाँतों तले चने चवाने पड़े। अन्त में विजय प्राप्ति पर उसे कहना पड़ा कि 'मैंने एक मुट्ठी-भर वाजरे के लिये हिन्दुस्तान का साम्राज्य लगभग खो दिया था।'

राजस्थान के इतिहास की प्रमुख घटनाएँ

5000 ई.पू.—कालीं बंगा सभ्यता

3500 ई.पू.—आहड़ सभ्यता

1000-600 ई.पू.—आर्य सभ्यता

300-600 ई.पू.—जनपद युग

350-600 ई.पू.—गुप्त वंश का हस्तक्षेप

छठीं व सातवीं शताब्दियां—हूणों के आक्रमण, हूणों व गुर्जरों द्वारा राज्यों की स्थापना; हर्षवर्धन का हस्तक्षेप।

728 ई.—बप्पा रावल द्वारा चित्तौड़ में मेवाड़ राज्य की स्थापना।

967—कछवाहा वंश धोलाराय द्वारा आमेर राज्य की स्थापना।

1018—महमूद गजनवी द्वारा प्रतिहार राज्य पर चढ़ाई व विजय।

1031—दिलवाड़ा में आदिनाथ मन्दिर का निर्माण विमलशाह ने करवाया।

1113—अजयराज द्वारा अजमेर (अजयमेरु) की स्थापना।

1137—कछवाहा वंश के दुलहराय ने ढूढ़ार राज्य की स्थापना की।

1156—राव जैसलसिंह द्वारा जैसलमेर की स्थापना।

1191—तराइन का प्रथम युद्ध-पृथ्वीराज व मौहम्मद गौरी के मध्य, पृथ्वीराज की विजय।

1192—तराइन का द्वितीय युद्ध-पृथ्वीराज व मौहम्मद गौरी के मध्य, मौहम्मद गौरी की विजय।

1230—दिलवाड़ा में तेजपाल व वस्तुपाल द्वारा नेमिनाथ मन्दिर का निर्माण।

1234—रावत जैतसिंह द्वारा इल्तुमिश पर विजय।

1237—रावत जैतसिंह द्वारा सुल्तान बलवन पर विजय।

124 —राजा हाड़ा देशराज द्वारा बूंदी राज्य की स्थापना।

1291—हमीर द्वारा जलालुद्दीन का आक्रमण विफल करना।

1301—हम्मीर द्वारा अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण को विफल करना, षड्यन्त्र द्वारा पराजित, रणथम्भौर के किले पर तुर्की अधिकार स्थापित।

1303—राणा रतनसिंह अलाउद्दीन खिलजी के हाथों परास्त; चित्तौड़ पर खिलजी का अधिकार, चित्तौड़ का नाम परिवर्तित कर खिज्राबाद।

1308—कान्हड़देव (चौहान) खिलजी से पराजित, जालौर पर खिलजी का आधिपत्य।

1326—राणा हमीर द्वारा चित्तौड़ पर पुनः शासन कायम।

1433 कुम्भा मेवाड़ का शासक बना।

1440—महाराणा कुम्भा द्वारा चित्तौड़ के विजय स्तम्भ का निर्माण।

1456—महाराणा कुम्भा द्वारा मालवा के शासक महमूद खिलजी को हराना।

कुम्भा का शम्स खां को हरा कर नागौर पर कब्जा।

1457—गुजरात व मालवा का मेवाड़ के विरुद्ध संयुक्त अभियान।

1459—राव जोधा द्वारा जोधपुर राज्य की स्थापना।

1465—राव बीका द्वारा बीकानेर राज्य की नींव, सन् 1488 में नगर का निर्माण पूर्ण।

1509—राणा संग्रामसिंह का मेवाड़ का शासक बनना।

1518—महाराणा जगमलसिंह द्वारा बांसवाड़ा राज्य की स्थापना।

1527 खानवा का युद्ध-महाराणा सांगा की बाबर के हाथों पराजय।

1528—राणा सांगा की मृत्यु।

1532—राव मालदेव द्वारा अपने पिता राव गंगा की हत्या तथा मारवाड़ का शासक बनना।

1538 मालदेव का सिवाना व जालौर पर अधिकार।

1541—मालदेव का हुमायूं को निमन्त्रण।

1542—मालदेव का बीकानेर नरेश जैतसिंह को परास्त करना, जैतसिंह की मृत्यु, हुमायूं का मारवाड़ सीमा में प्रवेश।

1544—राजा मालदेव और शेरशाह के मध्य सामेल (जैतारण) का युद्ध, मालदेव पराजित ।
1547—भारमल आमेर का शासक बना ।
1559—उदयपुर राज्य की स्थापना (उदयसिंह द्वारा) ।
1562—मालदेव का निधन, मालदेव का तृतीय पुत्र राव चन्द्रसेन मारवाड़ का शासक बना ।
1562—आमेर नरेश भारमल की पुत्री का विवाह अकबर के साथ सम्पन्न ।
1564—राव चन्द्रसेन पराजित, जोधपुर पर मुगलों का आधिपत्य ।
1569—रणथम्भौर नरेश सुर्जन हाड़ा की मानसिंह के साथ सन्धि, हाड़ा पराजित ।
1572—उदयसिंह की मृत्यु, महाराणा प्रताप का राज्याभिषेक ।
1572—अकबर द्वारा रायसिंह को जोधपुर का शासक नियुक्त किया जाना ।
1573—मानसिंह की महाराणा प्रताप से मुलाकात ।
1574—बीकानेर राजा कल्याणमल की मृत्यु, रायसिंह का सिंहासन पर बैठना ।
1576—हल्दी घाटी का युद्ध, महाराणा प्रताप का मुगल सेना से पराजित होना ।
1578—मुगल सेना का कुम्भलगढ़ पर नियन्त्रण, प्रताप का छप्पन की पहाड़ियों में प्रवेश, चांवड़ को राजधानी बनाना ।
1580—अब्दुल रहीम खानखाना को अकबर द्वारा राजस्थान का सूबेदार नियुक्त करना ।
1589—भारमल (आमेर) की मृत्यु, मानसिंह सिंहासन पर बैठा ।
1596—किशनसिंह द्वारा किशनगढ़ की नींव ।
1597—महाराणा प्रताप का चांवड में देहान्त ।
1605—अकबर ने मानसिंह को 7000 मनसब प्रदान किये ।
1614—मानसिंह की दक्षिण-भारत में मृत्यु ।
1615—राणा अमरसिंह द्वारा मुगलों से सन्धि ।
1621—राजा मिर्जा जयसिंह आमेर का शासक नियुक्त ।
1625—माधोसिंह द्वारा कोटा राज्य की नींव ।
1660—राजसिंह द्वारा राजसमन्द की नींव ।
1667—जयसिंह की दक्षिण-भारत में मृत्यु ।
1691—राजसिंह द्वारा नाथद्वारा मन्दिर का निर्माण ।
1727—महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा जयपुर नगर बसाना ।
1733—सिनसिनवार जाट राजा सूरजमल द्वारा भरतपुर की स्थापना ।
1771—कछवाहा वंश के राव प्रतापसिंह द्वारा अलवर राज्य की स्थापना ।
1803—दौलत राव सिन्धिया और लार्ड लेक के मध्य लस्वरी युद्ध, सिन्धिया पराजित ।
1818—झाला वंशजों द्वारा झालावाड़ राज्य की स्थापना ।
1818—मेवाड़ के राजपूतों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सन्धि ।
1838—माधवसिंह द्वारा झालावाड़ राज्य की स्थापना ।
1857, 28 मई—नसीराबाद में सैनिक विद्रोह ।
1885—मेयो कालेज की स्थापना ।
1918—बिजोलिया किसान आन्दोलन ।
1956—राजस्थान का निर्माण-कार्य सम्पन्न ।

✲

3. राजस्थान में स्वतन्त्रता आन्दोलन

"स्वाधीनता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है"
लोकमान्य तिलक।

मानव ने स्वाधीनता को हमेशा से अपना जन्मसिद्ध अधिकार माना है और हर परिस्थिति में अपनी स्वाधीनता को बनाए रखने के लिये आततायियों से लड़ता रहा है। राजस्थान का इतिहास भी इस तथ्य का साक्षी है कि जब कभी भी राजस्थान पर विदेशी हमला हुआ, यहाँ के स्वतन्त्रता प्रेमियों ने उनका डटकर सामना किया। मेवाड़, मारवाड़ आदि ने सदैव स्वतन्त्रता के इन युद्धों का नेतृत्व किया था। राजस्थान की जनता को सन् 1857 के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय क्यों होना पड़ा, उसके लिये राजस्थान में 1857 से पूर्व की कुछ घटनाऐं एवं परिस्थितियां ऐसी थी कि जिनके कारण सन् 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में राजस्थान भी अछूता नही रह सका।

1857 से पूर्व का राजस्थान

1. सन् 1857 से पूर्व राजस्थान का अधः पतन हो चुका था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगलों की केन्द्रीय सता का पतन हो चुका था। रियासतों की महत्वकांक्षा और आपसी संघर्ष प्रबल होकर सामने आये। गृह-कलह के कारण भी रियासतें दुर्बल होती चली गई। मराठों व पिंडारियों की लूट-पाट से अराजकता उत्पन्न हो गई। विवश होकर अंग्रेजों से राजपूत शासकों को सन्धि करनी पड़ी परन्तु इस संरक्षण की भारी कीमत उन्हें अंग्रेजों को चुकानी पड़ी।

2. जोधपुर के राजा मानसिंह ने अंग्रेजों के साथ की गई सन्धि की शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया तथा ब्रिटिश विरोधी तत्वों को शरण न देने के आदेश की अवहेलना की। अजमेर में आयोजित दरबार का वहिष्कार किया गया।

3. महारावल डूंगरपुर को जब अंग्रेजों ने अपदस्थ किया तो इसके विरोध में चारों ओर विद्रोह फैल गया।

4. जयपुर में केप्टिन ब्लेक की हत्या।

5. ब्रिटिश शासकों के प्रति जन आक्रोश था क्योंकि—

(i) अंग्रेजों द्वारा जनता का आर्थिक शोषण;

(ii) लोगों पर इसाई धर्म का थोपा जाना;

(iii) जनसाधारण पर पाश्चात्य विचार और संस्थाओं के थोपने के प्रयास।

(iv) सती-प्रथा के उन्मूलन के प्रयास;

(v) सामन्तों के परम्परागत अधिकारों एवं विशेषाधिकारों की उपेक्षा;

(vi) राज्यों के आन्तरिक मामलों में अंग्रेजों द्वारा हस्तक्षेप;

(vii) परम्परागत-रीति रिवाजों के समाप्त करने का प्रयास;

(viii) अकाल, बेरोजगारी तथा भुखमरी आदि के विरुद्ध प्रयासों का न किया जाना।

इस प्रकार राजस्थान में 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम प्रारम्भ होने से पूर्व राजस्थान की स्थिति विस्फोटक होती चली गई।

1857 का स्वाधीनता संग्राम

सामान्यतया ऐसी धारणा है कि राजस्थान की सन् 1857 ई के स्वाधीनता संग्राम में कोई विशेष भूमिका नहीं रही है परन्तु आधुनिक शोध कार्यों से यह प्रमाणित हो चुका है कि सन् 1857 में राजस्थान में भी स्वतन्त्रता आन्दोलन हुआ था। सन् 1857 में उत्तर भारत में जब क्रान्ति हुई तो राजस्थान पर भी उसका प्रभाव पड़ा। 1857 में अंग्रेजों के खिलाफ जब चारों ओर विद्रोह का दावानल फैला हुआ था, उस समय राजस्थान में यत्र-तत्र कुछ विद्रोह की घटनाऐं अपवाद स्वरूप में हुई। अन्यथा अधिकांश राजस्थानी शासक शान्त रहे अथवा उन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया। उन्होंने राष्ट्रीय शक्तियों का साथ नहीं दिया। फिर भी यह सत्य है कि राजस्थान की सामान्य जनता की सहानुभूति राष्ट्रीय

शक्तियों के साथ थी।

उस समय राजस्थान में कुछ ऐसी निम्न घटनायें घटी जिनसे यह सिद्ध होता है कि राजस्थान में भी स्वतन्त्रता की प्राप्ति हेतु क्रान्तिकारी आन्दोलन हुआ।

1. मेरठ (उत्तर प्रदेश) के सैनिक विद्रोह के समाचार मिलते ही नसीराबाद (अजमेर) की छावनी के सैनिकों ने 28 मई, 1857 को सर्व प्रथम विद्रोह की घोषणा की। विद्रोह नसीराबाद छावनी से ही क्यों हुआ? इसके निम्न कारण रहे—

(अ) नसीराबाद स्थित 15वीं और 30वीं बंगाल नेटिव इन्फेंट्री की उपेक्षा करके बम्बई लांसर्स के सैनिकों को गश्त पर लगाया गया। अतः 15वीं नेटिव इन्फेन्ट्री के सैनिकों के दिमाग में यह बात समा गई कि यह कार्यवाही उन्हें कुचलने के लिये की जा रही है। अतः उनमें विद्रोह की भावना भर गई।

(ब) अजमेर से 15वीं बंगाल नेटिव इन्फेन्ट्री की टुकड़ी को हटाकर नसीराबाद भेजने के कारण उनमें एक धारणा उत्पन्न हो गई कि उन पर सन्देह किया जा रहा है और अविश्वास के कारण उन्हें अजमेर से हटाया गया है। अतः वे ब्रिटिश अधिकारियों से नाराज हो गये।

(स) सैनिकों में यह विश्वास दृढ़ हो गया कि एनफील्ड राइफल्स में प्रयोग किये जाने वाले कारतूसों में गाय व सूअर की चर्वी का प्रयोग किया जाता है, जिनका उपयोग सैनिक करते हैं। इस प्रकार अंग्रेज लोग उनका धर्म भ्रष्ट करके उन्हें इसाई बनाना चाहते हैं। अतः अंग्रेजों के विरुद्ध सैनिकों में विद्रोह की भावना भड़क उठी।

(द) नसीराबाद में यूरोपियन सेना को बुलाया जाना भी सैनिकों में सन्देह व अविश्वास का कारण बना।

इन परिस्थितियों में धीरे-धीरे सैनिक विद्रोही बन गये और उन्होंने छावनी को लूटने व जलाने के बाद दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

2. नसीराबाद के बाद नीमच छावनी में 3 जून 1857 की रात्रि को विद्रोह भड़क उठा। नीमच को लूटने के बाद विद्रोही सैनिक देवली छावनी पहुंचे और छावनी को लूटा। ये सभी दिल्ली की ओर रवाना हो गये व दिल्ली के विद्रोहियों के साथ मिलकर ब्रिटिश सेना पर प्रहार किया।

3. अगस्त 1857 में जब मन्सौर, नीमच, नसीराबाद देवली आदि स्थानों के विद्रोह की सूचना एरिनपुरा छावनी (जोधपुर) के सैनिकों को मिली तो उन्होंने 21 अगस्त को विद्रोह कर एरिनपुरा पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात आबू की अंग्रेज बस्ती पर धावा बोलते हुये दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। आहूवा ठाकुर कुशालसिंह चांपावत भी क्रान्तिकारियों के साथ अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध उठ खड़े हुये। इन्होंने पाली नामक स्थान पर जोधपुर की सेनाओं को पराजित किया। पुनः अंग्रेजी सेना से मुठभेड़ हुई और इनकी दूसरी विजय हुई लेकिन गवर्नर जनरल कैनिंग द्वारा 20-1-1858 को एक बड़ी सेना आहूवा में एकत्रित की जिससे क्रान्तिकारी सैनिक व आहूवा ठाकुर पराजित हो गये।

4. कोटा में 15 अक्टूबर, 1857 को कोटा राज पलटन ने अंग्रेजी सेना को बुरी तरह हराया तथा कोटा महाराव के इशारों पर ए. जी जी. मेजर बर्टन, उसके दो पुत्रों तथा एक चिकित्सक की हत्या कर दी। कोटा पांच माह तक स्वतन्त्र रहा। जनरल रावर्टस् के नेतृत्व में 30-3-1950 को अंग्रेजी सेना ने कोटा राज पलटन के विद्रोही सैनिकों को पराजित कर उनके आन्दोलन को दबा दिया गया।

5. कोटा के सैनिक विद्रोह के दमन के कुछ समय बाद राजस्थान पुनः विद्रोहियों और अंग्रेजों के संघर्ष का केन्द्र बन गया। तांत्या टोपे ने जून 1858 ई. में ग्वालियर के विद्रोहियों के साथ राजस्थान में प्रवेश किया। राजस्थान के लगभग 4000 भील तथा टोंक के नवाब की सेना तांत्या टोपे के साथ मिल गई। वह बूंदी होता हुआ मेवाड़ की ओर बढ़ा परन्तु भीलवाड़ा के समीप उसे जनरल रावर्टस् से पराजित होना पड़ा। तांत्या टोपे राजस्थान में क्रान्ति फैलाना चाहता था। 11 दिम्सबर, 1857 को उसने बांसवाड़ा पर अधिकार कर लिया और महारावल को पलायन करना पड़ा। गदर के असफल होने पर ही महारावल वापिस बांसवाड़ा आ सका।

6. भरतपुर की सेना ने 31 मई, 1857 को क्रान्ति कर दी। मेजर मारीसन भरतपुर छोड़कर आगरा भाग गया।

7. धौलपुर की सेना व सरदारों की सहानुभूति क्रान्तिकारियों के साथ थी परन्तु राणा उसके पक्ष में न थे। सैनिकों व सरदारों ने धौलपुर लूट लिया। लगभग 1000 विद्रोही राव रामचन्द्र व हीरालाल के नेतृत्व में धौलपुर के राणा की तोपें साथ लेकर आगरा चले गये।

8. टोंक की सेनाओं ने भी मीर आलमखां के नतृत्व में विद्रोहियों का साथ दिया। टोंक का नवाब अंग्रेजों के साथ था। मेजर ईडन का दिल्ली से बड़ी सेना के साथ टोंक आने पर विद्रोही वहाँ से पलायन कर गये।

9. मार्च 1958 में अंग्रेज़ों का घेरा तोड़ते हुये विद्रोही अलवर होते हुये सीकर पहुँचे। वहाँ उन्हें कर्नल होम्स की सेना ने पराजित किया तथा सैनिक-विद्रोह का पूर्ण दमन हो गया।

सन् 1857 के स्वतन्त्र आन्दोलन की असफलता

सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम राजस्थान में सफल न हो सका, उसके कुछ प्रमुख करण इस प्रकार रहे-

1. राजस्थान के राजाओं ने अंग्रेजों के प्रति अपनी दास-वृति का परिचय दिया।
2. मुगल सम्राट बहादुरशाह तथा स्थानीय विद्रोहियों ने राजस्थानी राजाओं को स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व करने हेतु आमन्त्रित किया परन्तु इसके बावजूद भी उन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया।
3. राजस्थान के विद्रोहियों में आपस में एकता और सम्पर्क का अभाव था। कोटा, नसीराबाद, भरतपुर, धौलपुर, टोंक आदि में अलग-अलग समय क्रान्ति हुई।
4. मारवाड़, मेवाड़, जयपुर आदि ने तांत्या टोपे से असहयोग किया।
5. राजस्थान के नरेशों, नवाबों का रूख स्वतन्त्रता आन्दोलन विरोधी था।

स्वतन्त्रता आन्दोलन की असफलता के परिणाम

1. सन् 1857 के स्वतन्त्रता आन्दोलन के असफल हो जाने के पश्चात राजस्थान की रियासतें ब्रिटिश सम्राट के संरक्षण में चली गई।
2. ब्रिटिश सम्राट ने राजस्थान की सभी रियासतों से कम्पनी द्वारा की गई सन्धियों को जारी रखा।
3. राजस्थान की जनता पर अब गुलामी का दुहरा अंकुश स्थापित हो गया। एक तो वे रियासती राजाओं के आधीन थे, दूसरे अंग्रेजों का भी उन पर नियन्त्रण स्थापित हो गया था।

परिणामस्वरूप यह निश्चित हो गया था कि निकट भविष्य में राजस्थान में अब स्वतन्त्रता आन्दोलन का कोई भी भविष्य नहीं रह गया था।

राजस्थान में नव-चेतना एवं जागृति

1857 का स्वतन्त्रता संग्राम तो सफल नहीं हो पाया लेकिन जनता में नव-चेतना व जागृति की भावना अवश्य उत्पन्न हो गई। इस नव-चेतना के प्रमुख कारण इस प्रकार है—

(i) कर्नल टॉड द्वारा रचित 'एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' में राजस्थान के वीरों के कृत्यों को पढ़ने से जनता में विशेषकर शिक्षित वर्ग में स्वाभिमान के भाव जागृत हुए।

(ii) राजस्थान के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक वैभव की आत्मानुभूति जब हिन्दी, गुजराती व बंगला साहित्य से राजस्थानी चरित्रों के बारे में हुई तब जनता अपने प्राचीन गौरव के प्रति सजग हो उठी।

(iii) आर्य समाज की शाखाओं ने भी राजस्थान में स्वतन्त्रता के प्रति विचारों को फैलाकर राष्ट्रीय चेतना की ज्योति प्रज्वलित की।

(iv) साहित्य, पत्रकारिता ने भी राष्ट्रीय भावना को जगाया। बंकिम चन्द्र चटर्जी के 'वन्दे मातरम्' गान से राजस्थान गूँज उठा। राजस्थान समाचार, देश हितैषी परोपकारक आदि समाचार पत्रों ने भी राष्ट्रीय भावना की जागृति में पूर्ण सहयोग दिया। उदयपुर से 'सज्जन कीर्ति सुधाकर' तथा अजमेर 'राजस्थान टाइम्स' एक अंग्रेजी साप्ताहिक का सन् 1885 में प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। अखबारों के माध्यम से लोगों में राष्ट्रीय और राजनीतिक चेतना का उदय हुआ।

(v) छप्पनिया के भीषण अकाल के समय अंग्रेजों के

द्वारा जो अवहेलना दृष्टिगत हुई उसके कारण अंग्रेजों के प्रति घृणा का वातावरण बना । अतः जनता के मन में स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रति विचार बने ।

(vi) एडवर्ड सप्तम के राज्यारोहण समारोह के समय उदयपुर के महाराणा फतेहसिंह को आमन्त्रित किया गया । इसमें सम्मिलित होने के लिये उन्होंने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया, लेकिन तभी उन्हें रास्ते में शाहपुरा के क्रान्तिकारी 'कृष्णसिंह बारहट' की **'चेतावनी रा चूंगटिया'** नामक रचना भेंट की गयी जिसके कारण उनमें आत्म-सम्मान की भावना जागी और वह वापिस लौट आये । महाराणा के इस कार्य से राजस्थान की जनता में एक नव-चेतना की लहर दौड़ गई ।

(vii) अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों से राजस्थान का आर्थिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया, बेरोजगारी फैल गई । असन्तोष का वातावरण उत्पन्न हो गया ।

(viii) 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई । 1887 में राजकीय महाविद्यालय, अजमेर के छात्रों ने कांग्रेस कमेटी का गठन किया । कालान्तर में जनता में राष्ट्रीय भावना उत्पन्न हुई और निरन्तर यह बलवती होती चली गई । सन् 1888 के कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन में अजमेर के श्री गोपीनाथ माथुर, श्रीकिशनलाल और श्री हरिविलास शारदा राजस्थान के प्रतिनिधि बनकर गये । धीरे-धीरे समग्र राजस्थान में क्रान्तिकारी विचार फैले और अजमेर इसका केन्द्र बन गया ।

राजस्थान में स्वदेशी आन्दोलन—कांग्रेस का स्वदेशी आन्दोलन न केवल भारतीय स्तर पर बल्कि राजस्थान में भी 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शुरू हो गया था । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने उपदेशों में स्वधर्म, स्वभाषा, स्वराज व स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर बल दिया जिसने राजस्थान के जन-मानस को झकझोर दिया । इस प्रकार से आर्य समाज की स्थापना के साथ-साथ स्वदेशी आन्दोलन की शुरुआत भी एक तरह से स्वामीजी ने ही राजस्थान में की । स्वामी गोविन्द गिरि के नेतृत्व में सिरोही, डूंगरपुर, मेवाड़ व बांसवाड़ा में स्वदेशी आन्दोलन चलाया गया । सेठ दामोदर लाल राठी के साथ मिलकर श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा नामक राष्ट्रवादी ने ब्यावर में स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन हेतु एक मिल डाल दी । यद्यपि अंग्रेज शासकों के इशारे पर जयपुर, जोधपुर, कोटा, बीकानेर, उदयपुर आदि के राजाओं ने आन्दोलन को दबाने की कोशिश की । किन्तु स्वदेशी आन्दोलन की गति धीमी नहीं हुई । राजस्थान में कई क्रान्तिकारी हुए हैं जिनमें अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारहट गोपालसिंह व दामोदर दास राठी के नाम प्रमुख हैं । सिरोही में गोविन्द स्वामी ने सभ्य सभा की स्थापना की जिसने राजस्थान के दक्षिणी क्षेत्र व पहाड़ी क्षेत्रों में जन-जागृति की । मेवाड़ की राजधानी उदयपुर में श्रीमोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में भीलों का एक संगठन बनाया गया । श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अजमेर में आन्दोलन को गति दी । राजस्थान में यह आन्दोलन प्रथम विश्व-युद्ध तक निरन्तर चलता ही रहा और अंग्रेज शासकों के लिये सिरदर्द बन गया ।

स्वाधीनता आन्दोलन का द्वितीय चरण—प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड ने राजस्थान की जनता के दिलों में स्वाधीनता की भावना को और दृढ़ता प्रदान की । इसी समय गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने बहिष्कार और असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया जिसका गहरा प्रभाव राजस्थान पर पड़ा । राजस्थान में विजयसिंह पथिक और रामनारायण चौधरी ने राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार करना शुरू कर दिया, फलस्वरूप कई नये संगठन बने । इनमें राजस्थान सेवा-संघ की कई शाखाएँ कांग्रेसी नेता अर्जुनलाल सेठी के निर्देशन पर जोधपुर, करौली, कोटा, पुष्कर, केकड़ी, ब्यावर आदि में प्रारम्भ हो गई । श्री जमनालाल बजाज और हरिभाऊ उपाध्याय भी सक्रिय हो उठे ।

राजस्थान में कृषक आन्दोलन—अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों के न केवल राजस्थान की अर्थ-व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो गई बल्कि किसानों का शोषण होने के कारण उनकी दशा दयनीय हो गई तथा उनमें असन्तोष की भावना घर कर गई । परिणामस्वरूप 1918 में बिजोलिया में कृषक आन्दोलन हुआ । इसने बेगूं, सवरद, दूदवा, खारा, सीम व सिरोही जैसे स्थानों के कृषकों को

भी प्रेरणा दी और वहाँ भी कृषक आन्दोलन हुए।

1. बिजोलिया का कृषक आन्दोलन—भारत में संगठित कृषक आन्दोलन की शुरूआत का श्रेय मेवाड़ के प्रथम श्रेणी के ठिकाने बिजोलिया को है जिसका संस्थापक अशोक परमार था।

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात राजस्थान के शासक स्वेच्छाचारी हो गये, फलस्वरूप किसानों का शोषण, उन पर अत्याचार, अत्यधिक कर तथा बेगारी का सिलसिला काफी बढ़ गया था। राव सवाई कृष्णसिंह के समय बिजोलिया की जनता से 84 प्रकार की लागतें वसूल की जाती थी। अत: किसान को अपनी पैदावार का आधा भाग लगान के रूप में देना पड़ता था।

सन् 1903 में राव कृष्णसिंह ने ऊपरमाल की जनता पर चवंरी की लागत लगाई जिसके अनुसार पट्टे के हर व्यक्ति को अपनी कन्या के विवाह पर 5 रु. चवंरी कर के रूप में ठिकाने को देने पड़ते थे। विरोध स्वरूप किसानों ने कन्याओं के विवाह स्थगित कर दिये तथा ठिकाने की भूमि पर कृषि करना वन्द कर दिया। राव ने विवश होकर चंवरी कर माफ कर दिया और लगान भी उपज की 2/5 करने की घोषणा की। यह किसानों की ऐतिहासिक विजय थी। अहिंसात्मक आन्दोलन की आधार-शिला इस प्रकार रखी गयी।

बिजोलिया के किसान आन्दोलन में विजयसिंह पथिक ने 1916 में प्रवेश किया। 1918 में कांग्रेस अधिवेशन में पथिक जी सम्मिलित हुए। उनकी अनुपस्थिति में वर्मा जी व साधु जी किसान आन्दोलन चला रहे थे। उन्हें ठिकाने ने वन्दी बना लिया तथा खड़ी फसल नष्ट कर दी। सरकार ने एक आयोग नियुक्त किया और आयोग ने लाग-बाग और बेगारी समाप्त करने की सिफारिश की। सरकार ने कुछ नहीं किया। गांधी जी महाराणा से मिले किन्तु प्रयत्न असफल रहा। परिणाम-स्वरूप किसानों ने लाग-बाग, बेगार व भूमि कर देना वन्द कर दिया।

भारत सरकार ने ए. जी. सी. हालैण्ड को बिजोलिया भेजा। किसानों व हालैण्ड में समझौता हुआ। 84 में से 35 लगान माफ कर दिये। तीन साल में भूमि के बन्दोवस्त का आश्वासन दिया किन्तु ठिकाने ने समझौते का पालन नहीं किया। पथिक को बन्दी बना लिया गया। साधुजी बिजोलिया से चले गये। वर्मा जी किसानों के एक मात्र नेता रह गये। 1923-28 के मध्य भूमि बन्दोवस्त किया गया। लगान की दर ऊंची रखी गई। वर्मा जी को वन्दी बनाया गया। पथिक को मुक्त कर मेवाड़ से निर्वासित कर दिया गया। किसानों ने कृषि भूमि से इस्तीफा दे दिया। ठिकाने की भूमि नीलाम करदी और अन्य लोगों को आवंटित कर दी। वर्मा जी के नेतृत्व में इस्तीफा देने वाले किसानों ने खेती करना शुरू किया। वर्मा जी व 500 कृषकों को बन्दी बना लिया गया। जमुनालाल बजाज के प्रयत्नें से कृषकों को भूमि लौटाने का आश्वासन मिला लेकिन सरकार ने इसे पूरा न कर वर्मा जी को मेवाड़ से निर्वासित कर दिया। मेवाड़ के प्रधानमन्त्री सर डी. विजयराघवाचार्य ने प्रजा मण्डल के नेताओं से वार्ता की। भूमि पुन: किसानों को सौंप दी गई। इस प्रकार बिजोलिया आन्दोलन समाप्त हुआ लेकिन इस आन्दोलन ने राजस्थान के दूसरे क्षेत्रों के कृषकों को अपने प्रति किये जा रहे शोषणों के खिलाफ आन्दोलन करने की प्रेरणा प्रदान की और राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने में असाधारण भूमिका का निर्वाह किया।

2. बेगूं किसान आन्दोलन

बेगूं जागीर के किसान ठिकाने को दी जाने वाली लाग-बाग, बेगार तथा लगान की ऊंची दरों के कारण काफी परेशान थे। इस लिये वे मेनाल नामक स्थान पर एकत्रित हुये और इनके विरुद्ध आन्दोलन छेड़ने का निश्चय (1921 में) उन्होने बिजोलिया किसानों की आन्दोलन नीति के अनुसार किया। पथिक जी ने इस आन्दोलन की बागडोर श्री रामनारायण चौधरी को सौंपी। किसानों ने लाग-बाग, बैगार देना ठिकाने को वन्द कर दिया। परिणामस्वरूप जागीरदार ने मेवाड़ सरकार के सहयोग से इस आन्दोलन को दबाना चाहा। फलस्वरूप किसानों ने भूमि को पड़त रखने का निश्चय ले लिया। बेगूं रावत श्री अनूपसिंह द्वारा किसानों का समझौता करा दिया गया लेकिन मेवाड़ सरकार ने इस

समझौते को 'बोलशेविक' की संज्ञा देते हुये रावत अनूपसिंह को नजरबन्द करवा दिया । बेगूं किसान आन्दोलन हेतु आयोग की नियुक्ति की गई और ट्रेंच आयोग ने पथिक जी पर समानान्तर सरकार का आरोप लगाया । परिणामस्वरूप सरकार का दमन चक्र प्रारम्भ हुआ ।

दिनांक 13 जुलाई, 1923 को किसान स्थिति पर पुनर्विचार करने हेतु गोविन्दपुरा में एकत्रित हुये, लेकिन सेना द्वारा उनकी घेराबन्दी कर गोलियों की बौछार करना प्रारम्भ कर दिया । दो किसान शहीद हो गये और अनेकों घायल हो गये । 500 से अधिक किसानों को गिरफ्तार कर लिया गया । 10 सितम्बर, 1923 को पथिक जी को गिरफ्तार कर उन्हें पांच वर्ष की सजा दे दी गई । इस प्रकार बेगूं किसान आन्दोलन को दबा दिया गया लेकिन किसानों व जनता में इससे राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से और जागृति आई ।

3. राजस्थान में भील आन्दोलन—भील जनजाति स्वच्छन्द प्रकृति की है, किसी थोपी हुई व्यवस्था को सहज ही स्वीकार नहीं करती है । अंग्रेजों के द्वारा जब उनके अधिकारों पर कुठाराघात हुआ तो भीलों ने सरकारी अधिकारियों की अवमानना की, कानून विरोधी गतिविधियां प्रारम्भ कर दी । बारापाल, आशीषगढ़, कोटड़ा, पाली तथा सिरोही, बांसवाड़ा व डूंगरपुर जिले के पहाड़ी अचंलों में छोटे-छोटे आन्दोलन शुरू किये गये । शासकों द्वारा इन प्रारम्भिक आन्दोलनों को कठोरता से कुचल दिया गया ।

1922-25 के मध्य मोतीलाल तेजावत, भोगीलाल पण्डया तथा हरदेव जोशी ने नेतृत्व संभाला । भील आन्दोलन के नेता मोतीलाल को अनेक यातनाऐं दी गई किन्तु वह अडिग रहे । दूसरे नेता तेजावत जी 1929 से 1936 तथा 1942 से 1945 तक जेल में रहे । 1945 में उन्हें मुक्त करने के बाद उदयपुर में रहने के लिये आदेश दिये गये ।

माणिक्यलाल वर्मा, भोगीलाल पण्डया, मामा बालेश्वर दयाल, बलवन्त सिंह मेहता, हरिदेव जोशी एवं गौरी शंकर उपाध्याय आदि नेताओं ने स्थान-स्थान पर शिक्षण संस्थाएँ, प्रौढ़ शालाएँ, छात्रावास आदि स्थापित कर भीलों में चेतना व जागृति पैदा की और राष्ट्रीयता का प्रसार किया ।

राजस्थान में प्रजामण्डलों की स्थापना

सन् 1885 से 1935 तक की अवधि में राजस्थान में कांग्रेस के साथ ही समाज सेवी संस्थाएँ जैसे सभ्यसभा, राजस्थान मध्य भारत सभा, वनवासी सेवा संघ आदि कार्यरत थी लेकिन इनमें समन्वय का अभाव था । अतः यह अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं हो पा रही थीं । कांग्रेस भी एक ऐसी संस्था राजस्थान में चाहती थी जो राजस्थान की सभी रियासतों में अपनी शाखाएं स्थापित कर जन-आन्दोलन के काम को सुचारू ढंग से कर सके । सन् 1937 के हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में देशी राज्यों की जनता को संगठित करने का प्रस्ताव पारित हुआ । इसके परिणामस्वरूप इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु सर्वप्रथम सन् 1937 में प्रजामण्डल की स्थापना जयपुर में की गई । शासन की दमनकारी नीतियों के विरोध में एक परिपत्र वितरित किया गया । जयपुर के प्रधानमन्त्री राजा ज्ञाननाथ ने प्रजामण्डल को गम्भीर परिणामों की धमकी दी । प्रजामण्डल के कार्यालयों पर छापे मारे गये परन्तु 1940 में रियासत की सरकार ने इसे मान्यता दे दी ।

प्रजामण्डल का उद्देश्य रियासती कुशासन को समाप्त करने, उनमें व्याप्त बुराइयों को दूर करने तथा नागरिकों को उनके मौलिक अधिकार दिलवाने का था । इस प्रकार देशी रियासतों में रचनात्मक गतिविधियों को प्रारम्भ करने का श्रेय प्रजामण्डलों को है । माणिक्यलाल वर्मा ने सन् 1938 में मेवाड़ प्रजामण्डल की अलग से स्थापना की । इसे अवैध करार दिया गया । प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओं को बन्दी बना लिया गया । इन दमनपूर्ण कार्यवाहियों के विरोध में प्रजामण्डल के सदस्यों ने नागरिक अवज्ञा व सत्याग्रह का आश्रय लिया । 1941 में प्रजामण्डल पर लगे प्रतिबन्ध को हटा लिया गया प्रजामण्डल संगठन ने रचनात्मक गतिविधियां प्रारम्भ करदी । मोहनलाल सुखाड़िया भी इसके सक्रिय सदस्य थे । 1942 में उदयपुर के महाराणा को अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद करने को कहा गया । महाराणा द्वारा प्रस्ताव को

अस्वीकार करने पर हड़ताल व जेल भरो आन्दोलन शुरू किया गया।

इसी प्रकार भरतपुर, अलवर तथा कोटा में भी सन् 1938 में प्रजामण्डल गठित किये गये। उत्तरदायी सरकार की स्थापना की मांग के समर्थन में हड़ताल व सत्याग्रह आन्दोलन किये गये। निरक्षरता उन्मूलन, खाद्यान्नों की समुचित व्यवस्था व सिंचाई की व्यवस्था की मांग भी प्रस्तुत की गई। सन् 1936 में जोधपुर में 'नागरिक स्वाधीनता संगठन' की स्थापना हुई लेकिन इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सन् 1938 में सुभाषचन्द्र बोस ने जोधपुर में 'मारवाड़ लोक परिषद्' का गठन कर इसका नेतृत्व जयनारायण व्यास को सौंपा। इस परिषद् ने उत्तरदायी शासन की मांग की तथा रियासत के द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का विरोध किया। फलस्वरूप इसे अवैध घोषित कर दिया गया।

कुछ अन्य प्रजामण्डल डूंगरपुर में भोगीलाल पण्ड्या के नेतृत्व में, 1942 में रघुवीर दयाल गोयल के नेतृत्व में बीकानेर में प्रजामण्डलों की स्थापना की गई। बीकानेर रामनारायण सेठ मण्डल के मुख्य कार्यकर्त्ता थे। अजमेर में हरिभाऊ उपाध्याय और पं. सुखदेव उपाध्याय ने प्रजामण्डल का काम संभाला। मेवाड़ प्रजामण्डल भी कालान्तर में जयपुर प्रजामण्डल के साथ संयुक्त हो गया था।

प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओं में पं. गौरी शंकर, चांदकरण शारदा, खूबराम, सत्यनारायण वकील, पं बद्रीप्रसाद, जयनारायण व्यास, प्यारेलाल आदि प्रमुख थे जिन्होंने आन्दोलन को नेतृत्व दिया तथा रियासती दमन-चक्र के शिकार भी हुये।

कांग्रेस ने अपना पूरा समर्थन प्रजामण्डल को दिया तथा प्रजामण्डल ने कांग्रेस की नीतियों व कार्यक्रमों को रियासतों में लागू करने का भरसक प्रयत्न किया। पं. हीरालाल शास्त्री, मोहनलाल सुखाड़िया, गोकुलभाई भट्ट, माणिक्य लाल वर्मा, हरिदेव जोशी, बरकतुल्ला खां, मथुरादास माथुर, गोकुल लाल असावा, नाथूराम मिर्धा ने प्रजामण्डल के कार्य को गति प्रदान की। इनके अतिरिक्त बालकृष्ण कौल, कृष्णगोपाल गर्ग, डा गोपीनाथ शर्मा व मदनगोपाल आदि भी इसके संचालन में 1939 से 1946 तक सक्रिय रहे। आखिरकार देशी शासकों को झुकना पड़ा और उत्तरदायी शासन की स्थापना करनी पड़ी। तत्पश्चात सरदार पटेल के प्रयासों से राजस्थान की रियासतों का विलीनीकरण भारत संघ में होने पर राजस्थान प्रान्त का निर्माण हुआ।

यद्यपि राजस्थान का आन्दोलन देशी रियासतों के विरोध में हुआ था लेकिन फिर भी यह अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का अंग बन गया था।

राजस्थान के कुछ प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानी

अर्जुनलाल सेठी—इनका जन्म 9 सितम्बर, 1880 को जयपुर में हुआ। भारतीय प्रशासन सेवा के अन्तर्गत इन्हें जिलाधीश का पद दिया गया था लेकिन इसे स्वीकार न करते हुए इन्होंने जनता व किसानों पर किये जा रहे अत्याचार व दमन के विरुद्ध आन्दोलनात्मक जीवन पद्धति को अपनाया। अपने पिता की मृत्यु के बाद जब इन्होंने चौमू के ठिकाने का कार्यभार संभाला तो किसानों से अधिक लगान वसूल किये जाने का इन्होंने विरोध किया, परिणामस्वरूप इन्हें 6 वर्ष की जेल सजा दी गयी। जेल में रहते हुए इन्होंने 60 दिन का सत्याग्रह किया। अजमेर आप का कार्यक्षेत्र रहा। अतः सेठी जी आजीवन आन्दोलनात्मक गतिविधियों से जुड़े रहे।

विजयसिंह पथिक—इनका असली नाम भूपसिंह था। यह सर्वप्रथम प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सचीन्द्र सान्याल के सम्पर्क में आये और सर्वदा के लिये इनकी जीवन पद्धति क्रान्तिकारी हो गयी। बिजोलिया किसान आन्दोलन का इन्होंने नेतृत्व किया। वर्धा में राजस्थान केसरी नामक समाचार-पत्र इन्होंने निकालना शुरु किया। पथिकजी न केवल राजस्थान के वलिक भारतीय किसान आन्दोलन के जनक माने जाते थे।

माणिक्यलाल वर्मा—इनका जन्म मेवाड़ रियासत में हुआ था और परिचय हुआ सर्वप्रथम विजयसिंह पथिक से, जिनके कारण इन्होंने बिजोलिया किसान आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। इन्होंने अपने जीवन का ध्येय दलितों व पीड़ितों की सेवा करने का बना जीवनपर्यन्त इसी में जुटे रहे। सन् 1969 में इस विभूति का निधन

हो गया।

भोगीलाल पण्ड्या—इनका जन्म 1904 में हुआ प्रारम्भ से ही निरक्षरता उन्मूलन के कार्य को अपना लक्ष्य बनाते हुये इन्होंने शिक्षा का प्रचार-प्रसार कार्य किया और आदिवासी क्षेत्रों में राजनीतिक चेतना जगाने हेतु पाठशालाओं की स्थापना की। आपने सन् 1944 में डूंगरपुर प्रजामण्डल की स्थापना कर रियासत की गलत नीतियों का विरोध आन्दोलनात्मक तरीकों से किया। सन् 1975 में इन्हें भारत सरकार ने पद्म-विभूषण से अलंकारित किया।

रामनारायण चौधरी—चौधरी जी का जन्म नीम-का-थाना कस्बे में हुआ। गान्धीजी के सम्पर्क में आने के बाद इन्होंने 1932 में राजस्थान की 'हरिजन सेवक संघ' शाखा का कार्यभार संभाला। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि यह अपने कार्य के प्रति बड़े निष्ठावान रहे। आप तरूण राजस्थान के सम्पादक भी रहे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अजमेर आपका निवास स्थल बना।

प्रतापसिंह बारेठ—आप श्री अर्जुनलाल सेठी द्वारा संचालित विद्यालय के छात्र थे, जहाँ इनके विचार क्रान्तिकारी हो उठे। दिल्ली में लार्ड हार्डिंग्स पर बम फैंकने के बाद इन्हें जेल में यातनाऐं देकर मार डाला गया।

केसरीसिंह बारेठ—आप ने एक राष्ट्रभक्ति पूर्ण सोरठा महाराणा उदयपुर को उस समय भेजा, जब वह 1912 में लार्ड कर्जन द्वारा आयोजित दरबार में सम्मिलित होने के लिये जा रहे थे। इस सोरठा से महाराणा इतने प्रभावित हये कि उन्होंने इस आयोजन में भाग नहीं लिया। क्रान्तिकारी बारेठ की मृत्यु सन् 1941 में हुई।

गोपालसिंह खरवा—आपने 'वीर भारत सभा' का गठन श्री केसरीसिंह बारेठ के साथ मिल कर किया। क्रान्तिकारियों को यह धन व शस्त्र उपलब्ध कराया करते थे। सन् 1915 में दामोदर दास राठी के साथ ब्यावर पर इन्होंने कब्जा किया।

हीरालाल शास्त्री—इनका जन्म 1895 में जयपुर जिले में हुआ। श्री अर्जुनलाल सेठी के सम्पर्क में आने के पश्चात आप राजनीति में सक्रिय हो उठे तथा 'जीवन नामक' संस्था की स्थापना वनस्थली ग्राम (निवाई) में की। आप जयपुर प्रजामण्डल से 1944 तक जुड़े रहे। वनस्थली विद्यापीठ नामक महिला शिक्षण संस्थान के संस्थापक आप ही हैं। राजस्थान के प्रथम मुख्य मन्त्री बनने का सौभाग्य भी आपको मिला।

गोकुलभाई भट्ट - इनका जन्म सन् 1897 में हाथल गांव सिरोही जिले में हुआ। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान गांधी जी के सम्पर्क में आये। बम्बई की उपनगरी विलेपार्ले में कांग्रेस को संगठित किया, विदेशी वस्त्रों की होली जलाई, नमक सत्याग्रह व शराब बन्दी सत्याग्रह का संचालन किया। आचार्य विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन में आपने सक्रिय योगदान दिया। सन् 1972 और 1981 में मद्य निषेध के लिये आमरण अनशन किया। सन् 1982 में जमनालाल बजाज पुरस्कार से सम्मानित किया गया। जय प्रकाश नारायण द्वारा चलाये गये आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया। सितम्बर 1986 में आपका निधन हो गया।

दामोदरदास राठी--आपका जन्म 8 फरवरी, 1984 को पोकरण में हुआ। ब्यावर में पिता द्वारा स्थापित कृष्णा मिल को आपने किशोरावस्था से ही सम्भाल लिया था। आपके जीवन का लक्ष्य लोकहित था। अतः ब्यावर में सनातन धर्म स्कूल, कॉलेज तथा नवभारत विद्यालय की स्थापना की। आप क्रन्तिकारियों को धन बड़ी उदारता से देते थे।

हरिभाऊ उपाध्याय—आपका जन्म भौंरासा ग्राम (ग्वालियर राज्य) में 1893 को हुआ। आपने **'औदुम्बर तथा नवजीवन'** आदि का सम्पादन कार्य किया। 1925 में 'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना की। हटूंडी (अजमेर) में गांधी आश्रम की स्थापना की। 1945 में आपनें हटूंडी में महिला शिक्षा सदन की स्थापना की। राजस्थान में 10 वर्ष तक मन्त्री भी रहे। सन् 1972 में आपका निधन हो गया।

✲

4. राजस्थान के ऐतिहासिक व्यक्ति एवं स्थान

बप्पा रावल—बप्पा रावल ने आठवीं शताब्दी में मेवाड़ में रावल वंश की स्थापना की। पहले उसका शासन उदयपुर के पास स्थित आहड़ से होता था परन्तु बाद में उसने चित्तौड़ जीतकर उसे अपनी राजधानी बनाया। उसने एकलिंगजी में शिव का मन्दिर बनवाया था जो आज तक मेवाड़ वंश के इष्टदेव हैं।

पृथ्वीराज चौहान यह दिल्ली के राजा अनंगपाल की लड़की का पुत्र था जिसे अनंगपाल के पुत्र न होने के कारण चौहान वंश का राजा बनाया गया था। उसके राजा बनने से उसकी मौसी का लड़का जयचन्द्र जो कन्नौज का राजा था, उससे वैमनस्य मानने लगा था। पृथ्वीराज अपने समय का महान योद्धा था और राजस्थान के राजपूत राजाओं का सिरमौर था। उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थीं, जैसे नागार्जुन का दमन, चालुक्यों, भण्डानकों तथा चन्देलों आदि पर विजय।

जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता उसकी वीरता पर मुग्ध हो गई थी अत: उसने द्वारपाल के रूप में खड़ी पृथ्वीराज की मूर्ति को अपने स्वयंवर के दिन वरमाला पहिना दी थी, जहाँ से पृथ्वीराज उसे उठाकर ले गया और उससे विवाह कर लिया। पृथ्वीराज ने 1191 ई. में तराइन के प्रथम युद्ध में मौहम्मद गौरी को बुरी तरह हराया परन्तु 1192 ई. में तराइन के द्वितीय युद्ध में जयचन्द्र की नीचता और अपनी शिथिलता के कारण उससे हार गया। उसकी पराजय के कारण उत्तरी भारत का राज्य सदैव के लिए मुसलमान शासकों के हाथ में चला गया।

महाराणा हमीर– महाराणा हमीर रणथम्भौर के एक वीर शासक थे। वे अपने दृढ़ निश्चय एवं विचार के लिये विख्यात थे। उन्होंने मुगलों को अनेक बार परास्त किया था। 1301 में अलाउद्दीन ने स्वयं रणथम्भौर पर हमला किया। युद्ध काफी लम्बा चला पर इस बार हमीर को विजयश्री प्राप्त नहीं हो पायी। महाराणा हमीर ने अपने वीर योद्धाओं के साथ मातृभूमि की रक्षा में प्राण उत्सर्ग कर दिये। इसके साथ ही किले की राजपूत महिलाओं ने भी 'जौहर' कर स्वयं को शत्रु के हाथों अपमानित होने से बचा लिया।

रानी पद्मिनी—यह मेवाड़ के राजा रत्नसिंह की पत्नी थी जो अपनी सुन्दरता के लिए चारों ओर विख्यात थी। इसे पाने के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और चालाकी से राणा रत्नसिंह को अपने खेमे में कैद कर लिया। उसे छुड़ाने के लिए गोरा और बादल किले से बाहर गये और लड़ते-लड़ते मारे गये। इधर रानी पद्मिनी ने अन्य राजपूतानियों के साथ आग में कूदकर जौहर किया और अपने धर्म की रक्षा की।

गोरा बादल—यह दोनों रानी पद्मिनी के (चाचा और भाई) रिश्तेदार थे। जब अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ के राणा रत्नसिंह को धोखे से बन्दी बना लिया और महलों में यह संदेश भेजा कि पद्मिनी के मिलने पर ही राजा को मुक्त किया जायेगा, इन दोनों योद्धाओं ने आश्चर्य का कार्य किया। उन्होंने बादशाह को कहलवा दिया कि रानी पद्मिनी अपनी बांदियों के साथ 700 पालकियों में उनकी खिदमत में आ रही है, परन्तु राजा रत्नसिंह से अन्तिम विदा लेने के लिये आधा घण्टे का अवसर प्रदान किया जाये। परन्तु पालकियों में बांदियों के स्थान पर वीर राजपूत योद्धा महिलाओं के वेश में सवार थे। गोरा और बादल इस दल का नेतृत्व कर रहे थे। 'अन्तिम मुलाकात' के बाद राणा को किले में भेज दिया गया। इस बीच गोरा और बादल ने 700 राजपूत योद्धाओं के साथ मुगल सेना को रोके रखा। बादल यद्यपि 12 वर्ष का बालक था परन्तु उसने कमाल के शौर्य का प्रदर्शन किया। शत्रु के अनेक सैनिकों को मौत के घाट उतार कर गोरा भी युद्ध में मारा गया।

राणा चूड़ा—यह राणा लाखा का पुत्र था जिसने हंसाबाई से शादी करने से इन्कार कर दिया और हंसाबाई के पुत्र मोकल के पक्ष में मेवाड़ की गद्दी त्याग दी थी।

महाराणा कुम्भा—बप्पा रावल के पश्चात् चित्तौड़ के शासक के रूप में महाराणा कुंभा का विशेष स्थान है। वे महान् योद्धा थे और साथ ही विद्वान् भी थे। उन्होंने मालवा के सुल्तान खिलजी को परास्त किया था और इस विजय के उपलक्ष में चित्तौड़ का जय-स्तम्भ बनवाया था। वे एक महान् कवि भी थे। उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। गीत गोविन्द, संगीत राग, संगीत मीमांसा और स्वर प्रबन्ध आदि पर उनकी टीकाएं सराहनीय हैं। कला व साहित्य के वे प्रमुख संरक्षक थे। उन्होंने कई गढ़ बनवाए, जिनमें उन्हीं के नाम पर बना कुम्भलगढ़ प्रसिद्ध है।

राणा साँगा—इनका नाम संग्रामसिंह था। यह एक महान शासक और योद्धा थे। इन्होंने इब्राहीम लोदी की सेनाओं को दो बार परास्त किया और चन्देरी के किले पर कब्जा कर लिया। इसके शौर्य का लोहा उस समय के गुजरात और मालवा के सुल्तानों ने भी माना था। इनका अन्तिम युद्ध बाबर के साथ 1527 ई. में भरतपुर के पास खानवा के मैदान में हुआ था। इसमें बाबर की सेना अपने तोप, गोले और बारूद के कारण जीत गई परन्तु राणा साँगा की वीरता याद रखने योग्य थी। इसमें उसके 80 घाव आये थे और एक टाँग, एक भुजा और एक आँख चली गई थी। राणा साँगा की इस हार से यद्यपि राजपूतों की आशायें समाप्त हो गई थी परन्तु इनका स्वतन्त्रता प्रेम समाप्त नहीं हुआ था।

राणा उदयसिंह—उदयसिंह मेवाड़ के राणा साँगा के पुत्र थे। वे जब बच्चे ही थे उनके पिता का देहान्त हो गया। जब तक वे वयस्क हुए बनवीर नामक एक सरदार ने जो अत्यन्त क्रूर था, राज-काज का काम देखा। वह मेवाड़ की गद्दी हड़प जाना चाहता था, इसलिए उसने कुमार उदयसिंह की हत्या का प्रयत्न किया। जब बनवीर उदयसिंह की हत्या की बदनीयती से महलों में पहुँचा तो पन्नाधाय ने कुमार को तो कहीं बाहर छिपा कर भेज दिया तथा पालने में उदयसिंह के वस्त्र पहने हुए अपने पुत्र की ओर संकेत कर दिया। बनवीर ने पन्ना के पुत्र को उदयसिंह समझकर मार डाला। बाद में उदयसिंह बड़ा होकर मेवाड़ का महाराणा बना। जब अकबर ने चित्तौड़ के किले पर घेरा डाल दिया तो लाचार होकर उदयसिंह को उसे छोड़कर पर्वतों की ओर जाना पड़ा जहाँ उसने उदयपुर नगर की नींव डाली।

जयमल और पत्ता—1567 ई. में जब राणा उदयसिंह चित्तौड़ छोड़कर उदयपुर चले गये थे तो चित्तौड़ के किले की रक्षा का भार इन दो राजपूत सरदारों के हाथ दे गये थे। अकबर की सेनाओं से इन्होंने किले की रक्षा की। एक दिन जयमल रात को किले की दीवार की मरम्मत करा रहा था तब शत्रु ने उसे पहचान कर गोली मार दी। पत्ता ने भी किले की रक्षा करते हुए अपने प्राण गँवा दिये।

मीराबाई—यह मेवाड़ के राणा उदयसिंह के भाई भोजराज की पत्नी थी और मेड़ता के सरदार रत्नसिंह की पुत्री थी। यह कृष्ण-भक्ति में लीन रहती थी और उन्हें पति मानकर गीत लिखती और गाती थी। इसके पति को उसका यह व्यवहार पसन्द नहीं था। अतः उन्होंने उसे मारने के भी प्रयत्न किये परन्तु दैवीय शक्ति के कारण वह हर बार बच गई। एक जहर का प्याला भी उसके पास पीने के लिए भेजा गया। एक काला सर्प भी एक टोकरी में उसके पास ले जाया गया परन्तु मीराबाई हर बार बच गई। मीरा के पद हिन्दी साहित्य की धरोहर हैं तथा कवियों और संगीतकारों द्वारा देश-भर में गाये जाते हैं।

पन्ना धाय—यह राणा उदयसिंह की धाय थी जिसने अपने बच्चे को बनवीर से उसे उदयसिंह बताकर मरवा लिया था परन्तु उदयसिंह की रक्षा की थी और राजपूत सरदारों की सहायता से सुरक्षित रूप से उसे कुम्भलगढ़ के किले में भेज दिया गया इसलिये पन्ना दाई की वफादारी और त्याग आज भी प्रसिद्ध है

राणा प्रताप राणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र राणा प्रताप मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। वे उन व्यक्तियों में से थे जो झुकने की बजाय टूट जाना अधिक अच्छा समझते थे। उन्होंने अगणित कष्ट सहे परन्तु अकबर के हाथ की कठपुतली बनना स्वीकार नहीं किया। अकबर ने अपने सेनापति आमेर के राजा मानसिंह को एक विशाल सेना के साथ राणा प्रताप का गर्व चूर

करने के लिये भेजा, हल्दीघाटी का विख्यात युद्ध हुआ। ऐसा कहा जाता है कि जब राणा प्रताप को युद्ध भूमि में शत्रु ने घेर लिया तो उन्हें खतरे में देखकर एक विश्वसनीय सेवक राणा झाला उनकी ओर लपका तथा शाही छत्र छीनकर उसे अपने सिर के ऊपर उठा लिया। मुगल सेना ने राणा झाला को राणा प्रताप समझ कर उस पर आक्रमण किया। झाला मारा गया परन्तु उसने राणा प्रताप को बचा लिया। राणा प्रताप अपने प्रिय घोड़े चेतक पर पहाड़ियों की ओर बचकर निकल गये। यद्यपि युद्ध में पराजित हो गये तथापि वे स्वतन्त्र रहे और मुगल सम्राट अकबर के आगे झुके नहीं। उन्होंने चित्तौड़ के दुर्ग को शत्रु से मुक्त कराने की शपथ ली और पुनः सेना को एकत्रित किया।

भामाशाह—यह राणा प्रताप के मंत्री थे। हल्दीघाटी के मैदान में पराजय के बाद राणा को कुछ धन का अभाव हो गया था। उस समय भामशाह ने अपनी निजी सम्पत्ति राणा को लाकर दी जिससे राणा 12 वर्ष तक 25 हजार सेना रख सकते थे। यह इनकी दानशीलता व त्याग की कहानी है

महाराणा अमरसिंह—अमरसिंह राणा प्रताप के पुत्र थे। ये अपने पिता की मृत्यु के बाद मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। कई युद्ध करने के बाद अमरसिंह को दिल्ली के मुगल सम्राट जहांगीर की प्रभुसत्ता स्वीकार करनी पड़ी। इससे लगभग 12 वर्ष तक शांति बनी रही। इसी काल में मेवाड़ ने कला एवं साहित्य के क्षेत्र में भारी प्रगति की इस काल को 'राजपूत काल का अभ्युदय' ठीक ही कहा गया है।

राजसिंह—यह शाहजहाँ और औरंगजेब के काल से मेवाड़ का शासक था। इसने शाहजहाँ के विरुद्ध चित्तौड़ के दुर्ग की मरम्मत कराई। इसने औरंगजेब की धार्मिक नीति का भी विरोध किया। मारवाड़ के अजीतसिंह जिसे वीर दुर्गादास ने औरंगजेब की कैद से छुड़ाया था, के साथ मुगलों के खिलाफ सन्धि की। अतः यह मन में सदैव ही मुगलों के विरुद्ध रहे।

राव चूड़ा—राठौड़ वंश का प्रथम सबसे बड़ा शासक था जिसने मण्डोर, नागौर आदि को छीना और मारवाड़ के विस्तार को बढ़ा दिया परन्तु जैसलमेर के भाटियों के धोखे में आकर वह नागौर में मारा गया।

राव रणमल—इसकी बहिन हंसाबाई की शादी राणा लाखा से हुई थी। उसकी मृत्यु के बाद यह अपने भानजे मोकल का शासन-भार संभालने को मेवाड़ आ गया। इसने वहाँ राठौड़ अधिकारी शासन में भर दिये। इसके व्यवहार से अप्रसन्न होकर मेवाड़ के सरदारों ने दुर्ग में इसकी हत्या कर दी।

राव जोधा—यह मारवाड़ का महान शासक था, जिसने जोधपुर नगर बसाया और वहाँ के किले का निर्माण कराया।

राव मालदेव—यह भी मारवाड़ का महान योद्धा था जिसने गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के विरुद्ध मेवाड़ की रक्षा की और उदयसिंह को चित्तौड़ की गद्दी पर बैठाया। इसने 52 युद्ध जीते थे। जब हुमायूं शेरशाह सूरी से परास्त होकर भाग रहा था तो मालदेव ने उसको सहायता नहीं दी और इसे अमरकोट जाना पड़ा। शेरशाह सूरी के विरुद्ध भी इसने एक भीषण युद्ध 1543 ई. में जैतारण गाँव में किया था जिसमें शेरशाह जीत तो गया परन्तु इसकी बहादुरी देखकर वह जोधपुर की ओर नहीं बढ़ा।

राव चन्द्रसेन—मालदेव का यह पुत्र 18 वर्ष तक मारवाड़ की रक्षा के लिए लड़ता रहा और अन्त में प्राण गँवा दिये। राणा प्रताप की तरह इसने भी अकबर के सामने अपना सिर नहीं झुकाया जबकि इसका भाई उदयसिंह अकबर से जा मिला और उससे जोधपुर पर आक्रमण कराकर उसे मुगल साम्राज्य में मिलवा दिया।

राव जसवन्तसिंह—शाहजहाँ के राज्यकाल में इनको मारवाड़ का शासक घोषित किया गया और इनको सम्मान और पुरस्कार दिये गये। अतः इन्होंने शाहजहाँ की सेवा की। उत्तराधिकार के प्रश्न पर इन्हें औरंगजेब को दबाने के लिए भेजा गया और इन्होंने उसके विरुद्ध धरमत में घमासान युद्ध किया। सफलता न मिलने पर कुछ सरदारों ने इसे जोधपुर भेज दिया। यह औरंगजेब को पसन्द नहीं करते थे। इसलिए उसकी ओर से लड़ने

पर भी इन्होंने उसके विरुद्ध काम किया। यह विद्या-प्रेमी थे और इन्होंने दो नाटक भी लिखे थे।

अजीतसिंह—इसका जन्म जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद हुआ था। औरंगजेब ने इसे मारवाड़ का उत्तराधिकारी नहीं माना बल्कि कैद में डाल दिया। वीर दुर्गादास ने इसे कैद से मुक्त कराया और कालिन्द्री में रखकर इसका पालन-पोषण कराया और फिर मारवाड़ के सिंहासन पर बैठाया। फिर अजीतसिंह ने मेवाड़ के राणा राजसिंह से मिलकर मुगलों के विरुद्ध युद्ध किया। कुछ सरदारों ने अजीतसिंह की भी हत्या उसके पुत्र द्वारा करवा दी।

दुर्गादास—दुर्गादास मारवाड़ के वीर योद्धा थे। जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली के मुगल बादशाह औरंगजेब ने उसके मरणोपरान्त पुत्र अजीतसिंह को गद्दी का असली हकदार मानने से इन्कार कर दिया। बालक अजीतसिंह और उसकी मां को कैद कर दिल्ली ले जाया गया। औरंगजेब ने युवराज अजीतसिंह का धर्म परिवर्तन कर उसे मुसलमान बनाने की भी कोशिश की। इस अवसर पर वीर दुर्गादास सामने आया। इन्होंने सपेरे का वेष धारण किया और कैद से राजकुमार अजीतसिंह एवं उसकी मां को मुक्त कराने में सफल हो गये। मुगल सेना ने उसका तेजी से पीछा किया परन्तु वे जोधपुर पहुँच गये जहाँ उन्होंने मुगल सम्राट का विरोध करने के लिये संगठन किया। इस युद्ध में उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने भी दुर्गादास की सहायता की। दुर्गादास ने संघर्ष जारी रखा तथा औरंगजेब की मृत्यु के बाद अजीतसिंह को जोधपुर की गद्दी पर बैठा गया।

राजकुमारी कृष्णा कुमारी—कृष्णा कुमारी उदयपुर की राजकुमारी थी। उसकी सगाई जोधपुर के राजा मानसिंह के साथ हुई थी, परन्तु जयपुर के राजा जगतसिंह भी उससे विवाह करना चाहते थे। उनका कहना था कि राजकुमारी पर उनका अधिकार पहले है। इस पर परबतसर के निकट दोनों राजाओं में युद्ध हुआ जिसमें जोधपुर का राजा पराजित हो गया। जब यह समाचार उदयपुर पहुँचा तो राजा अजीब असमंजस में पड़ गये। राजकुमारी ने जयपुर के राजा जगतसिंह के साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया क्योंकि यह न केवल उसका अपितु पूरे परिवार का अपमान था। राजकुमारी कृष्णा ने विषमान कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली।

भारमल—यह आमेर का कछवाहा राजा था जो अपने भतीजों रत्नसिंह और आसकरण को मारकर आमेर का राजा बन बैठा था। यह बहुत कूटनीतिज्ञ था। इसने अपनी पुत्री की शादी अकबर से कर दी थी और उसका कृपापात्र बन गया था। इसकी पुत्री से ही शहजादे सलीम का जन्म हुआ था।

राजा मानसिंह—वे आमेर राज्य के एक शासक थे। उनके दादा भारमल पहले ही मुगल सम्राट से दोस्ती कर चुके थे। अकबर ने मानसिंह का सम्मान ओहदे और पदवी देकर किया। वे मुगल साम्राज्य के एक शक्तिशाली स्तम्भ थे। अकबर ने उन्हें महाराणा प्रताप को यह समझाने के लिए भेजा कि वे मुगल सम्राट की सत्ता स्वीकार करलें। परन्तु प्रताप झुके नहीं जिसका परिणाम हल्दीघाटी का युद्ध हुआ।

मिर्जा राजा मानसिंह—इसने तीन मुगल बादशाहों—जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब की सेवा की थी। बिहारी इसी का राजदरबारी कवि था। मुगलों की ओर से इसे दक्षिण में कंधार और बिहार में युद्ध करने के लिए भेजा गया था। पुरन्दर पर घेरा डालकर इसने शिवाजी को औरंगजेब से सन्धि करने पर विवश कर दिया। अन्त में यह बीजापुर से लौट रहा था तो औरगजेब ने इसे जहर दिलवा कर मरवा दिया। यह अनेक भाषाओं का ज्ञाता और रणकुशल था।

सवाई जयसिंह द्वितीय—यह कछवाहा राजपूत राजा था जिसने जयपुर नगर की स्थापना की थी। इन्होंने पांच वेधशालाएँ भी स्थापित करायी थीं। औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह ने इसे आमेर से हटा दिया था, जिसे इन्होंने मारवाड़ के अजीतसिंह और मेवाड़ के अमरसिंह के साथ मेल करके मुगल शक्ति के विरुद्ध लड़कर वापस प्राप्त किया था। बहादुरशाह के पुत्र जहांदारशाह ने इन्हें मालवा का सूबेदार नियुक्त किया था।

राव सुर्जन—बूँदी के राजा राव सुर्जन ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। मुगल आधिपत्य में वृद्धि करने के लिए उसने गोंड नरेश को परास्त किया और अकबर के दरबार में पेश किया। इससे अकबर ने उसे राव राजा की उपाधि दी और जागीर में वृद्धि कर दी। फिर सुर्जन ने बनारस में रहकर द्वारिकापुरी में रणछोड़जी का मन्दिर बनवाया और धर्मशालाएँ, जलाशय, घाट, महल आदि का निर्माण कराया। अपनी दानशीलता के लिए वह प्रसिद्ध हो गया। चन्द्रशेखर कवि ने 'सुर्जन चरित' लिखा है।

झाला जालिमसिंह—18 वर्ष की आयु में यह कोटा राज्य का सेनापति था। इसने कोटा राज्य की रक्षा अंग्रेजों, मराठों तथा राजपूतों से अपनी कूटनीति द्वारा की। इस प्रकार यह कोटा का सर्वेसर्वा था। इसकी मृत्यु के बाद, इसके उत्तराधिकारी ने झालावाड़ राज्य की नींव डाली।

मेजर शैतानसिंह—शैतानसिंह भारतीय सेना में एक मेजर थे। 1963 के भारत-पाक युद्ध में उन्होंने भी अत्यन्त साहस और वीरता का प्रदर्शन किया। वे राजस्थान के निवासी थे। उन्होंने मातृभूमि की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की बलि दे दी। वे सदा सर्वदा इतिहास में मातृभूमि के एक शूरवीर की तरह याद किये जायेंगे।

सागर मल गोपा—वे जैसलमेर के एक स्वतन्त्रता सेनानी थे। ब्रिटिश शासन काल में जब सरकार के विरुद्ध आन्दोलन चला तथा राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, सागर मल गोपा प्रतिबन्धित प्रजा मण्डल के नेता थे। उन्हें गिरफ्तार कर कैद में डाल दिया गया। जेल में ही रहस्यमय परिस्थिति में उनकी मृत्यु हो गई।

राव बीकाजी—राव बीकाजी ने बीकानेर नगर के संस्थापक थे। बीकानेर की स्थापना जोधपुर के राजा द्वारा दरबार में राव बीकाजी के कानाफूसी करते समय व्यंग्य से यह पूछने पर कि क्या वे किसी नये क्षेत्र को जीतने की योजना बना रहे है, के परिणाम-स्वरूप हुई। इस प्रकार राव बीका ने अपनी योग्यता का परिचय राजा जोधपुर को दिया।

महाराजा गंगासिंह—महाराजा गंगासिंह को आधुनिक भारत का भगीरथ कहा जाता है। गंगनहर को लाने का श्रेय इन्हीं को है। वर्तमान गंगानगर जिला भी इन्होंने बसाया था।

कमलावती—यह मेवाड़ की बहादुर व साहसी रानी थी। राणा की मृत्यु के बाद अहमदशाह द्वारा किले पर आक्रमण के समय रानी कमलावती के साथ केवल 500 सैनिक थे लेकिन रानी ने बहादुरी से दुश्मन का मुकाबला किया और अन्त में चिता में जलकर भस्म हो गई।

विद्याधर—यह सवाई जयसिंह के समकालीन शिल्पकार थे। सन् 1727 में जब जयपुर नगर बसाया गया था तो इन्होंने ही जयपुर नगर का नियोजित नक्शा बनाते हुए उसे वर्तमान का रूप दिया जो आज विश्व के नियोजित नगरों में एक प्रमुख स्थान रखता है।

ऐतिहासिक महत्व के स्थान

अजमेर—अजमेर की स्थापना 7वीं सदी में अजयराज चौहान ने की थी। अजमेर दो शब्दों से बना है, अजय + मेरू, जिसका अर्थ है वह पर्वत जो विजय न किया जा सके। यह चारों ओर से पहाड़ियों व झीलों से घिरा हुआ एक सुन्दर नगर है। अजमेर चौहान राजाओं की राजधानी था। 1556 में मुगलों ने इस पर कब्जा कर लिया और बाद में ब्रिटिश सरकार के हाथों में आ गया। 1956 में अजमेर का विलय राजस्थान में हो गया। अजमेर की विश्वविख्यात ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह मुसलमानों का पवित्र धार्मिक स्थल है। उर्स के मौके पर यहां देश के कौने-कौने से जायरीन आते हैं। अकबर भी यहां सलीम को पुत्र रूप में प्राप्त करने के बाद आगरे से पैदल चलकर जियारत के लिए आया था।

अलवर—इसकी स्थापना 1775 ई. में राव प्रतापसिंह ने की थी। यह उन देशी रियासतों में से है जिनकी राजस्थान की साँस्कृतिक परम्परा को भारी देन है। यहां दर्शनीय स्थल हैं—मथुराधीश का मन्दिर, विजयसागर झील, निकुम्भ महल, सलीम सागर, सूरजकुण्ड और सूरज महल। अलवर का किला ऊंची पहाड़ी पर स्थित है तथा

भव्य है । अलवर एवं आस-पास का क्षेत्र प्राकृतिक छटा के लिए विख्यात है ।

सरिस्का वन्य जीवाभयारण्य यहाँ से केवल 32 किलोमीटर दूर है जहां चीते, हिरन आदि को देखा जा सकता है । अलवर के पास एक अन्य स्थान पांडुपोल है जिसके सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि यहां पांडवों ने अपने अज्ञातवास काल में निवास किया था ।

आमेर—यह जयपुर से 9 किलोमीटर दूर स्थित है । जयसिंह द्वितीय के पूर्व के कछवाहा राजपूतों की यह राजधानी रहा है । यहाँ राजपूत राजाओं का शीशमहल, दीवाने आम, दीवाने खास, शिलादेवी का मन्दिर आदि दर्शनीय स्थल हैं ।

आहड़—यह उदयपुर के पास स्थित कस्बा है जहाँ चार हजार वर्ष पूर्व एक प्राचीन सभ्यता का विकास हुआ था जिसके अवशेष यहाँ के पुरातत्व विभाग में रखे हैं । इसी को मेवाड़ के प्रथम शासक बप्पा रावल ने अपनी राजधानी बनाया था ।

भरतपुर—भरतपुर नगर राजस्थान के पूर्वी भाग में स्थित है । यह राजस्थान का प्रवेश द्वार कहलाता है । इसका निर्माण विख्यात जाट नरेश सूरजमल ने करवाया था । भरतपुर का किला मिट्टी से बना होकर भी बहुत मजबूत है । इस किले के दरवाजे महाराजा जवाहरसिंह दिल्ली के लाल किले से लाये थे ।

भरतपुर से केवल 5 किलोमीटर दूर घना पक्षी विहार पक्षी प्रेमियों के लिए अत्यन्त आकर्षण का केन्द्र है । यहाँ साइबेरिया जैसे दूरस्थ स्थल से पक्षी उड़कर आते हैं । यही नहीं यहां आप निकट से भिन्न-भिन्न जाति और रंग के पक्षियों एवं उनकी आदतों का अध्ययन कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त भरतपुर का विकास 'सूखे बन्दरगाह' के रूप में किया जा रहा है । उसे एक औद्योगिक नगर का रूप भी प्रदान किया जा रहा है । यहाँ रेल के डिब्बे बनाने की एक फैक्ट्री तथा ऑर्डीनेंस (रक्षा फैक्ट्री पहले से ही कार्य कर रही है ।

बयाना—भरतपुर से लगभग 38 किलोमीटर दूर स्थित है । बयाना के निकट ही खानवा का मैदान है, जहां 1528 में बाबर और राणा सांगा के बीच ऐतिहासिक युद्ध हुआ था । जहाँ गुप्तकाल के कुछ सिक्के मिले हैं । यहाँ दो बुर्ज हैं, इनमें से एक को गुप्त शासनकाल का समझा जाता है, परन्तु ऐसा सोचना गलत है । दूसरी बुर्ज 428 विक्रम सम्वत् में वरिक विष्णुवर्धन पुण्डरीक द्वारा किये गये यज्ञ की स्मृति के रूप में बनी है ।

आबू – यह राजस्थान का शिमला है क्योंकि यह अरावली की सबसे ऊँची चोटी पर स्थित है । इसकी ऊँचाई 1,220 मीटर है यहाँ की मुख्य झीलें नक्की झील और ट्रेवोल ताल हैं जहां नौका विहार और मछली पकड़ने का आनन्द लिया जा सकता है । ग्यारहवीं शताब्दी में यहाँ विमलशाह द्वारा आदिनाथ और नेमनाथ के मन्दिर का निर्माण कराया गया था जिन्हें देलवाड़ा जैन मन्दिर के नाम से पुकारा जाता है । इनकी स्थापत्य कला और वास्तु कला देखने योग्य है । इसके अतिरिक्त गौमुख, अम्बा माता का मन्दिर, वशिष्ठ का मन्दिर अन्य देखने योग्य स्थान है । 6·5 किलोमीटर दूर यहाँ एक प्राचीन नगर चन्द्रावली स्थित है । 8 किलोमीटर दूरी पर अचलगढ़, अचलेश्वर महादेव का मन्दिर, शान्तिनाथ जैन मन्दिर आदि भी दर्शनीय हैं ।

वैराठ – वैराठ एक अत्यन्त प्राचीन कस्बा है । अब इसका नाम विराटनगर रखा गया है क्योंकि यह राजा विराट की राजधानी थी । महाभारत के वर्णन के अनुसार पांडवों ने अपने वनवास का गुप्तकाल राजा विराट की छत्रछाया में व्यतीत किया था । उनके गुप्त निवास का स्थान पांडुपोल विराटनगर के समीप ही है । समीप की पहाड़ियों में ही अशोक के दो शिलालेख भी मिले हैं ।

बीकानेर– बीकानेर राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी भाग में स्थित है । यहाँ की जलवायु अत्यन्त शुष्क है । बीकानेर के किले का निर्माण 1558 –92 में हुआ था । शहर के चारों ओर 7 किलोमीटर लम्बी पत्थर की दीवार है जिसमें नगर में प्रवेश करने के लिए 5 मुख्य द्वार हैं । आधुनिक बीकानेर की स्थापना महाराजा गंगासिंहजी ने की थी । उन्होंने 133 किलोमीटर लम्बी गंगनहर जिसकी तलहटी पक्की कंकरीट की है, बनाकर यहाँ के जन-जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन किया । गंगनहर ने यहां की प्यासी और सूखी धरती को तृप्त

किया। यहाँ के प्रमुख दर्शनीय स्थानों में किला है जिसमें अनेक प्राचीन महल, मन्दिर, मस्जिद एवं वाचनालय, पुस्तकालय और शस्त्र-गृह हैं।

यहाँ माध्यमिक शिक्षा निदेशालय का कार्यालय, पशु चिकित्सा महाविद्यालय, मेडिकल कालेज, बी.एड. कालेज और पॉलीटेक्निक कालेज भी स्थित हैं।

बूंदी—मीणा सरदार बूंदा से छीनकर इसकी स्थापना राव देव ने की थी। बूंदी का मशहूर महल पहाड़ी की ढलान पर स्थित है। यह अपनी सुन्दरता एवं भव्यता के लिए विख्यात है। बूंदी को सुप्रसिद्ध कवि सूरजमल की जन्मस्थली होने का गौरव प्राप्त है। बूंदी की अपनी अलग ही चित्रकला की शैली है।

भीनमाल—यह स्थान सांचोर के अति निकट स्थित है जिससे यह संकेत मिलता है कि प्राचीन काल में भीनमाल संस्कृति एवं सभ्यता का एक मुख्य स्थल था। 7वीं सदी में चीनी यात्री ह्वेनसांग भी यहां आया था।

बिजोलिया—परमार राजपूतों से सम्बन्धित यह कस्बा उदयपुर जिले में ऐतिहासिक महत्व का है। बिजोलिया प्राचीन जैन मन्दिरों के लिए विख्यात है, यद्यपि अब वे कतई खण्डहर रूप में हैं। राजस्थान में अहिंसा के सिद्धान्त पर प्रथम सत्याग्रह आन्दोलन यहीं से आरम्भ हुआ था।

चित्तौड़—यह मेवाड़ (उदयपुर) की प्राचीन राजधानी एवं एक ऐतिहासिक नगर है। इसकी स्थापना के सम्बन्ध में दो किंवदन्तियां प्रचलित हैं—कुछ कहते हैं कि भीम ने चित्तौड़ की स्थापना की थी. जबकि अन्य की मान्यता है कि चित्रांगद मौर्य द्वारा स्थापित किये जाने के कारण इसका नाम चित्तौड़ पड़ा। बप्पा रावल ने 1734 में चित्तौड़ के किले पर विजय प्राप्त की; उसके बाद महाराणा कुम्भा, राणा सांगा आदि जैसे अनेक वीर सिसोदिया राजाओं ने इस पर शासन किया। चित्तौड़ को उसके शासकों की शौर्य एवं बलिदान की गाथाओं पर सदा गौरव रहा है। मुगलों के शासनकाल में चित्तौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी (1303), बहादुरशाह (1523) और अकबर (1567) ने आक्रमण किये परन्तु मुगल शासकों के सामने घुटने नहीं टेके।

चित्तौड़गढ़ का किला भारत के किलों में अत्यन्त प्राचीन एवं भव्य किला है। राणा कुम्भा का महल राजपूत वास्तु एवं निर्माण कला का नमूना है। यहाँ के अन्य दर्शनीय स्थल हैं भक्त महिला कवयित्री मीराबाई का मन्दिर, राणा कुम्भा द्वारा निर्मित जय-स्तम्भ, कीर्ति स्तम्भ तथा पद्मिनी का महल।

हनुमानगढ़ (भटनेर) यहाँ एक किला है जो प्राचीन काल में भटनेर के नाम से विख्यात था। जब तैमूर ने 1398 में भारत पर आक्रमण किया था, तब वह भटनेर से होकर गुजरा था।

जयपुर—जयपुर राजस्थान की राजधानी है। इसकी स्थापना 1727 में सवाई जयसिंह ने की थी। जयपुर भारत का गुलाबी नगर कहलाता है। पूरे भारत में यह सबसे अच्छा योजनाबद्ध ढंग से बसा हुआ नगर है: जयपुर को भारत का 'पेरिस' कहना उचित ही है।

हवा महल अपनी निर्माण कला के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ का जन्तर-मन्तर देश की अन्य वेधशालाओं में सबसे बड़ा है।

जालौर—यह एक प्राचीन नगर है, जहां पहाड़ पर एक किला है। इस किले पर अल्तमश तथा अलाउद्दीन खिलजी ने हमला किया था।

जहाजपुर—यह शाहपुरा उपखण्ड का एक कस्बा है। यह वह स्थान है जहां जनमेजय ने अश्वमेध यज्ञ किया था। उसी से इसका यह नाम पड़ा। यहां चौहान काल के कुछ प्राचीन शिलालेख मिले हैं।

जोधपुर—जोधपुर राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी भाग में स्थित है। इसका निर्माण 1469 में राव जोधाजी ने कराया था। जोधपुर में अनेक देखने योग्य स्थान है जिनमें जसवन्त मेमोरियल, उम्मेद भवन महल—जहां प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों प्रकार की सुख-सुविधाएं उपलब्ध हैं। जोधपुर में 8 किलोमीटर दूर स्थित मण्डौर के उद्यान अत्यन्त रमणीय हैं।

जैसलमेर जैसलमेर राजस्थान के रेगिस्तानी भाग में स्थित है। यह नगर अपनी वास्तुकला के लिए प्रसिद्ध है। इस नगर की स्थापना भाटी राजपूत राजा राव जैसल ने सन् 1156 में की थी। किले के अन्दर कई विख्यात मन्दिर है। यहां एक बहुत अच्छा पुस्तकालय है जिसमें खजूर के पत्तों पर लिखी कई अलभ्य पांडुलिपियां संग्रहीत हैं। इनमें से कई तो 10वीं और 12वीं सदी

की है। जैसलमेर के ऊनी कम्बल प्रसिद्ध है। सीमा पर स्थित होने के कारण जैसलमेर का बहुत महत्त्व है।

कालीबंगा—गंगानगर जिले में एक प्राचीन स्थान है। यहां पर खुदाई में कुछ प्राचीन अवशेष मिले है जिनसे सिन्धु घाटी सभ्यता के समकालीन यहां की सभ्यता का परिचय मिलता है।

कोलायत—बीकानेर से लगभग 38 किलोमीटर दूर स्थित है। यहां एक पवित्र झील है जो कपिल मुनि का स्थल समझी जाती है। प्रति वर्ष अक्टूबर में यहां एक मेला लगता है।

केरड़ा—उदयपुर जिले में स्थित यह स्थान जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथजी के प्राचीन एवं विशाल मन्दिर के लिए विख्यात है।

कोटा—कोटा नगर चम्बल नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। इस सुप्रसिद्ध नगर की स्थापना भील सरदार कोटिया ने की थी। बाद में इस पर राजपूतों ने कब्जा कर लिया। सन् 1708 में मेवाड़ के महाराणा ने कोटा के शासक राजा भीमसिंह को 'महाराव' की उपाधि प्रदान की। यह राजस्थान का प्रमुख औद्योगिक नगर है। कोटा के म्यूजियम मे राजपूत कला की अलभ्य पांडुलिपियां एवं चित्र संग्रहीत हैं। नगर से लगभग 48 किलोमीटर दूर प्रसिद्ध दर्रा वन्यजीव अभ्यारण्य है।

मण्डौर—मण्डौर कभी मारवाड़ की राजधानी रह चुका है। यहां जोधपुर के दिवंगत शासकों की छतरियां हैं जो दूर से चमकती हैं। ये छतरियां बौद्ध, जैन कालीन वास्तुकला के अनोखे नमूने हैं। मण्डौर अपनी इन छतरियों के कारण ही पर्यटकों का आकर्षण केन्द्र है।

नवलगढ़—देश के प्रमुख उद्योगपति 'पोद्दार' का यह मूल निवास स्थान है। यहां एक विख्यात वाणिज्य महाविद्यालय है।

नागदा—उदयपुर जिले में एकलिंगजी से कुछ ही किलोमीटर दूर यह नगर प्राचीन काल में राजधानी रहा है। यहां का 'सहस्रबाहु' मन्दिर आने वालों के लिए दर्शनीय स्थल बना हुआ है।

फलौदी—जोधपुर जिले का यह बड़ा कस्बा जोधपुर के उत्तर में मरुस्थल के आंतरिक भाग में बसा हुआ है। ऐसी कथा प्रचलित है कि सन् 1515 में तत्कालीन जैसलमेर रियासत की राजधानी लघुरवा की फलवर्धिनी देवी ब्राह्मणी सिद्ध कला के साथ इस क्षेत्र की ओर आ रही थी तो खेजड़ों के कारण उनका रथ आगे नहीं बढ़ सका, देवी को वहां ठहरना पड़ा और तब ही से इस स्थान का नाम फलौदी पड़ गया।

पोकरण—थार मरुस्थल के उत्तरी-पश्चिमी आंतरिक भाग में फलौदी के निकट पोकरण बसा हुआ है। यहीं भारत ने 18 मई, 1974 को अपने प्रथम भूमिगत परमाणु विस्फोट का प्रयोग किया था।

पुष्कर—हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ स्थान, जिसे तीर्थों का गुरु माना जाता है, पुष्कर अजमेर से ग्यारह किलोमीटर दूर स्थित है। ब्रह्मा का एकमात्र मन्दिर पुष्कर में ही है। प्रतिवर्ष नवम्बर में कार्तिक पूर्णिमा पर यहां एक पशु मेला लगता है।

रणकपुर—यह स्थान आबू के निकट है। यह स्थल हिन्दुओं एवं जैनों दोनों के लिए धार्मिक महत्व का है।

रणथम्भोर—सवाई माधोपुर के निकट यह एक ऐतिहासिक कस्बा है। यह स्थान 1301 में यहां राणा हमीर और अलाउद्दीन खिलजी के मध्य हुए युद्ध के कारण इतिहास में प्रसिद्ध है।

सांचौर—यह एक प्राचीन कस्बा है जो किसी समय सत्यपुरी नगरी के नाम से जाना जाता था। ऐसा कहा जाता है कि यह नगरी सरस्वती नदी के किनारे बसी हुई थी, परन्तु अब सरस्वती नदी पट चुकी है। औरंगजेब ने सांचौर पर आक्रमण इस कारण किया कि उसके पुत्र अकबर ने विद्रोह कर दुर्गादास के साथ यहीं शरण ली थी। इसी क्षेत्र में होकर मारवाड़ की पांच नदियां बहती हैं, इसी कारण इसे 'राजस्थान का पंजाब' कहा जाता है।

सलेमाबाद—किशनगढ़ के निकट स्थित यह स्थान वहां के प्राचीन वैष्णव मंदिर के कारण प्रसिद्ध है।

उदयपुर—मुगल सम्राट अकबर की सेनाओं ने जब चित्तौड़ के विख्यात किले पर कब्जा कर लिया, तो मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह ने 1583 में इस प्रसिद्ध नगर की स्थापना की। उदयपुर 'झीलों की नगरी' के रूप में प्रसिद्ध है।

राजस्थान के प्राचीन भाग

7वीं शताब्दी में प्राचीन राजपूताना निम्न भागों में विभाजित था।

1. गुर्जर 2. बधारी 3. बैराठ 4 मथुरा।

राजस्थान के प्रमुख शिलालेख

1170 ई. बिजोलिया का शिलालेख।
1273 ई. चीखे का शिलालेख।
1274 ई. रसियाजी की छमी का शिलालेख।
1285 ई. आबू का अचलेश्वर शिलालेख।
1428 ई. ऋंगी ऋषि का शिलालेख।
1428 ई समिद्धेश्वर के मन्दिर का शिलालेख।
1434 ई. देलवाड़ा का शिलालेख।
1439 ई. रणकपुर प्रशस्ति।
1460 ई. कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति।
1460 ई. चित्तौड़ की कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति।
1594 ई. रामसिंह की बीकानेर प्रशस्ति।
1613 ई जमवा रामगढ़ प्रशस्त लेख।
1652 ई. जगन्नाथ राय की प्रशस्ति।
1676 ई राज प्रशस्ति महाकाव्यम्।

राजस्थान के प्रमुख राजपूत वंश तथा राज्य

1 कछवाहा—जयपुर, अलवर, शाहपुरा, प्रतापगढ़।
2. गहलोत— उदयपुर, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर।
3. चौहान— बूंदी, सिरोही. कोटा।
4. राठौड़— जोधपुर, किशनगढ़, बीकानेर।
5. यादव— करौली, जैसलमेर।
6. परमार— दांता ठिकाना।
7. भाटी— जैसलमेर।
8. झाला - झालावाड़।

राजस्थान के शहरों के प्राचीन नाम तथा राजधानी

आधुनिक नाम	प्राचीन नाम	राजधानी
जयपुर	ढूंढाड़	आमेर
बूंदी, कोटा	हाड़ौती	बूंदी
उदयपुर, चित्तौड़गढ़	मेवाड़	चित्तौड़गढ़
बीकानेर (नागौर)	जांगल	क्षत्रियपुर
जोधपुर	मारवाड़	मण्डोर
जैसलमेर	माड़	जैसलमेर
डूंगरपुर, बांसवाड़ा	वांगड़	—
प्रतापगढ़	कांठल	—

राजा एवं उनके सिक्के

राजा	सिक्का
महाराणा स्वरूपसिंह (उदयपुर)	स्वरूपशाही
महाराजा अखैसिंह (जैसलमेर)	अखैशाही
महाराजा विजयसिंह (जोधपुर)	विजयशाही

राजस्थान के महत्वपूर्ण नगरों के प्राचीन नाम

वर्तमान नाम	प्राचीन नाम
अलवर	अलौर
अरावली	आड़वाल
बयाना	श्रीपंथ
बृजनगर	झालरापाटन
बूंदी	हाड़ौती
बैराठ	विराट
चित्तौड़	खिजराबाद
धौलपुर	कोठी
हनुमानगढ़	भटनेर
जयसमन्द	ढेबर
जैसलमेर	माड़
जोधपुर	मरूभूमि
करौली	गोपाल पाल
मेवाड़	मेदपाट
नगरी	माध्यमिका
नागौर	अक्षत्रियपुर
रामदेवरा	रूणेचा
सांचौर	सत्यपुर
तारागढ़	गढ़बीरली

राजस्थान के प्रमुख किले तथा उनके निर्माता

किले का नाम	निर्माता
अचलगढ़	राणा कुम्भा
भरतपुर किला	सूरजमल जाट
चित्तौड़ किला	सिसोदिया वंश
जालौर किला	परमार वंश
जोधपुर किला	राठौड़ वंश
जैसलमेर किला	महारावल जैसलदेव

कुम्भलगढ़ (उदयपुर)	राणा कुम्भा
मांडलगढ़ किला (उदयपुर)	चौहान वंश
नाहरगढ़ (जयपुर)	कछवाहा वंश
रणथम्भौर किला	—
सिंधाना	वीरनारायण
सिवाना किला	पंवार राजा नारायण
तारागढ़ (अजमेर)	अजयपाल

कुछ अन्य प्रसिद्ध किले

किले का नाम	स्थान
गागरोन का किला	झालावाड़
जयगढ़	जयपुर
इन्दरगढ़	कोटा
विजयगढ़	भरतपुर
तोहन दुर्ग	कांकरोली
शेरगढ़	कोटा
जूनागढ़	वीकानेर
डीग का किला	भरतपुर
भटनेर का किला	हनुमानगढ़

राजस्थान की प्रमुख छतरियां

छतरियों के स्थान	राजवंश
अलवर	राजा वख्तावरसिंह
आहड़ (उदयपुर)	सिसोदिया वंश
वदनोर	जोधसिंह
वाण्डोली	महाराणा प्रताप
देव कुण्ड (वीकानेर)	राव वीकाजी एवं रायसिंह
मण्डोर (जोधपुर)	राठौड़
गैटोर (नाहरगढ़-जयपुर)	कछवाहा

राजस्थान के मुख्य महल

महल का नाम	स्थान
चन्द्रमहल	जयपुर
गोपाल भवन	डीग
जगमन्दिर महल	उदयपुर
जगनिवास महल	उदयपुर
रामवाग पैलेस	जयपुर
राणा कुम्भा महल	चित्तौड़गढ़
विनय विलास	अलवर

राजस्थान के महत्वपूर्ण नगर तथा उनके संस्थापक

नगर	संस्थापक
अजमेर	अजयपाल
अलवर	राव प्रतापसिंह
भरतपुर	राजा सूरजमल
वीकानेर	राव वीका जी
चित्तौड़गढ़	चित्रांगद मौर्य
डूंगरपुर	महारावल डूंगरसिंह
दौराय	दारा
गंगानगर	श्री गंगासिंह
जोधपुर	राव जोधाजी
जयपुर	सवाई जयसिंह
जैसलमेर	भाटी जैसल
जहाजपुर	राजा जनमाजय
खिजरावाद	खिजर खां
किशनगढ़	किशनसिंह राठौड़
पंचकुण्ड	पाण्डव
प्रतापगढ़	महारावल प्रतापसिंह
रतनगढ़	महाराजा रतनसिंह
सूरतगढ़	महाराजा सूरतसिंह
सरदार शहर	महाराजा सरदारसिंह
सुजानगढ़	महाराजा सुजानसिंह
उम्मेदनगर	उम्मेदसिंह
उदयपुर	राणा उदयसिंह

राजस्थान की मुख्य मस्जिदें एवं मकबरें

नाम	स्थान
ख्वाजा मुईनद्दीन चिश्ती की दरगाह	अजमेर
अकवर की मस्जिद	आमेर
ऊषा मस्जिद	वयाना
अलाउद्दीन की मस्जिद	जालोर
इकमीनार मस्जिद	जोधपुर
ईदगाह	जयपुर
नालीसर मस्जिद	सांभर
मेड़ता की मस्जिद	मेड़ता
ढाईदिन का झोंपड़ा	अजमेर
गुलाव खां मकवरा	जोधपुर
गुलाम कलंदर	जोधपुर

राजस्थान के प्रसिद्ध स्तम्भ एवं मीनारें

स्तम्भ/मीनार	स्थान
विजयस्तम्भ	चित्तौड़
कीर्ति स्तम्भ	चित्तौड़
ईसरलाट (सरगासूली)	जयपुर
घण्टाघर	अजमेर
घण्टाघर	जोधपुर
गमता गाजी	जोधपुर
गूलर कालूदान	जोधपुर
सफदर जंग	अलवर
नेहर खाँ की मीनार	कोटा

राजस्थान के म्यूजियम

1. जयपुर का म्यूजियम—रामनिवास बाग में स्थित, इतिहास से सम्बन्धित कला कृतियाँ, तैलचित्र, तलवारें, ढ़ाल, कपड़े आदि का संग्रह।
2. राजपूताना म्यूजियम—अजमेर में स्थित, स्थापत्य-कला एवं मूर्तिकला के नमूनों का संग्रह।
3. बीकानेर म्यूजियम—सिन्धुघाटी सभ्यता से लेकर गुप्तवंश तक के नमूनों का संग्रह।
4. कोटा म्यूजियम—मध्यकाल की मूर्तिकला के नमूने संग्रहीत, अनेक पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित।
5. अलवर म्यूजियम - हथियारों तथा ऐतिहासिक पुस्तकों का संग्रह उपलब्ध।

राजस्थान के नगरों व क्षेत्रों के उपनाम

नगर व क्षेत्र का नाम	उपनाम
आबू	राजस्थान का शिमला
अजमेर	राजस्थान का हृदय
भरतपुर	राजस्थान का प्रवेश द्वार
उदयपुर	पूर्व का वेनिस/राजस्थान का काश्मीर
जयपुर	गुलाबी नगर/पूर्व का पेरिस
चित्तौड़गढ़	राजस्थान का गौरव
हल्दी घाटी	राजस्थान की थर्मा पोली
डूंगरपुर	पहाड़ों का नगरी

राजस्थान सरकार द्वारा प्रकाशित **'देश के दीवाने'** नामक पुस्तक में राजस्थान के स्वाधीनता सेनानियों की कीर्ति कथाओं के वर्णन हेतु राज्य सरकार ने निम्न स्वाधीनता सेनानियों के नामों को सम्मिलित किया है—

स्वाधीनता सेनानी का नाम	स्थान
1. सर्व श्री अर्जुनलाल सेठी	जयपुर
2. हीरालाल शास्त्री	जोबनेर (जयपुर)
3. बाबा श्री हरिश्चन्द्र शास्त्री	जयपुर
4. श्री जमनालाल बजाज	सीकर
5. श्री रामनारायण चौधरी	नीम-का-थाना
6. श्री लादूराम जोशी	मूंडवाड़ा (सीकर)
7. श्री नेतरामसिंह	गौरीर (झुन्झुनू)
8. सरदार श्री हरलालसिंह	हनुमानपुरा झुन्झुनू)
9. श्री घासीराम चौधरी	बासड़ी (नवलगढ़)
10. श्री ताड़केश्वर शर्मा	पचेरी (झुन्झुनू)
11. श्रीमती दुर्गादेवी	चेचेरी (झुन्झुनू)
12. पं श्री नरोत्तमलाल जोशी	झुन्झुनू
13. श्री केसरीसिंह बारहठ	उदयपुर
14. श्री मोतीलाल तेजावत	भाडौल (उदयपुर)
15 श्री जोरावरसिंह बारहठ	शाहपुरा (उदयपुर)
16. श्री प्रतापसिंह बारहठ	उदयपुर
17. श्री बलवन्तसिंह मेहता	उदयपुर
18. श्री मोहनलाल सुखाड़िया	नाथद्वारा
19 श्री माणिक्यलाल वर्मा	बिजोलिया
20. श्री साधु सीतारामदास	बिजोलिया
21. श्री दामोदरदास राठी	पोकरण
22. श्री सागरमल गोपा	जैसलमेर
23. श्री जयनारायण व्यास	जोधपुर
24. श्री बाल मुकुन्द बिस्सा	पीलवा (जोधपुर)
25. श्री मथुरादास माथुर	जोधपुर
26. श्री नृसिंह कछवाहा	जोधपुर
27. श्री छगनराज चौपासनीवाला	जोधपुर
28. श्री गोपालसिंह	खरवा (अजमेर)
29. श्री ऋषिदत्त मेहता	ब्यावर
30. श्री ज्वाला प्रसाद शर्मा	अजमेर
31. श्री नानाभाई खांट	डूंगरपुर

32.	श्री मांगीलाल पण्डया	डूंगरपुर
33.	सुश्री कालीबाई भील	रास्तापाल (डूंगरपुर)
34.	श्री गोकुललाल असावा	देवली
35.	श्री गोकुल भाई भट्ट	हाथल (सिरोही)
36,	श्री मास्टर आदित्येन्द्र	थून (नगर-भरतपुर)
37.	श्री रमेश स्वामी	भुसावर (भरतपुर)
38.	श्री गोकुल वर्मा	भरतपुर
39.	मास्टर श्री भोलानाथ	अलवर
40.	श्री शोभाराम	अलवर
41.	श्री वीरबलसिंह, रायसिंह	नगर (गंगानगर)
42.	श्री नानक भील	बूंदी
43.	श्री हरिदेव जोशी	खान्दू (बांसवाड़ा)
44.	श्रीमति नगेन्द्रबाला	कोटा
45.	पं. श्री अभिन्न हरि	कोटा
46.	श्री विजयसिंह पथिक	बुलन्दशहर
47.	श्री हरिभाऊ उपाध्याय	भौरासा (ग्वालियर)
48.	श्री जुगलकिशोर चतुर्वेदी	सौंख (मथुरा)
49.	श्री स्वामी कुमार नन्द	रंगून (बर्मा)
50.	बाबा श्री नरसिंहदास	मद्रास
51.	श्री देवीशंकर तिवाड़ी	लखनऊ

राजस्थान के उग्रवादी नेता

1.	श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा	—
2.	श्री मदनलाल धींगरा	—
3.	श्री अर्जुनलाल सेठी	जयपुर
4.	श्री केसरीसिंह बारहठ	कोटा
5.	श्री दामोदरदास राठी	अजमेर
6.	राव गोपालसिंह	खरवा
7.	श्री विजयसिंह पथिक	बुलन्दशहर
8.	श्री प्रतापसिंह बारहठ	उदयपुर
9.	श्री छोटेलाल	—
10.	श्री ब्रजमोहन लाल	—
11.	श्री राम नारायण चौधरी	नीम-का-थाना

भाग III

संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था

1 संस्कृति एवं कला

संस्कृति किसी भी राष्ट्र व देश तथा समाज की आत्मा होती है। संस्कृति किसी समाज को प्रवाहमय जीवन पद्धति हेतु मार्ग प्रशस्त करती है। संस्कृति के नियम शाश्वत होते है जो उस समय को एक विशिष्ट जीवन व्यातीत करने की चेतना प्रदान करते है। परिणामस्वरूप प्रत्येक देश, समाज अथवा राज्य एक विशिष्ट संस्कृति के लिये जाना जाता है।

संस्कृति शब्द से क्या अभिप्राय है, इस की जानकारी अपरिहार्य है। प्रायः सभ्यता एवं संस्कृति को पर्यायवाची मानकर विचार करने की भ्रान्तिपूर्ण प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।

सभ्यता से अभिप्राय किसी समाज की किसी काल विशेष में जीवन पद्धति से है। यह समाज का वाह्य स्वरूप है। सभ्यताएँ समय के साथ-साथ बदलती रही हैं और भविष्य में भी इनमें परिवर्तन होता रहेगा। परन्तु इन सभ्यताओं के मूल में व्यक्ति का चिंतन, मनन एवं क्रिया-कलापों को प्रेरणा देने वाले जो जीवन सिद्धान्त निर्मित हो जाते है, वह समाज में व्यक्ति को एक विशिष्ट जीवन पद्धति अपनाने हेतु मार्गदर्शक बन जाते है।

संस्कृति से तात्पर्य उन सिद्धान्तों से है जो समाज में एक निश्चित प्रकार का जीवन व्यातीत करने की प्रेरणा देते है। अतः के. एम. मुन्शी के अनुसार हमारे रहन-सहन के पीछे जो मानसिक अवस्था, मानसिक प्रवृत्ति है, जिसका उद्देश्य हमारे जीवन को परिष्कृत, शुद्ध और पवित्र बनाना है तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना है, वही संस्कृति है।

सौंदर्यानुभूति को व्यक्त करने के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग मानव पीढ़ी-दर-पीढ़ी करता चला आया है और इन माध्यमों में कला एक विशिष्ट एवं उत्तम माध्यम है। राजस्थान कला की अभिव्यक्ति के क्षेत्र में अत्यन्त समृद्ध एवं वैभवशाली रहा है। कला के अन्तर्गत चित्रकला, स्थापत्यकला, संगीत कला, मूर्तिकला तथा हस्तकला प्रमुख है और इन सभी कलाओं का कलात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से राजस्थान के जन-जीवन में न केवल प्रागैतिहासिक युग से बल्कि वर्तमान समय में भी इनका विशेष महत्व दृष्टिगोचर होता है। इन कलाओं के माध्यम से राजस्थान की संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को तथा यहां के गौरव को न केवल शौर्य में बल्कि कला के क्षेत्र में भी स्थायित्व व अमरत्व प्रदान किया गया है।

राजस्थान संस्कृति व कला की दृष्टि से न केवल राष्ट्रीय अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष छवि बनाये हुए है। राज्य को विरासत में मिली साहित्यिक, पुरातात्विक, लोक-संस्कृति एवं कलाओं को अधिक प्रभावी एवं सामान्य जन तक पहुंचानें तथा जीवत बनाये रखने के स्वतन्त्र विभाग की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत 12 सरकारी एवं अर्द्ध-सरकारी संस्थान कार्यरत है जो अपने-अपने क्षेत्र के कार्य को अपेक्षित गति देते हुए कार्य कर रहे है। इन सभी का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

1. **पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग**—राज्य विभाग द्वारा वैज्ञानिक उत्खनन, सर्वेक्षण, प्राचीन स्मारकों की मरम्मत, संग्रहालयों में संग्रहीत सामग्री का रासायनिक उपचार, प्राचीन सिक्कों का वर्गीकरण एवं पहचान, संग्रहालयों में सुरक्षित सामग्री का प्रदर्शन एवं कलादीर्घाओं का निर्माण आदि कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। वर्ष 1986-87 में इस विभाग को 80.46 लाख रुपये आंवटित किये गये हैं।

2. **राजस्थान राज्य अभिलेखागार**—राज्य सरकार के महत्वपूर्ण अभिलेखों को सुरक्षित रखने के लिये कार्यरत राज्य अभिलेखागार का मुख्यालय बीकानेर में है तथा जयपुर, अजमेर, अलवर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा एवं भरतपुर में इसकी शाखाएँ स्थापित है। वर्ष 1986-87 के दौरान "राजस्थान के स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास" तथा राजस्थान थ्रू एजेज" के द्वितीय एवं तृतीय खण्ड की पाण्डुलिपियां तैयार करवायी गई। साथ ही स्वतन्त्रता आन्दोलन सामग्री की 30 माइक्रो फिल्में तथा आठ स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों के संस्मरणों का ध्वन्यांकन किया गया।

3. **राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर**—राज्य की संस्कृति, इतिहास आदि प्राच्य विद्या के प्रतीक प्राचीन एवं दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थ सम्पदा के संरक्षण, सर्वे, शोध, सम्पादन तथा अज्ञात एवं अप्रकाशित ग्रन्थों का सम्पादन कर प्रकाशन करने के उद्देश्य से 1950 में

इस विभाग की स्थापना की गई। राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत 159 ग्रन्थों का प्रकाशन किया गया तथा 14 प्रकाशनाधीन हैं। राजस्थानी-हिन्दी संक्षिप्त शब्द कोष का प्रथम भाग भी बिक्री हेतु उपलब्ध है। जीर्णशीर्ण ग्रन्थों की 28150 माइक्रोफिल्म एक्सपोजर तैयार करवाये गये हैं।

4. अरबी-फारसी शोध संस्थान, टोंक—राज्य सरकार ने अरबी और फारसी भाषाओं के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक अनुसन्धान कार्य के लिये 1978 के दिसम्बर में टोंक में अरबी व फारसी के शोध संस्थान की स्थापना की है। संस्थान ने अरबी, हस्तलिपि के ग्रन्थों के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया है। इस संस्थान को कुछ ग्रन्थ भेंट स्वरूप भी प्राप्त हुए है। वर्ष 1986-87 में इसे 237.68 लाख रुपये सामान्य एवं विशेष प्रवृत्तियों के संचालन निमित्त प्राप्त हुए हैं।

5. राजस्थान संगीत नाटक अकादमी—संगीत जैसी ललितकला को प्रोत्साहन देने हेते राजस्थान में संगीत नाटक अकादमी कार्यरत है। यह संस्था नाटक प्रशिक्षण के शिविर भी आयोजित करती है।

6. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी—केन्द्रीय सरकार की नीति के अन्तर्गत राजस्थान ने विश्वविद्यालय के स्तर पर पुस्तकों को हिन्दी माध्यम से उपलब्ध करवाने के लक्ष्य की पूर्ति हेतु हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना की है। इस संस्थान ने अभी तक300 ग्रन्थों से भी अधिक ग्रन्थों का प्रकाशन किया है।

7. रवीन्द्र रंगमंच, जयपुर—सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रदर्शन हेतु जयपुर में रवीन्द्र रंगमंच की स्थापना की गई है।

8. जयपुर कत्थक केन्द्र—जयपुर का कत्थक घराना कत्थक नृत्य के लिये विख्यात है। यहां कत्थक नृत्य को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से राज्य सरकार ने कत्थक केन्द्र की स्थापना की है जो वर्ष 1979-80 से कार्यरत है।

9. राजस्थान ललितकला अकादमी—इस अकादमी द्वारा नये व युवा रंग कर्मियों को प्रोत्साहित किया जाता है और अकादमी प्रत्येक वर्ष नये चित्रकारों के चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित करती है।

10. गुरु नानक संस्थान, जयपुर—यह संस्थान कला, संस्कृति व साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर रहा है।

11. राजस्थान कला संस्थान—यह संस्थान कला विकास हेतु कार्यरत है।

12. रूपायन संस्थान—जोधपुर जिले में बोरुन्दा गांव में सन् 1960 में स्थापित संस्था 'रूपायन' एक सांस्कृतिक व शैक्षणिक संस्था के रूप में कार्यरत है। यह संस्था सहकारी प्रयास का प्रतिफल है। राजस्थानी लोक गीतों, कथाओं एवं भाषाओं की परम्परागत धरोहर की खोजकर यह संस्था उन्हें क्रमबद्ध संकलन का रूप प्रदान कर रही है। इस संस्थान के पास स्वयं का निजी प्रेस, पुस्तकालय एवं रिकार्ड करने के उपकरण हैं। इसे राज्य एवं केन्द्रीय सरकार से विभिन्न मदों से अनुदान प्राप्त होता है।

उपरोक्त संस्थाओं के अतिरिक्त राज्य में कुछ अन्य भी संस्थान है जो राजस्थान की कला एवं संस्कृति में अपना योगदान प्रदान कर रहे हैं।

राजस्थान राज्य क्रीड़ा परिषद—राज्य में खेलों व खिलाड़ियों के प्रोत्साहित करने हेतु यह परिषद प्रमुख भूमिका निभा रही है। यह प्रति वर्ष राज्य एवं अखिल भारतीय स्तर पर खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन कराती है और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ियों को प्रोत्साहित करती है।

महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट्स—संस्थान चित्रकला व रंगकार्यों को प्रोत्साहित करने हेतु राज्य में संलग्न है।

गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट संस्था की कला को प्रोत्साहन देने में लगी हुई है।

राजस्थान में साहित्य, नृत्य, चित्रकला, स्थापत्य कला, मूर्तिकला तथा हस्तकलाओं आदि के जो उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं जिन के कारण राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा अत्यन्त समृद्ध एवं वैभवशील है, उसे गौरवान्वित बनाये रखने में राजस्थान के ये विभिन्न संस्थान निरन्तर कार्यरत है।

2 राजस्थानी कला

(RAJASTHAN ART)

राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा अत्यन्त प्राचीन, समृद्ध एवं गौरवपूर्ण है। कला के क्षेत्र में राजस्थान की उपलब्धियां बड़ी महत्वपूर्ण हैं। राजस्थानी चित्र शैलियों का भारत की चित्रकला के इतिहास में एक अद्वितीय स्थान है क्योंकि भारतीय चित्रकला को जो समृद्धि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मिली है, वह राजस्थानी चित्रकला के कारण ही सम्भव हुई।

राजस्थान की मूर्तिकला भी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है और इसमें जयपुर के मूर्तिकारों की कला निपुणता सुदूर देशों के जानकर प्रशंसा करते नहीं थकते। इसी प्रकार स्थापत्य कला व संगीत कला के क्षेत्र में भी राजस्थान एक लोकप्रिय ऊंचाई प्राप्त किये हुये है। राजस्थान में इन सभी ललित कलाओं का इतना अधिक विकसित होना तथा अद्वितीय श्रेष्ठता प्राप्त करने के फलस्वरूप यह आवश्यक हो जाता है कि इनकी विवेचनात्मक जानकारी प्राप्त की जायेगी।

चित्रकला

मानव प्रकृति की गोद में पला व बड़ा हुआ है। प्रकृति के अद्भुत सौन्दर्य का उसने अपनी आंखों से निहारा है। जितनी बार उसने प्राकृतिक दृश्यों को निहारा, उतनी ही बार उसमें नव संचार हुआ, नये विचार उत्पन्न हुये, और इन सभी को स्थायित्व प्रदान करने के माध्यमों पर उसने विचारा। जब विभिन्न क्षेत्रों व स्थानों के कलाकार कला के स्थायी सौंदर्य को अपने-अपने परिवेश के अनुसार प्रदर्शित करते हैं तब देश विशेष की ओर स्थान विशेष की कला का पृथक स्वरूप निर्मित होता है। निसन्देह आदिम कला आदिम मानव के जीवन का व अजन्ता की कला बौद्ध भिक्षुओं के धार्मिक विश्वासों का प्रतिनिधित्व करती है। और युग विशेष के नाम से जानी जाती है। मध्यकालीन अपभ्रंश शैली के पश्चात राजस्थानी कला भी अपने युग की झांकी प्रस्तुत करती है। इस राजस्थानी शैली का विकास कोटा, बूंदी जयपुर, अलवर, किशनगढ़, मेवाड़ आदि क्षेत्रों में हुआ। इन समस्त छोटे-छोटे राज्यों में राजपूत राजाओं का शासन था। अतः इसी आधार पर कुमार स्वामी, ओ. सी. गांगुली, हैवेल व वेसिलग्रे ने इसे **राजपूत चित्रकला** कहा है। किन्तु रामकृष्ण दास जी ने मात्र शासक जाति के आधार पर राजपूत कला मानने के विचार का खण्डन किया और इसे '**राजस्थानी कला**' का नाम दिया। कर्नल टॉड भी राजपूताने को 1829 में राजस्थान नाम से अभिहित कर चुके थे। अतः सर्वसम्मति से 'राजस्थानी चित्र शैली' नाम स्वीकार किया गया। मूल रूप से राजस्थानी गुण लिये हुये स्थानीय भिन्नताओं के साथ विभिन्न क्षेत्रों में पाई जाने वाली चित्रकला शैलियों का विकास हुआ। इस समय राजस्थानी चित्रकला को निम्न शैलियों में, विभाजित करते है—(1) मेवाड़ शैली, (2) नाथद्वारा शैली, (3) मारवाड़ शैली, (4) किशनगढ़ शैली, (5) बीकानेर शैली, (6) बूंदी शैली, (7) कोटा शैली, (8) जयपुर शैली, (9) अलवर शैली (10) उनियारा शैली, (11) अजमेर शैली, (12) डूंगर शैली (13) देवगढ़ शैली।

उपरोक्त शैलियों को रंग, पृष्ठभूमि, बोर्डर्स, पशु-पक्षियों और चित्र में अंकित पुरुष-स्त्रियों की पोशाकें, आभूषण तथा आकृति, विशेषकर आंखों की बनावट इत्यादि की दृष्टि से परखा जा सकता है।

रंग की दृष्टि से हरे रंग का अधिक प्रयोग जयपुर और अलवर के चित्रों में, **पीले रंग** का जोधपुर और बीकानेर के चित्रों में, **लाल रंग** का उदयपुर के चित्रों में, **नीले रंग** का कोटा के चित्रों में, **सफेद अथवा गुलाबी रंग** का किशनगढ़ शैली के चित्रों में तथा **सुनहरी रंग** का बूंदी के चित्रों में विशेष रूप से होता है।

चित्रों की पृष्ठ भूमि के अनुसार उदयपुर शैली के चित्रों में **कदम्ब वृक्ष**, किशनगढ़ के चित्रों में **केले के वृक्ष**, कोटा-बूंदी की शैली में **खजूर के वृक्ष**, जयपुर व अलवर के चित्रों में **पीपल अथवा वट के वृक्ष**, और बीकानेर व जोधपुर में **आम के वृक्ष** अधिक मिलते है।

बोर्डर्स की पट्टी के रंग भी भिन्न-भिन्न है जैसे जयपुर के चित्रों के बोर्डर चंदेरी व लाल, उदयपुर में पीली, किशनगढ़ में गुलाबी और हरे रंग तथा बूंदी के चित्रों के सुनहरी व लाल रंग के होते हैं।

राजस्थान की विभिन्न शैलियों में पशु पक्षी भी अलग-अलग है। जोधपुर और बीकानेर में कौवा, चील ऊंट और घोड़े ज्यादा है तो उदयपुर में हाथी और चकोर पक्षी, नाथद्वारा में गाय, जयपुर और अलवर के चित्रों में मोर व घोड़ा तथा कोटा व बून्दी के चित्रों में बतख हिरण, शेर आदि अधिक मिलते है।

पुरूष व स्त्रियों की आकृति भी विभिन्न शैलियों में भिन्न भिन्न है। आंखों की बनावट की दृष्टि से नाथद्वारा शैली के चित्रों में आंखें हिरण के समान, बीकानेर शैली के चित्रों में आंखें खंजन के समान, बूंदी शैली में आम के पत्तों के समान, जयपुर के चित्रों में मछली के समान, किशनगढ़ में कमान की तरह तथा जोधपुर की शैली के चित्रों में प्रायः बादाम के समान आंखों की आकृति मिलती है।

विषय वस्तु की विविधता ने शैली को उत्कृष्ट स्वरूप प्रदान किया। नायक-नायिका व श्री कृष्ण के चरित्र चित्रण ने कला को नवल पक्ष दिया। धार्मिक चित्रों के अंकन से उठकर कला, विविध भावों को प्रस्फुटित करती हुई सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व करने लगी। यहां के चित्रों में राजा व रंक दोनों की कला है। शिकार के चित्र, हाथियों का युद्ध, नर्तकियों का अंकन, राजसी व्यक्तियों के छवि चित्र, पतंग उड़ाती, कबूतर उड़ाती, और शिकार करती हुई स्त्रियां, होली, पनघट व प्याऊ के दृश्यों के चित्रण में यहां के कलाकारों ने पूर्ण सफलता के साथ जीवन के उत्साह व उल्लास को दर्शाया है। बारहमासा चित्रण की अभिव्यक्ति अद्भुत है। राजस्थानी चित्रों में वहां की प्रकृति की गन्ध, पुरुषों का वीरत्व, वहां की उल्लासपूर्ण उच्च संस्कृति अनूठे ढंग से अंकित है।

चित्रों में प्रदर्शित पोशाक व आभूषण के द्वारा तो इन शैलियों के जन्म स्थान का ही नहीं वरन् काल-क्रम का भी बोध सम्भव है। राजस्थान की विभिन्न चित्र शैलियों में सौन्दर्यानुभूति के अलग-अलग प्रतीक इन शैलियों के स्थान विशेष एवं सामयिक सामाजिक व्यवस्था के बोधक है। इन विभिन्न शैलियों के चित्रों की पृष्ठ-भूमि, विशेष रंग का बाहुल्य प्रयोग, पेड़-पौधों और पशु पक्षियों का विशिष्ट चयन चित्रकारों की स्वच्छन्द रुचि मात्र ही नहीं अपितु उस स्थान विशेष के भौगोलिक पर्यावरण के प्रमाण है। यही नही वरन् क्षेत्र विशेष के भौगोलिक व सामाजिक वातावरण ने इन शैलियों में अंकित स्त्री-पुरुषों की पोशाकें एवं आभूषणों की शृंगार-पद्धति को भी प्रभावित किया है।

भौगोलिक स्थिति व शैलीगत विशेषताओं के आधार पर राजस्थानी चित्रकला शैली को चार प्रमुख भागों में विभाजित करते है—

1. **मेवाड़ी शैली**—इसमें उदयपुर, नाथद्वारा आदि की कला आती है।

2. **मारवाड़ी शैली**—यह जोधपुर, बीकानेर, नागौर व किशनगढ़ आदि स्थानों पर विकसित हुई।

3. **हाड़ौती शैली**—इसके अन्तर्गत बूंदी व कोटा शैली विख्यात हुई।

4. **ढूंढ़ार शैली**—यह जयपुर, अलवर व उनियारा आदि क्षेत्रों में फली-फूली।

मेवाड़ चित्र शैली

राजस्थानी कला की मूल शैली के रूप में मेवाड़ चित्र शैली को माना जाता है। इस शैली की परम्परा को विकसित करने में महाराणा कुम्भा (1443-1464) का विशेष योगदान रहा। चित्तौड़ एवं कुम्भलगढ़ के स्मारक इस तथ्य के प्रमाण है। राणा सांगा (1509-1528) के काल में मीराबाई ने कृष्ण भक्ति व आराधना जैसा विषय कला को प्रदान कर उसमें नव चेतना का संचार किया। राजा उदयसिंह ने (1537-72) उदयपुर को नयी राजधानी बनाया और राणा प्रताप (1572-97) ने भी मुगलों से राज्य की सुरक्षा हेतु पहाड़ियों पर बसे चावंड को राजधानी बनाया। इस प्रकार चित्तौड़, कुम्भलगढ़, उदयपुर व चावंड स्थानों पर मेवाड़ शैली फली-फूली और विकसित हुई। इसके बाद अमरसिंह प्रथम (1597-1620), कर्णसिंह (1620-28) व जगतसिंह (1628-52) के शासन काल में मुगलों का आधिपत्य होने के कारण मेवाड़ी चित्र शैली पर मुगलों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

राजसिंह प्रथम (1652-80) ने औरंगजेब से सम्बन्ध विच्छेद कर नाथद्वारा नामक स्थान पर श्रीनाथ जी की मूर्ति की स्थापना करवा कर एक नई परम्परा 'पुष्टि-मार्गी भक्ति परम्परा' का शुभारम्भ किया। इसी समय मथुरा से भी कलाकारों ने आकर 'नाथद्वारा शैली' को

जन्म दिया। इस शैली का विकास महाराण जयसिंह (1680-98) व अमरसिंह द्वितीय (1698-1710) के शासन काल में हुआ परन्तु राजा संग्राम सिंह के काल में यह शैली अपना निजत्व खोकर 'मुगल शैली' से प्रभावित हो गई।

मेवाड़ शैली—मेवाड़ की चित्रकला का प्रारम्भिक स्वरूप 'रूपासनाचर्यम्' (1423) व चौर पंचाशिका (1540) में प्राप्त होता है चावंड में चित्रित रागमाला के चित्र, नायक-नायिका के चित्र व भागवत पुराण के चटक रंगों में बने चित्र दर्शक को सहज ही आकृष्ट कर लेते है। पंचतन्त्र, गीत गोविन्द, रसमंजरी, रसकप्रिया, रामायण व पृथ्वीराज रासो का चित्रण यहां की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पृथ्वीराज और मोहम्मद गोरी के दरबारों के दृश्य रासों के पदों के साथ अंकित है। ढोला-मारु की कथा, बिहारी के सतसई के आधार पर भी चित्र रचना उपलब्ध होती है। राधा कृष्ण की लीला यहां विस्तृत रूप से चित्रित की गई है। कृष्ण का जन्म, नन्द बाबा का गायदान, गायपूजा, प्रसन्न मुद्रा में ग्वाल, सामूहिक होली आदि विषय बहुत सरलता से अंकित है। उपरोक्त चित्रों से मेवाड़ शैली की प्रमुख विशेषताऐं जो दृष्टिगत होती है, वे निम्न प्रकार है—

(i) इस शैली के अन्तर्गत गहरे रंगों का और विशेषकर लाल रंग का प्रयोग अधिक मिलता है।

(ii) बोर्डर्स अथवा सम्पूर्ण चित्र की बाह्य पट्टी में पीले रंग का प्रयोग किया जाता है।

(iii) पुरुष आकृति विशाल, मूंछों से युक्त, सिर पर पगड़ी व कलगी से सुशोभित, लम्बा पायजामा पहने सामान्य कद अंकित की जाती है।

(iv) नारी की आकृति लम्बी नाक, रक्ताभ पतले ओष्ठ, मांसल चेहरा, बादाम सरीखी आंखें, बाहर निकली चिबुक, अधखुले वक्ष, नग्न कटिभाग पर घाघरा व ओढ़नी पहिने, बाजुबन्द, माला, मोती व शीशफूल धारण किये सजे-संवरे रूप में खुली केश राशि के साथ चित्रित किया जाता है।

इस प्रकार रंगों की दृष्टि से मेवाड़ की कला लोक चित्र शैली से प्रभावित है। चटक रंग योजना, अलंकारिक प्रकृति व काली मोटी रेखाएें इस शैली की विशेषता है। चित्रों की यह शैली महाराणा हमीरसिंह के काल में भी जीवित रही लेकिन 19 वीं शताब्दी के समाप्त होते होते इस शैली का चरमोत्कर्ष प्रायः समाप्त हो गया।

नाथद्वारा शैली—महाराणा राजसिंह के द्वारा श्रीनाथ जी की स्थापना के बाद श्रीनाथद्वारा वल्लभाचार्य वैष्णवों का एक मुख्य धार्मिक केन्द्र बन गया। परिणामस्वरूप यहां पर कई चित्रकार विभिन्न स्थानों से आये और उन्होंने न केवल वल्लभ सम्प्रदाय से सम्बन्धित धार्मिक चित्रों को बनाया बल्कि सामाजिक एवं शृंगारिक विषयों का भी चित्रण कर एक नवीन शैली को जन्म दिया जो नाथद्वारा शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई।

विभिन्न राज्यों की विषमताओं का समन्वय ही नाथद्वारा शैली की मौलिकता है। रंग सम्मिलित नहीं करते नाथद्वारा के कलाकार, रंगों का समन्वय करते हैं। इस शैली में चेहरे का कट, नाक की विशेषता, आँखों का अलसायापन, ललाट की प्रमुखता, उरोजों का गोल उभार, नथ का मोती, अलकों की एक लम्बी अटकन, मंगल सूत्र का आब और कटि की क्षीणता का पूरा ध्यान रखा जाता है। पुरुष चित्रण का पता तो तिलक से ही लग जाता है। संक्षेप में नाथद्वारा शैली कुल मिलाकर राजपूत शैली, मेवाड़ शैली, किशनगढ़ शैली का अनोखा कोकटेल है।

स्मरण रहे कि पुष्टिमार्ग का मूलकर्म कृष्ण कन्हैया को रिझाना और उसका गुणगान करना रहा है। श्रीनाथ जी को भी कृष्ण का अवतार माना गया है। इसी क्रम में भगवान कृष्ण की लीलाओं का अंकन यहां की चित्रकला का मूल विषय रहा है। बारहमासों, छत्तीस राग-रागनियों तथा छः रागोंके चित्र भी लम्बे समय तक इस शैली में बनाये जाते रहे हैं। कई चित्रकार मिनिएचर का काम भी करते है अर्थात पुराने चित्रों का जीर्णोद्धार, इस कला में निष्णात रेवाशंकर जी अमेरिका भी हो आये है। लेकिन नाथद्वारा की यह कला अब तेजी से व्यवसाय होती जा रही है और चित्रकार आने वाले तीर्थयात्रियों व पर्यटकों की अभिरुचि के अनुरूप चित्रण करने लगे हैं।

नाथद्वारा शैली के चित्रों के अलावा जो सब से महत्वपूर्ण है-वह है पिछवाई। वास्तव में श्रीनाथजी

की प्रतिमा के पीछे दीवारों को सजाने के लिये कपडे पर मन्दिर के आकार के अनुसार चित्र बनाये जाते हैं। यह नाथद्वारा की अपनी मौलिकता हैं। इन पिछवाईयों पर प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण भी काफी किया जाता है। गिरिराज पर्वत, गोपालन, रास लीलाएँ, माखन खाते कृष्ण आदि इस शैली के आम विषय है।

मारवाड़ी शैली

यह शैली जोधपुर, बीकानेर, नागौर व किशनगढ़ में अधिक विकसित हुई। 7 वीं शताब्दी में मारवाड़ चित्रकला के क्षेत्र में काफी उन्नत था। इस का उत्कृष्ट चित्रण मण्डोर के द्वार पर दृष्टिगोचर होता है।

मारवाड़ शैली

अरावली की पर्वतमाला के पश्चिम में बसा मारवाड़, रेगिस्तानी इलाका हैं जो शायद कभी हरा-भरा रहा होगा। इलाके में दसवीं सदी से पन्द्रहवीं सदी तक की कृतियों में चित्रांकन मिलते है।

वास्तव में मारवाड़ चित्र शैली मुगल और स्थानीय अपभ्रंश शैली के सम्मिश्रण से विकसित हुई। सन् 1623 को निर्मित एक रागमाला इस शैली का प्राचीनतम चित्र है। पाली की रणमाला में ग्रामीण/कला का प्रमाण है। मारवाड़ शैली पर मुगल शैली का प्रभाव हैं, इसमें चित्र अधिक सरस, सुन्दर और मुखर बनते है। इनमें रेखाएं, भंगिमाएं, रंगों का संयोजन भी सुन्दर है। कहीं-कहीं पर विदेशी प्रभाव भी है। सन् 1803 से मारवाड़ शैली का महत्वपूर्ण काल शुरू होता हैं। महाराजा मानसिंह स्वयं कला प्रेमी थे और उन्होंने इस शैली को राज्याश्रय दिया। इस दौरान कुचामन, घाणेराव, नागौर, पाली, जालोर, आदि स्थानों पर चित्र शालाएं बनी और बड़ी भारी मात्रा में चित्रों का निर्माण हुआ।

इन चित्रों में रंग गहरे है और विलास के प्रतीक हैं। मारवाड़ शैली के विषय अन्य शैलियों से अलग है। राधाकृष्ण के चित्र कम बने और जो बने उनमें जयदेव के गीत गोविन्द को आधार माना गया है।

मूल रूप से देखा जाये तो मारवाड़ी शैली के चित्रों का आधार ढोलामारू, भूमलदे, निहालदे जैसी लोक-कथाएं है। इस शैली की मानव-आकृति लम्बी-चौड़ी और खूब सूरत है। दाड़ी-मूंछ भी है। कमर पर कमर बन्द होता है। पुरुषों के अलंकरणों में सरपेंच, जुवदा, मोती की माला, कटार, ढाल, तलवार, तुर्रा, कलंगी आदि है। स्त्रियां भी लम्बी चौड़ी, तगड़ी और खूबसूरत बनाई जाती थी। बाल काले घने, और नितम्ब तक लम्बे होते थे।

मेहन्दी रचे हाथों के साथ-साथ आंख खंजन जैसी होती है। पोशाक के रूप में रंगीन, कसूमल रंग बहुत लोकप्रिय था। लहंगा, चोली, काँचली, लूगड़ी, ज्यादा बनती थी। पैरों में मखमली जूती होती थी। आभूषणों में मोतियों की माला, टीका, लौंग, नथ, टेवटा, गलसरी, कंठी आदि बनाये जाते थे। आम का वृक्ष, ऊंट, घोड़ा, कुत्ता आदि भी इन चित्रों में प्रमुखता पाते थे।

बीकानेर शैली

अनूपसिंह के शासन काल के दौरान बीकानेर शैली परवान चढ़ी। तत्कालीन कलाकारों ने स्थानीय/प्रौढ़ और परिमार्जित कला शैली का विकास किया।

इसका विकास सत्रहवीं व अठारहवीं सदी में हुआ। इस शैली पर पंजाब संस्कृति का काफी प्रभाव रहा। मुगल शैली का प्रभाव भी इस शैली पर पड़ा। इन चित्रों के प्रमुख विषय-पोर्ट्रेट, दरबार, शिकार, रागनियां आदि रहे हैं। फव्वारे सजावट, भागवत कथा आदि पर भी चित्र बने हैं। इस शैली में आकाश को सुनहरे छल्लों से युक्त, बादलों से भरा हुआ दिखाया गया है। इन सभी चित्रों में पीले रंग को प्रमुखता दी गई है। कहीं-कहीं यह जोधपुर (मारवाड़) शैली से भी मिलती हुई है। पुरुष आकृति व नारी आकृतियां लगभग मुगल शैली या मारवाड़ शैली जैसी ही बनाई जाती थी। अनूपसिंह के अलावा रायसिंह व कर्णसिंह के शासन काल में भी इस शैली का विकास हुआ। इन चित्रों में रेखाओं की गति, रंगों का सुन्दर प्रयोग और सहजता प्रमुख है।

किशनगढ़ चित्र शैली

किशनगढ़ का नाम आते ही नागरीदास की बणी-ठणी का ध्यान आ जाता है। वास्तव में किशनगढ़ शैली अपने आप में अपूर्व अद्वितीय और रस सिद्ध है। कृष्ण भक्ति को आधार बनाकर कवि नागरीदास ने सरसता और भावुकता से परिपूर्ण बणी ठणी से किशनगढ़ शैली ने प्रसिद्धि पाई। राजा किशनसिंह ने इस को अन्जाम दिया।

राजा सावंतसिंह या नागरीदास, ने इस कला को शिखर पर पहुंचा दिया। नगरीदास ने विहार-चन्द्रिका रसिकरत्नावली तथा मनोरथ मंजरी नामक काव्य ग्रन्थ रचकर प्रसिद्धि पाई। वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होकर भी वे अपनी पासवान बणी ठणी के सौन्दर्य से नहीं बच सके और आज भी किशनगढ़ के कलाकार बणी ठणी का चित्रण कर अपनी कला को सार्थक करते हैं।

प्रकृति चित्रण, पशु-पक्षियों का चित्रण इस शैली की विशेषता रहा है। झील में खेलते पक्षी, नौकाएं आदि भी चित्रों में काफी बनाई जाती थी। भवनों, फव्वारों, कदली वृक्षों, कदम्ब वृक्षों में कमल दल भी काफी ज्यादा बनाये जाते थे।

इस शैली के चित्रों में अंकन की विशिष्टता, होती थी और इसी कारण किशनगढ़ी शैली अनूठी है। नारी आकृतियों के चित्रण में जितनी सावधानी किशनगढ़ी शैली में रखी जाती है, शायद ही कहीं अन्य शैली में होगी।

नागरीदास की प्रेमिका बणी ठणी को राधा के रूप में अंकित किया जाता है। नारी के कोमल शरीर से खेलती लम्बी केश राशि, काजल युक्त आकर्षक आँखें, पीनअधर, क्षीणकटि, दीर्घ नासिका उन्नत ललाट बिकसित और खिले उरोज ये सभी किशनगढ़ शैली की विशेषताएं हैं।

यह शैली कागज शैली से प्रभावित भी है। सफेद गुलाबी रंगों का ज्यादा प्रयोग होता था। लाल-हरा व नीला रंग भी प्रयुक्त होते थे। इस शैली का प्रसिद्ध चित्र बणी ठणी ही है। किशनगढ़ चित्र शैली सबसे प्रसिद्ध शैली रही है। राधा कृष्ण, प्रकृति चित्रण, शृंगार बोध के इतने सुन्दर चित्र अन्य किसी भी शैली में शायद ही बनते हैं।

हाड़ौती शैली

हाड़ौती शैली के अन्तर्गत बूंदी व कोटा शैली विख्यात हुई।

बूंदी शैली

बूंदी शैली का विकास राव सुरजनसिंह (1554-85) के समय से प्रारम्भ हुआ। दीपकराज तथा भैरव रागिनी के चित्र राव रतनसिंह (1607-31) के समय में निर्मित हुये। भावसिंह (1658-81) भी काव्य व कला प्रेमी शासक था। राजा अनिरुद्धसिंह के समय में दक्षिण युद्धों के फलस्वरूप बूंदी शैली में दक्षिण कला के तत्वों का सम्मिश्रण हुआ। बूंदी शैली के उन्नयन में यहाँ के अन्तिम शासक (1821-89) राव राजारामसिंह का अभूतपूर्व सहयोग रहा।

इस शैली का उद्भव और विकास कोटा के पास की रियासत बूंदी में हुआ था। राजस्थानी सांस्कृति का पूर्ण विकास इस शैली में दृष्टिगोचर होता है। इन चित्रों के विषय वीरता और शृंगार साथ-साथ है। नायिका भेद के चित्रों को भी स्थान मिला है। इस शैली के मूल में तीव्र कल्पना शक्ति है। मूक रेखाओं से यथार्थ के धरातल को उकेरा गया है। बूंदी के चित्रों में शिकार, उत्सव, सवारी, दरबार आदि ज्यादा बनाये गये है। कृष्ण रास को भी पूरा स्थान मिला है। कृष्ण लीला और कविताओं को आधार बनाकर भी इस शैली में काफी चित्र बनाये गये है। इन चित्रों में रेखाओं का महत्व रंगों से भी ज्यादा है। इन चित्रों में आकृतियाँ लम्बी और स्मार्ट होती थी। स्त्रियों के मुख पर अधरों से स्मित हास्य झलकता है। पुरूषों की आकृति में नीचे को झुकी पगड़िया होती थी। चित्रों के विषय राग, नायिका भेद, ऋतुएं, बारह मासा, कृष्ण लीला, आदि होते थे। वर्षा के चित्र भी बहुत सुन्दर बनते थे। वर्षा के अलावा ग्रीष्म, शीत, होली आदि के चित्र भी बहुत बने है।

होली के चित्रों में पिचकारियां मारती युवतियां रसिकजन और बोराएं युवामन बनाये गये है। बून्दी कला शैली के चित्रों में लाजहिंगुल, आकाश, सोने का आलेपन ज्यादा किया जाता है। चित्रों में सोने और चांदी का बारीक काम उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा देते हैं। सफेद रग से भवन बनाये जाते है। बूंदी शैली में चित्रित नारी सौन्दर्य भी अद्भुत है।

कोटा चित्र शैली

इस शैली के चित्रों में भावों की गहनता, विषयों का अनुकूल अंकन, सौन्दर्य एवं लावण्य का योजनानुसार निरूपण पाया जाता है।

कोटा शैली के लघुचित्र कलाकारों की कल्पना को रूप देते हैं। दरबारी दृश्य, जुलूस, कृष्णलीला, बारह-मासा, राग रागनियां, युद्ध, शिकार आदि इस शैली के प्रमुख विषय रहे हैं। श्रीकृष्ण लीला के चित्रों में पुष्टि-

मार्मीय परम्परागत का विकास हुआ है। दशावतार की झांकियां भी दिखाई गई हैं। गोपियां, उध्दव, श्रीकृष्ण-बलराम आदि विषय भी चित्रित हुए हैं। युद्ध सम्बन्धी चित्रों में क्रोधित चेहरे, शोणित नयन, युद्धरत भावावेश भी है। शिकार के चित्र में दुर्गम स्थानों पर शेर, बाघ व अन्य आखेटों का वर्णन है। इन शिकार चित्रों में नारियों व रानियों को भी शिकार करते हुए दिखाया गया है।

मधुमालती की कथा, ढोलामारू के प्रेम प्रसंग तथा इसी प्रकार के अन्य विषयों पर भी चित्र बनाये गये हैं। इस शैली में पुरूषों को वृषभ, उन्नत और मांसल देहधारी चित्रित किया गया है। आभूषणों में मोती का प्रयोग ज्यादा है। स्त्री चित्रण में लम्बी नाक, पीन अधर, क्षीण-कटि बनाई जाती थी। कपोल सुन्दर, कदली सम जंघाए आदि कोटा शैली की विशेषताएं रही हैं। रंगों में हरा पीला और नीला रंग बहुतायत से प्रयुक्त होता था। वास्तव में कोटा शैली अलवर शैली से मिलती जुलती है।

ढूंढार शैली

यह शैली जयपुर, अलवर व उनियारा आदि क्षेत्रों में फली-फूली। जयपुर की शैली का विकास आमेर शैली से ही हुआ। राजा जयसिंह (1621-67) और सवाई जयसिंह (1699-1743) के पूर्व चित्र परम्परा भाद्धपुरा रैनवाल की छतरी (राजा आदि के चित्र), भारमल की छतरी (कालियदमन, मल्लयोद्धा), आमेर महल व वैराठ की छतरियों (वंशी बजाते कृष्ण) में भित्तियों पर व कागज पर प्राप्त हुई। इसी भांति की चित्रण परम्परा अलवर, उनियारा व शेखावटी में भी पल्लवित हुई।

जयपुर शैली

सन् 1600 से 1900 तक आमेर व जयपुर में कलाकारों ने जिस शैली का विकास किया, वही जयपुर शैली तेजी से एक बड़े भूभाग में प्रचलित हो गई। जयपुर राज्य की पुरानी राजधानी आमेर थी, वहां से जब जयपुर राजधानी आई तो कलाकार भी साथ आए और जयपुर-शैली यहाँ भी विकसित होने लगी। लम्बे इतिहास को छोड़ दे तो उस दौरान भित्ति चित्रों तथा पोर्ट्रेटों का निर्माण भी काफी हुआ। बाद में विदेशी प्रभाव से प्राचीन कला का ह्रास जयसिंह सेकिण्ड व रामसिंह के समय हुआ।

राजा प्रतापसिंह के शासन (1779-1803) के दौरान महाभारत, रामायण, कृष्ण लीला, दुर्गापाठ, आदि विषयों पर सैंकड़ों चित्र बने। 'राग माला, गीत माला, गीत गोविन्द आदि पर भी चित्र बनाये गये। इस शैली में सैंकड़ों व्यक्ति चित्र बने। काम सूत्र पर भी चित्र बनाये गये। इसमें गहरे लाल रंग से हाशिये बनाये जाते थे। यह बहुत चमकदार रंग होता था। सफेद, लाल, हरा, पीला, नीला, रंग भी बहुत ज्यादा प्रयुक्त होता था। जस्ते का उपयोग भी किया जाता था। सुनहरी काम हेतु सोने का प्रयोग होता था।

जयपुर शैली में चित्रित पुरूषों और स्त्रियों की लम्बाई, अच्छे अनुपात में बनाई जाती थी। पुरूषों में मूंछे और लम्बी केश राशि होती थी। दाढ़ी बहुत कम होती थी। नारी पात्रों का शरीर सुगठित, सुडौल और लम्बे केशों से युक्त होता था। चेहरा अण्डाकार, नाक सुडोल और अधर पतले चित्रित किये जाते थे। चन्दन का लेप, मेहन्दी आदि का प्रयोग भी होता था। आभूषणों में तुर्रा, कलंगी, सेहरा, लोंग, बाली, आदि तथा गले में माला, कंठी होती थी।

रामसिंह के शासन में वेशभूषा पर अंग्रेजी प्रभाव शुरू हो गया। जयपुरी चित्रों में उद्यान भी बहुत बनाये गये। पेड़ पौधों, पशु-पक्षियों व बन्दरों का बारीक चित्रण पाया जाता है। कागज व भित्ती चित्रों पर फूल, वृक्ष लताएं पोधे आदि बहुत ज्यादा चित्रित किये गये हैं। पशुओं मे चीता, हाथी, शेर, भेड़, बकरी, कुत्ता, बिल्ली, ऊंट, घोड़ा सांभर, रीछ, गिलहरी आदि का भी बड़ा स्वाभाविक चित्रण किया गया है। मोर, बतख, कौआ, कोयल व मुगल शैली के अन्य प्रभावों का भी प्रयोग हुआ है। इस शैली की तकनीक अनोखी रही है। बाद में जाकर जयपुर शैली चित्रकला की एक महत्वपूर्ण शैली रही है।

अलवर शैली

वास्तव में अलवर शैली, जयपुर और दिल्ली शैली के मिश्रण से बनी है। इन शैलियों की छाप अलवर शैली पर स्पष्ट दिखाई देती है। कई विद्वान इस शैली को

मुगलशैली की प्रतिछाया मानते हैं। इस शैली के विषयों में राधा-कृष्ण, वेश्या जीवन तथा अंग्रेजी जीवन पद्धति है। शिकार सम्बन्धी चित्र भी इस शैली में बाद में बनाये गये। इस शैली में हरा और नीला रंग अधिक प्रयुक्त किया जाता है। रंग बाहर के देशों से आते थे। इस शैली की वसलियां बहुत सुन्दर बनती थी। चमड़े पर भी काम होता था।

इस शैली में औरत व पुरूष आकृतियों में आंखें गोल, होंठ पतले तथा पान से सने दिखाए जाते थे। स्त्रियों की चोटी ऊपर जाकर नीचे लटकती हुई दिखाई गई है। नाक में नथ और कानों में बालियां चित्रित की जाती थी। पांवों में पाइजेब भी बनाये जाते थे। स्त्रियां पायजामा, कुर्ता और चोली में बनाई जाती थी। राधा-कृष्ण के चित्रों में परम्परागत विधान होता था। पुरूषों के गले में रूमाल, सर पर टोपी या साफा होता था। प्रकृति का चित्रण भी इस शैली में किया जाता था। इस शैली पर मथुरा, दिल्ली और जयपुर शैलियों का काफी प्रभाव रहा।

निष्कर्ष :

राजस्थान की चित्र शैलियों में नाथद्वारा, मारवाड़ और किशनगढ़ की शैलियां ही सर्वाधिक चर्चित, प्रसिद्ध और सम्पन्न रही हैं। अन्य शैलियों पर एक दूसरे के प्रभाव इतने अधिक रहे हैं कि उन्हें स्वतंत्र शैलियां मानना ही कई बार न्यायोचित नहीं लगता।

आज राजस्थानी शैलियों के चित्र भारत के ही नहीं विदेशों के पच्चीसों संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। सैकड़ों दुर्लभ चित्र नष्ट हो रहे है, आवश्यकता है कि इस ओर प्रयास हो और इन चित्रों की सुरक्षा के साथ-साथ इन पर खोज, शोध और लेखन हो ताकि अतीत की यह धरोहर हमारा मस्तक ऊंचा कर सके।

राजस्थानी चित्रकला की विशेषताऐं—

1. प्राचीनता—राजस्थान में चित्रकला आरम्भिक इतिहास से ही दृष्टिगत होती है क्योंकि इसके प्रमाण यहाँ के सिक्कों पर अंकित सूर्य, चन्द्र, पशु-पक्षी, मनुष्य धनुष, स्तूप, बज्र, पर्वत, नदी आदि के चित्रों से मिलते है।

2. कलात्मकता—यहाँ की चित्रकला से कलात्मकता की झलक मिलती है क्योंकि इसकी शैली में अजन्ता शैली का समन्वय है। तत्पश्चात मुगल शैली का समावेश भी इसमें हुआ और इसे एक नया रूप मिला।

3. रंगात्मकता—राजस्थानी चित्रकला में भड़कीले व चटकीले रंगों का और विशेषकर लाल व पीले रंग का उपयोग अधिक होता रहा है। फलस्वरूप चित्रकला को एक नया स्वरूप तथा नई सुन्दरता इनके कारण मिली है।

4. विविधता—राजस्थानी चित्रकला में प्राचीनता होने के कारण विभिन्न शैलियों का समावेश तथा विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न चित्र शैलियां पल्लवित हुई हैं। अत: अनेक प्रकार के चित्र पाये जाते हैं जैसे राधाकृष्ण लीला, गोवर्धन धारण, बाल गोपाल स्तुति, रागमाला मालती, रसिक प्रिया, कादम्बरी, माधव आदि के चित्र।

5. स्त्री-सुन्दरता—राजस्थानी चित्रकला में भारतीय नारी के सौन्दर्य को पूर्णरूपेण उभारा गया है। उसकी कमल की भांति आंखें, लहराते हुये बाल, बड़े-बड़े स्तन, पतली कमर, घुमावदार तथा लम्बी उंगलियों आदि बातें स्त्री सुन्दरता की अंग है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजस्थानी चित्रकला अपने आप में उत्कृष्ट चित्रकला है।

राजस्थानी चित्रकला यहाँ के निम्न संग्रहालयों में सुरक्षित है—

1. पोथी खाना, जयपुर
2. पुस्तक प्रकाश, जोधपुर
3. सरस्वती भण्डार, उदयपुर
4. जैन भण्डार, जैसलमेर
5. कोटा संग्रहालय
6. अलवर संग्रहालय

इनके अतिरिक्त राजस्थानी चित्रकला राज प्रासादों की भित्तियों में चित्रित है। भित्ति चित्रों के क्षेत्र में जयपुर, कोटा, बूंदी, किशनगढ़, उदयपुर, जैसलमेर आदि के राजप्रासाद प्रसिद्ध है।

स्थापत्य कला

राजस्थान की स्थापत्य कला बहुत प्राचीन है। यहाँ पर काली बंगा में सिन्धु घाटी सभ्यता की स्थापत्य कला

के प्रमाण उपलब्ध है। इसी प्रकार आहड़ सभ्यता की स्थापत्य कला उदयपुर के पास तथा मौर्यकाल में प्रस्फुटित सभ्यता के चिन्ह बैराठ में मिले हैं। राजस्थान में सबसे प्रमुख स्थापत्य कला राजपूतों की रही है, जिसके कारण सम्पूर्ण राजस्थान किलों, मन्दिरों, परकोटों, राजप्रासादों, जलाशयों, उद्योगों, स्तम्भों तथा समाधियों से भर गया है। अतः यहां की स्थापत्य कला यहां के इतिहास, सभ्यता, संस्कृति का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करती है। इससे यहां के शासकों तथा निवासियों की विचारधाराओं, अनुभूतियों और उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त होती है।

राजस्थान की स्थापत्य कला पर मुगलकालीन प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है किन्तु राणा कुम्भा को यहां की स्थापत्य कला का जनक माना जाता है जो स्वयं शिल्पशास्त्री मंडन द्वारा रचित वास्तुकला पर पांच ग्रन्थों—रूप मंडन, ग्रह मंडन, रूपावतार, प्रासाद मंडन तथा वास्तुसार मंडन के साहित्य से प्रभावित था। राणा कुम्भा के शासनकाल में जिन भवनों का निर्माण हुआ, उन पर मंडन द्वारा सुझाये गये शिल्पी आदर्शों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। चित्तौड़ के कीर्ति स्तम्भ का निर्माण तो स्वयं मंडन के निर्देशन में हुआ। राजस्थान की स्थापत्य कला के दर्शन यहां के किलों, मन्दिरों, स्तम्भों, जलाशयों, उद्यानों एवं समाधियों में होते है, इसलिये इनका अध्ययन आवश्यक हो जाता है—

1. किले—राजस्थान किलों का घर है। यहां प्रत्येक 16 किमी. की दूरी पर एक किले के दर्शन हो जाते हैं। मेवाड़ में ही 48 किले हैं जिनमें से 32 किलों का निर्माण अकेले राणा कुम्भा ने करवाया था। अतः स्पष्ट है कि किलों की स्थापत्य कला राजस्थान में बहुत अधिक विकसित हुई। इसके निम्न कारण प्रमुख थे—

(i) राजस्थान में सामन्तशाही प्रथा होने के कारण अपने निवास तथा रियासत की रक्षा के लिये;

(ii) आक्रमण के समय अपनी प्रजा की सुरक्षा हेतु;

(iii) आवश्यक सामग्री के संचय हेतु;

(iv) सेना, पशु तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिये;

(v) पशु धन को बाढ़ व प्राकृतिक प्रकोपों के दुष्परिणामों से बचाने हेतु किलों का निर्माण किया जाता था।

यह सत्य है कि प्राचीनकाल से ही राजस्थान में दुर्ग बनाने की परम्परा थी और इस तथ्य की पुष्टि कालीबंगा की खुदाई तथा मौर्य एवं गुप्तकाल में बने किलों के अवशेषों से होती है। चित्तौड़ का दुर्ग भी प्राचीनकाल के दुर्गों में से एक है। कहते हैं कि इसका निर्माण मौर्य राजा चित्रागंद ने कराया था। यह 150 मीटर की ऊंचाई पर बना है।

मुसलमानों के आगमन से पूर्व ही किलों का निर्माण पहाड़ों पर शुरू हो गया था। अजयपाल ने अजमेर में अरावली श्रृंखला की एक पहाड़ी पर तारागढ़ किला बनवाकर इस ओर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया। यह मैदान से 240 मीटर ऊंचा है। रणथम्भौर का किला बहुत दृढ़ तथा मजबूत है। आबू के पास अचलगढ़ का किला है जिसे राणा कुम्भा ने बनवाया था। राणा कुम्भा ने ही कुम्भलगढ़ व माण्डलगढ़ के किलों का भी निर्माण कराया था। साधारणतया: चौहानों ने राजपूतों में सबसे पहले किले बनवाये। अजमेर, रणथम्भौर, जालौर, नागौर आदि के किले उन्हीं की देन हैं। ये सब पहाड़ियों पर बने हैं और बहुत सुरक्षित है। भटनेर तथा अर्बुद के किले भी प्राचीन हैं और इनका निर्माण यौधेयों तथा परमारों ने कराया था। बीकानेर का किला रेगिस्तान के किलों में श्रेष्ठ है। मानसिंह ने आमेर का जयगढ़ किला बनवाया था जो राजपूत तथा मुगल स्थापत्य कला के समावेश का सुन्दर प्रमाण है। इसके बाद जैसलमेर, जोधपुर, अलवर, नाहरगढ़ (जयपुर), सिवाना आदि के किले भी स्थापत्य कला के प्रतीक है। मालदेव ने मारवाड़ में अनेक दुर्ग और बनवाये जिनमें सोजत, फलौदी, भीनमाल, सिवाना, भद्राजून, पीपलौद, पीपाड़, दुनाड़ा आदि नगरों में किले बनवाये। अलवर, बहरोड़, गोविन्दगढ़, लक्ष्मणगढ़, बहादुरगढ़, रामगढ़, भाणगढ़ और राजगढ़ आदि किलों में अपना महत्व रखते हैं।

जालौर का किला परमारों ने बनवाया था जो बाद में राठौड़ों की सम्पत्ति बन गया। इस किले को सुवर्णगिरी कहते थे। सिवाना का किला जोधपुर से 86 किमी. दूर है। जाट राजाओं द्वारा निर्मित किलो में भरतपुर तथा डीग के किले आते है। राजस्थान के समस्त किले बड़े ही सुदृढ़ तथा सुरक्षा की दृष्टि से मजबूत है और साथ ही स्थापत्य कला की उत्कृष्टता संजोये हुये हैं।

2. राजप्रासाद—राजस्थानी स्थापत्य कला के राजप्रासाद उत्कृष्ट प्रतीक हैं। राजप्रासाद बड़े-बड़े नगरों तथा दुर्गों के बीच दृष्टिगत होते है। नागदा, मेनाल के राजप्रासाद प्राचीन काल के हैं। इनमें छोटे-छोटे कमरे तथा खिड़कियाँ नाम मात्र दिखाई देती हैं। इनके बाद आमेर, उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, बूंदी आदि शहरों में मध्यकाल में राजप्रासादों का निर्माण हुआ। इनका स्वरूप दुर्ग की भांति था। साथ ही दरबार कक्ष, प्रतीक्षा कक्ष, मन्दिर, रसोईघर शयन कक्ष आदि बने थे। राजपूतों के प्रारम्भिक राजाप्रासाद साधारण थे परन्तु मुगलों के सम्पर्क में आते ही उनके राजमहल भव्य, सुन्दर तथा कलात्मक बनते चले गये। उनमें बाग, फव्वारे तथा खम्भों आदि का निर्माण हुआ। बीकानेर के रंगमहल, कर्ण महल, आमेर के शीश महल, जोधपुर के फूल महल, उदयपुर के जग निवास व जग मन्दिर आदि में मुगल शैली की सजावट की प्रधानता है। कोटा, बूंदी, जैसलमेर, जयपुर के महलों में मुगल शैली को अधिक अपनाया गया है क्योंकि वे 17 वीं शताब्दी में निर्मित हुये थे जबकि राजपूतों व मुगलों में काफी आदान-प्रदान था।

3. मन्दिर—राजस्थान के मन्दिरों में भी स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूनें देखने को मिलते हैं। पुष्कर तथा अर्बुदाचल के मन्दिर प्राचीन काल की स्थापत्य कला की कलात्मकता से परिपूर्ण हैं। इसके साथ ही नगरी में प्राप्त स्तम्भ, जैन तथा बौद्ध धर्म के अवशेष, बौद्ध स्तूप (उदयपुर) आदि भी प्राचीन स्थापत्य कला की दुहाई देते है। तत्पश्चात मूर्तिकला की दृष्टि से बीकानेर का संग्रहालय काफी धनी है जहाँ अनेक प्राचीन मूर्तियां राजस्थानी स्थापत्य कला की समृद्धता को परिलक्षित करती हैं।

राजस्थान में ऐसे अनेक मन्दिर है जिनकी स्थापत्य कला की सूक्ष्मता तथा दक्षता चरम सीमा की है। इनमें दिलवाड़ा के जैन मन्दिर, रणकपुर के जैन मन्दिर, चित्तौड़ का सूर्य मन्दिर, शिव मन्दिर, आम्बानेरी का हर्ष माता का मन्दिर, ओसियां के मन्दिर आदि। इन मन्दिरों की शिल्प कला भी उत्कृष्ट स्तर की है। कुछ मन्दिरों का निर्माण दुर्ग की भांति है जैसे कुम्भलगढ़ का नीलकण्ठ का मन्दिर, एकलिंगजी का मन्दिर आदि। कुछ मन्दिरों में कृष्ण लीला का अंकन है। बाद में मुगल शैली के प्रभाव से मन्दिरों में भी परिवर्तन आया जैसे बीकानेर का देवी का मन्दिर, श्रीनाथजी का मन्दिर, धुलेव का ऋषभदेव का मन्दिर, जोधपुर का घनश्याम जी का मन्दिर, उदयपुर का जगदीश मन्दिर, जयपुर का शिरोमणि जी का मन्दिर आदि। राजस्थान में उन राजपूतों के आश्रय में अनेक हिन्दू मन्दिर बने जो कि मुगलों से पीड़ित होकर उत्तरी भारत से आकर राजस्थान में बस गये थे। ऐसे मन्दिरों में नाथद्वारा, कांकरोली, डूंगरपुर, कोटा, जयपुर आदि के मन्दिर प्रमुख हैं।

4. स्तम्भ—कुम्भा का जय स्तम्भ जो शिला लेखों में कीर्ति स्तम्भ के नाम से प्रसिद्ध है, भारत देश के अशोक स्तम्भ, कुतुबमीनार एवं चार मिनार (हैदराबाद) आदि की अपेक्षा उन सबसे अलग एवं उत्कृष्ट है। कुम्भा ने मालवा के सुल्तान मोहम्मद को पराजित करने के बाद अपनी विजय की स्मृति में इसे बनवाया था। इसका निर्माण 1497 वि. सं. से 10 वीं सवंत 1517 में हुआ। यह स्तम्भ 12 फीट ऊंचे, 42 फीट लम्बे व चौड़े चबूतरे पर 1·22 फीट की ऊंचाई लिये गौरवान्वित है। इस स्तम्भ में 9 मंजिल है तथा इस के अन्दर ऊपर जाने के लिये सीढ़िया बनी है हर मंजिल पर चारों दिशाओं में झरोखे बने हैं। सारा स्तम्भ मूर्तियों से मंडित है। प्रवेश द्वार पर जनार्दन की मूर्ति है। मन्जिलों पर प्रमुख हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियों को प्रतिष्ठापित किया हुआ है लेकिन आठवीं मंजिल में चार प्रशस्ति ताकें हैं जिन्हें अब पढ़ना कठिन है।

5. जलाशय एवं उद्यान—राजपूत राजाओं को जलाशयों को बनवाने का शौक मुगलों के सम्पर्क में आने के बाद ही हुआ क्योंकि इनके सम्पर्क में आने के पूर्व केवल अनादेव द्वारा आनासागर झील का निर्माण मात्र देखने को मिलता है।

बनवाये गये जलाशयों में स्थापत्य कला देखने योग्य है। अजमेर का आना सागर, उदयपुर की राजसमन्द, बूंदी का फल सागर, जोधपुर का रानीसर, बीकानेर का सूर सागर आदि कुछ जलाशय बहुत सुन्दर बने हुये है।

कुछ जलाशयों में छत्रियाँ, सीढ़ियां, बाराहदरी आदि भी बनी हुई हैं। कुछ प्राकृतिक तालाबों को भी जलाशयों में बदला गया था जैसे उदयपुर की पिछोला भील डूंगरपुर का गेब सागर, राजनगर का राजसमुट आदि। इनके चारों ओर वृक्ष लगाये गये हैं और छत्रियां बनाई गई हैं जिन पर सुन्दर चित्र अंकित हैं।

मुगलों के प्रभाव से राजस्थान में उद्योगों का भी प्रचार हुआ। इसके पहले राण मोकल, राण कुम्भा, राजा मानसिंह, राजा जसवन्तसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह आदि ने बड़े-बड़े उद्यान स्थापित किये। इनमें नालियाँ, फुव्वारे बाराहदरियाँ आदि भी बनाये गये। जयपुर का राम निवास गार्डन इसी प्रकार का है।

6 समाधियाँ - वीरता के लिए लड़ने वालों तथा प्राण देने वालों को समाधियों द्वारा याद रखा गया। पति के साथ सती होने वाली महिलाओं को महासतियों द्वारा अमर बनाया गया जिन स्थानों पर वीरांगनाएँ जल कर सती हो जाती थी उन्हें महासतियां कहा जाता था। इन स्थानों पर छतरियां बना दी जाती थी जिन्हें देवल या देवलियाँ भी कहा जाता है। यह पटकोण आदि के आकार की होती है। उदयपुर में आहड़ के पास, जयपुर में गेटोर में, जोधपुर में पंचकुण्ड में, बीकानेर में देवकुण्ड में ऐसी छतरियाँ उपलब्ध हैं। कुछ प्रमुख छतरियों में बीका की छतरी, रामसिंह की छतरी, अजीतसिंह की छतरी, अमरसिंह की छतरी, कर्णसिंह की छतरी प्रसिद्ध हैं। इन समाधियों में छिो स्थापत्य में खम्भे, महराबें, गुम्बज और बाराहदरियाँ मुगल प्रभाव को दर्शाते हैं। पुरानी समाधियां मन्दिरों की भांति बनी है जिनमें शिखर, मण्डप, स्तम्भ और गर्भाशयों की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।

भिति चित्र

भावों की अभिव्यक्ति के लिये भित्ति चित्र प्रागैतिहासिक काल से कम सशक्त माध्यम रहा है इस तथ्य की प्रमाणिकता हेतु भरतपुर जिले में दर नामक स्थान में बनी मानव-आकृति से सिद्ध होती है। 12 वीं शताब्दी में कागज के आविष्कार से इस कला को कुछ आघात पहुंचा लेकिन 15 वीं शताब्दी के सांस्कृतिक पुनरुत्थान से इस माध्यम का पुनः प्रचलन हुआ।

राजस्थान भित्ति चित्रों की दृष्टि से बहुत समृद्ध प्रदेश है। इस दिशा में जयपुर, कोटा, बूंदी, किशनगढ़, बीकानेर, उदयपुर सभी राजस्थान के प्रमुख नगर उल्लेखनीय हैं। किन्तु कोटा इस दिशा में अधिक सम्पन्न है। सबसे छोटा नगर उल्लेखनीय है। किन्तु कोटा इस दिशा में अधिक सम्पन्न है। सबसे छोटा नगर होते हुए भी वहाँ के रसज्ञ श्रीमन्तों ने इसे खूब सजाया है। झाला जी की हवेली, रसिक विहारी जी के मन्दिर में भित्ति चित्रों की वह परम्परा अब तक देखी जा सकती है.

बूंदी के चित्र आलेखन की दृष्टि से बड़े श्रम और सम्पन्न और विविध हैं। इनकी कल्पनामूलक अभिव्यक्तियां कृष्णलीला के शृंगारिक प्रसंगों पर आधारित और सौंदर्य के विविध भेदों पर आश्रित है। भट्ट जी की हवेली, राजमहल और मन्दिरों के अनेक गृह चित्रों से सुसज्जित हैं। इनमें रंग आज भी चमकदार सुवर्ण के आलेखनों से सौंदर्य सम्पन्न तथा रेखाओं की गतिशील बारीकियों से युक्त है।

राजस्थान में भित्ति चित्रों को चिरकाल तक जीवित रखने के लिए एक आलेखन पद्धति है जिसे आरायश कहते हैं। आरायश पर चित्रों को स्याही की रेखाओं से सर्वप्रथम लिखकर रंग भरे जाते हैं। जयपुर में इसका विशेष प्रसार है। **जयपुर** में भित्ति चित्रों की परम्परा बहुत विकसित हुई थी। जयपुर में पुंडरीकजी की हवेली, गलता घाट, रावलजी के महल भित्ति चित्रों के लिए प्रसिद्ध है। **किशनगढ़** के भित्ति चित्र आरायश पद्धति के अनुसार बने हैं, उनके विषयों विविधता ही है। राधाकृष्ण के युगल रूप की झांकी सर्वत्र पाई जाती है। जोधपुर के चित्र सवारी शिकार कथा प्रसंगों के दृश्यों में सीमित है। **बीकानेर** के राजमहलों के चित्रों में घुमड़ते हुए बादलों के दृश्य, उड़ते हुए पक्षी, विविध बेल बूंटे और सुवर्ण के आलेखन हैं।

उदयपुर के चित्र संख्या में अधिक हैं किन्तु जयपुर जैसा सौन्दर्य इन चित्रों में नहीं। जैसलमेर के राजप्रासादों में जैसलमेर-शैली के चित्र मूमल आदि राजस्थान के परम्परागत कलात्मक प्रतीकों के उत्कृष्ठ नमूने है। भित्ति

चित्रों की पद्धति जयपुर, अलवर, कोटा, बूंदी में ही अधिक प्रस्फुटित हुई, इसका एक छोर बल्लभ सम्प्रदाय की सगुण उपासना है तो दूसरा छोर मुगल घरानों के अनुक्रमण की परम्परा है। कोटा, बूंदी, वल्लभीय उपासना के केन्द्र हैं और जयपुर, अलवर मुसलमान परम्परा के प्रतीक हैं। आधुनिक समय में इस कला के विकास हेतु राजस्थान ललितकला अकादमी ने इस दिशा में काफी ठोस कदम उठाये हैं।

संगीत कला

राजस्थान में संगीत कला की परम्परा भी कलात्मक सृजन की हैं। यहाँ के शासक संगीत व साहित्य के प्रेमी थे। सम्पूर्ण मुगल काल में पुराने आमेर और नये जयपुर राज्य में जो राजा बनें, उनमें कोई योग्य सेना नायक और योद्धा थे तो कोई कूटनीतिज्ञ, कोई विद्वान थे तो कोई पण्डित और कला निपुण।

औरंगजेब के प्रमुख सेना नायक, मिर्जा राजा जयसिंह का दरबार कवियों; कलाकारों और संगीत विशारदों के लिए उर्वरा भूमि थी, जिसमें बिहारी की सतसई की विशाल और सुगन्धित लता फैल चुकी थी। इसी दरबार में 1620 के आस-पास हस्तकार रत्नावली नाम का विषद संगीत ग्रन्थ लिखा गया। मीरां के पद और दादू पंथ के प्रवर्तक दादू दयाल के शब्द इस समय तक जनता के गीत बन चुके थे।

सवाई प्रतापसिंह स्वयं एक काव्य मर्मज्ञ, कवि और संगीताचार्य थे। उनके दरबारी संगीतज्ञ, उस्ताद चांद खां थे। जिन्होंने **स्वर सागर** नामक एक उच्च कोटि के संगीत ग्रन्थ की रचना की।

देवर्षि भट्ट द्वारकानाथ जयपुर के राजाओं की तीन पीढ़ियों के कृपा भाजन थे। इन्होंने "रामचन्द्रिका", का प्रणयन किया। किन्तु संगीत के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और विशद ग्रन्थ 'राधा गोविन्द संगीत सार' के निर्माण का श्रेय उनके पुत्र देवर्षि भट्ट ब्रजपाल को है। सात खण्डों में लिखा गया यह विशाल ग्रन्थ आज भी शास्त्रीय संगीत का एक अपूर्व प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसकी प्रकाशित प्रति जयपुर की महाराजा पब्लिक लाइब्रेरी में उपलब्ध है। "राधागोविन्द संगीत सार" के आगे पीछे कवि राधाकृष्ण ने राग रत्नाकर नामक एक और संगीत ग्रन्थ तैयार किया।

बहुत सम्भव है कि जयपुर का "गुणीजन खाना" महाराजा प्रतापसिंह के संरक्षण में भली-भांति स्थापित हो चुका था। कहा जाता है कि महाराजा विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों की 'बाइसी' रखते थे आधुनिक जयपुर के निर्माता महाराजा रामसिंह द्वितीय के संरक्षण में "संगीत रत्नाकर" और संगीत राग कल्पद्रुम नामक दो और प्रामाणिक संगीत ग्रन्थों की रचना की गई, जिनके प्रणेता हीरानन्द व्यास थे। पण्डित मधुसूदन सरस्वती ने, विभिन्न शास्त्रीय राग रागनियों का एक सचित्र "खरडा" तैयार किया, जिनका नाम "राग-रागिनी संग्रह" था। महाराजा रामसिंह के समय में ही जयपुर में रामप्रकाश थियेटर की, जो सम्भवत: राजस्थान की पहली सुनिर्मित नाट्यशाला थी, स्थापना हुई।

संगीत के अतिरिक्त जयपुर के कत्थकों ने विख्यात कत्यक नृत्य शैली का विकास किया। यह शैली मुख्यत भावात्मक है, जिसकी भाव-भंगिमा और मुद्रायें देखते ही बनती है। प्रसिद्ध कत्थक नृत्यांगना उमा शर्मा जयपुर घराने से ही सम्बद्ध है।

उदयपुर के महाराणा कुम्भा ने संगीत शास्त्र पर **संगीतराज** नामक ग्रन्थ की रचना की तथा गीत गोविन्द पर अपनी रचना लिखी उदयपुर के गायक व सितार-वादक श्री जियाऊद्दीन खां डागर, तबलावादक श्री चतुरलाल सेन, सारंगीवादक श्री रामनारायण आदि प्रसिद्ध कलाकार राजस्थान की हस्तियां है। ध्रुपद शैली के देश प्रसिद्ध गायक श्री डागर बन्धु की कला की छाप अब भी दृष्टिगत होती है।

ख्याल गायकी के क्षेत्र में इस गायकी की विशिष्ट शैली को विकसित करने वाले उस्ताद अल्लादिया खां राजस्थान के निवासी थे।

राजस्थानी लोकगीतों में भी शास्त्रीय संगीत का पुट झलकता है। इन लोकगीतों में कहरवा, काफी, देस, खमाच और पीलराग विशुद्ध अथवा सम्मिश्रित रूप में प्रयुक्त की जाती है। शास्त्रीय और लोक संगीत के सम्मिश्रण का एक विशिष्ट उदाहरण गोविन्द लोकगीत

को कह सकते है। माड की स्वर रचना और गायन में शास्त्रीय संगीत का प्रभाव भी दिखाई देता है। मॉड गायकी की सुप्रसिद्ध कलाकार बीकानेर की अल्ला जिलाई बाई है। लोक संगीत को लोकप्रिय बनाने का कार्य मिरासियों ढ़ाढ़ियों, लंगाओ, मांगणियारों तथा कलावन्तों के पेशेवर कलाकारों ने किया है।

राज्य में संगीत शिक्षा की समृद्धि के लिये राजस्थान सरकार द्वारा सन् 1950 में स्थापित राजस्थान संगीत संस्थान कार्यरत है। यह अब कालेज शिक्षा निदेशालय के साथ सम्बद्ध है।

मूर्ति कला

राजस्थान में मूर्ति कला का विकास प्राचीनकाल से है। ई. पू. की तीसरी शताब्दी के भी अनेक मन्दिर यहां अवशेषों के रूप में मिले हैं। 7 वीं से 18 वीं शताब्दी के तो अनेकों मन्दिर राज्य के हर जिले में मिलते है। मूर्ति कला के प्रसिद्ध स्थलों में जयपुर, आमेर, आबू, चन्द्रावती, चित्तौड़गढ़, जैसलमेर, नागदा, कोटा, ओसियां, अलवर, रणकपुर, पुष्कर, कांकरोली, भरतपुर, जोधपुर एवं मण्डोर मुख्य है। इन स्थानों की विभिन्न मूर्तियों में संगीत, नृत्य, प्रकृति, शृंगार आदि विषय अंकित है। धर्मों में यहाँ जैन तथा हिन्दू दोनों ही धर्म के साथ-साथ विकसित हुये। ओसियां में बौद्ध मूर्तियां भी मिलती है।

मुगल कालीन समय में राजस्थान में आमेर मूतिकला का प्रसिद्ध केन्द्र था। राजा मानसिंह ने देश के अन्य भागों से जिन शिल्पिकों और कलाकारों को आमन्त्रित किया उनमें मूतिकार भी थे जो दक्षिण में माणडू, उत्तर में नारनौल और पूर्व में मंडावर तथा डीग के आसपास के ग्रामों में आमेर आये थे। 728 ईसवी में सवाई मानसिंह ने जयपुर की नई राजधानी में पदार्पण किया तो मूर्तिकार भी जयपुर स्थानान्तरित हुए। अब भी यहां सिलावटों का मोहल्ला बना हुआ है।

मुगल शासन काल में यद्यपि ऐसे अवसर भी आये थे, जब हिन्दू मन्दिरों और उनकी पवित्र मूर्तियों का बिनाश प्रायः निश्चित हो गया था, किन्तु जयपुर औरंगजेब जैसे धर्मांध शासक के समय में भी सुरक्षित ही रहा। मुगलों की मैत्री और अपने व्यक्तित्व के कारण जयपुर के राजाओं ने आमेर और जयपुर को एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक केन्द्र के रूप में विकसित किया, जिससे अनेक प्रकार के कला कौशल, दस्तकारियों और उद्योगों को प्रश्रय मिला। इस प्रकार जयपुर के मूर्तिकार निरन्तर पौराणिक कल्पनाओं को पाषाण में साकार बनाने और अन्य स्थानों की मूर्तियों की मांग पूरा करने में व्यस्त थे।

जयपुर की इन मूर्तियों में विभिन्न प्रकार के पाषाणों का उपयोग किया जाता है। सर्वश्रेष्ठ पाषाण तो संगमरमर है, जो मकराना की खानों से आता है।

महंगी और सुन्दर कलात्मक मूर्तियों के लिए मकराना से संगमरमर, किफायती काम के लिये रियालों और जैन तीर्थंकारों, विशेषतः शिव लिंगम, तथा शनिश्चर की मूर्तियों, हाथियों तथा अन्य खिलौने के लिए भैंसलाना के काले संगमरमर की मांग बहुत रहती है। इसके अतिरिक्त अलवर जिले की भीरी और बलदेवगढ़ का सफेद पत्थर तथा डूंगरपुर का काला पत्थर भी काम में लिया जाता है, किन्तु इन्हें संगमरमर बताना केवल व्यापारिक चाल ही है। नवम्बर-दिसम्बर में गुजरात और बंगाल से व्यापारी यहां आते हैं और तैयार माल को खरीद ले जाते भेजा हैं।

मूर्ति निर्माण का कार्य पाषाण पर ही किया जाता है और मूर्तिकारों के औजार आज भी वहीं है जो तीन सौ वर्ष पहले थे। कोयले अथवा पैन्सिल से पाषाण पर कृति की रूप रेखा बनाने के साथ ही कलाकार की छैनी हथोड़ी पर आ जाती हैं मूर्ति बनाई जाने लगती है। मूर्ति बन जाने पर एक विशेष प्रकार के पत्थर को उस पर घिसा जाता है। इसके पश्चात् एक अन्य पत्थर की रगड़ से मूर्ति के अंशों को और निखारा जाता है। फिर पालिश की जाती है। जिन मूर्तियों के रंग की आवश्यकता होती है, उन्हें चितेरों के पास भेजा जाता है।

हिन्दू देवी-देवताओं की संख्या को देखते हुए मूर्तियों के विषय का अत्यन्त व्यापक होना स्वाभाविक ही है। फिर भी चतुर्भुज नारायण, शेषशायी विष्णु और उनका पद चम्पन करती हुई लक्ष्मी, सरस्वती, राम और सीता, राधा और कृष्ण, हनुमान, गरुड़ और ऋद्धि-सिद्धि के स्वामी गणेश आदि की मूर्तियों की सारे भारत से मांग

होती है। जैन तीर्थंकरों, महावीर, आदिनाथ पार्श्वनाथ की मूर्तियों की मांग भी कुछ कम नहीं है। श्रीलंका, वर्मा, हिन्दचीन, और सुदूर हांगकांग तक से भगवान बुद्ध की प्रतिमाओं के आर्डर आते हैं। इधर देश की स्वतन्त्रता के पश्चात राष्ट्रीय नेताओं की पूरे आकार या अर्द्ध-मूर्तियों की मांग बहुत है।

जयपुर की मूर्ति कला को जीवित रखने और इसे वर्तमान व्यावसायिक रूप में विकसित करने का श्रेय यहां के स्कूल ऑफ आर्टस को है। सारनाथ के नये बौद्ध बिहार में प्रतिष्ठापित बुद्ध की प्रतिमा इसी स्कूल में बनायी गई थी। बनारस में स्थापित महात्मा गांधी की मूर्ति भी यहीं की देन है। जयपुर की मूर्ति कला का आधुनिक विकास नई दिल्ली के प्रसिद्ध लक्ष्मीनारायण मन्दिर में दर्शनीय है, जहां की सभी मूर्तियां जयपुर के मूर्तिकारों की बनाई हुई है।

राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स—महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट्स के नाम से जयपुर में इस संस्थान की स्थापना 1866 में सवाई रामसिंह ने की थी। वर्तमान में इसका नाम राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स है। राज्य में विविध ललितकला विषय का एक नाम मात्र का संस्थान होने के कारण सरकार ने इसे महाविद्यालय का स्तर प्रदान करते हुये सन् 1980 से इसे कालेज शिक्षा निदेशालय से सम्बद्ध कर दिया है। इसमें मूर्तिकला, चित्रकला तथा प्रिंटमेकिंग विषयों पर पाँच वर्षीय डिप्लोमा दिया जाता है।

※

3 साहित्य
(LITERATURE)

राजस्थान की साहित्यिक परम्परा काफी प्राचीन है लेकिन यह 8 वीं शताब्दी से निरन्तर आगे बढ़ती है। इस समय प्राकृत एवं संस्कृत, इन दोनों भाषाओं में कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये। 11 वीं से 13 वीं शताब्दी के मध्य कई महत्वपूर्ण अपभ्रंश काव्य रचे गये। 13 वीं शताब्दी से तो राजस्थानी भाषा का साहित्य भी मिलने लगता है। 15 वीं शताब्दी तक रचित राजस्थानी भाषा के साहित्य पर अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

राजस्थानी साहित्य अधिकाँशत: हिन्दी की तरह अपभ्रंश में ही उपलब्ध है। इस साहित्य के रचयिता मुख्यत: चारण विद्वान रहे हैं। चारण कवि व विद्वान राजाओं पर आश्रित रहते थे जिसके कारण उनकी रचनाओं में उन राजाओं की वीरता व प्रशंसा का ही उल्लेख मिलता है। धर्म एवं मत प्रचार के लिये यहां जैन एवं संत साहित्य लिखा गया। साहित्य सरचना के इस क्षेत्र में लोक साहित्य की भी यही स्थिति रही थी। राजस्थानी साहित्य मौखिक व लिखित दोनों प्रकार का है। हस्तलिखित प्राचीन साहित्य को चार भागों में बांटा जा सकता है—

1. चारण साहित्य, 2. जैन साहित्य, 3. ब्राह्मण साहित्य और 4. सन्त साहित्य।

चारण साहित्य

चारण साहित्य अधिकांशत: वीर रस प्रधान तथा ऐतिहासिक है। इस वर्ग में चारणों के अतिरिक्त राव, ढाढ़ी, ढोली, मोतीसर, सेवग, ब्राह्मण, राजपूत आदि जातियों द्वारा लिखा गया साहित्य भी सम्मिलित है। यह साहित्य गद्य व पद्य दोनों में मिलता है। चारण साहित्य में वीर रस के बाद शृंगार व शांत रस की रचनाएं भी हैं। चारण काव्य को दो भागों में बांटा जा सकता है।

(i) प्रबन्ध काव्य, (ii) मुक्तक काव्य

प्रबन्ध काव्य में भी महाकाव्य एवं खण्डकाव्य के दो रूप मिलते है। इनका नामकरण मुख्यतया नायक-नायिका के अनुरूप हुआ है। इनमें दोहा, गाहा, चौपाई, कवित, मोतीदाम, नीमाणी, झूलना, त्रिभंग, भुजांगप्रयात आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। चारणी साहित्य में "**वरण सगाई**" नामक मौलिक अलंकार का प्रयोग अधिक हुआ है। यह अलंकार डिंगल साहित्य की प्रमुख विशेषता है। भाषा एवं भाव की दृष्टि से ये प्रबन्ध काव्य राजस्थानी साहित्य में विशेष महत्व के है। विषय-वैविध्य की दृष्टि से यह तीन प्रकार के हैं—(i) धार्मिक एवं पौराणिक प्रबन्ध काव्य जो शान्त एवं शृंगार-रस पूर्ण काव्य है, (ii) ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य जिस में समकालीन शासक की घटनाओं का वर्णन है, (iii) छन्द शास्त्रीय प्रबन्ध काव्य जिनमें छन्दों के लक्षण के साथ-साथ धार्मिक, पौराणिक या ऐतिहासिक कथा भी चलती रहती है।

चारण साहित्य में जो प्रमुख प्रबन्ध काव्य उपलब्ध हैं, उनमें चंदवरदाई का '**पृथ्वीराज रासो**', बीठलदास का '**रुकमणी हरण**', राठौड़ पृथ्वीराज का **बेली किसन रुकमणी**, माधोदास चारण का '**राम रासो**', चारण शिवदास की **अचलदास खीची री वचनिका**, सूर्यमल्ल मिश्र का '**वंश भास्कर**' और करणीदान का '**सूरज प्रकाश**' मुख्य हैं।

प्रबन्ध काव्य के अलावा चारण साहित्य गीत छन्द के रूप में और दोहों, सोरठों, कुण्डलियों के रूप मे भी मिलता है। गीत रूप के मुक्तक अपेक्षाकृत अधिक मिलते है। जिस प्रकार अपभ्रंश में दोहा प्रिय छन्द है, उसी प्रकार राजस्थानी साहित्य की '**गीत**' अपनी निजी सम्पत्ति है। इतिहास की जानकारी हेतु भी गीतों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इसलिये कहा जाता है कि 'गीतड़ा या भीतड़ा' अर्थात भीतड़ा (महल, किले, भवन स्मारक) तो फिर भी नष्ट हो सकते है, किन्तु गीत सदैव गाये जाते रहेगें अर्थात जीवित रहेगें।

'भीतड़ा ढह जाये धरती मिले,
गीतड़ा नह जाय कहे (राव) गांगो।'

दोहों के कुछ संग्रह 'सत्र खालरा दूहा, जवानीरा दूहा, ढोला मारू रा दूहा, ठाकुरजी रा दूहा' पृथ्वीराज रा दूहा आदि कहे जा सकते।

चारणों ने गद्य साहित्य का सृजन भी बहुत किया। उन्होंने जितना साहित्य सृजन किया उतना जैन विद्वानों

के अलावा किसी अन्य ने नहीं किया। चारण राजपूतों के जनजीवन से इतने घुलमिल गये थे कि उनके जीवन के सभी पहलुओं पर उन्होंने अपनी रचनाएँ लिखी हैं। चारण साहित्यकारों की कुछ प्रमुख कृतियां दलपत विकास, औरंगजेब की हकीकत, उदयपुर की ख्यात, कछवाहा री ख्यात, बांकीदास की वार्ता, दयालदासरी ख्यात, शिशोदियारी वंशावली आदि प्रमुख हैं।

चारण साहित्यकारों में दुरसा आढ़ा, कल्याणदास मेहडू, केसोदास गाडण आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

जैन साहित्य

जैन आचार्यों, मुनियों, श्रावकों व मन्त्रियों ने संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य की रचना की है तथा दिगम्बर सम्प्रदाय का साहित्य तत्कालीन हिन्दी भाषा में पाया जाता है। जैन साहित्य प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों रूप में मिलता है। उसे उन्होंने लिपिबद्ध करके रक्षित भी रखा है, यही वजह है कि आज प्राचीनतम साहित्य जैन ग्रन्थों में ही सुरक्षित है।

जैन साहित्य का सबसे पहला प्रबन्ध काव्य व्रजसेन सूरि रचित 1108 ई. का 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' मिलता है। इसके बाद तो विविधरूप एवं विषयों के अनेक प्रबन्ध काव्य मिलने लगते हैं।

अमरचन्द नाहटा के अनुसार 17 वीं और 18 वीं शताब्दी में जितना अधिक राजस्थानी जैन साहित्य का निर्माण हुआ उतना अन्य किसी शताब्दी में नहीं हुआ।

राजस्थानी लोक साहित्य को भी उन विद्वानों ने लिपिबद्ध करके सुरक्षित रखा है। राजस्थानी लोक साहित्य के दोहे, कथाएँ, फाग जो इन भण्डारों में उपलब्ध हैं, अत्यन्त दुर्लभ हैं। जैन साहित्य में प्रबन्ध, काव्य, कथाएं, फागा, रास, गीत प्रमुख हैं।

संस्कृत या ब्राह्मण साहित्य

यह साहित्य राजस्थान में पाया जाने वाला सबसे प्राचीनसाहित्यहै जो संस्कृत भाषा में लिखा हुआ है। किन्तु प्रारम्भिक रचनाओं में काल एवं स्थान का उल्लेख न होने से सबसे पहली रचना निर्धारित करने में कठिनाई आती है लेकिन संस्कृत भाषा की समृद्धता के सन्दर्भ में कुछ शिलालेखीय कृतियां उपलब्ध हुई है। ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी की 'घो सुन्डी प्रशस्ति', 7 वीं शताब्दी का सोमाली अपराजित का शिलालेख आदि मेवाड़ में संस्कृत भाषा की समृद्धि के परिचायक हैं। शिलालेखों की यह प्रवृत्ति मारवाड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ तथा हाड़ौती संभाग में भी मिली है जो 19 वीं शताब्दी एवं बाद तक अविरल गति से प्रवाहित होती हुई दृष्टिगत है।

संस्कृति साहित्य ब्राह्मण साहित्य है क्योंकि इसकी अभिवृद्धि में ब्राह्मण विद्वानों का पर्याप्त योगदान है। ब्राह्मण विद्वानों की रचनाओं में माघ कवि **विरचित** 8 वीं शताब्दी के 'शिशुपालवध' महाकाव्य को संस्कृत ग्रन्थ के रूप में लिया जा सकता है। राजस्थान के नरेशों ने भी संस्कृत साहित्य को प्रोत्साहित किया। कई राजा जैसे महाराणा कुम्भा, बीकानेर के रायसिंह, अनूपसिंह आदि तो संस्कृत के विद्वान एवं रचनाकार माने जाते हैं। संस्कृत या ब्राह्मण साहित्य तीन प्रकार का है—

1. धार्मिक, 2. साहित्यिक और 3. ऐतिहासिक। इस संस्कृत साहित्य की मुख्य कृतियां इस प्रकार है—

प्रमुख साहित्यिक ग्रन्थ—

पृथ्वीराज विजय—इस ग्रन्थ के रचनाकार जयानक हैं। इसमें ऐतिहासिक विषय सामग्री है, जो उपमाओं व अलंकारों से भरी पड़ी है। इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से चौहान राजाओं, विशेषकर पृथ्वीराज तृतीय के गुणों व पराक्रम का वर्णन है। अजमेर नगर के विकास के साथ ही उस समय की धार्मिक व सामाजिक स्थिति का भी चित्रण इसमें है।

प्रबन्ध चिन्तामणि —इसके ग्रन्थकार मेरुतुंग हैं। इनकी इस पुस्तक का कथा साहित्य में तथा ऐतिहासिक प्रसंग में बड़ा महत्व है। इसमें कल्पना का भी समावेश है। यह 13 वीं शताब्दी के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर भी प्रकाश डालता है।

राज वल्लभ—इसे महाराणा कुम्भा के शिल्पी मण्डन ने लिखा था जिसमें उस समय के सामाजिक जीवन, वास्तु तथा शिल्पकला का भी विस्तार में वर्णन है।

भट्टिकाव्य 15 वीं शताब्दी के जैसलमेर के राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन, राव भीम की मथुरा-वृन्दावन यात्रा तथा राजा अक्षयसिंह के तुलादान आदि का वर्णन इसमें विस्तार से किया गया है।

एकलिंग महात्म्य—इसे महाराणा कुम्भा द्वारा रचित माना जाता है। इसमें गहलौत वंश की वंशावली दी गई है। इसमें 15 वीं शताब्दी का सामाजिक जीवन प्रस्तुत है। इसमें चित्तौड़ तथा एकलिंग का वर्णन है।

सुर्जन चरित्र—इसके कवि चन्द्रशेखर हैं जिन्होंने इसकी रचना बनारस में की थी। कवि ने बूंदी के राजा सुर्जन हाड़ा का इसमें चरित्र वर्णन किया है क्योंकि राजा सुर्जन के द्वारा बनारस से सुन्दर इमारतें, जलाशय महल, गंगा घाट आदि द्वारिकापुरी में रणछोड़जी का मन्दिर बनवाया था। राजा सुर्जन बहुत दानी भी थे। इस पुस्तक से 16 वीं शताब्दी के सामाजिक जीवन की भी झलक मिलती है।

हम्मीर महाकाव्य—इसके कवि नयनचन्द्र सूरि हैं। इसमें रणथम्भौर के राजा हम्मीर व उनके चौहान वंश का वर्णन है तथा अलाउद्दीन के आक्रमण का भी विस्तृत वर्णन दिया गया है। यह उस समय के राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन की भी झांकी प्रस्तुत करता है। इसके द्वारा राजा हम्मीर चरित्र को उजागर किया गया हैं।

कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तनककाव्यम्—इसकी रचना जयसोम ने की है। इसमें बीकानेर के राजाओं का वर्णन है। वहाँ के सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक जीवन के दर्शन भी इसमें उपलब्ध होते है।

प्रबन्ध कोष—यह भी 16 वीं शताब्दी का राजशेखर द्वारा रचित ग्रन्थ है जिसमें जैन, साधु, कवि, राजा तथा अन्य व्यक्तियों का जीवन वृत्तान्त है.

अमरकाव्य वंशावली—इसकी रचना कवि रणछोड़ भट्ट ने की है। इसमें उदयपुर के शासकों की उपलब्धियों का वर्णन है। साथ-साथ इसमें वहां का सामाजिक जीवन भी परिलक्षित है।

अमरसार—इसके रचियता पं. जीवाधार हैं। इसमें राणा प्रताप तथा उनके पुत्र अमरसिंह के जीवन का पूर्णरूपेण वर्णन है।

राज रत्नाकर—इसके रचियता सदाशिव हैं। इसमें महाराणा राजसिंह के शासन काल का वर्णन है।

राजविनोद—इसके लेखक भट्ट सदाशिव हैं जिन्होंने इसमें बीकानेर के राजा कल्याणमल की अनुमति से वहां का 16 वीं शताब्दी का सामाजिक, आर्थिक, सैनिक जीवन प्रस्तुत किया है।

अजितोदय—इसकी रचना भट्ट जगजीवन ने की है। यह मारवाड़ के राजा अजीतसिंह के राजदरबारी कवि थे। इसमें महाराजा जसवन्तसिंह तथा उनके पुत्र अजीतसिंह के जीवन का पूर्ण वर्णन है। साथ-साथ वहाँ के नागरिक जीवन को भी इसमें प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त संस्कृत भाषा की अन्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

15 **समराइच्चकहा**—हरिभद्र सूरी
16 **कुवलय माला**—उद्योतन सूरी
17 **बृहत् कथा कोष**—हरिसेन
18 **पार्श्वनाथ चरित्र**—श्रीधर (जैन ग्रन्थ)
19 **जिनदत्त सूरि स्तुति**—पाल्ह (जैन ग्रन्थ)
20. **खरतरगच्छ बृहत् गुर्वावली**—लेखक अज्ञात
21. **उपेशगच्छ पट्टावली**—लेखक अज्ञात

इसके अतिरिक्त बीसलनगर के ब्राह्मण कवि पद्मनाभ का 'कान्हदे प्रबन्ध' महत्वपूर्ण है जिसमें अलाउद्दीन व सोनिगरा चौहान कान्हदे के युद्ध का वर्णन है। इन्हीं की एक महत्वपूर्ण रचना "हम्मीरायण" भी है। नरपति नाल्ह ने 'बीसलदेव रासो' की रचना की थी।

सन्त साहित्य—

जैनियों के बाद के सन्तों द्वारा लिखा गया साहित्य सन्त साहित्य की श्रेणी में आता है। परोपकार की भावना से काम करने वाले सन्तों ने भी अपने साहित्य की रचना से मानव और समाज में सुख-शान्ति की स्थापना का प्रयास किया। मध्यकालीन राजस्थान में विश्नोई, जसनाथी, दादू, रामस्नेही आदि कई सम्प्रदाय प्रचलित थे। इन सम्प्रदायों के कई सन्तों व अनुयायियों जैसे दादू, कबीर, रैदास, गोरखनाथ आदि ने बहुत लम्बे समय तक निवास करके साहित्य सृजन किया। विश्नोई सम्प्रदाय शिष्य परम्परा में केसोदास, गोदारी सुरजनदास पूनिया तथा कई अन्य सन्तों ने अपनी रचनाओं के द्वारा महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जसनाथी सम्प्रदाय के सन्तों का साहित्य 22 अखाड़ों अथवा संग्रह खण्डों में भरा पड़ा है। इसी भांति निरंजनी, दादू सम्प्रदाय का साहित्य भी उपलब्ध है। मीराबाई सन्त कवियों की शृंखला में स्वतन्त्र टोली की कवयित्री हुई है। स्वतन्त्र शैली के लोक कवियों में मेवाड़ के सन्तदीन परवेश, मारवाड़ में चन्द्र सखी तथा सन्तकवि काजी महमूद आदि उल्लेखनीय है। कबीर की रचनाओं में राजस्थान का प्रभाव दृष्टिगत होता है। बालकदास, जनगोपाल, प्रताप सिंह, कुंअर महाराजा प्रतापसिंह ने भी पौराणिक चरित्र कथाएं लिखी है।

लोक साहित्य—जनसाधारण के जीवन से अत्यन्त निकट रहने के कारण लोक साहित्य में विषय प्रसंगों का वैविध्य अधिक है तथा स्वाभाविकता, सरसता, सहजता आदि अन्य साहित्यिक और कलात्मक गुणों से भी यह भरपूर है। जीवनोपयोगी शिक्षा जितनी लोक साहित्य में अन्तर्निहित है, उतनी लिपिबद्ध साहित्य में नहीं है। जीवन के हर क्षेत्र में किंकर्त्तव्य कर देने वाली प्रत्येक छोटी बड़ी समस्या के लिये कुछ न कुछ समाधान लोक साहित्य में विद्यमान हैं। साहित्य पद्य एवं गद्य दोनों में मिलता है। पद्य में लोक गीतों के रूप में तथा गद्य में वार्तों, कथाओं, ख्यातों आदि में यह जनसाधारण की वाणी में विद्यमान है।

गत कुछ वर्षों से मौखिक साहित्य को लिपिबद्ध करने, संग्रहित करने तथा प्रकाशित करने का कार्य राज्य के कई संस्थानों द्वारा किया जा रहा हैं, जिन में रूपायन

संस्थान, बोरूंदा, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर, चौपासनी शोध संस्थान, जोधपुर, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर आदि प्रमुख हैं।

राजस्थान लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक कथाएँ, पवाड़े, लोकगीत तथा कहावतें, मुहावरें आदि आते है।

राजस्थानी लोक कथाएँ मुख्यत: नीति, प्रेम, वृत, मनोरंजन तथा पुराण सम्बन्धी है। राजस्थान में लोक कथाएँ कहने वाली विभिन्न जातियाँ है और वे अपने विशिष्ट ढंग से कथाएँ कहती हैं। इन लोक कथाओं में वालक, वालिकाओं, स्त्रियों, पुरुषों तथा परियों की कहानियाँ अधिक होती हैं। उदाहरणार्थ सोने को हरिण, राजा को सपनों, पाप को फल, परियों का देश, राजा भोज अर सुनेरो हिरण, दूध में सांप, राजा भोज सैं कुत्तों, सोने का महल आदि। राजस्थानी लोक कथाओं का एक संस्करण "चौबाली" नाम से प्रकाशित किया गया है। प्रेम कथाएँ जोधपुर में काफी प्रचलित है जिनमें ढोला-मारू लोक कथा, जलाल-लूबना लोक कथा एवं नागजी-नागवती लोक कथा आदि प्रमुख है।

राजस्थान में बहुत सी कहावतें हर विषय से सम्बन्धित प्रचलित है लेकिन कुछ कहावतें इस प्रकार है-

1. बरजी छी जब मानी नी, मन में आण्यू रोस,
   कोस्या पीछे डूमड़ी, भागी बारह कोस।
2. खाता खांण न पीता पाण।
3. हाथ कमाण त्रामड़ा, कीण नै दौजे दौप।
   कौजेजी री पालड़ी, कदे नै दौजे दौप।
4. पांख झाड़ता आँख फूटी, गियां टींटको काणी में,
   दोनो आंख सपासप होगी, जा भैस पाणी में।

राजस्थानी भाषा का प्राचीन पद्य साहित्य

प्राचीन तथा मध्यकाल में राजस्थानी भाषा साहित्य का बहुत सृजन हुआ है। इनमें कुछ रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं और कुछ कम। प्रसिद्ध रचनाएं प्रबन्ध काव्य हैं, कुछ अन्य प्रकार की रचनाएँ हैं जैसे दोहा, सोरठा, छप्पय आदि। प्रबन्ध काव्य को नृत्य संगीत, चरित्र, मंगल, प्रेम व्यंजना तथा विज्ञान आदि प्रबन्ध काव्यों में विभक्त किया जा सकता है—

नृत्य संगीत मूलक प्रबन्ध काव्य नृत्य-ताल व गेय रूपक हैं। अत: इस दृष्टि से लिखे गये काव्यों में रास, फागु, धमाल व चर्चरी का विशिष्ट स्थान है। वैसे तो राजस्थानी में काफी रास मिलते हैं, किन्तु 1184 ई. में लिखा गया शालिभद्र सूरि का भरतेश्वर-बाहुबल रास' राजस्थानी की रास संज्ञक रचना मानी जा सकती है। अमरचन्द नाहटा ने राजस्थानी भाषा का प्राचीनतम **फागु-काव्य** खरतर गच्छीय जिन प्रबोध सूरि कृत 'जिन चन्द सूरि फाग' को माना है। ताल एवं नृत्य के साथ उत्सव में गाई जाने वाली रचना को चर्चरी कहते है।

चरित मूलक प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत किसी व्यक्ति विशेष के सम्पूर्ण जीवन चरित्र को आधार बनाकर काव्य लिखा जाता है जैसे राजरूपक, जनविलास, सूरजप्रकाश, जयसिंह चरित आदि। **पवाड़ा** किसी महापुरुष या वीर के विशेष कार्यों का वर्णन करने वाली रचनाएँ होती है। पाबू जी के पवाड़े बड़े प्रसिद्ध है। चरित्र मूलक प्रबन्ध काव्यों में उदेसिंह री वेल, गुमानसिंह री वेल आदि प्रसिद्ध रचनाएँ है।

मंगल मूलक प्रबन्ध काव्यों में रूक्मणी विवाहलों मंगल, रूक्मणी-मंगल आदि प्रमुख है। प्रेम व्यंजना मूलक प्रबन्ध काव्यों में चौमासा एवं बारहमासा रचनाएँ प्रमुख है। कभी कभी दोहा, चौपाई, वेलि, प्रबन्ध आदि नामों के अन्त वाली रचनाएँ जैसे ढोला-मारू रा दूहा, गोरा-बादल चौपाई, बीसलदेव रासो, महादेव-पार्वती री बेलि, आदि भी प्रेम भावों से युक्त होती हैं। विज्ञान मूलक काव्य में आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, योग व्याकरण आदि विषयों से सम्बन्धित काव्य होते है।

कुछ प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य निम्नलिखित हैं—

कान्हड़दे प्रबन्ध—इसकी रचना **पद्मनाभ** कवि ने की थी। यह जालौर के शासक अखैराज के आश्रित कवि थे। इसमें अलाउद्दीन द्वारा जालौर पर आक्रमण तथा राजा कान्हड़दे के पुत्र वीरम दे का अलाउद्दीन की पुत्री फिरोजा से प्रेम का वर्णन है। पुस्तक एक साहित्यिक कलाकृति है और समसामयिक जीवन का चित्रण करती है।

राव जैतसी रो छन्द—इसके रचयिता **वीठू सूज नागरजोत** हैं। इसमें कामरा द्वारा भटनेर के किले पर किये गये आक्रमण तथा बीकानेर के राजा जैतसी की बहादुरी का वर्णन है। साथ-साथ चूण्डा से लेकर राव लूणकरण के पराक्रमों का भी वर्णन है। यह रचना काव्यगत विशेषताओं के साथ-साथ ऐतिहासिक महत्व भी रखती है।

पृथ्वीराज रासो—यह **चन्दवरदायी** द्वारा लिखा गया प्रबन्ध काव्य है जो ढाई हजार पृष्ठों का बृहद ग्रन्थ है तथा इसके उत्तरार्द्ध की रचना चन्द के पुत्र अल्हण ने की थी। रासों में एक स्थान पर इसका उल्लेख है।

"पुस्तक अल्हण हाथ दे चलि गज्जन नृप काजे।"

इसमें पृथ्वीराज चौहान का मुहम्मद गौरी से हुए युद्ध

पृथ्वीराज के संयोगिता के साथ प्रेम विवाह तथा पृथ्वीराज व चन्दवरदाई द्वारा मोहम्मद गौरी का मारा जाना तथा अपनी आत्महत्या कर लेने का भी वर्णन है। पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता के बारे में सन्देह है क्योंकि एक, तो इसमें भाषा की विविधता है, दूसरे, ऐतिहासिक तथ्यों के साथ इस ग्रन्थ में वर्णित घटनाओं का कोई तालमेल नहीं बैठता। फिर भी यह हिन्दी का सर्वप्रथम उपलब्ध महाकाव्य है जिसमें काव्य का सौन्दर्य असाधारण कोटि का है।

वेलि किसन रुकमणी री—इसकी रचना **पृथ्वीराज राठौड़** ने की थी जो अकबर का दरबारी कवि था। इसमें वीर रस तथा भक्ति रस उपलब्ध है। यह उस समय के रीति-रिवाज तथा सभ्यता को भी प्रस्तुत करती है तथा एक साहित्यिक कलाकृति है।

सूरज प्रकाश—इसके रचियता अभयसिंह के दरबारी **करणीदान** हैं। इसमें उस काल के युद्धों का वर्णन है तथा उस काल का सामाजिक जीवन पूर्णरूपेण प्रदर्शित है। इसमें राजस्थानी वीरता की प्रशंसा की गई है।

वंश भास्कर—इसके ग्रंथकार बूंदी के चारण **कवि सूर्यमल मिश्रण** हैं। इसमें बूंदी के राजाओं के युद्धों व वीरता का वर्णन है। यह ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्ण है। इसमें राजा रामसिंह की वीरता का वर्णन है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रबन्ध काव्य राजस्थानी भाषा में पाये जाते हैं—

1. रामरासो—माधोदास चारण
2. महादेवी पारवती री वेली—किसनो
3. नागदमण—साइयां भूला
4. रतनजस प्रकाश—सागरदान
5. रुकमणीहरण—वीठलदास
6. ग्रन्थराज—गोपीनाथ
7. वरसलपुरगढ़ विजय—जोगीदास
8. गुण भाषा—हेम कवि
9. गुण रूपक—केशवदास
10. राज रूपक—कवि वीरभाण
11. खुमान रासो—दलपति विजय
12. बीसलदेव रासो—नरपति नाल्ह।

इन प्रबन्ध काव्यों के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा में अनेक गीत काव्य भी उपलब्ध हैं। यह गीतों के रूप में हैं और इनमें वीर रस की प्रधानता है। कवि ने इनमें नायकों के व्यक्तित्व का वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त बहुत-सा साहित्य राजस्थानी में दोहा, सोरठा, कुण्डलियाँ आदि में भी लिखा गया है। कुछ प्रसिद्ध रचनायें इस प्रकार हैं—

1. ढोला मारूरा दूहा
2. हरजी रो विवाहलो
3. रुकमणी मंगल
4. हरजी रो माहेरो
5. जीण माता रो गीत
6. डूगाजी जवाहरजी रो गीत
7. मातृभाषा रो गीत
8. नरसीजी रो माहेरो
9. राजिये रा सोरठा
10. केहर रा कुन्डलियां
11. मपण रा कवित्त
12. अमरसिंह रा सवैया
13. रजसिंह रा भोटक
14. गजसिंह रा भूलणा
15. करमसैण रीभ वाल।

राजस्थानी भाषा का मध्यकालीन गद्य साहित्य

राजस्थानी भाषा का समस्त गद्य साहित्य मध्यकाल में ही लिखा गया है। 14वीं शताब्दी से ही गद्य साहित्य के लिखित प्रमाण मिलते हैं। यद्यपि प्रारम्भिक गद्य साहित्य जैन लेखकों का है किन्तु काल एवं परिस्थिति के साथ चारणों व अन्य लेखकों ने भी गद्य साहित्य लिखा। राजस्थानी साहित्य में गद्य के धार्मिक एवं पौराणिक रूप मिलते हैं। पौराणिक गद्य संस्कृत के पौराणिक ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। ऐतिहासिक गद्य में ऐतिहासिक विषयों को व्यापक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। चारणी शैली के गद्य में ख्यात, बात हाल, याददाश्त, विगत, पट्टा-परवाना, वंशावली, इकरारनामा, वसीयतनामा, जन्मपत्रियां, ताम्रपत्र, शिलालेख व सुरहलेख के रूप में प्राप्त अभिलेखीय गद्य विशेष उल्लेखनीय है। कलात्मक गद्य का रूप अन्य भाषाओं में नहीं मिलता। राजस्थानी साहित्य में तुकान्त व अतुकान्त गद्य मिलता है जैसे वचनिका, बात, दवावैत आदि परन्तु अचलदास खींची री वचनिका काफी प्रसिद्ध रचना है। राजस्थानी साहित्य में व्याकरण से सम्बन्धित 1297 ई. में रचित ग्रन्थ **बाल शिक्षा** काफी प्रसिद्ध रचना हैं। चारणी शैली में लिखित गद्य साहित्य में मुख्य रूप से ख्यातें या बातें हैं जो राजपूत राजाओं की वंशावली, इतिहास या कहानी बताती हैं। अतः इनकी विषय-सामग्री ऐतिहासिक है जिसमें यत्र-तत्र कल्पना का भी समावेश है। साहित्य की दृष्टि से भी इनका महत्व है। मुख्य-मुख्य ख्यातें निम्नलिखित हैं—

मुहता नैणसी री ख्यात—**नैणसी** महाराजा जसवन्त सिंह के दीवान थे। उन्होंने इतिहास के तथ्यों का संकलन अपनी इस ख्यात में किया है। यह राजस्थानी भाषा का एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसमें उस समय की समस्त राजपूतों की रियासतों का इतिहास संकलित है। इसमें राजपूत वीरों के युद्धों का वर्णन है।

बांकीदास की बातां—इसकी रचना **बांकीदास** ने की है जो राजा मानसिंह के दरबारी कवि थे। यह एक अच्छे इतिहासकार भी थे। इसमें उन्होंने 2,000 लघु

कथाओं का संग्रह किया है जो राजपूत वंशों से सम्बन्धित हैं। अत: यह ऐतिहासिक है। इसमें राजस्थानी गद्य का सुन्दर उदाहरण उपलब्ध है।

दयालदास री ख्यात—इसकी रचना का श्रेय दयाल दास को है। इन्होंने इसमें बीकानेर के शासकों का वर्णन किया है। इसमें राव बीका से लेकर राव सरदारसिंह के राज्यारोहण तक का वर्णन है। इसमें बोलचाल की राजस्थानी को प्रधानता दी गई है।

जोधपुर रा राठौरां री ख्यात—इसको राजा मानसिंह ने लिखवाया था। इसमें राव जोधा से लेकर राव मानसिंह तक का वर्णन दिया गया है।

कुछ अन्य ख्यातें इस प्रकार हैं—1. किशनगढ़ री ख्यात, 2. सिसौदिया री ख्यात, 3. भाटियों री ख्यात, 4. कछवाहा री ख्यात, 5. महाराजा मानसिंहजी री ख्यात, 6. सोनगरा री ख्यात, 7. सांचोरा री ख्यात, 8. फलौदी री ख्यात, 9. सख्तसिंहजी री ख्यात एवं 10. सिसौदिया री वंशावली।

राजस्थानी भाषा का मध्यकालीन कथा साहित्य

राजस्थानी भाषा का मध्यकालीन कथा साहित्य 'बातों' के रूप में मिलता है जिसका अर्थ है लघु कथा या लघु उपन्यास। ऐसी अनेक बातें इस भाषा में उपलब्ध हैं। ये घटना प्रधान हैं जिनमें कथानक गति या कार्य से परिपूर्ण हैं। कहीं सूक्ष्म वर्णन हैं तो कहीं प्रेम वर्णन हैं। कुछ बातों में वार्तालाप सुन्दर है तथा कुछ अन्य में भाषा शैली मुख्य है। इनमें वीर रस, प्रेम रस तथा हास्य रस प्रमुख हैं। इस कथा साहित्य की मुख्य रचनाएं जैसे—1. राव रिणमल री बात 2 अमरसिंह री बात 3. पाबूजी री बात 4. कानड़दे री बात 5. राजा मानधाता री बात 6. जोगचारण री बात 7. सयणी चारणी री बात 8. पातिसाह री बात 9. बात ठगरी बेटी री 10. कोड़ीधन री बात 11. मालहाली री बात एवं 12. चांद कुंवर री बात आदि हैं जो इस मध्यकालीन कथा साहित्य में अनूठापन लाती हैं।

राजस्थान में मध्यकाल में हिन्दी साहित्य का विकास हुआ पर उसका आदिकाल राजस्थानी भाषा से बहुत प्रभावी रहा। भक्तिकाल के समय में मीराबाई, रैदास, दादू, गोरख, सुन्दरदास, महाराजा जसनाथ आदि ने भक्तिकाल की रचनाओं का सृजन किया जिसमें राजस्थानी भाषा का प्रभाव झलकता है। इसी काल रीतिकाल में महाकवि बिहारी भी हुए, जिनके दोहे चुभते हुए होते थे

आधुनिक राजस्थानी भाषा का साहित्य—हिन्दी के प्रभाव तथा विस्तार के कारण राजस्थानी भाषा का साहित्य आधुनिक काल में बहुत क्षीण हो गया है। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से राजस्थान सरकार इसकी प्रगति के लिए भरसक प्रयत्नशील है जिसके कारण राजस्थानी में साहित्य सृजन कुछ तेज हुआ है। राजस्थानी भाषा में कविता साहित्य, कथा साहित्य एवं लोक साहित्य आदि में कुछ प्रमुख साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने काफी लोकप्रिय रचनाएँ लिखी हैं—

कविता साहित्य—राजस्थानी में कविता साहित्य में विख्यात कवि बहुत कम है। फिर भी कन्हैयालालसेठिया का नाम प्रमुख है। इन्होंने 'पाताल और पीथल' नाम की सुन्दर रचना की है। मुकुल का नाम भी प्रसिद्ध है और उनकी 'सैनानी' एक लोकप्रिय रचना है। ठाकुर रामसिंह की 'मातृभाषा रो गीत' भी एक सुन्दर रचना मानी जाती है। वीर रस के कवियों में केसरीसिंह बारहठ, उदयराज उज्ज्वल, नाथूदास के नाम आते हैं। कुछ अन्य कवियों में बद्रीप्रसाद आचार्य, मुरलीधर व्यास, भोपराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कथा साहित्य—इस क्षेत्र में कुछ अधिक कार्य हुआ है। इसमें शिवचरण भारतीय ने 'कनक सुन्दरी' नामक उपन्यास लिखा है। इनके अतिरिक्त श्रीलाल जोशी का 'अभे पतरी' उपन्यास भी प्रसिद्ध है। बद्रीप्रसाद संकरिया ने भी अपना योगदान 'अनोखी कहानी' नामक उपन्यास लिखकर दिया है। मुरलीधर व्यास तथा नरोत्तम दास स्वामी ने मिलकर 'राजस्थानी कहावता' नामक कथा-साहित्य प्रस्तुत किया है विजयदान देथा ने अपनी रचना 'वाता री फुलवारी' में राजस्थानी लोक गाथाओं का संग्रह किया है। मणि मधुकर की रचना 'पगफेरो' भी अच्छी रचना है जिस पर साहित्य अकादमी पुरस्कार (1975) मिल चुका है। कथा साहित्य के अन्य लेखक हैं अमरचन्द नहाटा, गुलाबचन्द नागौरी, मुन्नालाल पुरोहित तथा श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूंडावत।

अन्य कहावत—राजस्थानी लोक साहित्य पर संकलन का कार्य कोमल कोठारी कर रहे हैं। इन्हें नेहरू फेलोशिप प्रदान किया जा चुका है। मुरारीदास मिसन ने राजस्थानी भाषा का शब्दकोश तैयार किया है। चन्द्रसिंह ने कालिदास के नाटकों का अनुवाद राजस्थानी में किया है जिसमें 'रघुवंश' प्रमुख है। अन्य लेखक भी अनुवाद व शोध कार्य इस साहित्य में कर रहे हैं।

राजस्थान का मध्यकालीन हिन्दी साहित्य—

राजस्थान में कुछ सन्त साहित्य का विकास व सृजन हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में दृष्टिगत होता है। अत: मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का राजस्थानी भाषा से प्रभावित होना स्वाभाविक ही था।

वैसे तो हिन्दी का आदिकाल भी राजस्थानी भाषा

से बहुत प्रभावित रहा है। भक्तिकाल के दौरान राजस्थान में मीराबाई, रैदास, दादू, गोरख, कबीर आदि की रचनाएं लिखी गई। मीराबाई, सुन्दरदास, महात्मा जसनाथ आदि की तो राजस्थान जन्मभूमि रहा है। अतः यहां सन्त साहित्य का अच्छा संग्रह पाया जाता है। इसका मुख्य तत्व धर्म व समाज सुधार है। कुछ सन्त कवियों की साहित्यिक रचनाओं में मीराबाई के पद, रैदास, दादू, सुन्दरदास की रचनाएं प्रमुख हैं। जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

(1) **मीराबाई के पद**—इसकी रचना मेड़ता के सरदार रतनसिंह की पुत्री तथा मेवाड़ के राजा भोजसिंह की पत्नी मीराबाई द्वारा की गई थी। यह बाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण को अपना पति मानती थीं, अतः उन्हीं पर अपने पदों की रचना की है। इनके पद चार ग्रन्थों में संग्रहीत हैं। इन पदों में प्रेम पीड़ा, विरह वर्णन, तन्मयता आदि कूट-कूट कर भरी है।

(2) **रैदास की रचनाएं**—यह बनारस के चमार थे जो चित्तौड़ गये थे और मीराबाई से भेंट की थी। वहां इनकी एक छतरी कुम्भश्याम के मन्दिर में है। इनकी रचनाएं कबीर जैसी हैं, जो गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहीत हैं। इनकी वाणी राजस्थान के हस्तलिखित साहित्य में उपलब्ध है। यह समाज सुधारक थे व आडम्बर, जातिवाद, अवतारवाद व कर्मवाद आदि के विरोधी थे।

(3) **दादू की रचनाएं**—दादूदयाल गुजरात के रहने वाले थे पर इनका प्राणान्त उदयपुर के पास नारायना गांव में हुआ था। यहीं इनके नाम पर दादू पन्थ चला जो आज तक जीवित है। इन्होंने सम्पूर्ण राजस्थान का भ्रमण किया था। इनकी रचनाएं 'दादूदयाल की वाणी' तथा 'दादूदयाल रा दूहा' के रूप में संग्रहीत हैं। इनकी भाषा में ढूंढारी का प्राचुर्य है। इनकी रचनाओं में ईश्वर व गुरु की महिमा, प्रेम, भौतिकता, जातिवाद व रूढ़ियों की आलोचना, मूर्तिपूजा का विरोध आदि दृष्टिगत होता है।

(4) **सुन्दरदास की रचनाएं**—यह दौसा में पैदा हुए थे और सन्त कवियों में रहे बसे थे। 'सुन्दर विलास' इनका मुख्य ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इन्होंने सवैये, कवित्त, नीति सम्बन्धी छन्द आदि लिखे हैं। इनकी भाषा ब्रज तथा राजस्थानी है जिसमें अलंकारों का बाहुल्य है। अतः सन्त कवि होते हुए भी आपकी रचनाएं अधिक साहित्यिक हैं।

भक्तिकाल के सन्त कवियों के अतिरिक्त, रीतिकाल में राजस्थान के महाराजा जयसिंह के आश्रम में कवि बिहारी भी रहे हैं। इन्होंने यहां रहकर अपनी कविता की ओर उसके माध्यम से कृष्ण भक्ति भी की तथा राजा को प्रसन्न भी किया। जब राजा जयसिंह अपनी नवेली रानी के प्रेमपाश में जकड़े हुए थे तो बिहारी के निम्न दोहे ने उसे राज्य कार्य के लिए आकर्षित किया—

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सों बिध्यों, आगे कौन हवाल॥"

जब राजा जयसिंह शिवाजी के विरुद्ध औरंगजेब की ओर से युद्ध कर रहे थे, बिहारी ने अपने निम्न दोहे द्वारा उन्हें दूसरे के हाथ में खेलने की मन्त्रणा दी—

'स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराये पानि पर, तू पंछीनु न मारि॥'

अतः राजस्थान में भी हिन्दी मध्यकाल तथा रीतिकाल में मुखरित हुई थी।

आधुनिक काल में राजस्थान में हिन्दी साहित्य—

राजस्थान ने हिन्दी जगत की मीरा जैसी विश्व-विख्यात कवियत्री तथा चन्दबरदाई जैसा कवि प्रदान किया। बिहारी को भी राज्याश्रय दिया गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् 1867 में जब 'कवि वचन सुधा' के प्रकाशन से हिन्दी खड़ी बोली का प्रथम 'पत्र' निकाला उसी के लगभग बल्कि कुछ समय पूर्व 1866 में जोधपुर के बाबू हीरालाल के सम्पादन में 'मारवाड़ गजट' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। आधुनिक हिन्दी की साहित्यिक परम्परा का राजस्थान में तब से श्री गणेश माना जा सकता है। उस समय से अब तक तो राजस्थान ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को कितने ही साहित्य रत्न दे दिये हैं। विश्व विख्यात कहानी 'उसने कहा था' के रचियता स्व: श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जयपुर के थे।

आधुनिक काल में राजस्थान में हिन्दी साहित्य का अधिक विकास हुआ है और अनेकों नवीन साहित्यकार इस क्षेत्र में उत्पन्न हुए हैं। यह साहित्यकार विभिन्न क्षेत्रों में निम्नांकित हैं—

कविता साहित्य—इस क्षेत्र में सुधीन्द्र, कन्हैयालाल सेठिया, मेघराज मुकुल, सत्यप्रकाश जोशी, गिरधर शर्मा नवरत्न, गणपतिचन्द्र भण्डारी, नन्द चतुर्वेदी आदि के नाम प्रमुख गीतकारों में शामिल हैं। इन्होंने अपने गीतों द्वारा हिन्दी साहित्य को धनी बनाया है।

कथा साहित्य—राजस्थान के प्रमुख उपन्यासकार शचीन्द्र, परदेशी, शील, ओंकारनाथ दिनकर, शान्तिलाल भारद्वाज, लक्ष्मीकान्त शर्मा, मन्नू भण्डारी आदि हैं। कहानीकारों में इनके अतिरिक्त मणि मधुकर, आलमशाह, जयसिंह राठौड़ आदि के नाम सम्मिलित किये जा सकते हैं।

नाटक साहित्य—नाटक साहित्य में जनार्दन राय, ओंकारनाथ दिनकर, राजेन्द्र सक्सेना, उदयसिंह भटनागर, शम्भूनाथ सक्सेना आदि के नाम प्रमुख हैं।

गद्य साहित्य—इस क्षेत्र में डॉ. रांगेयराघव,, अगर-

चन्द नाहटा, मोतीलाल मनेरिया, डॉ. हीरालाल माहेश्वरी नरोत्तम स्वामी, डॉ. कन्हैयालाल सहल आदि के नाम विख्यात हैं।

राजस्थान के व्यंगकारों में त्रिभुवन चतुर्वेदी का नाम प्रमुख है। हिन्दी साहित्य राजस्थान में पनपा तो सही परन्तु शिक्षा व ज्ञान के अभाव में यह पूर्णतया विकसित नहीं हो पाया। परिणामस्वरूप यहां कोई भी महान साहित्यकार नहीं पाया जाता है। जो साहित्यकार यहां उपलब्ध है वे रेडियो, टेलीविजन, पत्र-पत्रिकाओं के ही लेखक हैं। अतः इनका विषय भी स्थायित्व नहीं रखता हैं बल्कि यह समसामयिक है।

राजस्थान के प्रमुख साहित्यकार

जयानक—यह संस्कृत ग्रंथ 'पृथ्वीराज विजय' के लेखक है जो 12वीं शताब्दी के अन्त में लिखा गया था। इनका यह ग्रंथ ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक महत्व का है। यह पृथ्वीराज के समकालीन कवि थे। इन्होंने अपनी इस पुस्तक में अजमेर के विकास का पूर्ण विवरण दिया है। यह एक अच्छे कवि थे जिन्हे अलंकारों और कल्पना पर अधिकार था। यह काश्मीर निवासी थे।

चन्दरवरदाई—हिन्दी में आदि महाकाव्य पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्दरबरदाई का जीवनचरित्र सम्भवतः सबसे अधिक विवादास्पद और संदिग्ध है। यह भट्ट जाति के चारण कवि थे। इनको पृथ्वीराज चौहान का मित्र तथा राजकवि माना जाता हैं। कहते हैं कि इनका और पृथ्वीराज का जन्म और मौत एक ही तिथियों में हुई थी। यह पृथ्वीराज के साथ युद्ध में भी लड़े थे। इन्हीं के द्वारा पृथ्वीराज शब्दवेधीवाण से मोहम्मदगोरी को मारसका था। इनके काव्य में वीर रस तथा अन्य काव्यगत विशेषताएं पाई जाती हैं।

विठू सूजी नागरजोत—यह 'राव जैतसी रो छन्द' के लेखक हैं जिसकी रचना 1929 स. में हुई थी। यह डिंगल भाषा में लिखा हुआ काव्य हैं। विठू सूजो बीकानेर के दरबार में रहते थे। इसलिए इन्होंने वहाँ के शासकों की वीरता का वर्णन किया है। यह ग्रंथ बीकानेर के राव जैतसी की प्रशंसा में लिखा गया है। बाबर के पुत्र कामरान द्वारा बीकानेर पर चढ़ाई किये जाने पर राव जैतसी ने अपने जिस असाधारण शौर्य और पराक्रम का परिचय दिया उसी की प्रशस्ति इस काव्य में गाई गई है।

पृथ्वीराज राठौड़—यह अकबर के दरबार के सम्मानित दरबारी थे। इन्होंने 'बेलि किसन रुकमणी री' की रचना की है। यह वीर रस के कवि थे और निर्भीक थे। इन्होंने उस समय के रीति रिवाज, उत्सव, त्यौहार, रहन सहन आदि का भी अपनी पुस्तक में वर्णन किया है।

सूर्यमल मिश्रण—यह बूंदी राज्य के चारण कवि थे 'बंश भास्कर' के रचियता सूर्यमल का जन्म सन् 1872 मे बूंदी में हुआ था। बंश भास्कर बूंदी राज्य का पद्यात्मक इतिहास है जिसमें वर्णित घटनाएँ तथ्यों पर आधारित हैं। इनके अन्य ग्रंथ वीरसतसई, बलवन्त विलास- और छन्दोमयूत्व आदि भी प्रमुख हैं। वीर रस के कवियों में सूर्यमल की टक्कर का कवि सम्भवतः दूसरा नहीं हुआ।

बंश भास्कर बूंदी के चौहान राजाओं का वर्णन हैं। यह संस्कृत, डिंगल और व्रजभाषा के विद्वान थे। इनकी पुस्तक से ज्ञात होता है कि इन्हें राजपूतों, मराठों और अंग्रेजी राज्य का पूर्ण ज्ञान था।

करणीदान—यह 'सूरज प्रकाश' काव्य के रचियता हैं जो डिंगल भाषा में लिखा हुआ है। यह मारवाड़ के राजा अभयसिंह के दरबारी थे और जाति के चारण थे। इनकी पुस्तक में युद्ध का आंखों देखा वर्णन है। इन्हें उस समय के इतिहास, सामयिक रीति-रिवाज आदि का पूर्ण ज्ञान था। महाराजा ने इन्हें 2,000 रुपये वार्षिक आय की जागीर दान में दी थी।

नैणसी—यह मारवाड़ के राजा जसवन्त सिंह के दीवान थे। इन्होंने इतिहास की सामग्री का संग्रह किया था और उसकी सहायता से राजस्थानी गद्य में 'नैणसी री ख्यात' की रचना की थी। यह रचना राजपूतों के इतिहास का विशाल इतिहास हैं जिसका उपयोग आजकल के इतिहासकारों ने किया है। इसलिये इनको राजपूतों का अबुल फजल कहा जाता है।

बांकीदास—यह 'बांकीदास री वातां' के लेखक हैं। यह आसिया जाति के थे। इन्हें संस्कृत, डिंगल, व्रजभाषा और इतिहास का ज्ञान था। यह महाराणा मानसिंह के दरबारी थे और स्वतन्त्र प्रकृति के व स्वाभिमानी भी थे। इन्होंने अपनी कविता द्वारा अंग्रेजों की स्वाधीनता स्वीकार करने वाले राजपूत राजाओं को फटकारा है। इन्होंने कुल मिलाकर लगभग 26 ग्रंथ लिखे। काशी नगरी प्रचारिणी द्वारा बांकीदास ग्रन्थावली का प्रकाशन हो चुका हैं।

दयालदास—यह 'दयालदास की ख्यात' के लेखक हैं। यह बीकानेर के राजाओं के विश्वासपात्र थे और जाति के चारण थे। इनकी इस पुस्तक में वहां के राजाओं का ऐतिहासिक वर्णन है।

मीराबाई यह मेड़ता के सरदार रत्नसिंह की पुत्री थी। इनका विवाह राणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुवा था, परन्तु यह बचपन से ही गिरधर गोपाल को अपना पति मानती थीं। इनके पति की मृत्यु भी जल्दी हो गई थी। इनके चाचा वीरमदेव भी मालदेव से हार गये थे। अतः यह बेघरबार होकर भी जगह-जगह भटकीं इनके देवर ने इन्हें विष देकर, सर्प से कटवाकर इनकी हत्या करनी चाही, परन्तु हर बार यह बच गई। कृष्ण की भक्ति में इन्होंने पदों को लिखा और उनका गान किया। कुछ दिन बाद वह वृन्दावन चली आई जहां रणछोड़जी की मूर्ति में लीन हो गई। इनका संगीत इनकी

बड़ी देन है ।

सुन्दरदास—इनका जन्म जयपुर के पास दौसा में हुआ था । यह जाति के खण्डेलवाल थे । इन्हें बहुत ज्ञान था और इनकी गणना पढ़े लिखे संत कवियों में थी । इन दादूदयाल का प्रभाव था । इनकी मुख्य रचना 'सुन्दर विलास' है । इन्होंने सवैया, कवित्त आदि भी लिखे हैं । इन्हें ब्रजभाषा का भी अच्छा ज्ञान था ।

दादूदयाल--यह गुजरात के रहने वाले थे परन्तु राज-राजस्थान में आकर इन्होंने यहां का भ्रमण किया और दादू पंथ चलाया । यह हिन्दु थे परन्तु कुछ लोग इन्हें मुसलमान मानते हैं । इनकी मृत्यु उदयपुर के नारायण गांव में हुई थी जहां इनकी स्मृति में एक संगमरमर का भवन बना है । इनकी रचनाओं को इनके शिष्यों ने दो पुस्तकों में संग्रहीत किया है । यह ईश्वर और गुरु में विश्वास करते थे और जातिवाद, रूढ़िवाद, मूर्तिपूजा आदि के विरोधी थे ।

रविदास—यह बनारस के चमार थे जो अपना धन गरीबों में बांट दिया करते थे और जूते ठीक करके अपना पेट भरते थे । यह घूमते हुए चित्तौड़ गये थे जहां इनकी भेंट मीराबाई से हुई थी । इनकी एक छतरी कुम्भ श्याम के मन्दिर में बनी हुई है । इनकी रचनाएं गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहीत हैं । इनमें और कबीरदास में समानता दिखाई पड़ती है । यह जातिवाद, रूढ़िवाद, आडम्बर आदि के विरोधी थे ।

कन्हैयालाल सेठिया यह राजस्थानी और हिन्दी भाषा के आधुनिक काल के लेखक हैं । हिन्दी के प्रमुख गीतकारों में इनका नाम है । 'पाताल और पीथल' नमक इनकी सुन्दर काव्य रचना हैं।

विजयदान देथा—आपने राजस्थानी में अनेक पुस्तकें लिखी हैं । राजस्थानी के लोक गीत, लोक कथाएँ आदि पर पर हो रहे शोध कार्य में आपका बहुत बड़ा योगदान है । आपने 'वातां री फुलवारी' नामक पुस्तक में राजस्थानी लोक कथाओं का संग्रह किया है । फलस्वरूप 1974 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से आपको सम्मानित किया गया था ।

सीताराम लालस—आप राजस्थानी भाषा के आधुनिक विद्वान रहे हैं । इन्होंने राजस्थानी शब्दकोष का निर्माण किया ।

कोमल कोठारी—यह 'रूपायन' नामक संस्था के संचालक हैं । यह संस्था राजस्थानी लोक गीतों, कथाओं का संकलन कर रही है । अतः इनकी राजस्थानी साहित्य को बहुत बड़ी देन है । इनकी इस साहित्य सेवा के लिए इन्हें 1975 में नेहरू फैलोशिप पुरस्कार प्रदान किया गया था ।

अगरचन्द नाहटा—यह राजस्थानी और हिन्दी के गद्य लेखक हैं । इनके पास पाण्डुलिपियों का बहुत बड़ा संग्रह है । राजस्थानी में इन्होंने लघुकथाएँ भी लिखी हैं ।

बसीरअहमद मयूख—यह कोटा के प्रसिद्ध कवि हैं, और वैदिक व जैन धर्म के भी विद्वान हैं । गालिब की रचनाओं का इन्होंने राजस्थानी में अनुवाद किया था। 1976 में इन्हें सिंघवी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार प्रदान किया गया था ।

नारायणसिंह भाटी--यह राजस्थानी भाषा के विद्वान हैं । राजस्थानी साहित्य के लिए इनका बड़ा योगदान है । आप राजस्थानी शोधसंस्थान, जोधपुर के संचालक भी रहे हैं ।

मणि मधुकर—यह राजस्थानी और हिन्दी के विद्वान हैं । इनके उपन्यास 'भारत मुनि के बाद' पर 1976 का 1,500 रुपये का प्रेमचन्द पुरस्कार प्रदान किया गया था इनके काव्य 'पगफैरो' पर इन्हें साहित्य पुरस्कार से सम्मानित किया गया था ।

मनोहर वर्मा— आप राजस्थान में बाल साहित्य के जाने माने लेखक हैं । अभी आपकी 20 से भी अधिक पुस्तकें व कई स्वतन्त्र रचनाऐं प्रकाशित हो चुकी हैं । आग का गोला सूर्य, टिमटिम करते तारे, एक थी चूहिया दादी, मैं पृथ्वी हूं, केकड़ा, पंडित की पाठशाला, पढ़ते जाओ बढ़ते जाओ आदि आप की प्रमुख कृतियां हैं ।

नरपति नाल्ह—यह बीसलदेव रासो के रचयिता हैं जो सं. 1212 में लिखा गया था । बीसलदेव रासो के चार खण्ड हैं । इनमें से प्रथम खण्ड में मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमति से सांभर के बीसलदेव का विवाह का वर्णन है । दूसरे खण्ड में बीसलदेव का राजमति से रूठकर उड़ीसा की ओर प्रस्थान करना तथा वहां एक वर्ष रहना । खण्ड तीन में राजमति का विरह वर्णन तथा बीसलदेव का उड़ीसा से लौटना तथा खण्ड चार में बीसलदेव का भोज के घर जाकर राजमति को चित्तौड़ लाने का वर्णन है । इन्होंने अपनी रचना में बीसलदेव की वीरता, पराक्रम, राजमति के साथ प्रेम आदि का वर्णन किया हैं । इसकी भाषा राजस्थानी है ।

सूर्यकरण पारीक---आप राजस्थानी भाषा के प्रकाण्ड विद्वानों में से हैं । राजस्थानी भाषा के विकास व उत्थान के लिए इन्होंने काफी प्रयास किये हैं। इन्होंने 'ढोला-मारू रा दूहा, बेली कृष्ण रुकमणी री, राव जैतसी री छन्द आदि का सृजन एवं सम्पादन किया है ।

महेन्द्र भानावत---राजस्थानी लोक कथाओं, लोक गीतों,लोकनृत्य, लोककला केक्षेत्र में इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं । मेहंदी फूल गुलाब रो, देव नारायण रो भारत, लोक देवता तेजाजी, रामदला की पड़ आदि चर्चित एवं प्रसिद्ध रचनाएं हैं ।

4. राजस्थान की सामाजिक व्यवस्था

राजस्थान के राजनीतिक जीवन में कितने ही उतार-चढ़ाव भले ही आये हो लेकिन इस के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सभी दशाओं में कोइ विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है। यहाँ के निवासी परम्परागत सामाजिक रीति-रिवाज, त्योहार, मेले, उत्सव, आमोद-प्रमोद आदि में बढ़-चढ़ कर भाग लेते हुए उनका पूर्ण आनन्द लेते थे। मानव एक सामाजिक प्राणी है, अतः समाज अपरिहार्य है। साथ ही राज्य का एक प्रमुख घटक है। परिणामस्वरूप इसका अध्ययन जरूरी हो जाता है।

राजस्थान का समाज परम्परागत रूप से हिन्दू-बहुल समाज रहा है। इसकी संरचना भारतीय स्मृतियों में वर्णित वर्णाश्रम-धर्म के अनुसार चली आई है। अतः राजस्थान की सामाजिक व्यवस्था हेतु वर्ण एवं जाति व्यवस्था का सर्वप्रथम अध्ययन किया जाना चाहिये।

वर्ण एवं जाति व्यवस्था

वैदिक काल से ही भारतीय समाज चार वर्णों में बँटा हुआ रहा है। राजस्थान के समाज में भी वर्णाश्रम-धर्म के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में चार वर्ण विद्यमान थे किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से अगर देखा जाये तो यही वर्ण व्यवस्था कालान्तर में धन्धों व पेशों के आधार पर कई जातियों व उपजातियों में विभक्त हो गई। जिन दिनों कर्म से वर्ण का निर्धारण होता था, उन दिनों क्षत्रिय का कार्य रक्षा करना ब्राह्मण का कार्य पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना और दान देना-लेना। वैश्य का कार्य खेती और पशु-पालन और बाद की सदियों में व्यापार एवं व्यवसाय करना तथा शूद्रों का कार्य क्षत्रिय, ब्राह्मण व वैश्यों की सेवा करना होता था। धीरे-धीरे कर्म से वर्ण-निर्धारण की यह प्रक्रिया समाप्त होती गई और जन्म से ही वर्णों का निर्धारण रह गया। फिर भी इस उथल-पुथल में भी पेशों के अनुकूल जातियां बनती गई और किसी प्रकार वर्णाश्रम व्यवस्था चलती रही।

आज के युग में वर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है और हर व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता है। इसी के परिणामस्वरूप कई शूद्र जातियां ऊपर के वर्णों के व्यवसाय करने लगी परन्तु आज जाति-व्यवस्था का रूप जन्म के अनुरूप रह गया है। ऊँच-नीच, पद-प्रतिष्ठा तथा जन्म-जात विशिष्ट प्रवृत्तियों पर आधारित सामाजिक संगठन का आधार राजस्थान में जाति व्यवस्था रही है जिसे हम उच्च-वर्ग, मध्य-वर्ग तथा निम्न वर्ग की जातियों के रूप में बांट सकते हैं।

उच्च वर्ग में हम शासक वर्ग तथा शक्ति के निकट जो जातियाँ थी, उन्हें सम्मिलित करते हैं जैसे राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ, ओसवाल आदि। इन जातियों को सामान्य जनता की अपेक्षा कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे।

समाज में **ब्राह्मणों** का सम्मान एवं प्रतिष्ठा पूर्ववत चली आ रही थी। इन का प्रमुख कार्य धर्माचार्यों एवं शिक्षकों के रूप में था। परन्तु यह लोग पुरोहित का कार्य भी करते थे। राज-परिवार से सम्बन्धित पुरोहित राजगुरु कहलाते थे। विद्यानुरागी पण्डित ब्राह्मणों के द्वारा रचित काव्य, साहित्य, इतिहास, ज्योतिष, कर्मकाण्ड एवं धार्मिक आदि कृतियां अपना विशेष महत्व रखती है। कुछ ब्राह्मण मन्दिरों में सेवा-पूजा का कार्य भी करते थे। धीरे-धीरे इनका यह कार्य पैतृक बनता चला गया। कुछ ब्राह्मणों ने अपनी प्रतिभा एवं प्रशासनिक कुशलता का परिचय देते हुए राज्य प्रशासन में प्रधान एवं मुसाहिब के पदों को भी सुशोभित किया। जिनमें सनाढ्य ब्राह्मण अमरचन्द (हमीर सिंह के काल में), शभूदत्त जोशी एवं हंसराज जोशी (जोधपुर राज्य) में क्रमशः प्रधान एवं दीवान थे। जयपुर, बून्दी, कोटा, बांसवाड़ा, भरतपुर में भी कई ब्राह्मण उच्च पदों पर कार्यरत थे।

वर्तमान में ब्राह्मणों में अध्यापन, यजमान वृत्ति, छोटी-मोटी नौकरियां, भोजनालय चलाने का काम पुरोहितगीरी एवं राजकीय सेवा आदि के कार्य किये जाते हैं। धीरे-धीरे अब ये यजमान वृत्ति और पुरोहित-

गीरी कार्य छोड़कर अन्य व्यवसाय अपनाने लगे हैं। इनमें भी अन्य जातियों की तरह गौड़, सारस्वत, खण्डेलवाल, गुर्जर गौड़, सनाढ्य कन्नौजिया आदि अनेक उपजातियां बनी है; जिनके विवाह सम्बन्ध भी आपस में भी होते हैं।

राजपूत—सामन्तवादी व्यवस्था होने के कारण प्रशासन से अधिक जुड़े हुए थे। राजकीय एवं सैनिक व्यवस्था में इनका अधिक योगदान हुआ करता था। राजस्थान के राजपूत सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी शाखाओं से सम्बन्ध रखते थे। साथ ही अग्निकुल की चार प्रमुख राजपूत शाखाएँ भी थी। यहाँ गहलोत, राठौड़, चौहान, पंवार, भाला, देवड़ा, भाटी, सोलंकी आदि राजपूत थे। अन्य वर्गों की भांति राजपूत कुल भी उपकुलों व परिवारों में बँटा था, जैसे—मारवाड़ के राठौड़ ही उदावत, जोधावत, कुमावत, चापावत, पत्तावत, मेड़तिया आदि उपकुलों में थे।

राजपूत के लिये राज्य की सुरक्षा हेतु अपने को युद्ध में झौंक देना तथा वीरता से लड़ते हुए मारे जाना जीवन की चरम उपलब्धि थी। राजपूतों को इनकी सेवाओं के अनुरूप राजा द्वारा इनाम-इकराम व जागीरें प्रदान की जाती थी। शहीद होने पर परिवार को जीवन निर्वाह हेतु खर्चा एवं सम्मान दिया जाता था। राजपूत स्त्रियां भी गुणोचित गुणों से सम्पन्न होती थी। समय पड़ने पर शासन की बागडोर तक संभालती थी। युद्धप्रिय राजपूतों का काव्य साहित्य से भी काफी अनुराग था। राजपूत सिद्धान्तवादी थे। एक ओर शरणागत की रक्षा करना अपना धर्म समझते थे, वहीं दूसरी ओर वैर-परम्परा को निभाना अपना परम कर्तव्य मानते थे। राजस्थान में यही एक ऐसा वर्ग था जिसमें उपजातियाँ नहीं बनी। कालान्तर में इस वर्ग में उत्पन्न बुराईयों ने राजस्थानी राज्यों को पतन की ओर अग्रसर किया। फलतः इनके प्रभाव एवं सम्मान में कमी आने लग गई।

वर्तमान में राजपूतों के लिये न तो यह आवश्यक ही रह गया है कि वे रक्षा-व्यवस्था में भाग लें और न उन्हें इसमें कोई प्राथमिकता ही दी जाती है। अतः राजपूत लोग भी खेती, व्यवसाय, नौकरियां आदि धन्धों में लग गये हैं। इन लोगों से उत्पन्न दरोगा नामक जाति के वर्ण-संकर लोग भी अब निराश्रित होकर आजीविका के अन्य साधन खोज रहे हैं।

कायस्थों का योगदान समाज एवं राज्य स्तरीय सेवाओं में महत्वपूर्ण रहा था। शिक्षा एवं प्रतिभा की दृष्टि से तेज यह जाति सत्ता के प्रति वफादार थी और यही इसका प्रमुख गुण था जिसके कारण इन्हें उच्च-पद दिये गये। कुशल प्रशासक के साथ-साथ युद्ध के समय में सैनिक सेवा भी देते थे। जयपुर मे उदयचन्द, कनीराम, केवलराम, गजसिंह एवं खुशहालचन्द आदि ने महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

वर्तमान में भी कायस्थ प्रशासन में अपना महत्वपूर्ण वर्चस्व बनाये हुए है तथा उच्च पदों पर रहते हुए विभिन्न विभागों में कार्यरत हैं।

वैश्य जाति के महन्ता, भण्डारी, बोल्या, कोठारी आदि राजकीय सेवा में कार्यरत होने के कारण उच्च-वर्ग में आते थे। बीकानेर के महाराजा रायसिंह के समय में **कर्मचन्द** एक योग्य प्रशासक था। जयपुर में 1764 ई. में **कनीराम** तथा 1800 ई में **अमरचन्द** दीवान के पद पर आसीन थे। मेवाड़ में भामाशाह तथा उसके वंशज प्रधान के पद पर थे। वैश्यों ने सैनिक पदों पर रहकर भी महत्वपूर्ण योगदान दिया आसकरण, रामचन्द, दीपावत, सांवतसिंह व हेमराज ने दुर्गादास तथा शाहजादा अकबर को औरंगजेब से बचाने में उल्लेखनीय सहायता प्रदान की। महाराणा सांगा ने भारमल को रणथम्भौर का किलेदार बनाया।

मध्यम वर्ग के अन्तर्गत व्यापार-वाणिज्य एवं उच्च पेशों के आधार पर जीवन-निर्वाह करने वाली जातियां थी। वैश्य कई जातियों व शाखाओं में बंटे थे। मुख्य रूप से उनमें ओसवाल, खण्डेलवाल, माहेश्वरी, पोरवाल, चित्तौड़ा, नागदा, नरसिंहपुरा आदि थे। उपजातियों के वैश्य जैसे—तोतला, तोपनीवाल, बिराणी, समदाणी, अजमेरा, नागौरी, खमेसरा, बाबेल, बिड़ला, सर्राफ, सिंघवी, बजाज आदि प्रमुख व्यापारी थे। चारण, भाट एवं गुजर भी मध्यम वर्ग में आते थे। आभूषणों से सम्बन्धित कार्य जौहरी और स्वर्णकार किया करते थे।

गुजरों की स्त्रियाँ राजपूतों के घरों में धाय के रूप में कार्य करती थी ।

वर्तमान में वैश्य लोग कृषि-उपज तथा अन्य तैयार माल का भंडारण और विक्रय करते हैं । राज्य के बड़े बड़े उद्योग-धन्धे प्रायः इसी वर्ग द्वारा संचालित हो रहे हैं । इस प्रकार समाज की आर्थिक व्यवस्था में वैश्य वर्ग का बहुत बड़ा हाथ है । राजस्थान में वैश्य वर्ग प्रधानतः तीन चार जातियों में बटाँ हुआ है जिनमें अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग वर्गों की प्रधानता है । जैनों में तेरह-पंथी और बाईस टोला श्वेताम्बरी तथा दिगम्बरी और सरावगी आदि अनेक वर्ग हैं । अग्रवाल और खण्डेलवाल दो बड़े वैष्णव सम्प्रदाय के वैश्य हैं जिन्होंने व्यापार व्यवस्था में बड़ा नाम कमाया है । राजस्थान के पश्चिमी और उत्तरी क्षेत्रों में अग्रवाल अधिक है तो पूर्वी क्षेत्र में खण्डेलवालों का बाहुल्य है । दोनों वर्गों में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है, पर इनमें विवाह सम्बन्ध आदि आपस में नहीं होते है ।

निम्न वर्ग के अन्तर्गत परम्परागत चले आ रहे धन्धों एवं पेशों के आधार पर विद्यमान जातियां थीं । इस वर्ग का कार्य उच्च एवं मध्यम वर्ग की जातियों को जीवन से सम्बन्धित सुख-सुविधाओं का उपलब्ध कराना था । माली अधिकांशतः साग सब्जी के कार्य करते थे । झाला-वाड़ के कीर व धाकड़, जयपुर के कीर, बीकानेर के कलकी व विश्नोई, जैसलमेर के जाट खेतिहर थे । अहीर गारी, रेबारी प्रायः पशुपालन करते थे । पटवा, लुहार, दर्जी, लखारा, छीपा, गोछी, सिकलीगर, सुनार, ठठेरा, कुम्हार, धोबी, नाई, तेली, तम्बोली, कसारा, आदि निम्न वर्गीय अपने-अपने पैतृक धन्धों में कार्यरत थे ।

जातियों और उपजातियों की दृष्टि से शूद्र वर्ग सबसे बड़ा माना जा सकता है । अर्थव्यवस्था कृषि पर आधा-रित होने के कारण अन्य व्यवसाय भी इन्हीं के इर्द-गिर्द पाये जाते है । गड़िया लुहार जाति के लोग किसानों के आवश्यक लोहे के औजार बनाते हैं । हल आदि बनाने के लिये खाती, चड़स एवं खाल की वस्तुऐं बनाने हेतु चमार आदि भी गांवों में रहते हैं ।

राजस्थान की जाति व्यवस्था के अन्तर्गत मुसलमानों का भी अपना स्थान था । कुछ लोग जबरन धर्म परिवर्तन द्वारा मुसलमान बने । ऐसे मुसलमान फतेहपुर, झुन्झुनू व शेखावाटी में कायमखानी तथा मेवात में मेव कहलाते है । मुसलमानों में भी आन्तरिक जातिवाद कई रूपों में उभरा जैसे जुलाहा, पिंजारा, भड़भूंजा, नालबन्द, कूंजड़ा, बगागर लखारा आदि । क्षेत्रों व देशों के आधार पर भी जैसे मुलतानी, तुरक आदि नामों से भी जाने जाते थे । ये लोग पैतृक व्यवसाय के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सेवा भी प्रदान करते थे । राजस्थान में सामा-जिक स्तर पर सिवाय खान-पान के मुसलमानों से कोई भेद भाव नहीं किया जाता था ।

पहाड़ी एवं जगली जातियों में भील, मीणे, मेर प्रमुख रही है । यह जातियां लड़ाकू होने के कारण इनकी सहायता शासकों के द्वारा कई अवसरों पर ली जाती थी । भील जाति की 16 शाखाऐं थी । मेवाड़ के राज्य चिन्ह में एक ओर राजपूत और दूसरी ओर भील को दर्शाया गया है । ये राजस्थान में अछूत नहीं समझे जाते थे । इनका धन्धा प्रायः पशुपालन, खेती, शिकार, घास एवं लकड़ी बेचना रहा था । मीणा जाति की 140 शाखा थी । यह वीर एवं लुटेरी जाति थी । लडाई के समय खैराड़ मीणा डुडकारी करते थे । भरतपुर और धौलपुर के कई मीणा खेती करते थे । मेर अपने को हिन्दू कहते थे लेकिन हिन्दू धर्म के नियमों को नहीं मानते थे । युद्ध के समय इनकी वीरता को नहीं भुलाया जाता था ।

अछूत समझे जाने वाले चमार, बोला, रैगर, भंगी, बलाई, भांभी जाति के लोगों को 'चाडाल' कहते थे । ये लोग पैतृक धन्धों के अलावा अधिक आय हेतु कृषि-कार्य भी करते थे । कालबेलिया, सांसी साटिया बागरिया गा ोलिया, लौहार, कंजर व बन्जारा आदि अपने-अपने धन्धों में कार्यरत थे । सांसी, कंजर व साटिया अवसर मिलते ही चोरी व डकैती भी कर लेते थे ।

इस प्रकार समाज के ढांचे में उच्च वर्ग एक प्रकार से शासक वर्ग की तरह व्यवहार करने लगा । निम्नवर्ग शासित वर्ग के रूप में शासक वर्ग की ज्यादतियों का शिकार होता रहा । धीरे-धीरे निम्न वर्ग की स्थिति खराब हो गई थी । साथ ही जनसंख्या में हो रही

निरन्तर वृद्धि ने स्थिति और भी गम्भीर बनादी क्योंकि वर्ग विशेष उसे खपा सकने में असमर्थ रहा परिणाम-स्वरूप उसे अपने वर्ग से नीचे के वर्ग की ओर देखना पड़ा और उसे उसके कार्य अपनाने पड़े, जैसे ब्राह्मणों या वैश्यों द्वारा कृषि कार्य को अपनाना। इस प्रकार जब पेशों के आधार पर जातियां बनने लगी तो व्यापार करने वाले ब्राह्मण, बोहरा तथा शिल्पी कार्य करने वाले खाती कहलाने लगे। इस तरह से जोधपुर के नन्दवाना व श्रीमाली, बांसवाड़ा के नागर, बीकानेर के पालीवाल व सारस्वत, भरतपुर के गौड़ ब्राह्मण व्यापारी थे। जोधपुर व बीकानेर के माली कृषि में अधिक लाभ न होने से व्यापार करने लग गये थे। अतः सभी जाति व वर्ग के लोगों ने अपनी सुविधानुसार जब कार्य करना प्रारम्भ कर दिया तो जातीय वर्गों के बीच की दूरी कम होती गई।

सामाजिक संगठन के अनुशासन को बनाये रखना प्रत्येक जाति का प्रथम कर्तव्य हुआ करता था। इसलिये जाति पंचायतें अपनी-अपनी जातियों के विकास हेतु रीति-रिवाजों, खान-पान, उत्सव तथा विवाह आदि के सम्बन्ध में नियमों का निर्माण तथा उनकी पालना सख्ती से करवाती थी। जातीय शिष्टाचार सर्वोपरि होता था। परम्परागत चले आ रहे रीति-रिवाजों को मानना जरूरी था। जाति से बहिष्कृत करना सबसे बड़ा एवं कठोर दण्ड था। मुसलमानों का मुखिया काजी होता था जो शरीअत के अनुसार जातीय मसलों को निपटाता था। इनके द्वारा किये गये फैसलें सरकार को भी मान्य होते थे।

संयुक्त परिवार व्यवस्था—राजस्थान के सामाजिक जीवन में संगठित परिवार अर्थात् संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी। मेवाड़ राज्य के प्रदत्त प्राप्त पत्रों से यह स्पष्ट है कि उनके द्वारा प्रदान की गयी भूमि पर उपभोक्ता के पश्चात उसके बेटे-पोतों का अधिकार होगा। राजस्थान के निवासी कृषि, घरेलू उद्योग-धन्धों एवं व्यापार-वाणिज्य को निरन्तर गति से विकसित कर उसमें दिनों-दिन वृद्धि तभी कर सकते थे जब उन्हें संयुक्त परिवार के सदस्यों की मदद मिलती रहे। इस व्यवस्था के कारण ही परिवारों में एकता एवं सुदृढ़ता बनी रहती थी।

कालान्तर में परिवार के आपसी झगड़े, ईर्ष्या द्वेष, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव आदि के कारण संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकांकी परिवारों की प्रवृत्ति बढ़ती चली गयी।

संस्कार—इस सामाजिक संरचना के स्वरूप में सभी जातियां अपनी-अपनी परम्परागत प्रथाओं को मानती आई है, जिनमें भी भारतीय षोडश संस्कारों की प्रधानता रही है। इनमें पुत्र-जन्म, देवी-देवताओं की मनौतियां, जात्रा, अन्न-प्राशन, यज्ञोपवीत अथवा अध्ययन, सगाई-विवाह, अन्तिम-संस्कार आदि सम्मिलित हैं। ऐसे संस्कारों में भी सभी जातियों में एक मूल-भूत समानता पाई जाती है। सभी जातियों के अपने-अपने पुरोहित होते हैं जो धर्म और परम्परा को ध्यान में रखते हुए सारा कार्य निष्पन्न करते हैं। दहेज-प्रथा एवं मृत्यु-भोज जैसी कुप्रथाओं के विरुद्ध सुधार किये जाने की आवश्यकता अपरिहार्य है।

खान-पान—राजस्थान में शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों ही प्रकार के भोजन का प्रचलन था। अधिकांशतः हिन्दू शाकाहारी थे, और हैं। कुलीन वर्ग के यहाँ विविध प्रकार के व्यंजन बनाये जाते थे। विवाह एवं अन्य उत्सवों पर रोटी, पूड़ी, घेवर, लड्डू, जलेबी, मठरी, खाजा, हलुआ, लापसी, चावल, बड़ी, खिचड़ी आदि व्यंजन तैयार होते थे। मध्यम वर्ग में गेहूं, जौ, राजी, चावल खाये जाते थे। दूध, दही, शक्कर, तेल, घी और गुड़ आदि का प्रयोग होता था। निम्न वर्ग और कृषक वर्ग के लोग प्रायः मक्का, ज्वार, कांगणी, माल, कोदरा, सामा आदि खाद्यान्नों का उपयोग करते थे। गुड़ तथा इससे बने पदार्थ, त्यौहार आदि पर काम में लेते थे।

मांसाहारी पकवानों का उपयोग क्षत्रिय करते थे लेकिन इनके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लोग भी मांस का प्रयोग करते थे। व्यंसन के रूप में अफीम अथवा अफीम का गालगा या कसूंबा पिया जाता था। राजपूत लोग शराब का उपयोग करते थे जबकि निम्न वर्गीय लोगों में मद्यपान का काफी प्रचलन था।

स्त्रियों की दशा—मुगल प्रभाव के फलस्वरूप स्त्री समाज में बाल-विवाह व पर्दा-प्रथा की शुरूआत हो गई थी। कुलीन वर्ग की स्त्रियों के आवास अलग से निर्मित थे तथा पुरुषों का प्रवेश निषेद्ध था।

शासक प्राय: बहु-विवाह करते थे। रानियाँ राज्य-कार्य में हस्तक्षेप रखती थी। प्राय: ज्येष्ठ पुत्र की अल्पावस्था में रानियाँ राजकार्य देखती थी, उदाहरणार्थ भट्टियाणी रानी तथा हंसाबाई। महाराणा हमीरसिंह द्वितीय के शासनकाल में राजमाता स्वयं शासन का कार्य देखती थी। आक्रमण के समय भी रानियाँ अपनी बुद्धि-चातुर्य एवं शौर्य का परिचय देने में आगे रहती थीं। चित्तौड़, रणथम्भौर, जालौर आदि दुर्ग इस बात के द्योतक है कि यहाँ की राजपूत वीरांगनाओं ने किस प्रकार हँसते-हँसते जौहर किये। समाज में प्राय: एकल विवाह की प्रथा थी किन्तु कुलीन वर्ग में बहु-विवाह की प्रथा का प्रचलन था। राजपूत-समाज में विवाह के उपरान्त स्त्री की जाति मायके के अनुरूप रहती थी, उसमें परिवर्तन नहीं होता था। गन्धर्व विवाह भी होता था। पासवानों के रूप में स्त्रियां रखी जाती थी। इन सब के कारण परिवार में क्लेश व झगड़े होने लगे। समाज में विधवाओं की स्थिति बद से बदतर हो गयी थी। उन्हें दूसरा विवाह करने की अनुमति नहीं थी। पुत्र न होने की स्थिति में उन्हें किसी का भी पुत्र गोद लेने का अधिकार नहीं था। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य जाति के लोगों में विवाह सम्बन्ध का पालन बड़ी कठोरता से किया जाता था। तलाक देने की प्रथा भी स्वीकृत नहीं थी किन्तु 18वीं शताब्दी से निम्न वर्गों में तलाक की प्रथा प्रचलित हो गयी थी।

सती प्रथा—इस प्रथा का सर्वाधिक प्रचलन राजपूतों में था। अपने पति की मृत्यु के बाद शोकाकुल पत्नी को पति के साथ चिता पर जलना होता था। यह एक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया था कि किसी पुरुष के मरने पर उसके साथ सती होने वाली स्त्रियों की संख्या कितनी है। सती होने वाली पत्नी अपने मृत पति का सिर अपनी गोद में लेकर चिता में बैठती थी। पति के दूरस्थ स्थान पर मर जाने पर उसके मरने की सूचना पाने पर पत्नी चिता में जलकर सती होती थी किन्तु गर्भवती स्त्री कभी भी सती नहीं होती थी।

अकबर ने इस प्रथा को रोकने का असफल प्रयास किया। कई बार सती होने वाली स्त्री 'आण' (निषेधात्मक आदेश) दे जाती थी जिसकी पालना उसके परिवार सदस्य अनिवार्य रूप से करते थे। ब्रिटिश संरक्षण के बाद राजस्थान में सती प्रथा पर नियन्त्रण लगा दिया गया। अत: यह प्रथा धीरे-धीरे समाप्त प्राय: सी हो गई परन्तु 4 सितम्बर, 1987 को रूपकंवर नामक 18 वर्षीय युवती अपने मृत पति मालसिंह शेखावत के साथ सती हो गई। इस घटना ने तूल पकड़ा, परिणामस्वरूप प्रदेश में राजस्थान सती निवारण अध्यादेश, 1987 लागू कर सती होने पर कानूनी रोक लगा दी।

अर्न्तजातीय सम्बन्ध—राजस्थान में छूआछूत एवं जातीय भेद होते हुए भी परस्पर जातियों एवं वर्गों के बीच अच्छे सम्बन्ध थे। ये आपसी सम्बन्ध कई अवसरों, उत्सवों एवं समारोहों में दृष्टिगत होते थे जबकि ब्राह्मण जन्म-पत्री बनाता, कुम्हार पानी भरता, अछूत लकड़ी चीरने का काम करता, सुनार आभूषण तैयार करता, नाई बुलावे का कार्य निभाता, तेली तेल देता। सभी कार्य सहारे सौहार्द्रपूर्ण हो जाते। ब्राह्मण व कृषक जन्म एवं मृत्यु के समय चमार की आवश्यकता महसूस करते थे। भंगी सफाई तथा जुलाहे कपड़ा बनाने का कार्य करता था। अत: सामाजिक जीवन एक दूसरे की परस्पर निर्भरता तथा सहयोग से सहज रूप में चलता था।

अन्ध विश्वास – राजस्थानी समाज अन्ध विश्वासों के अन्धकार में था। यहाँ के लोगों का विश्वास जोगियों के चमत्कार थे, ज्योतिषियों की भविष्यवाणी में, तन्त्र-मन्त्र, शकुनों और स्वप्नों में, जादू-टोना, डाकण आदि में काफी था। स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक अन्ध-विश्वासी थीं। चन्द्र-ग्रहण, सूर्य ग्रहण के समय दान देना, पूर्वजों की आत्मा को बुलाने हेतु 'रात्रिजगा' देने की प्रथा थी। शुभ-अशुभ शकुन देखकर कार्य करने की प्रथा प्रचलित है। बच्चों की बीमारियों का इलाज भी झाड़-फूंक एवं जादू-टोना से करवाया जाता था।

आमोद-प्रमोद के साधन—राजस्थान के निवासियों

का जीवन आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण था। कई प्रकार के आमोद-प्रमोद के साधन काम में लाये जाते थे। अन्तर्कक्षीय खेलों में चौपड़, शतरंज, नारछाली, चरभर, जुआ मुख्य थे। पतंग-बाजी, मुक्केबाजी, कुश्तियां, रथ-दौड़, तैरना, शिकार खेलना, पशुओं की लड़ाईयां आदि खेलों में बड़ी रुचि ली जाती थी। पक्षियों में तोता, मैना, मोर मुर्गा, कबूतर, चकोर आदि पाले जाते हैं और उन्हें खेल खिलाकर आनन्दित होते थे। रास-लीला, राम-लीला तथा नाटक भी आमोद-प्रमोद की दृष्टि से किये जाते थे। तरह तरह के नृत्य भी होते थे जिनमें घूमर, फूंदी, घेरा आदि प्रमुख थे। जादूगर, सपेरे, नट तथा बहुरूपिये आदि जगह-जगह खेल दिखाकर लोगों का मनोरंजन करते थे।

धार्मिक जीवन—राजस्थान में जहाँ तक धर्म का प्रश्न है, यहाँ सहिष्णुतावादी नीति का अनुसरण किया है। राजधर्म किसी भी नरेश का कोई भी रहा हो किन्तु सामान्य जन अपने विश्वास के अनुरूप धर्म को स्वीकार करने में स्वतन्त्र था। साथ ही राजस्थानी नरेशों ने भी अपनी सामर्थ्यानुसार विभिन्न धर्मों के विकास में सहयोग प्रदान किया। यही कारण है कि यहाँ विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय फले-फूले और उनके अनुयायी निरन्तर अपने-अपने धर्मों के विचारों से सामान्य जनता को लाभान्वित करते रहे। अतः राजस्थान की भूमि को आत्मसात करने की क्षमता ने सभी धर्मों के विचारों को फैलने दिया। इस तरह से यहाँ की संस्कृति में एकता में अनेकता व अनेकता में एकता के भाव धार्मिक दृष्टि से भी दृष्टिगत होते हैं।

☼

5 राजस्थान में धर्म एवं सम्प्रदाय

राजस्थान में गोरखनाथ की 12 शाखाओं में से दो हैं—'वैरागपंथ' जिसका केन्द्र पुष्कर के पास राताडुंगा है, दूसरा 'माननाथीपंथ' इसका केन्द्र जोधपुर का महामन्दिर है। चौहान (जालौर), परमार (आबू), नाथावत चापावत (जयपुर) आदि इनके भक्त रहे हैं।

प्राचीनकाल में यहाँ वैदिक धर्म का प्रचार एवं प्रसार हुआ था। लोग वैदिक सिद्धान्तों के अनुरूप कार्य करते थे। 18वीं शताब्दी तक यज्ञ प्रक्रिया यहाँ जीवित थी। 19वीं शताब्दी में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कई बार राजस्थान के विभिन्न राज्यों की यात्रा कर वैदिक धर्म को पुनःजीवित करने का भरसक प्रयास किया।

छठी शताब्दी से यहाँ सूर्य पूजा भी काफी प्रसिद्ध रही है। मेवाड़ राज्य में सूर्यवंशी गुहिल शासकों के कारण 'सूर्यपूजा' प्रमुख रही थी।

8वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक ब्रह्मा की पूजा लोकप्रिय थी। 10वीं शताब्दी में सीकर प्रदेश में पाशुपत शैव धर्म पर्याप्त विकसित था। मेवाड़ के स्वामी एकलिंगनाथ ही है, महाराणा तो स्वयं को उनका 'दीवान' मानते हैं। शैव मत की लकुलीश शाखा का महत्व भी कोई कम नहीं था।

देश के अन्तर्गत जो धर्म प्रचलित है, वे सभी राजस्थान में भी मिलते हैं। राजस्थान धर्म और सभ्यता की दृष्टि से आर्य तो क्या सिन्धु निवासियों से भी प्राचीन है इस प्रकार का निष्कर्ष डा. मिश्र ने यहाँ प्राप्त अवशेषों की आधार पर निकाला है। राज्य के निवासी शिव, विष्णु की उपासना परलोक सुधारने की दृष्टि से करते हैं, वहीं शक्ति की उपासना का बाहुल्य राजपूतों में है। व्यापारी वर्ग जैन धर्म के प्रभाव में आकर अहिंसा के स्वरूप को निर्वाण का एकमात्र साधन मान बैठा है। आर्यों की यज्ञ प्रथा में अन्धविश्वासों का समावेश था। यज्ञ द्वारा ही राजपूतों की शुद्धि का सिद्धान्त इस बात का प्रतीक है कि ये लोग आर्य धर्म को प्राथमिकता प्रदान करते थे। राजस्थान अपने परम्परागत स्वरूप को वर्तमान समय तक सुरक्षित रखने के लिये विश्व भर में

प्रसिद्ध हैं। रियासतों के विलीनीकरण तक यहां की टोंक व भरतपुर की रियासतों को छोड़कर अन्य सभी रियासतें राजपूत नरेशों के अधीन थीं। राजपूत राजा हिन्दू धर्म को मानते थे और वैदिक परम्पराओं को निभाने में गर्व अनुभव करते थे। ब्राह्मणों को ये लोग अपना गुरु मानकर उनमें से पुरोहित तथा राज-ज्योतिषी रखते थे। प्रायः सभी शुभ-अशुभ कार्य वैदिक परम्पराओं से सम्पन्न होते थे। साथ ही राजपूत नरेश अन्य धर्मों को भी इज्जत देते थे। अतः यहां बौद्ध, जैन, इस्लाम, ईसाई आदि सभी धर्मों को विकास के लिये सम्पूर्ण स्वतन्त्रता मिली। इस दृष्टि से राजपूतों के शासन काल में यहां धर्म-निरपेक्षता का वतावरण रहा। कालान्तर में यहां के निवासियों तथा नरेशों दोनों ही में विभिन्न धर्मों के पारस्परिक आदान-प्रदान से उनके रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज सभी पर इसका प्रभाव पड़ा, किन्तु इस प्रभाव के वावजूद भी हर धर्म का मूल रूप अपेक्षाकृत ज्यों का त्यों बना रहा। हिन्दू सभ्यता का प्रभुत्व रहा जिससे वैदिक परम्पराओं का अनुसरण बरावर किया जाता रहा और सामाजिक जीवन भी वैदिक संस्कारों से प्रभावित रहा।

देश के सभी धर्म जैसे बौद्ध, मुस्लिम, ईसाई, जैन, हिन्दू आदि यहां मिलते है। धर्म की दृष्टि से राजस्थान राज्य एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। वर्तमान में यहां धर्म के आधार पर उनके अनुयायियों की संख्या (1981) निम्न प्रकार हैं—

हिन्दू	89·53%
मुसलमान	7 00%
जैन	1·9%
सिख	·33%
ईसाई	·18%
अन्य (बौद्ध व पारसी)	06%

हिन्दू धर्म—भारत में रहने वाले अधिकांश लोग हिन्दू के नाम से पहचाने जाते है, यद्यपि उनके आचार-विचार, रीति-रिवाज, क्रिया-काण्ड, नियम-संहिता, पूजा-पाठ का तरीका भिन्न है। प्रारम्भ में जब बौद्ध व जैन धर्म के प्रहारों के फलस्वरूप मृत्य-प्रायः प्राचीन धर्म का शंकराचार्य व अन्य आचार्यों द्वारा पुनरुद्धार किया गया उस समय उसने जो स्वरूप ग्रहण किया, उसे बाद में हिन्दू धर्म की संज्ञा दी गयी। समाज शास्त्रियों द्वारा हिन्दू शब्द आजकल एक 'जाति विशेष' के लिये प्रयोग में लिया जा रहा है, जिसकी समाज-रचना का आधार चतुर्वर्ण है और इस जाति में प्रचलित सभी हिन्दू धर्म के अंग माने जाते है, जिन्हें या तो सम्प्रदाय कहा जाता है या मत।

हिन्दू धर्म में सैकड़ों मत-मतान्तर व सम्प्रदाय पाये जाते है, जिनमें कुछेक ही महत्वपूर्ण हैं, अन्य का महत्व केवल स्थानिक है और अनेक मतावलम्बी राजस्थान के बाहर नहीं पाये जाते हैं, एकेश्वरवादी, बहुदेववादी, भक्ति मार्गी, ज्ञान-मार्गी, पुष्टि-मार्गी, यहां तक कि नास्तिक भी हिन्दू ही कहा जायेगा। पुरातनवादी, सनातनवादी और एकदम आधुनिक, सभी इस शब्द के घेरे में बंधे हैं, हिन्दू धर्म का त्याग केवल 'धर्म परिवर्तन से ही सम्भव है। राजस्थान में कुल जनसंख्या का 89 53% भाग हिन्दू धर्म को मानती।

हिन्दू लोग मुख्य रूप से पुराणों में बताये गये धर्म को मानते हैं। पुराणों के अनुसार किसी एक देवता की पूजा नहीं की जाती है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, गणेशजी, हनुमानजी, राम, कृष्ण, बुद्ध, देवीशक्ति की भी पूजा की जाती है, हिन्दू लोग इसी के साथ गोवर्धन पर्वत, गंगा, यमुना, नर्मदा नदियों और तुलसी, वट व पीपल के पेड़ की भी पूजा करते है।

जैन धर्म—राजस्थान में दूसरा महत्वपूर्ण धर्म जैन है, जिसका कभी यहां बहुत जोर रहा था। जैन धर्म के अनुयायी किसी एक जाति विशेष तक सीमित नहीं हैं कई जातियों में जैन-धर्मावलम्बी पाये जाते हैं। एक धर्म के अनुयायी होने पर भी सामाजिक रूढ़ि-रिवाज में ये लोग अधिकांश में हिन्दू प्रथाओं व रीति-रिवाजों का अनुकरण करते हैं और उन प्रथाओं का कट्टर रूप से पालन किया जाता है। राजस्थान में जैनों की काफी संख्या है। जनगणना 1981 के अनुसार राजस्थान की कुल जनसंख्या का 1.9 प्रतिशत भाग जैन अनुयायियों का है। ये अनेक सम्प्रदायों में बंटे हुए हैं। इस धर्म के मूल आचार्य पार्श्वनाथ

व महावीर हैं। जैन धर्म, दिगम्बर व श्वेताम्बर दो प्रधान मतों में बटा हुआ है, इनकी फिर कई शाखायें-प्रशाखायें बनी हुई हैं। दिगम्बर मत में मूर्ति-पूजा के साथ-साथ साधुओं का नग्न रहना अनिवार्य है। ये लोग बहुत संगठित है। श्वेताम्बर मत के अनुयायियों में मूर्ति-पूजा भी है और मूर्ति-पूजा नहीं करने वाले भी हैं। प्रायः इस मत के सभी साधु श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। इसमें स्त्रियों को भी दीक्षा देकर साधु बनाया जाता है।

श्वेताम्बरों में सम्यग् या समेगी मत के मानने वाले मूर्ति पूजा करते है। बाह्य आचरण में भी इस मत के साधु अन्य मतों के साधुओं से भिन्न नियमों का पालन करते हैं। इस मत में भी लगभग 14 या इससे भी अधिक प्रशाखाएँ हैं, और सभी शाखाओं के अलग-अलग आचार्य हैं। मूर्ति-पूजा नहीं करने वाले मतों में स्थानकवासी तथा तेरापंथी मुख्य हैं। तेरापंथी मत के चलाने वाले भीकम जी ओसवाल थे। भीकमजी ने अपने गुरू से वैचारिक मतभेत होने के कारण नया पंथ प्रारम्भ किया था। चूंकि भीकमजी के विचारों से मेल खाते विचारों वाले 13 साधु थे। अतः इस पंथ का नाम तेरहपंथी (तेरा पंथी) रखा जाय। स्थानकवासी जैन गुरूओं की पूजा करते हैं जो सफेद वस्त्र धारण करते हैं और अपने मुंह पर भी सफेद पट्टी बांधे रहते है।

सिख धर्म—राजस्थान में भारत के विभाजन के बाद ही सिख धर्म के अनुयायियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। इस धर्म के अनुयायी निराकार ईश्वर में विश्वास करते हैं और गुरु-ग्रन्थ साहब की पूजा करते है। इस धर्म की स्थापना आदि गुरु नानक द्वारा की गई थी और गुरु गोविन्दसिंह आखिरी गुरु थे। मुस्लिम शासन काल में, विशेषकर औरंगजेब के राज्य में, इस धर्म के अनुयायियों पर बहुत अत्याचार किये गये तब इन्हें आत्मरक्षा के लिए तलवार का सहारा लेना पड़ा। वास्तव में सिक्ख धर्म की स्थापना का मूल उद्देश्य हिन्दू धर्म की रक्षा करना था तथा वे हिन्दू जो धर्म की रक्षा हेतु अपनी बलि देने को तैयार थे, उन्होंने इसे अपनाया। इस प्रकार के अनुयायियों को सिंह कहा जाता था। कालान्तर में इन लोगों ने एक नया धर्म स्थापित कर लिया जिसे सिक्ख धर्म कहते थे। राजस्थान में इन लोगों की संख्या में निरन्तर वृद्धि भारत के विभाजन के बाद हुई है। ये गंगानगर और बीकानेर जिलों में सर्वाधिक संख्या में हैं।

बौद्ध धर्म—ऐतिहासिक अनुसंधान से जो भी तथ्य प्राप्त हुए हैं, उसके अनुसार जयपुर डिवीजन व मेवाड़ में बौद्ध धर्म का काफी प्रभाव था। कालान्तर में इसका लोप हो गया। इस समय राजस्थान में बौद्ध-धर्म के अनुयायी जयपुर व मेवाड़ में अधिक मिलते हैं। इसके मुख्य प्रमाण बैराठ में प्राप्त बौद्ध चैत्यालय है। महात्मा बुद्ध इस धर्म के प्रवर्तक थे।

इस्लाम धर्म—राजस्थान में इस्लाम धर्म का आगमन, मुसलमान बादशाहों के समय-समय पर राजस्थान के अनेक भागों पर विजय के साथ हुआ, और धीरे-धीरे काफी संख्या में हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन से मुसलमानों की संख्या में वृद्धि हुई। वर्तमान मुसलमानों में अधिकांश धर्म-परिवर्तन से बने मुसलमानों की संतानें हैं। भारत के विभाजन के बाद राजस्थान से कुछ मुसलमान पाकिस्तान चले गये, लेकिन पाकिस्तान जाने वालों की मात्रा अधिक नहीं थी। अतः आज भी राजस्थान में मुसलमानों की संख्या कम नहीं है। इस धर्म के अनुयायी समस्त राजस्थान में फैले हुए है।

जनगणना 1981 के अनुसार राजस्थान की कुल जनसंख्या का 7 प्रतिशत भाग मुसलमानों का है। इस तरह हिन्दुओं के बाद राज्य में दूसरा स्थान मुसलमानों का है। मुसलमान धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब थे। मुसलमान धर्म शिया और सुन्नी दो वर्गों में बंटा है। राजस्थान में धर्म परिवर्तित मुसलमानों में कायमखानी मुसलमान है जो अपने नाम के आगे राठौड़, गौड़ आदि जाति सूचक शब्द लगाते हैं।

ईसाई धर्म—मुसलमानों की तरह ईसाई धर्म भी यहाँ बाहर से आया हुआ धर्म है और अंग्रेज-शासन काल में धर्म परिवर्तन के बाद में यहाँ ईसाई धर्म का प्रचार हुआ। राजस्थान में ईसाइयों की संख्या ज्यादा नहीं है। ये लोग राजस्थान में या तो बड़े-बड़े शहरों में, विशेषकर अजमेर में, बसे हुए हैं या फिर आदिवासी क्षेत्रों में, जहाँ कि विदेशी मिशनरियों द्वारा आदिवासी हिन्दुओं में धर्म

परिवर्तन के बाद ईसाई बनाया गया। यहां कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट दोनों ही शाखाओं के लोग मिलते हैं जिनमें अधिक संख्या कैथोलिकों की है।

ईसाई धर्म के प्रवर्त्तक ईसा मसीह थे। ईसाईयों के दो वर्ग है—(i) कैथोलिक जो मूर्ति पूजा में विश्वास करते हैं। इनकी संख्या राजस्थान में प्रोटेस्टेन्ट की तुलना में अधिक है। (ii) प्रोटेस्टेन्ट जो मूर्ति पूजा के विरोधी हैं। इनके अतिरिक्त भी ईसाईयों में मेथोडिस्ट चर्च ऑफ इंग्लैण्ड और फ्री चर्च ऑफ स्कॉटलैण्ड आदि वर्ग प्रचलित है।

पारसी धर्मावलम्बी—सूर्य की उपासना करते हैं। ये उदयपुर, अजमेर और बाड़मेर जिलों में थोड़ी संख्या में मिलते हैं।

सम्प्रदाय

राजस्थान में जो प्रमुख मत व सम्प्रदाय पाये जाते है उनमें शक्ति-उपासक, वैष्णव, रामोपासक, शैव आदि मुख्य है। राजपूत, चारण, भाट, कायस्थ कही जाने वाली जातियां प्रधान रूप से आद्य-शक्ति की उपासना करती है, जिसके विभिन्न रूप राजस्थान में प्रचलित है, लेकिन इन लोगों में कुछ शैव, वैष्णव व रामोपासक भी मिलते हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय—इस पंथ में, दक्षिण भारत के प्रसिद्ध धर्माचार्य वल्लभ सम्प्रदाय के उपासक मुख्य रूप में मिलते हैं। इस सम्प्रदाय की दो प्रमुख गद्दियां हैं—एक नाथद्वारा व दूसरी कोटा में। इस सम्प्रदाय के लोग भक्ति-मार्गी हैं, और कृष्ण की 'बालरूप' में सेवा करते हैं, पूजा इस मत में निषिद्ध है। जयपुर में गौरांग महाप्रभु के अनुयायी मिलते हैं और इनका एक बड़ा मन्दिर जयपुर में है।

दादू पंथी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के संस्थापक दादू दयाल अहमदाबाद नगर के ब्राह्मण थे। उनके उपदेश जो लगभग 5,000 छन्दों में है, दादूवाणी में संग्रहित हैं। दादू पंथ के लोग भगवा वस्त्र पहनते हैं। इस पंथ में नागा और निहंग दो शाखायें हैं। इनकी मुख्य गद्दी नरायना में है। इस मत के मानने वाले प्रधान रूप से राजस्थान में ही मिलते हैं।

रामस्नेही सम्प्रदाय—ये रामोपासक है, इनकी प्रधान गद्दी बांसवाड़ा में है। राम स्नेही साधुओं के अन्य गुरुद्वारे शाहपुरा (झालावाड़) एवं शिथल गांव (बीकानेर) में है परन्तु इस सम्प्रदाय के लोगों की संख्या नगण्य है।

कबीर पंथी सम्प्रदाय—इस पन्थ को रामानन्द के शिष्य कबीर ने चलाया था। कबीर निराकार ईश्वर का उपासक था। उसके नीति विषयक दोहे हिन्दी साहित्य की अमूल्य देन है। 'कबीर वाणी' इस पन्थ का मुख्य ग्रन्थ है। कबीर पन्थी साधु विवाह नहीं करते हैं। वे किसी भी जाति के व्यक्ति को अपना चेला बना लेते हैं। इनकी कुछ ही संख्या राजस्थान में मिलती है।

विश्नोई पन्थ सम्प्रदाय—इस पन्थ के प्रवर्तक जाम्बा जी को विष्णु का अवतार बताया जाता है। जम्बाजी पंवार राजपूत था। जाम्बाजी के 21 उपदेशों और 120 शब्दों का संग्रह 'जम्ब सागर' में संग्रहित है जो इनका मुख्य धार्मिक ग्रन्थ है।

नाथ सम्प्रदाय—राजस्थान में नाथ सम्प्रदाय जोधपुर में प्रचलित था इनकी गद्दी जोधपुर के महा मन्दिर में है। जोधपुर राजघराने का कुछ अर्से तक इसे समर्थन मिला था, बाद में इसका प्रभाव कम हो गया।

इसके अलावा नाभाजी, मल्लीनाथजी रामदेवजी आदि प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा स्थापित किए गए मतों के अनुयायी भी राजस्थान में काफी मिलते हैं। इनको स्थानीय मतों में महत्वपूर्ण गिना जा सकता है। राजस्थान में शिव के अनेक मन्दिर हैं। भारी संख्या में लोग शिवलिंग की पूजा करते हैं लेकिन संगठित रूप में शैवमत का यहां प्रचलन नहीं देखा जाता है। शैव मत को मानने वाला उदयपुर राजघराना केवल इसका अपवाद है, जो शिव की पूजा करते है और अपने आप को लकुलीश या लकुटिश शिव के अनुयायी कहते है।

प्रसिद्ध मन्दिर

नाम	स्थान
मीरांबाई का मंदिर	चित्तौड़, मेड़ता
नौ ग्रहों का मंदिर	किशनगढ़
ब्रह्माजी तथा श्री रंगनाथजी का मन्दिर	पुष्कर
कपिलदेवजी का मंदिर	कोलायत

सास-बहू मंदिर	नागदा
श्रीनाथजी का मंदिर	नाथद्वारा
एकलिंगजी का मन्दिर	उदयपुर
द्वारिकाधीश का मन्दिर	कांकरोली
शिव मन्दिर	वाड़ीली
उदयेश्वर का मन्दिर	उदयपुर
वशिष्ठजी का मन्दिर	सिरोही
देलवाड़ा जैन मन्दिर	आबू
प्राचीन जैन मन्दिर	जैसलमेर
जगदीशजी का मन्दिर	उदयपुर
रिखभदेवजी का मन्दिर	धुलेव
जगत शिरोमणि, शिलादेवी का मन्दिर	आमेर
वाड़ीली मन्दिर	उदयपुर
सुनानी देवी का मन्दिर	बीकानेर
कल्याणरायजी का मन्दिर	आमेर
लक्ष्मीनारायण मन्दिर	आमेर
सूर्य मन्दिर	आमेर
सूर्य मन्दिर	तलवाड़ा
सूर्य मन्दिर	झालावाड़
केसरियानाथजी का मन्दिर	उदयपुर
कुंजविहारीजी का मन्दिर	जोधपुर
भैरू बाग जैन मन्दिर	जोधपुर
उषा मन्दिर	डीग
गोविन्ददेवजी का मन्दिर	जयपुर
हर्षनाथ का मन्दिर	सीकर
हर्षनाथ का मन्दिर	आबानेरी
बाडोली मन्दिर	भैंसरोडगढ़
किशन विलास मन्दिर	कोटा
ओसियां के मन्दिर	ओसियां
नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर	अलवर
लक्ष्मणजी का मन्दिर	भरतपुर
संघी जन्ताराम का मन्दिर	आमेर
जैन नसियां	अजमेर
महावीर जी का मन्दिर	महावीरजी
जैन मन्दिर	सिरोही, मीरपुर
	खानपुर, रणकपुर
	कालुजरा, झालरापाटन
	कापरड़ा, नाकोड़ा आदि

6 रीति-रिवाज, प्रथाएँ तथा वेशभूषा
(Costums & Customs)

भारत के अन्य प्रदेशों से आकर यहां बसने वाले लोगों के अतिरिक्त यहां की सभी जातियों के रीति रिवाज मूलत, वैदिक परम्पराओं से संचालित होते आये हैं। यहां तक की मुसलमानों तथा भील, मीणा, डामोर, गरासिया, सांसी आदि आदिम जातियां भी हिन्दुओं के रूढ़िगत रीति-रिवाजों से अप्रभावित नहीं हैं। कुछेक प्रथाएँ मुगलों से प्रभावित अवश्य हुई किन्तु उनमें भी वैदिक परम्पराओं का अंश सर्वथा नष्ट नहीं हुआ। आर्थिक वर्गों तथा ग्रामीण-नगरीय फर्क इन रीति-रिवाजों में निसन्देह दृष्टिगोचर होता है क्योंकि देहातों में ये नगरों की अपेक्षाकृत सरल तथा धनवानों में गरीबों से अधिक वैभवशाली तरीकों से सम्पन्न किये जाते हैं।

सभी धर्मों के मानने वालों के रीति-रिवाज लगभग एक से हैं। अन्तर केवल रीति-रिवाज अथवा रस्म को मनाने के ढ़ंग और रस्म के नाम में हो सकता है। सामान्यतया राजस्थान के निवासी निम्न वर्णित रीति-रिवाजों को मनाते हैं, जो मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न अवसरों से सम्बन्धित हैं।

नामकरण—बच्चे के जन्म के कुछ नों बाद उसका नामकरण प्राय: पण्डित द्वारा कराया जाता है। सभी जाति व धर्म के लोगों में अपनी रस्म अनुसार बच्चे का नामकरण कराया जाता है।

पनघट पूजन—बच्चे के जन्म के कुछ दिनों उपरान्त 'कुआ पूजने' की रस्म मनाई जाती है। घर, परिवार तथा आस-पड़ौस की स्त्रियां इकट्ठी हो कर गीत गाती हुई कूऐ पर जाती हैं। इस प्रथा को जलवा पूजन भी कहते हैं।

झडूला—बच्चे के दो या तीन वर्ष के हो जाने पर उसके केश उतरवाये जाते हैं जिसे झडूला अथवा मुण्डन कहा जाता है। यह मुण्डन किसी तीर्थ, कुलदेव के स्थान, अथवा कूऐ व तालाब पर किया जाता है।

सगाई—वैवाहिक सम्बन्ध की दृष्टि से जब किसी लड़की के लिये लड़का रोका जाता है तब उसे सगाई की रस्म कहते हैं। हिन्दू परिवारों मे लड़का रोकने के लिये नारियल व रुपया रखकर राम-राम की रस्म भी पूरी करते हैं। इसके बाद सगाई या मंगनी भेजते हैं।

लग्न-पत्रिका—वर-वधु पक्षों द्वारा तय तिथि पर कन्या पक्ष वालों की तरफ से रंग-बिरंगे कागज में पण्डित द्वारा लग्न पत्रिका लिख कर भिजवाते हैं, जिसमें फेरों का समय अंकित होता है। उस दिन वर पक्ष वाले बारात लेकर वर-वधू पक्ष वालों के यहां जाते हैं।

बरी-पड़ला—वर पक्ष वाले वधू के लिये जो कपड़े व जेवर आदि बनवाते हैं। उसे बरी-पड़ला कहते हैं।

कांकन डोरड़ा—विवाह के दो दिन पूर्व वर के दाहिने हाथ में कांकन डोरा बांधते है। यह मोली को बांटकर बनाया जाता है। दूसरा कांकन डोरा वधू के लिये बरी-पड़ला के साथ भेजने की रस्म है, जिसे वधू के हाथ में बांधा जाता हैं।

सामेला—जब बारात वधू-पक्ष के यहां पहुँचती है तो नाई या ब्राह्मण बारात आगमन की सूचना वधू-पक्ष को देता है। उसे हैसियत अनुसार पुरस्कार दिया जाता है। तत्पश्चात वधू-पक्ष वाले अपने सम्बन्धियों के साथ बरात की अगवानी करते हैं, जिसे सामेला या ठुमाव कहते हैं।

तोरण—जब वर कन्यागृह पर प्रथम बार पहुँचता है तो घर के दरवाजे पर बंधे तोरण को घोड़ी पर बैठ हुऐ छड़ी या तलवार द्वारा सात बार छूता है। तोरण मांगलिक चिन्ह होता है।

फेरे—धर्म शास्त्रानुसार वर अपनी वधू का हाथ अपने हाथ में लेकर अग्नि के समक्ष उसे अपनाता है और जीवन-पर्यन्त साथ निभाने की प्रतिज्ञा करता है। साथ ही अग्नि के चारों ओर फिर कर 7 फेरे लेता है। तभी से वे पति-पत्नि बन जाते हैं।

पहरावणी—बरात बिदा करते समय प्रत्येक बराती तथा वर-वधू को यथा शक्ति धन दिया जाता है। इसे पहरावणी की रस्म या रंगबरी कहते हैं।

गौना—वधू अगर बालिग है तो यह रस्म विवाह के समय ही करदी जाती है अन्यथा उसके बालिग होने पर की जाती है। वर वधू को अपने घर ले जाता है और इस रस्म के साथ ही पति पत्नि का सामान्य जीवन प्रारंभ हो जाता है।

मोसर—राजस्थान में मृत्यु भोज की प्रथा है। इसे 'मोसर' कहते हैं। मरने वाले व्यक्ति के पीछे उनके निकटतम सम्बन्धी उसके सम्बन्धियों व ब्राह्मणों को भोजन करवाता है। यह क्रम 12 दिन तक चालू रहता है। ठीक बारहवें दिन अधिक खर्चा करना होता है। उस दिन अधिक ब्राह्मणों व सम्बन्धियों को भोजन करवाते हैं और मृत व्यक्ति के पीछे दान-पुण्य भी करते हैं। कहीं-कहीं मोसर करने में लोगों को अपने घर बार तक बेचने पड़ते हैं। जिन व्यक्तियों के पीछे मोसर करने वाले नहीं होते हैं वे अपने जीते जी अपना मोसर खुद कर देते है और लोगों को खिलाकर खुद के नाम पर दान भी कर देते हैं।

मृत व्यक्ति के पीछे उसके निकटतम सम्बन्धी यहां अपने 'केश' (बाल) कटवाते हैं। साथ ही 12 महिनों तक किसी प्रकार की खुशी नहीं मनाई जाती है। ओढनी, साफा व पगड़ी का रंग आसमानी, तम्बाकू, काला या सफेद रखते हैं जो यहाँ शोक के रंग माने जाते हैं।

मृत व्यक्तियों के पीछे यहां आश्विन महीने में श्राद्ध पक्ष होता है। जिस दिन जिस व्यक्ति की मृत्यु हुई थी, उसी तिथि के दिन उसके रिश्तेदार उसके नाम पर ब्राह्मण-भोजन करवाते हैं। यह रिवाज राजस्थान में सर्वत्र है।

पगड़ी—मोसर के दिन ही मृत व्यक्ति के बड़े पुत्र को उसके उत्तराधिकारी के रूप में पगड़ी बांधी जाती है।

पहली पगड़ी तो घर की तरफ से बांधी जाती है, फिर भाई व बन्धुओं व सगे सम्बन्धियों की तरफ से बांधी जाती है।

सती प्रथा—राजस्थान में बीते युग में सती प्रथा का चलन था। वीर और शौर्य से ओत-प्रोत इस प्रदेश की महिलायें सती होने में अपने को सौभाग्यशाली समझती थी। अब यह प्रथा समाप्त हो गई है।

डावरिया—राजा महाराजा व जागीरदारों में पहले लोग अपनी लड़की की शादी में दहेज के सोथ में कुछ कुंवारी कन्याएँ भी देते थे जिन्हें डावरिया' कहा जाता था।

गोद प्रथा—अन्य प्रदेशों की भांति यहां भी गोद लेने की प्रथा है। जब किसी व्यक्ति के पुत्र नहीं होता है तो वह अपने वंश के नाम को आगे चलाने के लिये अपने सम्बन्धियों में से किसी एक बच्चे को गोद ले लेता है।

स्त्रियों में प्रथा--राजस्थान की स्त्रियां प्रायः घर का तमाम कार्य स्वयं हाथों से करती हैं चाहे धनी हो या गरीब। पहले तो महिलायें चक्की पीसना आदि काम भी स्वयं करती थी। जिन परिवारों का जीवन निर्वाह पशुओं पर ही निर्भर रहता है वहां महिलायें स्वयं घर के काम करती है और गायों को दूहना, मक्खन निकालना, पशुओं की देखभाल करना आदि कार्य वे करती हैं।

देहातों में महिलायें पीने के लिये पानी स्वयं अपने सिर पर घड़े रखकर कुंओं से लेकर आती हैं। अच्छे व धनी परिवारों की महिलायें भी प्रातःकाल अपने सिर पर घड़े रखकर पानी के लिये निकल पड़ती है और झुंड के झुंड तालाब अथवा कुंओं की ओर से आते जाते दृष्टिगत होते हैं। पानी लाने के अवसर पर वे मिल-जुलकर उल्लासपूर्ण गीत गाती हुई जाती हैं। यहां महिलायें प्रायः अधिक से अधिक जेवर बनवाने की उत्सुक होती हैं और उन जेवरों को वे हर समय पहने हुई रहती हैं।

जनेऊ प्रथा—ब्राह्मण जाति में बच्चों के जनेऊ डालने की प्रथा है। जनेऊ सूत के तीन धागों की होती है जिसमें तीन गांठे लगी होती हैं। इस रिवाज के पीछे एक सांस्कृतिक घटना का सम्बन्ध है। बच्चे की आयु जब 10 वर्ष की हो जाती है तब उसके लिये जनेऊ का होना आवश्यक मान लिया जाता है। इसे 'यज्ञोपवीत' नाम से भी पुकारा जाता है। यह रिवाज भी बड़ी धूम धाम से पूरा होता है और उस दिन अनेक धार्मिक रीति रिवाजों के साथ खान-पान का आयोजन होता है।

बाल विवाह—यह प्रथा शहरों में कुछ भले ही कम हो गई हो परन्तु गांवों में आज भी यह बदस्तूर जारी है। हिन्दुओं में ही नहीं बल्कि मुसलमानों में भी बाल विवाह काफी प्रचलित है। आज भी गांवों में बड़ी संख्या में बाल विवाह होते है। आखातीज का सावा शादियों के लिये उत्तम माना जाता है।

पर्दा प्रथा--शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ यह प्रथा कम हो रही है लेकिन अभी भी हिन्दुओं के उच्च वर्गों में यह प्रथा बहुत सीमा तक बनी हुई है। मुसलमान स्त्रियों में यह प्रथा कम तो जरूर हुई है, लेकिन अभी भी अशिक्षित स्त्रियों में इस का प्रचलन ज्यों का त्यों बना हुआ है तथा घर से बाहर जाते समय बुर्का सभी स्त्रियां पहनती हैं।

नाता—राजस्थान में 'नाता' अथवा 'पुनर्विवाह' की प्रथा भी है। इस प्रथा के अनुसार पत्नी अपने पति को छोड़कर किसी अन्य पुरुष के साथ रह सकती है। इसके लिये किन्हीं औपचारिक रस्मों की आवश्यकता भी नही होती है। यह परस्पर सहमति के आधार पर विवाह है। विधवा भी अपनी पसन्द के व्यक्ति के साथ रह सकती है। यह प्रथा नाता कहलाती है।

इस प्रकार उपरोक्त प्रचलित रीति रिवाजों व प्रथाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि राजस्थान के रीति रिवाज संस्कृति की विशिष्ट धरोहर है।

पुरुष वेशभूषा—परम्परागत वेशभूषा में यहां के राजपूत नरेशों की शाही पोशाकें मुगल सम्राटों से प्रभावित रही। जामा, खिड़कियां पाग, अंगरखी, चूड़ीदार पायजामा, कमरबन्द तथा कटार एवं तलवार यहां के नरेशों की राजकीय पोशाक थी। फिर अंग्रेजों के समय में 'ब्रीचेस' जिसे मारवाड़ी भाषा में 'बिरजस' कहा जाता है चूड़ीदार पायजामे के स्थान पर काम में लिया जाने लगा। बिरजस के साथ में शेरवानी, अचकन अथवा बन्द गले का कोट पहना जाता रहा।

पगड़ी के साथ यहां के कतिपय उच्च परिवारों में

अभी भी शेरवानी या अचकन पहनने की प्रथा है। अचकन की लम्बाई घुटनों से नीची होती है।

सिर पर पगड़ी के स्थान पर साफा अथवा फैंटा बांधा जाता था। जो भी परिवार तथा जातियां राजकीय सेवाओं में थी, उसमें चूड़ीदार पायजामा, अचकन तथा पगड़ी अथवा बिरजस, बंद गले का कोट और साफा प्रचलित हो गया। नंगे सिर रहना अपमानजनक तथा अपशुकनी गिना जाता रहा। रियासतों के किलों तथा महलों एवं जागीरों के रावलों में कोई भी व्यक्ति नंगे सिर प्रवेश नहीं कर सकता था। गांवों में महाजन अथवा वैश्यों में पगड़ी तथा बाकी सभी जातियां एवं वर्गों में साफे का प्रचलन अभी तक भी ज्यों का त्यों हैं। ग्रामीणों तथा शहरियों में साफे के रंगों तथा बांधने के तरीके भी भिन्न भिन्न इलाकों में पृथक पृथक हैं।

मेवाड़ में प्रायः सभी व्यक्ति केवल पगड़ी ही पहनते हैं। वहां साफे का रिवाज नहीं के बराबर है। मारवाड़ में साफे अधिक प्रयोग में आते हैं, परन्तु साफों के साथ-साथ उच्च व्यापारी वर्ग के व्यक्ति तथा कुछ वयोवृद्ध पगड़ी का प्रयोग भी करते हैं। मारवाड़ में पहने जाने वाली पगड़ी मेवाड़ की पगड़ी से आकार में बड़ी और ऊँची होती है।

राजस्थान के पहनावे में एक प्रकार का और रिवाज है। प्रायः हर व्यक्ति अपने हाथ में एक लम्बा कपड़ा अवश्य रखता है। कई व्यक्ति तो इस कपड़े को कमर में बांध लेते हैं। इसके साथ में 'गेडी' रखने का प्रचलन है। ग्रामीण प्रायः बडी लकड़ी अपने हाथों में रखते हैं।

प्राचीन समृद्ध परिवारों की वेशभूषा लगभग एक सी है। उनमें शासक और शासित का कम अन्तर है। परन्तु साधारण रूप से राजपूत लोग 'साफे' पहनते हैं जो बहुधा अच्छी मलमल के सफेद अथवा रंगीन होते हैं। उनमें बन्धेज सम्मिलित होते हैं। यह साफे ग्रामीणों द्वारा पगड़ी के आकार में बांधे जाते हैं। उदयपुरी पगड़ी एवं जोधपुरी साफा बन्धाई के लिए सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। नगरों में लोग कोट, पेन्ट, कमीज, बुशशर्ट, पायजामा, नेकर आदि पहनते है। आजकल गांवों में भी प्राय यह कपड़े पहने जाते हैं।

ग्रामीण जनता अंगरखी' पहनती है जो किसी भी रंग की हो सकती है परन्तु बहुधा श्वेत होती है। इसे ग्रामीण भाषा में 'बुगतरी' भी कहते हैं। गर्म अंगरखों का बहुत कम रिवाज है परन्तु शीत से बचने के लिए कम्बल से या रेजी के कपड़ों का 'पछवड़े' से काम लिया जाता है। ग्रामीण लोग कम्बल या पछवड़े को खेतों में काम करते समय इस प्रकार से ओढ़ते हैं कि कम्बल हाथों का बन्धन न बन जाय। इस प्रकार से सर पर ओढ़े जाने वाली कम्बल घूधी' कहलाती है। गांवों में रंगीन सूती कपड़ों की मिली हुई घूघी बच्चों के लिए अत्यधिक प्रचलित है। राजस्थान के पुरुषों का मुख्य पहनावा अंगरखी तथा घुटनों तक बंधी धोती है।

स्त्रियों की वेशभूषा - स्त्रियों में सामन्तों व अन्य साधारण नागरिकों की पोशाक में रंगों के इतने भेद नहीं है परन्तु कपडों की क्वालिटी तथा पहनने के तरीकों में कुछ भेद है। सामन्ती परिवारों एवं समृद्ध परिवारों में ओढ़नी या लूगड़ी छपाई बंधेज और 'रंगीन, बारीक व अधिक कीमती वस्त्र की होती है। उच्च वर्ग की महिलाओं का घाघरा या लहँगा भी साधारण समाज की महिला की ओढ़नी से कदाचित महीन हो सकता है। स्त्रियों की पोशाक में सामान्यतः हिन्दू स्त्रियाँ लहँगा या घाघरा ओढ़नी या लुगड़ी, कांचली, अंगरखी पहनती हैं। ओढ़नी को चून्दड़ी, पीला कांगनिया पोमचा, बसन्ती, लहरियों व डबकियां आदि उसके रंगों व बन्धेज व छपाई के अनुसार कहा जाता है। लेकिन आजकल अधिकांश स्त्रियों में धोती पहनने की प्रथा है। मुस्लिम स्त्रियां चूड़ीदार पायजामा पहनती है और इन सब पर ओढ़नी तथा बुर्का पहनती हैं आजकल स्त्रियों में साड़ी पहनने का प्रचलन अधिक है।

आभूषण राजस्थान में सोने चांदी के आभूषण पहनने का प्रचलन अधिक है। साथ ही स्त्रियाँ व पुरुष दोनों को ही आभूषण धारण करने का शौक है, स्त्रियां 'बोर' पहनती है। यह सुहाग का चिन्ह माना जाता है। अब 'बोर' का स्थान टीका लेता जा रहा है। 'बोर' भी राजस्थान के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पहने जाते हैं। बीकानेर, जैसलमेर व फलौदी के इलाकों में

बहुत बड़ा आकार का 'बोर' पहना जाता है। जयपुर व मेवाड़ में छोटे-छोटे बोर पहने जाते है जो चपटे आकार के होते है। मारवाड़ में छोटे बोर पहनते हैं जो आकार में गोल होते हैं।

बोर से कानों तक फीते के आकार की नगों से जड़ी हुई सोने की जंजीर आ जाती है, जो कानों के आगे के भाग को ढ़कती हुई कान के कोमल भाग तक आ जाती है। यहां छिदे हुए कान में कर्णफूल शोभित होते है। नाक में 'नथ' पहने जाने का रिवाज लगभग खतम सा हो रहा हैं लेकिन फिर भी इसका प्रचलन अभी बना हुआ है। परन्तु अब नथ का आकार बहुत छोटा ही पसन्द किया जाता है। महिलाओं के साथ राजस्थान के अनेकों गांवों में पुरुष भी कानों में सोने के जेवर पहनते हैं। जिन्हें राजस्थानी में मुरकिये' कहा जाता है। कई पुरुष भी मुरकियों के साथ-साथ कान के चारों ओर सोने की जंजीर रखते हैं।

इसी प्रकार गले में अनेक प्रकार के हार, बाजुओं पर बाजूबन्द जिनमें रंगबिरंगी चीजों से गुंथे हुए "लूम-झूम" झुमते रहते हैं। कलाई पर भी सोने व हीरों की चूड़ियां तथा अन्य सोने चांदी के गहने पहने जाते है। अंगुलियों में अंगूठियां रहती है। कमर पर सोने चांदी की जंजीर और पैरों में साधारणतः चांदी के कड़े, छड़, पायल घूंघरु वाले पायल जो, चलने पर बज उठते हैं, पहने जाते हैं। इस प्रकार महिलाओं में अनेक प्रकार के जेवर पहनने का रिवाज हैं। कई स्थानों पर तो गले में बहुत बढ़िया कीमती 'चंदन हार' पहना जाता है। चंदन हार के अलावा गले में कंठी पहनने का भी रिवाज है। कई-कई महिलायें गले में एक अन्य प्रकार का आभूषण पहनती हैं जो कीमती नगों से जड़ा होता है जिसे "तिमणियां" कहते हैं। कलाई में एक विचित्र प्रकार का कड़ा पहना जाता है जो "गोखरू" नाम से प्रसिद्ध है। गोखरू के पास भी एक प्रकार का आभूषण पहना जाता है जिसे 'पुन्छि' कहते हैं।

राजस्थान में स्त्रियां अपने सुहाग की निशानी के लिये हाथों में हाथी दांत अथवा लाख का चूड़ा पहनती है। यह देश में अन्यत्र नहीं होता है। कलाई की शोभा बढ़ाने वाली चूड़ियां शृंगार के साथ-साथ सुहाग चिन्ह मानी जाती हैं। परन्तु राजस्थान में कई स्त्रियां कुहनी के ऊपर बाजू पर चूड़ा पहनती है, जो अमर सुहाग की निशानी है। स्त्रियों के आभूषणों में निम्नलिखित प्रमुख है—

सिर—शीशफूल

मस्तक—बोरला, टीका, फीणी, मांग टीका, सांकली।

नाक—नथ, लोंग।

कान—झुमका, बाली, पत्ती, सुरलिया, टॉप्स, इयरिंग्स।

गला—हार, कण्ठी, मटरमाला, झालर, जजीर, बड़ा, हंसली, पंचलड़ी, तिमणियां।

बाजू—बाजूबन्द, ठड्डा, तकया, बट्टा।

कलाई—चूड़ियां, चूड़ा, कड़ा, हथफूल, पूंचियो, बंगड़ी।

अंगुलियां—छल्ला, अंगूठी, मूंदड़ी।

कटि—तागड़ी, करधनी, कणकती।

पैर—पायजेब, पायल, कड़ा।

पैरों की अंगुलियां—बिछिया।

7 लोक नृत्य एवं गीत

(Folk Dances & Songs)

लोक नृत्य

राजस्थानी संस्कृति में लोक नृत्य अपना एक विशिष्ट स्थान रखते है। यहां के लोकनृत्यों में लय, ताल, गीत, सुर आदि का सुन्दर एवं सन्तुलित सामंजस्य मिलता है। इसलिये जहां ये एक ओर बुद्धिजीवी समुदाय के लिये कलात्मक महत्व रखते है, वहीं दूसरी ओर जनसाधारण एवं आदिवासियों के लिये इनका महत्व मनोरंजन तथा जीवन के अस्तित्व हेतु है। यही लोग लोक नृत्य को धरोहर के रूप में सुरक्षित रखे हुये है। आदिवासियों के लिये नृत्य जीवन दर्शन है जिनके माध्यम से वे अपनी मान्यताएँ तथा विश्वासों को अभिव्यक्ति देते हैं। यहां के लोक नृत्यों के द्वारा भीलों, कालवेलियों, सांसियों, बंजारों तथा अन्य जातियों के कितने ही रीति-रिवाजों और मान्यताओं का ज्ञान हो सकता है।

लोक नृत्यों की अनेक सुन्दर परम्पराएं एवं उनकी किस्में भील, मीणा, बादिया, नट, सांसी, कंजर, बंजारा, गिरासिया, ढोली, सरगर, भोपा, कामड़, राव, मिरासी आदि जातियों के पास न केवल जीवित हैं बल्कि सुरक्षित भी हैं।

भीलों के नृत्य - राजस्थान के लोक नृत्यों में भीलों के नृत्य **गेर घूमर, नेजा और गौरी** हैं।

1 **गेर**— गेर होली के नृत्य हैं। होली का समय खेती को काटने का समय होता है। फसल को घर लाने के साथ जो हर्ष का भाव है, वही इस नृत्य का प्राण भी है। होली के साथ भीलों या किसानों की जो व्यापक मान्यताएं हैं, वे भी प्रमुख हो जाती हैं।

(2) **गौरी**—यह इनका पार्वती पूजा सम्बन्धी नृत्य है। पार्वती पूजा का इनमें प्रचलन एक महत्वपूर्ण खोज का विषय है। **'गौरी'** का खेल खेत को बोने व काटने के बीच में खेला जाता है। खेत की रखवाली के साथ ही यह सामूहिक नृत्य एवं नाटक मिलकर खेला जाता है।

(3) **घूमर**—यह नृत्य सभी उत्सवों समारोहों, विवाहों के अवसरों आदि पर किया जाता है। इसमें स्त्री-पुरुष मिल कर घेरा बना लेते है तथा फिर नृत्य करते हैं। स्त्रियां गणगोर, होली, दीपावली आदि अन्य उत्सवों एवं त्यौहारों पर घूमर नृत्य करती हैं। इस नृत्य की भिन्न-भिन्न क्षेत्रगत विशेषताएं हैं। यह राजस्थान का अत्यन्त जनप्रिय कलात्मक नृत्य है। भूतपूर्व ठिकानों में इसका बहुत प्रचलन था और राजपूत स्त्रियां महलों में बड़े पैमाने पर यह नृत्य आत्मलीन होकर किया करती थीं। घूमर में लड़कियां एक घेरे में विशेष पद संचालन और गीत के साथ नाचती हैं।

(4) **नेजा**—यह रुचिकर खेल नृत्य है और होली के तीसरे दिन अभिनीत किया जाता है। एक बड़ा खम्भा भूमि में रोप दिया जाता है। उसके सिर पर नारियल रोप दिया जाता है। उस खम्भे को स्त्रियां छोटी-छोटी छड़िया और बलदार कोरड़े लेकर चारों ओर से घेर लेती है। पुरुष जो वहां से थोड़ी दूर पर खड़े हुये रहते है, उस खम्भे पर चढ़ने का प्रयत्न करते हैं, वे नारियल लेकर भागते हैं। स्त्रियां उनको छड़ियों और कोरड़ों से पीटती हैं।

शेखावाटी क्षेत्र के नृत्य—शेखावाटी क्षेत्र के मुख्य नृत्य हैं **गिदड़** तथा **डंडिया गेर**। यहां के गिदड़ नृत्य और डंडिया गेर में विशेष फर्क नहीं होता। शेखावाटी के कच्छी घोड़ी नृत्य ने भी काफी ख्याति पाई है।

गिदड़ नृत्य— इस नृत्य में भाग लेने वालों की संख्या बहुत होती है। इसमें कई जातियों के लोग भाग लेते हैं। यह होली के पन्द्रह दिन पहले आरम्भ होता है। गणेश चतुर्थी पर शेखावाटी में लड़के लड़कियां टोलियां बनाकर तरह-तरह के स्वांग रचकर नाचते हुए गली-बाजारों में जुलूस निकालते हैं।

कच्छी घोड़ी नृत्य—इस नृत्य में 'पेटर्न' बनाने की कला बनाने की कला अद्भुत है। चार-चार व्यक्तियों की आमने-सामने खड़ी पंक्तियां पीछे हटने, आगे बढ़ने की

क्रियाएं द्रुतगति से करती हुई इस प्रकार मिल जाती हैं कि आठों व्यक्ति एक ही लाइन में आ जाते हैं। इस पक्ति का बार-बार बनना व बिगड़ना ठीक उस कली से फूल की तरह होता है जो पंखुड़िया होकर खुलती हैं।

गिरासियाओं के नृत्य—ये नृत्य सामुदायिक नृत्यों में बहुत प्रगतिशील है। होली और गणगौर के अवसरों पर इनका नृत्य उत्साह देखने योग्य होता है। स्त्री पुरुषों की टोलियां आनन्द मग्न होकर साथ साथ नाचती हैं।

(1) **गर्वा नृत्य**—गिरासियाओं का सबसे अधिक मोहक नृत्य गर्वा है। इसमे केवल स्त्रियां ही भाग लेती है।

(2) **घूमर**—गणगौर के अवसर पर गिरासिया युवतियां घूमर नृत्य करती हैं, सुन्दर गोलाकार समूह में जौ के हरे-भरे पौधों को सिर पर रख कर नृत्य होता है और युवक ढोल तथा बांसुरी की धुन पर उनके चारों ओर आनन्द विभोर होकर नाचते रहते हैं।

(3) **बालर**—यह नृत्य विशेषकर गणगौर त्यौहार के दिनों में होता है। इसमें स्त्री और पुरुष जोड़ों में नृत्य करते हैं शरीर अंग संचालन तथा ताल की एकता बड़ा सजीव दृश्य उत्पन्न करती है।

(4) **गैर**—यह नृत्य होली पर होता है। इसमें केवल पुरुष भाग लेते है। यह लोग डड़ियों के साथ नाचते हैं।

कालबेलियों के नृत्य कालबेलिया (सपेरा) बड़ी रोचक जाति है। इनके द्वारा सांप का पकड़ना इनकी चतुरता पर ही केवल निर्भर नहीं करता बल्कि इनके संगीत और नृत्य पर भी निर्भर करता है। इन लोगों के निम्न प्रिय नृत्य हैं—

1. **शंकरिया** - *यह एक युगल नृत्य है। प्रेम कहानी पर आधारित इस नृत्य में अंगों का संचालन बड़ा ही सुन्दर होता है।*

2. **पणिहारी**—यह नृत्य प्रसिद्ध गीत पणिहारी पर आधारित है। यह भी युगल नृत्य है।

3. **इण्डोणी**—यह एक गोलाकार रूप में किया जाने वाला मिश्रित नृत्य है। प्रमुख वाद्य पुंगी और खंजरी होते है। औरतों की पोशाकें बड़ी कलात्मक होती है तथा इनके बदन पर मणियों की सजावट रहती है।

बागड़िया नृत्य—यह नृत्य भी इसी जाति द्वारा किया जाता है। इनकी स्त्रियां भीख मांगते समय नाचती है। इनका मुख्य वाद्य चंग होता है। नृत्य संगीतमय एव लयबद्ध होते है।

मवाई नृत्य—ऐसी मान्यता है कि 400 वर्ष पूर्व नागोजी जाट ने सामूहिक नाच करने वालों में मवाई जाति की स्थापना की जो वर्तमान तक नृत्य नाट्य पेशे के रूप में प्रस्तुत करती चली आई है। मवाईयों में कई प्रकार के नाच है जैसे बोरी, सूरदास, लोडी, बड़ी, ढोकरी, बीकाजी, शंकरिया, ढोलामारू, बाबाजी, कमल का फूल, मटकों का नाच, बोतलें, तलवार का नाच आदि। मेवाड़ के मवाई सिर पर पांच-पांच, सात-सात घड़े रखकर नाचते हैं।

बनजारों के नृत्य - बनजारा एक घुमक्कड़ जाति है। बनजारों के नृत्य उनके नाम के पीछे ही मशहूर हैं। संगीत के साथ-साथ नृत्य भी इनके जीवन का एक प्रमुख अंग है। नृत्य के साथ मुख्य वाद्य ढ़ोलकी रहती है।

इनके अलावा राजस्थान में कुछ पेशेवर जातियां भी हैं जिनका कार्य नाचना गाना है। ढ़ोली, मिरासी आदि के अतिरिक्त यहां के जसनाथी जाटों का अग्नि नृत्य भी प्रभावशाली हैं। सांसी एवं कंजर जाति की स्त्रियां भी सुन्दर नृत्य करती है।

जोधपुर के नृत्य—भूतपूर्व जोधपुर रियासत में लोक नृत्यों का प्रचलन पिछड़ी कही जाने वाली जातियों तथा ग्रामीणों के अतिरिक्त नगरवासियों तथा उच्च जाति वर्गों में भी किंचित् उसी उत्साह से वर्तमान समय तक विद्यमान हैं। गेर डंडियों तथा जोरजी चोंपावत आदि पुरुषों के नृत्य यहां नगरों में भी होली तथा गणगौर के समय बड़े चाव से आयोजित किये जाते हैं।

घुड़ला नृत्य—यहां की स्त्रियों के नृत्यों में घुड़ला महत्वपूर्ण नृत्य है। छिद्रित मटके जिनमें दीपक जलते रहते हैं उनको सरों पर उठा कर सुन्दर शृंगार कर स्त्रियों की टोलियां पनिहारी तथा घूमर के प्रकार से गोलाकार चक्कर बनाती हुई नाचती हैं तथा साथ में गीत भी गाया जाता है। इस नृत्य में मन्द-मन्द मादक चाल तथा सिर पर रखे हुए घुड़ले को जिस नाजुकता से सम्हाला

जाता है वह बहुत ही दर्शनीय है।

इन लोक नृत्यों में प्रयोग में आने वाले वाद्यों में ढोल, थाली, बाँसुरी, चग, ढ़ोलक, नौबत आदि मुख्य हैं। होली पर तो अधिकाशतः चंग का ही प्रयोग होता है।

राजस्थान के नृत्यों के वस्त्र व आभूषण भी सुन्दर होते हैं। रंगों का उपयोग ऋतु के अनुसार होता है।

वर्तमान में लोक नृत्य कला को शिक्षित वर्गों तथा नगरों में पुनः जनप्रिय बनाने में जयपुर के मणि गांगूली तथा उदयपुर के देवीलाल सांभर का मुख्य हाथ रहा। यहाँ राजस्थान सगीत नाटक अकादमी की स्थापना के बाद, अकादमी के भू पू मंत्री जोधपुर के कोमल कोठारी ने लोक कलाओं के पुनः विकास के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये तथा राजस्थान की इतर उपेक्षित लोक कला के कलाकारों को भारतीय स्तर पर आधुनिक रंगमंच प्रदान किया। कथक राजस्थान के जयपुर घराने का प्रसिद्ध नृत्य है। अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन, रूस में आयोजित भारत महोत्सवों' में भी राजस्थान के लोक नृत्यों का प्रदर्शन किया गया जिनमें इन्हें अत्यधिक प्रसन्द किया गया।

लोक गीत

लोक साहित्य चाहे किसी भी प्रदेश का क्यों न हो उसमें गीतों का स्थान प्रमुख होता है। गीत मानवीय हर्ष, विषाद की भावनाओं के स्वाभाविक उद्वेग रहे हैं। लोक-गीत भावनाओं की सशक्त एवं मार्मिक अभिव्यक्ति होते है। लोक-गीत की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न है—

1. इनके रचियता के बारे में पता नहीं होता।

2. इनमें भाषा की अपेक्षा भाव अधिक महत्वपूर्ण होते है।

3. इनमें सस्कृति, रहन-सहन तथा मानवीय भावनाओं का सजीव वर्णन होता है।

4 मौखिक होने पर भी लय के साथ गाये जाते है।

5. इनका सम्बन्ध जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है।

राजस्थान के लोकगीत भी यहाँ की प्राकृतिक परिस्थितियों से प्रभावित है। मरूभूमि के निवासियों के लोक गीत उनके हृदय की पीड़ा के परिचायक है। ये लोग अपने हृदय के सूनेपन को इन लोक गीतों के माध्यम से ही दूर करते है। इनके गीतों में वैभव की जो कल्पना, मधुर सम्बन्धों की जो आकांक्षा और विवशताओं का जो विषाद घुला रहता है। वह यहां के समाज की मनःस्थिति को बतलाता है।

राजस्थान में लोकगीतों के प्रमुख प्रकार दृष्टिगत है—

1. आदिवासियों के गीत,
2 गृहस्थों के मांगलिक गीत,
3. पुरुष वर्ग के गीत,
4. पेशेवर गायकों के गीत,
5. महफिलों के गीत,
6. भक्ति रचनाओं वाले गीत।

1. आदिवासियों के गीत – आदिवासियों के लोक गीत की धुन तो परम्परा से चली आती है किन्तु उसका पद-पक्ष या काव्य-रूप हमेशा नया होता है अर्थात् गायक समुदाय धुन विशेष में नई-नई कल्पनाओं का सृजन करता है। इनमें धुन निश्चित किन्तु पद अनिश्चित रहते हैं। गीतों की सहज लय-वृत्ति को मादल नामक अवनद्ध वाद्य पर व्यक्त किया जाता है। सामूहिक गीतों में तत् एवं सुषिर वाद्य आदि प्रयोग नहीं किये जाते। अवश्य इन आदिवासियों का पुजारी वर्ग, जिसने संगीत को आराधना-विधि का अंग बनाया, तत् वाद्यों का उपयोग करता है। उनकी गायन शैली में पांच से अधिक स्वरों का प्रयोग भी होता है। इस वर्ग का संगीत विकसित संगीत है। सामूहिक गीतों में स्वरों की सहजता रहती है और केवल तीन या पांच स्वरों के ही उतार-चढ़ाव में होने के कारण सम्पूर्ण समुदाय सुविधा से गा सकता है।

2 गृहस्थों के मांगलिक गीत – सामाजिक जीवन के मांगलिक गीतों में सभी स्वरों का प्रयोग मिलता है। इनमें कोमल एवं शुद्ध स्वर-रूपों का उपयोग भी होता है। ये सामूहिक गीत हैं जो अधिकतर स्त्रियाँ गाती है। मानव जीवन की सभी अवस्थाओं के गीत इनमें शामिल है। हमारी सामाजिक एवं धार्मिक संस्कृति के 16 संस्कार मुख्य हैं। इन संस्कारों के इन गीतों में जच्चा, पुत्र-जन्म, लोरी, देवी-देवताओं की मनौती, जातरा, देवी-देवताओं के गीत, रातजगा, तीज, गणगौर, दाम्पत्य प्रेम, बना-

वनी, विवाह, विदा, ससुराल का कष्ट, पीहर की याद, वहन-भाई के गीत आदि आते हैं। इनकी धुन भी निश्चित होती है और पद भी। इन गीतों में लय के लिये केवल अवनद्ध अथवा धुन वाद्य उपयोग होते हैं।

3. पुरुष वर्ग के गीत—इस वर्ग के गीतों में प्रायः होली की धमारें, तेजा गोगा, पावू, रामदेव आदि लोक देवताओं के गीत, खेती के गीत तथा रतजगों के भजन आदि सम्मिलित है।

4 पेशेवर गायकों के गीत—लोक संगीत का यह रूप सबसे महत्वपूर्ण है, जो पेशेवर गायकों या विशिष्ट जातियों की ही मुख्य सम्पत्ति है। गायन व वादन दोनों ही दृष्टियों से यह सम्पन्न संगीत है जो संगीत शास्त्रीयता के काफी निकट है। पेशेवर गायकों में लंघा, मांगणियार भोपे, वगड़ावत आदि प्रमुख है। इनमें से वहुत से लोग तो परम्परागत लोकगीतों के साथ ही आजकल प्रचलित अन्य धुनों में भी अपनी सारंगियों और रावण-हत्थों आदि पर फिर-फिर कर गाते रहते है। विशिष्ट आयोजनों के गायक प्रायः गाथाओं का वाचन-गायन ही करते हैं।

5. महफिलों के गीत—ये गीत प्रायः सामन्तों, राज दरवारों और अन्य समृद्ध लोगों द्वारा आयोजित महफिलों, में गाये जाते है। इन्हें गढ़ गीत भी कहते है। ऐसे गीतों में प्रमुख रूप से रतन राणों, जला, पाणिहारी, वायरियों, घूंसो, राणों सूमरों, मूमल झालों, पांखियों आदि है। इन्हें गाने वाले प्रायः ढोली, दमामी आदि जातियों के पेशेवर गायक ही रहते आये है। इनके अतिरिक्त मुसलमान तवायफें और हिन्दू पातरें भी ये गीत गाती है।

6 भक्ति रचनाओं वाले गीत—ऐसी भक्ति रचनाओं की संख्या इतनी अधिक है कि उनका संकलन करना भी वड़ा मुश्किल है। चन्द्रसखी के भजनों, मीरा के पदों, अनेक निर्गुणी संतों के पदों, श्यामजी, सतीमाता, देवी आदि के निमित्त वनाये गये भजनों और वहुसंख्यक हरजसों, जो रामकृष्ण आदि से सम्वन्धित है, लोक गीतों में अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं।

आजकल लोकगीतों को विविध प्रकार के वाद्यों के साथ लयवद्ध और तालवद्ध करके संगीत में वांधने के प्रयत्न चल रहे है। ऐसा करने से उनकी संगीतकला में तो वृद्धि हुई है, पर लोक गायन की पद्धति धीरे-धीरे विस्मरित की जा रही है। लेकिन स्त्रियों की गायन पद्धति ही सम्बन्धित लोक-धुन का आधार है, जिसे भुलाया नहीं जाना चाहिये।

लोक गीतों के संग्रह हेतु पुस्तकों को आधार न बनाकर पृथक-पृथक क्षेत्रों अथवा सांस्कृतिक इकाईयों के ऐसे सर्वेक्षण कराये जाये ताकि जातियों, जनजातियों तथा विभिन्न क्षेत्रों के गीतों को प्रकाश में लाया जा सके। इस दिशा में समय रहते प्रयत्न नहीं किये गये तो सैकड़ों वर्षों से चले आते हुये ये गीत आधुनिक सभ्यता और शिक्षा के प्रवाह में सदा के लिये समाप्त हो जायेंगे।

लोक-वाद्य

संगीत चाहे शास्त्रीय हो या लोक, वाद्यों की चार श्रेणियां ही मानी गई है—(1) तत्-अर्थात् जिनमें तार लगे होते हैं, (2) घन-अर्थात् जो धातु आदि से निर्मित हों, (3) शुषिर-अर्थात् जो फूंक से वजे, और (4) अनवद्ध-अर्थात् जो चमड़े आदि से ढ़के हों। यह सभी वाद्य अनेक रूपों में विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त होते हैं। राजस्थान में निम्नलिखित लोक-वाद्यों की जानकारी मिली है—

1. तत्—इकतारा, दोतारा, चौतारा, जंतर, रवाव, रावण-हत्था, चिकारा मेव व गिरासियों का), सारंगी, कमायचा, अपंग आदि।

2. घन—डंडिया, घंटा, थाली, घंटी, झांझ, तासली, चींपिया, करताल, चूड़ियों, लेजिम, घोडलियो, झालर घुघरू, श्रीमंडल, टाली आदि।

3 शुषिर—अलगोजा, पेली, तोटो, नड़, सतारा, पूंगी, मुरली, मशक, शंख, सिंगी, तुरही, शहनाई, करण, नागफणी, वांकिया आदि।

4 अनवद्ध—चंग, डफ, खंजरी, ढ़ोलक, घेरा, मादल, नगारा, निशान, ढ़ाक, डमरू, घोंसा, दमामा, कुंडी, तरसा, पावूजी के माटे, मटकी आदि।

राजस्थान में ढ़ोली, मिरासी लंघा, ढाढ़ी, मांगणियार, कामड़, भोपे, भाट, जोगी, कालवेलिया एवं मेव आदि जातियों ने वंश-परम्परा से अपने-अपने वाद्यों को विरासत के रूप में प्राप्त किया है। ढोली, ढाढ़ी, मिरासी

लंघे, सारंगी का प्रयोग करते हैं। लय के लिये ये जातियाँ मुख्यतया ढोलक काम में लेती हैं। लंघा एक अत्यन्त अल्पसंख्यक जाति है जो मुख्यत: राजस्थान के जैसलमेर एवं मारवाड़ इलाके में रहती है। इस गायक जाति ने अनेक वाद्यों को ग्रहण किया है। ये लोग सुरिंदा, सुरनाई, मुरला, सतारा, मोरचंग आदि वाद्यों का उपयोग करते हैं। इनकी गायन-शैली भी विकसित है।

ढाढ़ी और जोगी धानी सारंगी नाम से एक वाद्य बजाते हैं। मांगणियर जाति कामाइचा वाद्य बजाती है। कामड़ जाति के लोग मुख्यतया निसांण अथवा तंदूरे और मंजीरों का उपयोग करते हैं।

राजस्थान के लोक संगीत में तंदूरा, एकतारा व दोतारा ही ऐसे वाद्य हैं जो श्रुति-वाद्यों की श्रेणी में आते हैं और जिनकी शास्त्रीय संगीत के तानपुरे से तुलना की जा सकती है।

जोगी धानी-सारंगी का उपयोग करते हैं। एक अन्य जोगी सम्प्रदाय काल-बेलियों की भांति ही पुंगी, खंजरी ढोल, डेरू या ढाक आदि का प्रयोग करता है। कालबेलिया अपने गीतों को घोरा .यो नामक वाद्य पर भी बजाते हैं।

राजस्थान में दो जातियों के भोपे भी महत्वपूर्ण हैं। एक भीलों के भोपे जो पाबूजी की पड को बाँचते समय रावण हत्थे का प्रयोग करते हैं और दूसरे गूजरों के भोपे जो बगड़ावतों की पड़ बाँचते समय जतर नामक वीणा जैसे वाद्य का उपयोग करते हैं। रावणहत्थे के लय का काम गज पर बंधे घूंघरू करते हैं। जंतर में इसी कार्य को चिकारी के तार पर अंगूठे से आघात करके प्रकट किया जाता है।

अलवर इलाके में मेव चिकारे और अलगोजे का प्रयोग करते है। लोक संगीत में वादन की प्रक्रिया के लिए अनेक वाद्य है। ये सभी वाद्य प्राय: गायन की संगत के रूप में काम आते हैं किन्तु कुछ वाद्य स्वतन्त्र रूप से भी विकसित हुए हैं।

8 राजस्थानी बोलियां एवं उनके क्षेत्र

(Rajasthani Dialects & Their Regions)

राजस्थान के निवासियों की मूल भाषा राजस्थानी है। यहां तक कि शिक्षित वर्ग भी दैनिक जीवन में राजस्थानी भाषा का प्रयोग करता है। अपभ्रंश के मुख्यत: तीन रूप-नागर, व्राचड और उप-नागर माने गये हैं। नागर अपभ्रंश से सन् 1000 ई. के लगभग राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई। राजस्थानी प्रारम्भ में बोलचाल की भाषा थी। सन् 1000 ई. के बाद राजस्थानी में साहित्य-सृजन हुआ। जैन आचार्यों ने प्राचीन राजस्थानी का प्रचुर प्रयोग किया। चारण कवियों ने भी प्राचीन राजस्थानी में विशिष्ट शैली में काव्य रचना की और भविष्य में यही विशिष्ट काव्य-शैली डिंगल के नाम से जानी गई। मीरा ने सरस, सरल एवं लौकिक राजस्थानी में पद रचना कर लोकप्रियता प्राप्त की। राजस्थानी की ब्रज व शौरसैनी की यह शैली डिंगल के प्रतिस्पर्द्धी स्वरूप 'पिंगल' के नाम से प्रसिद्ध हुई। आधुनिक काल में राजस्थानी भाषा की लौकिक शैली विकसित होती रही है और उसी में रचनाओं का प्रस्तुतीकरण हो रहा है।

राजस्थानी का वर्गीकरण— कर्नल टॉड ने अपने ग्रन्थों में राजस्थानी भाषा के बोली के कुछ वाक्यांश दिये हैं—जैसे आकरी झौपड़ी, मोठा री दाल, बाजरा री रोटी देखी है, राजा थारी मारवाड़ आदि उससे कई विदेशी व देशी विद्वानों का ध्यान इन बोलियों की ओर आकर्षित हुआ।

राजस्थानी बोलियों का प्रथम वर्णनात्मक दिग्दर्शक सन् 1907 और 1908 में **सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन** (Sir George Abraham Grierson) ने अपने आधुनिक भारतीय भाषा-विषयक विश्वकोष (Linguistic Survey of India के) दो खण्डों में प्रकाशित किया था। इसकी खोज से राजस्थानी बोलियों के पारस्परिक संयोग व सम्बन्धों के विषय स्पष्ट रूप से पाठकों के सम्मुख आते

हैं। पुरानी पश्चिमी राजस्थानी (अर्थात् गुजराती और मारवाड़ी के पूर्व रूप) के ऐतिहासिक विश्लेषण के आधार पर सन् 1914 से सन् 1916 तक इटली के विद्वान एल. पी. तेस्सीतोरी ने 'इण्डियन ऐन्टीक्वेरी' पत्रिका के अंकों में जो मूल्यांकन गवेषणा सम्पूर्ण की थी उससे राजस्थानी की उत्पत्ति और विकास पर अभूतपूर्व प्रकाश पड़ा है।

भारत की अन्य भाषाओं के समान राजस्थानी की भी कुछ विशिष्टतायें है। सभी रूप भेदों में सम्पूर्ण राजस्थानी सर्वत्र दिखाई नहीं देती, ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

1. **पश्चिमी राजस्थानी**—मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढारकी, बीकानेरी, बागड़ी, शेखावाटी, खेराड़ी, गोड़वाड़ी, देवड़ावाटी आदि बोलियां इसमें आती है।
2. **उत्तरी पूर्वी राजस्थानी**—अहीरवाटी और मेवाती बोलियां इस में आती है।
3. **मध्य पूर्वी राजस्थानी**—ढूंढाणी, तोरावाटी, खड़ी जैपुरी, काठेड़ा, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढ़ी, (शाहपुरा) नागर चाल, हाड़ौती आदि बोलियां इस में आती है।
4. **दक्षिण पूर्वी राजस्थानी**—रांगड़ी और सोंधवाड़ी आदि बोलियां इस क्षेत्र में बोली जाती है।
5. **दक्षिण राजस्थानी**—इसमें निमाड़ी आदि आती है।

राजस्थानी नाम से, ग्रियर्सन ने भौगोलिक संयोग के कारण और कुछ स्थूल कारणों में जिन बोलियों को साथ मिला दिया था, वे सचमुच दो पृथक शाखाओं की है। एक पूर्व की शाखा, जो पछांही हिन्दी से (व्रज भाषा आदि से) ज्यादा सम्बन्ध रखती है और दूसरी पश्चिम की शाखा से जो प्राचीन राजस्थानी कही जाती है।

पण्डित मोतीलालजी मेनारिया के मतानुसार राजस्थानी की निम्न नौ बोलियां हैं—

1. मारवाड़ी—जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर और शेखावाटी में बोली जाती है। इसका शुद्ध रूप जोधपुर क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है। बाड़मेर, पाली, जालोर तथा नागौर जिलों की भाषा पर भी इसका व्यापक प्रभाव है।

मारवाड़ी साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न बोली है और जहां व्यापार पर मारवाड़ी गये हैं वहां यह बोली जाती है। विस्तृत लोक-साहित्य के साथ-साथ इसी के आधार पर काव्य-भाषा का श्री-स्वरूप भी बना है।

2. मेवाड़ी यह उदयपुर, भीलवाड़ा व चित्तौड़गढ़ (मेवाड़) के अधिकांश भाग में बोली जाती है। इसमें अधिक साहित्य रचना नहीं हुई है। मारवाड़ी और मेवाड़ी का मुख्य अन्तर क्रिया के व्यवहार का है। मेवाड़ी में 'ए' और 'ओ' की ध्वनि का विशेष उपयोग होता है—जैसे "ओ, नीला घोड़ा रा असवार' परन्तु मारवाड़ी आकार प्रिय भाषा है।

3 बागड़ी—डूंगरपुर, बाँसवाड़ा तथा दक्षिण-पश्चिम उदयपुर के पहाड़ी प्रदेश में बोली जाती है। गुजरात की सीमा पर होने से यह मिश्रित बोली है। जिसे हम मेवाड़ी-गुजराती कह सकते हैं। इसमें कारक, विभक्ति और क्रिया प्रायः गुजराती के ही व्यवहार में आती हैं और गुजराती के शब्द इसमें प्रचुर है। यह भीलों की बोली है।

4 हाड़ौती—कोटा, बूंदी, झालावाड़ और शाहपुरा तथा उदयपुर के पूर्व भाग में यह भाषा बोली जाती है।

5 मेवाती—अलवर, भरतपुर, धोलपुर और करौली के पूर्वी भाग में बोली जाती है। इसके अन्य भागों में बागड़ी के समान ही मिश्रित व्रज भाषा बोली जाती है।

6. मालवी—झालावाड़, कोटा और प्रतापगढ़ की बोली है।

7. रांगड़ी—राजपूतों में प्रचलित मारवाड़ी और मालवी के सम्मिश्रण से उत्पन्न बोली है।

8 ढूंढाड़ी—जयपुर जिले की भाषा है।

9. व्रज—देहली व उत्तर प्रदेश की सीमा से मिलने वाले भाग धौलपुर, तथा भरतपुर में यह बोली प्रचलित है। साथ ही गंगानगर में पंजाबी तथा दक्षिणी-पश्चिमी भागों में गुजराती मिश्रित बोली का प्रभाव स्पष्ट है। राजस्थान में प्रायः मारवाड़ी भाषा बोली जाती है। सम्पूर्ण मेवाड़ में मेवाड़ी का ही अधिक प्रचलन है। राजस्थान में 60.80 प्रतिशत हिन्दी, 16.27% मारवाड़ी, 7.68% राजस्थानी, 3.78% वांगड़ी, 3.15% मेवाड़ी, 2.53% उर्दू, 1.81% पंजाबी, 1.3% हाड़ौती, 0.93% सिन्धी, 0.60% ढूंढाड़ी तथा 1.15% अन्य बोली बोलने वाले हैं। हिन्दी बोली समग्र राजस्थान में बोली जाती है।

9 मेले एवं त्यौहार

(Fairs & Festivals)

मेले और त्यौहार राजस्थान के जन-जीवन की परम्परागत विशेषता है जो अभी तक भी ज्यों के त्यों विद्यमान है। त्यौहारों में यहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्मों के उत्सव मनाये जाते हैं। राज्य में अधिकाँश मेले पर्व व त्यौहारों के साथ जुड़े हैं। जिस स्थान विशेष पर मेला लगता है, विभिन्न स्थानों से लोग उस स्थान पर एकत्रित होते हैं। इन मेलों में कुछ का महत्व तो केवल स्थानिक है, किन्तु कुछ देश व्यापी हैं। इन मेलों में कुछ का धार्मिक महत्व है और कुछ का आर्थिक।

राजस्थान में वैसे तो मेले बड़ी संख्या में विभिन्न स्थानों पर आयोजित किये जाते हैं लेकिन कुछ गिने चुने मेलों का एक अपना ही महत्व होता है जिसके कारण लोग आकर्षित होकर बहुत बड़ी संख्या में इनमें भाग लेते हैं। यहाँ के धार्मिक मेलों की यह भी विशेषता है कि तत्सम्बन्धी धर्म के अनुयायियों के अतिरिक्त अन्य जातियों, वर्णों तथा धर्मों के लोग भी इनमें भाग लेते हैं। कुछ प्रमुख मेलों का वर्णन इस प्रकार है—

कैला देवी का मेला यह मेला करौली से 20 कि. मी. दूर कैला देवी के मन्दिर पर भरता है। चैत्र माह में कई दिन तक भरने वाले इस मेले में लाखों लोग देवी माँ के दर्शन के लिए आते है। इस अवसर पर पशु मेला भी भरता है।

गणेश मेला—यह मेला गणेशचतुर्थी पर सवाई-माधोपुर के पास रणथम्भौर के ऐतिहासिक किले में गणेशजी के मन्दिर पर भरता है जिसमें भाग लेने लाखों लोग आते हैं।

महावीरजी का मेला सवाईमाधोपुर जिले में हिण्डोन के पास श्री महावीर जी का मेला चैत्र माह में लगता है जहाँ जैन धर्म के लोगों का प्रमुख तीर्थ है। इस मेले में जैन धर्म के अलावा गुर्जर, मीणा आदि जातियों के लोग भी भाग लेने आते हैं।

पुष्कर मेला—कार्तिक पूर्णमासी को पुष्कर मेला अजमेर से 11 किमी दूर पुष्कर में भरता है जहां बड़ी संख्या में देशी-विदेशी पर्यटक आते हैं। हिन्दू लोग यहाँ आकर पुष्कर झील में स्नान करते हैं और ब्रह्माजी, श्रीरंग जी तथा अन्य मन्दिरों में दर्शन करते हैं। इस अवसर पर पशु मेला होता है और श्रेष्ठ नस्ल के पशुओं को पुरस्कृत किया जाता है।

राणीसती का मेला - यह मेला झुन्झूनू में राणी सती के मन्दिर पर ही लगता है जिसमें शेखावाटी के हजारों लोग दर्शन करने आते हैं।

कपिल मुनि का मेला—यह मेला कार्तिक पूर्णिमा को बीकानेर जिले के कोलायत स्थान पर कपिल मुनि की याद में लगता है। वहां लाखों लोग राजस्थान व गुजरात से आकर कोलायत झील में स्नान करते हैं।

केशरियानाथ जी का मेला—यह मेवाड़ में धुलेव गांव पर चैत्र वदी अष्टमी को लगता है। यहां जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की काले पत्थर की मूर्ति है।

चारभुजा का मेला - मेवाड़ में चारभुजा गांव में यह मेला भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की एकादशी को लगता है।

माता कुंडालनी का मेला - चित्तौड़गढ़ जिले में रश्मी गांव में यह मेला वैसाख सुदी पूनम को लगता है।

रामदेव जी का मेला—पोकरण के पास रामदेवरा नामक गांव राम सा पीर का यह मेला जो भाद्रपद के महिने में लगता है, बहुत ही बड़ा मेला है, जिसमें भारत के अन्य राज्यों से लोग बहुतायत में 'बोलना' के लिये आते हैं राजस्थान के ग्रामीण लोग इस मेले में भाग लेने के लिये बड़ी संख्या में आते हैं। ऐसी मान्यता है कि रामदेव बाबा कोढ़ियों तथा अन्य कष्टदायक रोगों से भी मुक्ति दिलवा देते हैं।

ख्वाजा साहब का उर्स—अजमेर में स्थित ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर प्रतिवर्ष पहली रजब से नौ रजब तक विशाल मेला लगता है। यहां हजारों

की संख्या में जायरीन जियारत करने आते हैं। श्रद्धालु 'ख्वाजा पीर' के दरबार में चादर चढ़ाने एवं मन्नत मांगने आते हैं। मुसलमानों के लिए यह मेला मक्के-मदीने की हज के बराबर का महत्व रखता है। भारत में मुसलमानों का सबसे बड़ा अपार समूह अन्यत्र कहीं भी जमा नहीं होता। इस अवसर पर यहां 'उर्स' होते हैं जिसमें भारत तथा पाकिस्तान के प्रसिद्ध कलाकार 'कव्वाल' भाग लेते हैं। अन्य देशों के मुसलमान भी इस अवसर पर यहां आते हैं।

करणी माता का मेला—बीकानेर जिले में देशनोक में करणी माता के मन्दिर पर मेला एक तो चैत्र महीने में नवरात्रा के समय तथा दूसरा मेला अश्विनी महीने में भरता है। करणी माता मन्दिर देश में 'चूहों के मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध है। यहां के चूहों को पवित्र समझा जाता है तथा उन्हें 'बाबा' नाम से पुकारा जाता है।

जाम्भेश्वर मेला—जाम्भेश्वर जी की स्मृति में यह मेला बीकानेर जिले की नोखा तहसील के मुकाम गांव में वर्ष में दो बार भरता है। जाम्भेश्वरजी विशनोई सम्प्रदाय के संस्थापक थे। फाल्गुन की अमावस्या को बड़ी संख्या में लोग देश के विभिन्न भागों से यहां आते है।

शीतलामाता का मेला—चैत्र शीतला अष्टमी (कृष्णा अष्टमी) के अवसर पर जयपुर जिले की चाकसू तहसील के गांव शिलकी डूंगरी में लगता है, जहां माता जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। शीतला माता बच्चों की संरक्षक समझी जाती है।

बाणगंगा मेला—यह मेला वैसाख महीने में बैराठ कस्बे (जयपुर) से 11 किमी. दूर नदी के किनारे भरता है। ऐसा माना जाता है कि यह पवित्र नदी अर्जुन (पाण्डव) द्वारा लाई गई थी। इसलिये इस नदी को पवित्र मानते हुए बड़ी संख्या में लोग स्नान करने इस मेले के अवसर पर आते हैं।

गोगाजी का मेला—यह मेला गोगामेड़ी गांव तहसील नोहर (गंगानगर) में भाद्रपद की गोगा नवमी को लगता है। यहां पर गोगाजी का थान बना हुआ है। गोगाजी को सांपों के देवता मानते हैं। इसलिये ऐसा विश्वास है कि सांप के काटने पर गोगाजी की पूजा करने से सांप काटा व्यक्ति ठीक हो जाता है।

बेणेश्वर पूजा—यह मेला 'नेवटपरा गांव' तहसील आसपुर (डूंगरपुर) में सोम और माही नदी के डेल्टा पर स्थित शिवलिंग की पूजा हेतु लगता है। यह मेला मुख्य रूप से भील लोगों का है तथा इसमें अधिकांशतः डूंगरपुर. बांसवाड़ा जिले के लोग सम्मिलित होते हैं।

भर्तृहरी का मेला—अलवर के पास राजा भर्तृहरी के आश्रम पर भादों के महीने में यह मेला भरता है। यह स्थल धार्मिक यात्रा का उत्तम स्थान है, जहां प्रतिवर्ष हजारों श्रद्धालु एकत्रित होते हैं।

तेजाजी का मेला—पर्वतसर (नागौर) में भादों वदी दशमी से भादों सुदी एकादशी तक वीर पुरुष तेजाजी की स्मृति में यह पशुमेला भरता है। इसमें बड़ी संख्या में किसान सम्मिलित होते हैं।

पशु मेले—राज्य में धार्मिक महत्व के साथ-साथ पशु मेले भी काफी संख्या में आयोजित किये जाते हैं। पुष्कर मेला न केवल धार्मिक महत्व रखता है बल्कि पशुओं के क्रय-विक्रय की दृष्टि से भी अत्यधिक आर्थिक महत्व का है। इसके अतिरिक्त तिलवाड़ा (बाड़मेर), सांचौर (जालौर), चित्तौड़गढ़, करौली (सवाईमाधोपुर), बहरोड़ (अलवर), परवतसर, नागौर मेड़ता (नागौर) आदि स्थानों पर भी बड़े पशु मेले लगते हैं। परवतसर तथा नागौर के पशु मेले कार्तिक शुक्ल पक्ष के महीने में तथा तिलवाड़ा और सांचौर के मेले चैत्र के महीने में आयोजित होते है।

आदिम जातियों के मेले—मेले आदिम जातियों के जीवन में एक सर्वथा पृथक महत्व रखते हैं। सहरिया जाति के लोग मेलों में अपना जीवन साथी चुनते हैं। जो युवक युवतियां एक दूसरे को पसन्द करते हैं वे इन मेलों में जीवन साथियों के साथ भाग जाते है तथा बाद में ब्याह कर लेते हैं।

आदिम जाति क्षेत्रों में दो प्रकार के मेले पाये जाते हैं। एक वे जो अन्य जातियों के पर्व अथवा त्यौहार हैं जिन्हें देखने के लिये आदिवासी हजारों की संख्या में एकत्रित होते हैं तथा दूसरे वे मेले जो उनके स्वयं की मान्यताओं से संस्थापित हुए है।

आदिवासियों के मुख्य मेले

मेलों के नाम	तिथी
रथ	भादवा वदी 2
कालाजी	चैत्र वदी 8
बड़ा दीतवार	—
गोकल आठम	कृष्ण जन्माष्टमी
वेणेश्वरजी	मई पूनम
पांचम	चैत्र बदी 5
आंवली ग्यारस	फागुन सुदी 11
वार बीज	दीपावली के 1 माह बाद
कपिलधार	कार्तिक 15
सीतावाड़ी	वैशाखी 30
घूघरे	पौष माह
तेजाजी	आसोज वदी 10

राजस्थान के त्योहार एवं उत्सव

देश की सांस्कृतिक परम्परा से जुड़े सभी त्योहार एवं उत्सव समग्र राजस्थान में मनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी त्यौहार है जो राज्य की लोक संस्कृति के प्रतीक है।

इन त्यौहारों का जन्म यहां की प्राकृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है। मरु प्रदेश होने के कारण यहां वर्षा ऋतु का सदैव बड़ा महत्व रहा है। वर्षा के आते ही यहां के निवासी अनेक उत्सव और त्यौहारों का आयोजन करते हैं।

तीज—श्रावण शुक्ला तीज को छोटी तीज मनाई जाती है और बड़ी तीज भादवे महीने में। छोटी तीज ही अधिक प्रसिद्ध है और इस पर प्रायः सभी मेले लगते है। तीज का त्यौहार मुख्यतः बालिकाओं और नव विवाहितों का त्यौहार है। एक दिन पूर्व बालिकाओं का सिझारा (शृंगार) किया जाता है। "आज सिझारा तड़के तीज, छोरियां ने लेगी पीर" उक्ति भी बालिकाएं कहती है। हाथों पैरों पर मेंहदी मांडी जाती है। विवाहित बालिकाओं के ससुराल में सिझारा, वस्त्र आदि भेंट स्वरुप उनके माता पिता भेजते हैं। तीज के त्यौहार पर लड़की अपने पिता के घर जाती है।

इस त्यौहार के दिन किसी सरोवर के पास मेला भरता है। इसमें झूला डाला जाता है। सभी लोग उस पर झूलते है। गणगौर की प्रतिमा भी कहीं कहीं निकाली जाती है। तीज को कहीं कहीं हरियाली तीज भी कहते हैं।

गणगौर—राजस्थान के अपने त्यौहारों में से एक विशेष महत्व का त्यौहार है 'गणगौर' जो होली से लगभग पन्द्रह दिन बाद मनाया जाता है। यह त्यौहार पार्वती के गौने का सूचक है। प्रतिदिन शाम के समय सौभाग्यवती स्त्रियां तथा कुमारियां वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो, सिर पर कलश रखकर इस अवसर पर गीत गाती हुई तालाबों पर जाती हैं और वहां से कलश में जल भर उसे पुष्पों में सजा उसी प्रकार वापस आ जाती हैं। घरों में ईसर और गणगौर की काष्ट की मूर्तियों का जलूस निकाला जाता है जिसमें हजारों नर-नारी भाग लेते हैं। उदयपुर और जयपुर की गणगौर की सवारी दर्शनीय होती है। उदयपुर में तालाब के बीच नावों में होने वाले नृत्य व गायन के आयोजन बड़े ही सुन्दर लगते है। जयपुर के गुलाबी राजमार्ग उस दिन और भी खिल उठते हैं। गणगौर, विवाहित स्त्रियों का सबसे प्रिय त्यौहार है। इस पर्व पर बहुत से गीत गाये जाते हैं।

गणगौर पर राजस्थान की स्त्रियां घूमर नृत्य करती हैं जिसमें अनेकों स्त्रियां भाग लेती हैं। उदयपुर, बूंदी में ये घूमर बहुत ही कलापूर्ण होती हैं।

शीतला अष्टमी—शीतलाष्टमी त्यौहार चैत्र सुदी 8 को मनाया जाता है। इस दिन शीतला देवी की पूजा होती है। लोग इस दिन प्रायः सभी जगह एक दिन पूर्व बनाया हुआ ठंडा (बासी) भोजन खाते हैं। ऐसी मान्यता है कि शीतला पूजन से इस देवी का प्रकोप नहीं होता है और किसी को चेचक नहीं निकलती।

मारवाड़ में इसी दिन घुड़ले का त्यौहार भी मनाया जाता है। स्त्रियां एकत्रित हो, कुम्हार के घर जाकर छिद्र किये हुए एक घड़े में दीपक रख कर अपने घर गाती हुई लौटती हैं। यह घड़ा बाद में तालाब में बहा दिया जाता है। इस त्यौहार पर चैत्र सुदी तीज को मेला लगता है जिससे एक ऐतिहासिक घटना जुड़ी हुई है। कहते हैं मारवाड़ के पीपाड़ा नामक स्थान की कुछ महिलायें एक

बार तालाब पर गौरी पूजन के लिए गई थीं। वहां से अजमेर का सूबेदार मल्लूखाँ उन्हें भगा ले गया। जोधपुर नरेश राव सातलजी को जब यह पता लगा तो उन्होंने उसका पीछा किया और भयंकर युद्ध हुआ जिसमें मल्लूखाँ के सेनापति घुड़लेखाँ का सिर तीरों से भेद दिया गया और राजा अपने गांव की स्त्रियों को बचाकर ले आया। उस (छिद्रित सिर को लेकर स्त्रियाँ गाँव में गयीं। इसी घटना के स्मरण में यह मेला लगता है। इस त्यौहार पर बालिकाओं की मंडली जगमगाता घुड़ला (छिद्रित घड़ा प्रतीकात्मक छिद्रित सिर) सिर पर रखे प्रत्येक घरों में जाती हैं।

अक्षय-तृतीया–राजस्थान के जीवन में खेती का महत्व तो है ही, पर साथ ही राजस्थान में वर्षा की कमी है। अतएव अक्षय तृतीया के दिन बाजरा, गेहूं, चना, तिल, जौ आदि सात अन्नों की पूजा कर शीघ्र ही वर्षा होने की कामना की जाती है। कहीं-कहीं घरों के द्वार पर अनाज की बालों आदि के चित्र बनाये जाते हैं। स्त्रियाँ मंगलाचार के गीत गाती हैं और मनो-विनोद की दृष्टि से स्वाँग भी छोटे बच्चों के रचाये जाते हैं। लड़कियाँ, दूल्हा-दुल्हन का स्वांग भरती है। यह त्यौहार वैसाख मास की शुक्ला तीज को मनाया जाता है।

गणेश चतुर्थी - गणेश चतुर्थी का महत्व इस दृष्टि से अधिक है कि यह बालकों अथवा बच्चों का विशेष त्यौहार है। गणेश चतुर्थी से दो दिन पूर्व बच्चों का सिंझारा किया जाता है। ये नये वस्त्र धारण करते हैं। इस दिन बच्चों का विशेष सम्मान किया जाता है। शिष्य और गुरू एक दूसरे के तिलक करते हैं, साथ में बच्चे मनोविनोद के गीत गाते हैं। सरस्वती सम्बन्धी गीत भी गाये जाते हैं और गणेश जी सम्बन्धी भी। यह त्यौहार भादवा सुदी चौथ को मनाया जाता हैं जैनियों के लिये भी यह पवित्र दिन है। कुछ जैन सम्प्रदाय के लोग इसे पंचमी को भी मनाते है। जयपुर में गणेश मन्दिर पर बहुत बड़ा मेला भरता है।

रामनवमी–चैत्र-शुक्ल नवमी श्री रामचन्द्रजी का जन्म दिवस है। इस दिन मन्दिरों में रामायण की कथा पढ़ी जाती है। लोग रोपुं कथा सुनकर घर जाते हैं। कहीं कहीं रामधुन भी गायी जाती है। इस दिन व्यापारी वर्ग कहीं न कहीं अपने वही-खातों को भी बदलते हैं।

जन्माष्टमी– यह त्यौहार भादों की शुक्ल-पक्ष की अष्टमी के दिन भगवान कृष्ण की जन्म तिथि के रूप में मनाया जाता है ! इस दिन राज्य के प्रमुख मन्दिरों में कृष्ण लीला की झाँकियां दिखाई जाती हैं और शोभा यात्रा निकाली जाती है। भादों मास की अष्टमी को कृष्ण भक्त व्रत रखते हैं और आधी रात को कृष्ण जन्म के उपरान्त ही भोजन ग्रहण करते हैं।

दशहरा—राजपूत परम्परा का प्रदेश होने के कारण दशहरे का यहां महत्व है। इस दिन राजस्थान की भूतपूर्व रियासतों में लवाजमों के साथ सवारियां निकला करती थी। आज भी कई रियासतों में राजा एवं जन साधारण शमी: (खेजड़े) का पूजन किया करते हैं। जोधपुर में इस दिन रामचन्द्रजी की रथ की सवारी निकाली जाती है तथा कागज व बारूद से बनाया रावण जलाया जाता है। दशहरे पर कोटा में बड़ा मेला लगता है जिसमें भारत के अन्य भागों से व्यापारी लोग बड़े-बड़े बाजार लगाते हैं।

दीपावली—दीपावली पर मकानों की सफेदी एवं सफाई की जाती है। काम में आने वाले औजार कलम-दवात आदि की सफाई होती है। काली रोशनाई तैयार की जाती है। वही खाते नये डाले जाते है और पिछला हिसाब चुकाये जाने का तकाजा किया जाता है।

दीपावली से दो दिन पूर्व एक दीपक जलाया जाता है, इसे जम दिया (जम दीप) कहते हैं। उसमें एक कोड़ी भी डालते हैं। दूसरे दिन छोटी दीवाली मनाई जाती है। इसमें 11 दीपक जलाये जाते हैं। कार्तिक कृष्णा अमावस्या का अन्धकार दूर करने के लिए बड़ी दीवाली मनाई जाती है। दीपावली पूजन रात्रि को लगभग 8-9 बजे होता है। सभी बारी बारी से लक्ष्मीजी की प्रतिमा अथवा चित्र को नमस्कार करते हैं। लक्ष्मीजी की छपी हुई या चित्रित तस्वीरें बिकती हैं। रुपये, मोहर आदि उनके सामने रखे जाते है। एक दीपक रात भर लक्ष्मीजी के सामने जलता रहता है। घरों पर दीपक जला कर रख दिये जाते है। पूजन के बाद बाजार में रामराम (नमस्कार) अपने मित्रों एवं सम्बन्धियों से करते हैं।

गोवर्धन पूजन अथवा अन्नकूट—दीपावली का दूसरा दिन अर्थात कार्तिक शुक्ला प्रतिप्रदा अन्नकूट अथवा गोवर्धन पूजन का दिन होता है। मन्दिर में अन्नकूट (भोज) तैयार होता है। गोवर्धन का मतलब ही है गोवंश की वृद्धि। गोवर्धन पूजन के दिन कहीं कहीं बछड़े का पूजन कर स्त्रियां उससे हल जुतवाने का शकुन करती है और गीत गाती है, बैलों के सींग रंगें जाते हैं और रंगों के छापे उनके बदन पर दिये जाते हैं, भरतपुर, अलवर, उदयपुर की ओर यह प्रथा विशेष है।

दीपावली की रातों को हीड देने जाने की प्रथा राजस्थान में कई स्थानों पर प्रचलित है। वे लोग गो पूजन करते है। गायों के गले में घंटियां बांधते हैं और हीड का एक विशेष गीत गाते हैं।

होली—होली के दिन होलिका दहन तथा दूसरे दिन फाग खेलने की प्रथा है। स्थान-स्थान पर प्रसन्न मुद्रा में स्त्री-पुरुषों के समूह राजस्थान की विभिन्न बोलियों में फाग के गीत एक विशेष वाद्य-यन्त्र के साथ जिसे 'चंग' कहते है गाते हुए नजर आते है। गुलाल तथा रंगीन पानी से तर-बतर स्त्री-पुरुष-बालक सब में इस त्योहार पर आनन्द की लहर दौड़ जाती है।

इस अवसर पर 'डंडियों का नाच होता है। इन नृत्यों में मनुष्य तरह तरह के वेश बनाकर श्रृंगार करके समूहों में हाथों में छोटी-छोटी लकड़ियां अथवा बेंतें लेकर नृत्य करते हैं। नृत्य करने में वे ढोल व ढोलक की ताल पर कदम उठाते हैं और एक गोलाकार चक्कर में झूमते हुए लय तरंगित होकर नाचते हैं। नृत्य करने वाले मनुष्यों के पैरों में घुंघरू भी होते हैं। राजस्थान की ग्रामीण जनता तो होली के पर्व पर इतनी निशंक होकर नाचती है कि उस समय अपनी सुध-बुध का भी ध्यान नहीं रहता। कई गांवों में औरतें भी ऐसे नृत्यों में भाग लेती हैं और तालियां बजा-बजा कर ताल देती हुई गाती हैं। व्रज के निकट होने के कारण भरतपुर और अलवर में होली का त्यौहार और भी अधिक विशेषता रखता है।

रक्षाबन्धन - रक्षाबन्धन के दिन बहिनें अपने भाइयों के हाथों पर राखी बांधती है। राखी बांधने का अर्थ यह है कि भाई अपनी बहन की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है। यह पर्व मनुष्य को धर्म एवं जाति के बन्धन से ऊपर उठाकर अपने कर्त्तव्य पालन करने की प्रेरणा देता है। राजस्थान की रानी कर्णवती ने अपने राज्य पर आक्रमण होते पर हूमायूं को राखी भेजकर रक्षा करने का अनुरोध किया था और हूमायूं स्वयं विपत्ती ग्रस्त होते हुए भी उसकी रक्षा के लिए दौड़ पड़ा था। इस दिन गांव में ब्राह्मण लोग अपने यजमानों के राखियां बांधते हैं और इस प्रकार उन्हें अपने कर्त्तव्य बोध का ध्यान दिलाते हैं।

तुलसी पूजन—कन्याएं एक महीने तक इसकी पूजा करती हे। तुलसी पूजन मन्दिर में शाम के समय होती होता है। बालिकाएं 15 दिन घृत का दीपक जलाकर अपने घर से ले जाती है और 15 दिन तेल का। यह कार्तिक मास में सम्पन्न होता है। तुलसी श्री कृष्ण भगवान की पत्नी मानी जाती है।

वन सोमवार—मरु-भूमि में वर्षा ऋतु में श्रावण तथा भादों के महीने में त्यौहारों का अधिक महत्व होना स्वाभाविक ही है। इन महीनों में उद्यानों में मेले भरने के आयोजन राजस्थान के सब भागों में प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। श्रावण मास के सोमवारों पर मेले विशेषत: होते हैं और इन्हें वन सोमवार या सुखिया सोमवार के नाम से पुकारा जाता है। परदेश में रहने वाले लोग भी इन दिनों अपने घरों पर लौट आते हैं।

अन्य त्यौहार—इन त्यौहारों के अतिरिक्त श्रावण में 'हरियाली अमावस्या' मनाई जाती है। भाद्र में 'गोगानवमी' का त्यौहार मनाया जाता है। इस त्यौहार के पीछे भी एक घटना विख्यात है।

इसी महीने में 'बछबारस' का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियां अपने घरों में गायों को बुलाकर पूजती हैं और साथ ही इस दिन केवल बाजरी; मोठ व चनों का भोजन बनाकर खाया जाता है। श्रावण में कुंवारी कन्याओं के लिए 'ऊब छट' का त्यौहार आता है; कुवारियां इस दिन खड़ी रहती हैं और सम्पूर्ण दिन कुछ नहीं खातीं। रात्रि को चन्द्रमा के दर्शन करने के

बाद भोजन करती हैं। इस प्रकार का व्रत 'करवाचौथ' के दिन विवाहित स्त्रियां भी करती हैं। ऐसी मान्यता है कि इस व्रत के करने से उनके पति चिरायु होते हैं।

जैनियों के त्यौहार—यहां के जैन धर्मावलम्बियों का महत्वपूर्ण पर्व 'पर्युषण' है जो चौमासे में एक सप्ताह तक मनाया जाता है। जैनियों के अन्य त्यौहारों में महावीर जयन्ती तथा गौतम जयन्ती प्रमुख हैं। डूंगरपुर में महावीर जी की सवारी 'रथ' का शानदार जुलूस निकाला जाता है।

मुसलमानों के त्यौहार—मुस्लिम भी अपने त्यौहार उत्साह से मनाते है। ईदुलजुहा और ईदुल फित्र इनके प्रमुख त्यौहार है जिन्हें वे बड़े जोश और उत्साह से मनाते है और ईदगाह या मस्जिद में जाकर नमाज अदा करते हैं। नमाज के बाद सभी मित्रों व रिश्तेदारों को ईद मुबारक देते हैं। मीठी ईद पर सिवईयां, खुरमानी, खीर बनाई जाती है वहीं बकरा ईद पर बकरे का गोश्त पकाया जाता है। मोहर्रम भी मुसलमान बड़े जोश से मनाते हैं। मोहर्रम आने के बहुत पहले से ही ताजिया बनाने का काम शुरू हो जाता है। मोहर्रम के दिन ताजियों का जुलूस निकाल कर उन्हें करबला में ले जाकर दफना दिया जाता है।

ईसाई लोग भी बड़ा दिन क्रिसमस डे का त्यौहार पूरे उत्साह के साथ मनाते हैं। इस दिन वे गिरजाघर में जाकर प्रार्थना करते हैं और नये वस्त्र धारण करते हैं एवं खूब नाचते-गाते हैं। गुड फ्राइडे व न्यू ईयर्स डे भी धूमधाम से मनाया जाता है।

सिक्ख धर्म के लोग गुरु नानक जयन्ती और गुरु गोविन्दसिंह की जयन्ती उल्लास से मनाते है। अप्रेल में बैशाखी का त्यौहार भी बड़े उत्साह से मनाते हैं। गुरु नानक व गुरु गोविन्द जयन्ती पर वे शोभा यात्रा निकालते हैं, गुरुद्वारे में जाकर ग्रन्थ साहिब का पाठ करते है। खुशी के अवसरों पर वे भंगड़ा नृत्य भी करते हैं।

धार्मिक त्यौहारों के अलावा देश में दो राष्ट्रीय त्यौहार 15 अगस्त को स्वाधीनता दिवस और 26 जनवरी को गणतन्त्र दिवस के रूप में भी मनाये जाते हैं। ये दोनों राष्ट्रीय त्यौहार देश प्रेम की भावना जगाते हैं।

राजस्थान में मनाये जाने वाले मुख्य त्यौहार

त्यौहार का नाम	तिथि/तारीख
संक्रान्ति	14 जनवरी
महाशिवरात्रि	फाल्गुन कृष्ण पक्ष 13
इदुल फितर	रमजान के बाद शव्वाल की पहली तारीख
होली	फाल्गुण शुक्ल 15
शीतलाष्टमी	चैत्र कृष्ण 8
रामनवमी	चैत्र शुक्ल 9
महावीर जयन्ती	चैत्र शुक्ल 13
महावीर जयन्ती	रमजान के दो माह दस दिन बाद जिल हिज की दस ता.
मोहर्रम	मोहर्रम माह की 10 तारीख
बारावफात	मोहर्रम के दो माह बाद
रक्षा बन्धन	श्रावण शुक्ल 15
तीज का मेला	श्रावण शुक्ल 3
गणगौर	फाल्गुण शुक्ल 15 से चैत्र शुक्ल पक्ष 3 तक
जन्माष्टमी	भाद्रपद कृष्ण पक्ष 8
गणेश चतुर्थी	भाद्रपद शुक्ल 4
अनन्त चतुर्दशी	भाद्रपद शुक्ल 14
स्थापना नवरात्रा	अश्वनि शुक्ल 1
दशहरा	आसोज सुदी 10
दीपावली	कार्तिक कृष्ण अमावस्या
गुरु नानक जयन्ति	कार्तिक शुक्ल 14
झूलना एकादशी	भाद्रपद शुक्ल 11
नाग पंचमी	भाद्रपद कृष्ण 6

10 राजस्थान की कला, साहित्य एवं संस्कृति में विभिन्न जातियों एवं जनजातियों का योगदान

Contribution of vorious costas & Tribas in the promotion of Art, Literature & Cutture

राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है जहाँ देश की मुख्य जातियाँ ही नहीं मिलती बल्कि विभिन्न जनजातियां, उप-जातियां तथा विदेशों से आई जातियों के कई वंश भी यहाँ पाये जाते है। इस प्रकार राजस्थान इस दृष्टि से विविधता का प्रदेश है। क्योंकि प्रत्येक जाति; जनजाति एवं उपजाति अपने खान-पान, रहन-सहन, रीति रिवाज़ों से सम्बन्धित परम्परागत एवं सांस्कृतिक मूल्य रखती है, इसलिये उनका योगदान उनकी कला, संस्कृति एवं साहित्य में अवश्य होता है जिसकी छाप उस क्षेत्र के सांस्कृतिक जीवन में स्पष्ट झलकती है।

राजस्थान में जो जातियां व जनजातियां मुख्य रूप से मिलती है, उनके नाम इस प्रकार है—

जातियां—ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य, गुजर, माली, कलवी, सिखीजाट, धाकड़, जाटव आदि हिन्दू जातियाँ है। शेख, पठान, मेव, सैयद, मुगल, स्वानजादा, कायम-खानी आदि मुस्लिम जातियां हैं।

जनजातियां अथवा आदिजातियां—मीणा, भील, सहरिया, मेर, डामोर, गरासिया, कंजर, जोगी, बलाई आदि है।

राजस्थान में अनेक जातियाँ उपेक्षित है। इनमें आदि-धर्मी, वदी, बागरी, बाजगर, बांसफोड़, बनजारा, बलाई, चांडाल, चामटा, बावरी, साँसी, नट, सुथार, लुहार, डोम, कालबेलिया, नाई, कुम्हार, तेली, मेहतर, मेघवाल, रेगर, रावत, आदि है।

इन जातियों व जनजातियों ने अपनी जीवन पद्धति से राजस्थान के जीवन को प्रभावित किया है। राजस्थान के चारण भाटों ने जहाँ वीररस से डिंगल काव्य रचना कर अपने आश्रय दाताओं का शौर्य-वर्धन तथा मनोरंजन किया वहीं गाड़ोलिया लुहार आज भी राणा प्रताप की प्रतिज्ञा का निर्वाह कर रहे है। राजस्थान की जनजातियों के लोकगीत व लोक नृत्य अभी भी अपनी मनोहारी छटा का दर्शन कराने की क्षमता रखते है। कलाकारों, चित्रकारों व संगीतज्ञों ने मूर्तिकला, चित्रकला व संगीत कला को आज तक जीवित रखा है।

राजस्थान की विविध जातियों के योगदान कला, साहित्य एवं संस्कृति में निम्न प्रकार रहे हैं—

राजपूतों का योगदान

राजस्थान की राजपूत जाति पुराने राजपूताना राज्य में भिन्न-भिन्न रियासतों पर अलग-अलग राज्य करती थी जिन्होंने अपनी-अपनी रियासतों में कला, साहित्य और संस्कृति के विकास में काफी योगदान दिया है।

कला के क्षेत्र में योगदान—राजपूत शासकों ने न केवल कलाकारों को संरक्षण प्रदान किया बल्कि वे स्वयं निर्माता भी थे। राजस्थान के अनेक दुर्ग, मन्दिर, भवन उनके कला प्रेम का परिचय देते है। कछवाहा राजाओं के जयपुर के महल उनकी अनुपम चित्रकला की झांकी प्रस्तुत करते हैं। राणा कुम्भा ने चित्तौड़ में विजय स्तम्भ का निर्माण करवाया। जयपुर नगर का पूरा कलात्मक सौन्दर्य राजा सवाई जयसिंह को कभी न भूलने वाली देन है। वास्तव में कला व राजपूत एक दूसरे के पूरक रहे हैं। राजस्थान में चित्रकला की विविध शैलियों को जन्म राजपूत शासकों ने ही दिया है। इसी प्रकार संगीत कला का विकास भी उनके संरक्षण में हुआ। स्थापत्य व वास्तु कला को ऊंचाइयों तक पहुँचाने में राज-पूतों ने विशिष्ट योगदान दिया है।

साहित्य के क्षेत्र में योगदान—राजपूत राजाओं ने साहित्यिक प्रतिभाओं को संरक्षण प्रदान ही नहीं किया अपितु कुछ शासक तो स्वयं उच्च कोटि के साहित्यकार भी थे। राजा जयसिंह ने प्रसिद्ध कवि विहारी को एक-एक दोहे के लिये एक-एक अशर्फी दी थी। विहारी ने 'विहारी

सतसई' का सृजन किया। मिर्जा राजा जयसिंह ने रत्नावलि का ग्रन्थ तैयार करवाया। महाराणा कुम्भा के संरक्षण में भी साहित्यिक रचनाऐं हुईं।

संस्कृति के क्षेत्र में योगदान – राजस्थान में विभिन्नताओं के बावजूद भी राजस्थानी संस्कृति में एक मौलिक एकता विद्यमान है। राजपूत शक्ति के उपासक है। राजपूतों के खान-पान में मांस-मन्दिरा का प्रयोग होता है। राजपूतों में जात कर्म, चूड़ा कर्म, उपनयन, विवाह, मृत-संस्कार आदि संस्कार विशेष महत्व रखते हैं। राजपूतों में विवाह के पश्चात स्त्री की जाति में कोई परिवर्तन नहीं आता है। सती प्रथा का प्रचलन राजपूत जाति में सर्वाधिक था। अभी भी गत वर्षों में कुछ स्त्रियाँ सती हो गई जबकि इस पर नियन्त्रण स्थापित है। अतः राजपूतों का योगदान यहाँ की संस्कृति को जीवित रखने एवं विकसित करने में महत्वपूर्ण रहा है।

ब्राह्मणों का योगदान

कला के क्षेत्र में योगदान—मूर्तिकला के विकास में जयपुर के गौड़ ब्राह्मणों का अत्यधिक योगदान है। इनकी मूर्तियों में फाईन आर्ट तथा मार्डन आर्ट दोनों का समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है।

साहित्य क्षेत्र में योगदान – ब्राह्मण जाति ने राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया है जो ब्राह्मणी साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है। इनका अधिकांश साहित्य संस्कृत भाषा में है। धार्मिक, साहित्यिक व ऐतिहासिक तीन प्रकार की कृतियां है। पृथ्वीराज विजय, सुर्जन चरित्र, हम्मीर महाकाव्य, प्रबन्ध चिन्तामणि, प्रबन्ध कोष, राजवल्लभ, राजविनोद, अमरसार, राज रत्नाकर, वृहत् कथा कोष आदि संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। जयानक, चन्द्रशेखर, चन्द्रसूरि; मेरुतंग आदि प्रसिद्ध ग्रन्थकार हैं। ब्राह्मणों ने ज्योतिष सम्बन्धी साहित्य का सृजन किया।

संस्कृति के क्षेत्र में योगदान—ब्राह्मणों ने भी राज्य के संस्कृति विकास में अपनी भूमिका का निर्वाह किया है। ब्राह्मण राम-कृष्ण में आस्था रखते है। पूजा पाठ के अपने तरीके को अपनाए हुए है। खान-पान में मांस मन्दिरा का प्रयोग इनमें धर्म-विरुद्ध माना जाता है। सामाजिक रीति रिवाज तथा परम्पराओं का निर्वाह यह अपने तरीकों से करते है।

जैन सम्प्रदाय का योगदान

कला के क्षेत्र में योगदान—राजस्थान की वास्तु कला व स्थापत्य कला में जैन सम्प्रदाय का भी योगदान महत्वपूर्ण है। कुम्भलगढ़ के विशाल किले को जैन राजा सम्प्रति ने तीसरी सदी में बनवाया था। दिलवाड़ा के आदिनाथ मन्दिर व नेमिनाथ के जैन मन्दिर उच्च कोटि की कला का प्रदर्शन करते है।

साहित्य के क्षेत्र में योगदान—राजस्थानी साहित्य का बहुत बड़ा भाग जैनियों द्वारा लिखा गया है। राजस्थानी का कथा साहित्य एवं गद्य इनकी बहुत बड़ी देन है। यह अधिकांशतः धर्म प्रधान साहित्य है। नीति, श्रृंगार तथा सामाजिक जीवन की व्याख्या उनके साहित्य के प्रमुख अंग है। धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त गीतों, दोहों तथा कथा साहित्य से लोक साहित्य का भण्डार भरा है जो विषय की व्यापकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

अजसेन सूरी का 'भरतेश्वर बाहुबली घोर' राजस्थानी भाषा का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त राजस्थानी में अनेक जैन ग्रन्थ उपलब्ध है, जैसे – विनयभद्र की 'नेमीनाथ चौपाई बारहमासी', जिन पद्म की 'शालीभद्र फाग', सोम सुन्दर की 'नेमीनाथ नवरस फाग', कुशल लाभ की 'ढोला-मारू' चौपाई आदि है।

चारण भाटों का योगदान

साहित्य के क्षेत्र में योगदान—राजस्थान में चारण जाति ने भी साहित्य के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया है। इन्होंने अपना अधिकतर साहित्य डिंगल काव्य शैली में लिखा है। 'पृथ्वीराज रासो' के रचियता चन्दवर दाई का नाम राजस्थान के इतिहास में प्रसिद्ध है। शिवदास पृथ्वीराज राठौड़, सूर्यमल आदि चारण कवियों ने साहित्य के विकास में काफी योगदान दिया है। चारण साहित्य की परम्परा मौखिक भी रही है। चारण साहित्यकारों में नरपति नाल्ह; पद्मनाथ, ईसरदास बारहठ का नाम उल्लेखनीय है। वीरभान, कृपादान, मनसाराम सेवग, कविया रामनाथ, माधोदास आदि के दूहे इस साहित्य की उत्कृष्ट देन है। चारणों ने अपने आश्रय दाताओं की

प्रशंसा में रचनाएँ की है।

संस्कृति के क्षेत्र में योगदान—चारणों का योगदान लोक कथा, लोक गीत व लोक संगीत की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

भील जाति का योगदान

कला के क्षेत्र में योगदान—भीलों के नृत्य एवं लोक संगीत प्रसिद्ध है। नृत्य कला के विकास में भील जनजाति का विशेष योगदान रहा है। भीलों द्वारा विभिन्न प्रकार के नृत्य अवसर विशेष के अनुरूप किये जाते हैं जैसे युद्ध नृत्य, विवाह नृत्य, भागोरिया नृत्य, होली नृत्य, लाढ़ी नृत्य, दीवाली नृत्य, ढ़ोल नृत्य, शिकार नृत्य आदि।

साहित्य के क्षेत्र में योगदान—भीलों की लोक कथाएँ साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रसिद्ध लोक कथाओं में लुढ़का चौथ, भील ने बदला लिया, दयालु मछली, साहसी राजकुमार, ग्वाला और राजा, बारेला की पुकार, भील की प्रतिज्ञा, आधा मनुष्य, पांच लहू, भगवान शंकर की सवारी, राजा का न्याय आदि हैं।

संस्कृति के क्षेत्र में योगदान—भीलों का शकुन विचार भी प्रसिद्ध है। शकुन-अपशकुन की उनकी मान्यताएँ हैं। भीलों के देव भी अनेक है। बड़का देव, दूल्हा देव, भैंसासुर, मसान देव, बाबा देव, कालिका आदि भीलों के मुख्य देवता हैं। भील यात्रा के समय बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय देखना शुभ मानते है। इसी प्रकार घर में बीमार होने पर कौआ का बोलना अशुभ माना जाता है। इसी प्रकार बांयी ओर देवी चिरौया या कौवे को बोलता देखकर उसे शुभ मानते हैं या यात्रा की सफलता की आशा करते हैं। भीलों में प्रचलित प्रथा के अनुसार लड़के के पक्ष की ओर से लड़की पक्ष को दी जाने वाली राशि 'दापे' कहलाती है। भील आदिवासी महिला के विधवा हो जाने पर वह स्त्री अपने पिता के घर चली जाती है। उसका पिता 'दापे' की राशि लेकर उसका पुनर्विवाह करवा देता है, उसे 'नतारा' कहते हैं।

सांसी जाति का संस्कृति के क्षेत्र में योगदान

सांसी जाति की जीवन पद्धति अपना महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ती है। ये लोग विवाह के बाहर यौन सम्बन्ध स्थापित करना बहुत बुरा मानते हैं। इसके विरुद्ध आचरण करने वालों को कठोर दण्ड की व्यवस्था हैं। ये लोग भ्रमणशील जीवन व्यातीत करते है और उसे आनन्दमय मानते हैं। नीम, पीपल तथा बरगद के पेड़ों की पूजा करते हैं।

अन्य जातियों एवं जनजातियों का योगदान

कला के क्षेत्र में योगदान—राजस्थान कला की दृष्टि से बहुत ही सम्पन्न है। यहाँ पर कला के विभिन्न रूप जैसे चित्रकला, संगीत, नृत्य, मूर्तिकला, हस्त कलाओं, का खूब विकास हुआ है। मुसलमान शासकों द्वारा निर्मित सुन्दर महल यहाँ की शिल्पकला एवं स्थापत्यकला के अनुपम उदाहरण है। शिल्प एवं स्थापत्यकला के विकास में वैश्यों का योगदान भी अविस्मरणीय है। सेठ तेजपाल तथा वास्तुपाल द्वारा बनवाया गया भगवान नेमिनाथ का मन्दिर महाराणा कुम्भा के विश्वास पात्र सेठ धरणाक शाह द्वारा बनवाया गया रणकपुर का आदिनाथ का चौमुखा मन्दिर इसके प्रमाण है।

नृत्यकला के क्षेत्र में आदिवासी जनजातियों का विशेष योगदान रहा है। भोंपा लोग जंजीर को अपने ऊपर पटक कर नृत्य करने की कला में पारगंत हैं। नाथपंथी 'कालवेलिया' लोग पुंगी नृत्य करते हैं। 'पाबूजी' के अनुयायी थाली में दीपक सजाकर नृत्य करते हैं। इसी प्रकार नट, भांड, सवाई आदि अपनी-अपनी शैली में नृत्य करते हैं।

संस्कृति के क्षेत्र में योगदान—राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में यहाँ की सभी जातियों, सम्प्रदायों ने अपनी भूमिका निभाई है। यहाँ विभिन्न धर्मों के अनुयायी है। इसलिये अलग-अलग जातियां व जनजातियां अपने अपने देवी-देवताओं को श्रद्धा के साथ पूजती हैं शिवजी की पूजा लगभग सभी सम्प्रदाय के लोग करते हैं। वैश्य राम-कृष्ण में आस्था रखते है। अजमेर की दरगाह में हिन्दू मुसलमान सभी विश्वास प्रकट करते है। मीणा जाति शक्ति की उपासक है।

मुसलमान जाति में मांस मदिरा का प्रयोग होता हैं। वैश्यों में इसे धर्म-विरूद्ध माना जाता है। इस प्रकार खान-पान की विशिष्ट संस्कृति अलग-अलग जातियों में दृष्टिगोचर होती है।

सामाजिक रीति रिवाज तथा परम्पराओं का पालन यहाँ की विभिन्न जातियां व जनजातियां अपने-अपने

तरीके से करती हैं। मृत व्यक्ति के सन्दर्भ में भी राजस्थान में अलग-अलग व्यवहार देखने को मिलता हैं। कुछ इसे दफनाने में विश्वास करती है तो कुछ उसे जलाती है। गड़िया लौहार ऐसी जनजाति है जो मकान बनाकर नहीं रहती।

आदिवासी संस्कृति में जब मृत्यु के अवसर पर आदिवासियों द्वारा भोज दिया जाता है तो उसे लोकायी कहा जाता है। लीला मेरिया विवाह से सम्बन्धित संस्कार है। इसमें दूल्हे के घर पर दूल्हे को बालर बांध कर खाट पर बैठाकर नृत्य करते है जिसे लीला मेरिया कहते है। आदिवासियों में मेलनी एक अच्छा रिवाज है। गांव के किसी एक जाति के व्यक्ति का विवाह होने पर उसके गोत्र के सभी लोग अपने घर से एकसे अर्थात 1॥ किलोग्राम मक्का विवाह करने वाले घर को मेलनी के रूप में भेंट करते हैं। किसी दुर्घटना हो जाने अथवा सावधान करने के लिये ढ़ोल को बिना रूके निरन्तर पीटे जाने को 'गारिये का ढ़ोल' कहते है। इस प्रकार के कई रीति रिवाज हैं जो संस्कृति को इनकी देन के रूप में माना जा सकता है।

सिलावटों (मूर्ति बनाने वाली जाति) में मकराना के संगमरमर की मूर्ति कला आज एक ऐतिहासिक धरोहर है। चमार जाति द्वारा बनायी जाने वाली चमड़े की जूतियां, रंगरेजों द्वारा बनाये गये राजस्थानी सूती वस्त्र, लाडनूं की साड़ियां आज भी पर्यटकों की पसन्द बनी हुई हैं। इसी प्रकार से अन्य सभी जातियों व जनजातियों की अपनी-अपनी सांस्कृतिक एवं कलात्मक विरासत है।

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थान की संस्कृति के विकास में ब्राह्मण, राजपूत, जैन चारण, भील, सांसी, मुसलमान, वैश्य तथा अन्य जातियों व जनजातियों आदि का बहुत योगदान है। राजस्थानी संस्कृति के विकास हेतु अभी हाल ही में 'भारत-महोत्सव' तथा 'अपना-उत्सव' कार्यक्रमों का आयोजन केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों ने करवाया है जिसके फलस्वरूप राजस्थानी नृत्य, संगीत, वेश-भूषा, नाट्यकला आदि पर्यटकों को आकर्षित करने में काफी सफल हुए हैं तथा राजस्थान पर्यटकों के आकर्षण का मूल केन्द्र बन गया है।

राजस्थान में सोवियत महोत्सव—विभिन्न देशों की संस्कृतियों पर अगर दृष्टिपात किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि दो देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया कोई नई परम्परा नहीं है बल्कि यह सदैव से ही अस्तित्व में रही है। आज भी विश्व के लगभग सभी देश कलाकारों, शिक्षाविदों एवं साहित्यकारों के इस परस्पर आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक मैत्री आन्दोलन को भारत ने अपने संस्कृति कर्त्ताओं के माध्यम से एक नया मोड़ देने की कोशिश की है। भारत ने बड़े पैमाने पर इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमरीका में भारत महोत्सवों का आयोजन कर अपनी संस्कृति का प्रचार एक व्यावसायिक प्रतियोगी की तरह किया लेकिन ये प्रयास एकतरफा ही सिद्ध हुए।

वर्ष 1988 में रूस में भारत महोत्सव तथा भारत में सोवियत महोत्सव के आयोजन ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान के इतिहास में एक स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ कर विश्व के सम्मुख एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। विश्व के इतने बड़े देशों के बीच प्रथम बार इस प्रकार का सांस्कृतिक आदान प्रदान हुआ है। सोवियत संघ और राजस्थान के पारस्परिक सांस्कृतिक सम्बन्ध हजारों सालों पुराने हैं क्योंकि रूस के सुदूर उत्तर से साइबेरिया के दुर्लभ सारस प्रतिवर्ष उड़कर राजस्थान में भरतपुर स्थित घना पक्षी विहार में आते रहे हैं। यह प्राकृतिक नैसर्गिक सम्बन्ध और भी इन सांस्कृतिक महोत्सवों के आयोजन से प्रगाढ़ हो गये हैं।

सोवियत महोत्सव का उद्घाटन भारत के प्रधानमंत्री राजीव गांधी एवं सोवियत प्रधानमन्त्री निकोलाई रीजकोव के द्वारा किया गया। इस अवसर पर सोवियत कलाकारों व लोकनर्तकों का भव्य जुलूस लगभग पचास वाहनों पर राजपथ होता हुआ नेहरू स्टेडियम पहुँचा जहां उद्घाटन समारोह के उपलक्ष्य में लगभग पांच सौ लोक कलाकारों ने लोकनृत्य, बैले, कलाबाजी तथा आतिश बाजी का प्रदर्शन किया।

भारत को चार हिस्सों में विभक्त करते हुये सोवियत महोत्सव को मनाने के लिये कार्यक्रम निर्धारित किये

गये। प्रथम चरण का उद्घाटन बम्बई में 5 दिसम्बर, 1987, बंगलौर में 19 दिसम्बर, 1987 तथा कलकत्ता में 2 जनवरी, 1988 को किया गया। वर्ष भर में चार चरणों में मनाया जाने वाला यह विशाल महोत्सव समारोह देश के 80 से अधिक शहरों में आयोजित किया गया तथा सोवियत संघ के तीन हजार से अधिक कलाकारों ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। सोवियत महोत्सव के प्रथम चरण में 18 दल भारत में आये। इनमें 150 लोक नर्तकों का मोइसीव नृत्य दल, जाज मण्डली अर्सेनल, रूस का शाही आर्केस्ट्रा, विलिनयस गुड़ियां थियेटर, बोलशाई बैले थियेटर, लेले, 70 कलाकारों का बर्फ बैले दल, लोक गायकों व नर्तकों के दल इसमें सम्मिलित हैं। महोत्सव के समय देश के विभिन्न शहरों में प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया जिनमें सोवियत संघ की श्रेष्ठ कलाकृतियों का प्रदर्शन किया गया। इन कलाकृतियों में कुछ तो ऐसी है जो प्रथम बार प्रदर्शनी हेतु रूस से बाहर लायी गई हैं जैसे जार की चांदी की घड़ी, 17वीं सदी कीं घरेलू वस्तुएँ, बड़े-बड़े मणिकों, नीलमों व हीरों से जड़ी कलछुला त्रेत्याकोव व गैलरी की मूर्तियां। इसी प्रकार महोत्सव के दौरान विभिन्न विषयों तथा सेमीनारों के अतिरिक्त एक फिल्म समारोह का भी आयोजन किया गया जिसमें 80 फीचर फिल्में तथा 50 वृत चित्र दिखाये गये। इस समारोह का आयोजन दिल्ली के अतिरिक्त बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, पटना, जयपुर, शिमला, भुवनेश्वर, लखनऊ, हैदराबाद व विशाखापट्टनम आदि में भी किया गया।

राजस्थान में सोवियत महोत्सव का आयोजन 24 अगस्त से 30 अगस्त के बीच मनाया गया। इस अवधि में जयपुर, पिलानी, बीकानेर, कोटा, अजमेर, जोधपुर, उदयपुर, माऊण्ट आबू तथा चित्तौड़ में रूसी कलाकारों के विभिन्न दलों ने अपनी अपनी कला का प्रदर्शन किया। इसमें 25 सदस्यीय सभी लोक संगीतज्ञों का दल 15 सदस्यीय पोप संगीत दल, 18 सदस्यीय लोकनर्तकों का दल सम्मिलित था। साथ ही सोवियत महोत्सव के तत्वाधान में ही युवा महोत्सव के अन्तर्गत 64 सदस्यीय रूसी युवाओं का शिष्ट मण्डल भी राजस्थान में आया जिसने जयपुर, अजमेर, जोधपुर, रनकपुर, उदयपुर व चित्तौड़गढ़ आदि का दृष्यावलोकन किया तथा इन स्थानों के युवा केन्द्रों के नवयुवकों के साथ मिलकर अपने सांस्कृतिक अनुभवों को बांटा तथा संयुक्त सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये।

राजस्थान में द्वितीय चरण की अवधि में सेमीनार, प्रदर्शनियों तथा विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन किये गये तथा तृतीय चरण में फिल्मोत्सव के आयोजन के अन्तर्गत फीचर फिल्म तथा डोक्यूमेन्ट्रिया प्रदर्शित की गयी।

इस प्रकार के सांस्कृतिक आयोजनों से जहाँ एक ओर देशों के बीच प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित होते है वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भावना भी प्रस्फुटित होती है। अतः इस प्रकार के आयोजन फलदायक होते हैं। अन्त में यह कहा जा सकता है कि इन सभी ने राजस्थान की कला, साहित्य व संस्कृति को विशिष्टतापूर्ण बनाकर अपना अपना योगदान दिया है।

11 राजस्थान में समाज सुधार एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण

(Social Reforms and Cultural Renaisance in ast han).

मध्ययुग में भारत में जो पुनर्जागरण की लहर सामाजिक सुधार तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में उठी, उसका प्रभाव राजस्थान में भी दृष्टिगोचर होता है क्योंकि राजस्थान में उस समय धर्म परिवर्तन तथा सामाजिक बुराईयों से सम्बन्धित कई ऐसी प्रथाएँ प्रचलित थी जिनसे पीड़ित व्यक्तियों को मुक्त करवाना आवश्यक हो गया था। पूरे देश में इस हेतु आन्दोलन आरम्भ हुए जिनका उद्देश्य धर्म-परिवर्तन को रोकना तथा ब्राह्मणों के बढ़ते तानाशाही रूख पर अंकुश लगाना था। इस आंदोलन के प्रवर्तक राजस्थान में दादू दयाल, पंजाब में नानक, उत्तरप्रदेश में कबीर तथा रामानन्द, महाराष्ट्र में नामदेव, रामदास तथा तुकाराम, दक्षिण में रामानुज तथा बंगाल में जयदेव तथा चैतन्य आदि प्रमुख थे। ये सब ईश्वर की एकता में आस्था रखते थे परन्तु मूर्तिपूजा के विरोधी थे। जाति प्रथा को गलत समझते हुए उसका विरोध सभी ने किया।

तत्पश्चात 19 वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द जैसे समाज सुधारक इस दिशा में आगे आये और उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के विरुद्ध कई कठोर प्रहार करते हुये आन्दोलन किये तथा संस्थाओं की स्थापना की। राजाराम मोहन राय ने 1828 ई. में ब्रह्मसमाज की स्थापना की, 1875 ई. में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की तथा 1897 ई. में स्वामी विवेकानन्द द्वारा रामकृष्ण मिशन की स्थापना की गई। इस प्रकार 19 वीं शताब्दी में धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में सुधार लाने के लिये इन लोगों के द्वारा अथक प्रयास किये गये जिससे लोगों में ईश्वर के प्रति सही दृष्टिकोण उत्पन्न हो तथा साथ ही इनमें व्याप्त बुराईयों से भी वे बचे। इसी प्रकार सामाजिक क्षेत्र में जातिप्रथा का उन्मूलन, स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, सतीप्रथा उन्मूलन, बाल-विवाह, छुआछूत, बहु-विवाह प्रथा आदि पर भी उन्होंने सही दृष्टिकोण जनता के सम्मुख प्रस्तुत किये जिनसे उनमें सुधार लाया जा सके।

पुनर्जागरण का प्रभाव—आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि के रूप में चल रहे आन्दोलनों ने समाज में एक नये दृष्टिकोण के प्रति लोगों को सोचने के लिये प्रेरित किया। सनातन धर्म के अनुयायियों पर भी इसका प्रभाव पड़ा और उन्हें अपने पौराणिक सिद्धान्तों की रक्षा हेतु अनेक ऋषिकुल खोलने पड़े तथा सिद्धान्तों की पुष्टि हेतु तर्कों का सहारा लेना पड़ा। इस प्रकार समाज सुधारकों तथा सनातन धर्मियों के द्वारा किये गये प्रयासों से जनता में नव जागरण की लहर का संचार हो रहा था। उनके दृष्टिकोण में परिस्थितियों तथा वस्तु स्थिति की वास्तविकताओं के अनुकूल सोचने, समझने की प्रक्रिया विकसित हो रही थी। प्रशिक्षित जनता में भी आर्यसमाजी व सनातनवादियों के उपदेशों तथा शास्त्रार्थों से धर्म व ज्ञान प्रवृति विकसित होने के साथ साथ एक नये उत्साह का संचार हो रहा था।

अपने-अपने धार्मिक विचारों के प्रति जनता को आकृष्ट करने हेतु समाज सुधारकों ने चिकित्सालय, विधवाश्रम, पाठशालाएँ आदि खोली। पंजाब में लाला लाजपतराय ने 'सर्वेन्ट्स ऑफ पीपुल सोसाइटी' की स्थापना की। महाराष्ट्र मे प्रार्थना समाज ने 1889 ई में 'दक्खन ऐजूकेशन सोसाइटी' का निर्माण किया एवं पूना में गोपाल कृष्ण गोखले ने सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी की स्थापना की। इस प्रकार राष्ट्रीय पुनर्जागरण से शिक्षित जनता में देश-सेवा तथा आत्म-बलिदान की भावना पैदा हुई तथा धार्मिक आडम्बरों एवं सामाजिक रूढ़ियों के प्रति उन की आस्था कम हुई।

राजस्थान में सामाजिक चेतना

राजस्थान में जाति व्यवस्था पर आधारित परम्परागत सामाजिक ढांचा 18 वीं शताब्दी के अन्त तक दृष्टिगत होता है। चूंकि यह ढांचा काफी जटिल था इसलिये सामाजिक जीवन में कई बुराईयां जन्म ले चुकी थी। विभिन्न धार्मिक सन्तों तथा समाज सुधारकों ने अपने प्रयत्नों के द्वारा वर्षों से चली आ रही बुराईयों को समाप्त करने में अहम् भूमिका का निर्वाह किया है। तत्कालीन राजस्थानी सामाजिक ढांचे में जो निम्नलिखित बुराईयां थी, उन्हें दूर करने के लिये अथक प्रयत्न किये गये।

सती प्रथा— राजस्थानी में इसी प्रथा का प्रचलन राजपूत जाति में सर्वाधिक था जबकि अन्य जातियों में इस के उदाहरण अपवाद स्वरूप मिलते हैं। इस प्रथा में पत्नी अपने पति के मृत्यु के बाद अपने आप को जीवित पति की चिता के साथ अग्नि में समर्पित कर प्राण त्याग देती है। वास्तव में सामाजिक दबाव इतना अधिक रहता था कि स्त्रियों को सती होना पड़ता था; स्वेच्छा से सती होने के उदाहरण भी मिलते हैं, लेकिन बहुत कम। लार्ड बैंटिक द्वारा उठाये गये सख्त कदमों के परिणामस्वरूप यह प्रथा कम होने लगी। वर्तमान में अपवादस्वरूप यह दृष्टिगोचर होती है परन्तु दिवराला (सीकर) की रूपकंवर सती काण्ड ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रथा के विरूद्ध सोचने के लिये मजबूर किया है। राज्य सरकार ने एक अधिनियम बनाकर अब इस पर रोक लगादी है।

कन्यावध—राजस्थान में राजपूत बाहुल्य होने से तत्कालीन समाज में लड़की का जन्म अभिशाप माना जाता था। इसके पीछे परिवार के सम्मान नष्ट होने की आशंका तथा लड़की विवाह की समस्या जैसे कारण थे। साथ ही उपयुक्त दहेज न जुटा पाने के भय से कुछ राजपूत परिवारों ने कन्या वध की प्रथा को अपना रखा था। ब्रिटिश सरकार के सुझाव पर समाज सुधारकों ने इस प्रथा को गैरकानूनी घोषित करके समाप्त करवाने का सहयोग दिया। अब राज्य में यह प्रथा समाप्त सी है, लेकिन महिलाओं पर अत्याचार आज भी हो रहे हैं।

डाकण प्रथा—यह प्रथा राजस्थान की कई जातियों विशेषकर भील व मीणा में मिलती थी। इसमें स्त्रियों पर डायन होने का आरोप लगाकर उन्हें मार डाला जाता था। वर्तमान में इस प्रथा का अस्तित्व समाप्त हो चुका है।

घरेलू दास प्रथा— इस प्रथा का प्रचलन 19वीं शताब्दी तक राजपूतों व जमीदारों में था। ये घरेलू दास-दरोगे राजपूतों की अवैध सन्तान होते थे। राजपूतों में कन्या के विवाह के समय स्त्रियां दहेज में दी जाती थी परन्तु समाज में इस प्रथा के विरूद्ध धीरे धीरे चेतना का संचार हुआ और इसमें निरन्तर कमी आई।

महिलाओं का क्रय-विक्रय— राजस्थान में 19वीं शताब्दी के मध्य तक औरतों व लड़कियों के क्रय-विक्रय की प्रथा का प्रचलन था। इस कुप्रथा को रोकने हेतु राजपूत राजाओं ने अपनी-अपनी रियासतों में कानून बनाये फलस्वरूप इस पर कुछ रोक लगी। वर्तमान में भी इस कुप्रथा के विरूद्ध कानून बने हुये हैं, लेकिन फिर भी कुछ जातियों में स्त्रियों व लड़कियों का विक्रय जारी है लेकिन अधिकतर यह मामले चोरी छिपे किये जाते हैं।

वैश्यावृति—राजपूत राजाओं का रियासतों पर राज्य होने तथा धनी लोगों के मौजमस्ती व भोगलिप्सा के लिये वैश्यावृति का प्रचलन काफी था। इस कुप्रवृति पर नियन्त्रण करने हेतु वर्तमान में कानून बने हुये हैं फिर भी यह कुप्रथा समाप्त नहीं हुई है।

बन्धुआ मजदूर (सागड़ी) प्रथा—राजस्थान में घरेलू दास प्रथा का एक और रूप प्रचलित था और वह था बन्धुआ मजदूर अथवा सागड़ी प्रथा। इस प्रथा में घरेलू दास पीढ़ी दर पीढ़ी अपने मालिक जैसे राजा, सेठ, जमीदार आदि के यहां कार्य करते चले आते थे, वे इनसे मुक्त नहीं हो सकते थे। इस प्रकार की प्रथा को वे आर्थिक मजबूरी के कारण स्वीकार करते थे जो उनके आने वाली भावी पीढ़ी को भी उसके दुष्परिणामों को भुगतना पड़ता था। सरकार ने इस दिशा में काफी प्रयास कर इसे समाप्त करने कोशिश की है।

राजस्थान में प्रचलित इन कुप्रथाओं के प्रति चेतना का संचार करने का कार्य यहां के सन्तों व धार्मिक नेताओं ने किया है। इस क्षेत्र में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अहम् भूमिका का निर्वाह किया है। इन्होंने अछूतोद्धार,

स्त्री शिक्षा, जाति-पांति की कट्टरता को समाप्त करने आदि पर बल दिया।

राजस्थान में धर्म सुधार एवं धार्मिक आन्दोलन— यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि जब जब धर्म का आस्तित्व खतरे में होता है तब तब कोई न कोई युग-पुरुष, युगद्रष्टा ने जन्म लिया और इसे पुनः प्रतिष्ठित करने के प्रयास कर संतृप्त समाज में शान्ति की लहर पैदा की है। भारतवर्ष में तुर्कों के आक्रमण के साथ ही हिन्दू धर्म पर भी एक बहुत बड़ा आघात हुआ जिससे राजस्थान भी नहीं बच पाया। राज्य में भी मूर्तियों का खंडन किया जाने लगा, लोगों को इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिये बाध्य किया जाने लगा। ऐसी स्थिति में भक्ति प्रवाह के महान सन्तों ने अपने विचारों के द्वारा धार्मिक चेतना का जनता में संचार किया। इन्होंने विभिन्न सामाजिक बुराइयों को समाज से दूर करने में महत्वपूर्ण कार्य किया। धार्मिक आन्दोलन के प्रवाह की जानकारी हेतु हमें इनके बारे में जानना आवश्यक है जो इस प्रकार है—

सन्त जाम्भोजी—इनका जन्म सन् 1451 में नागौर जिले के पीपासर गांव में हुआ। सन्त जाम्भो जी ने सन् 1482 ई. में सम्भरातल (बीकानेर) स्थान पर कलश स्थापना कर विश्नोई सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया एवं सन् 1485 से इसका प्रचार-प्रसार आरम्भ किया। इन की मृत्यु सन् 1537 में तालवा ग्राम में हुई।

चूंकि जाम्भो जी की शिक्षाएँ बीस और नौ थी अतः इसके मानने वालों को विश्नोई कहा गया। इन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रचलित आडम्बरों व रूढ़ियों का खण्डन कर धर्म का वास्तविक रूप जनता के सामने रखा। यह मूर्ति-पूजा के प्रबल विरोधी थे। इनका प्रमुख ग्रन्थ 'जम्भवाणी' या 'सबदवाणी' नाम से जाना जाता है।

विश्नोई सम्प्रदाय - जाम्भो जी द्वारा प्रवर्तित इस सम्प्रदाय के अनुयायियों को बीस + नौ अर्थात 29 नियमों का पालन करना अनिवार्य है। इस सम्प्रदाय का अहिंसा मूल आधार है। जीव दया, वाणी संयम, हरे वृक्ष न काटना, पानी व दूध छान कर पीना, चोरी नहीं करना, कसाई को पशु न देना आदि इस सम्प्रदाय की मुख्य बातें है। इस सम्प्रदाय में मुर्दों को गाड़ना, विवाह में फेरे न होना, चोटी न रखना, आदि इस्लाम से ली गयी बातें हैं। इस मत के अधिकतर लोग बीकानेर व जोधपुर क्षेत्र में अधिक है।

जसनाथी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक सिद्ध जसनाथ है जिनका जन्म सन् 1482 ई. कतरियासर (बीकानेर) ग्राम में हुआ। इन्होंने विवाह से पूर्व ही साधना मार्ग अपना लिया था। गोरखमालिया (बीकानेर) स्थान पर 12 वर्ष तक तपस्या की थी। 1506 ई. में 24 वर्ष की अवस्था में इन्होंने जीवित समाधि ले ली थी।

इस सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिये 36 नियमों का पालन करना आवश्यक है। इन नियमों के अनुरूप जीवन यापन को 'अगम के मार्ग पर अग्रसर होना', कहा जाता है। ऐसी धारणा हैं कि जो व्यक्ति इन नियमों की 'चलू' लेकर संकल्प करता है, उसकी सन्तान जसनाथी कहलाती है। उत्तम कार्य करना, स्वधर्म का पालन करना, हिंसा नहीं करना, स्नानोपरान्त भोजन, मांस न खाना, संध्या करना, ईश्वर के अलावा अन्य देवों को न मानना, दूध व पानी को छान कर पीना, कन्या विक्रय न करना, ब्याज पर ब्याज न लेना आदि इस सम्प्रदाय के नियम है।

इस सम्प्रदाय में विरक्तों की जो मंडली होती हैं, उसे 'परम हंसी मंडली' कहा जाता है। इस सम्प्रदाय में दो प्रकार के अनुयायी होते है—

(i) **सिद्ध**—ये अनुयायी सिर पर भगवे रंग की पगड़ी बांधते है तथा जसनाथी मन्दिरों की पूजा करते है।

(ii) **जसनाथी जाट**—ये राजस्थान के अन्य जाटों की भांति जाट होते है।

इस सम्प्रदाय पर नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव अधिक है, अतः ये योग पर बल देते हुए शिव व जीव परम्परा को मानते है। ये लोग गंगा स्नान पर विशेष बल देते है। इस सम्प्रदाय के लोग राजस्थान के सभी भागों में फैले हुए हैं किन्तु जोधपुर एवं बीकानेर सम्भागों में इसके समर्थक अधिक मिलते हैं।

दादू पन्थ—दादू पन्थ के प्रवर्तक सन्त दादू दयाल जी को माना जाता है। दादू जी के अनुयायी दादू पन्थी

कहलाते है। सन्त दादू दयाल जी का जन्म सन् 1544 ई. में जौनपुर (गुजरात) में हुआ था। इनकी जाति के विषय में विभिन्न मत है क्योंकि साबर नदी में डूबते हुये दादू दयाल जी को लोदीराम नामक नागर ब्राह्मण ने बचाया और इनका लालन पालन किया। यह स्वतन्त्र धार्मिक विचारों के लिये प्रसिद्ध है। इन्हें बुढानन्द ने दीक्षा दी थी। इन्होंने करडाला (नागौर), सांभर, आमेर (जयपुर) में साधना की। सन् 1603 से इनकी मृत्यु नारायण (जयपुर) में हुई थी।

दादू जी के शिष्यों में 52 शिष्य प्रमुख थे। इसीलिये इन्हें दादू पंथी 52 स्तम्भ कहा गया। दादू जी अपने विचारों को कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति दिया करते थे जिन्हें इनके शिष्यों ने 'दादू जी की वाणी' व 'दादू जी रा दूहा' के रूप में संकलित किया है। दादू जी ने समाज में ढोंग, पाखण्ड, आडम्बर, वर्ग भेद, मूर्ति पूजा, जात-पात व जादू-टोना में विश्वास का खण्डन किया। दादू जी की धारणा थी कि ईश्वर सर्व शक्तिमान है, विना गुरु के ज्ञान नहीं मिलता, उपासना, अहिंसा, प्रेमभाव और भक्ति से ही मुक्ति सम्भव है। फुलेरा के पास नरायण (जयपुर) में दादू जी का स्मारक बना हुआ है जहाँ इनका देहान्त हुआ। आज भी इनके अनुयायी राज्य में काफी है। दादू पंथ के कई परिवर्तित रूप भी मिलते है जैसे नागा, खालसा, खाकी और उत्तराराठी लेकिन ये इतने अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाये।

लालदासी सम्प्रदाय—लालदास इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे। इनका जन्म अलवर राज्य के धौली धूप गांव में सन् 1540 में हुआ था। सत्संग के प्रभाव से उत्पन्न विचारों का इन्होंने जनसामान्य में काफी प्रचार-प्रसार किया। नगला नामक गांव में इनका स्मारक बना हुआ है जो लालदासी सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिये तीर्थस्थल के रूप में है। लालदास जी कबीर तथा दादू दयाल के विचारों से काफी प्रभावित थे इसलिये इस सम्प्रदाय के विचार इनसे काफी मिलते जुलते है। ये ईश्वर को 'राम' की संज्ञा देते है तथा रामनाम के जप तथा कीर्तन पर अधिक महत्व देते है।

मीरादासी सम्प्रदाय—यद्यपि मीराबाई ने किसी सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की और न ही उन्होंने जनता को भक्ति मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी लेकिन फिर भी मीराबाई के पद चिन्हों पर चलने वाले मीरादासी सम्प्रदाय के नाम से जाने जाते है। इसके अनुयायियों की संख्या काफी नगण्य है।

मीराबाई का जन्म 1498 ई. में मेड़ता के राठौड़ श्री रतनसिंह के यहाँ हुआ। 1516 ई. में इनका विवाह हुआ और 7 वर्ष बाद ही उनके पति का देहान्त हो गया जिसके कारण इनका मन सांसारिक मोह से उचट कर कृष्ण भक्ति की ओर मुड़ गया। मीरा का भक्ति मार्ग सरल है, जिसमें न तपस्या है और न उपवास, क्योंकि तनमन्य होकर भक्ति करना ही मीरा का भक्तिमार्ग है। कृष्ण स्मरण को भी उसने गीतों व नृत्यों से रोचक बना दिया है। वास्तव में मीरा नारी सन्तों में ईश्वर प्राप्ति हेतु लगी रहने वाली साधिकाओं में प्रमुख है।

निरंजनी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हरिदास जी है। इनका जन्म सन् 1452 में डीडवाना परगने के कापडोद गांव में हुआ। ये सांखला गोत्र के क्षत्रिय थे। गृहस्थ की उदरपूर्ति हेतु डकैती डाला करते थे। तभी एक दिन किसी महात्मा ने सदुपदेश दिया और यह आत्म चिन्तन में लीन हो गये। शनैः शनैः इनके शिष्यों की संख्या में वृद्धि होती चली गयी। कालान्तर में यही शिष्य परिवार निरंजनी सम्प्रदाय कहलाया।

यह सम्प्रदाय 'निरंजन' शब्द की उपासना में विश्वास रखता है इसीलिये इसे **निरंजनी सम्प्रदाय** कहा जाता हैं। निरंजन शब्द परमात्म-तत्व का प्रतीक है। अलख निरंजन, हरि निरंजन, राम निरंजन का प्रयोग उसी अर्थ में किया गया हैं। यह सम्प्रदाय साम्प्रदायिकता से मुक्त है, ये मूर्तिपूजन तथा सगुण-उपासना का विरोध भी नहीं करते। डीडवाना के पास गाढ़ा गांव में फाल्गुन सुदी 1 से 12 तक वार्षिक मेला लगता हैं जिसमें इस सम्प्रदाय के काफी अनुयायी इकट्ठे होते है।

इस सम्प्रदाय के अनुयायी दो प्रकार के है-(i) निहंग जो विरक्त हैं, वे निहंग कहलाते है। निहंग खाकी रंग की गूदड़ी गले में डालते हैं, पात्र रखते है तथा भिक्षा से उदरपूर्ति करते है। (ii) घरबारी—जो गृहस्थ में रहते

हुए इसके अनुयायी है, उन्हें घरबारी कहते हैं।

रामस्नेही सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विचारक संत रामचरण, संतदास, सिंहथल, खेड़ापा आदि थे। ये लोग रामानन्द जी की राम भक्ति शाखा का प्रचार करते थे। सन्त रामचरण का जन्म सोडा ग्राम (जयपुर) में सन् 1719 ई. में हुआ था. इन्होंने 1751 ई. में गुरु कृपा-रामजी से दीक्षा ली तथा भीलवाड़ा में निर्गुण उपासना व प्रेम भावना का उपदेश देना प्रारम्भ किया। इन्होंने जीवन पर्यन्त राम भक्ति का प्रचार प्रसार किया। राम स्नेही साधु गुरुद्वारों में रहते है तथा मूर्तिपूजा नहीं करते, वे अपने गुरु का चित्र राम द्वारों में रखते हैं।

इन उपरोक्त सम्प्रदायों के सन्तों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमुख सन्त भी हुए हैं जिन्होंने धर्म सुधारकों के रूप में कार्य किया है जैसे सन्त धन्ना जी, सन्त पीपा जी, सन्त सुन्दर दास जी आदि।

सन्त धन्नाजी ने राजस्थान के धार्मिक जीवन को नई दिशा देने में सर्वप्रथम योगदान दिया। ये रामानन्द के शिष्य थे। इनका जन्म टोंक जिले के धुवन ग्राम में सन् 1415 ई. में हुआ था। इनकी प्रमुख शिक्षाओं में ईश्वर में दृढ़ विश्वास, ध्यान द्वारा ईश्वर की खोज, आडम्बरों का विरोध तथा जातीय भेदों में अविश्वास आदि मुख्य हैं।

सन्त पीपा जी रामानन्द के शिष्य थे। शिष्य बनते ही इन्होंने अपना राजपाट त्याग दिया तथा साधुओं की सेवा करने लगे। पीपाजी ने राजस्थान में ज्ञान व धार्मिक चेतना जागृत की। वह ईश्वर-प्राप्ति के लिये गुरु आवश्यक मानते थे तथा भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन समझते थे। इन्हें मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं था।

सन्त सुन्दरदास जी का जन्म दौसा (जयपुर) में तथा विद्या अध्ययन काशी में हुआ था। ये सन्त दादूदयाल जी के परम शिष्य थे। जिन्होंने 'सुन्दर विलास' जैसी प्रसिद्ध पुस्तक की रचना की जिसमें इन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रकाश डाला है।

राजस्थान में सांस्कृतिक पुनर्जागरण—राजस्थान में शिक्षा के क्षेत्र में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा, फलस्वरूप शिक्षा का प्रचार प्रसार काफी हुआ। अजमेर में सर्वप्रथम सन् 1819 ई. में शिक्षा की व्यवस्था अंग्रेजी प्रणाली के अन्तर्गत प्रारम्भ की गई। इसी प्रकार अलवर, भरतपुर व जयपुर आदि रियासतों में शिक्षा की व्यवस्था की गई। सन् 1875 में मेयो कालेज की स्थापना अजमेर में की गई जहां राजाओं व सामन्तों के पुत्रों को शिक्षा दी जाने लगी। बिरला परिवार ने जयपुर क्षेत्र में 'बिरला एजुकेशन ट्रस्ट' स्थापित कर शिक्षा में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। इसी प्रकार इसाई मिशनरी संस्थाओं ने भी अजमेर, ब्यावर, नसीराबाद, जयपुर, देवली, अलवर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा आदि में शिक्षण संस्थाऐं स्थापित की।

आर्य समाज ने अजमेर में शिक्षण संस्थाएें प्रारम्भ कर शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिये भी आर्य समाज ने काफी प्रयास किये। समाज द्वारा स्थापित संस्थाओं ने जहां एक ओर अंग्रेजी के ज्ञान-विज्ञान से अवगत कराया वहीं वैदिक संस्कृति से भी राजस्थानियों को अवगत कराया जिससे ज्ञान के साथ-साथ भ्रातृत्व, स्वदेश-प्रेम तथा आत्म-सम्मान की भावना भी राजस्थानवासियों में जाग्रत हुई।

सरकारी प्रयास भी इस दिशा में किये गये जिससे उदयपुर, जयपुर, भरतपुर स्थानों पर आदि कन्या विद्यालयों की स्थापना हुई।

शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होने पर जनता में विचारों को जानने समझने की समझ विकसित होती हैं और इस प्रकार वे समाज में व्याप्त बुराईयों, कुप्रथाओं को समाप्त करने की दिशा में प्रयत्नशील होकर सुधारों हेतु आन्दोलन के पथ पर अग्रसर हो जाते है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में जितना अधिक विकास किया जाये उतना ही श्रेष्ठ हैं।

✲

12 राजस्थान में शिक्षा प्रसार

किसी भी राष्ट्र, देश, प्रान्त एवं प्रदेश के सर्वांगीण विकास के लिये शिक्षा का विशेष महत्व है। समाज में व्याप्त बुराइयाँ अधिकतर अशिक्षा का परिणाम होती हैं। अशिक्षित समाज दासता की बेड़ियों से जकड़ा रहता है। शिक्षा के प्रसार से इन समस्त बुराइयों पर विजय प्राप्त की जा सकती हैं। राजस्थान में शिक्षा का योजनाबद्ध एवं सर्वांगीण प्रसार स्वाधीनता के बाद हुआ।

राजस्थान निर्माण के समय राज्य में साक्षरता का औसत लगभग 9 प्रतिशत था जोकि वर्ष 1981 में बढ़कर 24.38 हो गया। देश में नियोजित विकास हेतु जब पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया गया तब सरकार ने शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुये, इस के प्रसार हेतु पर्याप्त वित्तीय आवंटन किया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल 4.06 करोड़ रु. व्यय किये गये। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यह राशि बढ़ाकर 12.71 करोड़ कर दी गई। तृतीय पंचवर्षीय योजनावधि में प्राथमिक शिक्षा पर विशेष महत्व दिये जाने कारण प्राथमिक विद्यालयों की संख्या बढ़कर लगभग 15000 तक पहुँच गई।

सन् 1981 की जनगणना के अनुसार शहरों में सर्वाधिक साक्षरता उदयपुर जिले में 61.84 प्रतिशत थी जब कि सन् 1971 में सर्वाधिक साक्षर लोग अजमेर में थे लेकिन सन् 1981 में अजमेर 60.50% के साथ दूसरे स्थान पर रहा।

शिक्षा के प्रसार में विगत सभी सरकारों ने अथक प्रयास किये है लेकिन पिछले तीन वर्षों में इस दिशा में ठोस कार्य सम्पन्न किये गये हैं। वर्ष 1987-88 में 49 प्राथमिक विद्यालय, 180 उच्च प्राथमिक विद्यालय तथा 50 माध्यमिक विद्यालय खोले गये हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन की दृष्टि से राज्य में नवोदय विद्यालय चलाये गये है। शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये राज्य में संचालित 28139 प्राथमिक तथा 8149 उच्च प्राथमिक विद्यालय, 2166 माध्यमिक एवं 892 उच्च माध्यमिक विद्यालय कार्यरत है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के दिशा-निर्देश के अनुसार राज्य में 1990 तक 6-11 आयु वर्ग के 41.20 लाख तथा 12 लाख बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा की परिधि में लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

आपरेशन ब्लैक बोर्ड कार्यक्रम के अन्तर्गत 3334 एकल अध्यापकीय शालाओं को दो अध्यापकीय शालाओं में परिवर्तित किया जा रहा है। वर्ष 1987-88 सत्र से राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप राज्य के 51 उच्च माध्यमिक विद्यालयों में दस जमा दो स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा आरम्भ कर दी गई है।

गत 25 वर्षों में राज्य में कोई नया विश्वविद्यालय स्थापित नही किया गया था। उच्च शिक्षा की बढ़ती मांग को देखते हुऐ वर्ष 1987-88 में तीन विश्वविद्यालय अजमेर, बीकानेर (कृषि) एवं कोटा (खुला) में स्थापित किये गये है तथा अजमेर, कोटा, बीकानेर भरतपुर, भीलवाड़ा आदि कालेजों को स्वायत्तशासी कालेजों में परिवर्तित किया गया है। अलवर, बीकानेर तथा खेतान पोली-टेक्नीक संस्थान, जयपुर में इलेक्ट्रोनिक्स इंजीनियरिंग का पाठ्यक्रम शुरू किया गया है। बाड़मेर में एक नई पोलीटेक्नीक संस्था का प्रारम्भ भारत सरकार की सीमान्त क्षेत्रीय विकास योजना के अन्तर्गत किया गया है। स्त्री शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम भी त्वरित गति से चलाये जा रहे हैं।

वर्ष 1988-89 में शिक्षा के मद में 73.16 करोड़ रूपये का प्रावधान प्रस्तावित है। निम्न कार्यक्रमों को वर्ष 1988-89 में क्रियान्वित किया जाना प्रस्तावित है।

(i) राज्य के वे सभी गांव जिस की जनसंख्या 250 है, वहां प्राथमिक विद्यालय खोले जायेंगे।

(ii) आपरेशन ब्लेक बोर्ड योजना के अन्तर्गत 30%

प्राथमिक विद्यालयों को एक अध्यापक की अपेक्षा दो अध्यापक तथा अध्ययन एवं अध्यापन की न्यूनतम आवश्यक सुविधाऐं उपलब्ध करायी जाए।

(iii) विभिन्न भाषाओं के स्तर में सुधार के लिये राज्य भाषा सस्थान की स्थापना की जाएगी।

(iv) अजमेर शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय को एम. एड. स्तर पर क्रमोन्नत कर दिया गया है।

(v) राज्य के सभी हायर सैकण्डरी स्कूलों को 10 जमा दो पाठ्यक्रम योजना के अन्तर्गत क्रमोन्नत कर दिया गया है।

(vi) 1990 तक प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय योजना के अन्तर्गत श्रीगंगानगर, पाली, जोधपुर, झालावाड़, टोंक तथा अलवर में यह सुविधा उपलब्ध करवायी गई है।

(vii) 125 सीनियर हायर सैकण्ड्री स्कूलों में व्यावसायिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराए जाने का प्रस्ताव है।

(viii) केन्द्रीय सरकार की सहायता से 28 अतिरिक्त स्कूलों में कम्पयूटर शिक्षा उपलब्ध कराने की योजना है।

शिक्षण संस्थाऐं —

विश्वविद्यालय—राज्य में जो विश्वविद्यालय है, उनके नाम इस प्रकार है—

(i) राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
(ii) सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
(iii) जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर
(vi) कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा
(v) अजमेर विश्वविद्यालय, अजमेर
(vi) राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

वनस्थली विद्यापीठ को भी कुछ समय पूर्व विश्वविद्यालय का स्तर प्रदान किया गया है।

मेडिकल कालेज—

(i) एस. एम. एस मेडिकल कालेज, जयपुर
(ii) जवाहरलाल नेहरु मेडिकल कालेज, अजमेर
(iii) सरदार पटेल मेडिकल कालेज, बीकानेर
(iv) सम्पूर्णानन्द मेडिकल कालेज, जोधपुर
(v) रवीन्द्रनाथ टैगोर मेडिकल कालेज, उदयपुर

आयुर्वेदिक कालेज—

(i) राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, जयपुर
(ii) राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, अजमेर
(iii) राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, उदयपुर

इन्जीनियरिंग कालेज—

(i) मालवीय रीजनल इन्जीनियरिंग कालेज, जयपुर
(ii) इन्जीनियरिंग कालेज, कोटा
(iii) एम बी एम. इन्जीनियरिंग कालेज, उदयपुर
(iv) एम. बी. एम. इन्जीनियरिंग कालेज, जोधपुर
(v) एग्रीकल्चरल इन्जीनियरिंग कालेज, उदयपुर
(vi) बिरला इन्जीनियरिंग कालेज, पिलानी

कृषि कालेज—

(i) कृषि कालेज, उदयपुर
(ii) कृषि कालेज, सांगरिया
(iii) एस. के एन. कृषि कालेज, जोबनेर
(iv) दयानन्द कृषि कालेज, अजमेर

पशु चिकित्सा कालेज—

(i) कालेज ऑफ वेटेनरी एण्ड एनीमल हस्बैन्ड्री, बीकानेर

पब्लिक स्कूल—

(i) मेयो कालेज, अजमेर
(ii) एम जी. डी. स्कूल, जयपुर
(iii) सेन्ट जेवियर स्कूल, जयपुर
(iv) माहेश्वरी पब्लिक स्कूल, जयपुर
(v) सैनिक स्कूल, चित्तौड़गढ़
(vi) विद्या भवन, उदयपुर
(vii) बिड़ला पब्लिक स्कूल, पिलानी
(viii) वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली
(ix) सेन्ट एन्सलम स्कूल, अजमेर

शिक्षण प्रशिक्षण संस्थान—

(i) रीजनल कॉलेज ऑफ एज्यूकेशन, अजमेर
(ii) राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, अजमेर
(iii) शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, हटूण्डी अजमेर
(iv) जैन शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय, अलवर

(v) आर्य विद्यापीठ शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, भुसावर
(vi) आदर्श विद्या मन्दिर, जयपुर
(vii) बाल मन्दिर, मोती डूंगरी रोड़, जयपुर
(viii) शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, जयपुर
(ix) एस. एस. जी. पारीक कालेज जयपुर
(x) विद्याभवन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर
(xi) निम्बार्क शिक्षा महाविद्यालय, उदयपुर
(xii) दधिच थी शिक्षा महाविद्यालय, श्रीगंगानगर
(xiii) गांधी विद्या मन्दिर सरदारशहर
(xiv) वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली
(xv) जवाहर लाल नेहरु शिक्षा प्रशिक्षण महा-विद्यालय, कोटा

प्राविधिक शिक्षा—राज्य में वर्ष 1957 में प्राविधिक शिक्षा के विकास हेतु एक पृथक निदेशालय की स्थापना की गई। वर्तमान में राज्य में 5 इन्जीनियरिंग कॉलेज तथा 14 पोलोटेक्निक संस्थान कार्यरत हैं। इन पोलो-टेक्निक संस्थानों में डिप्लोमा स्तर का तीन वर्षीय इन्जी-नियरिंग पाठ्यक्रम है। अजमेर पोलोटेक्निक में मशीन टूल्स टेक्नालाजी, ट्रेफिक व ट्रान्सपोर्टेशन इन्जीनियरी; जयपुर में रेफ्रीजिरेशन, एयर-कण्डीशन एवं भवन निर्माण मूल्यांकन, जयपुर में डेयरी टेक्नोलाजी और भू-जल इन्जीनियरी के पोस्ट डिप्लोमा कार्यक्रम चलते हैं। इसके अतिरिक्त सिरोही, बेयाना एवं कोटपुतली में 3 नये औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना से राज्य के कुल 33 राजकीय तथा 35 गैर-राजकीय आई. टी. आई कार्यरत हैं।

संस्कृत शिक्षा—राज्य में संस्कृत शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं शास्त्री अध्ययन, प्रशिक्षण व शोध संचालन की दृष्टि से 1958 में संस्थापित संस्कृत शिक्षा विभाग के तत्त्वावधान में 197 राजकीय एवं 175 अनुदानित एवं मान्यता प्राप्त संस्थाएँ कार्यरत हैं।

प्रौढ़ शिक्षा - इसके अन्तर्गत सन् 1967 में उदयपुर में किसान क्रियात्मक साक्षरता कार्यक्रम को शुरू किया गया जिसे बाद में जयपुर, कोटा, भरतपुर एवं जोधपुर में लागू किया गया। तत्पश्चात् 1964 में यह बीकानेर में भी लागू किया गया। 2 अक्टूबर, 1978 को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत कार्यरत 1162 केन्द्रों से 3,58,751 व्यक्ति लाभान्वित हुए। साथ ही जनजाति क्षेत्रों जैसे डूंगरपुर व बांसवाड़ा मे 600 केन्द्रों से 18000 प्रौढ़ों को लाभान्वित करने की योजना है।

राज्य के प्रमुख शैक्षिणक संस्थान—

1. माध्यमिक शिक्षा बोर्ड—राज्य में माध्यमिक शिक्षा को आधुनिक, वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील बनाने के लिये राज्य सरकार द्वारा इस बोर्ड की स्थापना एक अगस्त, 1957 को की गई। इस का प्रमुख उद्देश्य समग्र राज्य में माध्यमिक शिक्षा की परीक्षाओं का संचा-लन करना है. साथ ही परीक्षा सुधार कार्यक्रम, राष्ट्रीय प्रतिभा खोज प्रारंभिक परीक्षा, पत्राचार पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकों का निर्माण एवं प्रकाशन, शालाओं को आर्थिक अनुदान, सम्मान, पदक, छात्रवृत्तियां, अध्यापक कल्याण कोष का संचालन आदि गतिविधियां भी सम्पन्न करता है। बोर्ड ने नई शिक्षा नीति के तहत वर्ष 1986 से 10 जमा दो योजना शुरू कर दी है। इस का मुख्या-लय अजमेर में है।

2 राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान—यह संस्थान राज्य में औपचारिक-अनौपचा-रिक शिक्षा-धाराओं के अन्तर्गत अनुसन्धान, विकास, प्रसार एवं प्रकाशन जैसी आधारभूत क्रियाओं के माध्यम से शिक्षा को नई दिशाएं प्रदान कर रहा है, तथा शिक्षा नीति के अनुसार शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु शिविरों का आयोजन करता है। इसका मुख्यालय उदयपुर में है।

राजस्थान साहित्य अकादमी—इस की स्थापना 28 जनवरी, 1956 को उदयपुर में राजस्थान के साहित्यिक विकास तथा साहित्यकारों को संरक्षण एवं सहयोग देने के उद्देश्य से की गई 1 नवम्बर, 1962 में इसे स्वायत्तता प्रदान की गई। अकादमी द्वारा ग्रन्थ प्रकाशन, पत्रिका प्रकाशन, साहित्यिक, साहित्यिक समारोहों का आयोजन, युवा एवं नवोदित लेखकों को प्रोत्साहन, राज्य की साहि-त्यिक संस्थाओं को मान्यता प्रदान करना, पुस्तक मेलों आदि का आयोजन किया जाता है। वर्ष 1986-87 में 11 हजार रूपये का **मीरा पुरस्कार** श्री हरीश भादानी, बीकानेर को उनकी कृति एक अकेला सूरज खेले को तथा रांगेय राघव पुरस्कार हरदर्शन सहगल बीकानेर को दिया गया।

संस्कृत अकादमी—वर्ष 1981 से स्थापित यह अकादमी राज्य में संस्कृत साहित्य के प्रचार-प्रसार एवं संस्कृत साहित्यकारों के संरक्षण एवं सहयोग के लिये कार्यरत है। इसके द्वारा संस्कृत पत्रिका 'स्वरमंगला' का प्रकाशन किया जाता है।

राजस्थान उर्दू अकादमी—इसका गठन 12 फरवरी, 1979 को किया गया। वर्तमान में इसके अध्यक्ष डा सैयद शाकिब हसन रिजवी हैं। इसके द्वारा त्रैमासिक पत्रिका' नखलिस्तान' का प्रकाशन किया जाता है साथ ही उर्दू के विकास एवं साहित्य प्रकाशन का कार्य भी किया जा रहा है।

राजस्थान सिन्धी अकादमी—राज्य में सिन्धी साहित्यकारों को प्रोत्साहन देने के लिये इसकी स्थापना 1979 में की गई। इसका मुख्य उद्देश्य राजस्थान के विभिन्न भू-भागों में बसे अन्य भाषी समुदाय के साहित्य, संस्कृति एवं सभ्यता को संरक्षण प्रदान करना है।

राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी—इसकी स्थापना 25 जनवरी 1985 को बीकानेर में हुई। अकादमी के वर्तमान अध्यक्ष श्री के. एम उज्जवल हैं। इसके द्वारा 'जागती जोग' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति को विकसित करना तथा संरक्षण प्रदान करना है। अकादमी द्वारा राजस्थानी लघु शब्दकोष, व्याकरण एवं इतिहास के अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशन की योजना है।

राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी—इसकी स्थापना 19 जनवरी, 86 को भरतपुर में हुई। इसके द्वारा त्रैमासिक पत्रिका 'ब्रजशत दल' का प्रकाशन किया जाता है। ब्रजभाषा का प्रचार-प्रसार करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी—विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमानुसार उत्कृष्ट, मानक एव कम मूल्य पर पुस्तकें उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 15 जुलाई, 1968 को इसकी स्थापना जयपुर में की गई। वर्तमान में शिक्षा सचिव इसके पदेन अध्यक्ष है।

गुरुनानक भवन संस्थान—गुरुनानक के 50 वें जन्म दिवस पर 30 मई, 1969 को इसकी स्थापना जयपुर में की गई। संस्थान द्वारा ग्रन्थावधि के प्रशिक्षण गणित, अंग्रेजी, विज्ञान विषयों में निःशुल्क कोचिंग तथा ग्रीष्मावकाश में शिविरों का आयोजन कर विभिन्न प्रवृत्तियों का सचालन छात्रों के लाभार्थ करवाया जाता है।

राजस्थान राज्य पाठ्य-पुस्तक मण्डल—छात्र संख्या के अनुपात में अविभक्त इकाई से आठवीं कक्षा तक पाठ्य-पुस्तकें सुलभ कराने की दृष्टि से शिक्षा विभाग के आधीन 956 में राष्ट्रीयकरण पाठ्य-पुस्तक मण्डल जयपुर में स्थापित किया गया। इसको गतिशील बनाने के लिये जनवरी, 1974 में स्वायत्तशासी संस्था "राजस्थान-राज्य पाठ्य-पुस्तक मण्डल" के नाम से अभिहित किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य पुस्तकों को प्रकाशन कर समय पर उपलब्ध करवाना है।

अरबी फारसी शोध संस्थान—इसकी स्थापना वर्ष 1978 में टोंक में हुई। इसके द्वारा अरबी और फारसी भाषाओं के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक अनुसन्धान कार्य करवाये जाते हैं। साथ ही प्राच्च शोध, सूचीकरण, सम्पादन, प्रकाशन तथा अन्य साहित्यिक गतिविधियों का भी संचालन किया जाता है।

मेयो कालेज, अजमेर—1885 में स्थापित यह कॉलेज राजस्थानी शासकों व सामन्त-सरदारों की शिक्षा हेतु खोला गया था लेकिन सन् 1946 से इसे अब आम जनता के प्रवेश हेतु भी खोल दिया गया है।

वनस्थली विद्यापीठ-इसके संस्थापक स्वर्गीय हीरालाल शास्त्री थे। यहां शिशु से लेकर विज्ञान तथा कला में उच्च शिक्षा दी जाती हैं। यहां बी. एड, एम. एड. के प्रशिक्षण के अतिरिक्त इतिहास, हिन्दी, संस्कृत के शोध की भी व्यवस्था है। यह नारी शिक्षा का अनुपम केन्द्र है सन 1983 में इसे विश्वविद्यालय का स्तर प्रदान कर दिया गया है।

विद्या भवन, उदयपुर—इसकी स्थापना सन् 1931 में श्री मोहनसिंह मेहता द्वारा की गई। बहुउद्देशीय सीनियर उच्च माध्यमिक विद्यालय, हस्तकला संस्थान, बी. एड कॉलेज, पंचायत राज ट्रेनिंग केन्द्र और समाज शिक्षा ट्रेनिंग केन्द्र आदि इसमें स्थित है। विद्यार्थियों के बहुमुखी विकास पर यहां ध्यान दिया जाता है।

बिड़ला शिक्षा संस्थान, पिलानी—इसका मुख्य उद्देश्य शोध कार्य है। यहां इंजिनियरिंग कालेज तथा पांच महाविद्यालय है। एक ग्लाइडिंग क्लब तथा एक बड़ा व श्रेष्ठतम पुस्तकालय भी इस संस्थान की विशेषता है।

भाग IV

आर्थिक विकास कार्यक्रम एवं प्रशासनिक व्यवस्था

1 राजस्थान की जातियाँ एवं जनजातियाँ

राजस्थान प्रदेश में सभ्यता का विस्तार प्राचीन काल से ही हुआ है। यहां सिन्धु घाटी सभ्यता के चिन्ह मिले हैं। तत्पश्चात आहड़ सभ्यता प्रस्फुटित हुई। फिर आर्य लोग आये और उत्तर में बस गये। उनके द्वारा ब्राह्मण संस्कृति का विकास हुआ। जनपद युग के दौरान यहां मालव, शिवि, अर्जु नायन, शाल्व, यौधेय जातियां आकर वस गयी। उस काल में कुषाण स्थापित हो चुके थे। राजस्थान कुछ समय तक गुप्त वंश के आधिपत्य में रहा और हूणों द्वारा उनका अधिकार और प्रभाव नगण्य कर दिया गया। अत: स्पष्ट है कि राजस्थान विभिन्न जातियों का स्थल रहा है और उनका समन्वय यहां के लोगों की शारीरिक रचना, सामाजिक जीवन, व्यवसाय और रीति रिवाजों में पाया जाता है।

सातवीं शताब्दी में यहां राजपूतों का अभ्युदय हुआ। राजपूतों की उत्पत्ति के बारे में विवाद है फिर भी दो मत मुख्य है। कुछ लोग इन्हें आर्य जातियों से उत्पन्न समझते हैं। जबकि दूसरे लोग इनको विदेशियों से उत्पन्न समझते हैं। परन्तु यह तथ्य है कि राजपूतों में आर्यों, कुषाणों, हूणों का समन्वय है। इन लोगों के अनेक वंश कायम हो गये जैसे सिसोदिया वंश, राठौड़ वंश, कछवाहा वंश, चौहान वंश आदि। इन लोगों के यहां राज्य स्थापित हो गये। इन राज्यों में कुछ ने मुगलों से मेल किया और कुछ ने संघर्ष मोल लिया। मुगल लोगों ने अजमेर, टोंक आदि को अपने अधिकार में रखा और वे राजस्थान में फैल गए। उत्तर-पूर्व के भाग में जाटों द्वारा अधिकार कर लिया गया था और वे भी राजस्थान के निवासी बन गये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कुछ पंजाबी और सिन्धी भी यहां आकर वस गये।

इन सबसे अतिरिक्त राजस्थान में आदिवासी भी पाये जाते हैं जैसे—भील, मीणा, मेर आदि। कुछ छोटी जातियां यहां आरम्भ से पाई जाती है जैसे डोम, मछुये, धोबी, चिड़ीमार, मातंग, चाण्डाल, चमार, नट, गाछे, जुलाहे आदि।

राजस्थान की प्रमुख जातियां—राजस्थान में अनेक जातियां रहती हैं। हिन्दुओं की ही लगभग 150 जातियां और उप-जातियां राजस्थान में निवास करती हैं। इन जातियों में ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ, मीणा, बलाई, माली, भील, जाट, अहीर, नाई, धोबी, दर्जी, डाकोत, जाटव, कलाल आदि हैं। राजपूतों की अनेक उप-जातियां हैं। मुसलमानों में शेख, पठान, मेव, मुगल, सैयद आदि है। कुछ ऐसी भी जातियां है, जो धर्म से मुसलमान हैं किन्तु आचार-व्यवहार में हिन्दुओं जैसी हैं। इनमें खानजादा, कायमखानी तथा मेव आदि की गणना की जाती है।

आदिम जातियों में मुख्य रूप से मीणा, भील, गरासिया, सहरिया तथा डामोर हैं। मीणा जयपुर जिले में, भील उदयपुर जिले में, गरासिया सिरोही जिले में, सहरिया कोटा जिले में तथा डामोर डूंगरपुर जिले में सर्वाधिक मिलते हैं।

राजस्थान में उपेक्षित जातियां भी कई मिलती हैं जिनमें आदिधर्मी, अहेरी, भील, वदी, बागरी, बाजगर, बांसफोड़, बनजारा, बलाई, चामटा, चाडांल, बावरी, थोरी, सांसी, सेरिया, नट, मांछा, मोची, सुथार, घांची, लुहार, कन्दर, ढ़ेड़, डोम, कालबेलिया, माली, नाई, जोगी, कुम्हार, तेली, भांभी, मेहतर, जागरी, गिरासिया, डामोर, पिंजारा, रावत, मेघवाल, शिरासिया, रेगर आदि मुख्य है।

प्रमुख हिन्दू जातियां

राजपूत—राजस्थान के ज्यादातर देशी राज्यों में राजपूत ही शासक थे। अत: यहां पर उनका उल्लेख करना आवश्यक है। यहाँ की 21 रियासतें राजपूत जाति की भिन्न-भिन्न खांपों (वंशों) के अधीन थी। सामान्यत: राजपूत सुडौल, कद्दावर और मजबूत होते हैं। इनमें दाढ़ी रखने का रिवाज है परन्तु आजकल इसका रिवाज उठ रहा है। ये लोग मान मर्यादा और आनबान के लिए अपनी जान हथेली पर रखते आये हैं। अपने राज्य, जाति और मान मर्यादा को बचाने के लिए केसरिया बाना और बाल-बच्चों सहित शत्रु के साथ लड़कर मर जाने के लिए प्रसिद्ध हैं। इसी कारण अन्य जाति के लोग इनका आदर करते आये हैं। लेकिन अब समय बदलता जा रहा है। अब केवल शारीरिक बल व तलवार के भरोसे न रहकर मानसिक, स्वस्थ व कलम के धनी व्यक्तियों का जमाना आ रहा है। अब भूमि पर खेती कराने वालों के बदले

खेती करने वालों को महत्व दिया जा रहा है। खेती न करने वाले राजपूतों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति गिरती दिखाई दे रही है।

ब्राह्मण—राजपूतों के बाद सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण जाति, ब्राह्मणों की है। ब्राह्मणों में श्रीमाली, दाधीच, पुष्करना, पालीवाल, पारीक, खण्डेलवाल आदि आते हैं। इनका धन्धा पूजा पाठ के अलावा व्यापार व खेती हैं। ये ज्यादातर वैष्णव धर्मावलम्वी हैं लेकिन शैव व शाक्त भी काफी हैं। इनमें विधवा विवाह व तलाक पूर्णतया वर्जित हैं।

वैश्य—इनमें ओसवाल, सरावगी, अग्रवाल, महेश्वरी आदि आते हैं। ओसवाल अपने को मूलतः राजपूत वताते हैं तथा अपना मूल स्थान ओसियां (जोधपुर) वतलाते हैं। इसमें वैष्णव व जैन धर्मावलम्वी होते है। ज्यादातर लोग व्यापार करते हैं लेकिन राजकीय सेवा में भी काफी लोग हैं, इनमें कई गौत्र हैं, यथा मुहणौत, भण्डारी, डागा, रांका, नाहर, पाटवा, छादेड़ आदि। इनमें विधवा विवाह व तलाक पूर्णतया वर्जित हैं। वैश्य व्यापार व लेनदेन का कारण सभी जातियों के सम्पर्क में ज्यादा ही आते हैं। इस कारण सभी जातियां इनसे परिचित हैं। तव भी आदर भी काफी करती हैं। यों इनको सामान्य लोग वणिये कहते हैं। वैश्यों ने व्यापार व उद्योग धन्धों में काफी ख्याति व धन अर्जित किया है। राजस्थान के वैश्य भारत के कोने-कोने में जा वसे हैं और वहां उद्योग धन्धे फैला रखे हैं। अपनी आर्थिक स्थिति ठीक होने के कारण ये लोग सामाजिक कार्यों, मन्दिरों, धर्मशालाओं पाठशाला और अस्पताल आदि के लिए काफी दान देते रहते हैं।

काश्तकार जातियां—यों राजस्थान की प्रत्येक जाति काश्त करती है लेकिन कुछ जातियां, जाट, गुजर, माली, कलवी, सिरवी, पीटल, धाकड़ आदि का मुख्य धन्धा काश्त हैं। काश्त का धन्धा आर्थिक दृष्टि से लाभदायक धन्धा नहीं है। लगभग सभी काश्तकार ऋणग्रस्त हैं। भूमि के उपजाऊ न होने, सिंचाई की सुविधायें कम होने, अकाल पड़ने, अनुचित लाग वागों की वसूली, लगान ज्यादा होने, शादी विवाहों व औसर मोसर पर ज्यादा ही अपव्यय करते रहने के कारण काश्तकार जातियां आर्थिक दृष्टि से गरीब मानी जाती हैं।

जाट—भारत में 26 राजवंशों में जाट जाति भी आती हैं। यह अपने को यदुवंशी वतलाते हैं। जाटों में पूनिया तथा गोदारा सवसे पुराने हैं। राजस्थान में ये सवसे पहले वीकानेर व जैसलमेर में आकर वसे थे। वीकानेर के संस्थापक राव वीका को इन्होंने राज्य स्थापित करने में वड़ी सहायता की थी। जाट लोग वाद में राजस्थान के विभिन्न भागों में फैल गये। अहीर अहीर शव्द संस्कृत के 'आभीर' शव्द से निकला है जिसका अर्थ होता है दूध वाला। अहीर अपने को कृष्ण के पालक पिता नन्द के वंशज वतलाते हैं। यह शांति प्रिय काश्तकार जाति हैं। रेवाड़ी के अहीर नन्दराज, जो औरंगजेव का समकालीन था, के कव्जे में कभी 360 गांव थे लेकिन अंग्रेजों ने इनसे 315 गाँव छीन लिए। ई. सन् 1851 के विद्रोह के वक्त शेष 45 गांव भी जव्त कर लिए। अव ये केवल काश्त पर निर्भर हैं। यह वैष्णव धर्मावलम्वी जाति है।

गूजर—यह एक क्षत्रिय जाति है। जो पहले गुर्ज से लड़ने में सिद्धहस्त होने के कारण गुर्जर कहलाई। अव भी इस जाति के लोग लकड़ी के नीचे लोहे का ठोस पोला 'गुर्ज' लगाते हैं। सातवीं शताव्दी में इनका राज्य पंजाव, राजस्थान व गुजरात के काफी भाग पर था। ग्यारहवीं शताव्दी में इनका राज्य अलवर पर भी था। तव इनकी राजधानी राजोरगढ़ थी। ये कन्नोज के राजा महिपाल (क्षितिपाल) के सामन्त थे। कई लेखक इनको गुर्य क्षत्रिय मानते हैं। राजस्थान के राजाओं में राजकुमारों को दूध पिलाने के लिए गुर्जर महिला को धाय रखा जाता है। इन लोगों का मुख्य पेशा काश्त करना तथा पशु पालन है।

माली—जिस प्रकार राजवंशों में गुर्जर महिला राजकुमारों को दूध पिलाने को रखी जाती है वैसे ही इस जाति की महिलायें भी राजवंशों में धाय रखी जाती है जिनके पुत्र धाय भाई कहलाते हैं। ये लोग पहले क्षत्रिय थे लेकिन शहावुद्दीन गोरी के समय से इन्होंने वागवानी का पेशा धारण कर लिया। माली जाति विभिन्न नामों मालाकार वागवान, सैनी, सैनिक क्षत्रिय आदि नामों से पुकारी जाती है। इस जाति की शाखायें

राजपूतों जैसी ही है, यथा—कछवाहा, पड़िहार, सोलंकी, गहलोत, सांखला, भाटी, राठौड, चौहान, तवर, देवड़ा, परमार, दहिया आदि।

चमार—यह जाति चर्म का कार्य करती है। यह खाल उतारते हैं, रंगते हैं, जूते, चड़स आदि बनाते हैं। गांव के विभिन्न प्रकार के कार्य भी करते हैं। चमार जाति को मुसलमान होने से रामदेव तंवर (रामशाह पीर) ने बचाया था। उसकी यह बड़ी पूजा करते हैं। इस जाति को अछूतों में गिना जाता है।

राजस्थान की जनजातियां

राज्य में अनेक जनजातियाँ निवास करती है, जो प्रान्त के विभिन्न पहाड़ी, पठारी एवं वनप्रदेशों में आदिम ढंग की अर्थ-व्यवस्था से जीवन-यापन करते हुये विभिन्न प्राकृतिक वातावरण में रहते हुये अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को आज भी मान्यता दिये हुये है। साथ ही आज भी यह जनजातियाँ आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी हुई है, क्योंकि इन का सम्पर्क आज की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति से नहीं हो पाया है। स्वतन्त्रता के पश्चात से राज्य सरकार ने इन के विकास पर बड़ा जोर दिया है जिसके परिणामस्वरूप इन की शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक संगठन एवं आर्थिक क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ है। राज्य के बीस सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रमों में इनकी प्रगति तथा सामाजिक उत्थान को प्रमुखता प्रदान की गई है।

सन् 1981 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में 41,83,124 अनुसूचित जनजाति के लोग निवास करते है। भारत में राजस्थान का स्थान अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या की दृष्टि से छठवां है।

राजस्थान में जिलेवार अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या तथा उन का प्रतिशत निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

राज्य/जिला	अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या	कुल अनुसूचित जनजाति का प्रतिशत
राजस्थान	41,83,124	100%
1. उदयपुर	8,09,156	19.34
2. बांसवाड़ा	6,43,966	15.37
3. डूंगरपुर	4,40,026	10.52
4. जयपुर	3,80,199	9.08
5. सवाई माधोपुर	3,48,130	8·32
6. चित्तौड़गढ़	2,23,864	5.35
7. कोटा	2,31,316	5.52
8. अलवर	1,43,858	3.44
9. भीलवाड़ा	1,21,664	2.90
10. धौलपुर	26,280	0.62
11. सिरोही	1,25,245	2.98
12. बूंदी	1,18,030	2.82
13. टोंक	92,477	2.20
14. झालावाड़	91,610	2.19
15. जालौर	72,361	1.73
16. पाली	69,694	1.66
17. बाड़मेर	57,038	1.36
18. भरतपुर	30,436	0.72
19. सीकर	36,552	0.87
20. जोधपुर	40,088	0.95
21. झुन्झुनु	23,077	0.55
22. अजमेर	32,183	0.76
23. जैसलमेर	10,680	0.25
24. चुरू	5,619	0.13
25. नागौर	2,984	0.07
26. गंगानगर	5,095	0.12
27. बीकानेर	1,496	0.03

उदयपुर जनजातियों की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण जिला है। गौरीशंकर, हीराचन्द ओझा, शेरिंग और कर्नल टॉड आदि की पुस्तकों सन्दर्भो से ज्ञात होता है कि राजस्थान में दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी भाग में भील निवास करते है जो मुख्यतया डूंगरपुर, बांसवाडा तथा कोटा जिलों तक विस्तृत है। जयपुर के पूर्व में आमेर और बूंदी तथा करौली क्षेत्र में मीणा जनजाति मुख्य रूप से निवास करती है। इस प्रकार राजस्थान की मुख्य जनजातियों में मीणा, भील, गरासिया, सहारिया, डमोर और सांसी मुख्य है। अन्य जनजातियों में भाखा, टावड़ी, बावली, काठोडियां कालीधोर, नेकदा, पटिलिया, ढोली, भील, पाटवा आदि भी है।

राजस्थान में जनजातियों का भौगोलिक वितरण

भौगोलिक वितरण की दृष्टि से राजस्थान में जनजातियों को निम्नांकित तीन क्षेत्रों में विभाजित किया गया है --

(i) **दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र**—इस क्षेत्र में राजस्थान के अलवर, भरतपुर, धौलपुर, जयपुर, सवाईमाधोपुर, अजमेर, भीलवाडा, टोंक, कोटा, बूंदी झालावाड़ जिले तथा चित्तौड़गढ़, उदयपुर व सिरोही जिलों के कुछ भाग सम्मिलित है। इस क्षेत्र में राजस्थान की कुछ अनुसूचित जनजातियों का 49.06% मिलता है तथा इस क्षेत्र में मुख्य जनजातियां भील, मीणा तक सहरिया पायी जाती हैं।

(ii) **दक्षिणी क्षेत्र**—इस के अन्तर्गत राजस्थान के बांसवाड़ा, डूंगरपुर और उदयपुर आदि जिलें आते हैं जहाँ राजस्थान की कुल जनजातियों का 43.80 प्रतिशत निवास करता है। इस क्षेत्र में पायी जाने वाली जनजातियों में भील, मीणा, गरासिया तथा डमोर मुख्य हैं।

(iii) **पश्चिमी क्षेत्र**—इस क्षेत्र के अन्तर्गत राजस्थान के झुन्झुनूं, सीकर, चूरू, गंगानगर बीकानेर, जैसलमेर, नागौर, जोधपुर, पाली, बाड़मेर, तथा जालौर जिले सम्मिलित है। इस प्रकार पश्चिमी राजस्थान के शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क प्रदेश के 11 जिलों पर राजस्थान की लगभग 7.14 प्रतिशत जनजातियां निवास करतीं है। इन में भील एवं मीणा जनजातियां मुख्य रूप से पायी जाती है।

राजस्थान में जनजातियों की कुछ जनसंख्या का लगभग 96% भाग ग्रामीण और लगभग 4% भाग नगरीय क्षेत्रों में जीवन-यापन करता है।

राजस्थान की प्रमुख जनजातियां
(Main Tribes of Rajasthan)

राजस्थान के विभिन्न भागों में अनेक जनजातियां निवास करती है किन्तु यहां केवल मुख्य जनजातियों का ही विस्तृत विवरण दिया जा रहा है।

मीणा

राजस्थान में मीणा जनजाति सर्वाधिक संख्या में पायी जाती है। कुल मीणा जनजाति का लगभग 51.20% भाग राजस्थान के केवल तीन जिलों अर्थात जयपुर, सवाईमाधोपुर तथा उदयपुर में निवास करता है जबकि शेष भाग अलवर. चित्तौड़गढ़, कोटा, बूंदी व डूंगरपुर जिलों में निवास करता है।

मीणा जनजाति की उत्पत्ति मीणा का शाब्दिक अर्थ है मत्स्य या मछली। पौराणिकता की दृष्टि से इस जनजाति का सम्बन्ध भगवान मत्स्यावतार से है लेकिन इस तथ्य की पुष्टि हेतु प्रमाणों का अभाव है परन्तु श्री चन्द्रराज भण्डारी ने अपने भगवान महावीर नामक ग्रन्थ में लिखा है कि मत्स्य कुरु राज्य के दक्षिण में यमुना के पश्चिम में अर्थात अलवर, भरतपुर व जयपुर जिलों के दक्षिण में स्थित था और यहाँ के शासक मेना (मीणा) कहलाते थे। इस प्रकार वर्तमान के मीणा इन्हीं के वंशज है और क्षेत्रीय वितरण की दृष्टि से भी यह देखा जाये तो ये लोग इसी क्षेत्र में अधिक संख्या में रहते है।

मीणा जनजाति की उपजातियां—मीणा जनजाति में मुख्य रूप से दो वर्ग मिलते है—(i) जमींदार मीणा, (ii) चौकीदार मीणा। दक्षिण के मीणाओं को निम्न कुल का माना जाता है जबकि उत्तर-पूर्व के मीणा अपने को उच्च वर्ग का मानते है। दोनों वर्गों में खान-पान और विवाह आदि सम्बन्ध भी नहीं होते है।

उच्च मीणा वर्ग आमेर (जयपुर) और इनके समीपीय क्षेत्रों में निवास करते है जबकि निम्न मीणा वर्ग उदयपुर, कोटा, बूंदी और चित्तौड़गढ़ क्षेत्रों में पाये जाते है।

मीणा जनजाति 24 खापों में बंटी हुई है। इनके वहीं भाट (जागा) के अनुसार मीणा जनजाति की 13 पाल, 32 तड़ तथा 5,200 गोत्रों में विभक्त है। 13 पालों में देसपाल, खेतपाल, प्राचीनपाल, जवपाल, रावतपाल, मालापाल, पडियारपाल, मैलापाल, चिमरपाल, भेदपाल, चोयतपाल, पारपाल, और भेवपाल है। मीणा जनजाति में प्रमुख समझे जाने वाले परिमीणा, पडियारमीणा, मैलामीणा, मेरमीणा, रावतमीणा आदि है। मीणा जनजाति के मुनि 'मगर सागर' द्वारा लिखित 'मीणा पुराण' के सन्दर्भ से इनके 5,200 मीणा गोत्रों के होने की पुष्टि होती है।

मीणा जनजाति का सामाजिक जीवन—मीणा जनजाति में विवाह सम्बन्धों, नातेदारी तथा रक्त सम्बन्धी नातेदारी को महत्वपूर्ण माना जाता है। वहिन के

पति का अधिक सत्कार किया जाता है, तथा अन्य सम्बन्धों का निर्वाह भी ये सम्मानपूर्वक करते हैं। मीणा जनजाति के लोगों में न केवल गोद प्रथा पाई जाती है बल्कि किसी भी उम्र का सम्बन्धी गोद लिया जा सकता है परन्तु निकटतम सम्बन्धियों को प्राथमिकता देनी होती है।

मीणा जनजाति में ब्रह्म विवाह, गान्धर्व विवाह एवं राक्षस विवाहों का प्रचलन था। इन विवाहों में मीणा लोग युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात स्त्रियों को पकड़ लेते थे तथा उन्हें युद्ध का उपहार समझते हुये उन से विवाह कर लेते थे परन्तु वर्तमान में अब विवाह स्वाभाविक रूप से सम्पन्न होते है।

मीणा जनजाति में विवाहोपरान्त विवाह-विच्छेद का भी अधिक प्रचलन है क्योंकि विवाह विच्छेद का तरीका काफी सरल हैं। यदि पति-पत्नि का मन एक दूसरे से हट जाये अथवा किसी अन्य कारण से वे विवाह सम्बन्ध नहीं रखना चाहे तो पति दुपट्टे का कुछ भाग फाड़कर स्त्री के हाथ में देने से पति-पत्नि के सम्बन्ध समाप्त समझ लिये जाते है।

पति त्यागिता भी अन्य पति चुन सकती है। पति द्वारा त्यागी गई स्त्री उसी वस्त्र को जो पति द्वारा दुपट्टे से फाड़ा गया था, को हाथ में लेकर व सिर पर जल से भरे दो मटके तले ऊपर रखकर इच्छित मार्ग से चल देती है और जो भी पुरुष सर्वप्रथम उस त्यागी गयी स्त्री के सिर से जल के मटके उतारता है, वही उसका भावी पति होता है। विवाह-विच्छेद का यह विशेषाधिकार मुख्यतया पुरुषों को प्राप्त होता है लेकिन मीणा स्त्रियाँ भी ऐसा कर सकती है। मीणा लोग पत्नि के अलावा यौन सम्बन्धों को प्रायः पसन्द नहीं करते हैं।

मीणा जनजाति परिवार में प्रारम्भ से ही पितृवंशीय परम्परा है तथा पारिवारिक व्यवस्था संयुक्त परिवार के अनुसार है। पुरुष व स्त्रियां सभी समान रूप से कार्य करते है। मीणा स्त्रियां बड़ी ही परिश्रमी, साहसी व धैर्यशील होती है। ये पुरुषों के साथ कृषि, घरेलू उद्योग-धन्धे तथा युद्ध आदि में बराबर का सहयोग करती है।

मीणाओं का धर्म—मीणा हिन्दु राजपूतों के प्रति निकट रहे हैं। अतः इन का धर्म हिन्दू ही है। ये शक्ति के उपासक है और दुर्गा माता की पूजा करते है। कुछ मीणा लोग शिवजी की भी उपासना करते है। इनमें पितरों को जल-अर्पण करने की रस्म भी मिलती है। ये जादू-टोने में भी विश्वास करते है।

मीणा जनजाति की अर्थ व्यवस्था—मीणा जनजाति दो वर्गों में विभक्त है —(i) जमींदार अथवा काश्तकार मीणा, (ii) चौकीदार मीणा। जमींदार मीणा कृषक होने के कारण कृषि कार्य में संलग्न है तथा साथ ही साथ पशुपालन को भी अपनाये हुये हैं। चौकीदार मीणा चौकीदार का कार्य करते है। चौकीदार मीणा अपने को ऊंचा मानते है। वैसे इन चौकीदार मीणों से सभी घबराते है तथा इनको चौकीदारी की लाग देते रहते है। ये समय पड़ने पर दूर-दूर तक लूटमार कर आते है। कुछ मीणा लूट-पाट में विशेष विश्वास करते हुये अपना जीवन-यापन इसी से करते है। लेकिन अब इनमें धीरे-धीरे सुधार हो रहा है।

सरकारी आरक्षण नीति के फलस्वरूप मीणा जनजाति के लोग अब पढ़लिख कर जयपुर और सवाईमाधोपुर जिलों में उच्च सरकारी पदों पर आसीन है। ये लोग जयपुर राज्य के कछवाहा राजपूतों द्वारा प्राधिपत्य जमाने के पहले यहाँ के शासक थे। अभी भी राजपूत समाज में इन का आदर किया जाता है।

भील (BHILS)

यह राजस्थान की दूसरी प्रमुख जनजाति है। आर्थिक दृष्टि से ये लोग स्थायी रूप से कृषक, सामाजिक दृष्टि से पितृसत्तात्मक जनजाति एवं परम्परागत रूप से एक अच्छे तीरन्दाज होते हैं। वर्तमान में यह जनजाति विकास के विभिन्न चरणों से गुजर रही है। भील जनजाति राजस्थान के बांसवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर, सिरोही, चित्तौड़गढ़ और भीलवाड़ा जिलों में मुख्य रूप से निवास करती है। भीलवाड़ा क्षेत्र सम्भवतः भील के निवास-क्षेत्र की ओर ही संकेत करता है। इन जिलों के अतिरिक्त यह जनजाति राज्य के पर्वतों और जंगलों में निवास करती है।

भील जनजाति की उत्पत्ति—इन की उत्पत्ति किस प्रजाति विशेष से हुई, इसके बारे में एक मत नहीं है। मानवशास्त्री इन्हें मुंडा (Munda) जाति के वंशज

मानते हैं क्योंकि इनकी भाषा में मुंडारी शब्दों का अधिक प्रयोग किया जाता है। हैडन ने इन्हें पूर्व-द्रविड़ों की पश्चिमी शाखा माना है, रिजले और क्रूक इन्हें द्रविड़, प्रो. गुहा इन्हें प्रोटो-आस्ट्रेलायड प्रजाति से सम्बन्धित मानते हैं। वेंकटेश्वर के अनुसार ये प्रोटो-मैडिटरेनियन प्रजाति के वशंज है। **कर्नल टॉड** के अनुसार ये तत्कालीन मेवाड़ राज्य-अरावली पर्वत श्रेणियों में रहने वाले लोग हैं, जिन्होंने राणा प्रताप को अकबर के विरुद्ध युद्ध करने में सहायता दी थी और तभी से ये मेवाड़ राज्य के चिन्ह में अंकित किये गये थे। **संस्कृत साहित्य** में इन्हें **निषाद या पुलिन्द** जाति से सम्बन्धित माना गया है जिनकी उत्पत्ति महादेव की एक भील उपपत्नी से हुई मानी जाती है।

शाब्दिक अर्थ से 'भील' का अर्थ 'तीर' चलाने वाले व्यक्ति (Bowman or Archer) से लिया गया है। यह द्राविड़ भाषा का शब्द है जिसकी उत्पत्ति बिल (Bil) या विल (Vil) अर्थात तीर से हुई है। ये लोग सदैव अपने पास तीर-कमान रखते हैं और शताब्दियों पूर्व से पशुओं का आखेट कर जीवन निर्वाह करते आये हैं।

भील की उपजातियाँ—भील जनजाति में राजपूतों के रक्त मिश्रण की पूर्ण सम्भावनाएँ है। अतः परमार, चौहान, दूबल, गोयल, बूंदी, राण्ड, देया, लोटिया, मोलखी, नोचिया, भाटी, करवा, कलेदा, चुर, यडेडा, लिडिया, अलिया, कडवा आदि भील गोत्रों वाली जनजाति में राजपूत तत्वों का अविरल रक्त मिश्रण होता रहा है परन्तु द्रावी, जारगट, लेखिया और गेटार आदि भील गोत्रों में राजपूतों के रक्त का सम्मिश्रण नहीं है।

शारीरिक लक्षण—भील लोग छोटे कद के होते हैं। इनका रंग गाढ़ा काला तथा नाक चौड़ी होती है तथा बाल रूखे, आंखें लाल, जबड़ा कुछ बाहर निकला हुआ होता है। हाथ-पैर की हड्डियां मोटी होती हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां सुन्दर होती हैं। स्त्रियों का रंग गेहुआ तथा आंखों का रंग कत्थई से गहरा कत्थई होता है। इनका शरीर सुगठित एवं सुन्दर होता है।

वस्त्राभूषण—गरीबी के कारण भील लोग प्रायः मोटे, सस्ते तथा बहुत कम कपड़े पहनते हैं। पुरुष अधिकतर अंगोछा लपेटे रहते हैं। इसे फालू (Falu) कहते है। इसके ऊपर बण्डी, सिर पर पगड़ी बांधते हैं। जब घर पर रहते हैं तो केवल लंगोटा (Khoytu) तथा पगड़ी पहनते हैं। स्त्रियां प्रायः लाल या काले रंग का फालू पहनती है, यह सम्पूर्ण छातियों को ढकता है। इस वस्त्र को कछावू (Kachawo) कहते है। अब भील स्त्रियां चोली (अंगरूठी) भी पहनने लगी हैं।

भील-स्त्री पुरुषों को गोदने-गुदाने का बड़ा चाव होता है। स्त्रियाँ गले में चांदी की हसली या जंजीर, नाक में नथ, कानों में चांदी की बालियाँ और हाथों में छल्ले तथा सिर पर बोट और पांवों में पीतल की पैंजनियाँ पहनती हैं।

बस्तियाँ और घर—भीलों के गांव सामान्यतया छोटे अर्थात 20 से 200 झोपड़ियों वाले होते हैं जो पहाड़ी ढ़ालों, जंगलों तथा नदियों के किनारे दूर-दूर तक फैली बस्तियों के रूप में होते हैं। इन की बस्तियाँ प्रकीर्ण (Dispersed) वर्ग मे रखी जाती हैं। झोपड़ियाँ पास-पास न बनाने के कई कारण बताये जाते हैं—(i) अग्नि कांड से बचने के लिये, (ii) एक दूसरे की बीमारी से बचने के लिये, (iii) पड़ौसी भील की जादू आदि के भय से, तथा (iv) अपनी स्त्रियों को पड़ोसी भील के सम्पर्क में न आने देने के उद्देश्य से।

भील के घरों को कू (Koo) कहा जाता है। ये घर आयातकार होते है। इन की दीवारें बांस या पत्थर की, फर्श मिट्टी या पत्थर का तथा छत खपरैल या घास-फूस की बनाई जाती है। झोपड़ियों को बांस के टट्टरों से विभाजित कर के कमरे विभक्त कर लिये जाते है। रसोई के लिये, अलग कमरा होता है।

एक गांव में यदि बीमारी फैल जाती है अथवा पशु मरने लगते है तो गांव को छोड़कर दूसरे स्थान का चुनाव बसने के लिये किया जाता है। गांव के स्थान के चयन में जलाशय की निकटता का विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक भील परिवार में एक छोटी बैलगाड़ी होती है जो इन के वाहन का काम देती है।

भोजन—इनके भोजन में मक्का की रोटी तथा कोदों का भात मुख्य होता है। ये मांसाहारी भी होते हैं क्योंकि कृषि उपजें आवश्यकता की पूर्ति के लिये अपर्याप्त होती हैं। महुआ से बनी शराब तथा ताड़ का रस व

पिया जाता है। प्रायः दिन भर की आय का आधा भाग शराब में व्यय कर देते हैं।

सामाजिक व्यवस्था—भीलों की सामाजिक व्यवस्था बड़ी संगठित होती है। इन की पूजा, विवाह विधियां, जीवन क्रम की विशेष पद्धति होती है। भीलों में संयुक्त परिवार प्रथा है। पिता ही घर का मुखिया होता है और सभी सदस्य उसके निर्देशों की पालना करते है। पिता को ही सम्पत्ति सम्बन्धी सारे अधिकार होते है। स्त्रियों को कम अधिकार प्राप्त है किन्तु घर की व्यवस्था, खेती के कार्यों में उनका पूरा योगदान रहता है। शादी के पश्चात लड़का परिवार से अलग रहता है, परन्तु सभी सामाजिक कार्य पिता के जीवनकाल में उसके संरक्षण में अथवा पिता के घर किये जाते है। पिता से प्राप्त जायदाद से लड़का अपनी पत्नि और बच्चों का भरण-पोषण करता है।

भील के गांव प्रायः एक ही वंश की शाखा के होते है। इन के मुखिया को **तदवी** और वंसाओं कहा जाता है। भील जाति अनेक छोटे-छोटे समूहों में विभक्त होती है, जिन्हें अटक, ओदाख, गोत्र, या कुल (Clan) कहते है। एक ही अटक के सदस्य एक ही पुरखे के वंशज होते के कारण अन्तर्विवाह नहीं करते है। भील लोग बहिर्विवाही (Exogamous) होते है। यह एक विवाह (Monogamy) में ही विश्वास करते है। सामान्यतः विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष की ओर से होता है। इनमें कन्या का मूल्य देना पड़ता है। पत्नी की मृत्यु के बाद उसकी छोटी बहिन से विवाह कर लिया जाता है। देवर भौजाई के विवाह का भी चलन है। यद्यपि पति पत्नियों का परित्याग नहीं करते किन्तु पत्नियां पति का परित्याग कर सकती है। भीलों में विवाह के पूर्व लड़की के सन्तान होना कोई असामान्य घटना नहीं मानी जाती है किन्तु विवाहोपरान्त पत्नी को पतिव्रत धर्म का पालन कठोरता से करना पड़ता है।

भील स्वभाव से भोले परन्तु वीर, साहसी एवं निडर होते है। ये स्वामीभक्त भी होते है। इनके छोटे गांव को **फला** और बड़े गांव को पाल कहते है। पाल का नेता **ग्रामपति** का मुखिया कहलाता है जो सामाजिक आर्थिक और व्यक्तिगत झगड़ों को निपटाता है। भीलों में पंचायत प्रधान होती हैं। इनमें सामुदायिक उत्तरदायित्व की भावना बहुत प्रबल होती है। और अगर किसी समूह के लोग किसी भील पर आक्रमण करते या चोट पहुंचाते है तो लोग उसे पूरे गांव का आक्रमण मानते हैं और सामूहिक रूप से उस का बदला लेते हैं।

धर्म—भीलों का धर्म अधिकतर हिन्दू धर्म से ही प्रभावित है, अतः ये हिन्दूओं के देवी देवताओं जैसे महादेव, राम, कालिका, दुर्गा, हनुमान, गणेश, शीतलामाता और आदि की पूजा करते है। ये जादू-टोने में काफी विश्वास रखते हैं। मृत्योपरान्त जीवन में ये विश्वास रखते हैं। मृतकों को जलाते हैं और हिन्दुओं की भांति ही कर्मकाण्ड करते हैं। लगभग हिन्दुओं के सभी त्यौहारों को मनाते हैं परन्तु होली इनका विशेष त्यौहार है।

अर्थव्यवस्था—आर्थिक दृष्टि से भील जनजाति अत्यन्त निर्धन है। जीविका के साधनों के अभाव में भुखमरी और उन की आवश्यकताओं के प्रति शासन की उदासीनता ने उन्हें अपराधी जीवन व्यतीत करने को बाध्य किया है।

भील लोग परम्परा से घुमक्कड़ स्वभाव के होते हैं किन्तु अब अनेक भागों में ये कृषि करने लगे हैं। लगभग 86% भील कृषि कार्यो में 10% कृषि मजदूरी तथा 4% वन शिकार व खान खोदने में संलग्न हैं। पहाड़ी ढालों के वनों को जलाकर प्राप्त की गई भूमि में वर्षाकाल में अनाज, दालें, सब्जियाँ बो दी जाती हैं। इस प्रकार की खेती को **चिमाता** (Chimata) कहते हैं। मैदानी भागों में भी वनों को काटकर भूमि में चावल, मक्का, मिर्ची, ज्वार, बाजिरा गेहूं, चना, पपीता, बैंगन, कद्दू, रताल्‌ आदि बोये जाते हैं। इस प्रकार की खेती को दजिया (Dajia) कहा जाता है। अब खेती हेरफेर के ढंग (Rotation of Crops) से की जाती है।

भील स्त्री और पुरुष निकटवर्ती तलावों तथा नदियों से जालों के सहारे मछलियाँ भी पकड़ते हैं। जंगल में तीर-कमान, फन्दे, गोफन और जालों की सहायता से पक्षियों, जंगली सूअर, चीते आदि का भी शिकार करते हैं। लड़के और स्त्रियाँ वनों से खाद्य जड़े, वृक्षों की पत्तियाँ एवं कोपलें, फल, गाठें, शहद आदि भी एकत्रित करती हैं। जहां कृषि भूमि का अभाव है, वहां भील

पशुपालन से अपना जीविकोपार्जन करते हैं। भील लोग भैंस, गाय, बैल, भेड-बकरियाँ और मुर्गियाँ भी पालते हैं। कुछ भील श्रमिक तथा लकड़हारों का कार्य भी करते हैं।

वर्तमान में भीलों का सम्पर्क नगरीय क्षेत्रों से होने के कारण अब वे चतुर एवं चालाक बन गये हैं। इनमें शिक्षा का प्रचार भी हो गया है। आधुनिक वेश-भूषा भी ये पहनने लगे हैं तथा अधिक सभ्य होते जा रहे हैं। भारत व राज्य सरकार भी इन्हें अधिक सुविधाएँ प्रदान कर इनके जीवन को विकसित करने में सहयोग दे रही है।

गरासिया जनजाति

राजस्थान में मीणा और भील के बाद गरासिया तृतीय बड़ी जनजाति है। इसे ग्रासिया (Grassia) भी कहते हैं। इस जनजाति का मुख्य क्षेत्र दक्षिणी राजस्थान है। इनकी सर्वाधिक जमाव उदयपुर जिले में 56·63% है। इनकी संख्या समग्र आदिवासी जनसंख्या का 6·70% है।

गरासिया जनजाति की उत्पत्ति—गरासिया जनजाति चौहान राजपूतों के वंशज हैं। ये मूलतः बड़ौदा के निकट चैनपारीन क्षेत्र से चित्तौड़ के निकट आये थे। अब इन्होंने अपनी सभी राजपूती आदतों को त्याग दिया है और भीलों की पुत्रियों से विवाह कर उन्हीं के अति निकट आदिम प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं।

गरासिया का पारिवारिक और सामाजिक जीवन—गरासिया जनजाति में पितृसत्तात्मक व पितृवंशीय परिवार पाये जाते हैं। पिता का परिवार में सर्वोच्च स्थान होता है, वही परिवार के भरण-पोषण का दायित्व संभालता है। स्त्रियाँ भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर प्रत्येक कार्य को बड़े साहस व परिश्रम से करती हैं। वे पति व परिवार की खूब सेवा करती हैं।

गरासियों में तीन प्रकार के विवाह प्रचलित हैं (i) मोर बंधिया, (ii) पहरावना और (iii) ताणना।

मोर बंधिया विवाह के अंतर्गत विवाह के बहुत कुछ हिन्दुओं में प्रचलित ब्रह्म विवाह के अनुरूप होता है। इस विवाह में फेरे, चौरी और मोर बांधना आदि रस्में पूरी की जाती हैं और विवाह के उपरान्त ब्राह्मण को दक्षिणा भेंट की जाती है। **पहरावना विवाह** में नाममात्र के फेरे होते हैं और विवाह की रस्म को पूरा करने के लिए ब्राह्मण की कोई आवश्यकता महसूस नहीं की जाती है। **ताणना विवाह** में न तो कोई सगाई की रस्म पूरी होती है और न ही चौरी और फेरों की रस्में ही पूरी होती हैं। इस प्रकार के विवाह में वर पक्ष कन्या पक्ष को कन्या मूल्य वैवाहिक भेंट के रूप में देता है। इस प्रकार से जब वर अपनी वधू स्वयं पसंद कर लेता है तो वह अपनी इस वैवाहिक पसंद या स्वीकृति को उस कन्या को जंगल में पशु चराते समय छूकर व्यक्त करता है। तदोपरान्त पंचों को एकत्र किया जाता है। पंच विवाह में दिये जाने हेतु भेंट निश्चित करते हैं जो वर पक्ष कन्या पक्ष को देता है। यह लगभग 12 बछड़े और 12 थान कपड़ा होता है। प्रत्येक पंच को भी 1 बछड़ा और 1 थान कपड़ा मिलता है। उसके बाद वर कन्या को अपने घर ले जाता है।

गरासिया जनजाति में विधवा विवाह का भी प्रचलन है। एक विवाहित स्त्री से कोई दूसरा पुरुष उसके जीवित पति को वैवाहिक भेंट देकर विवाह सम्पन्न कर सकता है। विवाह सम्बन्ध से बाहर यौन सम्बन्ध स्थापित करने के ये लोग बहुत खिलाफ हैं और इस प्रकार के अवैध सम्बन्ध स्थापित करने वालों को कठोर सजा दी जाती है।

गरासिया जनजाति के लोग शिव, भैरव और दुर्गा देवी की पूजा करते हैं। ये अत्यन्त अंधविश्वासी होते हैं। सफेद रंग के पशुओं को वे पवित्र मानते हैं चाहे वह गाय हो अथवा भेड़ या बकरी। गरासिया जनजाति में शव जलाने की प्रथा है और इनका मृत्यु के 12 वें दिन अंतिम संस्कार होता है।

गरासिया जनजाति के लोग बड़े उत्साह से त्यौहारों को मनाते हैं। होली और गणगौर इनके प्रमुख त्यौहार हैं। इस अवसर पर गरासिया स्त्री व पुरुष दलबद्ध होकर नाचते-गाते और खुशी मनाते हैं। स्त्रियाँ जौ के पौधे अपने सिर पर रखकर गोला बनाकर नाचती हैं और पुरुष इनके चारों ओर ढोल बजाकर नाचते हैं।

गरासिया जनजाति अपने-अपने गाँव में पंचायतों

का गठन करती हैं। पंचायत बड़े-बूढ़ों की परिषद् मानी जाती है। इसका प्रधान गाँव का मुखिया होता है। पंचायत ही गाँव के लोगों के व्यवहार पर नियंत्रण करती है और आपसी झगड़ों का निपटारा करती है। पंचायत और मुखिया के आदेशों का पालन किया जाता है। गरासिया पंचायत यौन सम्बन्धों को बड़ी गम्भीरता से लेती है और यौन व्यवहारों के सम्बन्ध में अत्यन्त कठोरता देखने को मिलती है।

गरासिया जनजाति की अर्थ-व्यवस्था— गरासिया दक्षिण राजस्थान के ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी क्षेत्र में निवास करते हैं। कुछ लोग माउंट आबू के दक्षिणी भाग में भी रहते हैं। गरासिया मुख्य रूप से पशुपालन और कृषि करते हैं। भीलों के सम्पर्क में आने पर इनके व्यवसाय भीलों की भांति ही दृष्टिगोचर होते हैं। गरासिया मुख्यतः राणाओं के कृषि श्रमिकों का जीवन व्यतीत करते हैं। 85% गरासिया कृषि कार्यों में संलग्न हैं। इन के यहां एक ही फसल होती है। वर्ष के शेष समय में ये लोग लकड़ी काटने, मजदूरी करने, ढोर चराने व शिकार करने आदि का कार्य करते हैं।

सांसी जनजाति

राजस्थान में साँसी जनजाति भरतपुर जिले के कुछ भागों में खानाबदोश जीवन व्यतीत करती हैं।

सांसी जनजाति की उत्पत्ति—सांसी जनजाति की उत्पत्ति सांसमल नामक व्यक्ति से हुई मानी गई है।

सांसी जनजाति की उप जातियाँ— सांसी जनजाति दो भागों में विभक्त है। प्रथम बीजा और दूसरी माला कहलाती है।

सांसी जनजाति का पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन— सांसी जनजाति खानाबदोश जनजाति है। इनका कोई स्थायी निवास नहीं होता। परिवार सदस्य गिरोह के रूप में अपना डेरा-तम्बू लेकर जगह बदलते रहते हैं।

ये बहिर्विवाही होते हैं अर्थात् अपने समूह के अंदर विवाह नहीं करते हैं। विवाह निश्चित करना माता-पिता का कर्त्तव्य होता है। विवाह से पूर्व यौन सम्बन्ध स्थापित करना अवैध माना जाता है और ऐसे लोगों के साथ कठोर दण्ड की व्यवस्था रखी गई है। इन लोगों में सगाई की रस्म बहुत ही अनोखे ढंग से मनाई जाती है और वह इस रूप में कि जब दो खानाबदोश समूह संयोग से घूमते-घूमते एक स्थान पर मिल जाते हैं तो सगाई हो जाती है। और गिरी के गोले के लेनदेन मात्र से विवाह पक्का मान लेते हैं।

राजस्थान के सांसियों में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं है परंतु मृतक भाई की स्त्री को दूसरा भाई रखैल के रूप में अक्सर रख लेता है। इस प्रकार यह जनजाति अपने परिवार की स्त्रियों को बाहर के पुरुषों से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने से रोकने के लिए प्रयास करते हैं।

सांसी जनजाति मूल रूप से हिन्दू ही हैं और इनमें हिन्दूओं की भाँति ही देवी-देवताओं का पूजन होता है। होली व दीपावली के अवसर पर वे देवी माता के सम्मुख बकरों की बलि चढ़ाते हैं। ये लोग नीम, पीपल और बरगद आदि वृक्षों की भी पूजा करते हैं।

सांसी जनजाति के लोग माँस और शराब बहुत पसंद करते हैं। माँस में लोमड़ी और साण्ड का माँस अधिक पसंद किया जाता है।

यह जनजाति अपने को भंगियों से भी नीचा मानती है क्योंकि ये भंगियों का झूठन तक भी खा लेते हैं। ये भंगियों का बड़ा सम्मान करते हैं और अपनी स्त्रियों को उनके सम्मुख नचाते-गवाते हैं और आपसी झगड़ों में उन्हीं के द्वारा निपटारा कराते हैं।

सांसी जनजाति की अर्थ-व्यवस्था—सांसी जनजाति घुमक्कड़ी जीवन व्यतीत करते हैं। इनका कोई स्थायी व्यवसाय नहीं है। वे एक जंगल से दूसरे जंगल में घूमते रहते हैं। जंगली पशुओं का शिकार करते हैं और छोटे-छोटे हस्तशिल्प व कुटीर व्यवसायों में कार्य करते हैं। सरकारी सहायता से इन्हें स्वावलम्बी बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

सहरिया

इस जनजाति का 99.47% भाग कोटा जिले में रहता है। कोटा की शाहबाद पंचायत समिति में इनकी संख्या सर्वाधिक है। कोटा जिले के समग्र आदिवासी जनसंख्या के लगभग 20% सहरिया हैं। कर्नल टॉड ने सहरियों को मीणा, भील और गुर्जरों की भांति राजस्थान के आदिवासी बतलाया है। इनमें कई गोत्र

राजपूतों के समान है यथा चौहान, देवड़ा, सोलंकियां, बाघेल आदि।

सामाजिक व्यवस्था— सहरिया जनजाति के गांव सहरोल कहलाते हैं जहां यह अपने घर एक साथ बनाकर रहते हैं। इनकी बस्तियाँ प्रकीर्ण नहीं होती है।

सहरिया स्वभाव से सन्तोषी, हिंसा एवं अपराध से दूर रहने वाले हैं। भीलों में जिस तरह ढोल बजते अथवा चीत्कार करते सब भील एकत्रित हो जाते हैं, उस प्रकार ये एकत्रित नहीं होते। सहरिया अपने स्वभाव के इतने पक्के हैं कि इन्हें भूख से मरना मंजूर है लेकिन भीख कहीं नहीं मागेंगे।

सगोत्र में विवाह वर्जित है। कन्या की गोद में मीठा रखकर सगाई सम्बन्ध पक्का किया जाता है। शादी में पंडितों की जरूरत नहीं पड़ती। गांव के पंच ही शादी करवा देते हैं। लड़के-लड़कियों की शादी बालिग होने पर ही होती है। इस जाति में मुखिया को कोतवाल कहते हैं।

श्रावण, श्राद्ध, नवरात्रा, दशहरा, दीपावाली, होली, आखातीज आदि पर्व मनाते हैं। रात्रि को ढोलक, मंजीरों से गाते हैं।

सहरिया बांस, घास, कांस की कुटिया में जीवन व्यतीत करते हैं। पुवाड की सब्जी खाते एवं मीठे की पूर्ति जंगल में मिलने वाले महुवा फलों से करते हैं। सहरिया लड़के एवं लड़कियाँ मोटा मुहं व अच्छी कद-काठी वाले तन्दुरुस्त होते हैं लेकिन भीलों की तरह बहादुर नहीं होते। साक्षरता इनमें केवल नाम की है। सहरिया क्षेत्र में **आश्रम स्कूलों** की व्यवस्था पंचायत समिति के आधीन है। इस कारण वे अव्यवस्था के शिकार हैं और वे अधिक लाभान्वित नहीं हो सके। इनमें चेतना नहीं है। अपने अधिकार के लिये लड़ने की सामूहिक शक्ति व विश्वास भी उनके पास नहीं है। केवल विधायक हीरालाल सहरिया ही सहरिया जाति में बी.ए. पास किये हुए हैं।

अर्थ-व्यवस्था— सहरिया लोगों को जहां समतल भूमि मिल जाती है, उस स्थान पर कृषि एवं पशुपालन करते हैं। ज्वार मुख्य कृषि उपज है तथा साथ ही इनका मुख्य भोजन भी है। पशुओं से दूध, मांस चमड़ा प्राप्त कर लेते हैं। ये लोग मांसाहारी भी हैं और बकरे, सूअर तथा भेड़ का मांस खाते हैं। सहरियों में 45% लोग कृषि में संलग्न हैं। 35% कृषक मजदूरों के रूप में कार्य करते हैं। इस के अतिरिक्त कुछ लोग वनों से लकड़ी तथा वन उपज एकत्रित करने में तथा खनन कार्य में लगे हैं।

राज्य सरकार सहरियों के विकास के लिये प्रयासरत है लेकिन वास्तविक लाभ इन्हें प्राप्त नहीं हो सका है। सन 1984 तक सहरियों के क्षेत्र में मात्र 70 हजार रुपये कृषि पर खर्च किये गये। 48 हजार सहरियों की चिकित्सा पर 29 हजार, पेयजल पर 5 लाख 64 हजार, विद्युतीकरण पर 6 हजार का प्रावधान था। इनके क्षेत्र में मामूनी की **संकल्प संस्था** ने अच्छा कार्य प्रारम्भ किया है। इस संस्था में जहां शहरों के सम्पन्न, पढ़े लिखे युवक सहरिया आदिवासियों के साथ रहते हैं, वैसा ही खाते हैं। उनमें चेतना जागृत करने के साथ उनके शोषण का विरोध भी सशक्त रूप में करते हैं।

डामोर

राजस्थान के दक्षिणी क्षेत्र के डूंगरपुर जिले की सीमलवाड़ा पंचायत समिति और बांसवाड़ा जिले में गुजरात की सीमा पर डामोर जनजाति पायी जाती है। डामोर राजस्थान के समग्र आदिवासियों का 0.63% है। इन क्षेत्रों के अलावा कुछ डामोर चूरू, गंगानगर और उदयपुर जिलों में भी मिलते हैं। ये अपनी उत्पत्ति राजपूतों से बतलाते हैं क्योंकि इनके कई गोत्र राजपूतों से मिलते जुलते हैं।

सामाजिक संगठन—डामोर अपने आपको राजपूत मानते हैं। इनके झगड़ों का निपटारा पंचायत द्वारा होता है। ये लोग मांसाहारी तथा शराब प्रिय हैं। पुरुष भी स्त्रियों की भांति गहने पहनने के शौकीन हैं। इनके वैवाहिक सम्बन्ध अपनी ही जाति में होते हैं। स्त्रियां पति की मृत्यु के बाद नतरा भी करती हैं। बच्चों के मुण्डन आदि की प्रथा है। ये अन्ध-विश्वासी भूत-प्रेत तथा जादू-टोने में विश्वास करते हैं। वर्तमान में इनमें शिक्षा प्रसार से इनका जीवन स्तर सुधर रहा है।

अर्थ-व्यवस्था—ये लोग मुख्य रूप से कृषक हैं। वर्षा होने के उपरान्त ये मक्का, चावल आदि की खेती करते हैं। जगलों में पाये जाने वाले जानवरों का शिकार भी करते हैं। डामोर लोग चावल या अन्य मोटा अनाज

खाते हैं। डामोर लोगों में 93% लोग खेती करते हैं। खेती में ज्वार, मक्का, बाजरा, गेहूँ, गुड़चनी, कूरी, कोदरा, उड़द, तथा अन्य दालें आदि पैदा कर लेते हैं।

कंजर

कंजर एक घुमन्तू जाति है जो अपराध वृत्ति के लिये प्रसिद्ध है। कंजर जाति के लोग आज भी चोरी डकैती, लूटमार व राहजनी को ही बुजुर्गों की विरासत मानते हैं। इस जाति को सभ्य बनाने में राज्य सरकार ने विगत वर्षों में विविध प्रयास किये हैं, अतः इनमें कुछ सुधार भी होने लगा है।

कंजरों की उत्पत्ति के बारे में ऐतिहासिक दृष्टि से कोई प्रामाणिक तथ्य नहीं मिलते हैं। कंजर नाम संस्कृत शब्द 'काननचार' अथवा 'कनकचार' का अपभ्रंश है जिसका अर्थ होता है जंगलों में विचरण करने वाला। राजस्थान में इनके मुख्य क्षेत्र कोटा, बूंदी, झालावाड़, भीलवाड़ा, अलवर, उदयपुर व अजमेर जिले हैं।

कंजरों की पहचान यह है कि ये सामान्य कद के होते हैं और पैदल चलने में इनका मुकाबला नहीं। कंजर औरतें होती तो सुन्दर हैं लेकिन ये गन्दी रहती हैं। पुरुष कंजर की मुख्य पहिचान उसकी भूरी एवं खिंची हुई आंखें होती हैं।

कंजरों के मकान में किवाड़ नहीं होते हैं। मकान के पृष्ठ भाग में एक खिड़की जरूर होती है जिसका ये उपयोग भाग कर गिरफ्तारी से बचने के लिये करते हैं।

सामाजिक व्यवस्था—कंजरों की कुछ अलग प्रथाएँ हैं और ये अपने रीति-रिवाजों का पालन भी वर्षों से करते आ रहे हैं। इस जाति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें एकता बहुत होती है। एकता का कारण इनके परम्परागत धन्धों की सुरक्षा के लिये अपनी ही जाति की पंचायत के आदेशों को सर्वोपरि मानना है। कंजर परिवारों में पटेल का स्थान प्रमुख होता है और यही सर्व-सर्वा होता है। पटेल-पटेलिन न केवल स्वयं चोरी में हिस्सा लेते हैं बल्कि चोरी, डकैती या राहजनी में पकड़े गये कंजर के परिवार को सुरक्षा देना भी इनकी जिम्मेदारी होती है। नियमों का उल्लंघन करने वालों को पंचायत के नियमानुसार जुर्माना भुगतना पड़ता है। आपस में झगड़ा हो जाने पर पंचायत से दंडित किये जाने का प्रावधान है। किसी मामले की सच्चाई जानने के लिये सम्बन्धित आदमी को "हाकम राजा का प्याला" पीकर कसम खानी पड़ती है। यह कसम इस जाति में सबसे बड़ी मानी जाती है। इसके बाद कंजर जो भी बात करता है उसे सच माना जाता है। चौथमाता और हनुमानजी को ही अक्सर अपना आराध्य देव मानते हैं।

कंजर महिलाएँ नाचने गाने में प्रवीण होती हैं। वर्ष 1987 के प्रारम्भिक दिनों में कंजर जाति की चार महिलाओं ने विदेशों में भी नृत्य पेश किये हैं। कंजर महिलाएँ घाघरे के बदले खूसनी (चुस्त पायजामा) ज्यादा पहनती हैं जो रंगीन छापल कपड़े की बनी होती है। विवाह हेतु वर पक्ष को कन्या पक्ष को कुछ रकम देनी होती है तभी सम्बन्ध होता है। तलाक की प्रथा का भी इनमें चलन है। तलाक कोई भी पक्ष दे सकता है। अगर तलाक पति चाहता है तो वधु को दी गयी रकम वह वापिस नहीं मांग सकता परन्तु तलाक की स्वीकृति जातीय पंचायत देती है। मरते समय व्यक्ति के मुंह में शराब की कुछ बूंदे डाली जाती हैं। मृतकों को गाड़ने की भी प्रथा है। यह जाति मांसाहारी व शराब प्रिय होती है। स्त्रियां व बच्चे भी पुरुषों के साथ ही शराब पीते हैं। इनकी स्त्रियाँ वैश्यावृत्ति को भी अपनाये हुऐ हैं।

अर्थ-व्यवस्था—कंजर लोग चोरी, डकैती व राहजनी को आज भी अपने बुजुर्गों की विरासत मानते हैं लेकिन अब कुछ कंजर श्रमिकों के रूप में तथा ठेला व टेम्पुओं को चलाने में भी कार्यरत हैं। चोरी, डकैती तथा राहजनी जैसी वारदात पर जाने से पूर्व ये लोग विभिन्न तरीकों से शुगन-अपशुगन देखते हैं। ईश्वर का आर्शीवाद भी प्राप्त करते हैं, इसे **पाती मांगना** कहते हैं।

कंजर मांसाहारी होते हैं, अतः ये लगभग सभी प्रकार के पक्षियों का शिकार कर उनके मांस का सेवन करते हैं। राष्ट्रीय पक्षी **'मोर'** का मांस इन्हें सर्वाधिक प्रिय होता है।

राजस्थान की जनजातियां एवं उनके विकास हेतु कार्यक्रम

देश को स्वतन्त्र हुए चालीस वर्ष से भी अधिक हो गये लेकिन जनजातियों की स्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ है। कैसी विडम्बना है कि चौथी पंचवर्षीय योजना तक तो इस दृष्टि से सोचा भी नहीं गया कि उनकी

स्थिति अन्य ग्रामीणों से भिन्न है, इसलिये उनके विकास की विशेष योजना बनाई जाये।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में जनजातियों के विकास हेतु अलग से किसी भी राशि का आवंटन नहीं किया गया। द्वितीय से चतुर्थ पंचवर्षीय योजना तक आदिवासी क्षेत्र पर 97.54 करोड़ रुपया खर्च किया गया। **द्वितीय पंचवर्षीय** योजना की अवधि में जनजाति क्षेत्रों के विकास में कृषि तथा उससे सम्वद्ध योजनाओं को प्राथमिकता दी गई। वर्ष 1956 में बांसवाड़ा जिले में कुशलगढ़ में वहुउद्देशीय जनजाति विकास खण्ड विशेष रूप से आरम्भ किया गया। **तृतीय एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजना** में जनजाति विकास कार्यक्रम 18 विकास खण्डों में आरम्भ किया गया। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से शिक्षा, कृषि, सिंचाई, स्वास्थ्य सुविधाऐं उपलब्ध कराने तथा विकास के लिये मूलभूत ढांचा तैयार करने का काम किया गया। जनजाति विकास खण्ड प्रति एक लाख की आवादी में 66.66% जनजातियों की आवादी के आधार पर खोले गये है। लेकिन इसका लाभ विशेष रूप से अन्य वर्गों ने ही उठाया, इस योजना को वन्द कर दिया गया।

पांचवी योजना में जनजाति उपयोजना का दृष्टिकोण स्वीकार किया गया। इसके अन्तर्गत बांसवाड़ा, डूंगरपुर जिले, उदयपुर जिले की सात पंचायत समितियां, चित्तौड़गढ़ जिले की दो पंचायत समितियां तथा सिरोही जिले की आवूरोड़ पंचायत समिति सम्मिलित है। इन क्षेत्रों में जनजाति के लोगों की कुल आवादी 18.30 लाख है तथा यह 4409 गांवों में रहती हैं। तेरह जिलों के 2939 गांवों में लगभग दस लाख जनजाति के लोग हैं, जिनके लिये सरकार ने संशोधित क्षेत्रीय विकास (माडा) योजना बनाई। इस योजना से जनजातियों के जीवन स्तर को उन्नत करने, गरीवी मिटाने, बेरोजगारी समाप्त करने तथा जनजाति क्षेत्र में आधार तंत्र खड़ा करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। जनता शासन के दौरान 1979 में **जनजाति विकास विभाग** पृथक रूप से स्थापित किया गया। इससे पूर्व यह कार्य **समाज कल्याण विभाग** के पास था।

कोटा जिले की शाहवाद और किशनगंज पंचायत समिति के 435 गांवों के लगभग पचास हजार सहरिया रहते हैं; जिन्हें आदिम जाति माना जाता है। राज्य सरकार ने जनजाति उपयोजना (टाडा) माडा तथा सहरियों के लिये तीन प्रकार की योजनाऐं बनाई, जिनका संचालन भी अलग से किया जाता है। इनके जीवन स्तर को देखते हुये इनके विकास के लिये वनाऐ गये कार्यक्रमों में शिक्षा, कृषि तथा स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास को प्राथमिकता दी गई है। इस जनजाति उपयोजना का उद्देश्य इन जनजातियों में गरीवी और बेरोजगारी को कम करना, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के माध्यम से उनके जीवन स्तर में सुधार लाना, आय और सम्पत्ति की विषमताओं को कम करना तथा जनजाति क्षेत्रों के प्राकृतिक साधनों के अधिकतम उपयोग के लिये मूलभूत ढांचा तैयार करना आदि शामिल हैं।

छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक राज्य में दस हजार की आवादी पर 1½ के अनुपात में संस्थाऐं खोल दी गयी थी, वहीं जनजातियों के लिये 1.1 के अनुपात में ही खुल पाई थी। शिक्षा के क्षेत्र में ये सर्वाधिक पिछड़े हुये हैं। राज्य की सामान्य साक्षरता दर 24·38% के मुकावले जनजातियों में 10·27% है। जवकि जनजाति महिलाओं में यह केवल 1·20% हैं।

सातवीं योजना के प्रथम वर्ष 1985-86 तक 533·92 करोड़ रुपया खर्च कर दिया गया। इसमें से 400 करोड़ रुपया सिंचाई, विजली और कृषि पर, 6 करोड़ रुपया आर्थिक व अन्य सामान्य सेवाओं पर खर्च किया गया। परिणामस्वरूप स्कूल बढ़े, सिंचित क्षेत्र में 3½ गुना वृद्धि हुई, अन्न का उत्पादन 1½ गुना हो गया, पेयजल, विजली तथा सड़कों की सुविधाओं में बढ़ोतरी हुई लेकिन जनजाति लोगों में से केवल डेढ़ प्रतिशत लोग ही गरीवी रेखा से ऊपर उठ पाये। वर्ष 1988-89 में बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य में जनजाति के 70 हजार परिवारों को लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया है। दिसम्बर 1985 में राज्य सरकार ने यूनीसेफ के सहयोग से समन्वित **नारू उन्मूलन की एक परियोजना** चालू करने के लिये समझौता किया। बारह करोड़ की यह संयुक्त परियोजना पांच वर्षीय योजना है। 1990 तक डूंगरपुर और बांसवाड़ा जिले में नारू रोग के उन्मूलन के साथ शुद्ध पेयजल की व्यवस्था करना इसका

प्रमुख लक्ष्य है।

अब तक राजस्थान में स्कूल व छात्रावास चलाने का काम शिक्षा विभाग, औषधालय एवं चिकित्सा केन्द्र चलाने का काम चिकित्सा विभाग और अन्य कल्याणकारी सेवाएं सम्बन्धित विभागों के आधीन चल रही थी लेकिन अगस्त, 1988 में राज्य सरकार ने यह निर्णय लिया है कि अब जनजाति क्षेत्रों में ये तमाम सेवाएँ **जनजाति विकास विभाग चलायेगा** लेकिन अभी तक यह विभाग कोई ऐसी विशेष उपलब्धि अर्जित नहीं कर पाया है जिससे विश्वस्त हुआ जा सकें कि इसके अन्तर्गत आने से जनजाति के लोगों का अधिक भला होगा। सम्भवतः अधिक अधिकार प्राप्त होने तथा अधिक धन राशि के आवंटन होने से यह जनजाति क्षेत्रों में त्वरित गति लाने में सफल हो जाये।

राज्य की अनुसूचित जातियों के आर्थिक-उत्थान को त्वरित गति प्रदान करने के लिये मार्च, 1980 में **अनुसूचित जाति-विकास सहकारी निगम** की स्थापना की गई। निगम अपनी विभिन्न योजनाओं जैसे पैकेज ऑफ प्रोग्राम योजना, स्काईट योजना, यार्न योजना, आटो रिक्शा योजना, दुकान योजना, बुनकर शेड़ योजना, तथा प्रशिक्षण योजना आदि के अन्तर्गत इन लोगों को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराये जाने तथा उन्हें स्वावलम्बी बनाये जाने की दिशा निरन्तर प्रयासरत है परिणामस्वरूप इसने विशेष केन्द्रीय सहायता योजना के अन्तर्गत 224.58 लाख रुपये की राशि 66,608 व्यक्तियों को सुलभ करवायी।

जनजाति विकास के लिये **माणिक्य लाल वर्मा शोध संस्थान** प्रतिबद्ध है। उदयपुर में आयड़ नदी के किनारे स्थित यह संस्थान पिछले 25 वर्षों से जनजाति लोगों के लिये निरन्तर प्रयासरत हैं। इस संस्थान ने आदिवासी जनजीवन, संस्कृति और समस्याओं का बारीकी से अध्ययन किया है और आज भी उन्हें उनके एकान्त से निकालकर राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा से जोड़ने, उनकी पहचान बरकरार रखने को यह संस्थान सतत् प्रयत्नशील है। 1979 में यह संस्थान जनजाति विकास निगम के आधीन चला गया। इस संस्थान का यह उत्तरदायित्व है कि वह पांचवी योजना से लेकर अब तक विभिन्न सरकारी योजनाओं की क्रियान्विती व प्रभावों का मूल्यांकन तथा जनजातियों की भावी जरूरतों के अनुसार योजनाओं का निर्धारण करें, उनकी क्रियान्विती के लिये मार्गदर्शन प्रदान करें। जनजाति समुदाय के विभिन्न पहलुओं पर शोध कार्य करवाये। जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग के तहत आने के बाद इस संस्थान का बहुमुखी विकास सम्भव हुआ है। संस्थान इस ध्येय से प्रयासरत है कि जनजाति विकास इस प्रकार हो कि इनका जीवन स्तर सुधरे और सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से ये लोग राष्ट्रीय धारा से जुड़े और उनका व्यक्तित्व मौलिकता लिये हुये उभर कर सामने आये। जनजाति क्षेत्र में बढ़ती बेरोजगारी, अज्ञान व यौन रोग पर रोक के लिये शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराने, शराब सेवन और उसका अवैध निर्माण जैसी कुरीतियों के अलावा वनों के प्रति प्रेम जगाने की दिशा में ठोस प्रयासों की महत्ती आवश्यकता हैं, अन्यथा जनजाति के लोग वहीं के वहीं रह जायेगें जहाँ वे आज से पांच दशक पूर्व थे। इन लोगों में चेतना का संचार करती **वनवासी कल्याण परिषद, उदयपुर** भी सक्रिय है जिसने इन दिनों 'वनवासी को गले लगाओं' का अभियान चला रखा है और हर सम्भव तरीके से इनकी सहायता में संलग्न हैं।

जनजाति क्षेत्रों के विकास के साथ वहाँ औद्योगीकरण की दिशा में कुछ प्रगति दृष्टिगोचर होने लगी है। आज से लगभग 10 वर्ष पूर्व बांसवाड़ा में जब आधुनिक कपड़ा मिल को स्थापित करने की चर्चा हुई तब यह एक हास्यापद विषय लगा था लेकिन आज बांसवाड़ा सिन्टेक्स में 1200 लोगों को रोजगार मिला हुआ है। तब से अब तक तीन अन्य कपड़ा उद्योग और एक लघु सीमेन्ट संयन्त्र यहां कार्यरत हैं। जनजाति क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों में 96 करोड़ रुपये का पूंजी विनियोजन किया जा चुका है। इनमें से 56 करोड़ रुपया तो कपड़ा उद्योग में ही लग गया है। इनमें से 4 बांसवाड़ा में, एक डूंगरपुर में, 6 उदयपुर में एवं एक सिरोही में है। पैट्रोसिन्थेटिक्स के एक अभिनव उद्योग ने तो गत वर्ष ही उदयपुर के पास सुखेर में उत्पादन आरम्भ किया है। इसी प्रकार यहाँ इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग भी पनप गये हैं। फ्लोपी डिस्क का उत्पादन सुखेर में अप्रेल 1986 में ही आरम्भ हुआ है।

यहीं वह पदार्थ है जो कम्पयूटर की याददाश्त के रूप में कार्य करता है। इसी प्रकार लाइन प्रिन्टर्स, प्रिन्टेड सर्किट बोर्ड तथा अन्य इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग भी काफी सम्भाव्यताएँ रखते हैं। तीनों ही उद्योग देश में प्रथम है। बांसवाड़ा, उदयपुर, सिरोही एवं चित्तौड़गढ़ जिलों में 18.30 लाख जनजाति के लोग हैं जो 42 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत हैं। खनिज है तो सड़कें नहीं हैं, पानी एवं खाद्यान की कमी के कारण भी यह बहुचर्चित हैं। पिछड़ेपन को सम्पूर्ण रूप से दूर करने के लिये अधिक धनराशि चाहिये। फिर भी औद्योगीकरण को दूसरी वरीयता प्राप्त है क्योंकि खाद्यान्न, पानी एवं चारा ज्यादा जरूरी है। सूखे की स्थितियों के कारण कई कार्यक्रम अस्त व्यस्त हो जाते हैं। फिर भी उद्योगों की समीपता ने जनजाति लोगों के जीवन को एक मोड़ दिया है जिसे देखा व अनुभव किया जा सकता है।

भारत सरकार और राजस्थान सरकार राज्य की विभिन्न जनजातियों के आर्थिक विकास हेतु निम्नलिखित सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास कर रही है—

(i) कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण
(ii) शिक्षा व प्रशिक्षण हेतु छात्रवृत्ति व अनुदान के रूप में आर्थिक सहयोग
(iii) बेरोजगारी भत्ता
(iv) कृषि, कूप निर्माण, ऋण एवं ब्याज का पुनर्भरण
(v) कृषि भूमि का आवंटन
(vi) सरकारी ऋण
(vii) औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना
(viii) आवासीय भूखण्डों का आवंटन
(ix) नियोजन
(x) राजस्थान नहर क्षेत्र में भूमि एवं भवन निर्माण के लिये अनुदान
(xi) बसों व टेम्पुओं के क्रय हेतु ऋण

*

सूखा एवं अकाल

राजस्थान राज्य में वर्ष 1952-53 से 1987-88 तक की अवधि में 1959-60, 73-74, 75-76, 76-77 व 1983-84 को छोड़कर शेष वर्षों में अकाल पड़ा है। राज्य में अरावली श्रृंखला के पश्चिमी भाग शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क हैं जहाँ पर वर्षा अल्प होती है जबकि पूर्वी भाग आर्द्र है लेकिन अर्थ-व्यवस्था का आधार कृषि हैं। कृषि पर आधारित अर्थ व्यवस्था के लिये प्राकृतिक कारक सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते है। अत: राज्य में कृषि मानसूनी जुआ है। विभिन्न वैज्ञानिक प्राविधियों की उपलब्धि के बाद भी कृषि व्यवस्था प्रकृति की कृपा पर निर्भर है। अत: सन् 1952 से 1988 तक की 36 वर्षों की अवधि में केवल मात्र 5 वर्ष ही ऐसे रहे जब राज्य में सूखा व अकाल नहीं पड़ा अर्थात शेष 31 वर्षों में राज्य में जल का अभाव रहा और विशेषकर राजस्थान के ऐसे क्षेत्र जो मरुस्थली है, वहाँ स्थिति और भी भयानक हो जाती हैं।

जो क्षेत्र सूखा व अकाल के कारण जल के अभाव से ग्रस्त है, वे हमेशा से ऐसी स्थिति में नहीं रहे हैं। पुरातत्वविदों का मत है कि राज्य का मरू क्षेत्र प्राचीनकाल में हरा-भरा तथा जन-बहुल था। शास्त्रों में सरस्वती नदी का उल्लेख है जो किसी समय थार मरू में से होकर गुजरती थी। धीरे-धीरे यह नदी सूख गई और इसके आस-पास का हरा-भरा क्षेत्र मरू में परिणत होता चला गया। अब मरू की जनता भूमिगत जल पर निर्भर करती है। वैसे इस प्रदेश को फिर से हरा-भरा बनाने के लिये इन्दिरा गांधी नहर परियोजना को विकसित किया गया है। परन्तु वर्षा न होने की स्थिति में एक ओर जहाँ भूमिगत जल का स्तर नीचे चला जाता है, वही दूसरी ओर इन्दिरा गांधी नहर को भी पानी उपलब्ध नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप मरूवासियों का जीवन संकट में पड़ जाता है। गत वर्ष 1987-88 के अकाल को **महा अकाल** कहा जा सकता है क्योंकि प्रदेश में सूखे का यह लगातार चौथा वर्ष था जिसने अकाल की विभीषिका को बद से बदत्तर बना दिया। स्थिति इतनी विषम हो गई कि कृषि कार्यों के साथ-साथ पेयजल की समस्या भी विकट हो गई।

वैसे राजस्थान के लिये अकाल व सूखे की स्थिति कोई नवीन समस्या नहीं है लेकिन राज्य की जनता को इन परेशानियों से मुक्ति दिलवाने हेतु अकाल के स्थायी समाधान किये जाने की आवश्यकता है और इसके लिये योजनाबद्ध विकास को अपनाया जाना चाहिये।

सूखा व अकाल के कारण

राज्य की अर्थ व्यवस्था मानसून पर आधारित है, इसलिये अकाल का प्रमुख प्राकृतिक कारण मानसून की अनियमितता एवं अनिश्चितता है। इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य निम्न कारण हो सकते है जो अकाल की स्थिति उत्पन्न होने में सहायक है।

(i) फसलों का रोग ग्रस्त हो जाना
(ii) वनों का विनाश
(iii) ओला वृष्टि
(iv) अत्यधिक वर्षा
(v) पर्यावरण में असन्तुलन
(vi) पानी का अवैज्ञानिक एवं अतार्किक उपयोग
(vii) स्थायी जल-नीति का अभाव
(viii) अकाल से निपटने की दीर्घकालीन योजना का न होना

अकाल का प्रभाव

राज्य में कुल कृषि योग्य भूमि 26,606 लाख हेक्टेयर है और इसमें से वास्तविक बोया गया क्षेत्रफल 163·41 लाख हेक्टेयर (1984-85) था जिसके केवल 25% भाग पर सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध है। अत: यहाँ की खरीफ फसल पूर्णरूपेण वर्षा के ऊपर निर्भर है। अकाल की स्थिति उत्पन्न होने पर राज्य की लगभग 70% जनसंख्या, जो कृषि से उदरपूर्ति प्राप्त करती है, प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है अर्थात् उसका आर्थिक ढांचा चरमरा जाता है, उसकी क्रय-शक्ति समाप्त हो जाती है और ऋण लेने के लिये बाध्य होना पड़ता है लेकिन प्रदेश में गत चार वर्ष निरन्तर अकाल व सूखा पड़ने से कृषक ऋण के बोझ तले दबता चला गया। इस लिये अकाल को दरिद्रनारायण का पूर्वजन्म का अभिशाप भी कहा जाता है। जनता की कार्य क्षमता पर भी अभाव का प्रभाव पड़ता है। भूख व कुपोषण से भी लोग प्रभावित होते हैं।

वर्षा की कमी के फलस्वरूप चारे की कमी हो जाती है। फलस्वरूप चारे के भावों में अप्रत्याशित वृद्धि पशु-पालकों को और भी संकट में डाल देती है। पशु व्यवसाय अनार्थिक प्रमाणित होने लगता है। पशुओं का पलायन ऐसे क्षेत्रों की ओर होने लगता है, जहाँ चारे की सुविधा उपलब्ध हो सके अन्यथा चारे की कमी व जल के अभाव में पशु मरने लगते हैं।

वर्षा के अभाव के फलस्वरूप पेयजल की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। राजस्थान के प्रमुख शहरों, नगरों व अधिकांश मरु भागों में पेयजल की समस्या एक विकट रूप लिये हुए है। पेयजल की विकटता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जाता है कि जोधपुर शहर में पेयजल की व्यवस्था रेल-टैंकरों के द्वारा की गई। कई शहरों में पेय-जल की आपूर्ति दो दिन से पांच दिन के अन्तराल के पश्चात करवाई गई। ग्रामीण महिलाओं को 10-15 किमी. की दूरी से मात्र एक मटका पानी का लेने को जाना पड़ा।

सूखा व अकाल का प्रतिकूल प्रभाव केवल फसलों, पशुओं, पेयजल तथा चारा आदि पर ही नहीं पड़ता बल्कि राज्य की समग्र अर्थव्यवस्था पर दृष्टिगोचर होता है। कृषि फसलों का नष्ट होना, उद्योगों के लिये कच्चे माल का संकट, श्रमिकों की कार्य क्षमता में कमी, जनता की क्रय-शक्ति में ह्रास, औद्योगिक उत्पादन में गिरावट, वनों का विनाश, वस्तुओं की मांग में कमी, बेरोजगारी, ऋण-ग्रस्तता आदि स्थितियाँ अकाल के दुस्परिणामों के रूप में दृष्टिगत होती हैं।

अकाल की स्थिति

ऐसा लगता है जैसे राजस्थान में अकाल स्थाई रूप से पैर जमाकर बैठ गया है और इसका स्थाई समाधान स्व-तन्त्रता के 41 वर्षों के पश्चात भी नहीं खोजा जा सका है। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने राजस्थान के 11 पश्चिमी जिलों को स्पष्टत: मरुस्थलीय माना है जो राजस्थान के कुल क्षेत्रफल के 60% भू-भाग तथा जनसंख्या के 40% भाग को रखते हैं। यहाँ हमेशा अकाल एवं दुर्भिक्ष का प्रकोप बना रहता है क्योंकि अरावली पर्वत श्रेणियों के पश्चिम में स्थित होने के कारण प्राय: इस प्रदेश में मानसून विफल हो जाते हैं। साथ ही यहाँ भूमिगत जल का स्तर अधिक गहराई पर मिलता है। गत वर्षों से लगातार वर्षा न होने के कारण सम्पूर्ण राज्य भयंकर अकाल से पीड़ित रहा और उससे निपटने के लिये पूर्णरूपेण संघर्षरत है। परिणामस्वरूप इस समस्या से मुक्त होने के लिये सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रमों व योजनाओं को अपनाया गया जिनकी क्रियान्वति के लिये विशेष प्रयास किये जा रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में किये गये सरकारी प्रयासों का विवरण इस प्रकार है—

1. अकाल ग्रस्त क्षेत्रों में **'राहत कार्य'** प्रारम्भ करना सरकार की प्रमुख नीति है जिसके अन्तर्गत उन क्षेत्रों की जनता को सड़क निर्माण, कुओं व तालावों का निर्माण, भूसंरक्षण व वृक्षारोपण कार्यक्रम, स्कूल भवन और औष-धालय भवन निर्माण व उनकी मरम्मत आदि राहत कार्यों पर रोजगार उपलब्ध करवाया जाता है और जनता को अकाल से उत्पन्न संकट से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया जाता है।

2. राजस्थान में सूखे की समस्या के स्थायी समाधान खोजने के हेतु 1970 में सरकार ने **'विशिष्ट योजना संगठन'** की स्थापना की। संगठन ने अब तक ग्रामीण विकास की 3408 योजनाएं तैयार की हैं जिनके फल-स्वरूप राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं में वृद्धि हुई है।

3. **सूखा सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम**—वर्ष 1974-75 से प्रारम्भ यह कार्यक्रम सर्वप्रथम राजस्थान राज्य के पश्चिमी भाग के 8 जिलों जोधपुर, नागौर, पाली, जालौर, बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर तथा चूरू एवं दक्षिणी राज-स्थान के डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा जिलों में लागू किया गया तथा शनैः शनैः राज्य के 13 जिलों के 79 विकास खण्डों में शुरू किया गया। अन्य तीन जिलों की 6 तहसीलें जिनमें अजमेर की ब्यावर तहसील, उदयपुर की भीम, देवगढ़ एवं खेरवाड़ा तथा झुन्झुनूं की झुन्झुनूं व चिड़ावा तहसीलों को सम्मिलित किया गया।

वर्ष 1982-83 में भारतीय सरकार द्वारा गठित कमेटी की सिफारिश पर मरू क्षेत्र के 9 जिलों के 61 विकास खण्डों में भी इस कार्यक्रम को समाप्त कर दिया गया परन्तु दक्षिणी राजस्थान के बांसवाड़ा, डूंगरपुर और अजमेर के 18 विकास खण्डों में इसे प्रारम्भ किया गया।

वर्ष 195-86 में केन्द्र सरकार की स्वीकृति मिलने पर इस कार्यक्रम को चार और जिलों के 12 विकास खण्डों में लागू किया गया।

इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार के विकास कार्य सम्पन्न करवाये जाये जिसके फलस्वरूप सूखे के प्रभाव को कम किया जा सके। इस हेतु भू-संरक्षण, जल संसाधन विकास, भूमि विकास तथा वन विकास आदि से सम्बन्धित योजनाओं व कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जाती हैं।

वर्ष 1975 में 1979 तक इस कार्यक्रम हेतु केन्द्रीय सरकार 66% वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती थी लेकिन वर्ष 1979-1980 में इसे घटा कर 50% कर दिया गया। वर्ष 1986-87 में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 4.50 करोड़ रूपये के प्रावधान के विरूद्ध 6.71 करोड़ रूपये व्यय किये गये जिनसे इस कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में भूमि विकास भू-संरक्षण, लघु सिंचाई परियोजनाओं एवं वृक्षारोपण आदि कार्य करवाये गये। वर्ष 1987-88 के लिये 4.50 करोड़ रूपये का प्रावधान रखा गया है जिससे 3777 हेक्टेयर भूमि पर भू-संरक्षण कार्य, 1617 हैक्टेयर भूमि पर अतिरिक्त सिंचाई क्षमता, 3108 हेक्टेयर पर चरागाह व वृक्षारोपण 2,15,200 हेक्टेयर पर जल सिंचाई का बेहत्तर उपयोग तथा 16,250 हेक्टेयर पर जलग्रहण क्षेत्र विकास जैसे कार्य करवाने जाने की व्यवस्था की गई है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम को **'राष्ट्रीय प्राथमिकताओं'** में शामिल कर लिया गया है अत: अब केन्द्र सरकार इस के लिये 100% सहायता उपलब्ध कराती है।

4. राहत कार्य—राहत कार्यों के अन्तर्गत भवनों, कुओं व सड़कों का निर्माण, सिंचाई के कार्य, वृक्षारोपण व भू-संरक्षण जैसे कार्य किये जाते है। वर्ष 1986-87 में राज्य की 2.5 करोड़ जनसंख्या व 3200 गांव अकाल से प्रभावित थे जबकि 1987-88 में राज्य के 27 जिलों की 208 तहसीलों के 36,252 गांवों में अभाव की स्थिति की घोषणा की गयी। सूखे से 3 करोड़ 17 लाख 37 हजार जनसंख्या एवं 3 करोड़ 72 लाख 30 हजार पशु प्रभावित हुये है। 74 लाख 36 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में खरीफ की फसल की क्षति हुई है। अतः राज्य सरकार ने जनता को राहत पहुंचाने के लिये निम्न उपाय अपनाए—

(i) अभावग्रस्त गाँवों में भू-राजस्व की वसूली 30 सितम्बर, 88 तक स्थगित की गई है।

(ii) सरकारी अल्प कालीन ऋणों को मध्यकालीन ऋणों में परिवर्तित किये जाने के आदेश प्रसारित किये गये

(iii) राहत कार्यो पर मजदूरों की संख्या 9 लाख तक बढ़ाने की घोषणा की गई।

(iv) चारे की कमी को दूर करने के लिये तीन हजार से अधिक चारा डिपो के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा बिना लाभ एवं हानि के आधार पर पशु पालकों को समस्त चारा उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी है।

(v) उन्नत किस्म की गायों व अन्य पशुधन को बचाने हेतु चारा, पानी व दवाईयां आदि उपलब्ध कराने के लिये विशेष कार्यक्रम बनाये गये जिसमें स्वयंसेवी संस्थाओं, पंचायतों एवं सहकारी संस्थाओं को भी सहभागिता प्रदान की गई है।

(vi) चारे के कमी वाले क्षेत्र में बाहर से चारा लाने के लिये परिवहन अनुदान का प्रावधान किया गया है ताकि उचित मूल्य पर पशुपालकों को चारा उपलब्ध हो सके।

(vii) जिन गांवों में लगातार पांच वर्षो से अकाल पड़ रहा है, वहाँ एक वर्ष का लगान माफ करने का निर्णय लिया गया।

(viii) जनता को आवश्यक वस्तुएें उपलब्ध कराने हेतु सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को मजबूत बनाने का निर्णय लिया गया। सुदूरवर्ती क्षेत्रों में व आदिवासी प्रदेशों में भ्रमणशील दुकानें खोली गयी।

(ix) जैतसर व सूरतगढ़ कृषि फार्मो पर चारा उगाने के लिये विशेष प्रबन्ध किये गये है।

उपरोक्त किये जा रहे प्रयासों से स्पष्ट है कि सरकार अकाल व सूखा की समस्या से निपटने के लिये सतत प्रयत्नशील हैं लेकिन राज्य के आर्थिक साधन

सीमित होने के फलस्वरूप राहत कार्य अकाल की विभीषिका के अनुरूप सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं। अतः केन्द्रीय सरकार को वित्त के अभाव को दूर करने के लिये सम्मुख आना चाहिये। राज्य सरकार ने राहत कार्यो हेतु केन्द्र सरकार से 525 करोड़ रूपयों की मांग की थी परन्तु केन्द्र सरकार ने अभाव की स्थिति से निपटने हेतु वर्ष 1987-88 में 344.60 करोड़ रूपये के व्यय की सीमा स्वीकृत की है। साथ ही 50 प्रतिशत अनुदान पर जितना चाहे उतना अनाज देने का भी आश्वासन दिया। पेयजल उपलब्ध करवाने हेतु हैन्ड पम्प खुदवाने के लिये दस रिगें मय ट्रकों के उपलब्ध करवाई है।

सूखा एवं अकाल की समस्या से निपटने हेतु सरकारी कार्यक्रम—

1. सूखा सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम (Drought Prone Area Programme)—इस कार्यक्रम को सरकार ने 1974-75 में निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रारम्भ किया था—

(i) मरुस्थल के वस्तार को रोकने,

(ii) मरुस्थलीय क्षेत्रों में आर्थिक विकास को त्वरित गति प्रदान करने,

(iii) सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध करवाने,

(iv) पेयजल की व्यवस्था करने,

(v) रोजगार की सुविधाएँ उपलब्ध करवाने तथा

(vi) कृषि विकास हेतु नवीन सम्भावनाओं का पता लगाने आदि इस की स्थापना की गई थी

इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य सूखे के प्रभाव को कम करके ऐसी परिसम्पतियों का निर्माण करना है जिससे रोजगार के साधन उपलब्ध हो तथा ग्रामीणों की आय के स्तर में वृद्धि हो सके। इस समय यह कार्यक्रम 8 जिलों में चल रहा है। वर्ष 1988-89 के लिये 5 करोड रूपये प्रस्तावित है जिस से भू-संरक्षण, सिंचाई वन विकास आदि क्षेत्रों को अधिक प्रोत्साहन दिया जा सकेगा।

2. मरु विकास कार्यक्रम—राज्य के 11 मरुस्थलीय जिलों की 85 पंचायत समितियों का समग्र विकास करने हेतु केन्द्र द्वारा वर्ष 1977-78 में इस योजना को शुरू किया गया था। वर्ष 1979-80 में इस योजना को केन्द्र राज्य के समअंश के आधार पर चलाया गया लेकिन वर्ष 1985-86 से पुनः यह कार्यक्रम पूर्णतः केन्द्र प्रवर्तित योजना के रूप में चल रहा है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में मरू विकास कार्यक्रम के लिये 182 करोड़ रुपये का कुल प्रावधान है। वर्ष 1988-89 में 36.95 करोड़ रुपयों का प्रावधान रखा गया है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भू-संरक्षण, भू-जल विकास, लघु सिंचाई, पशु एवं दुग्ध विकास, पशु स्वास्थ्य, भेड़-विकास, ग्रामीण विद्युतीकरण, वन विकास, पशु पेयजल आदि लाभकारी योजनाऐं हैं जिन पर वर्ष 1981-82 से 1983-84 तक 43.52 करोड़ रुपये, 1984-85 में 13.80 करोड़ रुपये, 1985-86 में 10.96 करोड़ रुपये, तथा 1986-87 में 34.37 करोड़ रुपये व्यय किये गये जबकि 1987-88 में 30 करोड़ रुपयों के विनियोजित का प्रावधान था। यह कार्यक्रम राज्य के 11 मरुस्थलीय जिलों—जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, बीकानेर, नागौर, चूरू, सीकर, पाली, जालौर, झालावाड़ और झुन्झुनूं आदि में क्रियान्वित किया जा रहा है।

3. जलधारा योजना—केन्द्र सरकार ने 'जलधारा' नामक एक विशेष कार्यक्रम की घोषणा की है जिसके अन्तर्गत सूखा प्रभावित क्षेत्रों में सीमान्तिक किसानों को सहायता मिल सकेगी। इस योजना के अन्तर्गत राज्य में वर्ष 1988-89 में 50 हजार कृषक परिवारों के पम्प सैट नाम मात्र के किराये/पट्टा प्रभारों पर सिंचाई के लिये दिये जायेंगे।

4. काम के बदले अनाज योजना—अकाल से पीड़ित क्षेत्रों के लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाने हेतु राज्य सरकार द्वारा वहाँ सड़कों का निर्माण, बांधों का निर्माण कराया जाता है जिससे अकाल प्रभावित क्षेत्रों के लोग पलायन न करें तथा भूख से पीड़ित न हो। इसलिये राज्य सरकार काम के बदले अनाज योजना के अन्तर्गत मजदूरी का भुगतान अनाज के रूप में करवाती है।

5. पेयजल आपूर्ति—राजस्थान जैसे विपरीत भौगोलिक परिस्थितियों वाले प्रदेश में पेयजल की आपूर्ति एक कठिन कार्य है। सूखा एवं अकाल की परिस्थितियाँ

इसे और अधिक दुष्कर बना देती है। पेयजल सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकताओं में है, अतः पेयजल की व्यवस्था राज्य की योजना का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है।

सन् 1950-51 में जहाँ राज्य में एक भी पेयजल योजना नहीं थी वहीं जनवरी, 88 तक 28,343 गांवों को विभिन्न जल योजनाओं के द्वारा पेयजल की सुविधा उपलब्ध करवायी जा चुकी है। सम्पूर्ण राज्य में अकाल एवं सूखे के परिणामस्वरूप आये दिन पेयजल के संकट का अभाव बना रहता है, अतः राज्य सरकार पूर्णरूप से सजग रहते हुये आवश्यकतानुसार नलकूप व हैण्डपम्प खुदवाये गये है तथा अधूरे कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर पूरा करवाया है। वर्ष 1987-88 में दिसम्बर 1987 तक 359 नलकूप व 9213 हैण्डपम्प लगाये गये है तथा 95 नये नलकूपों का निर्माण मार्च 1988 तक करवाने की व्यवस्था की गई।

राज्य की वार्षिक योजना 1988-89 में पेयजल की सुविधा उपलब्ध करवाने के लिये 54 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है जबकि वर्ष 1987-88 में 40 करोड़ रुपये का प्रावधान था। इस वर्ष के प्रावधान से 27 करोड़ 30 लाख रुपये शहरी क्षेत्र जल प्रदाय योजना के लिये और 26 करोड़ 70 लाख रुपये ग्रामीण जल प्रदाय योजना के लिये रखे गये है। राज्य सरकार संकल्परत है कि सन् 1990 तक सभी गांवों को पेयजल की सुविधा उपलब्ध करा दी जायेगी। इसके अन्तर्गत वर्ष 1988-89 में 2200 गांवों को पेयजल की सुविधा देने का लक्ष्य है तथा राज्य के 7 और जिलों जोधपुर, धौलपुर, बूंदी, सीकर, भीलवाड़ा, पाली और सवाईमाधोपुर के समस्त गांवों को पेयजल की सुविधा उपलब्ध कराया जाना प्रस्तावित है।

इसके अतिरिक्त त्वरित जल प्रदाय योजना एवं प्रौद्योगिकी (Technology) मिशन के अन्तर्गत जो योजना बाड़मेर में चल रही है एवं जिसमें चूरू और नागौर का चयन किया गया है, के अन्तर्गत अतिरिक्त 86 करोड़ 80 लाख की धनराशि प्राप्त होने की अपेक्षा है।

अकाल सहायता के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने 12.35 करोड़ रुपये के व्यय की सीमा निर्धारित की है। यद्यपि साधनों की अत्यन्त कमी है फिर भी राज्य सरकार का यह पूर्ण प्रयास रहेगा कि विभिन्न स्त्रोतों से वित्तीय साधनों को जुटाकर बीसलपुर की जल प्रदाय योजना अजमेर, किशनगढ़, ब्यावर की पेयजल समस्या के समाधान हेतु व जोधपुर के लिये इन्दिरा गांधी नहर जल प्रदाय योजना की क्रियान्विति को गति प्रदान की जाये। इसके लिये वर्ष 1987-88 में 9 करोड़ रुपये उपलब्ध कराये गये है। उदयपुर शहर में पेयजल समस्या के दीर्घकालीन हल के लिये मानसी वाकल के जल को उपयोग करने की योजना का प्रारूप तैयार कराया जाना प्रस्तावित है। भरतपुर जिले के डीग कस्बे में पानी पीने योग्य उपलब्ध नहीं होने के कारण नन्द गाँव नहर में यमुना का पानी ले जाना प्रस्तावित है। 95 लाख रुपये की इस योजना पर वर्ष 1988-89 में कार्य प्रारम्भ करना प्रस्तावित है।

राहत कार्यों की समीक्षा—राजस्थान राज्य न केवल कम वर्षा वाला प्रदेश है बल्कि इसमें मरू भूमि का विस्तार भी अधिक है। फलस्वरूप सूखा व अकाल की विकट समस्याएँ इसके लिये बहुत प्राचीन काल से ही निरन्तर बनी रही हैं तभी तो इन्दिरा गांधी नहर जैसी परियोजना को प्रारम्भ किया गया। गत 36 वर्षों में केवल 5 वर्ष-ही ऐसे साबित हुये है जो फसल की दृष्टि से सामान्य रहे हैं अन्यथा हर वर्ष ही सूखा पड़ा है, इस पर भी राज्य सरकार ने हमेशा अल्पकालीन नीति के रूप में ही राहत कार्य चलाये है।

सूखा व अकाल की समस्या से मुक्ति पाने हेतु सरकार को दीर्घकालीन नीति बनानी चाहिये थी लेकिन सरकार ने ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया।

सूखा व अकाल प्राकृतिक कारकों से सम्बन्धित है, अतः इस प्रकार की परिस्थितियों को सर्वदा के लिये समाप्त नहीं किया जा सकता, लेकिन इनकी भयावहता को प्राकृतिक कारकों को दृष्टिगत रखते हुये तर्कसंगत नीतियों के अनुसार किये गये प्रयासों के द्वारा कम अवश्य किया जा सकता है।

सूखा व अकाल से पीड़ित क्षेत्रों में राहत कार्यों का प्रारम्भ समय पर नहीं किया जाना, राजनीतिक हस्तक्षेप का अनुचित दुरुपयोग, इस कार्य में लगी संस्थाओं तथा

व्यक्तियों का भ्रष्ट होना तथा चुनावों के परिणामस्वरूप क्षेत्रों में राहत कार्यों को अपनाना आदि अन्य कारण हो सकते है जिसके कारण पीड़ित क्षेत्रों को आवश्यक राहत नहीं मिल पाती व समस्या और अधिक भयावह बन जाती है। अत: प्राकृतिक प्रकोप से पीड़ित क्षेत्रों में तर्कसंगत नीतियों के अन्तर्गत राहत कार्य करवाये जाने हेतु निम्न सुझाव लाभप्रद हो सकते है—

(i) राहत कार्य उत्पादक हो तथा व्यय की गई राशि स्थायी विनियोग प्रकृति वाली हो अर्थात् पक्की सड़कों, भवन, बांधों, तालाबों व कुओं का निर्माण आदि जैसे राहत कार्य अपनाये जाये।

(ii) राज्य में सूखा व अकाल एक नियमित प्रकृति की समस्या जैसी बन गई है अत: सरकार को पहिले से ही इसके प्रावधान रखने चाहिये। इनके अन्तर्गत खाद्यान्न, चारे का पर्याप्त भण्डार, पानी का तर्कसंगत उपयोग, कृषकों को कम ब्याज दर पर धन की सुविधा उपलब्ध कराने आदि कार्यों को अपनाना चाहिये।

(iii) राहत कार्यों से भ्रष्टाचार को दूर रखा जाये। इस हेतु राहत कार्यों में संलग्न संस्थाओं में ईमानदार व निष्ठ अधिकारियों को नियुक्त किया जाये।

(iv) इन्दिरा गांधी नहर परियोजना के शेष कार्य को यथा शीघ्र सम्पन्न किया जाये ताकि मरु भूमि के इस बड़े क्षेत्र को स्थायी राहत मिल सके।

(v) राहत कार्यों के प्रारम्भ करते समय क्षेत्रीय आवश्यकता को प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

(vi) जिला, खण्ड व पंचायत समितियों के स्तर पर स्थानीय आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुये विकास हेतु व्यावहारिक कार्यक्रम अपनाये जाये ताकि स्थानीय जन सहयोग भी मिल जाये।

(vii) राज्य की योजनानुसार विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा राहत कार्यों में संलग्न संस्थाओं में समुचित समन्वय स्थापित किया जाना चाहिये।

(viii) कृषि के विकास हेतु कृषि पद्धति में सुधार, सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, शुष्क खेती व फसल बीमा जैसे कार्यक्रमों को क्षेत्रीय दृष्टि से लागू किया जाना चाहिये।

(ix) वन विनाश पर रोक तथा वृक्षारोपण को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये ताकि पर्यावरण में सन्तुलन बना रहे तथा प्राकृतिक कारक अपना प्रकोप न दिखा सके।

(x) सूखा व अकाल से निपटने के लिये वित्त की अधिक आवश्यकता होती है, अत: राज्य सरकार के सीमित साधन होने के परिणामस्वरूप केन्द्रों को किसी सुव्यवस्थित नीति के अन्तर्गत अधिक वित्तीय सहायता समय-समय पर उपलब्ध करायी जावे अन्यथा राहत कार्य सूखा व अकाल की भयावहता के अनुकूल समय पर प्रारम्भ नहीं किये जा सकते।

वर्ष 1987-88 में राज्य के 36,252 गांवों के लोग (3 करोड़, 17 लाख, 37 हजार) सूखे व अकाल से पीड़ित थे। साथ ही समस्त प्रदेश की कृषि पर भी इसका प्रभाव पड़ा जिसके कारण राज्य की अर्थव्यवस्था ही चरमरा गई। अत: सरकार व जनता दोनों को ही इस समस्या से निदान पाने हेतु जुट जाना चाहिये तथा इसके समाधान हेतु दीर्घकालीन नीतियों को राज्य की प्राथमिकताओं के अनुकूल अपनाने हेतु योजनाबद्ध तरीके से विचार करना चाहिये।

मरु, अकाल एवं जलसंसाधन—राजस्थान के कुल क्षेत्रफल के 60 प्रतिशत भू-भाग पर मरुस्थल विस्तृत है जो शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क जलवायु के अन्तर्गत आता है। गत कई वर्षो से निरन्तर राजस्थान सूखे से प्रभावित रहा है जिसके लिये केन्द्रीय व राज्य सरकारें सूखा व अकाल पीड़ित जनों को राहत प्रदान करती रही है परन्तु राहत की ये **सारी योजनाएँ समस्या का अस्थाई समाधान मात्र सिद्ध हुई है।**

मरुभूमि क्षेत्रों में वैसे भी जल ही वस्तुत: जीवन है। इसलिये पेयजल की हर बूंद कीमती है। मरुभूमि न केवल कम वर्षा वाला क्षेत्र है बल्कि अवर्षा के कारण भूमिगत जल का स्तर भी नीचे चला जाता है जिससे मरुवासियों का जीवन संकट में पड़ जाता हैं।

प्रश्न यह है कि **जल के अभाव की समस्या को कैसे हल किया जाये** जिससे राज्य सूखा व अकाल जैसी समस्या से किसी हद तक मुक्ति पा सकें।

इस समस्या को विज्ञान तथा औद्योगिकी की सहायता से हल किया जा सकता है। इस हेतु दो उपाय सुझाये जा सकते हैं—

(i) अंतरिक्ष सर्वेक्षण से उन क्षेत्रों का पता लगाया जाए जहां पर जल की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक हो तथा जल स्तर उन्नत हो।

अन्तरिक्ष सर्वेक्षण के अन्तर्गत उपग्रह में विशेष कैमरे लगाकर राजस्थान मरुभूमि तथा इसके आस-पास के क्षेत्रों में जल संसाधन खोजने का कार्य लिये गये चित्रों के अध्ययन से किया जा सकता है। थार मरु के नीचे काफी जल है। प्राचीन सरस्वती नदी के प्रवाह मार्ग से जल प्राप्त किया जा सकता है। लूनी नदी भी मरू में है जो बहते-बहते एक स्थान पर लुप्त हो जाती है। इसके जल का भी उपयोग किया जा सकता हैं।

(ii) सुलभ जल संसाधनों का प्रबन्धन तथा सन्तुलित व्यय इस समस्या के समाधान के लिये दूसरा उपाय हो सकता हैं। इस उपाय का सफल प्रयोग एरिजोना मरु क्षेत्र के टस्कन नगर में किया जा चुका हैं। इस उपाय के अन्तर्गत जल की खपत को घटाना व भूमिगत जल को प्रदूषण से रक्षा करना है। साथ ही सभी को जल की फिजूलखर्ची रोकने तथा न्यूनतम जल का उपयोग करने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। मल जल का सिंचाई तथा पेयजल के रूप में परिष्कृत किया जाना, वर्षा के जल की एक-एक बूंद का बड़े जलगारों (टेन्का) में जमा करना आदि प्रबन्धन के तरीकों को अपनाया जाना चाहिये।

राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में यह तकनीक अपनायी जा सकती है। जल को वाष्पीकरण से रोकने के लिये रेगिस्तानी वनस्पति उगाई जा सकती है, जिसे पानी की कम आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त अनाज की ऐसी संकर किस्में विकसित की जा सकती है जो कम पानी लेकर अधिक उपज दे सकें।

शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों के लिये अतिरिक्त जल की आपूर्ति की स्थायी व्यवस्था भी की जा सकती है जैसे इन्दिरा गांधी नहर। ऐसी कई नहरें जलाभाव ग्रस्त क्षेत्रों की समस्या हल कर सकती हैं।

यह कभी नही भूलना चाहिये कि राजस्थान में जल-आपूर्ति सीमित है। अतः जल संसाधनों का प्रवन्ध हमारी सबसे बडी तात्कालिक समस्या है जिस पर न केवल हम सभी का जीवन आश्रित है वलिक सूखा व अकाल से भी राज्य को स्थायी निदान किसी सीमा तक इसी के द्वारा दिलवाया जा सकता है। सूखे की चुनौती वास्तव में अकल्पनीय है लेकिन साहस, धैर्य और लोगों के सहयोग से इन तकनीकों तथा अन्य सुझावों को अपना कर इस पर काबू पाया जा सकेगा।

3 मरु-विकास एवं बंजर भूमि विकास

(DEVELOPMENT OF DESERT & WASTE LAND)

भौतिक दृष्टि से राजस्थान को अरावली पर्वत श्रृंखला ने उत्तरी पश्चिमी भाग तक दक्षिणी-पूर्वी भाग में विभक्त कर दिया है। राजस्थान के उत्तरी पश्चिमी भाग में स्थित 12 जिलों में से 11 जिले मरुस्थलीय है जिनका विस्तार उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर लगभग 640 कि.मी. तथा पश्चिम से पूर्व की ओर लगभग 300 कि.मी. भू-भाग पर है 1 इस का क्षेत्रफल लगभग 1,75,000 वर्ग किलोमीटर है जिसमें अधिक आर्द्रता के कारण राज्य की लगभग 40% जनसंख्या निवास करती है। राज्य के गंगानगर, बीकानेर, चूरू, सीकर, झुन्झुनूं, नागौर, जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर तथा जालौर जिले इस मरु क्षेत्र में आते है। केवल सिरोही जिला इस प्रदेश में सम्मिलित नही किया जाता है। इस क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व लगभग 57 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

मरु-प्रदेश की धरातलीय सतह का बहुत बड़ा भू-भाग बालू से ढ़का है परन्तु कहीं-कहीं चट्टानी सतह अथवा छोटी-छोटी पहाड़ियाँ पायी जाती है। यह बंजर युक्त हैं तथा इसमें जल का अभाव अत्याधिक है। वर्षा की अल्प मात्रा के कारण प्राय: यह क्षेत्र सूखा व अकाल से पीड़ित रहता है। धूल भरी आंधियों के फलस्वरूप स्थान-स्थान पर रेत के ऊंचे टीले अर्थात धोरे दिखाई देते है जो अपने स्थान तेज हवाओं व आंधियों के कारण बदलते रहते है और नई नई समस्याएँ मानव के लिये उत्पन्न करते रहते है

वर्षा की कमी, ग्रीष्म ऋतु के ऊंचे तापमान शुष्क मरुस्थलीय जलवायु के लिये उत्तरदायी है। ग्रीष्म व शीत ऋतु के तापमानों में अत्यधिक अन्तर मानव जीवन प्रक्रिया को बहुत प्रभावित करते हैं। मरु-प्रदेश में प्राय: सूखे व अकाल की परिस्थितियां रहने पर पशुपालकों को अपने पशुओं के साथ राज्य के अन्य जिलों में अथवा अन्यत्र प्रदेशों में चला जाना पड़ता है। वर्षा की अनिश्चितता व अल्प मात्रा के बावजूद भी राज्य के बोये गये क्षेत्र का लगभग 46% भाग इसी मरु-क्षेत्र में है। इसके लिये काफी सीमा तक इन्दिरा गांधी नहर परियोजना को श्रेय दिया जा सकता है।

राजस्थान के मरु-भू-भाग में न केवल कम वर्षा होती हैं बल्कि इसका वितरण भी असमान हैं जो यहां की मानवीय क्रियाओं को अत्यधिक प्रभावित करती है। मरुस्थलीय प्रदेश हमेशा से ऐसी स्थिति में नहीं रहे हैं। पुरातत्वविदों का मत है कि मरु-क्षेत्र प्राचीनकाल में हरा भरा तथा जन-बहुल था। शास्त्रों में सरस्वती नदी का उल्लेख है। धीरे-धीरे यह नदी सूख गई और इसके आस-पास का हरा-भरा क्षेत्र मरु-भूमि में परिणत होता गया। अत: अगर समुचित तरीके से प्रयास किये जाये तो मरु-भू-भाग का विकास किया जा सकता है। इसके विकास फलस्वरूप न केवल यहाँ की प्राकृतिक विपदाओं का सामना करने की क्षमता उपलब्ध होगी बल्कि समग्र राज्य के आर्थिक विकास में भी इस की भूमिका महत्व-पूर्ण सिद्ध होगी। इसी उद्देश्य से मरु-भू-भाग की जनता के हित में मरुस्थल के विस्तार पर नियन्त्रण सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से आवश्यक हो गया है। मरु भू-भाग के विकास में निम्नांकित तथ्यों का समावेश किया जाना अपरिहार्य है—

(i) भूमिगत जल का प्रबन्धन के अनुरूप विदोहन,

(ii) बालू-टिब्बों का स्थिरीकरण करने हेतु वनस्पति का आवरण प्रदान करना तथा वृक्षारोपण को अपनाना,

(iii) चारे के उत्पादन हेतु चरागाहों का विकास,

(iv) पशुधन का विकास तथा पशुपालन,

(v) मिट्टी-संरक्षण,

(vi) भूमि-उपयोग क्षमता में वृद्धि तथा शुष्क खेती द्वारा कृषि विकास,

(vii) मरूस्थलीय प्रसार रोकने हेतु प्रयास।

अत: इन उपरोक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये राज्य सरकार ने केन्द्र सरकार के सहयोग से मरू-भू-भाग में मरु-विकास कार्यक्रम आरम्भ किये हैं। इन कार्यक्रमों में भू-संरक्षण, वर्षा के जल का अभीष्टतम उपयोग, फसलों की क्रम से बुआई, लघु व माध्यम सिंचाई साधनों का निर्माण, चरागाहों का विकास, पशुपालन एवं डेयरी विकास, वन सम्पदा का विकास, सड़क निर्माण एवं ग्रामीण विद्युतीकरण आदि प्रमुख है।

मरु विकास के प्रमुख कार्यक्रम

1. इन्दिरा गांधी नहर परियोजना—मरु विकास की दृष्टि से यह योजना सभी विकास कार्यक्रमों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत वृक्षारोपण, सिंचाई तथा पेयजल आदि कार्य सम्मिलित है। इस परियोजना के पूर्ण होने पर राज्य की जल समस्या का निदान हो सकेगा, मरु भू-भाग में कृषि विकास होगा। इस मरुस्थलीय प्रदेश का भूदृश्य ही बदल जायेगा। इस नहर की कुल लम्बाई 649 कि. मी. गड़रा रोड (बाड़मेर) तक है। इसकी जल क्षमता 18,500 क्यूसेक्स है। इस नहर का 150 कि.मी. भाग पंजाब व 19 कि.मी. भाग हरियाणा में है। 8 प्रमुख शाखाएँ तथा 60 जलोत्थान करने वाली शाखाएँ हैं। मुख्य नहर के अतिरिक्त 8000 कि.मी. की वितरिकाएँ है। इसकी विस्तृत जानकारी सिंचाई शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत दी गई है।

मरु विकास कार्यक्रम (Desert Development Programme)—वर्ष 1977-78 से केन्द्र सरकार की शत-प्रतिशत सहायता से यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य मरुस्थल के विस्तार को रोकना तथा मरु क्षेत्र का आर्थिक विकास करना है।

ऐसा अनुमान है कि मरुस्थलीय भू-भाग प्रारम्भ में गंगा-सिन्धु के मैदान की भांति उपजाऊ तथा हरे-भरे भू-भाग थे, इसी स्वप्न को पुन: साकार करने के लिये इस कार्यक्रम के द्वारा मरुस्थलीय विस्तार को कम करने तथा रेगिस्तान को नखलिस्तान का रूप प्रदान करने के लिये प्रयास किये जा रहे है। प्रथम दो वर्षों में यह कार्यक्रम पूर्णरूपेण केन्द्र प्रवर्तित था। वर्ष 1979-80 से इसे केन्द्र-राज्य के समअंश के आधार पर चलाया गया लेकिन सातवीं पंचवर्षीय योजना में इसको पुन: केन्द्र प्रवर्तित बना दिया गया है। वर्तमान में यह कार्यक्रम राज्य के 11 मरुस्थलीय जिलों के 85 विकास खण्डों में क्रियान्वित किया जा रहा है। कार्यक्रम के आरम्भ से मार्च, 1988 तक 137.58 करोड़ रुपये व्यय किये गये।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में किये गये प्रयासों का विवरण निम्न प्रकार है—

(i) **भूमि एवं जल संरक्षण**—मरुस्थलीय क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा कम तथा असमान वितरण को दृष्टिगत रखते हुये भूमि एवं जल संरक्षण पर अधिक महत्व दिया गया।

इस हेतु इस क्षेत्र में प्रारम्भिक सर्वेक्षण का कार्य 14.76 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में तथा विस्तृत सर्वेक्षण 7.9 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में सम्पन्न करवाया गया। 63,360 हैक्टेयर भूमि पर चरागाहों के विकास एवं वृक्षारोपण के कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया।

'खड़ीन' कार्यक्रम के अन्तर्गत 852 हैक्टेयर क्षेत्र में खड़ीनों का निर्माण सम्पन्न करवाया गया जिनमें मरु भूमि में नमी को सुरक्षित रखते हुये फसल उगाये जाने के प्रयोग किये जा रहे है। साथ ही 21 भू-खण्डों में 'जिप्सम प्रदर्शन' कर कृषकों को उर्वरकों से सम्बन्धित जानकारी तथा 47 भू-खण्डों में शुष्क खेती प्रणाली की जानकारी प्रदर्शन द्वारा दी गई। जल का उचित उपयोग करने हेतु 39 फुव्वारे सैट छिड़काव प्रणाली द्वारा सिंचाई हेतु लगाये गये।

(ii) **भू-जल अन्वेषण एवं दोहन**—इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 51,776 नलकूपों का रासायनिक विश्लेषण कराया गया तथा 473 सर्वेक्षण कुओं की खुदाई की गई है जिनसे क्षेत्र में पानी की आपूर्ति की जा रही है। 750 कुओं का निर्माण कृषकों के खेतों पर दोहन कार्यक्रम के अन्तर्गत किया गया है।

(iii) **चरागाह विकास**—इस कार्यक्रम के अन्तर्गत मरुस्थलीय प्रदेशों में भेड़ों की नस्ल में सुधार, रख-रखाव तथा चारे की व्यवस्था आदि को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। चरागाह विकास के लिये 138 विकास केन्द्रों का संचालन सहकारी समितियां कर रही है।

(iv) **वनों का विकास**—इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वनों के विकास हेतु 74,396 हैक्टेयर भूमि पर विभिन्न प्रकार के पेड़ों को लगाया गया है। साथ ही 41000 हैक्टेयर भूमि पर वन विकास का कार्य चल रहा है।

(v) **सिंचाई**—जल के अभाव को दृष्टिगत रखते हुये वर्षा जल के पूर्ण उपयोग हेतु छोटे-छोटे तालाब, बांध एवं एनीकटों के निर्माण के प्रयास किये गये है। साथ ही 228 लघु एवं मध्यम श्रेणी की सिंचाई योजनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं परिणामस्वरूप 33,322 हैक्टेयर भूमि में सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध हुई हैं।

(vi) **डेयरी विकास**—इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 15

दुग्ध अवशीतन केन्द्रों का निर्माण कराया गया है जहां पर 2101 दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों द्वारा औसतन 3.6 लाख लीटर दूध प्रतिदिन इकट्ठा किया जाता है। 466 नई दुग्ध सहकारी समितियों का गठन किया गया है। 130 पशु स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना की गयी है। दुग्ध उत्पादन को बढ़ाने, पशुधन के रख रखाव की योजनाएँ भी प्रारम्भ की गई है तथा पशुओं हेतु पेयजल की व्यवस्था भी 421 स्थानों पर की गई है।

(vii) **राष्ट्रीय मरु उद्यान**—मरुस्थलीय जिलों जैसलमेर एवं बाड़मेर के लगभग 3000 वर्ग कि.मी. विस्तृत क्षेत्र में राष्ट्रीय मरु उद्यान की स्थापना प्राकृतिक वनस्पति को सुरक्षित रखने तथा विभिन्न प्राणियों को संरक्षण प्रदान हेतु की गई है। इस पर कुल 2.47 करोड़ रूपये की राशि व्यय करने का प्रावधान है।

सातवीं योजना में मरु विकास कार्यक्रम को काफी महत्व दिया गया है। वर्ष 1988-89 में 36.95 करोड़ रूपयों का प्रावधान मरु विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत रखा गया है।

3. केन्द्रीय मरु क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (CAZRI)—यह संस्थाम मरुस्थल के प्रसार को रोकने तथा वहां कृषि की उपज में वृद्धि से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने के लिये शोध कार्य सम्पन्न करता है। साथ ही मरुभूमि में भूमिगत जल की खोज करने तथा उसके सदुपयोग पर कार्य करता है। इस संस्थान ने मोटे अनाज जैसे बाजरा आदि के ऐसे बीजों का विकास किया है जो कम पानी में अच्छी उपज देती है। मरुभूमि को हरा-भरा बनाने हेतु विशेष प्रकार के वृक्षों तथा पौधों को लगाने का कार्य भी इस संस्थान ने मरु विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत किया है।

4. मरूस्थल वृक्षारोपण अनुसन्धान केन्द्र तथा केन्द्रीय रेगिस्तान विकास बोर्ड—इन की स्थापना द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में की गई। इन का प्रमुख उद्देश्य मरुभूमि में भूमि संरक्षण करना हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत भी मरु विकास हेतु सहायता प्राप्त हो रही है।

मरुस्थलीय क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियां प्रतिकूल है इसलिये सम्बन्धित क्षेत्र का पूर्व में सर्वेक्षण करवाकर वाटर शैड कार्यों को प्राथमिकता से करवाने की कार्यवाही करनी चाहिये जिससे वानिकी और चरागाह विकास के साथ सिंचाई, पेयजल व्यवस्था भू-संरक्षण तथा कृषि उत्पादन कार्यों में फलदायी सफलता मिल सके। काजरी (CAZRI), भू-जल और अन्य सम्बन्धित विभाग से भी तालमेल रखकर खड़ीन, एनीकट के साथ वाटर शैड कार्यों के अलावा पानी के रिचार्ज की उपयोगी योजना बनाएं ताकि मरु क्षेत्रों का अपेक्षित विकास हो सके। पश्चिमी राजस्थान की मरू भूमि के **विकास के लिये अलग से मरूधर प्रदेश का निर्माण जरूरी हो तो उस पर गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिये।**

बंजर भूमि विकास

जनसंख्या वृद्धि के कारण मानवीय आवश्यकताओं में वृद्धि प्रत्येक क्षेत्र में हो रही है। अनियोजित एवं अनियंत्रित शहरीकरण तथा औद्योगीकरण से पर्यावरण प्रदूषण प्रमुख समस्या है। प्राकृतिक वातावरण में सन्तुलन बनाये रखने के लिये हमें भूमि के आदर्श उपयोग को अधिक महत्व देना आवश्यक है। राजस्थान के कुल 342.3 लाख हैक्टेयर भू-भाग में से 65.3 लाख हैक्टेयर ऐसा क्षेत्र है जो कृषि योग्य नहीं है। यह कुल क्षेत्रफल का 19.1 प्रतिशत है। शेष हैक्टेयर भूमि में से 138.32 लाख हैक्टेयर भूमि (37.52 प्रतिशत) बंजर भूमि है। राज्य में इस विस्तृत बंजर भूमि का उपयोग इसके गुण व मात्रा के अनुसार निश्चित अवधि के अन्तर्गत समुचित रूप में उपयोग करने की योजना के कार्यान्वयन से पर्यावरण असन्तुलन को रोका जा सकता है। इस बंजर भूमि को खेती, वृक्षारोपण, आवासीय कालोनी, पशुओं के लिये गुणात्मक चरागाह इत्यादि के रूप में परिवर्तित कर एवं आदर्श भूमि उपयोग के रूप में अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं।

भारत सरकार के कृषि एवं खाद्य मन्त्रालय की बंजर भूमि कमेटी ने बंजर भूमि के अन्तर्गत "ऊसर तथा अनुपजाऊ बंजर भूमि" कृषि योग्य बंजर भूमि, चरागाह भूमि तथा पुरानी पड़त भूमि को सम्मिलित किया है।

राजस्थान में परिस्थिति की सन्तुलन, पर्यावरण सुधार एवं वनोत्पादों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुये बंजर भूमि विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये है। इस हेतु **राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड** की स्थापना की

गई है परिणामस्वरूप बंजर भूमि विकास कार्यक्रम तेजी से क्रियान्वित करवाये जाये। इस कार्यक्रम हेतु राज्य में (i) सरकारी कृषि अयोग्य भूमि, (ii) पंचायती राज्य संस्थाओं के पास स्थित कृषि अयोग्य भूमि, (iii) कृषि अयोग्य पड़त भूमि तथा (iv) खातेदारी भूमि जिस पर वृक्षारोपण की अधिक आमदनी प्राप्त की जा सके आदि भूमि क्षेत्रों का चयन किया गया है।

राजस्थान में बंजर भूमि विकास कार्यक्रम को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग का है जो वन, राजस्व, योजना, कृषि एवं सिंचाई आदि से सम्बन्धित विभिन्न विभागों में परस्पर समन्वय स्थापित करते हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वित्तीय सहायता अनेक सूत्रों के माध्यम से प्राप्त की जाती है। **राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम** के लिए उपलब्ध राशि का 25 प्रतिशत सामाजिक वानिकी पर व्यय किया जाता है। **एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, मरूस्थल विकास कार्यक्रम, सामाजिक वानिकी** आदि योजनाएं, बैंक तथा विभिन्न वित्तीय संस्थाएं बंजर विकास हेतु वित्तीय संसाधन जुटाने के लिये उल्लेखनीय हैं। राजस्थान में बंजर भूमि विकास हेतु निम्न कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं—

1. **सामाजिक वानिकी योजना**—अभी तक सामाजिक-वानिकी योजना केवल वन विभाग के माध्यम से चलाई जा रही है लेकिन वन विभाग के कर्मचारी ग्रामीणों के पूरे सम्पर्क में नहीं रह पाते। इसलिए राज्य सरकार इस योजना को कृषि विभाग की प्रसार योजना के सहयोग से चलाने पर विचार कर रही है।

इस योजना के अन्तर्गत बेकार व बंजर भूमि पर वन विभाग द्वारा वृक्षारोपण द्वारा वनों को विकसित किया जा रहा है। निजी क्षेत्र में भी वनों के विस्तार हेतु निःशुल्क भूमि एवं पौधों का आवंटन इच्छुक व पढ़े-लिखे बेरोजगार व्यक्तियों को किया जा रहा है। एक ओर भूमि की उपयोगिता में वृद्धि होगी तथा दूसरी ओर मनुष्यों को हरे-भरे वनों से शुद्ध वायु प्राप्त होगी। एक हैक्टेयर वन 18 घण्टों में 650 किलोग्राम आक्सीजन उत्पन्न करता है तथा वायुमण्डल से 800 किलोग्राम कार्बन-डाइ-आक्साइड ग्रहण कर लेता है। इसलिये स्वच्छ वातावरण में जीने के लिए वन चाहिये।

जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ ईंधन की जरूरत निरन्तर बढ़ती जा रही है। राजस्थान में जलाऊ लकड़ी की आवश्यकता ग्रामीण क्षेत्रों में 62 लाख टन प्रतिवर्ष तथा शहरों में 11 लाख टन (कुल 73 लाख टन) वर्तमान में है। गांवों में लकड़ी की मांग पूर्ति खेतों, चरागाहों भूमि पर उगे वृक्ष एवं झाड़ियों को काट कर हो रही है। स्थिति इतनी विकट है कि जितने वृक्ष नहीं हो पाते हैं उससे अधिक काट लिये जाते हैं। इसलिए इस समस्या से निपटने के लियें भी सामाजिक वानिकी कार्यक्रम में तेजी लायी जाये जिससे वृक्षारोपण के द्वारा बंजर भूमि के क्षेत्र में कमी लाते हुए वनों के क्षेत्र में वृद्धि हो सके।

2. **बंजर भूमि का भूमिहीनों को आवंटन**—राज्य में बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत बंजर भूमि का वितरण भूमिहीन कृषकों को किया जा रहा है जिससे इसको सुधार कर कृषि योग्य बनाया जा सके। कृषि योग्य बंजर भूमि को चरागाह व कृषि जोत में परिवर्तित करने हेतु भूमि बैंक तथा अन्य संस्थाएँ कम ब्याज की दर पर सरकारी नीति के अन्तर्गत ऋण की सुविधाएँ प्रदान कर रही है।

पुरानी पड़त भूमि में निरन्तर कमी आने से यह स्पष्ट होता है कि राज्य में पिछले 30 वर्षों में लगभग 18 प्रतिशत पुरानी पड़त भूमि का उपयोग अन्य कार्यों में किया गया है। भूमि के आन्तरिक परिवर्तन में पड़त भूमि ऊसर व अनुपजाऊ भी वन जाती है, राज्य में इस प्रकार की सम्भावनाओं से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है। नियोजनकर्त्ताओं को इस बात के विशेष प्रयास करने होंगे कि जो भूमि परिवर्तित हो रही है उसे किस रूप में उपयोग में लिया जा रहा है, ऐसा न हो कि वह अन्य बंजर भूमि में ही परिवर्तित होती रहे।

राज्य में विभिन्न प्रकार की बंजर भूमि का विकास हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप तथा पर्यावरण में सन्तुलन से जुड़ा हुआ होना चाहिए। हमारी आवश्यकताओं के बढ़ने से बंजर भूमि से हमें कृषि जोत, चरागाह, अधिवास भूमि तथा वृक्षारोपण के लिए भूमि प्राप्त करना होगा।

4 पर्यटन उद्योग

(Tourist Industry)

प्राकृतिक सुरम्यता व सौन्दर्य को देखने, स्वास्थ्य लाभ के लिए पर्वतीय स्थलों पर जाने, धार्मिक स्थलों का दर्शन करने, ऐतिहासिक स्थलों की, भाषा, संगीत, साहित्य, लोक जीवन तथा सांस्कृतिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने आदि की दृष्टि से जो यात्राएँ की जाती हैं, उसे **पर्यटन** कहते हैं। इन यात्रियों को **पर्यटक** कहा जाता है। आधुनिक उद्योगों की भाँति पर्यटन भी एक महत्वपूर्ण औद्योगिक क्रिया के अनुरूप विकसित हो चुका है, इसलिए इसे **पर्यटन उद्योग** कहा जाता है।

पर्यटन उद्योग को एक व्यवस्थित आर्थिक साधन के रूप में सर्वप्रथम फ्रान्स व स्विटरजरलैण्ड ने 19 वीं शताब्दी में विकसित किया। धीरे धीरे उसका आर्थिक और सामाजिक महत्व लोगों की समझ में आने लगा। पर्यटन उद्योग में वास्तविक विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् और हवाई यातायात के विकसित हो जाने के कारण और एशियाई एवं अफ्रीकी देशों से उपनिवेशवाद के समाप्त हो जाने के बाद ही हुआ है। प्रत्येक देश के स्वतन्त्र राजनीतिक और सामाजिक सम्बन्ध बने और राजनीतिक, साँस्कृतिक, वाणिज्य आदि कई उद्देश्यों को लेकर इन देशों के लोग यूरोपीय और अमरीकी देशों को जाने लगे और यूरोपीय देशों के लोग जो उपनिवेशों में पहिले सेवाओं (Services) की दृष्टि से आते थे, उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और कुछ अन्य मन्तव्यों से आने लगे जिससे सम्पर्क स्थापित हुये। आज प्रत्येक देश तथा उसके राज्य तक पर्यटक का स्वागत करने के लिए तैयार रहते हैं। उसी हेतु बड़े-बड़े पोस्टर, बोर्ड लगे रहते है और उन पर लिखा रहता है, राजस्थान आपका स्वागत करता है, 'राजस्थान पधारिये' (Visit Rajasthan), 'जहाँ आपको प्राचीन इतिहास, शिल्पकला और प्राकृतिक रमणीक स्थल आदि देखने को मिलेगें।

राजस्थान में पर्यटकों के आगमन का इतिहास विशेष रूप से ज्ञात नहीं हो सका है लेकिन जो कुछ भी जानकारी मिली है उससे पता चलता है कि विदेशी पर्यटक सिकन्दर, ह्वांगचांग और फाहयान जैसे चीनी यात्री बैराठ और माध्यमिका के बौद्ध विहारों को देखने के लिये राजस्थान में आये। इसके बाद अनेकों पर्यटक आये गये होंगे लेकिन ऐतिहासिक तथ्य नहीं मिलते हैं। फिर भी कुछ पर्यटकों का आगमन अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है जिनमें इटालियन भाषा शास्त्री डा. टेशीटेरी मेरिया, जो राजस्थानी भाषा का अध्ययन करने आया. श्रीमति केनेडी, श्री ख्रुश्चेव, और बुलगेनिन, महारानी एलिजाबेथ और उनके पति प्रिंस फिलिप, प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा. टोयनबी आदि प्रमुख है।

'राजस्थान' शब्द स्वयं एक गौरवपूर्ण साँस्कृतिक स्थल की ओर इंगित करता है जिसकी संस्कृति में एक अद्भूत सौन्दर्य व आकर्षण व्याप्त है। राजस्थान अपने गौरवपूर्ण अतीत, शौर्य, इतिहास, विशिष्ट संस्कृति, प्राकृतिक सुषमा, उच्च श्रेणी की शिल्प कलाओं से परिपूर्ण चतुरंगी महलों तथा मन्दिरों, रंग बिरंगे मेलों तथा त्यौहारों और मोहक रंग बिरंगी पोशाकों तथा स्वर्णिम बालुका-स्तूपों तथा घने जंगल आदि के कारण स्वदेशी विदेशी पर्यटकों का प्रमुख आकर्षण केन्द्र रहा है। इसके एक किनारे पर झीलों की सुन्दर नगरी उदयपुर है तो दूसरी तरफ सुन्दर साइबेरिया से उड़कर आने वाले पक्षियों की क्रीड़ा स्थली केवलादेव अभ्यारण्य भरतपुर है। वन्यजीवों के हेतु सुरक्षा स्थल सिरस्का जयसमन्द व रणथम्भौर विश्व प्रसिद्ध हैं। जहां पुष्कर अजमेर, नाथद्वारा जैसे पावनतम तीर्थस्थान है, वहां कोटा जैसे औद्योगिक शहर भी स्थित है।

राज्य की राजधानी जयपुर एक गुलाबी नगर के नाम से विश्व में प्रसिद्ध है जो विश्व के खूबसूरत एवं नियोजित नगरों में से एक है। जहां एक ओर यह राज्य वीर योद्धाओं की शौर्य गाथा से परिचित कराता है, वहीं दूसरी ओर असंख्य कवियों, दस्तकारों, शिल्पियों तथा इतिहासकारों पर भी गर्व करता है। इन्हीं तथ्यों के परिणामस्वरूप श्री सी. वी. रमन ने 'Island of Glory' अर्थात् रंग श्री के द्वीप की संज्ञा प्रदान की है।

राज्य के इन सभी दर्शनीय स्थलों को और अधिक आकर्षक बनाकर तथा पर्यटकों को रहने, भोजन व परि-

वहन की सुविधाएं प्रदान करने पर सरकार को, होटल वालों तथा स्थानीय जनता को बहुत लाभ होता है तथा इससे राज्य की अर्थ-व्यवस्था भी सुदृढ़ होती है। पर्यटन उद्योग से होने वाले लाभ निम्नांकित हैं—

(i) इससे विदेशी मुद्रा का अर्जन होता है।

(ii) राज्य की संस्कृति व हस्तकला का विकास होता है।

(iii) पर्यटक भी राज्य की संस्कृति, स्थानीय, भाषाओं, संगीत साहित्य, कला व लोक जीवन से परिचित हो जाते हैं।

(iv) इससे पारस्परिक सद्भावनाएँ जागृत होती हैं, मित्रता बढ़ती है।

(v) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि होती है और आर्थिक विकास होता है।

(vi) जनता के जीवन स्तर में सुधार दृष्टिगत होता है।

(vii) इससे उत्तम कोटि की वस्तुओं के उत्पादन के लिये प्रोत्साहन मिलता है। फलस्वरूप विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि तथा उनकी किस्म में सुधार होता है।

(viii) परिवहन व सन्देश वाहन के साधनों का विकास भी अपरिहार्य हो जाता है अन्यथा यह उद्योग पनप नहीं सकता।

(ix) पर्यटन स्थलों में इस उद्योग से स्थानीय लोगों को रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं।

पर्यटक क्षेत्र विशेष के लिये आर्थिक दृष्टि से लाभकारी सिद्ध होते हैं। अतः आज के युग में पर्यटन को अत्यधिक महत्व दिया जा रहा है। राज्य सरकार इन पर्यटकों को सुख-सुविधा की दृष्टि से हर सम्भव उपाय करती है। उनके भोजन व ठहरने की उत्तम व्यवस्था करती है। आवागमन के साधन सुलभ कराने का प्रयास करती है। तात्पर्य यह है कि सरकार का उद्देश्य यह रहता है कि अधिक से अधिक पर्यटक आवें। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु राज्य सरकार ने सन् 1955 में **पर्यटन निदेशालय** की स्थापना की जिसका मुख्यालय जयपुर में है।

पर्यटन निदेशालय की गतिविधियां

पर्यटन साहित्य—पर्यटन विभाग राज्य के विभिन्न पर्यटनस्थलों, वन्यजीवों, मेलों, त्यौहारों, हस्त व शिल्प कलाओं आदि पर पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु प्रतिवर्ष रंग-विरंगा एवं श्वेत-श्याम पर्यटन साहित्य का प्रकाशन करता है। वर्ष 1987 में इस पर 12 लाख रुपये की राशि व्यय की गई। विभाग द्वारा तैयार करवाई गई 24 फिल्मों का प्रदर्शन भी विशिष्ट अवसरों एवं होटलों द्वारा मांग किये जाने पर किया जाता है। जयपुर स्थित स्टेट होटल में इनके नियमित प्रदर्शन की व्यवस्था है।

पर्यटन स्थलों का विकास—राज्य के ऐसे स्थानों जहां पर्यटकों का आवागमन अधिक संख्या में होता है, का विकास पर्यटन विभाग पर्यटकों की सुविधा हेतु आवास एवं परिवहन के सुविधाओं के साथ-साथ पर्यावरण की दृष्टि से कर रहा है। ऐसे स्थानों में अधिकांश राज्य के पुरातत्व विभाग, भारत सरकार के पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग अथवा वन विभाग के अधीन होते हैं फिर भी पर्यटन विभाग उन स्थानों के प्रति पर्यटकों का आकर्षण बनाये रखने हेतु प्रतिवर्ष कुछ न कुछ विकास कार्य करवाता रहता है। वर्ष 1987 में इस निमित 14.50 लाख रुपये व्यय किये गये जिससे आमेर, डीग, ओसिया का मन्दिर, उदयपुर तथा आबूरोड आदि पर्यटक स्थलों पर रख-रखाव व विकास कार्य सम्पन्न करवाये गये।

मेले-त्यौहार—राज्य की सांस्कृतिक धरोहर के माध्यम से पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु पर्यटन विभाग सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करता रहता है। जयपुर में गणगौर व तीज मेले, उदयपुर में मेवाड़ समारोह, माऊण्टआबू में ग्रीष्म समारोह, पुष्कर मेला, नागौर मेला, डूंगरपुर में वेणेश्वर मेला, आदि प्रमुख हैं। विभाग ने "राजस्थान कालिंग" (राजस्थान आमन्त्रित कर रहे हैं) नामक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन भी करवाया।

प्रदर्शनियां—राज्य के पर्यटन आकर्षण के व्यापक प्रचार हेतु विभाग प्रतिवर्ष प्रदर्शनियों का आयोजन करता है अथवा ऐसी प्रदर्शनियों में भाग लेता है। इन प्रदर्शनियों के माध्यम से राज्य के स्मारक, वन्य जीव

रीति-रिवाज, मेले-त्यौहारों एवं लोक जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित चित्र एवं मॉडल प्रदर्शित किये जाते हैं। 1987 के गणतन्त्र दिवस समारोह पर शेखावाटी हवेली" झांकी को प्रथम स्थान मिला।

आवास – आवास एक मूलभूत आवश्यकता है परन्तु इसकी पूर्ति निजी क्षेत्र द्वारा अधिक की जाती हैं। अतः इस दृष्टि से विभाग की नीति निजी क्षेत्र में होटल निर्माण को प्रोत्साहित करने की है और इस के लिए होटल-निर्माताओं को अनापत्ति प्रमाण पत्र, भूमि का चयन तथा ऋण की सुविधा आदि में विभाग आवश्यक सहायता प्रदान करता है।

राजस्थान पर्यटन विकास निगम—राज्य में पर्यटन गतिविधियों को प्रोत्साहन देने तथा पर्यटकों के लिये आवास सहित अन्य सुविधाओं की व्यवस्था के लिए यह निगम कार्यरत है। निगम द्वारा स्वदेशी व विदेशी पर्यटकों की राज्य में यात्रा को सुविधाजनक बनाने हेतु 33 विभिन्न पर्यटन-स्थलों पर होटलों तथा सड़क मार्गों पर मिड-वे का संचालन किया जा रहा है।

पर्यटन-स्थलों पर निर्मित होटलों में **जयपुर** में गणगौर, तीज, स्वागतम, यूथ-हॉस्टल और नाहरगढ़ दुर्ग पर केफेटीरिया, रामगढ़ झील पर झील ग्राम, **अलवर** जिले में सरिस्का में टाइगर डेन, सिली सेढ में लेक-पेलेस **भरतपुर** में सारस, **कोटा** में चम्बल, **सवाईमाधोपुर** स्थित अभयारण्य में झूमर-बावड़ी, **सिरोही** जिले में माऊन्ट आबू में शिखर तथा पुरजन-निवास, **उदयपुर** में कजरी, रणकपुर में शिल्पी, ऋषभदेव में गवरी, नाथद्वारा में गोकुल, हल्दीघाटी में रेस्टहाऊस, जयसमन्द में पर्यटक विश्राम गृह, **जोधपुर** में घूमर, **जैसलमेर** में मूमल, **बीकानेर** में ढोलामारू, अजमेर में खादिम तथा पुष्कर में सरोवर आदि विभाग के यह सभी होटल शामिल है।

इसी प्रकार राज्य के मुख्य सड़क मार्गों जैसे जयपुर-दिल्ली सड़क मार्ग पर **बहरोड़**, जयपुर-आगरा सड़क मार्ग पर **महुआ**, उदयपुर-अहमदाबाद सड़क मार्ग पर **रतनपुर**, जयपुर-पाली सड़क मार्ग पर **बर**, जयपुर-भीलवाड़ा मार्ग पर **गुलाबपुरा** और जयपुर-बीकानेर सड़क मार्ग पर **रतनपुर** में मिड-वे का संचालन निगम द्वारा किया जा रहा है। अभी हाल में जयपुर-जैसलमेर मार्ग पर पोकरण पर नया मिड-वे निर्मित किया गया है।

निगम द्वारा संचालित शाही रेलगाड़ी विदेशी पर्यटकों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण सिद्ध हुई है।

निगम द्वारा सम्पन्न की जा रही पर्यटक क्रियाओं से निगम को वर्ष 1984-85 में जहां लाभ 20.63 लाख रुपयों का हुआ, वहीं वर्ष 1986-87 (मात्र दो वर्ष बाद) में 80.60 लाख रुपये का लाभ हुआ। इस प्रकार राज्य पर्यटन उद्योग की सम्भावनाओं का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में उदयपुर, जोधपुर एवं आबू पर्वत में यात्री-निवासों, रामदेवरा, *श्री महावीर जी*, नाथद्वारा, अजमेर व कैलादेवी में यात्रिकाओं तथा बूंदी में सांस्कृतिक सभागार के निर्माण प्रस्तावित हैं। साथ ही चित्तौड़गढ़ और सवाईमाधोपुर के पर्यटक विश्रामगृहों के विस्तार, जालौर, कोटा, अजमेर, अलवर, जयपुर, टोंक, जोधपुर, झालावाड़, बूंदी, बांसवाड़ा, उदयपुर, सीकर, नागौर, झुंझुनू, धौलपुर तथा गंगानगर जिलों के विभिन्न पर्यटन स्थलों के विकास, मोती मगरी उदयपुर पर ध्वनि प्रकाश कार्यक्रम, चित्तौड़गढ़, जैसलमेर एवं बीकानेर के किलों पर रोशनी की व्यवस्था तथा विभिन्न अभ्यारण्यों को देखने हेतु वायनाकूलर्स सहित गाड़ियों को क्रय किया जायेगा।

राजस्थान के पर्यटक स्थल (Tourist Places of Rajasthan)

राजस्थान के विभिन्न स्थान अपने प्राकृतिक सौन्दर्य, धार्मिक महत्वता, हस्तकला, स्थापत्यकला, एवं ऐतिहासिक महत्ता के कारण पर्यटकों को आकर्षित करते रहते हैं। इसलिये राज्य में विभिन्न प्रकार के पर्यटन स्थल विकसित हो गये हैं।

पर्यटन स्थलों का निर्माण कभी-कभी प्राकृतिक सौन्दर्य वाले सुरम्य स्थानों पर स्वतः ही हो जाता है। ऐसे **प्राकृतिक पर्यटन स्थलों में** जयसमन्द, सिरस्का, आबू, घना (भरतपुर), कुम्भलगढ़, मेनाल आदि हैं।

कई स्थलों का महत्व **तीर्थों की** दृष्टि से भी होता है जैसे नाथद्वारा, कांकरोली, अजमेर, पुष्कर, गलता,

रणकपुर, ऋषभदेव, महावीरजी, वेणेश्वर, सारणेश्वर, आबू आदि ।

कुछ पर्यटन स्थलों का महत्व ऐतिहासिक दृष्टिकोण से होता है जैसे चित्तौड़गढ़, मण्डोर, विराट, आमेर, जयपुर, भरतपुर, जालौर, जोधपुर, माध्यमिका, उदयपुर रणथम्भोर आदि।

कई स्थान स्थापत्यकला व शिल्पकला की दृष्टि से विख्यात होते हैं जिनमें चित्तौड़, रणथम्भोर, झून्झुनू, कुम्भलगढ़, जैसलमेर, बूंदी, आमेर आदि हैं। साथ ही डीग के महल (भरतपुर), उदयपुर के राजमहल, जयपुर के हवामहल, रणकपुर और आबू के जैनमन्दिर, वड़ोली, अर्थना और झालरापाटन के शिव, सूर्य और विष्णु के मन्दिर और अजमेर का अढ़ाई दिन का झौंपड़ा (अजमेर) है।

राजस्थान में कुछ स्थान ऐसे हैं जो शिल्पकला की दृष्टि से पर्यटकों को आकर्षित करते हैं जैसे **सांगानेर** की छपाई, **उदयपुर** के लकड़ी के खिलौने और चांदी के वर्कों का काम, **जोधपुर** की चुन्दड़ियां, **जयपुर** की पत्थर की मूर्तियां और पीतल के बर्तन आदि।

आधुनिक नये नये बांध और विद्युत योजनाएँ पर्यटकों के लिये नवीन आकर्षण प्रदान करते हैं, इसलिये पर्यटक स्थल के रूप में बड़ी तेजी से विकसित हो गये हैं जैसे जवाई बांध, मेजा बांध, गंभीरी बांध, कोटा बेरेज, गांधी सागर, प्रतापसागर, माही बांध, जाखम बांध तथा बीसलपुर बांध आदि।

इसी प्रकार नवीन उद्योगों एवं फार्मों, शिक्षण संस्थाओं और विश्वविद्यालयों को देखने या उनमें अध्ययन करने के लिए भी पर्यटक दूर-दूर से आते हैं जैसे खेतड़ी तांबा एवं देबारी जिन्क स्मेलटर, कोटा रेयनमिल्स प्रिसाईज इनस्ट्रूमेन्ट कारखाना, जयपुर बालबियरिंग, जयपुर होजरी मिल्स कारखाना, भीलवाड़ा का कपड़ा मिलें आदि।

अतः पर्यटकों का आकर्षण उपरोक्त पर्यटन स्थलों पर एकांगी भी होता है और बहुउद्देशीय भी होता है। कई बार एक ही पर्यटन स्थल कई दृष्टिकोणों से प्रसिद्ध होने से कई प्रकार के पर्यटक वहाँ आया करते हैं जैसे जयपुर, उदयपुर, अजमेर, जोधपुर आदि ऐसे पर्यटन स्थल केन्द्र हैं जिसके चारों ओर छोटे-छोटे पर्यटक केन्द्र विकसित हो गये हैं।

राजस्थान में पर्यटन उद्योग का विकास माऊण्ट आबू के राजस्थान में 1-11-1956 से पुनः मिलाये जाने के बाद से हुआ क्योंकि यही राज्य का प्रमुख पर्यटक केन्द्र है जहां पर असंख्यों पर्यटक प्रतिवर्ष स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से आते हैं। आबू के लोगों का जीवन पर्यटन व्यवसाय पर ही निर्भर करता है। राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थलों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है।

अजमेर

अजमेर जयपुर से 135 किलोमीटर दूर पहाड़ियों से घिरी एक सुरम्य घाटी में स्थित है। इसको घेरने वाली अरावली पर्वत क्रम की पहाड़ियां अजयमेरू के नाम से जानी जाती हैं, इसलिये इसका प्राचीन नाम अजयमेरू भी है। इसकी स्थापना 7 वीं शताब्दी में अजयपाल चौहान द्वारा की गई थी। इस नगर की सबसे बड़ी विशेषता हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मावलम्बियों के लिये "अजमेर शरीफ" एवं "तीर्थराज पुष्कर" की नगरी के रूप में है जिसके कारण यह विश्व मानचित्र पर अंकित हो सका तथा प्रतिवर्ष लाखों पर्यटकों को आकर्षित करता है।

दर्शनीय पर्यटन स्थल—

ख्वाजा साहब की दरगाह अजमेर के आकर्षण का प्रमुख कारण ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह है जो अत्यधिक पवित्र मानी जाती है। इसका निर्माण सुल्तान ग्यासुद्दीन खिलजी द्वारा करवाया गया। तत्पश्चात शंहशाह अकबर ने शानदार मस्जिद, बुलन्द दरवाजा एवं महफिल खाने का निर्माण कराया। शाहजहां ने रोजे के ऊपर सफेद संगमरमर की गुम्बद व जामा मस्जिद बनवाई। अकबर के काल की ही दो बड़ी देगें हैं। यह सभी दर्शनीय हैं। इस स्थान पर प्रतिवर्ष उर्स के अवसर पर विश्व स्तर का मेला लगता है और लाखों लोग जियारत के लिए आते हैं।

तारागढ़—तारागढ़ सशक्त दुर्ग अजय देव के द्वारा निर्मित पहाड़ी के शिखर पर स्थित है। इस किले के

अन्दर पानी के पांच कुण्ड तथा एक झालरा है तथा मीर सैयद हुसैन खंगस्वार का रौजा (दरगाह) भी है, जो दर्शनीय है।

मेग्जीन - नगर के मध्य एक किला जिसका निर्माण अकबर ने 1971-72 ई. में अपनी विश्राम-स्थली के रूप में करवाया। वर्तमान में इस महल को संग्रहालय बनाया हुआ है।

आनासागर—पृथ्वीराज चौहान के पिताजी अणाजी ने 1135-50 में आनासागर का निर्माण करवाया। जहांगीर ने इसके किनारे 'दौलत बाग' अब सुभाष बाग के नाम से प्रसिद्ध बगीचा लगवाया। शाहजहां ने 1240 फुट लम्बी संगमरमर की मुंडेर व पांच अति सुन्दर मण्डप बनवाये।

सोनीजी की नसियां—सन् 1865 में मूलचन्द सोनी द्वारा निर्मित मन्दिर सिद्धकूट चैत्यालय नाम से (वर्तमान में सोनी जी की नसियां) जाना जाता है। लाल पत्थर से बना जैन मन्दिर प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का मन्दिर है। इसमें स्वर्ण कलश इतनी ऊंचाई पर बने हैं कि परकोटे के नगर के प्रत्येक घर की छत से इन्हें देखा जा सकता है। मुख्य मन्दिर के पीछे 80 फीट लम्बा व 40 फीट चौड़ा कमरा है जिसकी दीवारों एवं छतों पर सोने व काँच का अत्यन्त मनमोहक पच्चीकारी का काम किया हुआ है। गोल आकृति में सृष्टि की रचना का दृश्य बना है जिसके मध्य सुमेरू पर्वत दर्शाया गया है। दूसरे भाग में महावीर के जन्म को दृश्य पत्रों द्वारा दर्शाया गया है।

ढाई दिन का झौंपड़ा—पूर्व में इस स्थान पर सम्राट वीसलदेव द्वारा सन् 1153 के लगभग निर्मित यह इमारत संस्कृत महाविद्यालय था किन्तु 1192 में मौहम्मद गौरी ने इसे गिराकर ढाई दिन में मस्जिद का रूप दिया, इसी कारण यह ढाई दिन के झौंपड़े के नाम से विख्यात है। यह हिन्दू वास्तु कला का प्राचीनतम और सर्वोत्कृष्ट नमूना है। आंगन की खुदाई से कई प्राचीन मूर्तियां तथा शिलालेख प्राप्त हुये हैं।

अजमेर शहर के अन्य दर्शनीय स्थलों में सन् 1875 से लार्ड मेयो द्वारा राजकुमारों को ब्रिटिश शिक्षा देने हेतु मेयो कालेज, बड़े पीर दरगाह, आतेड़ माता का मन्दिर, फाईसागर, पंचकुण्ड तथा बीर आदि प्रमुख है।

पुष्कर—अजमेर से 11 कि.मी. उत्तर-पश्चिम में हिन्दुओं का पावन तीर्थ 'पुष्कर' है। पुष्कर सरोवर का उद्गम पद्म पुराण के अनुसार ब्रह्मा के हाथ से कमल के फूल पृथ्वी पर तीन स्थान पर गिरे जहां पानी फूट निकला। ये तीन स्थान बड़ी पुष्कर, बीच की पुष्कर और छोटी पुष्कर कहलाने लगे। ब्रह्मा जी जो सृष्टि की रचना करने के उपरान्त निर्विघ्न यज्ञ करना चाहते थे, ने प्रथम स्थान को सर्वाधिक उपयुक्त पाया तथा कमल के नाम पर इसका नाम पुष्कर रखा। ब्रह्मा जी व सावित्री के मन्दिर सम्पूर्ण भारत में केवल पुष्कर ही में स्थित हैं। कार्तिक पूर्णिमा को पर्व स्नान का विशाल मेला लगता है। पुष्कर सरोवर के अतिरिक्त रमा वैकुण्ठ मन्दिर, अटभटेश्वर जी का मन्दिर, बाई जी का मन्दिर, ब्रह्मा जी का मन्दिर, गायत्री एवं सावित्री मन्दिर आदि दर्शनीय हैं। पुष्कर में गुलाब के बगीचे भारत प्रसिद्ध हैं। गत कुछ वर्षों से पुष्कर हिप्पियों का प्रिय स्थल बन गया लगता है।

अलवर

यह शहर दिल्ली से 165 कि.मी. दूर दक्षिण में तथा जयपुर से 150 कि.मी. दूर उत्तर-पूर्व में स्थित है जो एक ओर प्राकृतिक हरी-भरी पहाड़ी को छोड़कर शेष परकोटे से सीमित है। अलवर की स्थापना किसने की और कब की, इसके बारे में विभिन्न उल्लेख मिलते हैं। तारीखे फिरोजशाही के लेखक मीर हसन के अनुसार अलवर की स्थापना खान जादा शासक अलावल खां ने की थी। मारवाड़ के चारण इतिहासकार चाँवड़दान के ऐतिहासिक गीत से पता चलता है कि इसकी स्थापना अलघूराम ने 1049 ई. में की। अलवर का पुराना उच्चारण आलौर और अलूर था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि अलवर नगर महाराजा प्रतापसिंह द्वारा 1771 ई. में बसाया गया व तत्कालीन अलवर राज्य की राजधानी थी। अलवर एक महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र है तथा वह अपने महलों, सघन वनों, झरनों व अजायबघर के लिये प्रसिद्ध है।

दर्शनीय पर्यटन स्थल –

राजमहल—18 वीं सदी में निर्मित विनय विलास महल को सरकारी कार्यालयों में परिवर्तित किया गया है। इसके विशाल दरबार हाल में अलवर का किला, इस किले में निकुम्भ महल, सलीम सागर, सूरज कुण्ड और मूरज महल शिल्पकला की दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक स्थल हैं। मूसी महारानी की छतरी जिसका निर्माण महाराजा विनयसिंह ने सन् 1815 में लाल पत्थर से करवाया था, स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट नमूना है।

अजायबघर—विनय विलास महल के गुम्बदनुमा भव्य कमरे में स्थित इस संग्रहालय में दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ पेन्टिग्स, अस्त्र-शस्त्र, फारसी व अरबी के हस्तलिखित ग्रन्थों में शेखसादी का गुलिस्तां तथा बाबरनामा, 80 फीट की सचित्र भगवद्‌गीता, अकबर, जहांगीर तथा दाराशिकोह की तलवारें एवं चांदी की बनी भव्य खाने की मेज आदि का संग्रह है। इसलिये अजायबघर पर्यटकों के लिये एक अत्यन्त आकर्षक स्थल है।

सिलीसेढ़—अलवर से 13 कि.मी. दक्षिण-पश्चिम में जयपुर की ओर यह स्थित है। झील के किनारे महाराजा बनेसिंह जी द्वारा सन् 1845 ई. में निर्मित महल है जो आजकल स्टेट होटल है। दस वर्ग कि.मी. क्षेत्र में विस्तृत यह झील नौका विहार तथा मछली पकड़ने के लिये पर्यटकों के लिये एक मनोरंजन स्थल है। झील के एक ओर घना जंगल तथा दूसरी ओर एक उद्यान है।

सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान—अलवर-जयपुर मार्ग पर अलवर से 35 कि.मी. दूर वन्य पशु अभ्यारण्य सरिस्का स्थित है। 40 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में विस्तृत इस अभ्यारण्य में शेर, चीते, नील गाय, सांभर, जंगली सूअर एवं हिरण आदि पशु स्वाभाविक रूप से विचरण करते हैं। प्रोजेक्ट टाईगर योजना में सम्मिलित यह अभ्यारण्य पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है।

पाण्डुपोल—सरिस्का से 19 कि.मी. दक्षिण-पूर्व में प्राकृतिक सौन्दर्य एवं ऐतिहासिक महत्व का स्थान पाण्डुपोल है। ऐसा माना जाता कि पाण्डवों ने अज्ञातवास का एक वर्ष यहां व्यतीत किया था। समीप पर्वत पर शयन मुद्रा में हनुमान जी की प्रतिमा मानवाकार में पड़ी है।

भृतहरी—सरिस्का मार्ग में राजा भृतहरी का समाधि स्थल है जिसे राजा ने आध्यात्मिक ज्ञान अर्जन हेतु बनवाया था। वर्तमान में यह धार्मिक यात्रा का उत्तम स्थल है।

नीलकण्ठ—अलवर से 38 कि.मी. दूर दक्षिण-पश्चिम में 'नील कण्ठेश्वर महादेव' का मन्दिर है जिसका निर्माण बड़गूजर राजा अजयपाल ने करवाया। मन्दिर से कुछ दूर खण्डरों के बीचों-बीच 5 मीटर लम्बी व 2 मीटर चौड़ी दिगम्बर जैन तीर्थंकर की एक मूर्ति है जिसे स्थानीय लोग **'नौग-जा'** नाम से पुकारते हैं।

अन्य दर्शनीय स्थलों में बैराठ, जयसमन्द झील, पहाड़ी पर बना किला, फतहगंज की गुम्बद और त्रिपोलिया उल्लेखनीय हैं।

भरतपुर

भरतपुर विश्व में केवला देव घना पक्षी अभ्यारण्य के कारण विख्यात है। इसकी स्थापना महाराजा सूरजमल ने सन् 1773 में की थी। राजस्थान के पूर्व में इसकी स्थिति होने के फलस्वरूप इसे राजस्थान का पूर्वी द्वार भी कहा जाता है। इसके किले को लोहागढ़ कहा जाता है क्योंकि यह एक अजयदुर्ग है। किले में ही दरबार खास, सिंहल खाना, नूर महल, खजाना, जवाहर बुर्ज, फतेह बुर्ज एवं मन्दिर दर्शनीय है।

दर्शनीय स्थल

जवाहर बुर्ज—महाराजा जवाहर सिंह द्वारा देहली पर विजय के उपलक्ष्य में 1764 ई. में गौरव प्रतीक स्वरूप एक बड़ा दरवाजा बनवाया। यह किले का महत्वपूर्ण स्थान है जहां राजाओं का राज्याभिषेक हुआ करता था।

केवलादेव पक्षी अभ्यारण्य—भरतपुर से लगभग 5 कि.मी. दक्षिण-पश्चिम में यह राष्ट्रीय पार्क स्थित है जो 52 वर्ग कि.मी. क्षेत्र पर विस्तृत है। यह स्थल पक्षी प्रेमियों का स्वर्ग माना जाता है। यहां का पक्षी विहार मुर्गाबियों के लिए प्रसिद्ध है जहां दूरस्थ देशों से आने वाले अनगिनत पक्षियों का शीतकालीन आवास व प्रजनन

स्थल उपलब्ध है। इस पक्षी विहार की यात्रा अक्टूबर से फरवरी के मध्य आकर्षक रहती है।

डीग—भरतपुर से 35 किमी. दूर उत्तर की ओर जलमहलों की नगरी, प्राकृतिक बगीचों का दुर्ग डीग स्थित है। यह अपने हरे-भरे बगीचों, गुलाबी बालू पत्थर की इमारतों, ऐतिहासिक दुर्ग, मध्ययुगीन महलों तथा रंगीन फव्वारों के लिये प्रसिद्ध है। चार बाग नहरों के बाहरी किनारों पर स्थित भवन अत्यन्त मोहक है, साथ ही पूर्व में रूपसागर तथा पश्चिम में गोपालसागर डीग के सौंदर्य में और आकर्षण उत्पन्न कर देते हैं। डीग के प्रमुख दर्शनीय स्थलों में गोपाल भवन, सूरजभवन, पूरण-महल तथा किला प्रमुख है।

बयाना—भरतपुर के दक्षिण में लगभग 55 किलो-मीटर दूर ऐतिहासिक नगर बयाना स्थित है। इसके किले की प्राचीनता गुप्तकाल से जुड़ी है। बयाना से 30 किमी. दूर रूपबास कस्बा है जिसके निकट 'खानवा' का मैदान स्थित है जहां बाबर व राणासांगा के मध्य 1527 ई. में निर्णायक युद्ध हुआ।

बीकानेर—

बीकानेर शहर दिल्ली से 462 किमी. पश्चिम में, जयपुर से 378 किमी. उत्तर-पश्चिम में तथा जोधपुर से 284 किमी. उत्तर में राजस्थान की मरु भूमि के एक भारतीय कला के महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में स्थित है। राठौड़ वंश के राव बीकाजी ने सन् 1488 ई. में बीकानेर नगर की स्थापना की। बीकानेर नगर 7 कि.मी. के एक परकोटा से घिरा है जिसमें नगर प्रवेश हेतु पांच द्वार हैं और उनमें कोट गेट एक विशाल एवं उत्कृष्ट द्वार है।

दर्शनीय स्थल —

बीकानेर दुर्ग व महल—राजा रायसिंह जी द्वारा निर्मित किला अपने 37 बुर्जियों के कारण भिन्नता लिये हुये हैं। किले के चारों तरफ की दीवार का निर्माण सन् 1588-93 के मध्य राजा जयसिंह द्वारा करवाया गया था। बाहर की ओर 10 मीटर चौड़ी खाई चारों ओर बनी है। किले का मुख्य प्रवेश द्वार **सूरज परोल** है। इसमें चन्द्रमहल, फूल महल, छत्तर महल, शीश महल कर्ण महल, जोरामल मन्दिर, हर मन्दिर, अनूप महल तथा रंग महल दर्शनीय है।

'कर्ण महल' का निर्माण महाराजा अनूपसिंह ने अपने पिता महाराजा कर्णसिंह की वीरता की स्मृति में करवाया था। इस महल की छतों व मेहरावों पर मुगल-शैली में बने चित्र अंकित है।

चन्द्रमहल और फूल महल नक्काशी, पेन्टिंग्स एवं दर्पण की अनूठी कारीगरी से सुसज्जित किये हुये हैं।

लालगढ़—लाल पत्थरों से निर्मित लालगढ़ महल खुदाई कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। इसके एक भाग को आधुनिक होटल में परिवर्तित कर दिया गया है।

गजनेर महल—शहर से 32 कि.मी. दूर गजनेर नामक मरु-उद्यान बंजर मरुस्थल में हरियाली प्रस्तुत करता है जो पक्षियों एवं जानवरों की उपस्थिति से संजीव हो उठता है। यह स्थान तीतर के शिकार के लिए प्रसिद्ध हैं। झील के किनारे गजनेर महल बना है।

करणीमाता का मन्दिर—बीकानेर जोधपुर मार्ग पर बीकानेर से 26 कि. मी. दूर देशनोक गांव में स्थित करणीमाता का मन्दिर महाराजा सूरजसिंह के राज्यकाल में बनवाया गया था। इस मन्दिर में तथा इसके चारों ओर हजारों पवित्र चूहे हैं। बीकानेर के राजवंश करणी-माता के प्रमुख भक्त थे।

कोलायत—बीकानेर से दक्षिण-पश्चिम में 50 कि. मि. दूर कोलायत स्थान पर तालाब स्थित है। ऐसी धारणा है कि यहां कालान्तर में कपिल मुनि का तपो-आश्रम था। यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा को मेला भरता है।

अन्य दर्शनीय स्थलों में गंगा निवास, राणा निवास नामक पब्लिक पार्क, 8 कि.मी. दूर ऊंटों की नस्ल सुधार का एक फार्म तथा देवी कुण्ड आदि उल्लेखनीय हैं।

बून्दी

राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग में तथा कोटा से 40 कि.मी. पश्चिम में सकड़ी पहाड़ियों के मध्य बूंदी नगर स्थित है। मीणा लोगों के सरदार जेता के दादा 'बूंदा' के नाम पर इसका नाम बून्दी पड़ा। बूंदी राज्य की स्थापना हाड़ा वंश के राव देवा ने सन् 1342 में की।

बूंदी का नवलखा तालाब एवं पहाड़ी के ऊपर निर्मित सड़क इसे अति आकर्षक एवं लुभावना बना देते हैं।

दर्शनीय स्थल-

बून्दी का गढ़—17 वीं शताब्दी में निर्मित यह गढ़ प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं। कर्नल टॉड के अनुसार समस्त रजवाड़ों के गढ़ों में बूंदी का यह महल सर्वोत्कृष्ट माना जाना चाहिये। इस गढ़ का सर्वाधिक महत्व का स्थान छत्र महल है जिसे राजा छत्रसाल ने 1531 ई. में बनवाया था। गढ़ के प्रवेशद्वार पर दो विशाल हाथियों की मूर्तियां हैं जिनका निर्माण राजा रत्नसिंह ने करवाया था। गढ़ के प्रवेशद्वार 'हाथीपोल' के आगे ही **'दीवाने-ए-आम'** है जिसे 'रतन दौलत' भी कहा जाता है। रंग महल में लगे चित्र बूंदी चित्र शैली के चरमोत्कर्ष की ओर इंगित करते है। अनिरूद्ध महल का निर्माण सन् 1679 में तथा एक बावड़ीं का निर्माण 1699 ई. में करवाया गया जो स्थापत्य कला की दृष्टि से दर्शनीय है।

चौरासी स्तम्भों की छतरी—कोटा-बूंदी मार्ग पर देवपुरा ग्राम के निकट इस छतरी का निर्माण सन् 1683 ई. में राजा अतिरूद्ध सिंह के भ्राता देव द्वारा करवाया गया था

सूरज छतरी व मोरड़ी की छतरी—बूंदी की पहाड़ियों पर चारों ओर कई छतरियां बनी है। उत्तर की पहाड़ी पर सूरज छतरी 'तथा दक्षिण की पहाड़ी पर' 'मोरड़ी छतरी' है जिनका निर्माण राव छत्रसाल की रानियों-श्यामाकुमारी व मयूरी ने करवाया।

क्षर बाग—बून्दी नरेशों की स्मृति में बनाई गई 66 छतरियां इस बाग में हैं। राव छत्रसाल की छतरी भी इसमें है।

जैतसागर—इसका निर्माण बूंदी की स्थापना (1342) से पूर्व जैता नामक मीणा ने करवाया। इस तालाब के किनारे राव राजा विष्णुसिंह द्वारा निर्मित सुख महल स्थित है।

फूलसागर—राव राजा भोजसिंह की पत्नी फूल लता द्वारा इसका निर्माण करवाया गया। तत्पश्चात राव राजा रामसिंह ने यहां एक जलकुण्ड तथा दो छोटे-छोटे महलों का निर्माण करवा कर इसे और मोहक बना दिया।

नवलसागर—इस का निर्माण महाराजा उम्मेदसिंह जी ने करवाया था इस तालाब के मध्य में एक मन्दिर तथा छतरी बनी है तथा किनारों पर सुन्दर उद्यान लगे हैं।

जयपुर

राजस्थान की राजधानी **गुलाबी नगर** जयपुर अपने अनुपम नियोजन, गुलाबी सुन्दरता एवं भव्यता के लिये अद्वितीय माना जाता है। यह देहली से 350 किमी. दक्षिण पश्चिम में स्थित है तथा नियमित वायु सेवा द्वारा बम्बई, आगरा, देहली से जुड़ा हुआ है। गुलाबी नगर की नींव 25 नवम्बर 1727 में तत्कालीन महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा रखी गयी तथा नगर नियोजन विशेषज्ञ श्री विद्याधर भट्टाचार्य ने हिन्दू शिल्प शास्त्र के अनुसार इस का नियोजन किया था। नगर की बनावट आयताकार रूप में है तथा सड़कें एक दूसरे को समकोण पर काटती है। मुख्य सड़क 111 फुट तथा छोटी सड़कें 55 फुट चौड़ी है। पुराने शहर के चतुर्दिक परकोटा बना है जिसमें आठ प्रवेश द्वारा घाट गेट है। इनमें दक्षिण में अजमेरी गेट और सांगानेरी गेट, न्यू गेट, पश्चिम में चांदपोल गेट, उत्तर में ध्रुव गेट तथा पूर्व में सूरजपोल गलता गेट है। वास्तव में नगर का प्रमुख आकर्षण स्वयं नगर ही है।

दर्शनीय स्थल—

राजमहल (सिटी पैलेस) पुराने शहर के कुल क्षेत्रफल के लगभग 1.7 भाग पर विस्तृत है। राजमहल के चतुर्दिक पक्की प्राचीर' सरहद' है। प्रवेश हेतु 'सरहद' में सात द्वार है। पूर्व का मुख्य द्वार 'सिरहड्योढ़ी' कहलाता है। दक्षिण का द्वार 'त्रिपोलिया' जो केवल राज परिवार के सदस्यों के प्रयोग के लिये है। सन् 1900 ई. में महाराजा सवाई माधोसिंह द्वितीय द्वारा बनवाया गया 'मुबारक महल' है जिसका बाहरी भाग संगमरमर की बारीक नक्काशी से युक्त है।

चारों तरफ गुलाबी दरबार से घिरा हुआ 'दिवाने-खास' रियासती समय में दरबारियों के साथ मन्त्रणा-कक्ष के रूप में काम आता था।

गजपोल द्वारा 'दीवाने-आम' को मार्ग जाता है। दीवाने-आम में महाराजा का निजी पुस्तकालय (पोथी खाना) तथा सिहल खाना (शस्त्रागार) हैं। पुस्तकालय में दुर्लभ ग्रन्थ तथा शस्त्रागार में शताब्दियों पूर्व शस्त्रों का संग्रह है।

चन्द्र महल—दीवाने-खास के उत्तरी-पश्चिमी पार्श्व में एक आकर्षक सात मंजिलों वाली भव्य इमारत चन्द्र महल स्थित है जो राजपूत शिल्पकला का विशिष्ट उदाहरण है। इसके विभिन्न कमरों में पर्यटकों को राजपूत शैली के प्राचीन भित्ति चित्र, झाड़ फानूस एवं दर्पण पर कारीगरी विशेष रूप से आकर्षित करती है। चन्द्र महल के बिल्कुल सामने श्री गोविन्द जी का सुन्दर महल स्थित है जो भगवान कृष्ण को समर्पित है। इसके आगे तालकटोरा तालाब व उसके किनारे बादल महल है।

जन्तर-मन्तर—सवाई जयसिंह ने ज्योतिष व नक्षत्र विद्या के अनुसंधान हेतु पांच वैद्य शालाऐं-दिल्ली, बनारस, उज्जैन, मथुरा व जयपुर में बनवाई जिनमें से जयपुर की वैद्य शाला सबसे बड़ी तथा अत्यन्त तर्कसंगत है। यह मुबारक महल के बाहरी प्रांगण में स्थित है। सम्राट यन्त्र, जयप्रकाश, राम यन्त्र, राशिवलय यन्त्र, कपाली यन्त्र, क्रांतियन्त्र वैद्य शाला के प्रमुख यन्त्र हैं जिनसे सूर्य एवं चन्द्र की गति और तारों की स्थिति शुद्ध रूप से सही दर्शायी गई है और एक सैकेण्ड के दसवें हिस्से तक ठीक-ठीक समय ज्ञात हो जाता है।

हवामहल—सर एडविन अर्नाल्ड के शब्दों में "हवामहल तत्कालीन शिल्पकला के जादू एवं नगर के मध्य स्थित वायु पर्वत का एक सजीव स्वरूप है। इसका निर्माण महाराजा सवाई प्रतापसिंह द्वारा 1778-1803 के मध्य करवाया गया था। पांच मंजिलो वाला गोल तथा आगे निकले झरोखों एवं खिड़कियों की एकरूपता युक्त पिरामिड सदृश्य हवामहल भारत में स्थापत्य कला का एक अनूठा उदाहरण है। झरोखों को वैज्ञानिक ढंग से इस प्रकार निर्मित किया गया है कि उनमें से होकर लगातार तेज हवा आती रहती है।

रामनिवास बाग—अजमेरी गेट से सांगानेरी गेट तक विस्तृत रामनिवास बाग महाराजा रामसिंह द्वारा एक शताब्दी पूर्व निर्मित यह उद्यान नगर परकोटे से बाहर जयपुर के लिये एक महत्वपूर्ण स्थल है, जिसमें अल्बर्ट हाल की एक अत्यन्त सुन्दर एवं कलात्मक इमारत, अजायबघर जन्तुशाला एवं चिड़ियाघर स्थित है। इसमें बड़े-बड़े लॉन, खेल के मैदान तथा रवीन्द्र कला मंच भी स्थित हैं।

अजायबघर—अल्बर्ट हाल में स्थित संग्रहालय में चीन, जापान सीरिया आदि के प्रख्यात तैल चित्रों के अतिरिक्त हिन्दू-रोमन भित्ति चित्र एवं यूनानी शैली की अनेकानेक कलाकृतियाँ संग्रहित हैं। शाह अब्बास का विश्व प्रसिद्ध सुन्दर गलीचा इसी अजायबघर की शोभा है।

गैटोर—नाहरगढ़ किले की तलहटी में जहां जयपुर के दिवंगत राजाओं की छतरियां निर्मित हैं, उस स्थल को गैटोर कहते हैं। संगमरमर से बनी इन छतरियों में खुदाई का कार्य दर्शनीय है। सबसे सुन्दर छतरी जयपुर के संस्थापक महाराजा सवाई जयसिंह की है जिसकी एक अनुकृति लन्दन के केंनसिंगल म्यूजियम में भी रखी गई है।

गलता—जयपुर की पूर्वी पहाड़ियों में एक सुन्दर कन्दरा पर स्थित गलता का पवित्र कुण्ड है। यह इस पहाड़ी की एक चोटी पर सूर्य का प्रसिद्ध मन्दिर है। गलता घाटी में ऊपर से नीचे तक तालावों, मन्दिरों तथा यात्रियों के आवास स्थित हैं। इस धार्मिक स्थल में अनेक स्नानागार हैं इनमें वर्ष भर पवित्र गौमुख से पानी आता रहता है। ऐसी धारणा है कि गालव ऋषि का यह तप-स्थल रहा है।

नाहरगढ़—यह विशाल दुर्ग नगर के उत्तर-पश्चिम में स्थित एक पहाड़ी पर सन् 1734 में निर्मित किया गया था। राजाओं का खजाना इसी दुर्ग में रखा जाता था और राज्य परिवार के सदस्यों को भी दुर्ग रक्षक "विश्वास पास मीणों" आंखों पर पट्टी बांध कर ले जाते थे। इसमें हवा मन्दिर व माधवेन्द्र भवन स्थापत्यकला के सुन्दर उदाहरण है। इन के अलावा महाराजा सवाई-माधोसिंह के कृपापात्रों के नाम पर बनवाये गये 9 दुमंजिले रावले हैं।

विद्याधर बाग—जयपुर-आगरा मार्ग पर स्थित इस बाग का निर्माण नगर के शिल्पकार श्री विद्याधर भट्टाचार्य ने करवाया। पहाड़ियों की तलहटी में बना यह सीढ़ीनुमा उद्यान बड़ा मनोहारी एवं आकर्षक लगता है।

सिसोदिया महल व उद्यान महाराजा सवाई जयसिंह ने अपनी रानी के लिये 1770 ई. में इसका निर्माण कराया था। इस महल में एक केन्द्रीय कक्ष तथा तीन ओर बरामदे हैं और एक सुन्दर उद्यान है।

सांगानेर—जयपुर से 13 किमी. दक्षिण में एक प्राचीन राजपूत नगर सांगानेर 11वीं शताब्दी के प्राचीन संघीजी का जैन-मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है जो संगमरमर की उत्कृष्ट शिलाकला का उत्कृष्ट नमूना है जिसें मॉऊण्ट आबू में स्थित दिलवाड़ा मन्दिर के बाद दूसरा स्थान दिया जाता है। यह नगर हस्त छपाई व कागज के लिये विख्यात है। जयपुर हवाई अड्डा सांगानेर से 1 किमी. दूर स्थित है।

आमेर—प्राचीन जयपुर राज्य की राजधानी आमेर, जयपुर नगर से 11 किमी. दूर उत्तर-पूर्व में जयपुर-देहली मार्ग पर स्थित है। आमेर के महल माओटा झील के किनारे पहाड़ी पर निर्मित है। आमेर किले के निर्माण का आरम्भ 17वीं शताब्दी में राजा मानसिंह ने किया जबकि 100 वर्ष बाद सवाई जयसिंह ने इसे पूरा करवाया। आमेर के राजमहल के प्रवेश द्वार पर गणपति की मूर्ति स्थित है। महलों में दीवाने-खास और जयमन्दिर कला की सीमा है। मुख्य द्वार के निकट जयपुर के राजाओं की कुलदेवी 'शीलामाता' का मन्दिर है। यहां का शीशमहल अत्यन्त आकर्षक है। आमेर अपने शक्तिशाली किले जयगढ़, जो लगभग 150 मीटर ऊंची चोटी पर स्थित राजमहल की रक्षा करता प्रतीत होता है, के लिये भी प्रसिद्ध है। आमेर पर्यटन दृष्टि से अपनी भव्यता का मुख्य आकर्षक स्थल है।

उदयपुर

अपूर्व प्राकृतिक सौन्दर्य की गोद में स्थित उदयपुर नगर सन् 1568 में महाराणा उदयसिंह द्वारा समुद्रतल से लगभग 580 मीटर की ऊंचाई पर बसाया गया था। सुन्दर एवं हरियाली पहाड़ियों के बीच हिलोरे लेती सुरम्य झीलों ने इसे झीलों का नगर बना दिया है जो पर्यटकों पर जादू सा असर छोड़ती है। यह नगर 'राजस्थान का काश्मीर' वेनिस ऑफ दी ईस्ट, झीलों की रानी आदि के नामों से भी विख्यात है।

दर्शनीय स्थल—

राजमहल—पिछोला झील के किनारे स्थित ये महल राजस्थान में सबसे विशाल है। शहर के सबसे ऊंचे स्थल पर बने ये महल 450 मीटर लम्बे 180 मीटर से 240 मीटर चौड़े है। महाराणा उदयसिंह द्वारा निर्मित राज-आंगन महलों का सबसे प्राचीन भाग है। राजमहलों में बाड़ीमहल, दिलखुश महल, यश मन्दिर, मोती महल, भीमविलास, मोर चौक, छोटी चित्रसाल, स्वरूप विलास, सूर्यप्रकाश, मानक महल, सूरज चौपड़, शिव विलास, प्रीतमनिवास आदि दर्शनीय हैं।

राजमहल का एक हिस्सा महाराणा के निजी उपयोग हेतु है तथा शेष भाग महाराणा मेवाड़ चेरिटेबल ट्रस्ट के अन्तर्गत है। महल के एक हिस्से में **प्रताप संग्रहालय** है जहां पुरानी तस्वीरें, शिलालेख, हथियार विभिन्न किस्म की पगड़ियां आदि का संग्रह है।

पिछोला झील—राजमहल को प्रक्षालित करती पिछोला झील को महाराणा लाखा के शासनकाल (1382-1421) में एक बन्जारे ने बनवाई थी। यह झील 5 किमी. लम्बी. 3 किमी. चौड़ी तथा 8 मीटर गहरी है। यह झील अपने चारों और हरी-भरी पहाड़ियों, बड़े-बड़े मन्दिरों, नहाने के सुन्दर घाटों और राजमहलों को समेटे पर्यटकों को आकर्षित करती है। इस झील के बीचों बीच बनाये गये श्वेत एवं धवल जग निवास व 'जगमन्दिर' जलमहल की अनूठी छटा आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है।

लेक पैलेस (जग-निवास)—पिछोला झील के बीचों बीच स्थित इस महल को महाराणा जगतसिंह ने 17 वीं शताब्दी में बनवाया था। अब इसको पर्यटकों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का आधुनिक सुविधाओं युक्त होटल में परिवर्तित कर दिया गया है। इसमें बड़ा महल, खासमहल, दिलाराम, सज्जन निवास और चन्द्र प्रकाश विशेष रूप से दर्शनीय है।

जग मन्दिर (लेक गार्डन पैलेस)—पिछोला झील के दक्षिणी छोर पर एक टापू पर स्थित इस महल का ऐतिहासिक महत्व है। शहजादा खुर्रम को तत्कालीन महाराणा जयसिंह ने यहीं शरण दी थी। यहां के गोल गुम्वज, पानी के हौज और उद्यानों ने ही वाद में शाहजहां (खुर्रम) को 'ताजमहल' के भावी स्वरूप की प्रेरणा दी थी, ऐसा कहा जाता है।

जगदीश मन्दिर—इस मन्दिर का निर्माण जगतसिंह प्रथम ने सन् 1651 में करवाया था। काले संगमरमर के पत्थर की यहां भगवान विष्णु की चतुर्भुज मूर्ति है।

सहेलियों की वाड़ी—फतहसागर की पाल की तलहटी में वनी सहेलियों की वाड़ी राजस्थान के रमणीक वगीचों में से एक है। सहेलियों की वाड़ी के बीच में गोल तथा चोकोर फव्वारे लगे हैं। प्रतिवर्ष श्रावण कृष्ण अमावस्था को **हरियाली अमावस्या** नामक मेला यहां लगता है।

फतह सागर—इस झील का निर्माण सन् 1678 में महाराणा फतहसिंह ने करवाया था। यह झील तीन ओर पहाड़ियों से घिरी हुई है। झील के चारों ओर किनारे-किनारे सर्पाकार सड़कें है। फ़तहसागर में नौका विहार तथा नेहरू गार्डन व केफेटेरिया अत्यन्त आकर्षक है। सूर्यास्त का दृश्य दर्शकों को मुग्ध किये विना नहीं रहता।

मोती मगरी—फतहसागर झील के किनारे की पहाड़ी मोती मगरी पर महाराणा प्रताप की कांस्य मिश्रित धातु से वनी भव्य मूर्ति एवं स्मारक वड़ा सुन्दर एवं दर्शनीय है।

सज्जन निवास वाग (गुलाव वाग)—महाराणा महल के दक्षिण पूर्व की ओर स्थित सज्जन निवास उद्यान का निर्माण महाराणा सज्जनसिंह जी ने करवाया था। यहां के गुलाव अपने आकार के लिये विख्यात हैं, इसी कारण इसे गुलाव वाग कहते है। इसी में ही नगर परिषद के द्वारा वच्चों की रेलगाड़ी का निर्माण कराया गया है। इस भवन को वाणी-विलास के नाम से भी पुकारा जाता है।

जगत का मन्दिर (राजस्थान का खजुराहो)—उदयपुर से 56 किमी. दूर कुरावड़ होते हुए जगत नामक ग्राम स्थित है। **अम्बिका देवी** का भव्य मन्दिर 10 वीं शताब्दी का है जो कला एवं शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट है। कला मर्मज्ञों ने इसे "राजस्थान का खजुराहो" कहा है।

हल्दी घाटी—नाथद्वारा से लगभग 11 किमी. पश्चिम में मेवाड़ की इतिहास प्रसिद्ध रणस्थली **"हल्दीघाटी"** है जहां महाराणा प्रताप ने 1576 ई. में मानसिंह के नेतृत्व में मुगल सम्राट अकवर की सेना के विरुद्ध युद्ध किया था। स्वामी भक्त चेतक घोड़े ने अपने प्राणों की आहुति इसी स्थान पर देकर अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा की थी। इसे **भारत की थर्मोपाली** के नाम से भी जाना जाता है।

एकलिंग जी का मन्दिर—नाथद्वारा मार्ग पर उदयपुर के उत्तर में एकलिंग जी का मन्दिर है जो सफेद पत्थरों से निर्मित है। तथा इसमें काले संगमरमर की भगवान शिव की विशाल मूर्ति है। यह मेवाड़ के महाराणाओं का सदैव से इष्ट देवता का स्थान रहा है।

श्रीनाथद्वारा—उदयपुर के उत्तर में 48 किमी. दूर स्थित वैष्णवों का सुप्रसिद्ध श्रीनाथ जी का तीर्थ स्थान है। श्रीनाथ जी की मूर्ति 12 वीं शताब्दी की वताई जाती है। बनास नदी के किनारे वसा नगर श्रीनाथजी के मन्दिर के कारण जन्माष्टमी व अन्नकूट के अवसरों पर भीड़ से भर जाता है।

कुम्भलगढ़—इस दुर्ग का निर्माण सन् 1448 ई. में महाराणा कुम्भा ने करवाया था। एक वार की पराजय के अलावा यह दुर्ग हमेशा अजेय रहा है। महाराणा प्रताप ने भी यहां रहकर मेवाड़ पर शासन किया था।

रणकपुर के जैन-मन्दिर—ये मन्दिर जो रणकपुर के छोटे से गांव में स्थित है, कला एवं शिल्प का अनुपम भण्डार है। **चौमुखा** मन्दिर रणकपुर के मन्दिर में प्रमुख है। यहाँ प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान आदि नाथ की मूर्ति है। इनका निर्माण सन् 1439 ई. में महाराणा कुम्भा के राज्यकाल में धरणशाह नामक ओसवाल जैन महाजन ने करवाया था।

चित्तौड़गढ़—अजमेर से 152 किमी. दक्षिण में व उदयपुर से 112 किमी. उत्तर-पूर्व में चित्तौड़गढ़ नगर स्थित है जो अपने ऐतिहासिक दुर्ग के लिये प्रसिद्ध है। इस नगर का इतिहास एवं परम्पराएं, पुरातत्व एवं शिल्प-कला, राजपूत के अविस्मरणीय बलिदान तथा इनकी स्त्रियों द्वारा किये गये जौहर आदि दुर्ग के आकर्षण हैं।

चित्तौड़गढ़ की स्थापना के विषय में कोई निश्चित मत नही है। एक दन्त कथा के अनुसार द्वापर युग में पाण्डव महाबली भीम ने इस किले का निर्माण कराया जबकि इतिहासज्ञों के अनुसार इसे चित्रांगद ने बनवाया और इसी के नाम पर इस नगर का नाम चित्रकूट पड़ा। चित्तौड़ उसी का अपभ्रंश है। मेवाड़ के प्राचीन सिक्कों पर भी 'चित्रकूट' शब्द अंकित मिला है।

दर्शनीय स्थल--

दुर्ग—यह दुर्ग एक पृथक चट्टान पर समुद्र तल से लगभग 150 मीटर ऊंचाई पर दक्षिण से उत्तर तक लग-भग 6 वर्ग किलीमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है। इस दुर्ग के चारों ओर 11.5 किमी. का परकोटा बना है। इस किले में दो बड़े मार्ग हैं। पश्चिमी सर्पाकार प्रवेश मार्ग में सात विशाल द्वार हैं-पाँडव पोल, भैरों पोल, हनुमान पोल, गणेश पोल, जोड़ला पोल, लक्ष्मण पोल व राम पोल। भैरों पोल, व हनुमान पोल के बीच पत्ता व ठाकुर जय-मल की छतरियां हैं जिन्होंने सन् 1657 में अकबर से लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की थी। दुर्ग में भव्य राजमहल, मन्दिर व कुण्ड दर्शनीय है।

विजय स्तम्भ—सन् 1440 में मालवा के सुल्तान महमूद शाह तथा गुजरात के सुल्तान कुतुबद्दीन शाह के संयुक्त आक्रमण पर विजय की स्मृति में महाराणा कुम्भा ने सन् 1458-68 में **'विजय स्तम्भ'** का निर्माण कर-वाया था। यह स्तम्भ 47 वर्ग फीट आधार पर स्थित है जो 30 फीट चौड़ा और 122 फीट ऊंचा है तथा इस स्तम्भ पर 157 सीढ़ियां हैं। स्तम्भ के चारों ओर पौरा-णिक कथाऐं मूर्तियों में अंकित है जो मूर्तिकला के श्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है। तीसरी व आठवी मंजिल पर 'अल्लाह' शब्द की खुदाई अन्य धर्मों के आदर का सूचक है। नवीं मंजिल में हमीर प्रथम से महाराणा कुम्भा तक के वंश इतिहास चित्रित हैं।

कीर्ति स्तम्भ—12 वीं शताब्दी में जैन व्यापारी जीना जी द्वारा निर्मित स्तम्भ जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर आदि नाथ को समर्पित हैं। यह स्तम्भ अपने आधार पर 35 फीट व्यास तथा 75 फीट ऊंचाई लिये है। इस स्तम्भ के चारों कोनों पर ऋषभदेव की सुन्दर मूर्तियां है।

अन्य दर्शनीय स्थलों में महाराणा कुम्भा के महल, सतबीस देवरा (जैन मन्दिर), कुम्भ श्याम का मन्दिर (1449), मीरा मन्दिर जौहर स्थल (महासती), गौमुख कुण्ड, पद्मिनी के महल, काली मां का मन्दिर, भीमलत झील आदि उल्लेखनीय हैं।

कोटा—राजस्थान के दक्षिण-पूर्व में चम्बल नदी के किनारे स्थित कोटा नगर मध्ययुगीन भव्यता एवं आधुनिक औद्योगिककरण का मिश्रित दृश्य प्रस्तुत करता है। सन् 1681 ई. में कोटा रियासत की नींव पड़ी तथा चौहान राजपूतों के हाड़ा वंशज यहां राज्य करते थे। कोटा का आकर्षक किला वर्तमान चम्बल नदी परियोजना पर अनेक बांधों के साथ स्थित है।

पश्चिमी रेल्वे की ब्रॉडगेज शाखा देहली-बम्बई मार्ग पर दिल्ली से 917 किलोमीटर दूर कोटा की स्थिति है। सांस्कृतिक व औद्योगिक दृष्टि से भी कोटा का बहुत महत्व है। यहां का दशहरा का मेला देश भर में प्रसिद्ध है। यहां के कई उद्योग जैसे सीमेन्ट फैक्ट्री, टैक्सटाइल व मिनरल इण्डस्ट्रीज, रबर व टिन उद्योग, नाइलोन व अन्य सिन्थेटिक फेब्रिक्स उद्योग, इलेक्ट्रोनिक्स आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दर्शनीय स्थल--

रंगवाड़ी--रंगवाड़ी में महावीर जी का प्राचीन मन्दिर और उससे लगे हुए तालाब, छतरियां एवं बगीचे पर्यटकों को विशेष रूप से आकर्षित करते है।

अजायबघर — महाराजा माधोसिंह अजायबघर प्राचीन राजमहल में स्थित है जिसमें राजपूत शैली की पेन्टिग्स, भित्तिचित्र, प्राचीन सिक्के, हस्तलिखित ग्रन्थ तथा हाड़ोती शैली की मूर्तियां आदि का संग्रह है।

बारोली—प्रतापसागर बांध की ओर जाते समय कोटा से लगभग 40 किमी. दूर आठवीं शताब्दी के अति सुन्दर मन्दिर स्थित है जिनकी शिल्प कला उत्कृष्ट है। मण्डप के द्वार पर नृत्य की मुद्रा में शिव की मूर्ति अति सुन्दर हैं।

दरा गेम सेन्क्चुअरी—कोटा से 80 किमी. दूर विन्ध्याचल की सुरम्य 'मुकन्दरा' शाखाओं के मध्य दरा घाटी वन्य जीव संरक्षण स्थल सन् 1955 में बनाया गया। यहां चीते, चतकेदार हिरण, शेर, भालू, नील गाय, चीतल, जंगली सूअर तथा बड़ी संख्या में खरगोश और विभिन्न पक्षी प्राकृतिक वातावरण में विचरण करते हैं दारा गेस्ट हाऊस से लगभग एक किमी. दूरी पर स्थित अमीगढ़ महल में विश्राम की व्यवस्था भी उपलब्ध है।

कोटा के प्राचीनतम शिवालयों में **नीलकण्ठ महादेव** का मन्दिर राजमहल के पूर्व में स्थित है। शहर के दक्षिण में विश्वनाथ का अत्यन्त रमणीक मन्दिर है। गोपुरनाथ का सुप्रसिद्ध शिवालय चम्बल की अनोखी छटा बनाता है। यहां दो घाटियों के बीच 60 मीटर ऊंचाई से पानी गिरता है। राजमहल, सीतावाड़ी, अधर-शिला, अमर निवास और छत्रविलास बाग कोटा के अन्य अनुपम दर्शनीय स्थल हैं।

माउन्ट आबू. अर्बुद प्रदेश-

माउन्ट आबू राजस्थान का केवल एक मात्र हिल स्टेशन है जो पर्यटकों को ग्रीष्म ऋतु में गर्मी से राहत तथा ताजगी प्रदान करता है। अरावली शृंखलाओं के दक्षिण-पश्चिम में 1200 मीटर ऊंची पहाड़ी पर स्थित आबू चतुर्दिक वनसम्पदा तथा विभिन्न भू-आकृतियों से घिरा हैं। माउन्ट आबू में राजस्थान की सबसे ऊंची चोटी गुरू शिखर (1727 मी.) स्थित है।

आबू की उत्पत्ति के विषय में कई दन्त कथाऐं है। एक किवदन्ति के अनुसार आबू पहाड़ सत्ययुग में मौजूद था। यूनानी राजपूत मेगस्थनीज ने अपने संस्मरणों में (चन्द्रगुप्त के राज्यकाल) इसका उल्लेख किया हैं। एक अन्य किवदन्ति के अनुसार भगवान शंकर के वाहन नन्दी के गर्त में गिर जाने के कारण हिमाचल द्वारा सहायता करने हेतु भेजे गये अर्बुद नामक विशाल जन्तु के नाम पर इस उच्च स्थान का नाम अर्बुद रखा गया जो कालान्तर में छोटा होकर आबू रह गया।

दर्शनीय स्थल—

दिलवाड़ा जैन मन्दिर—देलवाड़ा का विश्व प्रसिद्ध जैन-मन्दिर संगमरमर की उत्कृष्ट वास्तुकला एवं सुन्दर सज्जा का प्रतीक है। इस मन्दिर का निर्माण 1031 ई. में विमलशाह द्वारा करवाया गया था। यह मन्दिर प्रथम जैन तीर्थङ्कर आदि नाथ को समर्पित है। भगवान आदिनाथ की कांस्य मूर्ति में बहुमूल्य पत्थर के नेत्र ओर हीरों का नेकलेश लगा है। पत्थर के दस हाथी, तोरण, गुम्वद, स्तम्भ, छत आदि वास्तुकला विभिन्न कृतियों से भरे पड़े है। मुख्य पाँच मन्दिरों में से दो मन्दिर वास्तुपाल और तेजपाल के मन्दिर अपनी सूक्ष्म कलात्मक खुदाई के लिये प्रसिद्ध है।

अचलगढ़-यहाँ चार जैन-मन्दिर है। इनमें से गौमुख जी का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। अचलगढ़ के किले का निर्माण महाराणा कुम्भा ने सन् 1452 ई. में करवाया था।

नक्खी झील—यह झील चारों तरफ से हरे भरे पेड़ों तथा पहाड़ियों के बीच है जिसे देवताओं ने अपने नाखूनों से खोद कर बनाया, ऐसी किवदन्ति हैं, अतः इसका नाम नक्खी झील पड़ा। इस झील के किनारे कई गुफाऐं-चम्पागुफा, हाथीगुफा, और रामझरोखा गुफा आदि स्थित है जिनमें साधु रहते है।

टॉड रॉक व नन रॉक—नक्खी झील के दक्षिण में स्थित मेढ़क के आकार की एक विशाल चट्टान है जिसे **टॉड रॉक** के नाम से पुकारते है। दूसरी आकर्षक चट्टान राजपूताना क्लब के पास घूंघट निकाले स्त्री जैसी है जिसे **नन रॉक** कहते है। यहां नन्दी रॉक, केमल रॉक व बुलडॉग रॉक भी आकर्षक चट्टानें भी दर्शनीय हैं।

अन्य दर्शनीय स्थलों में सनसेट पांइन्ट, अर्बुदा देवी; भृतहरि की गुफा, राणा कुम्भा का महल, वशिष्ट आश्रम, गौमुख गुरूशिखर तथा अचलेश्वर महदेव आदि विशेष रूप से पर्यटकों को आकर्षित करते है।

जैसलमेर

राजस्थान के पश्चिमी सीमान्त पर थार मरुस्थल में प्राचीन कला एवं ऐतिहासिक महत्व का नगर जैसलमेर

स्थित हैं। इस नगर की स्थापना सन् 1156 ई. में यादव वंशीय राजपूत राजा रावल जैसलसिंह ने की थी और उन्हीं के नाम पर यह नगर जैसलमेर कहलाया। शहर के चतुर्दिक परकोटा बना हैं केवल नई बस्तियां इसके बाहर बसी हुई हैं।

दर्शनीय स्थल--

दुर्ग—जैसलमेर दुर्ग राजस्थान का प्राचीनतम दुर्ग परकोटे के मध्य 85 मीटर ऊंची पहाड़ी पर निर्मित है। इस दुर्ग की 99 बुर्जे है जिनका उपयोग युद्ध के समय तोपों के प्रयोग के लिये होता था। कहा जाता है कि कुमारी रत्ना ने अलाउद्दीन की सेना से 12 वर्षों तक इन्हीं बुर्जों से युद्ध किया था। दुर्ग के विलास महल, रंग-महल, राज विलास तथा मोती महल की चित्रकारी तथा शिल्प तर्राशी उत्कृष्ट है। यहीं पर जैन ग्रन्थों का संग्रहालय है।

पटुओं की हवेली—जैसलमेर के प्रसिद्ध सेठ पटुओं के द्वारा 18वीं शताब्दी में नगर में चार हवेलियों का निर्माण कराया गया। इस लिये इन्हें पटुओं की हवेली के नाम से जाना जाता है। नगर की हवेलियों के झरोखे, खिड़कियां व मेहरावों की कलात्मक जालियों की शिल्प तर्राशी के नायाब नमूनों को देखकर पर्यटक कला के सराहे नहीं उकताते। यहां नथमल की हवेली व दीवान जालिम सिंह की हवेली भी अपनी स्थापत्य कला के लिये प्रसिद्ध है।

अन्य दर्शनीय स्थलों के अमरसर तालाब, गड़ी सागर तालाब, बादा बाघ की छतरी, मरु राष्ट्रीय उद्यान आदि उल्लेखनीय है।

जोधपुर--

भारत महान के मरुस्थल का प्रमुख नगर जोधपुर, राठौड़ राजा राव जोधाजी द्वारा 1459 ई. में बसाया गया था। नगर के चारों तरफ परकोटा बना हुआ है जिसमें प्रवेश हेतु नागौरी गेट, मेडती गेट, सोजती गेट, जालौरी गेट, सिवाणची गेट व चांदपोल नाम के दरवाजे बने हैं। महाराजा मानसिंह तथा जसवन्तसिंह के समय में नगर निर्माण एवं शिल्पकारी में वृद्धि हुई। जोधपुर को आधुनिक नगर का स्वरूप देने का श्रेय महाराजा उम्मेद-सिंह जी को है।

दर्शनीय स्थल--

दुर्ग—मरुस्थलीय घाटी में 120 मीटर ऊंचे कगार पर सन् 1459 में राव जोधा जी ने किले की नीव डाली। दुर्ग में सात भव्य द्वार में से होकर प्रवेश उपलब्ध हैं। किले में स्थित कई महल विस्तृत अहाते में निर्मित है। महलों की महरावनुमा खिड़कियां, बालकनियां तथा बालू पत्थर में जाली का कार्य तथा असंख्य पत्थर में निर्मित चिलमन शाही नारियों के रक्षक है। मोती महल, फूल महल, मान महल की शिल्पकला अत्यन्त उत्कृष्ट है। किसी भी पर्यटक को दुर्ग में स्थित सिलेह खाना (शास्त्रा-गार) बिना देखे नहीं जाना चाहिये। चामुण्डा देवी का मन्दिर, चित्रशाला एवं प्राचीन ग्रन्थों का पुस्तकालय भी है।

जसवन्त थड़ा—दुर्ग के समीप ही महाराजा जसवन्त-सिंह जी की याद में बनवाया गया संगमरमर से निर्मित भवन जसवन्त थड़ा है। इसमें जोधपुर के स्वर्गीय नरेशों की आदमकद कलापूर्ण प्रतिमाएं देखने योग्य है।

उम्मेद भवन—छीतर झील के पास एक पहाड़ी पर आधुनिक वास्तुकला का बालू पत्थर से निर्मित यह अद्वितीय नमूना उम्मेद भवन (छीतर पैलेस) महाराजा उम्मेदसिंह जी ने बनवाया था। हिन्दु-मुस्लिम एवं पाश्चात्य वास्तुकला का इस भवन में सुन्दर संगम हुआ है।

बालसमन्द झील—इस झील का निर्माण परिहार नरेश बालक राव द्वारा सन् 1159 ई. में एक मनोरम प्राकृतिक स्थान पर करवाया जहाँ वर्षा का जल एकत्र होता है। यहीं पर एक सुन्दर उद्यान तथा एक महल भी है।

नगर के अन्य दर्शनीय स्थलों में कुंज बिहारी का मन्दिर, गोराधाय की छतरी, महामन्दिर, कायलाना-झील, सरदार सामंद झील तथा पब्लिक पार्क आदि उल्लेखनीय है।

मण्डोर-राव जोधाजी द्वारा जोधपुर की नींव रखने से पूर्व तक मण्डोर मारवाड़ की राजधानी रहा था। प्राचीन

माण्डव्यपुर का अपभ्रंश मण्डोर है। जोधपुर के प्राचीन राजाओं की, छतरियां एवं देवालय यहां निर्मित है। महाराजा अजीतसिंह की छतरी जोधपुर शिल्पकला का सुन्दर नमूना है। उद्यान में 'वीरों की गैलरी' बनी है जिनमें सोलह आदमकद प्रतिमाऐ बनी है जो पर्यटकों को अधिक आकर्षित करती है।

ओसिया—जोधपुर शहर से 65 किमी. दूर ओसियां वैष्णव तथा जैन-मन्दिरों के लिये प्रसिद्ध है। 8वीं शताब्दी के सूर्य मन्दिर की छत शंकुवाकार है। जैन मन्दिर कला की दृष्टि से अद्वितीय है। हरीहर के तीन मन्दिर खजुराहों के समान प्रसिद्ध है जिनमें मूर्तिकला एवं शिल्पकला सजीवता से परिपूर्ण है यहां के मन्दिरों को संरक्षण की आवश्यकता है।

उपरोक्त पर्यटन स्थलों के वर्णन से यह स्पष्ट है कि राज्य में इस उद्योग के विकास की बहुत अधिक सम्भावनाऐं है। जिनके विकास हेतु निम्न सुझावों को अपनाया जाना चाहिये-

(i) पर्यटन स्थल की स्थानीय संस्थाओं को उन्हें आकर्षक एवं सुन्दर बनाना चाहिये।

(ii) राजस्थान के कई स्थान स्वास्थ्यप्रद जलवायु की दृष्टि से उपयुक्त है जैसे खामली घाट, कुम्भलगढ़, जग्गा (उदयपुर) भेसरोड़गढ़ (चित्तौड़गढ़), मेनाल, बिजोलिया (भीलवाड़ा) आदि। इन्हें स्वास्थ्य लाभ के विश्रान्तिगृह के रूप में विकसित किया जाये।

(iii) पर्यटकों हेतु पर्यटन स्थलों पर होटलों का विकास, होटलों का निर्माण, उनमें सेवाओं का सुधार आदि किया जाना चाहिये। इस दिशा में पर्यटन विभाग प्रशंसनीय कार्य कर रहा है।

(iv) पर्यटकों के लिये परिवहन की सुविधाऐं प्रदान की जानी चाहिये ताकि वे पर्यटन स्थलों का आनन्द ले सके। राज्य में यातायात का अभाव पर्यटक स्थलों के विकास में बाधा है, इसे शीघ्रताशीघ्र दूर करना होगा।

(v) पर्यटकों के लिये उपयुक्त गाइड पुस्तकें पर्यटन विभाग द्वारा उपलब्ध करवानी चाहिये जिनमें चित्ताकर्षक चित्र, उत्तम फोटोग्राफी, शुद्ध भाषा, दर्शनीय स्थानों के नाम व महत्व, हस्तकला की प्रसिद्ध वस्तुओं के नाम व विक्रय मूल्य, आवास के लिये होटलों व धर्मशालाओं के नाम, टूरिस्ट बंगलों के स्थान आदि का पूर्ण विवरण होना चाहिये जिससे पर्यटक कुछ विशेष शहरों व स्थलों तक सीमित न रहकर राज्य के आन्तरिक स्थलों का भी आनन्द उठा सकें।

(vi) पर्यटकों का मार्ग दर्शन करने हेतु प्रत्येक पर्यटन स्थल पर जन सम्पर्क कार्यालय की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिये। अभी राज्य में यह सुविधा केवल बड़े शहरों तक ही सीमित है।

(vii) पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु पर्यटन सप्ताह के आयोजन मेलों, उत्सवों एवं त्यौहारों पर किये जाने चाहिये। अभी इस तरह के आयोजन बहुत की कम किये जाते है।

(viii) राजस्थान में कई झीलें है जहां उनके किनारे पर पर्यटकों के लिये विश्रामगृह बना कर उन्हें आकर्षित किया जा सकता है।

(ix) आवास व्यवस्था पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिये। विशेषकर उनकी सफाई, शुद्ध भोजन पर्यटकों के साथ नम्रता का व्यहार, होटल, टूरिस्ट-बंगले और अन्य विश्रान्ति गृह होने से पर्यटक बहुत प्रभावित होते है और वे भविष्य में यात्रा करने वाले पर्यटकों को भी इन व्यवस्थाओं के बारे में बतलाते हैं जिससे पर्यटक आवागमन में हिचके नहीं। बार (मदिरापान की सुविधा) की व्यवस्था भी पर्यटकों को काफी आकर्षित करती है। इस दिशा में कदम उठाये गये हैं। फिर भी इस सुविधा को सभी स्थलों पर उपलब्ध कराया जाये।

(x) केन्द्रीय पर्यटन स्थल पर एक सुविज्ञ और प्रशिक्षित स्वागतकर्ता नियुक्त किया जाना चाहिये जिससे वह विदेशी पर्यटकों के समक्ष राष्ट्र का सही सही प्रतिनिधित्व कर सके और आकर्षक स्थलों की जानकारी प्रदान कर सके।

राजस्थान राज्य के लिये पर्यटन उद्योग एक महत्वपूर्ण उद्योग बनता जा रहा है क्योंकि यह विदेशी मुद्रा-अर्जन का पांचवा सबसे बड़ा स्रोत है। अत: अधिक पर्यटकों के आगमन से न केवल राजस्थान की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव पड़ेगा बल्कि लोगों को कार्य के अवसर और अधिक प्राप्त होंगे, बेरोजगारी दूर होगी, अन्य व्यवसाय भी विकसित होंगे। इसलिये राज्य में पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु पर्यटन उद्योग की दृष्टि से उपयुक्त सुविधाऐं प्रदान करने के अधिक से अधिक प्रयास किये जायें।

5 बेरोजगारी एवं गरीबी

(Unemployment & Poverty)

भारत वर्ष के अन्य राज्यों के समान राजस्थान राज्य में भी बेरोजगारी की समस्या एक विकट समस्या है जो दिन प्रतिदिन गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। इसका सबसे बड़ा कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि है। राजस्थान में ही सन् 1901 में जनसंख्या एक करोड़ तीन लाख थी जो बढ़कर 1981 में 3 करोड़ 42 लाख 61 हजार 862 हो गई। अकेले 1971-81 के दशक में जनसंख्या में 32.97 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। रोजगार के साधनों में वृद्धि जब जनसंख्या की वृद्धि के अनुरूप नहीं होती है। तब बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है।

सन् 1981 की जनगणना के अनुसार, प्रदेश की 79 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है तथा लगभग 68.91 प्रतिशत जनसंख्या की उदरपूर्ति कृषि पर निर्भर है। इसका मुख्य कारण ग्रामीण किसानों, शिक्षित लोगों तथा तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का बेरोजगारी से पीड़ित होना है। राज्य की कुल जनसंख्या के 30.48 प्रतिशत व्यक्तियों को ही रोजगार प्राप्त है।

कृषि व्यवसाय में भी सिंचाई की सुविधाओं में कमी एवं वर्षा का अभाव व असमान वितरण तथा मात्रा आदि के कारण खेतिहर मजदूर वर्ग के अधिकांश दिनों में बेकार रहते है। राज्य में कृषि पर आधारित मजदूरों को देश के औसत 90 दिनों के विरूद्ध केवल 30 दिन ही रोजगार उपलब्ध होता है। प्रदेश के केवल 12 प्रतिशत परिवार ही अपनी जीविका ठीक प्रकार से कमा पाते हैं। प्रदेश के 70 प्रतिशत से भी अधिक कृषक सीमान्त कृषक अथवा उससे भी निम्न श्रेणी के है।

राजस्थान में रोजगार कार्यालयों में 1987-88 तक 7.13 लाख व्यक्ति रोजगार हेतु पंजीकृत थे जिनमें शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों ही प्रकार के व्यक्ति सम्मिलित है। राज्य में कुल कार्यकारी जनसंख्या (15-60वर्ष) 176.56 लाख (1981) थी जोकि राज्य की कुल जनसंख्या का 51.53 प्रतिशत है। राज्य के उद्योग निदेशालय में पंजीकृत औसत दैनिक श्रम नियोजन 4.93 लाख (1987) था जिनमें पंजीकृत लघु औद्योगिक इकाइयों में औसत श्रम नियोजन 2.07 लाख था।

बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिये केन्द्र और राज्य सरकार दोनों ही प्रयत्नशील है। छठी एवं सातवीं पंचवर्षीय योजनाओं में बेकारी दूर करने की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया गया है। इन योजनाओं के द्वारा सन् 1990 तक पूरे देश में 4 करोड़ 63 लाख नये रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराये जाने का लक्ष्य निर्धारित है। इसी प्रकार गरीबी की रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने वालों का प्रतिशत 36% से कम कर 24% तक लाने का लक्ष्य रखा गया है।

गरीबी—राज्य में गरीबी की समस्या काफी विषम हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर कृषकों की वार्षिक आय 225 रूपये से भी कम है जिसके कारण वह अपनी उदरपूर्ति बड़ी मुश्किल से कर पाते है। राजस्थान में 1970-71 के स्थिर मूल्यों पर औसत वार्षिक आय 535 रूपये थी जोकि सन् 1981-82 में 577 रूपये तथा 1987-88 में 508 रूपये ही रह गई। इसका प्रमुख कारण राज्य में निरन्तर गत चार वर्षों में वर्षा की अनिश्चितता व सूखा एवं अकाल था जिसके कारण प्रदेश में आर्थिक विषमता और बढ़ गई है। बर्तमान में राज्य की 65 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता की सीमा रेखा से निम्न स्तर का जीवन व्यतीत कर रही है।

बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्या के हल हेतु सरकारी प्रयास

बेरोजगारी एवं गरीबी की इस समस्या से निपटने हेतु राजस्थान में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं तथा बीससूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत कई कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, जिनमें से निम्न कार्यक्रम प्रमुख है—

(i) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP)—1 अक्टूबर,1980 से प्रारम्भ इस कार्यक्रम को प्रभावी रूप से वर्ष 1981-82 से लागू किया गया। इस कार्यक्रम का

मुख्य उद्देश्य ग्रामीण बेरोजगार तथा अन्य बेरोजगारों को रोजगार दिये जाने के साथ-साथ सामुदायिक परिसम्पतियों का निर्माण करना भी है, जिससे ग्रामवासियों के आय स्त्रोतों को धीरे धीरे विकसित किया जा सके। वर्तमान में यह कार्यक्रम राज्य के 237 विकास खण्डों में क्रियान्वित किया जा रहा है जहां ग्रामवासियों एवं पंचायती राज संस्थाओं का पूर्ण सहयोग इसका र्यक्रम को मिल रहा है।

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के अन्तर्गत सड़कों के किनारे, रेल्वे लाईन के पास, वन क्षेत्रों एवं आकृषि क्षेत्रों में वृक्षारोपण ईधन व चरागाह का विकास, स्कूलों एवं संस्थाओं के माध्यम से पौधे उगाने का कार्य व जनसाधारण को वन विकास में सम्मिलित करना है।

इस कार्यक्रम हेतु ग्रामीण स्तर पर 'शेल्फ ऑफ प्रोजेक्ट' तैयार कर, उनमें प्राथमिकता के आधार पर ग्रामवासियों की रूचि के ऐसे कार्यो का चयन करना, जिससे उनके लिये अधिक से अधिक रोजगार उपलब्ध करवाये जा सके। यह कार्यक्रम ग्रामीण विकास अभिकरणों के माध्यम से पूरा किया जाता है तथा आवश्यक वित्त राशि ग्राम पंचायतों को दी जाती है और सरपंच की देखरेख में कार्य सम्पन्न होता है। वर्ष 1986-87 में इस कार्यक्रम के लिये 27.56 करोड़ रूपये उपलब्ध करवाये गये।

वर्ष 1988-89, में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 20 करोड़ (50 प्रतिशत केन्द्रीय प्रवृतित योजना) का प्रावधान प्रस्तावित है तथा 65 लाख मानव दिवस का रोजगार सृजन करने का लक्ष्य है।

(ii) ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम— वर्ष 1983 से प्रारम्भ इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण निर्धनता को दूर करने के लिये, विशेषकर कम रोजगार वाली कृषि अवधियों में जब काम मिलना कठिन होता है, तब उस समय भूमिहीन व्यक्तियों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने हेतु इस योजना को क्रियान्वित किया जा रहा है। इस योजना के अन्तर्गत एकीकृत ग्रामीण विकास योजना में चयनित परिवारों को परिचय पत्र दिलवाया जाकर प्राथमिकता के आधार पर रोजगार उपलब्ध कराया जाता है।

प्रत्येक भूमिहीन श्रमिक परिवार के कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 100 दिनों तक के रोजगार की गारण्टी तथा ग्रामीण आधारभूत ढांचे को सुदृढ़ बनाने के लिये स्थायी परिसम्पत्तियों का सृजन करना जिसके फलस्वरुप ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का विकास हो सके आदि इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य है।

यह कार्यक्रम राज्य के सभी जिलों में लागू है। इस कार्यक्रम के लिये सम्पूर्ण राशि केन्द्र द्वारा उपलब्ध कराई जा रही है। इसमें श्रम-सामग्री का अनुपात 50.50 रखा गया है। प्राप्त धन राशि से माह दिसम्बर 1986 तक 13.63 करोड़ रूपये व्यय कर 86.33 लाख मानव दिवसों का रोजगार सृजित किया गया।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1988-89 के लिये 22.90 करोड़ रुपये प्रस्तावित हैं तथा इस विनियोग से 75 लाख मानव दिवस सृजित होने की सम्भावना हैं। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिये 5 हजार सिंचाई कुओं का निर्माण कराया जाना प्रस्तावित है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत दो हजार स्कूल भवनों का भी निर्माण करवाया जायेगा।

(iii) ट्राईसम योजना—ग्रामीण क्षेत्रों में युवा वर्ग की बेरोजगारी दूर करने के लिये स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण दिलाने के लिये 'ट्राईसम' योजना को शुरू किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक विकास खण्ड से 100 ग्रामीण युवक व युवतियों को विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षण दिलाकर स्वरोजगार में लगाया जाता है। प्रशिक्षण तथा उसके पश्चात स्व-रोजगार स्थापित करने के लिये वित्तीय सहायता सरकार ही वहन करती है।

इस योजना के अन्तर्गत वर्ष 1987-88 में 8399 युवकों को प्रशिक्षण दिया गया तथा 6680 युवकों को प्रशिक्षण उपरान्त नौकरी या स्वरोजगार से लाभान्वित किया गया हैं। वर्ष 1988-89 में 2 लाख परिवारों को लाभान्वित करने का लक्ष्य है जिसमें 1.70 लाख नये परिवार होंगे। इसके लिये 34.40 करोड़ रूपये का प्रावधान प्रस्तावित है।

(iv) सूखा सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम—इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराना, आय के स्तर में वृद्धि करना है जिससे सूखे के प्रभाव को

कम किया जा सके। इस समय यह कार्यक्रम 8 जिलों में चल रहा है। वर्ष 88-89 के लिये 5 करोड़ रुपये प्रस्तावित है तथा इस विनियोजन से भू-संरक्षण, सिंचाई, वन-विकास आदि क्षेत्रों को अधिक बढ़ावा दिया जा सकेगा।

(v) **शिक्षित बेरोजगारों के लिये स्वरोजगार योजना**-अक्टूबर, 1984 से प्रारम्भ यह योजना केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रवर्तित योजना है जिसके अन्तर्गत 15 हजार शिक्षित बेरोजगारों को अपना स्वयं का उद्योग या व्यवसाय अथवा वर्कशाप स्थापित करने हेतु 25 हजार रुपये तक ऋण स्वीकृत किये जाने की व्यवस्था है। परन्तु तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त युवकों तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को इस योजना के अन्तर्गत प्राथमिकता से ऋण स्वीकृत करने का प्रावधान है। राज्य में अभी तक 10215 बेरोजगार शिक्षित युवकों को ऋण स्वीकृत किया जा चुका है।

(vi) **एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम**—ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी को दूर करने हेतु **'नये बीस सूत्री कार्यक्रम'** के अन्तर्गत विशेष महत्व दिया गया है। गरीबी की सीमा रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों का चयन कर उन्हें जीविकोपार्जन के साधन सुलभ कराना तथा सामाजिक आर्थिक विकास द्वारा उनके जीवन स्तर को सुधारने के उद्देश्य से यह कार्यक्रम 1978-79 में 112 विकास खण्डों तथा 2 अक्टूबर, 1980 से राज्य के सभी विकास खण्डों में प्रारम्भ किया गया।

मार्च, 1987 तक इसके अन्तर्गत 10 लाख 15 हजार परिवारों को लाभान्वित किया जा चुका है। लाभान्वित परिवारों में 37.6 प्रतिशत परिवार अनुसूचित जाति तथा 17.3 प्रतिशत परिवार अनुसूचित जनजाति के थे। वर्ष 1987-88 में एक लाख 40 हजार नये परिवार तथा 60 हजार पुराने परिवारों को लाभान्वित करने के लक्ष्य पर कार्य चल रहा है।

(vii) **द्वारका परियोजना**—यह योजना भी एकीकृत ग्रामीण विकास का ही एक अंग है जिसमें गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे परिवारों की स्त्रियों के आर्थिक उत्थान हेतु उनका चयन करना व आर्थिक गतिविधियों का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। तत्पश्चात उन्हें ऋण व अनुदान की सुविधा दी जाती है ताकि वे अपनी आय में वृद्धि कर सके।

यह परियोजना राज्य के अलवर, भीलवाड़ा, बांसवाड़ा एवं पाली जिलों में परीक्षण की दृष्टि से संचालित की जा रही है। इसके अन्तर्गत महिलाओं के 15-15 के समूह प्रत्येक जिले में बनाकर उन्हें आर्थिक कार्यक्रम प्रदान कर उसमें प्रशिक्षित किया जाता है।

(viii) **मरु विकास कार्यक्रम**—1977-78 से प्रारम्भ कार्यक्रम केन्द्र प्रवर्तित योजना के रूप में चलाया गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य रोजगार की सुविधाऐं उपलब्ध कराना, मरुस्थल के प्रसार को रोकना, मरुभूमि के आर्थिक विकास करना है। वर्ष 1988-89 में इस कार्यक्रम पर 36.95 करोड़ रुपये प्रस्तावित है।

(ix) **शहरी गरीबों के कल्याण की योजना** - केन्द्रीय सरकार ने 28-8-86 को शहरी गरीब लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिये एक योजना प्रारम्भ की है। इस योजना के अन्तर्गत केवल निश्चित वर्ग के शहरी लोगों को ब्याज मुक्त ऋण प्रदान किया जायेगा ताकि वे अपना स्वयं का रोजगार शुरू कर सके। 5000 रुपये ऋण की सुविधा केवल उन परिवारों को प्रदान की जायेगी जिनकी मासिक आय 600 रुपये से कम होगी। यह ऋण बिना किसी गारण्टी के मिलेगा तथा इस की अदायगी तीन वर्षों में 30 आसान किश्तों में करनी होगी।

उपरोक्त कार्यक्रमों के अतिरिक्त बायोगैस कार्यक्रम, सीलिंग भूमि आवटन कार्यक्रम, बन्धक पुनर्वास कार्यक्रम, लघु एवं सीमान्त कृषकों के लिये कृषि उत्पादन कार्यक्रम तथा विशिष्ट योजना कार्यक्रम आदि भी बेरोजगारी व गरीबी दूर करने हेतु भी सरकार ने चलाये हुए हैं। स्मरण रहे, जब तक जनसख्या वृद्धि की गति को कम नहीं किया जायेगा तब तक इस समस्या का पूर्णरूपेण हल किया जाना असम्भव सा है।

बेरोजगारी, गरीबी तथा जनसंख्या की समस्या

(i) राजस्थान में गत दशक (1971-81) में जन-

संख्या में 32.97 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि रोजगार के अवसरों में हम नाममात्र की वृद्धि ही दर्शा पाये।

(ii) राजस्थान में जनसंख्या का वितरण काफी असमान है। जयपुर जिले में 244 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. तथा जैसलमेर में 6 व्यक्ति वर्ग कि.मी. का घनत्व है। इससे राज्य के विकास में असमानता उत्पन्न हुई। फलस्वरूप बेरोजगारी और गरीबी जैसी समस्याएँ और गम्भीर बन गई।

(iii) राज्य में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत (78.957) समस्त देश के प्रतिशत (76.27%) से अधिक है जिसके कारण कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या का अधिक बोझ होने से बेरोजगारी और गरीबी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो गई है।

(iv) राज्य में सन्तान उत्पन्न करना धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता है, साथ ही बाल-विवाह भी प्रचलित है। फलस्वरूप जनसंख्या में आर्थिक विकास की अपेक्षा वृद्धि त्वरित गति से हुई है जिसके कारण बेरोजगारी एवं जीवनस्तर में गिरावट आना स्वाभाविक है।

(v) राजस्थान में पिछड़ी जातियों एवं जनजातियों की संख्या अधिक है जिससे जनसंख्या के नियन्त्रण के उपाय कारगर सिद्ध नहीं हो रहे है।

(vi) राज्य में 24.38 प्रतिशत (1981) व्यक्ति साक्षर है। पुरुषों में साक्षरता का प्रतिशत 36.3 एवं स्त्रियों में प्रतिशत 11.4 में भी काफी अन्तर है जिससे जनसंख्या वृद्धि होने के साथ-साथ आर्थिक विकास को भी अपेक्षित गति नहीं मिली है। परिणामस्वरूप गरीबी और बेरोजगारी और उभर कर प्रस्तुत हुई है।

(vii) राजस्थान में कुल जनसंख्या का केवल 37% भाग कार्यरत है उसमें से भी कार्यरत जनसंख्या का 62% कृषि एवं उससे सम्बन्धित कार्यों में लगा हुआ है। परिणामस्वरूप कृषि कार्य पर बेरोजगारी एवं गरीबी का भार बढ़ा है, वहीं दूसरी ओर उद्योगों में अपेक्षित रोजगार के अवसर नहीं बढ़ पाये है, अतः शहरों में भी बेरोजगारी बढ़ी है और जीवनस्तर निम्न हो गया है।

(viii) राज्य के पश्चिमी भाग में स्थित विशाल मरु भूमि ने जनाधिक्य की समस्या उत्पन्न कर दी है क्योंकि इस प्रदेश में जनसंख्या का केन्द्रीकरण कम तथा पूर्वी भाग में अधिक होने से आर्थिक विषमता उत्पन्न हो गई है। उसके कारण भी बेरोजगारी व गरीबी का वातावरण बना है।

उपरोक्त कारणों से राज्य के कृषि, उद्योग एवं आर्थिक विकास आदि अनेकों क्षेत्रों में असमानताएँ उत्पन्न हो गई है। बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्या को नियन्त्रण में लाना है तो हमें परिवार कल्याण नियोजन की क्रियान्विती प्रभावशाली ढंग से करनी होगी। राज्य के पश्चिमी मरुस्थलीय भागों में बिजली, सिंचाई एवं पेयजल की सुविधाओं में वृद्धि कर आर्थिक विकास को त्वरित गति प्रदान करनी होगी। राज्य के पूर्वी भागों में औद्योगिक क्रियाओं में वृद्धि कर नये रोजगार के अवसर उत्पन्न करने होंगे। राज्य में साक्षरता का प्रतिशत बढ़ाना होगा तथा लोगों के धार्मिक विचारों में परिवर्तन कर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने की सोच को विकसित करना होगा। राज्य में उपलब्ध संसाधनों का विदोहन आर्थिक दृष्टिकोण से करने हेतु निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों को सरकार को पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान करनी होगी। इन सभी कार्यक्रमों की क्रियान्विती ही राज्य में बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्या का हल कर सकती हैं।

---

6 राजस्थान में सहकारिता आन्दोलन

सहकारिता आन्दोलन एक ऐसा संगठन है जो समस्याओं का सामूहिक और प्रभावशाली विधि से समाधान करता है। विश्व में सहकारी आन्दोलन का प्रारम्भ राबर्ट ऑवन द्वारा इंग्लैण्ड में लंकाशायर जिले में सहकारी उपभोक्ता भण्डार स्थापित होने से माना जाता है। तत्पश्चात जर्मनी में फ्रेडरिक विलियन रेफेजन तथा हरसन शुल्ज डेलिश ने इस आन्दोलन का सूत्रपात किया। यहीं से यह आन्दोलन अधिक गति से विकसित होता चला गया।

भारत में 1895 में सर फ्रेडरिक निकलसन ने देश में कृषकों की गम्भीर ऋण ग्रस्तता को देखते हुए सहकारी साख के विकास पर अधिक महत्व दिया। 1900 में भारत सरकार ने सर एडवर्ड लॉ (Sir Edward Law) की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्ति की। इस समिति ने सहकारी समितियों की स्थापना पर विशेष महत्व दिया जिसके परिणामस्वरूप भारत में सहकारी आन्दोलन का प्रारम्भ भारतीय दुर्भिक्ष आयोग की सिफारिशों पर सन् 1904 में सहकारी साख समिति अधिनियम के पास होने से हुआ। भारत में ये साख समितियां बहुत सफल हुईं। इनकी सफलता के कारण ही सन् 1912 में एक विस्तृत सहकारी साख समिति अधिनियम पास किया गया। सन् 1919 में देश में सहकारी साख समितियों को विकसित करने का भार राज्य सरकारों पर डाल दिया गया, तभी से राज्य सरकारें इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रही हैं।

सहकारिता का अर्थ—एच. कालबर्ट (H.Calvert) के अनुसार "सहकारिता एक ऐसा संगठन है जिसमें व्यक्ति मनुष्य की तरह (Persons as human being) स्वेच्छानुसार समानता के आधार पर स्वयं के आर्थिक हितों में वृद्धि करने के उद्देश्य से संगठित होते है।"

स्मरण रहे कि भारतीय संविधान में नीति निर्देशक तत्वों में आर्थिक समानता पर अधिक जोर दिया गया है। देश के प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग सभी के हित में हो, इसलिये सहकारी आन्दोलन का सूत्रपात किया गया।

सहकारिता के सिद्धान्त—

(i) किसी भी सहकारी संस्था की सदस्यता ऐच्छिक होगी।

(ii) सहकारी संस्थाओं का प्रशासन प्रजातन्त्रीय ढंग से होता है। इस की सर्वोच्च सत्ता संस्था की साधारण सभा में निहित होती है।

(iii) अंश-पूंजी पर सीमित ब्याज दिया जाता है।

(iv) इन संस्थाओं में होने वाला लाभ सदस्यों में वितरित *किया जाता है।*

(v) विभिन्न सहकारी संस्थाओं में परस्पर सहयोग तथा समन्वय की भावना का होना।

(vi) सदस्यों को सहकारिता के सिद्धान्तों एवं तकनीकी-ज्ञान के बारे में जानकारी देना।

उपरोक्त सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखते हुए सहकारी साख समितियाँ कार्य का संचालन करती है।

सहकारी आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण गरीब लोगों को आर्थिक सहायता पहुंचाकर उन्हें सेठ साहूकारों से अधिक ब्याज पर ऋण लेने से मुक्त करवाना है। सहकारी आन्दोलन की प्रगति के मुख्य विन्दु निम्नलिखित है।

(i) ऋण देने वाली सहकारी समितियों का पुनर्गठन किया गया है। इनसे राज्य की 70% जनता लाभान्वित हो रही है।

(ii) सहकारी बैंकों तथा संस्थाओं द्वारा ऋण वितरण के कार्य में काफी तेजी लायी गयी है।

(iii) सरकार ने कमजोर वर्ग के लोगों की सहायता के लिये सहकारी गृह निर्माण ऋण देने वाली समितियों के माध्यम से मकान बनवाने हेतु ऋण वितरित करवाये है।

(iv) आवश्यक वस्तुओं का वितरण भी सहकारी समितियों के माध्यम से किया जा रहा है।

राजस्थान में सहकारी संगठन का स्वरूप

शीर्ष बैन्क या प्रान्तीय सहकारी बैन्क
(राज्य की सर्वोच्च सहकारी संस्था)
↓
केन्द्रीय सहकारी बैन्क
(प्रत्येक जिले में एक)
↓
प्रारम्भिक सहकारी साख समितियां

ग्रामीण प्रारम्भिक सहकारी साख समितियां | शहरी ग्रामीण सहकारी साख समितियाँ

राजस्थान में सहकारिता का प्रारम्भ

राजस्थान में सहकारिता का कार्य 1904 ई. में भरतपुर व डीग में कृषि बैन्कों की स्थापना से प्रारम्भ माना जाता है। 1904 ई. में ही अजमेर में सहकारिता का शुभारम्भ हुआ। 1912 ई. में भरतपुर, 1915-18 में कोटा, 1927 में कोटा राज्य, 1924 में बीकानेर, 1934 में अलवर, 1935 में किशनगढ़, 1938 में जोधपुर, 1944 में जयपुर, 1947 में धौलपुर तथा 1949 में उदयपुर, टोंक, शाहपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, डूंगरपुर आदि रियासतों में सहकारिता का प्रारम्भ हुआ था।

राजस्थान में स्वतन्त्रता के पश्चात सहकारिता का तेजी से विकास हुआ। सन् 195- में प्रथम बार **"राजस्थान सहकारी समिति विधेयक"** पारित किया गया जो समय-समय पर अधिक व्यावहारिक व कारगर बनाने के उद्देश्य से संशोधित हुआ। 21 दिसम्बर, 1957 को राजस्थान राज्य सहकारी संघ की स्थापना की गई। सन् 1965 तथा 1966 मे सहकारी नियम बनाये गये। राज्य में 2 अक्टूबर, 1965 से नया सहकारी अधिनियम लागू किया गया तथा इसमें जो सुविधाऐं रखी गई थीं, वे अत्यन्त प्रगतिशील मानी जाती हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारिता का विकास—

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में सहकारी समितियों की संख्या 2928 थी जो बढ़ कर योजना के अन्त तक 8077 हो गई। इसी प्रकार सदस्यों की संख्या 64,915 से 2.74 लाख हो गई। प्रथम योजनाकाल में एक शीर्ष बैन्क तथा 10 केन्द्रीय सहकारी बैन्क स्थापित किये जा चुके थे।

द्वितीय योजना के अन्त तक समितियों की संख्या 18310 तक पहुंच गयी तथा सदस्यों की संख्या 9.68 लाख हो गई इस योजना काल में 26 प्रतिशत ग्रामीण परिवार तथा 60% गांव सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत आ चुके थे।

तृतीय एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत राज्य के 90 प्रतिशत गाँव तथा 40 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों को सहकारिता के अन्तर्गत लाया गया। चतुर्थ योजना के अन्त तक कृषि साख समितियों का पुनर्गठन किया गया जिससे समितियों की संख्या 7727 रह गई।

पंचम पंचवर्षीय योजना में राज्य के सभी 26 जिलों में केन्द्रीय सहकारी बैंक स्थापित किये गये तथा योजना के अन्त तक भूमि विकास बैन्कों की संख्या बढ़कर 35 हो गयी। 77 करोड़ रूपये के अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण तथा 21 करोड़ रूपये के दीर्घकालीन ऋण वितरित किये गये। कृषि सहकारी समितियों के अतिरिक्त 1045 गृह निर्माण सहकारी समितियाँ, 687 प्राथमिक भण्डार तथा 875 श्रमिक ठेका समितियां कार्यरत थी।

छठी योजनाकाल के अन्तर्गत 70,000 नये सदस्य बनाये गये। सहकारी समितियों की सख्या 18,440 तथा सदस्यों की संख्या 57 लाख तक पहुंच गयी। साथ ही 90 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों को सहकारिता के अन्तर्गत लाया गया।

सातवीं योजना के अन्तर्गत 46.20 करोड़ रूपये के प्रावधान में से 5 करोड़ रूपये निर्देशन-प्रशासन पर, 13.46 करोड़ रूपये विपणन साख संस्थाओं के सुदृढिकरण, 4.87 करोड़ रूपये विपणन गोदाम, 18.84 करोड़ रूपये माल की देख-रेख रखने वाली इकाइयों पर, 2.50 करोड़ रूपये उपभोक्ता भण्डारों की स्थिति सुधारने पर, 90 लाख रूपये सहकारी शिक्षा पर तथा

62.80 लाख रूपये अन्य कार्यो पर व्यय का प्रावधान किया गया है।

कृषि उत्पादन के लिये वर्ष 86-87 में 87 करोड़ 36 लाख रूपये अल्प कालीन ऋण के रूप में वितरित किये गये जबकि 1987-88 में 103 करोड़ रूपये के ऋण बांटे गये। वर्ष 1988-89 में 125 करोड़ रूपये के अल्प कालीन, 8 करोड़ के मध्यकालीन तथा 30 करोड़ रूपये के दीर्घकालीन ऋण वितरित किये जाने की योजना है। किसानों को कृषि उपज का उचित मूल्य मिले इसलिये सहकारिता के क्षेत्र में जिन बड़े उद्योगों को लगाना पूर्व में प्रस्तावित किया गया था उनकी स्थापना के लिये यथोचित प्रावधान (6.88 करोड़ रुपये) प्रस्तावित हैं। इसमें सोयाबीन प्रोजेक्ट कोटा और कोटन कम्पलेक्स प्रोजेक्ट श्रीगगानगर परियोजनाओं पर कार्य चल रहा है। तेल मिल, सालवेंवट एक्सट्रेक्शन प्लांट एवं तेल शोधक कारखाना बीकानेर मे तथा सरसों पर आधारित 6 तेल मिलें क्रमश: जालौर श्रीगंगानगर की दो, झुन्झुनु मेड़ता सिटी तथा गंगापुर सिटी भी इनमें सम्मिलित हैं। कोटा में लगने वाले 200 टन सोयाबीन से तेल निकालने के कारखाने का कार्य वर्ष 1989 के अन्त तक प्रारम्भ हो जायेगा।

सहकारिता की प्रमुख योजनाऐं

राज्य में सहकारिता के अन्तर्गत सहकारी ऋण व्यवस्था, नागरिक सहकारी वैन्क, केफी कार्ड योजना प्राथमिक कृषि ऋणदायी सहकारी समितियां, क्रय विक्रय सहकारी समितियां, माल संवार इकाइयां, स्टोरेज प्रोजेक्ट सहकारी उपभोक्ता भण्डार एवं सहकारी गृह निर्माण समितियां आदि प्रमुख योजनाऐं क्रियान्वित की जा रही है।

1. **सहकारी ऋण व्यवस्था**—राज्य में सहकारिता के अन्तर्गत ऋण वितरण कराने के लिये एक राज्य स्तरीय **राजस्थान राज्य सहकारी बैन्क** हैं। यह वैन्क जिलों में 25 केन्द्रीय सहकारी वैन्कों तथा उन की शाखाओं के माध्यम से ग्राम सहकारी समितियों, क्रय-विक्रय सहकारी समितियों तथा अन्य विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत सहकारी संस्थाओं को ऋण उपलब्ध कराती है। यह वैन्क व्यापारिक तथा गैर-सहकारी संस्थाओं को भी 'ऋण-सुविधा' तथा 'जमा सुविधा' उपलब्ध करवाती है। सहकारी ऋण व्यवस्था योजना के अन्तर्गत प्रत्येक पंचायत के क्षेत्र में दो-दो ग्राम सेवा सहकारी समितियों का चयन किया जाता है। चयन समितियों के कार्य क्षेत्रों के समस्त ग्रामीण परिवारों को ऋण की आवश्यकता का मूल्यांकन कर उन्हें सभी प्रकार के सहकारी ऋण उपलब्ध कराये जाते है। केन्द्रीय सहकारी वैन्क 5,228 कृषि ऋणदायी सहकारी समितियों के माध्यम से ऋण वितरण का कार्य कर रही हैं।

राजस्थान के कृषकों को ऋण उपलब्ध करवाने तथा भूमि विकास से सम्बन्धित कार्यों की प्रगति के लिये मार्च, 1957 को **'राजस्थान राज्य भूमि विकास बैन्क'** की स्थापना की गई। यह वैक कृषकों को दीर्घकालीन ऋण देता है इसका प्रधान कार्यालय जयपुर में है तथा आठ क्षेत्रीय कार्यालय है। वर्ष 1988-89 में 30 करोड़ रुपये के दीर्घकालीन ऋण देने का प्रावधान है।

(ii) **डेयरी विकास कार्यक्रम**—डेयरी विकास के कार्यों की देख भाल करने हेतु **राजस्थान राज्य सहकारी डेयरी फेडरेशन** (RCPF) की स्थापना की गई है। इसका प्रधान कार्यालय जयपुर में है। डेयरी विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य में दूध उत्पादन सहकारी समितियों का जाल सा फैल गया है। इसका मुख्य उद्देश्य दूध उत्पादकों को उन के दूध का उचित मूल्य दिलवाना तथा दूध को सभी लोगों तक पहुंचाना है। आजकल यह फेडरेशन 4 लाख लीटर दूध प्रतिदिन एकत्र कर वेच रहा है।

(iii) **केफीकार्ड योजना(मिनी बैंक)**—शिवरमण कमेटी की सिफारिशों के आधार पर ग्राम सेवा सहकारी समितियों को बहुउद्देशीय एवं एक ही स्थान पर सभी प्रकार के ऋणों की आवश्यकताएं पूरी करने के लिये केफीकार्ड योजना लागू की गई है। वर्ष 1985-86 तक 485 समितियों में यह कार्य शुरू किया गया। वैसे प्रत्येक जिले में कम से कम 10 आर्थिक रूप से सक्षम समितियां कार्यरत है।

(iv) **नागरिक सहकारी वैन्क**—राज्य में 13 नागरिक सहकारी वैंक एवं एक औद्योगिक वैन्क है जो अर्द्ध-शहरी व शहरी क्षेत्रों में कुटीर एवं लघु उद्योगों के लिये

ऋण प्रदान कर स्वावलम्बन रोजगार योजना को क्रियान्वित कर रहे है। राज्य में पाली, भीलवाड़ा, झुन्झुनूं व चित्तौड़गढ़ में नये नागरिक सहकारी बैन्कों के गठन की कार्यवाही की जा रही है।

(v) क्रय-विक्रय सहकारी समितियां—राजस्थान में इनकी मुख्य संस्था राजस्थान राज्य सहकारी संघ लिमिटेड, जयपुर है। इसकी इकाइयां क्रय-विक्रय सहकारी समितियों के नाम से सभी जिलों में विस्तृत हैं। वर्ष 1986-87 में 159 समितियाँ कार्य कर रही थी।

(iv) माल संवार समितियां—राजस्थान में कृपकों को उनकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त कराने के उद्देश्य से इन समितियों का गठन किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न इकाइयां संचालित है—

(a) दाल मिलें—राज्य में जयपुर, केकड़ी, अंता, कोटा, सूरतगढ़, अनूपगढ़ एवं कुम्हेर में स्थित दाल मिलों द्वारा वर्ष 1986 में 1564 मी. टन दालों का उत्पादन हुआ।

(b) चावल मिलें—कोटा, बारां, बून्दी, हनुमानगढ़, बांसवाड़ा, उदयपुर एवं केशोरायपाटन में कार्यरत है।

(c) तेल मिलें—फतेहनगर, चाकसू, नदवई एवं गंगापुर में कार्यरत है।

(d) कॉटन, जीनिंग एवं प्रेसिंग इकाइयां श्रीगंगानगर, करणपुर, पदमपुर, रायसिंहनगर, सादुलशहर, पीलीबंगा, गजसिंहपुर, घड़साना एवं गंगापुर में कार्यरत है।

(e) आचार मुरब्बा का निर्माण जयपुर फल सब्जी द्वारा, राज्य सहकारी क्रय-विक्रय संघ के जयपुर एवं अलवर में कोल्ड स्टोरेज, जयपुर में पशु आहार एवं कीट नाशकों का कारखाना जयपुर में बर्फ खाना, आबूरोड़ में ईसबगोल प्लांट तथा कोटा क्रय-विक्रय सहकारी समिति द्वारा कोल्ड स्टोरेज के साथ 15 टन क्षमता का एक बर्फ कारखाना भी संचालित किया जा रहा है।

(vii) सहकारी उपभोक्ता भण्डार—राज्य में वर्ष 1987-88 में 28 सहकारी उपभोक्ता होलसेल भण्डार और 677 प्राथमिक सहकारी उपभोक्ता भण्डार है जो राजस्थान राज्य सहकारी उपभोक्ता संघ लिमिटेड जयपुर के द्वारा संचालित होती है। इनका कार्य उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुएँ अच्छी किस्म की उपलब्ध करवाना है। जयपुर स्थित 'उपहार' तथा 'समृद्धि' इसकी संस्थाएँ है। यह उचित मूल्यों पर जयपुर तथा राज्य के विभिन्न जिलों में दवाइयां भी उपलब्ध करता है। राज्य में 111 जनता दुकानें हैं। अकेले जयपुर में सहकारी उपभोक्ता भण्डार की 37 दवाओं की दुकानें है। मरुस्थलीय भागों में 7 भ्रमणशील दुकानें प्रारम्भ की जाने की योजना है।

(viii) भण्डारण की व्यवस्था (Storage Project)—राजस्थान में भण्डारण क्षमता वृद्धि के उद्देश्य से यूरोपियन आर्थिक समुदाय के सहयोग से वर्ष 1979-80 से 1985-86 तक की अवधि में 2 लाख 44 हजार 200 मीट्रिक टन क्षमता के 2696 गोदाम पूर्णतः तैयार हो चुके थे।

इसी प्रकार विश्व बैंक की सहायता से 77,500 मी. टन क्षमता एवं 9.18 करोड़ रुपये लागत के 1000 गोदाम निर्माण की योजना है। इनमें से वर्ष 1987 तक 29 गोदाम पूर्ण हो चुके है तथा 102 का कार्य प्रगति पर है।

(ix) गृह निर्माण सहकारी समितियां—राज्य में समाज के कमजोर वर्ग एवं अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सदस्यों को गृह निर्माण हेतु राजस्थान स्टेट को-आपरेटिव हाउसिंग फाइनेन्स सोसाइटी लि. जयपुर के माध्यम से गृहनिर्माण सहकारी समितियों को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था है। वर्ष 1986-87 के लिये 700 मकानों के लिये 2 करोड़ रूपये के लक्ष्य के विरुद्ध 35 लाख रूपये की स्वीकृति एवं 85 लाख रूपये का वितरण किया गया। हुडको द्वारा दिये गये ऋण से नवम्बर, 1987 तक 15416 मकान पूर्ण निर्मित किये गये तथा 14768 मकान निर्माणाधीन है।

(x) राजस्थान अनुसूचित जाति विकास सहकारी निगम यह निगम अनुसूचित जातियों, जनजातियों को ऋण, अनुदान, रोजगार, प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था करवाता है।

(xi) राजस्थान राज्य बुनकर सहकारी संघ—इसका उद्देश्य राजस्थान के बुनकरों को ऋण तथा अन्य सुविधाऐं प्रदान कर खादी उद्योग को बढ़ावा देना है। यह

गांव-गांव में फैले हुये बुनकरों को आर्थिक तथा तकनीकी सहयोग प्रदान करता है।

(xii) **राजस्थान राज्य भेड़ ऊन सहकारी संघ**—राजस्थान में भेड़ तथा ऊन उद्योग के विकास की सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुये सहकारी क्षेत्र में इसकी स्थापना की गई। यह इस व्यवसाय में लगे लोगों को ऋण सुविधा देता है तथा भेड़ों की नस्ल सुधारने तथा ऊन-व्यापार के विकास में तकनीकी सहयोग देता है।

वृहत सहकारी उपक्रम

1. **सहकारी चीनी मिल**—केशोरायपाटन सहकारी शुगर मिल्स लिमिटेड (बूंदी जिला) 13 दिसम्बर, 78 से 12 दिसम्बर, 1985 तक केन्द्र सरकार द्वारा नियोजित कस्टोडियन के आधीन तथा 13-12-85 से राज्य सरकार के कस्टोडियन के आधीन कार्य कर रही है। इस मिल को गन्ना सहकारी सदस्यों से प्राप्त होता है। वर्ष 1985-86 में 4905 मी. टन चीनी का उत्पादन हुआ। वर्ष 1986-87 में एक लाख बोरी उत्पादन का लक्ष्य तय किया गया।

2. **राजस्थान सहकारी स्पिनिंग मिल्स, गुलाबपुरा** (भीलवाड़ा) में सहकारी वर्ष 1985-86 में 44,608 तकुए स्थापित हुए तथा 50.73 मी. टन सूत की बिक्री की गई।

3. **गंगानगर सहकारी स्पिनिंग मिल्स लि.हनुमानगढ़** में स्थापित तकुएँ 24,168 है।

4. **गंगापुर सहकारी स्पिनिंग मिल्स लिमिटेड** में तकुओं की संख्या 24960 तथा 315.43 लाख रुपये के 15 लाख 87 हजार 847 किलोग्राम सूत की बिक्री हुई।

5. **श्रीगंगानगर सहकारी ऑयल सीड प्रोसेसिंग मिल्स लिमिटेड,** गजसिंहपुर की स्थापना 210 लाख रूपये की लागत से वर्ष 1976 में की गई। यह मिल बिनौले की पिराई करके तेल बनाती है। वर्ष 1985-86 में 86.51 लाख रूपये का तेल एवं 63.82 लाख रूपये की खली का उत्पादन किया गया।

6. **सहकारी शीत भण्डार**—किसानों के अनाज सुरक्षित रखने की दृष्टि से सहकारिता के अन्तर्गत जयपुर तथा अलवर जिलों में शीत भण्डार स्थापित किये है।

उपरोक्त के अतिरिक्त **मांडलगढ़** में अपरमाल किसान सहकारी वनस्पति मिल्स लि. के माध्यम से वनस्पति घी बनाने; राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम द्वारा विश्व बैन्क की मदद से **कोटा** में सोयाबीन प्रोजेक्ट एवं एकीकृत कपास विकास योजना श्रीगंगानगर की स्थापना; यूरोपियन आर्थिक सहायता से एन. सी. डी. सी (NCDC) के माध्यम से 5 जिलों में 6 सरसों के तेल की मिलें-जालोर नागौर, सवाईमाधोपुर एवं झुन्झुनूं में एक-एक तथा श्रीगंगानगर में दो इकाइयाँ स्थापित करने की योजना है। ग्रामीण आँचलिक बैन्कों की स्थापना भी सहकारी क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

---

7 विकेन्द्रीकरण : पंचायती राज

"जनता के द्वारा, जनता के लिये तथा जनता का शासन धरती से लुप्त नही होगा।" अब्राहम लिंकन

पूज्य बापू महात्मा गांधी का मत था कि शक्ति के केन्द्रीकरण से हिंसा व एकाधिकार को प्रोत्साहन मिलता है। अतः स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में विकेन्द्रीकरण की नीति का पालन करते हुए लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली को अपनाया गया। भारत एक विशाल देश है इसलिये यहां सत्ता को विकेन्द्रित किये बिना लोकतन्त्र को व्यवहारिक रूप नहीं दिया जा सकता है। सच्चा प्रजातन्त्र वह है जिसमें ग्राम आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी एवं राजनीतिक दृष्टि से स्वशासित हो तथा प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करे कि शासन में उसका भी भाग है और वह स्वशासित है। तब देश का सर्वागीण विकास स्वतः ही हो जायेगा। अतः देश के अधिक से अधिक लोगों को शासन में भाग लेने का अवसर, देश के विकास कार्यों में जनता का सहयोग तथा नागरिकों को स्वावलम्बी बनाने आदि उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भारत सरकार ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती राज्य की व्यवस्था को अपना कर लागू किया।

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ—लोकतान्त्रिक से तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से है जिसमें जनता का शासन हो। विकेन्द्रीकरण से तात्पर्य सत्ता व साधनों के बंटवारे से है। इस प्रकार लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ हुआ कि शासन सत्ता कुछ गिनती के व्यक्तियों और देश के कुछ ही स्थानों पर केन्द्रित न होकर अधिक से अधिक व्यक्तियों और स्थानों में वितरित हो। दूसरे अर्थों में हम कह सकते है कि लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर विभिन्न स्तरों पर स्थानीय संस्थाओं की स्थापना की जाए। इस प्रकार की व्यवस्था से स्थानीय व्यक्ति एवं संस्थाऐं अपने क्षेत्र की विकास योजनाओं के निर्माण और उन्हें कार्यान्वित करने में अधिक रूचि लेगी क्योंकि यह उनका उत्तरदायित्व होगा। साथ ही उन्हें अपने कार्यों की व्यवस्था करने में पर्याप्त स्वायत्तता रहती है।

राजस्थान में पंचायती राज—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1947 में राजस्थान के विभिन्न राज्यों एवं रियासतों के विलय द्वारा संयुक्त राजस्थान का निर्माण हुआ। उस समय कुछ राज्यों में तो ग्राम पंचायते पहिले से कार्यरत थी किन्तु कुछ रियासतों में यह संस्थाऐं नही थी।

पंचायतों के संगठन की दिशा में पहला कदम संयुक्त राजस्थान द्वारा पंचायत राज अध्यादेश 1948 लागू करना। 1949 में राजस्थान निर्माण के बाद मुख्य पंचायत अधिकारी के अधीन एक पृथक पंचायत विभाग स्थापित किया गया। उस समय पंचायतें विभिन्न सात कानूनों के अन्तर्गत कार्य कर रही थी, इसलिये राज्य भर में एक समान कानून की आवश्यकता थी। अतः **राजस्थान पंचायत अधिनियम 1953** पारित हुआ और एक जनवरी, 1954 से लागू किया गया। इस अधिनियम के अधीन पंचायतें पुनः गठित की गई तथा जहां पहले से पंचायतें नही थी, वहां स्थापित की गई। सन् 1953-56 में राजस्थान में 3275 पंचायतें थी।

किन्तु सामुदायिक विकास योजना के परिणाम आशाजनक नही निकले। अतः विकास कार्यक्रमों में जनता को निर्णायक अधिकार देने हेतु दिसम्बर, 1957 में स्व. श्री बलवन्तराय मेहता की नियुक्ति की गई जिनकी सिफारिशों के अनुसार लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण हेतु ग्राम खण्ड और जिलास्तर पर प्रतिनिधि संस्थाऐं स्थापित कर स्थानीय प्रशासन एवं विकास हेतु उन्हें अधिकार हस्तान्तरित करना था। इस बीच 19:8 के अन्त में राजस्थान सरकार ने समग्र राज्य में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण व्यवस्था लागू करने का निर्णय लिया। फलस्वरूप 9 सितम्बर, 1959 को राजस्थान विधानसभा ने 'राजस्थान पंचायत समिति तथा जिला परिषद बिल' पारित कर विकेन्द्रित प्रशासन की व्यवस्था की। 2 अक्टूबर, 1959 को 232 पंचायत समितियों तथा 26 जिला परिषदों को राजस्थान सरकार ने अपने उत्तरदायित्व सौंप दिये।

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना को भारत में सर्वप्रथम प्रारम्भ करने का श्रेय राजस्थान को है। इस योजना के अनुसार राजस्थान में तीन स्तरों पर संस्थाऐं कार्यरत है—

1. **ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत**—इस समय इन की संख्या 7353 है।

2. **विकास खण्ड स्तर पर पंचायत समितियां**—इन की संख्या वर्तमान में 237 है।

3. **जिला स्तर पर जिला परिषद**—वर्तमान संख्या 27 है।

उपरोक्त तीनों संस्थाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित है और इनके गठन का मुख्य उद्देश्य गाँवों के प्रशासन और उनके विकास में वहीं के लोगों को भागीदार बनाने का प्रमुख था। 1965 तक पंचायतें सुचारू रूप से कार्य करती रहीं, पर उसके बाद 13 वर्षों तक उनके चुनाव किसी न किसी कारण से टलते रहे। 1978 में उनके चुनाव फिर करवाये गये, पर कुछ पंचायत समितियों और पूरी जिला परिषदों के चुनाव नही हो सके। किन्तु वर्ष 1981-82 में तथा जून 1988 में इनके पूरे चुनाव कराये गये।

चूं कि ग्रामीण विकास के अधिकांश कार्य पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से ही चलाऐ जाते है। अतः ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संचालन के कार्यों को एक ही स्थान पर, **ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग के अन्तर्गत,** कर दिया गया है। विभाग के मुखिया निदेशक होते है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा की चयनित वेतन श्रृंखला के अधिकारी होते है।

ग्राम पंचायत

संगठन—राज्य में इस समय 7 हजार 353 ग्राम पंचायतें हैं। जिस गाँव की आबादी 2000 से अधिक तथा 8000 से कम हैं, ऐसे प्रत्येक ग्राम में ग्राम पंचायत की स्थापना की गई है। जो गाँव छोटे है, ऐसे दो-तीन गाँवों को मिलाकर एक गाम पंचायत की स्थापना की गई है। ग्राम पंचायतों में पंचों की संख्या आबादी के अनुसार 5 से 15 तक होती है। पंचों तथा सरपचों का चुनाव पंचायत क्षेत्र के मतदाताओं के द्वारा किया जाता है। सरपंच का चुनाव केवल साक्षर व्यक्ति ही लड़ सकता है। चुनाव के पश्चात निर्वाचित पंच मिलकर दो महिलाओं, एक अनुसूचित जाति तथा एक अनुसूचित जनजाति के सदस्य को सहवृत करते हैं यदि जनता द्वारा ऐसे सदस्यों का चुनाव नही किया गया है।

पंचायत का कार्यकाल 3 वर्ष का होता हैं, किन्तु सरकार इस अवधि को बढ़ा सकती है।

सरपंच पंचायत की बैठक बुलाता है, उसकी अध्यक्षता करता है तथा आय व्यय के हिसाब के लिये जिम्मेदार होता है। पंचायत के निर्णय बहुमत से लिये जाते है।

ग्राम पंचायत के कार्य

1. गाँव के विकास की योजनाओं को बनाना, उन्हें लागू करना।

2. जनगणना जन्म-मरण का हिसाब रखना।

3. प्राथमिक शिक्षा व प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था करना, पुस्तकालय व वाचनालय खोलना, मेलों तथा बाजार हाट की व्यवस्था करना, खेल के मैदान का प्रबन्ध करना

4. सार्वजनिक स्थानों की सफाई, रोशनी व पेयजल की भी व्यवस्था करना।

5. परिवार कल्याण नियोजन के कार्य में मदद करना तथा प्रसूति गृहों का निर्माण करना

6. चिकित्सा का प्रबन्ध, स्वास्थ्य की रक्षा के लिये टीके आदि लगवाना।

7. कृषि उत्पादन बढ़ाने के प्रयत्न करना, चरागाहों की व्यवस्था करना, पशुओं की नस्ल सुधारना

8. सहकारी समितियों तथा कुटीर उद्योगों का विकास करना

गत वर्षों में पंचायतों ने महत्वपूर्ण कार्य किये। उनमें काम के बदले अनाज कार्यक्रम के अन्तर्गत गाँवों में पंचायत घर, अस्पताल, स्कूल भवनों का निर्माण, सड़कें बनाना, तालाब खोदना आदि हैं।

आय के साधन—ग्राम पंचायत की आय के प्रमुख साधन निम्न है—

1. राज्य सरकार द्वारा दी गयी सहायता व अनुदान।

2. करों से प्राप्त होने वाली आय—इन करों में मकानों पर कर, सवारी कर, व्यापार एवं मेलों पर कर, कृषि भूमि पर कर आदि सम्मिलित है।

3. जुर्माने से प्राप्त होने वाली आय।

न्याय पंचायतें—ग्राम पंचायत की भांति न्याय पंचायतों का गठन भी गांवों के छोटे-मोटे विवाद निपटाने हेतु किया गया है। राज्य में लगभग 1500 न्याय पंचायतें थी। ये पंचायत स्तर पर फौजदारी, दीवानी और राजस्व सम्बन्धी विवादों को निपटाती थी। न्याय पंचायतें 50 रूपये तक की माल की चोरी; जानवरों की हत्या, शराब पीकर दुराचरण करना, तालाबों को गन्दा करना आदि मामलों की सुनवाई कर सकती थी। इन्हें 50 रूपये तक का जुर्माना करने का अधिकार था। न्याय पंचायतों में वकील बहस नही कर सकते थे। इनके निर्णयों के विरूद्ध ऊंची अदालत में अपील की जा सकती थी। अब सन् 1981 में ग्राम पंचायत के आधीन ही न्याय-उपसमिति की व्यवस्था की गई है जो सामान्य रूप से वही कार्य करती है जो पूर्व में न्याय पंचायत करती थी।

पंचायत समितियां

संगठन—समग्र राजस्थान 237 विकास खण्डों में विभाजित है। प्रत्येक विकास खण्ड के स्तर पर एक पंचायत समिति बनाई गई है। इसके सदस्य निम्न तीन प्रकार के होते है—

1. **पदेन सदस्य**—विकास खण्ड की समस्त ग्राम पंचायतों के सरपंच तथा उस क्षेत्र के निर्वाचित विधान सभा सदस्य पंचायत समिति के पदेन सदस्य हैं।

2. **मनोनीत सदस्य**—पंचायत समिति के सभी पदेन सदस्य अपने बहुमत से दो महिलाओं, दो अनुसूचित जाति के प्रतिनिधियों, दो अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधियों, एक ग्रामदान गांवों के प्रतिनिधि, यदि ऐसा कोई गांव उस क्षेत्र में हो तो, तथा दो प्रशासन अथवा सार्वजनिक जीवन में विशेष अनुभव रखने वाले व्यक्तियों को मनोनीत करते है।

3. **सह-सदस्य**—सेवा सहकारी समितियों का एक प्रतिनिधि, अन्य सहकारी समितियों का एक प्रतिनिधि आदि इसके सह-सदस्य होते है।

प्रत्येक पंचायत समिति का एक प्रधान होता है। प्रधान का चुनाव पंचायत समिति के सभी पदेन सदस्य मनोनीत व उस खण्ड के समस्त ग्राम पंचायतों के सभी पंच मिलकर करते है। प्रधान पद के प्रत्याक्षी को साक्षर होना चाहिये।

पंचायत समिति की कार्य अवधि का काल 3 वर्ष है किन्तु सरकार इसमें वृद्धि कर सकती है। पंचायत समिति के दिन-प्रतिदिन के कार्यो का संचालन एवं विकास अधिकारी (B. D. O.) तथा अन्य प्रसार अधिकारियों द्वारा होता है।

पंचायत समिति के कार्य—

1. पंचायत समिति के क्षेत्र के विकास की योजनाएं बनाकर उन्हें क्रियान्वित करना।
2. सामुदायिक विकास, इसमें उत्पादन में वृद्धि, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, गांवों का विकास करना।
3. स्वास्थ्य, सफाई, चिकित्सा, पीने के पानी आदि की व्यवस्था करना
4. परिवार कल्याण विभाग के कार्यक्रमों का प्रचार करना
5. प्राथमिक शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन देना तथा पाठशालाओं की स्थापना करना।
6. पिछड़ी हुई जातियों के उत्थान हेतु प्रयास करना
7. सहकारिता का विकास करना, कुटीर उद्योगों की उन्नति करना

आय के साधन—

1. राज्य सरकार से मिलने वाला अनुदान, आर्थिक सहायता व ऋण आदि
2. करों से प्राप्त आय जैसे भूमि कर, उद्योग कर, मेला व उत्सवों पर कर आदि।

जिला परिषद

संगठन—राज्य में जिला स्तर पर पंचायत राज संस्थाओं के कार्य की देख रेख के लिये जिला परिषदों का गठन किया जाता है। वर्तमान में राजस्थान में 27 जिला परिषदें हैं। जिला परिषद में दो प्रकार के सदस्य होते है—

1. **पदेन सदस्य**—जिले की समस्त पंचायत समितियों के प्रधान, जिले से निर्वाचित विधान सभा के सदस्य, जिले से लोकसभा तथा राज्यसभा के सदस्य तथा जिलाधीश, आदि सभी पदेन सदस्य होते है। जिलाधीश को मतदान का अधिकार नही होता है।

2. **मनोनीत सदस्य**—जिलाधीश के अतिरिक्त शेष

सभी पदेन सदस्य अपने बहुमत से दो महिलाओं, एक अनुसूचित जाति तथा एक अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधि का मनोनयन करते हैं। अनुसूचित जाति का प्रतिनिधि केवल उन्ही जिलों में लिया जाता है, जहां उनकी संख्या कुल जनसंख्या का कम से कम 5 प्रतिशत हो।

जिला परिषद का अध्यक्ष जिला प्रमुख कहलाता है। जिला प्रमुख का चुनाव जिला परिषद् के सभी पदेन सदस्य तथा मनोनीत सदस्य और जिले की पंचायत समितियों के पदेन व मनोनीत सदस्य मिल कर करते है। जिला परिषद का कार्यकाल 3 वर्ष का होता है। जिला परिषद के सचिव अतिरिक्त जिला विकास अधिकारी या अतिरिक्त जिलाधीश (विकास) होते है। वर्तमान में इनका भी नया गठन हो गया है।

जिला परिषद के कार्य—पंचायत समितियों के कार्यों में समन्वय स्थापित करना, पंचायत समितियों के कार्यों पर निगरानी रखना, पंचायत समितियों के बजटों की जांच करना, जिले में होने वाले समस्त विकास कार्यों पर निगरानी रखना, पंचायत व पंचायत समितियों से सम्बन्धित विवादों में राज्य सरकार को परामर्श देना तथा जिले की विकास योजनाओं के बारे में राज्य सरकार को जानकारी प्रेषित करना आदि कार्य जिला परिषदों के मुख्य कार्य होते हैं।

आय के साधन—जिला परिषद् की आय का प्रमुख स्त्रोत राज्य सरकार से मिलने वाला अनुदान है। कुछ धन राशि की प्राप्ति पंचायत समितियों से भी होती है।

विकास में पंचायत राज की भूमिका—पंचायती राज की नींव जन-सहभागिता का बुनियादी सिद्धान्त है और क्षेत्रीय न्याय, प्रशासन व्यवस्था आदि में क्षेत्रीय सहभागिता ही उसके लिये कारगर उपाय है। अतः इन संस्थाओं का बहुत ही महत्त्व है। पंचायती राज व्यवस्था की प्रमुख उपलब्धि यह है कि प्रत्येक व्यक्ति राजनीति में सजग हो गया है और अपने मत का प्रयोग करते समय मत का मूल्य आंकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा का प्रसार दूर-दराज के गांवों तक सम्भव हुआ है, चिकित्सा की सुविधाओं में वृद्धि हुई है, गांवों का आर्थिक विकास तीव्रता से हुआ है। गांवों में सड़कों का जाल बिछ जाने से परिवहन व्यवस्था का विकास हुआ है। साथ ही गांवों में बहुत से कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास हुआ है।

पंचायती राज व्यवस्था की कमियां—

1. पंचायती राज व्यवस्था लागू हो जाने से चुनावों में जातिवाद तथा दलबन्दी के आधार बन गये हैं।
2. इन संस्थाओं की आय के साधन सीमित होने के कारण इन्हें अपनी योजनाओं की क्रियान्विती के लिये सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है।
3. वित्तीय सहायता प्राप्त होने पर राज्य सरकार का हस्तक्षेप बढ़ जाता है।
4. इन संस्थाओं में राजनीति दलों के प्रवेश के कारण स्थानीय लोगों में आपसी द्वेष व मन-मुटाव की भावना उत्पन्न हो गयी है।

परन्तु इन कमियों को दूर किया जा सकता है। आवश्यकता है केवल खुले मस्तिष्क एवं विचारों की। राज्यों में ही नहीं बल्कि पूर्ण देश में स्वस्थ एवं सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना के लिये यह आवश्यक है कि इन संस्थाओं की कार्य प्रणाली को अधिक अच्छा बनाया जाये।

— —

8 आर्थिक योजना : पंचवर्षीय योजनाएँ

योजना के प्रारम्भ के समय विभिन्न रियासतों को मिलाकर बना हुआ राजस्थान हर क्षेत्र में पिछड़ा हुआ था। पिछड़ी हुई सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि में देश की पहली पंचवर्षीय योजना के साथ 1951 में राजस्थान में भी आर्थिक नियोजन का सूत्रपात हुआ। परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में 1951 में शुरू हुई प्रथम योजना संकट कालीन योजना थी।

योजना प्रारम्भ करने से पूर्व राजस्थान देश का सबसे पिछड़ा राज्य था, जहां पश्चिमी राजस्थान का मरुस्थलीय भाग पेयजल के लिए तरसता रहा है वहाँ पहाड़ी खनिज सम्पदा को दोहन हेतु कोई व्यवस्था नहीं थी। पूर्वी मैदानों में कृषि मुख्य पेशा था लेकिन सिंचाई के साधनों का विस्तार न होने के कारण आर्थिक गतिविधियों में कोई तारतम्य नहीं था। परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कृषि, सिंचाई, सड़कें व शिक्षा को प्राथमिकता दी गई लेकिन आधारभूत ढांचा खड़ा करने के लिए भी समय की आवश्यकता थी। अत: प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में राज्य के साधनों एवम् सुविधाओं में वांछित प्रगति अपेक्षाकृत धीमी रही।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56)—राजस्थान में पहली पंचवर्षीय योजना वास्तविक रूप में अप्रेल 1951 के सवा वर्ष बाद शुरू हुई थी। इस योजना में 64.50 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था, जिसमें से 54.14 करोड़ रुपये विभिन्न मदों पर खर्च किए गये।

योजना व्यय का ब्यौरा निम्न तालिका में दिया गया है—

प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951-56

विकास की मदें	वास्तविक व्यय (करोड़ रुपयों में)	प्रतिशत
1. कृषि एवम् सामुदायिक विकास	6.98	12.90
2. सिंचाई	30.24	55.86
3. शक्ति	1.24	2.27
4. उद्योग-खनिज	0.46	0.85
5. सड़कें	5.55	10.25
6. सामाजिक सेवाएँ	9.12	16.84
7. विविधि	0.55	1.01
योग	54.14	100.00

योजनाकाल में सिंचाई कार्यक्रम में अच्छी प्रगति हुई। भाकड़ा से पानी प्राप्त करने के लिए नहरों का निर्माण किया गया। चम्बल परियोजना का भी प्रारम्भिक कार्य पूरा हो गया। अन्य साधनों से सिंचित क्षेत्र 5 लाख एकड़ बढ़ गया, कुल सिंचित क्षेत्र (1951) 24.80 लाख से बढ़कर (1956) 33.35 लाख एकड़ हो गया, इसी काल में विद्युत उत्पादन क्षमता 13,000 किलोवाट से बढ़कर 34,000 किलोवाट हो गई। खाद्यान्न का उत्पादन 3.30 लाख टन बढ़ा तथा कपास का उत्पादन 1.8 लाख गांठें हुआ जो लक्ष्य से अधिक था। उदयपुर में कृषि कालेज तथा बीकानेर में पशु चिकित्सा कालेज की स्थापना की गई, 11 नए कालेज (1 इंजीनियरिंग कालेज) और 4816 नये स्कूल खोले गये। सड़कों की लम्बाई 11,371 मील से बढ़कर 13,988 मील हो गई।

राजस्थान में नियोजन के प्रथम पांच वर्षों में 54 करोड़ रुपये खर्च करने पर भी उपलब्धियां असन्तोषजनक ही रहीं। व्यय की कमी का सबसे प्रतिकूल प्रभाव विद्युत उत्पादन पर हुआ, फलस्वरूप क्षेत्रीय असमानताएँ बढ़ीं। राजस्थान में प्रति व्यक्ति योजना व्यय मात्र 15.5 रुपये (5 वर्षों के लिए) रखा गया, जबकि सौराष्ट्र, मैसूर और महाराष्ट्र राज्यों के लिए क्रमश: 59.1, 49 और 42 रुपया प्रति व्यक्ति था। ये आँकड़े यह सिद्ध करते हैं कि राजस्थान की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया था।

दूसरी पंचवर्षीय योजना—राजस्थान में वास्तविक नियोजन का युग दूसरी योजना (1956-16) से ही प्रारम्भ होता है। दूसरी योजना का मुख्य उद्देश्य राज्य की अत्यावश्यक मूल आवश्यकताओं, जिन्हे प्रथम योजना काल में ही पूर्ण किया जाना चाहिए था, की पूर्ति करना था। राजस्थान के सार्वजनिक विकास कार्यक्रमों के लिए इस योजना में 105.27 करोड़ रुपये जा प्रावधान किया गया था लेकिन वास्तविक व्यय 102.74 करोड़ रुपये ही हुआ जो प्रस्तावित व्यय का 97.6 प्रतिशत था। योजनागत व्यय का मदवार ब्यौरा अग्र तालिका में दिया गया है।

योजनागत व्यय द्वितीय पंचवर्षीय योजना

विकास की मदें	योजनागत वास्तविक व्यय (करोड़ रु. में)	प्रतिशत
1. कृषि एवम् सामुदायिक विकास	25.42	24.77
2. सिंचाई	23.10	22.57
3. शक्ति	15.25	14.74
4. उद्योग-खनिज	3.40	3.29
5. सड़कें	10.17	9.90
6. सामाजिक सेवाएं	24.31	23.67
7. विविध	1.09	1.06
योग	102.74	100.00

योजना की प्राथमिकताओं में कृषि विकास एवम् सिंचाई को प्राथमिकता दी गई और उसके बाद स्थान सामाजिक सेवाओं का आता है, लेकिन जहां राष्ट्र दूसरी योजना में प्राथमिकता, उद्योगों को दे रहा था वहां राजस्थान में प्राथमिकता क्रम अपना अलग ही था।

योजनाकाल में आधारभूत आर्थिक और सामाजिक सेवाओं के विकास 74.76 प्रतिशत व्यय का प्रावधान था जो यह सिद्ध करता है कि दूसरी योजना भी वास्तविक विकास की योजना न होकर मात्र विकास का आधार तैयार करने की योजना थी। राजस्थान में ग्रामीण और शहरी जनसंख्या का अनुपात, तथा जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण अपरिवर्तित रहा। कृषि तथा सम्बन्धित क्षेत्र से 1955 में 43.46 प्रतिशत आय प्राप्त होती थी जबकि योजना के अन्त में यह प्रतिशत बढ़कर 45.80 हो गया, जो अर्थव्यवस्था की कृषि पर निर्भरता को दर्शाता है।

तीसरी पंचवर्षीय योजना—राजस्थान के आर्थिक विकास का एक दशक पूरा हुआ, फिर भी राजस्थान एक पिछड़ा प्रदेश रहा। अतः तीसरी योजना के निर्माण कार्य को भी विकेन्द्रित किया गया और नीचे से योजना तैयार करने की विधि अपनाई गई। इस योजना के लिए 236 करोड़ रुपये की राशि का प्रस्ताव किया गया परन्तु वित्तीय साधनों की कमी के कारण योजना को दो भागों में बांटा गया—(1) महत्वपूर्ण परियोजनाएं जिन पर 209 करोड़ रुपये व्यय किया जाना था तथा (2) अन्य कार्यक्रम जो इस समय प्रारम्भ किए जाने थे, जब उनके लिए पर्याप्त मात्रा में धन उपलब्ध हो। इस योजनाकाल में विकास कार्यक्रमों पर वास्तविक व्यय 212.63 करोड़ रुपये हुआ योजनागत विकास व्यय का ब्यौरा निम्न तालिका में दिया गया है—

योजनागत व्यय तृतीय पंचवर्षीय योजना

विकास की मदें	वास्तविक व्यय (करोड़ रु. में)	प्रतिशत
1. कृषि एवम् सामुदायिक विकास	40.65	19.11
2. सिंचाई	76.23	35.85
3. शक्ति	39.64	18.64
4. उद्योग-खनिज	3.31	1.58
5. सड़कें	9.75	4.58
6. सामाजिक सेवाऐं	42.03	19.76
7. विविध	1.02	0.48
योग	212.63	100.00

जहां तक प्राथमिकताओं के क्रम का प्रश्न है वह लगभग अपरिवर्तित रहा, और कृषि सिंचाई एवम् शक्ति ही अपना स्थान बनाए रही लेकिन सामाजिक सेवाओं की स्थिति में भी परिवर्तन नहीं आया।

योजनाकाल में कृषि उत्पादन में बहुत उतार-चढ़ाव आए और कुल मिलाकर खाद्य उत्पादन में बहुत कम वृद्धि हुई। खाद का उपयोग पहले से अधिक अवश्य हुआ किन्तु खाद की मांग के अनुसार पूर्ति नहीं की जा सकी। कुल सिंचित क्षेत्र (1960-61) के 43.28 लाख एकड़ से बढ़कर 1965-66 में 51.41 लाख एकड़ हो गया, जबकि लक्ष्य 60 लाख एकड़ का था। कृषि पर वास्तविक व्यय केवल 19.10 प्रतिशत था जबकि अन्य सभी राज्यों में कृषि पर प्रस्तावित व्यय 24.49 प्रतिशत था। तीसरी योजना के अन्त में 30,506 किलोमीटर लम्बी सड़कें थीं, तत्कालीन मूल्यों के अनुसार भारत की प्रति

व्यक्ति आय 1965-66 में 430 रुपये हो गई, जबकि राजस्थान की 385 रुपये थी।

योजनाकाल में कई नए कारखानों को लाइसेंस दिए गए, जबकि कारखाने इनके मुकाबले बहुत कम लगाए गए। राजस्थान की अधिकांश औद्योगिक क्रियाएँ गैर-कारखाना क्षेत्र पर केन्द्रित हैं, और इस क्षेत्र में प्रति श्रमिक उत्पादकता कम है। अत: 15 वर्षों के नियोजित प्रयासों के बावजूद राजस्थान की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान रही, फलस्वरूप असन्तुलित और अस्थिर भी।

तीन वार्षिक योजनाएँ (1966-69)—1966 में तीसरी योजना की समाप्ति पर देश में व्याप्त आपात-कालीन स्थिति के कारण चौथी योजना को स्थगित करना और वार्षिक योजना का सम्पादन ही देश के लिए हितकर समझा गया। इस प्रकार योजना के प्रथम वर्ष 1966-67 में 48.83 करोड़ रुपये, दूसरे वर्ष 1967-68 में 39.88 करोड़ रुपये और तीसरे वर्ष 1968-69 में 47.98 करोड़ रुपये व्यय किये गये।

तीन वार्षिक योजनाओं का विकास व्यय

विकास की मदें	कुल वास्तविक व्यय (करोड़ रुपयों में)
1. कृषि एवम् सामुदायिक विकास	25.2
2. सिंचाई 3. शक्ति	83.2
4. उद्योग एवम् खनिज	2.1
5. सड़कें	4.4
6. सामाजिक सेवाएं	21.7
7. विविध	0.1
योग	136.7

तीनों वार्षिक योजनाओं में कृषि पर लगातार व्यय करने पर भी खाद्यान्न की कमी प्रति वर्ष बनी रही। राज-स्थान में मुख्य फसलों की पैदावार राष्ट्रीय स्तर से नीचे है। इन सबके मूल में है वर्षा पर निर्भर कृषि, मशीनों से खेती का अलोकप्रिय होना, संरचनात्मक और संगठनात्मक कमियां तथा अपर्याप्त कृषि अनुसंधान और ऋण सुविधाएं।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74)—राजस्थान की चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में भी पुन: सर्वोच्च प्राथमिकता सिंचाई और शक्ति को ही दी गई और दूसरे स्थान पर सामाजिक सेवाएं रही। कृषिगत कार्यक्रमों को तृतीय स्थान पर रखा गया। सिंचाई एवम् शक्ति को ऊंची प्राथमिकता देने का कारण कृषि एवम् उद्योगों को बढ़ाना था। सामाजिक सेवाओं पर अधिक व्यय का मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों में पीने के पानी की सुविधाओं को उपलब्ध कराना था।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजनागत व्यय

विकास की मदें	वास्तविक व्यय (करोड़ रुपयों में)	प्रतिशत
1. कृषि	23	7.3
2. सामुदायिक विकास एवम् सहकारिता	9	2.8
3. सिंचाई एवम् शक्ति	189	59.8
4. उद्योग एवम् खनन्	9	2.9
5. यातायात एवम् संचार	10	3.2
6. सामाजिक सेवाएँ	73	23.1
7. विविध	3	0.9
योग	316	100.00

इन सब योजनागत व्यय के बावजूद राजस्थान में 83 प्रतिशत कृषिगत क्षेत्र वर्षा पर निर्भर हैं यानि केवल 17 प्रतिशत क्षेत्र पर सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध है, चतुर्थ योजना के अन्त में प्रति व्यक्ति आय (चालू मूल्यों पर) 600 रुपये थी। खाद्यान्नों के उत्पादन में भी भारी वृद्धि हुई। सिंचाई के साधनों का विकास हुआ। दुग्ध उत्पादन पर विशेष बल दिया गया और डेयरी कार्यक्रम को मजबूत बनाया गया। विद्युत उत्पादन 174 मेगावाट से बढ़कर योजना के अन्त तक 452 मेगावाट हो गया। सड़कों की लम्बाई 33,882 किलोमीटर हो गई। इसके परिणामस्वरूप प्रति 100 वर्ग किलोमीटर पर सड़कों की लम्बाई 10.0 किलोमीटर हो गई। उद्योग के क्षेत्र में पंजीकृत फैक्टरियों की संख्या 1846 से बढ़कर 2800 हो गई। 1969 में एग्रो इन्डस्ट्रीज कार्पोरेशन की स्थापना हुई। सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में वृद्धि हुई लेकिन

राजस्थान में सामाजिक सेवाओं का स्तर सम्पूर्ण भारत से काफी निम्न रहा। अभी भी कई गांव समस्याग्रस्त हैं जो कि न तो रेल से जुड़े हुए हैं और न ही बस सेवा से। पीने के पानी के लिए 8-10 किलोमीटर तक जाना पड़ता है। गांवों में विद्युत का तो प्रश्न ही नहीं हैं, पक्की सड़कें कल्पना के वाहर की वात है।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79)—पाँचवीं योजना का मूल उद्देश्य राजस्थान में आर्थिक आधार को मजवूत करना था जिससे कि विकास हो सके। पांचवीं पंचवर्षीय योजना में 857.62 करोड़ रुपये व्यय किए गए। योजनाकाल के पहले वर्ष में 109.84 करोड़ व्यय किए गए लेकिन यह व्यय लगातार वढ़ता रहा है और योजना के अन्तिम वर्ष में बढ़कर 246.43 करोड़ रुपये हो गया। योजनाकाल में विभिन्न मदों पर होने वाले व्यय को निम्न तालिका में दिखाया गया है।

योजनागत व्यय-पांचवीं पंचवर्षीय योजना

विकास की मदें	वास्तविक व्यय (करोड़ रु. में)	प्रतिशत
1. कृषि एवम् सम्वन्धित कार्य	80.14	9.34
2. सहकारिता	15.41	1.80
3. सिंचाई-शक्ति	490.68	57.21
4 उद्योग-खनन्	34.53	4.03
5. यातायात-सन्देश वाहन	84.20	9.82
6. सामाजिक सेवाएँ	149.05	17.38
7. आर्थिक एवम् सामान्य सेवाएं	3.61	0.42
योग	857.62	100.00

योजनाकाल में कृषि उत्पादन बढ़ा। खाद्यान्नों का उत्पादन 67.21 लाख टन से वढ़कर 77.80 लाख टन हो गया। इसी प्रकार तिलहनों का उत्पादन 3.39 लाख टन से वढ़कर 5.55 लाख टन हो गया। गन्ने का उत्पादन 21.96 लाख टन हुआ। कपास का उत्पादन 2.84 लाख गाँठों से वढ़कर 5.70 लाख गाँठें हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि कृषि के क्षेत्र में आशातीत सफलता मिली है। इस सफलता का मुख्य कारण अधिक उपज देने वाली फसलों का प्रयोग है। कुल सिंचित क्षेत्र में योजनाकाल में 13.48 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो सिंचाई पर हुए व्यय को देखते हुए अपर्याप्त है। विद्युत उत्पादन संस्थापित क्षमता 800.78 मेगावाट से बढ़कर 959.60 मेगावाट हो गई। कुल सड़क की लम्वाई योजना के प्रारम्भ में 33,833 किलोमीटर थी जो योजना के अन्त में वढ़कर 40,399 किलोमीटर हो गई।

योजनाकाल में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया और उस पर 115.93 करोड़ रुपये योजनाकाल में व्यय किए गए। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण विद्युतिकरण, ग्रामीण सड़कें, प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य, ग्रामीण जलपूर्ति, ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन मजदूरों को मकान के लिए जमीन वितरण, पर्यावरण सुधार आदि कार्यक्रमों को शामिल किया गया है। इन सब नियोजित प्रयासों के वावजूद उपलब्धियां महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। योजना के अधिकांश लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सका।

वार्षिक योजना (1979-80)—वार्षिक योजना 1979-80 में 290.19 करोड़ रुपये खर्च किए गए। विभिन्न मदों पर खर्च का वंटवारा निम्न तालिका में दिखाया गया है—

वार्षिक योजना 1979-80 का योजनागत व्यय

विकास की मदें	वास्तविक व्यय (करोड़ रुपयों में)	प्रतिशत
1. कृषि एवम् सम्वन्धित कार्य	51.12	17.62
2. सहकारिता	4.75	1.64
3. सिंचाई एवम् शक्ति	158.91	54.76
4 उद्योग एवम् खनिज	11.87	4.09
5. यातायात एवम् सन्देश-वाहन	22.57	7.78
6. सामाजिक सेवाएँ	39.74	13.69
7. आर्थिक एवम् सामान्य सेवाएँ	1.23	0.42
योग	290.19	100.00

योजनाकाल में सबसे ऊँची प्राथमिकता सिंचाई एवम् शक्ति को दी गई तथा द्वितीय प्राथमिकता कृषि को दी गई। लेकिन वर्षा की अनिश्चितता के कारण 1979-80 में सूखा रहा। अतः राजस्थान में उत्पादन में गिरावट आई और इस प्रकार इस वर्ष खाद्यान्न उत्पादन 52 10 लाख टन, तिलहन 2.66 लाख टन, कपास 4.72 लाख गाँठें रहा। विद्युत उत्पादन में वृद्धि हुई और यह 1025.6 मेगावाट हो गया। ग्रामीण उद्योगों का उत्पादन 12 करोड़ रूपये तथा खादी का उत्पादन 13.50 करोड़ रूपये मूल्य का हुआ। 1979-80 के अन्त में सड़कों की लम्बाई 40399 किमी. तक पहुँच गयी थी।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85)—इसका शुभारम्भ 1 अप्रेल, 1980 से हुआ जिसमें 2025 करोड़ रूपयें व्यय करने का प्रावधान था लेकिन 31 मार्च, 1985 अर्थात योजना के अन्त तक 2130 70 करोड़ रूपये व्यय हुए। विभिन्न मदों के अनुसार इनका ब्योरा निम्न प्रकार है।

छठी पंचवर्षीय योजना 1980-85

विकास की मदें	वास्तविक व्यय (करोड़ रूपयों में)	प्रतिशत
1. कृषि व सम्बन्धित कार्यक्रम एवं ग्रामीण विकास	218.2	10.25
2. सहकारिता	26.5	1.25
3. सिंचाई, बाढ़ नियन्त्रण व शक्ति	1119.4	52.52
4. उद्योग व खनन	83.7	3.90
5. परिवहन एवं संचार	251.0	11.80
6. सामाजिक सेवाएं	419 9	19.72
7. विविध	12.0	0.56
कुल	2130.7	100.00

छठी पंचवर्षीय योजना का निर्माण इस उद्देश्य से किया गया कि राज्य का आर्थिक स्तर राष्ट्र के आर्थिक स्तर के निकट लाया जा सके। इसलिये इस योजना में निम्नलिखित उद्देश्यों को सम्मिलित किया गया—

(i) राज्य के आर्थिक विकास की दर वार्षिक 7% करना।

(ii) न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम की पूर्ति करने वाले कार्यक्रमों को प्राथमिकता देना।

(iii) जनसंख्या वृद्धि की दर को कम करने हेतु परिवार कल्याण कार्यक्रमों को स्वेच्छा के आधार पर क्रियान्वित करना।

(iv) आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर होना।

(v) कमजोर वर्ग के लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाना।

(vi) विकास सम्बन्धी स्थापित क्षमता का अनुकूलतम उपयोग करना।

(vii) आदिवासी एवं मरुभूमि क्षेत्रों के विकास के लिये पर्याप्त धन की व्यवस्था करना।

अतः इस योजना के अन्तगत राजस्थान के कृषि, विद्युत, उद्योग आदि अनेक क्षेत्रों में सन्तोषजनक प्रगति हुई हैं। प्रति व्यक्ति आय 535 रूपयों से बढ़कर 577 रूपये हो गई।

कृषि के अन्तर्गत खाद्यान्नों के उत्पादन में 26.3 लाख टन की वृद्धि हुई। यह 1979-80 में 52.4 लाख टन था जो बढ़कर सन् 1984-85 में 78.7 लाख टन हो गया। इसी प्रकार सन् 1984-85 में तिलहन का उत्पादन 11.6 लाख टन, कपास का 4.4 लाख गांठें, गन्ने का 13.7 लाख टन हुआ। उर्वरकों का वितरण 2 लाख टन से अधिक हो गया था। अधिक उपज देने वाली किस्मों में 26. 9 लाख हैक्टेयर भूमि सम्मिलित हो चुकी थी। इस योजना में 21 लाख हैक्टेयर भूमि में अतिरिक्त सिंचाई की क्षमता का विकास किया गया। राजस्थान में ऊन का उत्पादन 127 लाख किलोग्राम से बढ़कर योजना के अन्त में 156 लाख किलोग्राम हो गया था।

विद्युत क्षमता भी 1032 82 मेगावाट (1979-80) से बढ़कर 1713.17 मेगावाट (1984-85 हो गई। राजस्थान में विनियोग सब्सिडी का विकास किया गया तथा रीको ने संयुक्त क्षेत्र व सहायता प्राप्त क्षेत्र में उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। मार्च, 1985 में राज्य में 20 संयुक्त क्षेत्र की इकाइयों में उत्पादन जारी

हो गया था। खादी, ग्रामोउद्योग, हथकरघा आदि में उत्पादन बढ़ा तथा ग्रामीण उद्योगों में रोजगार 1.7 लाख व्यक्ति हो गया। इसी प्रकार खनिज पदार्थों जैसे रॉक फास्फेट, जिप्सम आदि के उत्पादन में भी वृद्धि आलेखित की गई।

छठी योजना के अन्तर्गत एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के द्वारा 7.1 लाख परिवार लाभान्वित हुए। इन परिवारों में से 50% से अधिक अनुसूचित जाति व जनजाति के थे।

योजना के अन्त तक राज्य के 58% गांव विद्युतीकृत हो चुके थे। गोबर का उपयोग कर बॉयो गैस संयन्त्रों का विकास किया गया। राज्य में शिक्षा, सड़क तथा चिकित्सा सुविधाओं आदि में भी विस्तार न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत किया गया।

राजस्थान राज्य में इस योजना की अवधि में जो उपलब्धियाँ अर्जित की गई उनको दृष्टिगत रखते हुये यह कहा जा सकता है कि राज्य के आर्थिक व सामाजिक आधारों को सुदृढ़ता प्राप्त हुई है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)—इस योजना में उत्पादक रोजगार के सृजन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। अगले क्रम में गरीबी उन्मूलन, खाद्यान्न में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना, स्थापित क्षमताओं का पूरा उपयोग होना, राज्य की स्थायी समस्याओं को दूर करना, उद्योगों का आधुनिकीकरण आदि अन्य प्राथमिकताऐं है।

राजस्थान में सातवीं योजनावधि में 3000 करोड़ रूपये व्यय करने का प्रावधान हैं। यह राशि छठी योजना की स्वीकृत राशि से 48% अधिक है। इस योजना की स्वीकृत राशि की लगभग 50% राशि शक्ति सिंचाई, बाढ़ नियन्त्रण आदि पर व्यय की जायेगी सामाजिक व सामुदायिक सेवाओं पर लगभग 1/5 राशि व्यय करने का प्रावधान है। साथ ही विद्युत, खाद्यान्न एवं औद्योगिक उत्पादन व रोजगार में वृद्धि पर विशेष महत्व दिया जायेगा।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में प्रस्तावित व्यय

	विकास की मदें	प्रस्तावित व्यय करोड़ रुपयों में	कुल का प्रतिशत
1.	कृषि एवं सम्बन्धित सेवाएं	144.74	4.80
2.	ग्रामीण विकास	205.01	6.85
3.	सहकारिता	46.20	1.50
3.	सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण	681.07	22.70
5.	शक्ति	927.48	30.95
6.	उद्योग एवं खनिज	190.52	6.30
7.	परिवहन	139.52	4.60
8.	सामुदायिक सेवाएं	631.71	21.00
9.	विविध	33.43	1.30
	कुल	3000.00	100.00

राज्य की सातवीं योजनाके लिये 1140 करोड़ रुपया केन्द्र सरकार सहायता के रूप में देगी तथा 1000 करोड़ रुपये अतिरिक्त साधनों से प्राप्त करने होंगे। विद्युत की उत्पादन क्षमता को 1713 मेगावाट से बढ़ाकर 2660 मेगावाट करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। 4 38 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में अतिरिक्त सिंचाई की व्यवस्था का प्रावधान भी है। 1500 से अधिक जनसंख्या वाले सभी गांवों को सड़कों से जोड़ने का लक्ष्य है।

इस योजनावधि में वार्षिक विकास दर 8% करने का लक्ष्य राज्य सरकार का है जो 1985 की दर से साढ़े तीन गुना अधिक है। परन्तु गत कुछ वर्षों केसूखा व अकाल के कारण साधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए इस लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन है जबतक केन्द्र पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान न करें।

राजस्थान का 1988-89 का बजट

मद	करोड़ रुपयों में
वर्ष 1988-89 की राजस्व प्राप्तियां	2169·26
राजस्व व्यय	2361·07
राजस्व खातों में घाटा	191·81
पूंजीगत प्राप्तियां	1160·35
पूंजीगत व्यय	1111·48

शुद्ध घाटा	142·94
वर्ष 19८6-87 के बजट में बचत	43·16
वर्ष 1987-88 में घाटे के संशोधित अनुमान	162·26
बचत कम करके 87-88 का कुल घाटा	119·10
वर्ष 1988-89 के अन्त तक घाटा	2५2·04
नये प्रस्तावों से आय	10·00
अपूरित घाटा	252·04

वर्ष 1988-89 के बजट की मुख्य विशेषताएं

1. नये प्रस्तावों से 10 करोड़ रुपये की आय में वृद्धि।
2. बिजली एवं पेयजल को सर्वोच्च प्राथमिकता (208·71 करोड़ रुपये) तथा सिंचाई पर विशेष महत्व (152·40 करोड़ रुपये)
3. स्वरोजगार के लिये 25000 रुपये के ऋण पर स्टाम्प शुल्क से मुक्ति।
4. बीस रुपये कीमत तक के जूतों व रेडीमेड़ कपड़े बिक्री-कर से मुक्त।
5. इस वर्ष किसानों व पिछड़ी जातियों को विशेष रियायतें।
6. राजस्थान की विभिन्न बोलियों में निर्मित अच्छी फिल्मों के लिये 75 प्रतिशत की दर से मनोरंजन कर में छूट प्राप्त हो सकेगी।
7. वर्ष 1988-८9 के बजट में बिक्री कर पर से अधिभार समाप्त कर दिया गया है।

9 राजस्थानी हस्तकला

हाथों द्वारा कलात्मक एवं आकर्षक वस्तुएँ बनाना ही हस्तकला या हस्तशिल्प कहलाती हैं। राजस्थान की अनेक कलात्मक वस्तुएँ विश्व भर में लोकप्रिय है। शाहपुरा की फड़, पेन्टिग जैसलमेरी कम्बल, डूंगरपुर तथा उदयपुर के लकड़ी के खिलौने, जयपुर तथा जोधपुर में छपाई, रंगाई तथा बन्धेज का कार्य सारे विश्व में प्रसिद्ध है। साथ ही यहाँ की प्रसिद्ध वस्तुओं में मूल्यवान एवं अर्द्ध मूल्यवान रत्नों अथवा सोने-चाँदी के कलात्मक आभूषण, पीतल पर खुदाई व मीनाकारी के बर्तन, लाख से बनी चूड़ियाँ, संगमरमर की कला पूर्ण मूर्तियां, हल्की-फुल्की सलमा-सितारों की कलात्मक जूतियाँ, (मौजड़ियाँ) व नागरा जूतियाँ, ब्लू पाटरी की वस्तुएँ, साँगानेरी व बगरू प्रिन्ट के वस्त्र, चन्दन व हाथी दाँत से बनी नायाब कलाकृतियाँ आदि अनेक वस्तुएँ सम्मिलित हैं।

लघु उद्योग निगम का संरक्षण हस्तशिल्प उद्योगों को मिलने के कारण इसका अच्छा विकास हुआ है। निगम ने राज्य के विभिन्न स्थानों जैसे डूंगरपुर, जैसलमेर लाडनूं, पोकरण, बाड़मेर, पीपाड़, मेड़ता सिटी, शाहपुरा, चूरू आदि पर हस्तशिल्प उद्योग के विकास की सम्भावनाओं हेतु सर्वेक्षण कराये है। पूर्व की तुलना में वर्तमान समय में हस्तशिल्प सम्बन्धी वस्तुओं की डिजाइनों, रुपरगों, आकार, प्रकारों में नई फैशन आदि के अनुसार परिवर्तन किये गये हैं। हस्तशिल्प के उद्योगों के संरक्षण देने में राजसिको अच्छी भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

राजस्थानी हस्तशिल्प की कलाकृतियाँ विदेशों में पिछले कुछ वर्षों से अधिक लोकप्रिय हो रही है और इनकी मांग निरन्तर बढ़ती ही जा रही हैं, परिणामस्वरुप इस उद्योग में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है। साथ ही नवयुवक हस्तशिल्पियों ने समय की मांग के अनुरुप और अधिक कलात्मक वस्तुएँ बनाना प्रारम्भ किया हैं :

राजस्थान की प्रमुख हस्तकलाऐं निम्नलिखित है—

1. मीनाकारी व मूल्यवान रत्नों की कटाई—सोलहवीं सदी में आमेर (जयपुर) के तत्कालीन शासक राजा मानसिंह (सम्राट अकबर के प्रधान सेनानायक) लाहौर से

मीनाकारी के कुछ कुशल कारीगरों को अपने साथ आमेर लाए थे, उन्हीं के निजी आश्रय में मीनाकारी की हस्त-कला को विकसित होने का अवसर मिला। मीनाकारी का यह कार्य मुख्यतः मूल्यवान व अर्द्ध-मूल्यवान रत्नों अथवा सोने से निर्मित हल्के आभूषणों पर किया जाता है। मीनाकारी के कार्य की सर्वोत्कृष्ट कृतियां जयपुर में तैयार की जाती हैं, परन्तु प्रतापगढ़ की मीनाकारी (थेवा) के अन्तर्गत स्वर्ण आभूषणों पर हरे रंग को आधार बनाकर किया जाने वाला मीनाकारी का कार्य भी अति सुन्दर होता है।

मीनाकारी कार्य के अतिरिक्त जयपुर में मूल्यवान व अर्द्ध-मूल्यवान पत्थरों की सुघड़तापूर्ण कटाई से युक्त तथा नाना प्रकार के रूपाकारों से निर्मित आभूषण भी अपनी उत्कृष्ट जड़ाई, कटाई और डिजायनों के कारण सम्पूर्ण देश में विख्यात हैं। राजस्थान विभिन्न आभूषणों (जैसे सिर, कान, नाक, गला, कलाई व पैरों के हल्के-फुल्के चांदी के कलात्मक आभूषणों) के निर्माण के लिए भी प्रसिद्ध रहा है। यहां राखियां भी बड़े कलात्मक डिजायनों में बनाने का उद्योग केन्द्रित है। सोने चांदी के कलात्मक आभूषण बनाने के लिये जयपुर, जोधपुर, अजमेर व उदयपुर के स्वर्णकार प्रसिद्ध है। सोने व प्लेटिनम के आभूषणों में रत्नों की जड़ाई का काम भी बहुत सुन्दर होता है। आजकल प्राकृतिक एवं कृत्रिम (इमीटेशन) रत्नों की कलात्मक कटाई व पालिस करने के कार्य में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। जयपुर में इसका एक प्रशिक्षण केन्द्र भी है।

2. **हाथी दाँत की वस्तुएँ**—राजस्थान में राजपूत महिलाओं को विवाह के समय हाथी दांत से बना चूड़ा पहनाए जाने की प्रथा है। सौभाग्य का प्रतीक यह चूड़ा राजस्थानी महिलाए कलाई से लेकर कोहनी से ऊपर तक पहनती हैं। जोधपुर में काली, हरी और लाल धारियों की चूड़ियां बड़े पैमाने पर बनाई जाती हैं। हाथी दांत के मणिए, पहुँचियाँ, अँगूठियों, कर्णाभूषण आदि भी यहां बनाए जाते हैं। पर्यटकों की मांग को ध्यान में रखते हुए हाथी दांत के खिलौने, शतरंज के मोहरे, कंघे, मूर्तियाँ, पशु-पक्षी, हुक्केदानी, गिलास, फूल-पत्तियाँ व बारीक जालीदार कटाई से युक्त अनेक कलात्मक वस्तुएँ भरतपुर उदयपुर, जयपुर और पाली में बनाई जाती है।

3 **लाख व कांच का सामान**—राजस्थान में लाख की चूड़ियां पहनना विवाहित एवं सौभाग्यवती महिला होने का प्रतीक समझा जाता है। बहुरंगी लाख से बनाई जाने वाली बहुरंगी चूड़ियाँ व चूड़ों पर कांच के गोल, चौकोर तथा विविध आकार के दुग्ध-धवल रंग के हीरे चिपकाये जाते हैं। जयपुर और जोधपुर में लाख से विभिन्न प्रकार की सजावटी चीजें तथा खिलौने, मूर्तियां, हिण्डोले, गुलदस्ते, गले का हार, अँगूठी, कर्णफूल, झुमके, चाबियों के गुच्छे आदि बनाए जाते हैं।

4. **संगमरमर की मूर्तियां**—राजस्थान में अनेक स्थानों पर संगमरमर निकाला जाता है, मकराना में बड़े पैमाने पर संगमरमर और भैंसलाना में काला पत्थर निकाला जाता है। संगमरमर नागौर, पाली, सिरोही, बूंदी, उदयपुर व जयपुर जिलों में भी प्राप्त होता है। इस संगमरमर से जयपुर और उसके आसपास के क्षेत्रों में संगमरमर की मूर्तियां बनाई जाती हैं। जयपुर मूर्तिकला का विशेष केन्द्र हैं। यहाँ विभिन्न देवी-देवताओं, महापुरुषों, संतों, महात्माओं आदि की मूर्तियाँ कलात्मक रूप से बनायी जाती हैं। यहाँ से विदेशों को भी संगमरमर की मूर्तियाँ निर्यात की जाती हैं। जयपुर के अतिरिक्त अलवर के निकट किशोरी नामक ग्राम में भी संगमरमर की मूर्तियाँ एवं घरेलू उपयोग की वस्तुएँ निर्मित की जाती हैं।

5 **पीतल पर मीनाकारी**—जयपुर और अलवर में पीतल की घिसाई, पॉलिश और उस पर कलात्मक मीनाकारी की सजावटी वस्तुएँ बनायी जाती हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े आकार के पशु-पक्षी, जालीदार झाड़-फानूस, कलात्मक फूलदान, फलदान, गुलदस्ते, लैम्प स्टैंड देवी-देवताओं के सिंहासन, दीपदान आदि अनेक कलात्मक वस्तुएँ सम्मिलित हैं। जोधपुर में पानी को ठण्डा रखने हेतु 'बादला' नाम से वर्तन बनाये जाते हैं, जिसे कलात्मक रूप से सजाया जाता है।

रंगाई, छपाई व बन्धेज के वस्त्र—राजस्थान वस्त्रों की रंगाई, छपाई के लिए विश्व-विख्यात है। यहाँ सांगानेर, पाली, बाड़मेर व बीकानेर में रंगाई, छपाई और

बंधेज का कार्य बड़े पैमाने पर किया जाता है। बाड़मेर का 'अजरक' प्रिन्ट, चित्तौड़गढ़ की 'जाजम' छपाई, जयपुर के निकट सांगानेर में सांगानेरी नामक सुन्दर डिजायनों की छपाई, न केवल भारत, बल्कि विश्व के अनेक देशों में विख्यात है। बीकानेर के लहरिया व मोण्डे प्रसिद्ध हैं। किशनगढ़, चित्तौड़गढ़ व कोटा में रूपहली व सुनहरी छपाई का काम होता है। जयपुर में भी बन्धेज, रंगाई व छपाई का काम बढ़ता जा रहा है।

7. **कशीदाकारी**—राजस्थान में वस्त्रों पर कशीदाकारी बड़ी कुशलता और कलात्मक ढंग से की जाती है। कढ़ाई के काम में कांच, मोती व धात्विक कणों का प्रयोग भी किया जाता है। राजस्थान की कशीदाकारी में कमल, मोर, हाथी, ऊंट की डिजायनों को विशेष रूप से बनाया जाता है और ये राजस्थानी कशीदाकारी व छपाई कला के प्रतीक बन गये हैं। राजस्थान में जयपुर, जोधपुर, अजमेर, उदयपुर और कोटा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कोटा की मसूरिया मलमल व कोटा डोरिया साड़ियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

8. **ऊनी कम्बल व कालीन**—राजस्थान में जयपुर, बीकानेर, बाड़मेर, मालपुरा, जोधपुर व टाडगढ आदि स्थान कम्बल और कालीन बनाने के लिए विख्यात हैं। जयपुर, जोधपुर व टाडगढ (अजमेर) में ऊनी कम्बल बनाए जाते हैं। जयपुर, बीकानेर और बाड़मेर में सुन्दर एवं कलात्मक ऊनी कालीन, ईरानी व भारतीय पद्धतियों से बनाए जाते हैं। बीकानेर में नमदें बनते हैं। राजस्थानी कलाकार उत्कृष्ट एवं सुन्दर डिजायनों के ऊनी कालीन बनाने में निपुण हैं। यहाँ के कालीन विदेशों को भेजे जाते हैं।

9. **चमड़े पर हस्तशिल्प**—राजस्थान पशु-सम्पत्ति की दृष्टि से सम्पन्न राज्य है। यहाँ के चर्मकार व हस्तशिल्पी नाना प्रकार की कलात्मक और मानवोपयोगी वस्तुएं तैयार करते हैं। चमड़े से बनाई जाने वाली कलात्मक वस्तुओं में जयपुर और जोधपुर की नागरी और मोजड़िया जूतियाँ हैं, जो अपनी कलात्मक सलमे-सितारों और कशीदाकारी के कार्य की कारीगरी और हल्केपन के लिए प्रसिद्ध हैं। चमड़े की अन्य उपयोगी वस्तुओं, जैसे पर्स, बैल्ट, बैग, आसन आदि भी बनाए जाते हैं, जो अपनी कलात्मकता के लिए लोकप्रिय हैं।

राजस्थान मरूभूमि के क्षेत्रों जैसे मारवाड़, जैसलमेर, बीकानेर आदि का मुख्य पशु है। इन क्षेत्रों के प्रमुख शहरों में ऊंट की खाल को मुलायम बनाकर तैयार की जाने वाली तेल-घी रखने की कुप्पियाँ, बोतलनुमा सुराहियाँ, चित्रांकन से युक्त लैम्प-शेडों का निर्माण किया जाता है। ऊंट की खाल से बनी इन कृतियों पर किया गया चित्रांकन भी अत्यन्त आकर्षक और कलात्मक होता है।

10. **खिलौने और कठपुतलियाँ**—राजस्थान में काठ से बनी कलात्मक चित्रांकन से युक्त कठपुतलियाँ, यहाँ की परम्परागत हस्तशिल्प की एक अनूठी सौगात है। लोककथाओं के आधार पर कथाशिल्पी कठपुतली का तमाशा दिखाते हैं। कठपुतली बनाने का कार्य उदयपुर में किया जाता है।

कठपुतलियों के अतिरिक्त राजस्थान के जयपुर, उदयपुर व सवाईमाधोपुर नगरों में लकड़ी तथा कुट्टी-मिट्टी और प्लास्टर ऑफ पेरिस से खिलौने बनाने का हस्तशिल्प काफी प्रसिद्ध है। चित्तौड़गढ़ जिले के बस्सी गाँव में गणगौर बनाने, नागौर जिले के मेड़ता कस्बे में काठ के खिलौने बनाने, जयपुर मे पशु-पक्षियों के सेट बनाने के उद्योग केन्द्रित हैं। इसी उद्योग के अन्तर्गत जयपुर में बने गोटे की कारीगरी से अलंकृत हाथी, घोड़े, ऊंट आदि खिलौने भी बच्चों में पर्याप्त लोकप्रिय हैं।

11. **कागज बनाने की कला**- जयपुर के निकट सांगानेर तथा सवाई माधोपुर में हाथ से कागज बनाने का काम होता है। सोलहवीं शताब्दी में आमेर के शासक सवाई मानसिंह उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के सैनिक अभियान से लौटते समय कुछ कुशल कारीगर लाए थे, जो उत्तम प्रकार का कागज बनाते थे। इन्हीं परिवारों के वंशज सांगानेर के निकटवर्ती क्षेत्रों में प्रसिद्ध, मजबूत व टिकाऊ किस्म का कागज हाथ से बनाते हैं। सांगानेरी कागज प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण कार्यों में प्रयुक्त किया जाता रहा है।

12. **लकड़ी पर नक्काशी का काम**—राजस्थान में

उदयपुर, बीकानेर, सवाई माधोपुर व शेखावाटी स्थानों पर लड़की के कलात्मक खिलौने, विभिन्न वस्तुएं और नक्काशी का कार्य किया जाता है। कुछ स्थानों पर लकड़ी में पीतल की जड़ाई का काम बहुत होता है। बीकानेर व शेखावाटी में लकड़ी के नक्काशीदार सजावटी किवाड़ बनते हैं।

13 **दरी व कालीन**—राजस्थान में जयपुर, अजमेर के क्षेत्रों में दरी व गलीचों का कार्य बहुत होता है। बीकानेर में उत्तम श्रेणी की ऊन से वियना तथा फारसी डिजाइनों के गलीचे बनाये जाते हैं। जयपुर में गलीचे बनाने के कुछ कारखाने हैं।

14 **पॉटरी**—मिट्टी व चीनी के बर्तन बनाने का कार्य राजस्थान में प्राचीन काल से होता आया है। अतः विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की कलात्मकता की झलक इन बर्तनों में देखने को मिलती है। जयपुर में चीनी व मिट्टी के सफेद व नीले रंग के तथा फूल पत्तियों के डिजाइनदार बर्तन व कलात्मक खिलौने बनाये जाते है। बीकानेर में सुनहरी पेन्टिंग वाले तथा अलवर में बहुत पतली परतदार बर्तन बनते है। अलवर के बर्तनों को 'कागजी' नाम से जानते हैं।

15. **लोक चित्रांकन**—राजस्थानी हस्तकला के अन्तर्गत लोक-शैली में कपड़े अथवा दीवारों के अलंकरण के लिये प्रयुक्त की जाने वाली 'फड़' अथवा वातिक शैली की चित्रांकित कृतियों की अपनी पहचान रही है। एक लम्बे 'खरीते' के रूप में चित्रांकित की जाने वाली लोक कथाओं को समेटे यह कला कृतियाँ देशी विदेशी पर्यटकों तथा कला मर्मज्ञों में काफी लोकप्रिय है। राजस्थान में चित्रों के माध्यम से कथा कहने की एक विद्या है जिसे 'फड़ या पड़' कहते हैं। फड़ चित्रण कपड़े या कैनवास पर किया जाता है फड़ बांचने वाले समुदाय 'भोपा' कहलाते हैं। फड़ को भोपा युगल मिलकर गाते है।

पिछवाई चित्र भी हस्तशिल्प के अन्तर्गत आज कल बनाये जा रहें हैं। पिछवाई चित्र जिन्हें श्री नाथजी की प्रतिमा के पीछे दीवार पर लगाया जाता था। कपड़े पर बने हुये कृष्ण लीला से सम्बन्धित चित्र कृष्ण की प्रतिमा के पीछे दिवारों पर लगाये जाने के कारण 'पिछवाई चित्र' कहलाने लगे। इनकी मांग भी निरन्तर बढ़ती जा रही है।

राजस्थान में कपड़े पर मोम की परत चढ़ा कर वातिक शैली के चित्र बनाये जाते हैं। ये चित्र खरीते निजी आवास-गृहों अथवा कार्यालयों की दीवारों की साज सज्जा के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं। शासकीय स्तर पर इनका क्रय-विक्रय राजस्थान लघु उद्योग निगम कर रहा हैं। अतः लोक चित्रांकन के अन्तर्गत बनाये गये चित्रों की लोकप्रियता के कारण यह हस्त शिल्प के रूप में अधिक विकसित हो रहा है तथा कलाकारों के लिये आजीविका का एक सुनिश्चित साधन बन गया है।

10 राजस्थान के विविध विकास कार्यक्रम

राजस्थान में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं तथा बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत विकास से सम्बन्धित विविध योजनाएं तथा कार्यक्रम चलाए गये है, जिनमें एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP), ढाकरा परियोजना, मरु विकास कार्यक्रम (DDP), सूखा सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम (RLEGP), बायोगैस कार्यक्रम, सीलिंग भूमि आवंटन कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) बन्धक पुनर्वास कार्यक्रम, लघु एवं सीमान्त कृषकों के लिये कृषि उत्पादन कार्यक्रम, विशिष्ट योजना कार्यक्रम, खादी एवं ग्रामोद्योग कार्यक्रम, अन्त्योदय कार्यक्रम, रुख भायला कार्यक्रम आदि मुख्य हैं। इनमें से कुछ कार्यक्रमों का वर्णन सम्बन्धित विषय सामग्री के अध्यायों में किया गया है। शेष कार्यक्रमों एवं योजनाओं का वर्णन निम्न प्रकार है—

(1) बायो-गैस कार्यक्रम—राजस्थान में गत 17 वर्षों से खादी एवं ग्रामोद्योग विभाग द्वारा बायो-गैस संयन्त्रों की स्थापना का कार्य किया जा रहा है। राज्य में पशु सम्पदा से प्राप्त गोबर की प्रचुर मात्रा का उपयोग करने के लिये अभी तक लगभग 450 बायो गैस सयन्त्र स्थापित किये गये है, जो काफी नगण्य है। गोबर के प्रत्यक्ष उपयोग से उसे या तो खाद के रूप में अथवा ईंधन के रूप में काम में लाया जा सकता है जबकि बायोगैस संयन्त्र के उपयोग करने पर एक ओर तो गैस ईंधन के रूप में उपलब्ध होती है तथा दूसरी ओर संयन्त्र से निकला गोबर उत्तम खाद होता है। अतः गोबर गैस का सही उपयोग ईंधन, डीजल व बिजली की समस्या को भी हल करने में सहायक है।

इस कार्यक्रम में तेजी लाने की दृष्टि से राज्य सरकार ने 1981 में बायोगैस कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1981-82 में 900, वर्ष 1982-83 में 2404, वर्ष 1983-84 में 3994, वर्ष 1985 में 951 बायोगैस संयन्त्र लगाये गये हैं इस प्रकार इन संयन्त्रों के स्थापित करने हेतु 146·19 लाख रुपये अनुदान के रूप में कृषकों को उपलब्ध करवाये गये है। इसकी उपयोगिता का सही ज्ञान होने के फलस्वरूप कृषक इस दिशा में काफी रूचि ले रहे हैं।

(2) अन्त्योदय कार्यक्रम—राजस्थान में जनता सरकार ने एक गांधीवादी कार्यक्रम सन् 1977-78 में प्रारम्भ किया जिसे अन्त्योदय कार्यक्रम का नाम दिया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक गांव से निर्धनतम पांच परिवारों का चुना जाना तथा फिर उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने के प्रयास करना था। राजस्थान में लगभग 33 हजार गांव है जहाँ यह कार्यक्रम चलाया गया था। निर्धनतम पांच परिवारों का प्रत्येक गांव से चयन ग्राम सभाओं व गांव के लोगों की सलाह पर किया गया था। ऋण की सुविधा सहकारी व व्यापारिक बैंक के माध्यम से करवायी गई ताकि वे दुधारू पशु जैसे गाय, भैंस, बकरी आदि खरीद सके अथवा भेड़ पालन व सूअर पालन आदि कर सकें अथवा बैलगाड़ी या बैल, ऊंटगाड़ी या कहीं-कहीं रिक्शा आदि भी खरीद सकें अथवा दस्तकारी, कुटीर उद्योगों को स्थापित कर अपना जीविकोपार्जन कर सकें।

अन्त्योदय योजना में भूमिहीन श्रमिकों व ग्रामीण दस्तकारों को अधिक लाभ मिलने की सम्भावना व्यक्त की गई क्योंकि ये लोग कृषि योग्य भूमि को सर्वोच्च प्राथमिकता देते है, उसके पश्चात पशुपालन, कुटीर उद्योग, हाथकरघा आदि को महत्व देते हैं। अतः जनता सरकार का विचार था कि इस कार्यक्रम में अगर अधिक धन उपलब्ध कराया जा सके तो राज्य से गरीबी को दूर किया जा सकता है।

राजस्थान में कांग्रेस (इ) सरकार के पुनः सत्ता में आते ही इस कार्यक्रम को स्थगित करते हुये नये बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम को विस्तृत आयाम के साथ लागू कर दिया गया।

(3) रूख भायला कार्यक्रम—देश के प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने डूंगरपुर जिले के बगदरी गाँव में 'रूख भायला कार्यक्रम' की शुरूआत 23 दिसम्बर, 1986 को की थी। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सामाजिक वानिकी कार्य में वनों के पुर्नरूत्थान, भूमि विकास तथा विकास कार्य में समुदाय की भागीदारी स्थापित करने आदि को सम्मिलित किया गया है। इस योजना की क्रियान्विति दक्षिण राजस्थान के जनजाति उपयोजना क्षेत्र के 23 विकास खण्डों तथा जनजाति के 9 लघु खण्डों के पांच हजार गाँवों में की जाएगी जिसके परिणामस्वरूप तीस लाख लोगों को इसका लाभ मिलेगा। वर्ष 1986-87 में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पाँच सौ लोगों का चयन किया गया जिन्हें रूख भायला' कहा जाता हैं।

(4) भीनमाल योजना—चर्म उद्योग में संलग्न अनुसूचित जाति के परिवारों के आर्थिक उत्थान हेतु मानपुर मचेड़ी में एक केन्द्र स्थापित करना प्रस्तावित है जिसमें वहाँ के अनुसूचित जाति के व्यक्तियों को अपने बनाये माल के विक्रय एवं जूते आदि बनाने की सुविधा उपलब्ध होगी। इस योजना की क्रियान्वति पर लगभग 17 लाख रुपयों की लागत आयेगी। साथ ही भीनमाल में चर्म प्रशिक्षण एवं सामान्य सुविधा केन्द्र भी स्थापित किया जाना है जिसके द्वारा इन उद्योगों में लगे हुए व्यक्तियों को तक-

नीकी प्रशिक्षण एवं उत्पादन सुविधा प्रदान कर उनकी कार्य पद्धति को उन्नत किया जावेगा ताकि वे आर्थिक स्तर में सुधार ला सकें।

(5) **एकलव्य योजना**—भारत विकास परिषद ने इस योजना का शुभारम्भ राज्य में लगभग 40 निर्धन वनवासी बालकों के सर्वांगीण विकास के लिये किया है। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक वनवासी बालक पर 1 00 रुपया प्रतिवर्ष उसके लालन-पालन व शिक्षा पर व्यय किया जाना निश्चित है। इनके निवास तथा स्वास्थ्य परीक्षण के लिये छात्रावास एवं स्वास्थ्य केन्द्र भी स्थापित किये गये हैं।

(6) **यू एन एफ.पी ए परियोजना**—यह एक विशिष्ट योजना है जो केन्द्रीय सरकार की शत-प्रतिशत वित्तीय सहायता से राज्य के धौलपुर, भरतपुर, सवाईमाधोपुर व कोटा में शुरु की गई है। इस योजना के अन्तर्गत जनता को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण की सघन सेवाएं उपलब्ध कराई जाती है, तथा साथ ही ग्राम स्वास्थ्य रक्षकों तथा दाईयों के प्रशिक्षण, प्रसविकाओं के प्रशिक्षण तथा महिला स्वास्थ्य गाइड़ों के प्रशिक्षण के अतिरिक्त स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम से सम्बद्ध प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, ग्रामीण परिवार कल्याण केन्द्रों के भवन, स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं व अधिकारियों के आवासीय भवनों के निर्माण ऑपरेशन थियेटरों तथा मातृ एवं शिशु कल्याण केन्द्रों के भवनों के निर्माण कार्य और बहुउद्देशीय कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण केन्द्रों की व्यवस्था की जा रही है।

20-सूत्री कार्यक्रम—देश हो या राज्य, उसमें जब प्रगति होती है तो यह देखना अनिवार्य है कि इस प्रगति का लाभ देश या राज्य के निवासियों को विशेषकर उन लोगों को गरीबी रेखा से नीचे हैं, मिल रहा है या नहीं। इसी हेतु 20-सूत्रीय कार्यक्रम को शुरु किया गया। यह एक समन्वित कार्यक्रम हैं जिसके अन्तर्गत लोगों के सहयोग द्वारा बहुमुखी विकास और कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रमों को आगे बढ़ाते हुये बल प्रदान करना है। राजस्थान ने 20-सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन में 1983-84, 1985–86 तथा 1986-87 वर्षों में देश में प्रथम स्थान प्राप्त किया। इस कार्यक्रम का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1 गरीबी के विरुद्ध संघर्ष—इस सूत्र के द्वारा ऐसी व्यवस्था की जाये कि (i गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का वास्तविक लाभ गरीबों को प्राप्त हो। सार्वजनिक दृष्टि से स्थाई महत्व की परिसम्पतियों का निर्माण किया जाये जैसे स्कूलों के भवन, सड़कें, तालाब, चारागाह आदि। (iii) ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के द्वारा उत्पादन एवं रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो, (iv) ग्रामीण उद्योग, हाथ-करघा, दस्तकारी तथा स्व-रोजगार के कार्यों को प्रोत्साहन मिले। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम एवं ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रमों को राज्य सरकार ने शुरू किया है।

2. वर्षा पर निर्भर कृषि विकास—इसके अन्तर्गत भू-संरक्षण, भूमि में नमी बनाए रखने सम्बन्धी तकनीकी सुधार अतिरिक्त सिंचाई की क्षमता का विकास, वृक्षारोपण व चारागाह विकास, वाटर शेड विकास, उन्नत कृषि औजार, सूखे की सम्भावना को कम करने आदि से सम्बन्धित प्रयास किये जाते हैं। इसका मूल उद्देश्य आधुनिकतम तकनीकी विधियों से कृषि उत्पादन में वृद्धि करना है।

3. सिंचाई का श्रेष्ठतर उपयोग—इसके अन्तर्गत अतिरिक्त सिंचाई क्षमता का सृजन, जलग्रहण क्षेत्रों का विकास, बारावन्दी, फील्ड चैनल, वृक्षारोपण एवं भू-संरक्षण तथा उपलब्ध जल-साधनों का पूरा लाभ लेने के प्रयास किये जाते है।

4 उन्नत कृषि अधिक उत्पादन—इसके अन्तर्गत (i) पूर्वी क्षेत्रों में चावल के उत्पादन में क्रान्तिकारी बढ़ोतरी के प्रयास, (ii) दलहन, खाद्य तेल, फलों तथा सब्जियों के उत्पादन में वृद्धि करने के प्रयास, (iii) पशु पालकों तथा दुग्ध उत्पादकों को सहायता तथा (iv) मछली व्यवसाय को प्रोत्साहन आदि कार्य किये जा रहे है।

5. भूमि-सुधार—इस लक्ष्य के अन्तर्गत गाँवों में भूमि अभिलेखों का संकलन, भूमि बन्दोबस्त में सुधार तथा भूमिहीनों में भूमि का आवंटन किया जा रहा है।

6. ग्रामीण श्रमिकों के लिये विशेष कार्यक्रम—इसके अन्तर्गत बंधुआ श्रमिकों का पुनर्वास तथा न्यूनतम मजदूरी के कार्यक्रम है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का पालन कड़ाई से करवाने की व्यवस्था है।

7. पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्था—इस कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य के सभी लोगों को पेयजल उपलब्ध करवाने की व्यवस्था करना है तथा इस हेतु हैण्डपम्प, तालाब, कुएँ खुदवाने के कार्य किये जा रहे हैं।

8. सभी के लिये स्वास्थ्य—इसके अन्तर्गत सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना, प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों की स्थापना, उपकेन्द्रों की स्थापना, बच्चे के टीके लगवाना, ग्रामीण क्षेत्रों में सफाई की व्यवस्था तथा कुष्ठ रोग, मलेरिया आदि बीमारी के खिलाफ संघर्ष आदि कार्य किये जा रहे हैं।

9. दो बच्चों का परिवार—इस सूत्र के अन्तर्गत नसबन्दी, आई. यू. डी., गर्भ निरोधक साधन का प्रयोगकर्त्ता, समन्वित बाल विकास केन्द्र तथा आँगन बाड़ी आदि कार्य सम्मिलित है। साथ ही मातृ एवं शिशु कल्याण की सुविधाओं का विस्तार भी किया जाना है।

10. शिक्षित राष्ट्र—इस सूत्र के अन्तर्गत 6–14 वर्ष के बालकों की शिक्षा के विस्तार की व्यवस्था, प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था, लड़कियों की शिक्षा की व्यवस्था आदि पर विशेष प्रयास किये जा रहे हैं।

11. अनुसूचित जातियों/जनजातियों के न्याय—इन जातियों को आरक्षण का वास्तविक लाभ मिले, आवंटित जमीन पर इन्हें वास्तविक कब्जा मिले, इनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध हो, सामाजिक न्याय इन्हें मिले, विस्थापित आदिवासियों को बसाया जाये तथा उनके आर्थिक विकास की व्यवस्था हो आदि पर विशेष बल दिया जा रहा है।

12. महिलाओं को समानता व सहायता–(i) 6–14 वर्ष की लड़कियों का नामाकन व शिक्षा की व्यवस्था, (ii) प्रौढ़ महिलाओं की शिक्षा की व्यवस्था, (iii) नारी को गरिमा प्राप्त हो, (iv) स्त्रियों को उनकी समस्याओं के प्रति जागरूक बनाना, (v) दहेज-उन्मूलन, (vi) औरतों के रोजगार तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था।

13. युवा वर्ग के लिये नये अवसर—राष्ट्रीय सेवा योजना, नियमित योजना व विशेष शिविर योजना आदि के अन्तर्गत युवा वर्ग के लिये नये अवसर प्रदान किये जाने के प्रयास किये जा रहे हैं। साथ ही नेहरु युवा केन्द्रों का विस्तार किया जा रहा है और बेरोजगारी की समस्या का निदान 'ट्राइसम' आदि कार्यक्रम के माध्यम से किया जा रहा है।

14. सबके लिये मकान—ग्रामीण क्षेत्र भू-आवंटन, आवासीय निर्माण सहायता योजना, इन्दिरा आवास योजना आदि को शुरू किया गया है जबकि नगरीय क्षेत्र में आर्थिक दृष्टि से दुर्बल परिवारों को आवास, अन्य आय वर्ग (मध्यम व उच्च) वर्ग के परिवारों को आवास आदि के प्रयास किये जा रहे है।

15. तंग बस्तियों का सुधार—इस सूत्र के अन्तर्गत ग्रामीण एवं नगरीय बस्तियों में विकसित गन्दी बस्तियों के सुधार पर ध्यान दिया जा रहा है।

16. वन विस्तार—वृक्षारोपण एवं बंजर भूमि सुधार आदि से सम्बन्धित कार्यक्रम इसके अन्तर्गत क्रियान्वित किये गये है।

17. पर्यावरण की रक्षा—इसके अन्तर्गत पर्यावरण की रक्षा के लिये आम नागरिक को जागरूक बनाते हुए वन संरक्षण, वृक्षारोपण तथा प्रदूषण रोकने के प्रयास किये जा रहे हैं।

18, उपभोक्ता कल्याण—उचित मूल्य की दुकानों की स्थापना कर आवश्यक वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने का कार्य किया रहा है। इस प्रकार वितरण प्रणाली को सुदृढ़ बनाया जाता है।

19. गांवों के लिये ऊर्जा—इसके अन्तर्गत ग्रामों का विद्युतीकरण, कुओं, पम्प सेटों का ऊर्जीकरण, उन्नत चूल्हों की व्यवस्था, बायो-गैस संयन्त्रों की स्थापना तथा आई. आर. डी पी खण्डों की स्थापना आदि कार्यक्रमों को चलाया जा रहा है। गोबर गैस संयन्त्र तथा सौर–ऊर्जा को ऋण भी उपलब्ध करवाये जा रहे हैं।

20. संवेदनशील प्रशासन–प्रशासन को जनसमस्याओं को हल करने हेतु संवेदनशील एवं उत्तरदायी बनाया जायेगा।

इन सभी कार्यक्रमों के लिये लक्ष्य का निर्धारण और लक्ष्य पूर्ति का प्रयास प्रतिवर्ष किया जाता हैं।

11 वार्षिकी योजना 1988-89

वर्ष 1988-89 राजस्थान में ग्रामीण उत्थान, चेतना और पिछड़े वर्गों के कल्याण का वर्ष रहा है। इस वर्ष रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न हुए है। महिलाओं के कल्याण के लिये अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक दृष्टि से निर्बल चयनित परिवार, अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के लिये विभिन्न कार्यक्रमों के जरिये रोजगार के अवसर बढ़ाये गये है एवं उनके लिये आवास, बिजली और पानी जैसी मौलिक सुविधाएं उपलब्ध कराने की दिशा में अधिक कारगर कदम भी उठाये गये है।

वर्ष 1988-89 में विभिन्न क्षेत्रों में किये गये कार्यों का विवरण इस प्रकार है।

1. कृषि उत्पादन एवं कृषि विपणन—वर्ष 1988-89 में 1 करोड़ 23 लाख 50 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में खरीफ फसलों की बुवाई के लक्ष्य की तुलना में 1 करोड़ 32 लाख 32 हजार हैक्टेयर भूमि में बुवाई की गयी है। जबकि रबी में 59 लाख हैक्टेयर क्षेत्र के लक्ष्य की तुलना में 54 लाख 59 हजार हैक्टेयर भूमि में बुवाई की गयी है। खाद्यान्न का उत्पादन खरीफ में 41 लाख 60 हजार टन एवं रबी में 64 लाख 13 हजार टन होने का अनुमान है जो लक्ष्य से कुछ अधिक है। किसानों को कृषि उत्पादन का उचित मूल्य दिलवाने हेतु राज्य में 136 कृषि उपज मण्डियां 241 गौण मण्डियां, 262 प्राथमिक ग्रामीण मण्डियां तथा 72 ग्रामीण गोदाम स्थापित है। माह दिसम्बर 1988 तक मण्डी शुल्क से 23 करोड़ 4 लाख रुपये की आय हुई जो गत वर्ष से की तुलना से 235 लाख रुपये अधिक है।

2. पशुपालन व डेयरी विकास—वर्ष 1988-89 में 150 पशु औषधालयों को पशु चिकित्सालयों में क्रमोन्नत करने तथा 50 नये पशु औषधालय खोले गये है। वर्तमान में 10 डेयरी संयन्त्र तथा 24 अवशीतन केन्द्र है। कुल दुग्ध विदोहन क्षमता 9 लाख लीटर तथा दुग्ध अवशीतन क्षमता 4 लाख 10 हजार लीटर प्रतिदिन है। डेयरी फैडरेशन ने इस वर्ष माह दिसम्बर, 1988 तक 182 नई दुग्ध उत्पादन सहकारी समितियों का गठन किया है। इस प्रकार वर्तमान में 4,308 दुग्ध सहकारी समितियां है। इस वर्ष 22,908 नये कृषक सदस्य बनाये गये है जिन्हें मिलाकर दुग्ध उत्पादकों की संख्या माह दिसम्बर 1988 तक 3,10,455 हो गई है। इस वर्ष माह दिसम्बर, 1988 तक 614 लाख 13 हजार लीटर दुग्ध संकलित किया गया है जो औसतन 3 लाख 1 हजार लीटर प्रतिदिन आता है।

3. सिंचाई—राज्य में सिंचाई व माही नियन्त्रण परियोजनाओं के लिये वर्ष 1988-89 में नवम्बर, 1988 तक 46 करोड़ 40 लाख रुपये व्यय हो चुके है तथा वर्ष के अन्त तक 18,082 हैक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई क्षमता सृजित किये जाने का अनुमान है।

लघु सिंचाई परियोजनाओं में 86 लघु सिंचाई परियोजनाएं राज्य योजनान्तर्गत, 699 परियोजनाएं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत, 244 परियोजनाएं राष्ट्रीय भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अन्तर्गत, 102 परियोजनाएं मरू विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत तथा 32 परियोजनाएं सूखा सम्भाव्य कार्यक्रम के अन्तर्गत चालू है।

सिंचित क्षेत्र विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत इन्दिरा गांधी नहर परियोजना क्षेत्र में 12,530 हैक्टेयर क्षेत्र में पक्के खालों का निर्माण, 83.25 किलोमीटर सड़क निर्माण, 14 डिग्गियों का निर्माण व 9,261 आर. के. एम. में वृक्षारोपण के कार्य पूरे किये जा चुके है।

तिलहन संकलन के अन्तर्गत चम्बल परियोजना क्षेत्र व माही बजाज सागर परियोजना में सोयाबीन उत्पादन का क्षेत्रफल गत वर्ष के 44,280 हैक्टेयर से बढ़कर इस वर्ष 55000 हैक्टेयर हो गया है। भू-सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत इस क्षेत्र में 2514 हैक्टेयर में भूमि विकास

किया जा चुका है।

4 विद्युत एवं गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत—कोटा तापीय विद्युत परियोजना के दूसरे चरण की 210 मेगावाट की प्रथम इकाई को 25 सितम्बर, 1988 को तथा अन्ता (कोटा) में गैस आधारित नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन की 115 मेगावाट की प्रथम इकाई को जनवरी, 1989 को चालू कर दिया गया है। बिजली की बढ़ती हुई मांग को दृष्टिगत रखते हुए कोटा तापीय विद्युत परियोजना की दूसरे चरण की 210 मेगावाट की दूसरी इकाई को पूर्व निर्धारित माह 1 सितम्बर, 1989 के बजाय मई-जून, 1989 में ही चालू करने के प्रयास जारी हैं। इसी प्रकार माही पन विद्युत गृह द्वितीय की 45 मेगावाट की दूसरी इकाई माह जुलाई-अगस्त, 1989 तक चालू करने का लक्ष्य है। अन्ता गैस विद्युत गृह की द्वितीय एवं तृतीय इकाई शीघ्र (प्रत्येक 88 मेगावाट) ही चालू हो जाने की आशा है।

कोटा थर्मल परियोजना के दूसरे चरण से उत्पादित विद्युत को आगे प्रवाहित करने के लिये 220 के. वी. द्विपथीय लाईन कोटा-ब्यावर लाईन के निर्माण का कार्य प्रगति पर है। वाल्टेज समस्या को सुधारने हेतु 100 एम. वी. आर. के. कैपेसिटर्स स्थापित करने का कार्यक्रम बनाया गया है।

अनुसूचित जाति विशिष्ट संगठन योजना के अन्तर्गत एक हजार हरिजन बस्तियों के विद्युतीकरण, 3 हजार कृषि कनेक्शन तथा 100 औद्योगिक कनेक्शन दिये जाने का लक्ष्य है, जिसकी क्रियान्विति की जा रही है।

ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों में सौर ऊर्जा से संचालित 670 ट्यूब लाईटें 167 गांवों में फरवरी, 1989 तक लगाई जा चुकी है। 100 सौर पवन चक्कियां इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र में लगाये जाने का अनुमान है तथा सौर ऊर्जा से पानी निकालने के संयन्त्र बाड़मेर, नागौर व चूरू आदि जिलों में 10 स्थानों पर गहरे पम्प लगाने का कार्य प्रगति पर है। ग्रामीण क्षेत्र में बायोगैस संयन्त्र कार्यक्रम के अन्तर्गत माह जनवरी, 1989 तक 1990 संयन्त्र लगाये जा चुके है।

5. उद्योग—राज्य में माह दिसम्बर, 1988 तक 1,41,890 लघु औद्योगिक व दस्तकारी इकाईयों का पंजीयन किया जा चुका है जिसमें 6 अरब 68 करोड़ 14 लाख रूपये की पूंजी विनियोजित है तथा 5 लाख 25 हजार व्यक्तियों को रोजगार सुलभ हो सका है।

राज्य लघु उद्योग निगम द्वारा वर्ष 1988-89 में जनवरी, 1989 तक 2 करोड़ 55 लाख रूपये का विक्रय कार्य किया गया। एयर कारगो के माध्यम से माह दिसम्बर, 88 तक 79 करोड़ रूपये का व्यापारावर्त किया गया।

राजस्थान वित्त निगम द्वारा चालू वर्ष में 52 करोड़ 90 लाख रूपये की ऋण की स्वीकृति तथा 48 करोड़ 28 लाख के ऋण वितरण माह दिसम्बर, 88 तक किये जा चुके है।

रीको द्वारा वर्ष 1988-89 में विभिन्न उद्योगों को 37 करोड रूपये के ऋण स्वीकृति किये जाने का अनुमान है। अधिकाधिक इलेक्ट्रोनिक उद्योग स्थापित किये जाने के लिये विशेष प्रयास किये जा रहे है

मेसर्स अरावली फर्टिलाइजर्स लि. को गैस पर आधारित खाद संयन्त्र की स्थापना गड़ेपान (कोटा) हेतु भारत सरकार से स्वीकृति प्राप्त हो गई है जहां प्रतिदिन 1350 टन आमोनिया एवं 1125 टन यूरिया खाद बनेगा। इस पर कुल विनियोजन लगभग 750 करोड़ रूपये का होगा।

6. खनिज—वर्ष 1988-89 में नये खनिज भण्डारों की खोज की दिशा में विभाग ने 73 खनिज परियोजनाएं हाथ में ली हैं। राज्य में 4 लाख 73 हजार हैक्टेयर भूमि में खनिज उत्पादन हो रहा है।

फास्फेट खनिज के क्षेत्र में ग्राम ऊंदरी (उदयपुर) के पास 8 मीटर मोटी व 270 मीटर लम्बी एक फास्फेट की पट्टी की खोज की गई हैं। इसी प्रकार प्रसाद, नाल, खरवड़ (उदयपुर) गांवों के पास 250 मीटर से 1 किलोमीटर लम्बे व 10 मीटर से 100 मीटर चौड़े क्रिस्टेलाइन मैग्नेसाइट खनिज के भण्डारों की खोज की गयी हैं। इस खनिज के 35 लाख टन भण्डार यहां होने की सम्भावनएं हैं।

झामरकोटड़ा समन्वित परियोजना कार्य निरन्तर

प्रगति की ओर अग्रसर है। लगभग 160 करोड़ रुपये की इस परियोजना के प्रारम्भिक चरण में भू-परीक्षण, क्रॉसिंग प्लांट, साइट ग्राइंडिंग आदि का कार्य चालू हो चुका है।

राजस्थान राज्य खनिज विकास निगम देश की सब से बड़ी जिप्सम उत्पादन करने वाली कम्पनी के रूप में उभर कर आया है। इस निगम का वर्ष 1987-88 में टर्न ओवर 17 करोड़ 48 लाख था, जबकि इस वर्ष 23 करोड़ होने का अनुमान है।

7. वन—राष्ट्रीय सामाजिक वानिकी परियोजना के अन्तर्गत इस वर्ष 10523 हैक्टेयर क्षेत्र में वृक्षारोपण का कार्य सम्पन्न किया गया है। इन्दिरा गांधी नहर परियोजना क्षेत्र में नवम्बर, 1988 तक 6,262 हैक्टेयर क्षेत्र में वृक्षारोपण किया गया है। इस वर्ष राज्य में 13 करोड़ वृक्ष लगाये जाने का अनुमान है।

8. परिवहन—राज्य में सड़क परिवहन सुविधाओं के लिये विस्तार एवं विकास के लिये सतत् प्रयास किये जा रहे हैं। इस वर्ष यात्री वाहन सेवा के विस्तार हेतु 319 नये परमिट जारी किये गये है तथा 3050 कि.मी. लम्बे 60 नये मार्ग खोल दिये गये है। वर्तमान में राज्य के दो हजार से अधिक आबादी वाले अधिकांश गांवों में बस सेवाएं उपलब्ध हैं। एक हजार से अधिक आबादी वाले उन गांवों को जहां मार्ग वाहन संचालन के योग्य है, बस सेवा से जोड़े जाने के प्रयास जारी हैं।

वर्ष 1988-89 में सड़कों के निर्माण हेतु राज्य योजना में 23 करोड़ 50 लाख रूपयों का प्रावधान है जिसके अन्तर्गत 1600 किमी. लम्बी सड़कों का निर्माण व डेढ़ हजार से अधिक आबादी के 90 गांवों को जोड़ने का कार्य प्रगति पर है।

राज्य के राजमार्गों के सुधार व चौड़ा करने हेतु 148 करोड़ रुपयों की वृहद योजना विश्व-बैंक द्वारा स्वीकृत कर दी गई है तथा निर्माण कार्य शीघ्र ही चालू किया जायेगा। राष्ट्रीय भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अन्तर्गत 4080 किमी. लम्बी सड़कों का निर्माण कार्य किया जा रहा है।

9 पर्यटन, कला एवं संस्कृति—पर्यटकों को राज्य की विभिन्न कलाकृतियों एवं पर्यटक स्थानों की सूचना देने हेतु राज्य में 16 एवं राज्य के बाहर 6 पर्यटक केन्द्र खोल रखे है। पर्यटकों को आवास, परिवहन, भोजन आदि की सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु राजस्थान पर्यटन विकास निगम के आधीन 36 इकाईयां कार्यरत है। इनमें से टूरिस्ट होटल, जयपुर वर्ष 1988-89 में प्रारम्भ किया गया है। इन इकाईयों में उपलब्ध शैय्या क्षमता 1850 हो गई है।

संग्रहालय के क्षेत्र में पाली संग्रहालय भवन एवं आमेर कलादीर्घा का निर्माण हो चुका है। प्रदेश में समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को जो शास्त्रीय कलाओं लोक कलाओं आदि के रूप में उपलब्ध है, को संरक्षित करने हेतु जवाहर कला केन्द्र भवन का निर्माण प्रगति पर है। इसी शृंखला में उदयपुर में पश्चिमी क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र के द्वारा एक शिल्प ग्राम का निर्माण पूरा हो चुका है।

10. जनजाति क्षेत्रीय विकास—वर्ष 1988-89 में जनजातियों के आर्थिक उत्थान हेतु कुछ नवीन योजनाएं लागू की गई है जिनमें साग सब्जी उत्पादन व विपणन कार्यक्रम, उन्नत कृषि यन्त्रों का वितरण, प्रतिभावान छात्रों को छात्रवृत्ति योजना आदि मुख्य है।

नारू उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वीडन सरकार की सहायता से दो परियोजनाएं चालू की गई है— (i) डूंगरपुर—बांसवाड़ा परियोजनाएं के लिये 12 करोड़ रुपये, व (ii) उदयपुर परियोजना के लिये 18 करोड़ व्यय होने का अनुमान है। इसके अन्तर्गत दिसम्बर 1988 तक 4314 बावड़ियों को कुओं में परिवर्तित किया गया है तथा 2187 हैण्डपम्प लगाये जा चुके है।

ट्राईबल सब्प्लान के अन्तर्गत प्रतियोगी परीक्षाओं के हेतु अनुसूचित व जनजाति के विद्यार्थियों को कोचिंग की व्यवस्था उदयपुर स्थित लोक प्रशासन में तथा बांसवाड़ा व डूंगरपुर के स्थानीय महाविद्यालयों में की गई है।

11 शिक्षा—शैक्षिक उपलब्धियों की दृष्टि से वर्ष 1988-89 काफी महत्वपूर्ण रहा है। इस वर्ष तीन हजार नई प्राथमिक शालाएं खोली गई है। 6919 एक अध्यापकीय विद्यालयों में दो अध्यापक रखे जा रहे है।

672 उच्च माध्यमिक विद्यालयों को सीनियर हायर सैकेण्ड्री विद्यालयों में क्रमोन्नत कर दिया गया है और ग्यारह हजार से अधिक अनौपचारिक केन्द्रों के माध्यम से तीन लाख से अधिक बच्चों को पढ़ाया लिखाया जा रहा है। प्राविधिक शिक्षा के अन्तर्गत लड़कों के लिये चार पोलीटेक्निक सिरोही, पाली, चित्तौड़गढ़ व सवाई माधोपुर में एवं लड़कियों के लिये दो पोलीटेक्निक अजमेर व बीकानेर में शुरू किये है। सीमान्त क्षेत्र विकास योजनान्तर्गत बाड़मेर में शत प्रतिशत केन्द्रीय सहायता से एक पोलीटेक्निक भी शुरू किया गया है।

दस्तकार प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत इस वर्ष लड़कों के लिये छह आई. टी आई. भिवाड़ी, मांडलगढ़, कपासन, नाथद्वारा, सांगवाड़ा व चिड़ावा में तथा लड़कियों के लिये चार आई टी. आई. कोटा, अजमेर, उदयपुर तथा भीलवाड़ा में खोले गये है।

राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर को इंस्टीटयूट ऑफ एडवान्सड स्टडीज के रूप में तथा महेश टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, जोधपुर को कालेज ऑफ टीचर्स ऐजूकेशन के रूप में क्रमोन्नत किया गया है।

12 पेयजल—राज्य के कुल 34,968 आबाद गांवों में से 32,530 गांव पेयजल की दृष्टि से समस्याग्रस्त श्रेणी में आते है। माह दिसम्बर, 1988 तक 29986 गांव पेयजल से लाभान्वित हो गये हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में टेक्नोलाजी मिशन के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य के 3 जिलों का मिनी मिशन के अन्तर्गत चयन कर पेयजल हेतु राशि बाड़मेर में 2 करोड़ 6 लाख, चूरू में 1 करोड़ 60 लाख व नागौर में 1 करोड़ 60 लाख, रुपये की राशि उपलब्ध हुई है।

खारे पानी को मीठे पानी में बदलने के लिये 75 डिसेलीनेशन प्लांट के विरुद्ध दिसम्बर, 1988 तक 10 डिसेलीनेशन प्लांट, 2 चलित डिसेलीनेशन प्लांट लगाये जा चुके है तथा फ्लोराइड दूर करने के लिये 40 डिफ्लोराइड प्लांट के आशय पत्र जारी कर दिये गये है।

13. राहत—इस वर्ष मानसून अपेक्षाकृत सन्तोषजनक रहा है, किन्तु राज्य के अनेक हिस्सों में सितम्बर, 1988 के प्रथम पखवाड़े में वर्षा की कमी से फसल पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। राज्य के 17 जिलों की 59 तहसीलों के 4,506 गांवों में खरीफ की फसल को 50 प्रतिशत से अधिक हानि हुई है। इन क्षेत्रों हेतु सूखा राहत कार्यों के लिये केन्द्र सरकार से 168 करोड़ 41 लाख रूपयों की मांग की गई है।

गंगानगर जिले में जुलाई से अक्टूबर, 1988 के मध्य तीन बार आकस्मिक बाढ़ का सामना करना पड़ा। इस हेतु केन्द्रीय सरकार ने 4 करोड़ 13 लाख रूपये की वित्तीय सहायता दी है। राज्य सरकार ने भी 5 लाख रूपये सहायता कार्यों के लिये उपलब्ध करवाये। प्रभावित क्षेत्रों में राहत शिविर स्थापित किये गये।

ग्रीष्म ऋतु में कई शहरों, कस्बों तथा गांवों में पेयजल की समस्या विकट होने की सम्भावना है। इस हेतु आपात योजनान्तर्गत शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में यथोचित सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिये 54 करोड़ 7 लाख रूपये की राशि केन्द्रीय सरकार से मांगी गई है।

14. सहकारिता—सहकारिता आन्दोलन ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ऋण व अन्य सुविधाएं उपलब्ध करवा कर कृषि उत्पादन बढ़ाने व उन्हें आत्म-निर्भर बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। राज्य में सहकारी उपभोक्ता संघ के होलसेल भण्डारों की संख्या बढ़कर 32 हो गई है। इस वर्ष 50 करोड़ रूपये की कृषि उपज बिक्री एवं 70 करोड़ रूपये के कृषि अनुदान वितरित किये जाने का अनुमान है। विश्व बैंक की सहायता से 36,900 टन क्षमता के 286 गोदाम पूर्ण निर्मित हो चुके हैं।

सहकारिता के आधार पर तिलहनों से तेल बनाने के उद्योगों को लगाने के विशेष प्रयास किये गये हैं। कोटा में विश्व बैंक की सहायता से सोयाबीन परियोजना का कार्य पूरा हो चुका है। जालोर में स्थापित सरसों तेल मिल से उत्पादन प्रारम्भ हो गया है बीकानेर, गंगानगर, झुन्झुनूं, गंगापुर व मेड़ता में लगाये जाने वाले तेल के कारखानों में भी कार्य प्रगति पर है तथा इनमें उत्पादन माह दिसम्बर 1989 तक प्रारम्भ हो जाने की आशा है।

15. 20 सूत्री कार्यक्रम एवं समन्वित ग्रामीण विकास—गरीबी उन्मूलन एवं रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराना मुख्य ध्येय हैं। 20 सूत्री कार्यक्रम-86

के माध्यम से इस ध्येय की प्राप्ति में राज्य सदैव अग्रणी रहा है। विभिन्न योजनाओं के द्वारा वर्ष 1988-89 में गरीबों को रोजगार उपलब्ध कराने की दिशा में विशेष रूप से उल्लेखनीय कार्य किये गये है। आशा है कि वर्ष 1988-89 वर्ष भी राज्य **20 सूत्री कार्यक्रम** के क्रियान्वयन में अग्रणी रहेगा।

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 1988-89 में दो लाख परिवारों को लाभान्वित किया जाना है जिनमें 30 हजार पुराने परिवार सम्मिलित हैं जबकि माह दिसम्बर, 1988 तक लगभग 1 लाख 19 हजार परिवार लाभान्वित किये गये है।

ट्राइसम योजना में वर्ष 1988-89 में 14160 युवक/युवतियों को स्वरोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है जबकि माह दिसम्बर, 1988 तक 8098 युवकों को प्रशिक्षित किया गया तथा 5133 व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराया गया।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1988-89 में 38 करोड़ 42 लाख रूपये के प्रावधान की तुलना में माह दिसम्बर, 1988 तक 28 करोड़ 45 लाख रूपये व्यय कर 1 करोड़ 73 लाख मानव दिवस का रोजगार सृजित किया जा चुका है।

लघु एवं सीमान्त कृषकों के लिये वृहत् कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1988-89 के लिये 1 लाख 65 हजार कृषकों को लाभान्वित किये जाने के लक्ष्य की तुलना में माह नवम्बर, 1988 तक 3 लाख 30 हजार कृषकों को लाभान्वित किया जा चुका है।

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1988-89 में 23 करोड़ 85 लाख रूपये के प्रावधान की तुलना में दिसम्बर, 1988 तक 26 करोड़ 15 लाख रूपये व्यय कर 1 करोड़ 5 लाख मानव दिवस का रोजगार सृजित किया गया।

मरु विकास कार्यक्रम—वर्ष 1988-89 हेतु 38 करोड़ के प्रावधान की तुलना में दिसम्बर, 1988 तक 20 करोड़ 86 लाख रूपये व्यय किये गये।

सूखा संभाव्य क्षेत्र **कार्यक्रम**—वर्ष 1988-89 हेतु 5 करोड़ का प्रावधान था उसमें से दिसम्बर, 88 तक 3 करोड़ 13 लाख रूपये खर्च किये गये।

कन्दरा सुधार योजना के अन्तर्गत वर्ष 1988-89 हेतु प्रस्तावित 5 करोड़ 4 लाख रूपयों की राशि से 208.81 किलोमीटर पेरिफेरल बंडिंग, 4697 हैक्टेयर भूमि में टेबल लैण्ड सुधार तथा 4500 हैक्टेयर क्षेत्र में वृक्षारोपण मार्च, 1989 तक पूर्ण हो जाने की आशा है।

लघु जलोत्थान सिंचाई योजनाओं के माध्यम से लघु एवं सीमान्त कृषकों एवं अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सदस्यों को सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध कराने का कार्य किया जा रहा है। माह दिसम्बर, 1988 के अन्त तक 29 योजनाएँ पूर्ण हो चुकी है तथा 46 योजनाओं पर कार्य चल रहा है।

बीस सूत्री कार्यक्रम के लिये द्विस्तरीय समितियों का गठन—राज्य सरकार ने 8-3-89 को एक आदेश जारी कर प्रत्येक जिला स्तर पर 20 सूत्री कार्यक्रम के आयोजन, क्रियान्वयन एवं समन्वय के लिये द्विस्तरीय समितियों का गठन किया है।

प्रथम स्तरीय समिति कार्यक्रम के नीति, योजना, विभिन्न कार्यक्रमों का विचार कर व्यूह रचना का निर्धारण एवं कार्यक्रम का मूल्यांकन करेगी। इस समिति के अध्यक्ष प्रभारी मन्त्री, सदस्य सचिव जिलाधीश एवं जिला विकास अधिकारी, उपाध्यक्ष (मनोनीत) जिले का एक सांसद, एक तिहाई विधायक, जिला प्रमुख, तीन पंचायत समितियों के प्रधान तथा महिला अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति पिछड़ी जाति व अल्पसंख्यक वर्ग के एक-एक प्रतिनिधि सदस्य होंगे। इनके अलावा नगरीय क्षेत्र के दो प्रतिनिधि, कम से कम सात अन्य जनप्रतिनिधि, जिले में कार्यरत स्वयंसेवी संस्था का प्रतिनिधि, सम्बन्धित विभागों के प्रभारी अधिकारी, नगर पालिका व नगर परिषद के अध्यक्ष एवं प्रशासक, अतिरिक्त जिलाधीश (विकास) एवं परियोजना निदेशक तथा अतिरिक्त उप जिला विकास अधिकारी भी समिति के सदस्य होंगे। इस समिति की बैठक माह में एक बार कम से कम होगी।

द्विस्तरीय समिति के अध्यक्ष जिलाधीश होंगे तथा सदस्य सचिव जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी

होंगे। सम्बन्धित जिलास्तरीय अधिकारी समिति के सदस्य होंगे। यह समिति सम्बन्धित नीति एवं योजना के मासिक क्रियान्वयन, से उत्पन्न समस्याओं के निराकरण एवं मोनिटरिंग के लिये गठित की गई है। समिति की बैठक प्रत्येक माह की 29 व 30 तारीखों को प्रातः व सांय रखी जायेगी। यह समिति 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के क्रियान्वयन की अवधि तक क्रियाशील रहेगी।

राजस्थान का वर्ष 1989-90 का बजट

वर्ष 1989-90 के बजट अनुमानों का संक्षिप्त विवरण

		करोड़ रुपयों में
1.	राजस्व प्राप्तियां	2523 80
2.	राजस्व व्यय	2599.61
3.	राजस्व खाते में घाटा	—75 81
4.	पूंजीगत प्राप्तियां	1402.96
5.	योग (3 तथा 4)	1327.15
6.	पूंजीगत व्यय	1278 35
7.	पूंजी खाते में बचत	+48.80
8.	वर्ष 1988-89 में घाटे के संशोधित अनुमान	148.66
9.	वर्ष 1988-89 का घाटा (पूंजी खाते में बचत घटाने के बाद)	99 86
10.	वर्ष 1988-89 के बकाया का भुगतान	104.00
11.	वर्ष 1989-90 बजट में कुल घाटा	203.86
12.	अपूरित घाटा	203 86

योजना आयोग ने इस बार 795 करोड़ रुपये की योजना का आकार निर्धारित किया है जो वर्ष 1988-89 की मूल योजना से 12 प्रतिशत अधिक है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में दी गई प्राथमिकताओं के अनुरूप ही वार्षिक योजना में विद्युत एवं सिंचाई को उच्च प्राथमिकता दी गई है। कुल प्रावधान का क्रमशः 27.09 प्रतिशत और 20.11 प्रतिशत इन मदों में प्रस्तावित है।

कुल योजना के वित्त पोषण हेतु 313.64 करोड़ रुपये की केन्द्रीय सहायता उपलब्ध होगी, 163.36 करोड़ रुपये बजट के बाहर के संसाधनों से उपलब्ध होंगे, शेष 344.65 करोड़ रुपये राज्य के संसाधनों से उपलब्ध करने होंगे।

वार्षिक योजना का मदवार विवरण निम्न प्रकार है—

वर्ष 1989-90 की वार्षिक योजना (प्रस्तावित)

क्र स	मद	राशि (करोड़ों में)	प्रतिशत
1.	कृषि एवं सम्बद्ध कार्यक्रम	54.41	6 84
2.	ग्रामीण विकास	41.09	5.17
3.	विशेष क्षेत्र कार्यक्रम-मेवात विकास बोर्ड	1.15	0.14
4.	सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण	159.90	20.11
5.	विद्युत	215.40	27.09
6.	उद्योग एव खनिज	39.33	4.95
7.	परिवहन	36.00	4.53
8	प्रौद्योगिकी एवं अनुसंधान	0.78	0.10
9.	सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएं	225.74	28.40
10.	आर्थिक सेवाएं	3.96	0.50
11.	सामान्य सेवाएं	5.22	0.66
12.	नौवें वित्त आयोग के अंतर्गत अनुदान	7.41	0.93
13	प्रशासनिक सुधार	0.30	0.04
14	जिला योजनाएं	4.31	0.54
	योग	795.00	100 00

सातवीं पंचवर्षीय योजना के लिए 1000 करोड़ रुपये के अतिरिक्त संसाधन जुटाने का लक्ष्य रखा गया था। योजना काल के प्रथम 4 वर्षों में किये गये उपायों के फलस्वरूप 1072 करोड़ रुपये के अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध होने का अनुमान है। वर्ष 1989-90 में किये जानेवाले उपायों के फलस्वरूप यह राशि और बढ़ने की संभावना है।

1 राजस्थान में प्रशासन

देश की लोकतांत्रिक प्रणाली की भांति राजस्थान राज्य में भी प्रशासन की बागडोर निर्वाचित सरकार के हाथों में है। राज्यपाल उसका अध्यक्ष है जो मन्त्रि परिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करता है। प्रशासन कार्य को सुचारु रूप से करने हेतु लोकतांत्रिक पद्धति में सरकार के तीन अभिन्न अंग होते हैं और वे हैं—कार्यपालिका, विधान सभा एवं न्यायपालिका।

राजस्थान का निर्माण 1 नवम्बर, 1956 को पूर्ण रूपेण हुआ जबकि अजमेर राज्य का इसमें विलीनीकरण हो गया। वर्तमान में राजस्थान राज्य छः संभागों, 27 जिलों तथा 210 तहसीलों में प्रशासनिक दृष्टि से विभाजित हैं।

रियासतों के विलीनीकरण के पश्चात राज्य में 30 मार्च, 1949 को राज्यपाल के स्थान पर महाराज प्रमुख और राजप्रमुख की नियुक्ति की गई। महाराणा भोपालसिंह को महाराज प्रमुख तथा सवाई मानसिंह को राज प्रमुख सर्वप्रथम बनाया गया। साथ ही कोटा के महाराजा भीमसिंह को उपराजप्रमुख नियुक्त किया गया। 1956 में जब अजमेर का विलीनीकरण राजस्थान में हुआ तब राज्य में 1957 में प्रथम बार राज्यपाल की नियुक्ति हुई और इस पद को सुशोभित किया सबसे पहले राज्यपाल गुरुमुख निहालसिंह जी थे।

राजस्थान में 1957 में विधानसभा के सदस्यों की कुल संख्या 176 थी जो 1967 में बढ़कर 184 और 1977 में 200 हो गई। मार्च, 1985 में हुए विधान सभा के चुनावों में भी यह संख्या 200 ही थी। इस विधान सभा के सदस्यों में से 115 सदस्य कांग्रेस (ई) व 85 सदस्य विभिन्न विपक्षी दलों के एवं निर्दलीय है। राजस्थान में लोकसभा के 25 व राज्यसभा के 10 सदस्य निर्वाचित होते हैं जो केन्द्रीय सरकार में राजस्थान का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कार्यपालिका—

कार्यपालिका का गठन राज्यपाल व मन्त्रिपरिषद् से होता है। राज्यपाल प्रदेश का शासक होता है जो मन्त्रिपरिषद् की सलाह से कार्य करता है। मन्त्रिपरिषद् का गठन जनता द्वारा निर्वाचित विधायकों से होता है जो विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

राज्यपाल संवैधानिक प्रदत्त शक्तियों के अन्तर्गत मन्त्रिमण्डल का गठन विधान सभा में बहुमत रखने वाले दल से करता है। मन्त्रिपरिषद् उसे प्रत्येक कार्य के लिये सलाह देती है तथा सरकार द्वारा की जाने वाले प्रत्येक गतिविधि से उसे परिचित करांती रहती है। राज्यपाल इन गतिविधियों से सम्बन्धित रिपोर्ट समय-समय पर राष्ट्रपति को प्रेषित करता रहता है। राज्यपाल अपने में निहित अधिकारों के अंतर्गत विधानसभा की बैठक आमंत्रित करता है, उसे स्थगित या भंग कर सकता है। चुनाव सम्पन्न होने पर निर्वाचित सदस्यों में से बहुमत दल के किसी एक सदस्य को बुलाकर शपथ दिलाकर कार्यवाहक अध्यक्ष नियुक्त करता है जो पहले सत्र के प्रथम दिन शेष सदस्यों को शपथ ग्रहण कराता है। विधानसभा में पारित विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के पश्चात ही कानून का रूप लेते हैं।

राज्यपाल राज्य के सभी छः विश्वविद्यालयों का भी कुलाधिपति होता है। विश्वविद्यालयों के उप-कुलपतियों की नियुक्ति भी राज्यपाल द्वारा की जाती है।

राज्यपाल अपने विशेषाधिकारों का उपयोग कर उच्च न्यायालय द्वारा दण्डित अपराधियों की सजा को स्थगित या कम भी कर सकता है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में उसकी सलाह विशेष महत्व रखती हैं जो केन्द्र सरकार की सलाह पर राष्ट्रपति करता है। वर्तमान में श्री सुखदेव प्रसाद दिनांक 1 फरवरी 1988 से राज्यपाल के पद पर सुशोभित हैं।

विधान सभा—राज्य की विधानसभा में 200 सदस्य वर्तमान में हैं। ये सभी सदस्य अपने में से एक विधान सभा की कार्यवाही का सफल संचालन हेतु एक अध्यक्ष चुनते हैं। अध्यक्ष को सदन की कार्यवाही चलाने में सहयोग देने के लिए एक उपाध्यक्ष एवं सरकारी मुख्य सचेतक होता है। अध्यक्ष का स्तर मन्त्री के समरूप तथा

उपाध्यक्ष एवं मुख्य सचेतक के स्तर राज्य मन्त्री के समरूप होने पर उन्हें उसी प्रकार की सुविधाएं मिलती हैं। विधानसभा अध्यक्ष प्रतिवर्ष विधायकों में से चार सभापति भी मनोनीत करता है जो अध्यक्ष व उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में सदन की कार्यवाही का संचालन करते हैं।

विधानसभा द्वारा पारित बजट के अनुरूप ही सरकार को व्यय करना होता है। विधानसभा का नियन्त्रण भी मन्त्रिपरिषद पर होता है क्योंकि पक्ष-विपक्ष के सदस्य सदन की बैठकों में सरकार द्वारा किये गये गलत कार्यों पर आलोचना एवं टीका टिप्पणी करते हैं और साथ ही रचनात्मक सुझाव भी प्रस्तुत करते हैं। महत्वपूर्ण एवं जनतापोयोगी विषयों पर विधान सभा कानून भी पास करती है। राजस्थान विधान सभा के अब तक रहे अध्यक्षों के नाम इस प्रकार हैं—

1. श्री नरोत्तम लाल जोशी।
2. श्री रामनिवास मिर्धा।
3. श्री निरंजननाथ आचार्य।
4. श्री रामकिशोर व्यास।
5. श्री महारावल लक्ष्मण सिंह।
6. श्री गोपाल सिंह आहोर।
7. श्री पूनमचन्द विश्नोई।
8. श्री हीरालाल देवपुरा।
9. श्री गिरीज प्रसाद तिवाड़ी।

न्यायपालिका—यह प्रशासन का महत्वपूर्ण अंग है जिसमें मुख्य न्यायाधीश व अन्य न्यायाधीश होते हैं। उच्च न्यायपालिका का मुख्यालय जोधपुर में है लेकिन इसकी एक खण्डपीठ, जयपुर में 1 जनवरी, 1977 से कार्यरत है। उच्च न्यायालय ही राज्य की सम्पूर्ण न्याय व्यवस्था का संचालन करता है।

उच्च न्यायालय के अधीनस्थ तीन प्रकार के न्यायालय कार्यरत हैं— (i) दीवानी (ii) फौजदारी और (iii) राजस्व न्यायालय। इनके अतिरिक्त रेल्वे, आबकारी व न्यायपालिका के मामलों का फैसला करने के लिए भी न्यायिक दण्डनायक होते हैं जो जिला एवं सत्र न्यायाधीश के नियन्त्रण में रह कर कार्य सम्पन्न करते हैं।

राजस्थान उच्च न्यायालय

जिला एवं सत्र न्यायालय		राजस्व मण्डल
दीवानी न्यायालय	फौजदारी न्यायालय	राजस्व अपील अधिकारी
सिविल न्यायालय	प्रथम श्रेणी दण्डनायक	जिलाधीश न्यायालय
लघुवाद न्यायालय	द्वितीय श्रेणी दण्डनायक	उपजिलाधीश न्यायालय
मुन्सिफ न्यायालय	तृतीय श्रेणी दण्डनायक	तहसीलदार न्यायालय
न्याय पंचायत	न्याय पंचायत	नायब तहसीलदार न्यायालय

राजस्थान का प्रशासनिक ढांचा

मुख्यमन्त्री — विविध विभाग (इनकी संख्या का निर्धारण मुख्यमन्त्री करता है)

विभाग का अध्यक्ष (राजनीतिक पदाधिकारी मन्त्री)
→ विभाग का सचिव
→ अधीनस्थ संभाग व अन्य प्रशासनिक इकाइयां
(राज्य में एक मुख्य सचिव भी होता है)

प्रशासनिक इकाइयां

शासन सचिवालय—राज्य में प्रशासनिक कार्यों को सफल संचालन हेतु प्रशासन ढांचे में शीर्ष पर शासन सचिवालय है। जयपुर राजधानी में स्थित यह सचिवालय राज्य सरकार की नीतियों एवं निर्णयों के क्रियान्वयन की मुख्य इकाई है तथा सचिवालय का मुख्य अधिकारी—मुख्य सचिव प्रशासन में समन्वय एवं मार्गदर्शक का कार्य करता है। राज्य के प्रत्येक मुख्य विभाग का एक-एक

अलग सचिव होता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठतम अधिकारी होता है। शासन सचिवों के आधीन विशिष्ट सचिव, उप सचिव, सहायक सचिव एवं अनुभाग अधिकारी होते हैं जो सचिव को उसके कार्य में सहायता करते है।

राजस्थान राज्य के प्रशासनिक दृष्टि से सफल संचालन हेतु सम्भागों, जिलों, उपखण्डों तथा तहसीलों में विभक्त किया हुआ है।

सम्भाग—राज्य में छः प्रशासनिक सम्भाग है जो अपने अपने मुख्यालयों के नाम से जाने जाते हैं। प्रत्येक सम्भाग में जो जिले सम्मिलित किये गए हैं, वे निम्न प्रकार हैं।

(i) **जयपुर सम्भाग**—इसमें जयपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, सीकर तथा झुन्झुनू जिले सम्मिलित हैं। इसका मुख्यालय जयपुर में है।

(ii) **कोटा सम्भाग**—कोटा, झालावाड़, बून्दी तथा सवाईमाधोपुर आदि जिले इसके अन्तर्गत हैं और कोटा शहर इसका मुख्यालय है।

(iii) **अजमेर सम्भाग**—इसके अन्तर्गत अजमेर, भीलवाड़ा, टोंक व नागौर जिले सम्मिलित हैं। इसका मुख्यालय अजमेर है।

(iv) **बीकानेर सम्भाग**—बीकानेर, श्रीगंगानगर तथा चूरू जिले इसमें शामिल है। बीकानेर इसका मुख्यालय है।

(v) **जोधपुर सम्भाग**-इस सम्भाग के अतर्गत जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, पाली, नागौर, जालौर तथा सिरोही जिले सम्मिलित हैं। जोधपुर मुख्यालय केन्द्र है।

(vi) **उदयपुर सम्भाग**—उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा चित्तौड़गढ़ जिले इसमें आते हैं। उदयपुर शहर में इसका मुख्यालय है।

इस सम्भाग प्रणाली का आरम्भ 17 जनवरी 1987 से पुन: किया गया है क्योंकि यह प्रणाली सन् 1962 से पूर्व भी प्रचलित थी। पुनः आरम्भ करने के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि विकास योजनाओं तथा अकाल राहत कार्यक्रमों को गति प्रदान की जा सके। कानून व व्यवस्था की स्थिति में समुचित सुधार लाया जाये तथा प्रशासन का विकेन्द्रीयकरण किया जा सके। प्रत्येक सम्भाग के कार्य संचालन हेतु एक भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ एवं अनुभवी अधिकारी को आयुक्त नियुक्त किया जाता है।

जिला प्रशासन—राजस्थान में वर्तमान में 27 जिले हैं। प्रत्येक जिले के प्रशासन हेतु भारतीय प्रशासनिक सेवा के स्तर के अधिकारी को जिलाधीश प्रमुख अधिकारी होता है। जिलाधीश पर राजस्व सम्बन्धी दायित्वों के साथ ही साथ कानून व्यवस्था का भी उत्तरदायित्व होता है। यह जिला विकास अधिकारी भी होता है, इसलिए सम्पूर्ण जिले के सर्वांगीण विकास का दायित्व भी इसे ही निर्वाह करना होता है।

उपखण्ड प्रशासन—राज्य में 82 उपखण्ड हैं जिनके प्रशासन हेतु उपखण्ड अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। यह अधिकारी जिलाधीश के प्रति उत्तरदायित्व होते हैं।

तहसील प्रशासन—प्रशासनिक दृष्टि से तहसील राज्य में सबसे छोटी परन्तु महत्वपूर्ण इकाई है। वर्तमान में राज्य में 210 तहसीलें हैं। तहसील का प्रमुख अधिकारी तहसीलदार होता है जिसके आधीन नायब तहसीलदार, गिरदावर व पटवारी होते हैं जो तहसीलदार को राजस्व एवं भू-सुधारों आदि कार्यों में सहयोग देते हैं।

नगरीय प्रशासन—राजस्थान राज्य में 92 नगर परिषद् व नगरपालिकाएँ हैं। इनके प्रशासन हेतु सन् 1959 में 'राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959' में पारित किया गया था। इस अधिनियम के अनुरूप ही नगरपरिषद् व नगरपालिकाओं की व्यवस्था एवं प्रशासन को चलाया जाता है। इन लोकतांत्रिक संस्थाओं का कार्यकाल 3 वर्ष का होता है।

पंचायतीराज प्रशासन—2 अक्टूबर, 1959 से राज्य में प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विकेन्द्रीकरण पंचायत राज संस्थाओं के गठन के साथ किया गया। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, विकास खण्ड स्तर पर पंचायत समितियां एवं जिला स्तर पर जिला परिषद् आदि का गठन किया

गया । इन का विस्तृत विवरण विकेन्द्रीयकरण: पंचायती राज नामक अध्याय में किया गया है ।

पंचायती राज संस्थाओं को सुदृण एवं सशक्त करने हेतु राज्य सरकार ने महत्वपूर्ण निर्णय लेकर उन्हें अधिक अधिकार एवं दायित्व सौंपे है जिनमें उच्च प्राथमिक शिक्षा, सामाजिक वानिकी, कृषि वानिकी तथा विकेन्द्रित पौधशाला कार्यक्रम प्रमुख हैं । प्रत्येक ग्राम पंचायत को एक सचिव उपलब्ध कराया जा रहा हैं । प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के उप-केन्द्र तथा देहातों में निर्माण कार्यों का संचालन अब पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से होगा । इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों के आयुर्वेदिक एवं यूनानी औषधालयों की प्रबन्ध व्यवस्था भी जिला परिषदों को देने का निर्णय लिया गया है । इससे चिकित्सा व्यवस्था में ग्रामीण जनता का निकट का सहयोग मिल सकेगा राज्य के 6 जिलों में हैंडपम्पों के रख-रखाव का कार्य भी पंचायती राज संस्थाओं को सौंपा गया है ।

राजस्व प्रशासन--राज्य सरकार राजस्व प्रशासन के आधुनिकीकरण एवं सुदृढ़ीकरण के प्रति कटिबद्ध है तथा इस ओर यथासम्भव प्रयत्न कर रही है । जनता को न्याय सुलभ कराने के उद्देश्य से राजस्व मण्डल में सदस्यों की संख्या में बढ़ोतरी की गई है तथा 3 नये राजस्व अपील अधिकारियों के कार्यालय व 14 नये सहायक जिलाधीश एवं कार्यपालक दण्डनायकों के न्यायालय स्थापित किये गये हैं । राजस्व कार्यालयों के भवनों के सुधार की दिशा में आठवें वित्त आयोग के सहयोग से चार उपखण्ड अधिकारियों के कार्यालय तथा 13 तहसील कार्यालयों के नये भवन निर्माण कराये जा रहे हैं । पटवारी को अपने हल्कों में रिहायशी सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से करीब 4 हजार पटवार घरों का निर्माण राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम के अन्तर्गत पूर्ण कराने का प्रयास किये जा रहे है ।

卐

प्रारम्भ में राज्य में खेलों से सम्बन्धित विषय शिक्षा विभाग के अन्तर्गत रखा गया लेकिन खेलों के बहुमुखी विकास तथा खिलाड़ियों को अधिकाधिक सुविधाएं उपलब्ध करवाये जाने की दृष्टि से खेल विभाग को एक स्वतन्त्र विभाग वर्ष 1983-84 में बना दिया गया तथा स्वतन्त्र रूप से इसके लिए वित्तीय आवंटन किया जाने लगा। खेल विभाग चूंकि राज्य के विभिन्न जिलों में स्टेडियम निर्माण, खेल मैदानों का निर्माण एवं विकास तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराता है इसलिए यह भारत सरकार की योजना के अन्तर्गत भी आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सफल रहा है। वर्ष 1987-88 में 42.48 लाख रुपये की राशि भारत सरकार के माध्यम से राजस्थान के लिये स्वीकृत की गई।

राजस्थान खेल परिषद—

राज्य सरकार द्वारा राज्य में खेलकूद गतिविधियों को रचनात्मक रूप से विकसित करने के लिए राजस्थान खेल परिषद की स्थापना सन् 1957-58 में की गई।

इस खेल परिषद का मुख्य उद्देश्य यह है कि यह खेलकूद संघों एवं खिलाड़ियों को अपने सीमित साधनों से हर क्षेत्र में सम्भव सहायता उपलब्ध करवायें, प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन निश्चित करें, राष्ट्रीय प्रतियोगिता का आयोजन करवायें, राष्ट्रीय प्रतियोगिता में राज्य की टीम को भेजने के लिए अनुदान उपलब्ध करवायें, उदीयमान एवं प्रतिभाशाली खिलाड़ियों को हर सम्भव सहायता देकर उन्हें प्रोत्साहित करें।

दिनांक 21-9-85 को राज्य सरकार द्वारा परिषद का विधिवत गठन किया गया जिसमें श्री. एन. एल. कछारा, अध्यक्ष, मेजर श्रीआपजी कल्याणसिंह, उपाध्यक्ष श्रीमति रीना मुकर्जी, कोषाध्यक्ष तथा 12 सदस्य एवं 6 पदेन सदस्य बनाये गये। स्थाई समिति में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष के अतिरिक्त खेल सचिव राजस्थान एवं वित्त सचिव, राजस्थान को सदस्य के रूप में सम्मिलित किया गया है।

वर्तमान में राज्य में खेल-कूद की प्रगति का मुख्य कारण आधुनिक तकनीकी प्रशिक्षण माना गया है। अतः प्रशिक्षण की सुविधा हेतु राज्य में परिषद के 6 क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र अजमेर, जोधपुर, कोटा, उदयपुर, बीकानेर व श्रीगंगानगर में कार्यरत थे लेकिन यह विस्तार एवं आवश्यकता की दृष्टि से कम थे। वर्ष 1985-86 में बांसवाड़ा तथा 1986-87 में अलवर एवं सिरोही में नये केन्द्रों की स्थापना की गई। वर्ष 1987-88 से जयपुर में भी यह सुविधा उपलब्ध करवा दी गई है। अब भीलवाड़ा एवं डूंगरपुर में प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये जाने की योजना है। साथ ही धौलपुर में कुश्ती, सीकर में बास्केटबाल का केन्द्र भी प्रस्तावित है।

केन्द्रीय प्रशिक्षण शिविर आबू-पर्वत—राजस्थान राज्य क्रीड़ा परिषद् ने सन् 1959 में सर्वप्रथम खिलाड़ियों के प्रशिक्षण हेतु आबू-पर्वत पर केन्द्रीय प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया जिसे सराहा गया। फलस्वरूप यह कार्यक्रम परिषद का अभिन्न अंग सा हो गया है एवं यहाँ विभिन्न खेलों का प्रशिक्षण निरंतर दिया जा रहा है।

राज्य स्तरीय खेल संगठन—अखिल भारतीय स्तर पर प्रत्येक खेल को विकसित करने हेतु भिन्न भिन्न संगठन है जो प्रतियोगिताएँ आयोजित करते हैं। राजस्थान खेल परिषद् की स्थापना के पश्चात इसने भी राज्य में राज्य स्तरीय खेल संगठनों के निर्माण को प्रोत्साहित किया है। सर्वप्रथम राज्य में 14 खेल संगठनों का निर्माण करते हुए इन्हें भारतीय स्तर के संघों से मान्यता दिलवाई। वर्तमान में राजस्थान राज्य क्रीड़ा परिषद से लगभग 30 राज्य स्तरीय खेल संगठन जुड़े हुए हैं।

स्टेडियम—स्टेडियम खेलों का जीवन आधार है। राजस्थान राज्य क्रीड़ा परिषद् राज्य के प्रायः बड़े शहरों

में स्टेडियम निर्माण के लिये प्रयत्नशील है लेकिन धनाभाव एक समस्या है। जयपुर का सवाईमानसिंह स्टेडियम का निर्माण सबसे महत्वपूर्ण कदम है। इस हेतु जयपुर के भूतपूर्व महाराजा स्व. सवाई मानसिंह जी ने लगभग 90 एकड़ भूमि प्रदान की है। इस स्टेडियम पर साउथ स्टैण्ड पवेलियन का निर्माण पूर्ण हो गया है। टेस्ट क्रिकेट के विश्व में जयपुर का नाम नक्शे पर आ चुका है। यहां सिंडर ट्रेक का निर्माण भी किया जाना प्रस्तावित है ताकि अच्छे एथलीट न केवल राज्य को बल्कि देश को मिल सकें।

जयपुर स्टेडियम के अतिरिक्त जोधपुर, अजमेर, (स्पोर्टस काम्पलेक्स), हनुमानगढ़, चित्तौड़, बांसवाड़ा, सवाईमाधोपुर, धौलपुर, भीलवाड़ा (स्पोर्टस काम्पलेक्स) बीकानेर, पाली, झुन्झुनू एवं भरतपुर में स्टेडियम निर्माणाधीन है।

स्टेडियम निर्माण के अन्य स्वीकृत स्थानों में पाली, नागौर, बून्दी, फलौदी, (जोधपुर) टोंक, गंगानगर, खेरवाड़ा (उदयपुर) खेल मैदान विकास, सीकर, बाड़मेर, (इन्डोर स्टेडियम) तिलवासनी, (तहसील बिलाड़ा, जिला जोधपुर), कांकरोली एवं अलवर हैं।

खेल छात्रावास—29 जनवरी, 1987 से सवाई मान सिंह स्टेडियम भवन में छात्रावास प्रारम्भ हो गया है। उदीयमान खिलाड़ियों को संस्थान द्वारा सभी सुविधाएं उपलब्ध होंगी। अभी 26 खिलाड़ी जो एथलेटिक्स, जिम्नास्टिक व बालीवाल के हैं, इस सुविधा का लाभ उठा रहे है। भविष्य में 150 खिलाड़ी इसका लाभ उठा सकेंगे।

खेल वृत्ति एवं खुराक भत्ता—परिषद द्वारा होनहार तथा राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के एथलीट व खिलाड़ियों को खेल वृत्ति व खुराक भत्ता प्रदान किया जाता है। मुख्यमंत्री अवार्ड योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर कीर्तिमान बनाने वाले खिलाड़ी को क्रमशः 1000 रुपये व 500 रुपये की राशि से पुरस्कृत किया जाता है।

ग्रामीण खेलकूद योजना—भारत गांवों का देश है, अतः गांवों के खिलाड़ियों को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिये ताकि वे अपने खेलों में रूचि लेकर कीर्तिमान स्थापित करे। राजस्थान क्रीड़ा परिषद ने देश में सर्वप्रथम जयपुर के निकट **गोनेर** में ग्रामीण क्षेत्रों में खेलकूद को प्रोत्साहित करने के लिये 1965 में इस योजना का सूत्रपात किया। वर्तमान में राज्य की 189 पंचायत समितियों में 238 ग्रामीण खेलकूद केन्द्र कार्यरत है। शेष 47 पंचायत समितियों में इनकी स्थापना किये जाने की योजना है।

आदिवासी खेल योजना—जनजाति बाहुल्य क्षेत्रों में लगभग तीस आदिवासी खेल केन्द्र स्थापित किये गये हैं। वर्ष 1983 से खेरवाड़ा (उदयपुर) व बांसवाड़ा से केन्द्रीय आदिवासी प्रशिक्षण शिविर का आयोजन आरम्भ किया गया है। बांसवाड़ा में फुटबाल, कबड्डी, बास्केटबाल व क्रिकेट में तथा खेरवाड़ा में एथेलेटिक्स बालीबाल व तीरंदाजी में प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

महाराणा प्रताप पुरस्कार—राज्य के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों को प्रतिवर्ष महाराणा प्रताप पुरस्कार से विभूषित किया जाता है। इस पुरस्कार के अन्तर्गत महाराणा प्रताप की कांस्य प्रतिमा तथा प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया जाता है। इस पुरस्कार का प्रारम्भ 1983 से किया गया तथा वर्ष 1988 तक 25 खिलाड़ियों को इससे विभूषित किया जा चुका है।

नेहरू युवक केन्द्र एवं खेलकूद—ऐसे युवक जो किसी विद्यालय अथवा महाविद्यालय में अध्ययन नहीं कर रहे है उनके लिये राष्ट्रीय युवक सलाहकार केन्द्र ने एक राष्ट्रीय कार्यालय प्रारम्भ करने की योजना दिसम्बर, 1970 में प्रस्तुत की। इस योजना को 14 नवम्बर, 1972 को नेहरू युवक केन्द्र के नाम से प्रारम्भ किया गया। इस केन्द्र का प्रमुख कार्य खेलकूद है। जिला स्तरीय ग्रामीण खेलकूद प्रतियोगिताओं का आयोजन इन्हीं केन्द्रों के सहयोग से किया जाता है। वर्तमान में राजस्थान में 19 नेहरू युवक केन्द्र है। प्रत्येक जिला मुख्यालय पर केन्द्र स्थापित किये जाने की योजना है।

खेल प्राधिकरण की योजना के अन्तर्गत स्कूल गोद लेना—वर्ष 1985-86 में खेल प्राधिकरण की योजना के अन्तर्गत राज्य के तीन शिक्षण संस्थानों को गोद लिया

जिसके नाम इस प्रकार है -(i) बनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली, (ii) भोपाल नोबल स्कूल, उदयपुर, (iii) गुरूनानक खालसा उच्च माध्यमिक स्कूल, गंगानगर।

विभिन्न योजनाओं के साथ ही खिलाड़ियों को आर्थिक सहायता पहुंचाने के उद्देश्य से कई प्रकार के नकद लाभ व पुरस्कार खेल परिषद देती है जैसे कैश-आवार्ड, खुराक भत्ता, मुख्यमन्त्री आवार्ड, खिलाडी कल्याण कोष, वृद्ध खिलाड़ियों को आर्थिक सहायता आदि।

राजस्थान के अर्जुन पुरस्कार प्राप्त खिलाड़ी—यह खिलाडियों के लिये देश का सर्वोच्च पुरस्कार है। राजस्थान के 32 खिलाड़ी इस पुरस्कार से अलंकृत हो चुके है। अर्जुन पुरस्कार प्राप्त खिलाड़ियों को खेल परिषद की 2000 रुपये की राशि नकद पुरस्कार से सम्मानित करती है।

वशिष्ठ अवार्ड—वर्ष 1987 से यह पुरस्कार प्रारम्भ किया गया। यह पुरस्कार दो प्रशिक्षकों को उत्कृष्ट प्रशिक्षण के लिए "द्रोणाचार्य अवार्ड" की तरह 1985-86 से देना प्रारम्भ किया। इसमें पाँच हजार रुपये नकद, एक ब्लेजर, पेन्ट, टाई क्रेस्ट तथा एक प्रशस्ति पत्र दिये जाते हैं।

वर्ष 1985 तक की उपलब्धियों के लिए साइकिलिंग के वरिष्ठ प्रशिक्षक श्री रामदेव शर्मा को तथा एथलेटिक्स के श्री पोकरमल को 'वशिष्ठ अवार्ड' से अलंकृत किया गया है।

प्रशिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत वर्ष 1986-87 में परिषद् के 52 व 25 अल्पकालिक प्रशिक्षक एवं राष्ट्रीय क्रीड़ा संस्थान पटियाला के 47 प्रशिक्षक अर्थात कुल 124 कार्यरत थे।

जिला क्रीड़ा परिषद्—सन् 1957-58 में राजस्थान खेल परिषद् की स्थापना के साथ ही राजस्थान में खेल संगठनों के गठन की प्रक्रिया में गति आई। इसके फलस्वरूप जिला स्तर पर अनेक प्रतियोगिताओं का आयोजन होने लगा। तब परिषद को जिला स्तर पर जिला क्रीड़ा परिषद के गठन की आवश्यकता महसूस हुई ताकि जिले की खेल गतिविधियों का सुचारू रूप से संचालन किया जा सके। साथ ही विभिन्न खेल संघों को एक मंच पर लाकर उनमें समन्वय स्थापित किया जा सके। जिलास्तर पर खेल का आयोजन करने हेतु राजस्थान खेल परिषद अधिकतम 500/- रुपये का अनुदान प्रतिवर्ष जिला क्रीड़ा परिषद को उपलब्ध करवाता है।

वर्तमान में जिला क्रीड़ा परिषद् का गठन निम्न प्रकार किया जाता है—

संरक्षक— जिला प्रमुख (पदेन)
अध्यक्ष— जिलाधीश (पदेन)
उपाध्यक्ष—2 जिला पुलिस अधीक्षक (पदेन)
सचिव— अध्यक्ष, राज. खेल परिषद् द्वारा मनोनीत
सदस्य—3 जिला शिक्षा अधिकारी (पदेन)
शासकीय दो सदस्य शारीरिक शिक्षा के ज्ञाता
सदस्य—7 दो सदस्य--जिला स्तरीय खेल संघों में से चयन कर, एक सदस्य--सचिव जिला ओलम्पिक संघ (पदेन), दो सदस्य--अध्यक्ष (जिलाधीश) द्वारा पदेन, दो सदस्य--जिला प्रमुख द्वारा मनोनीत केवल प्रधान
महिला सदस्य—1 अध्यक्ष (जिलाधीश) द्वारा मनोनीत।

छात्र-छात्राओं के लिए खेल कूद—

विश्वविद्यालय—राजस्थान की सात टीमें विश्वविद्यालय खेलों में भाग लेती है। ये हैं—

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर; सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर; अजमेर विश्वविद्यालय, अजमेर राज. कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर; सीरी, पिलानी तथा वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली। सभी विश्वविद्यालयों में पृथक से खेल बोर्ड है जो खेलकूद गतिविधियों का संचालन करते हैं।

अन्तः महाविद्यालय की प्रतियोगिताओं से प्रदर्शन के आधार पर श्रेष्ठ खिलाड़ियों का चयन विश्वविद्यालय की

टीम के लिए किया जाता है जो कि अन्त: विश्वविद्यालय प्रतियोगिताओं में भाग लेती है।

राजस्थान की विश्वविद्यालयीय टीमों के खिलाड़ियों ने भारतीय व क्षेत्रीय अन्त: विश्वविद्यालय प्रतियोगिताओं में व्यक्तिगत व दलगत रूप में पदक जीते हैं विशेषकर बास्केटबॉल तथा वालीबाल की टीमों ने। राजस्थान के छात्रों ने भारतीय विश्वविद्यालय दल का भी प्रतिनिधित्व किया है। अत: श्रेष्ठ खिलाड़ियों को खेलवृत्तियां स्वीकृत की जाती हैं तथा उन्हें खेल में उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसलिए राजस्थान के विश्वविद्यालय प्रशिक्षण के आयोजन करते रहते हैं। ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण योजनाएं भी प्रारम्भ की गई हैं जिनमें प्रशिक्षकों व शारीरिक शिक्षा निदेशकों की सेवाएं भी उपलब्ध हैं जो खेलकूद का अभ्यास करवाते हैं।

स्कूल—स्कूलों में खेल-कूद प्रशिक्षण की योजना काफी अच्छी है। प्रशिक्षण योजनाओं हेतु एक निरीक्षक नियुक्त है। काफी स्कूलों में वर्ष भर प्रशिक्षण केन्द्र चलते रहते हैं। बीकानेर में स्पोर्ट्स काम्पलेक्स व स्पोर्ट्स स्कूल संचालित हैं जो खेलकूद के विकास में किये जा रहे प्रयासों को प्रस्तुत करते हैं।

जिला स्तर पर खेल-कूद के नियन्त्रण व निर्देशन हेतु उपजिला शिक्षा अधिकारी होता है जो खेलकूद के आयोजन प्रशिक्षण की योजनाओं की क्रियान्विती हेतु प्रयासरत रहता है।

प्रत्येक स्कूल में शारीरिक शिक्षक नियुक्त होता है। जो छात्र-छात्राओं को खेलकूद सम्बन्धी सुविधाओं को उपलब्ध करवाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राजस्थान स्कूली खेलों में काफी अग्रणी रहता है।

राजस्थान के छात्र-छात्राओं ने विभिन्न खेलों में भारतीय स्कूली टीमों का भी प्रतिनिधित्व किया है व पदक भी जीत कर राज्य के नाम को रोशन किया है।

श्रेष्ठ व उदीयमान स्कूली स्तर के खिलाड़ियों हेतु ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये जाते हैं। श्रेष्ठ प्रदर्शन के आधार पर खिलाड़ियों को शिक्षा-दीक्षा व प्रशिक्षण की भी निशुल्क सुविधा प्रदान की जाती है।

राजस्थान खेल परिषद् से मान्यता प्राप्त खेलकूद संघ

1. राजस्थान एथलेटिक्स संघ, अजमेर
2. राजस्थान बैडमिन्टन संघ, अजमेर
3. राजस्थान टेबिल-टेनिस संघ, अजमेर
4. राजस्थान कुश्ती संघ (ओ. प.), अजमेर
5. राजस्थान साइक्लिंग संघ, बीकानेर
6. राजस्थान शतरंज संघ, बीकानेर
7. राजस्थान बास्केट बाल संघ, जयपुर
8. राजस्थान महिला क्रिकेट संघ, जयपुर
9. राजस्थान क्रिकेट संघ, जयपुर
10. राजस्थान साइकिल पोलो संघ, जयपुर
11. राजस्थान जिमनास्टिक संघ, जयपुर
12. राजस्थान महिला हाकी संघ, जयपुर
13. राजस्थान कबड्डी संघ, जयपुर
14. राजस्थान खो-खो संघ, जयपुर
15. राजस्थान टेनिस संघ, जयपुर
16. राजस्थान तैराकी संघ, जयपुर
17. राजस्थान वालीबाल संघ, जयपुर
18. राजस्थान कुश्ती संघ (भा. प.), जयपुर
19. राजस्थान भारोत्तोलन संघ, जयपुर
20. राजस्थान पोलो क्लब, जयपुर
21. राजस्थान साफ्टबाल संघ, जयपुर
22. राजस्थान ओलम्पिक संघ, जयपुर
23. राजस्थान हैण्डबाल संघ, जयपुर
24. राजस्थान पॉवर लिफ्टिंग संघ, जयपुर
25. राजस्थान शरीर सौष्ठव संघ, जोधपुर
26. राजस्थान महिला फुटबाल संघ, कोटा
27. राजस्थान हाकी संघ, श्रीगंगानगर।

राजस्थान के अर्जुन पुरस्कार विजेता

नाम	खेल	वर्ष
1. डा. कर्णीसिंह	निशानेबाजी	1961
2. श्री प्रेमसिंह	पोलो	1961
3. श्री सलीम दुर्रानी	क्रिकेट	1961
4. श्री किशनसिंह	पोलो	1963
5. राव राजा हनूतसिंह	पोलो	1964
6. श्री विजय मंजरेकर	क्रिकेट	1965
7. सुश्री रीमा दत्त	तैराकी	1966
8. श्रीमति सुनीता पुरी	महिला हाकी	1966
9. श्री खुशीराम	बास्केटबाल	1967
10. श्रीमति राजश्री कुमारी	निशानेबाजी	1968
11. श्रीमति भुवनेश्वरी कुमारी	निशानेबाजी	1969
12. महाराव भीमसिंह	निशानेबाजी	1971
13. श्री भंवरसिंह	तैराकी	1971
14. श्री श्रीराम सिंह	एथलेटिक्स	1973
15. श्री सुरेन्द्र कटारिया	बास्केटबाल	1973
16. श्री खान मोहम्मद खान	घुड़सवारी	1973
17. श्री मगनसिंह	फुटबाल	1973
18. श्रीमति मंजरी भार्गव	तैराकी	1974
19. श्री श्यामसुन्दर राव	वालीबाल	1974
20. श्री हनुमानसिंह	बास्केटबाल	1975
21. श्री सुरेश मिश्रा	वालीबाल	1979
22. श्री गोपाल सैनी	एथलेटिक्स	1980
23. सुश्री वर्षा सोनी	महिला हाकी	1981
24. श्री अजमेर सिंह	बास्केटबाल	1982
25. श्री रघुवीर सिंह	घुड़सवारी	1982
26. श्री लक्ष्मण सिंह	गोल्फ	1982
27. सुश्री भुवनेश्वरी कुमारी	स्क्वेश	1982
28. श्री आर. के. पुरोहित	वालीवाल	1983
29. श्री राजकुमार	एथलेटिक्स	1984
30. श्री राधेश्याम	बास्केटबाल	1984
31. श्री जी. एम. खान	घुड़सवारी	1984
32. श्री मेहरचन्द	भारोत्तोलन	1985

राजस्थान के महाराणा प्रताप पुरस्कार विजेता

नाम	खेल	वर्ष
1. श्री गोपाल सैनी	एथलेटिक्स	1982-83
2. श्रीमति हमीदा बानू	एथलेटिक्स	1982-83
3. श्री राजकुमार अहलावत	एथलेटिक्स	1982-83
4. केप्टन जी. एम. खान	घुड़सवारी	1982-83
5. दफेदार प्रहलाद सिंह	घुड़सवारी	1982-83
6. रिसालदार विशालसिंह	घुड़सवारी	1982-83
7. दफेदार रघुवीर सिंह	घुड़सवारी	1982-83
8. श्री लक्ष्मणसिंह	गोल्फ	1982-83
9. सुश्री गंगोत्री भण्डारी	महिला हाकी	1982-83
10. सुश्री वर्षा सोनी	महिला हाकी	1982-83
11. डा. कर्णीसिंह	निशानेबाजी	1983-84
12. श्री राजेन्द्र प्रसाद शर्मा	एथलेटिक्स	1983-84
13. श्री हनुमानसिंह	बास्केटबाल	1983-84
14. श्री पार्थसारथी शर्मा	क्रिकेट	1983-84
15. श्री गिरिराज रंगा	साइकिलिंग	1983-84
16. श्री मोहम्मद आरिफ खान	साइकिल पोलो	1983-84
17. श्री आर.के. पुरोहित	वालीवाल	1983-84
18. सुश्री रमा पाण्डे	वालीवाल	1983-84
19. श्री रामफल	कुश्ती	1983-84
20. श्री अजमेर सिंह	बास्केटबाल	1983-84
21. श्री गंगाधर	साइकिलिंग	1984-85
22. सुश्री चन्द्रिका गिताई	साइकिलिंग	1984-85
23. श्री अशोकदास	साइकिल पोलो	1984-85
24. श्री प्रभाकर राजू	वालीवाल	1984-85
25. श्री गोविन्द नारायण शर्मा	कबड्डी	1984-85

राजस्थान के श्रेष्ठ खिलाड़ी एवं उनका परिचय

एथलेटिक्स के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन पुरस्कार विजेता—सर्वश्री रामसिंह, गोपालसेनी।

महाराणा प्रताप पुरस्कार विजेता--श्री राजकुमार, श्रीमति हमीदा बानू, श्री राजेन्द्र शर्मा।

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—सर्वश्री कर्णसिंह, एस. एन. भाया, श्रीचन्द हजारीराम, कु. डेवन पोर्ट, रामनारायण, हरभजन सिंह, वलतेजसिंह।

अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल खिलाड़ी—सर्व श्री पोकरमल, श्रीमति सुजाता, सुन्दर, श्री कौशल नागर।

वेटर्न खिलाड़ी—सर्वश्री हरीकुमार दुसाज, जगनसिंह

परिचय

श्रीरामसिंह—आप सन् 1973 में सर्वोच्च राष्ट्रीय खेल सम्मान अर्जुन पुरस्कार से पुरस्कृत हुए क्योंकि 800 मी. की दौड़ में 1:45.77 से. का रिकार्ड आपने राष्ट्रीय स्तर पर बनाया। 1976 के मांट्रियल ओलम्पिक में सातवें स्थान पर रहे। पटियाला संस्थान में आप डिपलोमा प्राप्त प्रशिक्षक हैं तथा राजस्थान खेल परिषद के सदस्य भी आप रह चुके है।

श्री गोपाल सैनी—वर्ष 1981 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित श्री सैनी ने 300 स्टीपलचेस में 8:30.88 से. में राष्ट्रीय कीर्तिमान बनाया। एशियाई स्पर्द्धा में आप स्वर्णपदक विजेता रहे। आप महाराणा प्रताप पुरस्कार से भी सम्मानित हैं। ओलम्पिक बैंक में आप अधिकारी पद पर हैं तथा राजस्थान खेल परिषद के सदस्य हैं।

श्री राजकुमार— आपने 500 मी. की दौड़ में 13:46.4 से. का समय लेकर राष्ट्रीय रिकार्ड बनाया है। महाराणा प्रताप पुरस्कार से आप सम्मानित हैं तथा एशियाड दिल्ली में कांस्य पदक विजेता भी हैं।

श्रीमति हमीदा बानू टोकियो में आयोजित एशियायी प्रतिस्पर्द्धाओं में कांस्य पदक तथा दिल्ली में रजत पदक जीतने वाली श्रीमति हमीदा बानू महाराणा प्रताप पुरस्कार से भी सम्मानित हैं।

श्री राजेन्द्र शर्मा—आपने कुवैत में आयोजित एशियायी स्पर्द्धा में रजत पदक जीता है तथा महाराणा प्रताप पुरस्कार से भी सम्मानित हैं।

श्री बलतेजसिंह—इटली में आयोजित विश्व स्कूल प्रतियोगिता तथा अजमेर में सम्पन्न भारत-रूस एथलेटिक्स स्पर्द्धा में भाग लेने वाले अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के उदीयमान खिलाड़ी हैं।

कु. डेवन पोर्ट—आपने अपने समय में भाला फैंक में राष्ट्रीय कीर्तिमान बनाया। 1962 में जकार्ता में भाला फैंक में कांस्य पदक जीता तथा विभिन्न एथलेटिक्स प्रतियोगिताओं में भारत का प्रतिनिधित्व किया है।

श्रीहरिकुमार दुसाज—एशियायी वेटर्न एथलेटिक्स प्रतियोगिता में कांस्य पदक जीता।

श्री जगनसिंह—एशियायी वेटर्न एथलेटिक्स प्रतियोगिता में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर चार स्वर्णपदक जीते। आप भूतपूर्व विधायक भी हैं।

डा. कर्णसिंह—वर्ष 1951 में दिल्ली में पहली एशियायी खेलों में 4 × 100 मी. रिले में आप स्वर्णपदक विजेता हैं। आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में शारीरिक शिक्षा के प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं।

श्री रामनारायण—आपने 1975 में इंग्लैण्ड में आयोजित मैराथन दौड़ में भारत की ओर से भाग लिया।

श्री एस. एन. भाया—आपने 1946 में इण्डो-सिलोन और 1955 में बम्बई में तीन देशों की एथलेटिक्स प्रतियोगिता में भारत का प्रतिनिधित्व किया। आप शारीरिक शिक्षाविद हैं।

श्री श्रीचन्द-आपने कई अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में तथा 1956 में मेलबोर्न में आयोजित ओलम्पिक खेलों में भाग लेकर पदक जीते हैं और कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

श्रीसुन्दर—आपने इण्डो-फ्रेन्च वालीवाल टैस्ट के साथ इण्डो-श्रीलंका स्कूल एथलेटिक्स में भी भारत का प्रतिनिधित्व किया हैं।

क्रिकेट के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन पुरस्कार विजेता—श्री सलीम दुर्रानी।

महाराणा प्रताप पुरस्कार विजेता—श्री पार्थ सारथी शर्मा।

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—सर्वश्री जी. आर. सुन्दरम्, हनुमन्तसिंह।

अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल क्रिकेट खिलाड़ी—सर्वश्री लक्ष्मण सिंह (इंग्लैण्ड व आस्ट्रेलिया), शरदजोशी (इंग्लैण्ड)।

परिचय

श्री सलीम दुर्रानी—आप क्रिकेट के आलराउन्डर खिलाड़ी हैं। 1961 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित दुर्रानी विभिन्न देशों की क्रिकेट टीमों के विरुद्ध आक्रमण बल्लेबाजी और शानदार गेंदबाजी का श्रेय प्राप्त कर चुके हैं।

श्री पार्थसारथी शर्मा—आप महाराणा प्रताप पुरस्कार से सम्मानित टेस्ट क्रिकेटर हैं। आप मध्य क्षेत्र तथा राजस्थान के कप्तान भी रह चुके हैं।

श्री जी. आर. सुन्दरम्—आपने भारत का प्रतिनिधित्व एम. सी.सी. तथा न्यूजीलैण्ड क्रिकेट टीम के विरुद्ध किया है।

श्री हनुमन्तसिंह—राजस्थान व मध्यक्षेत्र के आप कप्तान रहे हैं तथा टेस्ट क्रिकेटर के रूप में आपने विभिन्न देशों के साथ अपनी कलात्मक बल्लेबाजी का प्रदर्शन किया।

बास्केट बाल के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन पुरस्कार विजेता—सर्वश्री खुशीराम, सुरेन्द्र कटारिया, हनुमानसिंह, अजमेर सिंह।

महाराणा प्रताप पुरस्कार विजेता—श्री हनुमानसिंह

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—सर्वश्री जुगलकिशोर कपूर, परमजीतसिंह, जोरावर सिंह, विष्णुकान्त शर्मा, महेन्द्र विक्रमसिंह, रघुराजसिंह, रमन गुप्ता, प्रताप सिंह, वी. पी. नरूला, दिनेश चतुर्वेदी, राजेन्द्र सिंह, अशोक गुप्ता, नारायण कल्ला, पवन कुमार चोरडिया, शिवकुमार मिश्रा, आनन्दसिंह, हरीदास, इकबाल पठान, निरंजन मोदारा एवं अमरसिंह।

श्री खुशीराम—आपको वर्ष 1967 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। एशिया के श्रेष्ठ खिलाड़ियों में आप की गिनती है। वर्तमान में आप राजस्थान खेल परिषद के एक सदस्य हैं।

श्री सुरेन्द्र कटारिया—1973 में आपको अर्जुन पुरस्कार मिला है तथा भारत का प्रतिनिधित्व आप अनेक बास्केट प्रतियोगिताओं में कर चुके है।

श्री हनुमानसिंह—1975 में अर्जुन पुरस्कार तथा 1983-84 में महाराणा प्रताप पुरस्कार से आपको सम्मानित किया गया है। आप न केवल राजस्थान टीम के सदस्य हैं बल्कि भारतीय टीम के साथ भी आपने देश का प्रतिनिधित्व किया है।

श्री अजमेरसिंह—1982 में अर्जुन पुरस्कार से अलंकृत अजमेरसिंह ने मास्को ओलम्पिक और दिल्ली एशियाड़ में चोटी के स्कोर प्राप्त किये हैं।

श्री पवन चोरड़िया—आपने भारत-श्रीलंका बास्केट बाल टेस्टों में भाग लिया। आप राजस्थान न्यायिक सेवा के अधिकारी है।

श्री परमजीतसिंह—अन्तर्राष्ट्रीय बास्केटबाल खिलाड़ी श्रीसिंह ने विभिन्न स्पर्द्धाओं के साथ मास्को ओलम्पिक में भाग लेने वाली भारतीय टीम का नेतृत्व किया।

श्री वी. वी. नरूला—पाकिस्तान में आयोजित प्रतियोगिता में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

श्री विष्णुकान्त शर्मा - 1970 में मनीला में आयोजित एशियायी प्रतियोगिता में भाग लेने वाली भारतीय टीम का नेतृत्व किया।

श्री जोरावर सिंह—आप भारत का प्रतिनिधित्व कई अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में कर चुके हैं तथा राजस्थान विजेता राजस्थान टीम के महत्वपूर्ण खिलाड़ी रहे हैं।

फुटबाल के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन पुरस्कार विजेता—श्री मगन सिंह

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—सर्वश्री विजय किशोर सिंह, नसीरुद्दीन, सी.पी.एन्डरयूस, देवीसिंह, चैनसिंह, प्रहलाद सिंह, सुशीलकुमार, हरीशचन्द, मालचन्द, जसवन्त सिंह तथा कु.सरोज चौहान

श्री मगन सिंह—1973 में अर्जुन पुरस्कार विजेता श्री सिंह भारत का नेतृत्व कर चुके हैं। आप राजस्थान

खेल परिषद के सदस्य भी रहे हैं।

श्री सी.पी. एन्डरयूस—टोकियो में आयोजित एशियायी यूथ फुटवाल प्रतियोगिता में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

श्री जसवन्त सिन्हा—आपने रंगून (वर्मा) में आयोजित प्रतियोगिता में भारतीय विश्वविद्यालय फुटवाल टीम का प्रतिनिधित्व किया।

कु.सरोज चौहान—आपने थाईलैण्ड के विरूद्ध भारतीय महिला फुटवाल टीम का प्रतिनिधित्व किया।

श्री सुशील कुमार—जर्मनी के विरुद्ध आयोजित विभिन्न टेस्टों में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

वालीवाल के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन पुरस्कार विजेता—श्री श्याम सुन्दर राव, श्री सुरेश मिश्रा।

महाराणा प्रताप पुरस्कार विजेता—श्री.आर.के. पुरोहित, सुश्री रमा पाण्डे।

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—सर्वश्री चमन भल्लावाला, राधेश्याम शर्मा, एन के मिश्रा, श्रीमति प्यारी कुट्टी कृष्णन्, सुमेरसिंह यादव, एस.एन. शुक्ला, अशोक असोपा, सुरेशचन्द्र शर्मा, अमरसिंह, गोपाल राम, हंगामी लाल अशोक जैन, प्रभाकर राजू।

श्री श्याम सुन्दर राव—वर्ष 1974 में अर्जुन पुरस्कार से पुरस्कृत आल राउण्डर श्री राव ने कई अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भारत का प्रतिनिधित्व किया। आप पटियाला संस्थान से डिप्लोमा प्राप्त प्रशिक्षक भी है।

श्री सुरेश मिश्रा—आप वर्ष 1979-80 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित हुए। आप दमदार स्मेशर है तथा अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं और टेस्ट मैचों में भारत का प्रतिनिधित्व कर चुके है।

श्री आर.के.पुरोहित—आलराउण्डर श्री पुरोहित को महाराणा प्रताप पुरस्कार से सम्मानित वर्ष 1983-84 में किया गया। लन्दन में आयोजित राष्ट्र मण्डलीय वालीवाल प्रतियोगिता में कांस्य पदक जीता। आप कई अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भारत का नेतृत्व व प्रतिनिधित्व कर चुके है।

सुश्री रमा पाण्डे—दिल्ली एशियाड़ सहित अनेक अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्द्धाओं में देश का प्रतिनिधित्व किया। बांये हाथ की स्मेशर सुश्री पाण्डे महाराणा प्रताप पुरस्कार से भी सम्मानित है।

श्री अमर सिंह—लन्दन में आयोजित राष्ट्र मण्डलीय वालीवाल प्रतियोगिताओं में कांस्य पदक जीतने के साथ अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

श्री अशोक कुमार आसोपा—आस्ट्रेलिया के विरुद्ध मद्रास में खेले गये टेस्ट मैच में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

श्री गोपाल राम—वर्ष 1981 में अमेरिका में आयोजित विश्व जूनियर प्रतियोगिता मे भारत का प्रतिनिधित्व किया।

श्री चिमन भल्लावाला ने सोवियत टीम के विरूद्ध, श्री एन.के. मिश्रा ने फ्रान्स के विरुद्ध, श्रीमति प्यारी ने फ्रान्स के विरुद्ध, श्री राधेश्याम शर्मा तथा श्री एस.एन. शुक्ला ने सोवियत संघ के विरुद्ध तथा श्री सुमेर सिंह यादव ने बैकांक के साथ भारत का प्रतिनिधित्व किया।

साईकिलिंग के श्रेष्ठ खिलाड़ी—

महाराणा प्रताप पुरस्कार विजेता-श्री गिरिराजरंगा

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—सर्व श्री अमरसिंह, गणेश सुथार, नरेन्द्र ओझा, धेनुपाल सिंह, गंगाधर, सुश्री चन्द्रिका, जयश्री भाटी।

श्री गिरिराज रंगा—आप रोम व मनीला में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय साइकिलिंग प्रतियोगिता में भारत का प्रतिनिधित्व कर चुके हैं। आपको महाराणा प्रताप पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

श्री अमर सिंह—आपने दिल्ली एशियाड, मनीला व बैकांक की अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्द्धाओं में भारत की ओर से भाग लिया।

श्री गंगाधर—रोम में सम्पन्न हुई अन्तर्राष्ट्रीय साइकिलिंग प्रतियोगिता में आपने भारत का प्रतिनिधित्व किया।

कु.चन्द्रिका गिताई ने मनीला में, श्री धेनुपाल सिंह

ने श्रीलंका में, श्री गणेश सुथार ने बैंकाक के एशियायी खेलों में, कु.जयश्री भाटी ने मनीला में तथा श्री नरेन्द्र ओझा ने भारत-बंगला देश साइकिलिंग स्पर्द्धा में भारत का प्रतिनिधित्व किया ।

घुड़सवारी के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन पुरस्कार विजेता – श्री खान मोहम्मद खान,

पद्मश्री विजेता—श्री रघुवीर सिंह

महाराणा प्रताप पुरस्कार विजेता—सर्वश्री प्रहलाद सिंह, गुलाम मोहम्मद खान, रिसालदार विशाल सिंह ।

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—सर्वश्री सुल्तान खान, राम सिंह, हुसेनखान ।

श्री खान मोहम्मद खान—वर्ष 1973 में अर्जुन पुरस्कार से पुरस्कृत श्री खान ने मास्को ओलम्पिक सहित विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भारत की ओर से भाग लिया है ।

श्री रघुवीरसिंह—दिल्ली एशियाड़ में आप ने दो स्वर्ण पदक जीते । आप पद्म श्री, अर्जुन पुरस्कार तथा महाराणा प्रताप पुरस्कार से पुरस्कृत है ।

कैप्टन जी. एम. खान – आप महाराणा प्रताप पुरस्कार के विजेता के साथ ही दिल्ली एशियाड़ घुड़सवारी प्रतिस्र्द्धाओं में भी स्वर्ण विजेता रहे है । भारतीय घुड़सवारी टीम के आप कप्तान रह चुके हैं ।

श्रीप्रहलाद सिंह—महाराणा प्रताप पुरस्कार विजेता श्री सिंह ने दिल्ली एशियाड़ घुड़सवारी के मुकावलों में कांस्य पदक जीता ।

श्री विशाल सिंह—आप दिल्ली एशियाड़ में स्वर्ण पदक विजेता रहे हैं । मास्को ओलम्पिक खेलों में भी आपने भाग लिया है तथा महाराणा प्रताप पुरस्कार से सम्मानित है ।

श्री सुल्तानसिंह व श्री रामसिंह ने दिल्ली एशियाड में तथा श्री हुसेनखां ने मास्को में आयोजित ओलम्पिक घुड़सवारी मुकाबलों में भारत का प्रतिनिधित्व किया ।

गोल्फ के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन व प्रताप पुरस्कार विजेता—श्री लक्ष्मण सिंह

श्री लक्ष्मण सिंह—दिल्ली एशियाड़ में आपने गोल्फ प्रतियोगिता में दो स्वर्ण पदक प्राप्त किये । वर्ष 1982-83 में आप को अर्जुन तथा महाराणा प्रताप पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

हाकी (पुरुष) के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—सर्वश्री जरनैल सिंह, गुरदेवेन्द्र सिंह, तेजेन्द्र सिंह एवं दलजिन्दर सिंह ।

श्री जरनैल सिंह—राजस्थान खेल परिषद के हाकी प्रशिक्षक श्री सिंह ने विभिन्न हाकी प्रतियोगिताओं में भारत का प्रतिनिधित्व किया है ।

श्री गुरदेवेन्द्र सिंह—आपने सन् 1969 में मद्रास में सम्पन्न इण्डो-सिलोन हाकी प्रतियोगिता में भारत का प्रतिनिधित्व किया ।

श्री तेजेन्द्रपाल सिंह—आप ने भारत का प्रतिनिधित्व बम्बई में सम्पन्न विश्व कप प्रतियोगिता में किया ।

श्री दलजिन्दर सिंह—आपने विभिन्न जूनियर अन्तर्राष्ट्रीय हाकी प्रतियोगिताओं में भारतीय टीम का प्रतिनिधित्व किया ।

हाकी (महिला) के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन पुरस्कार विजेता--श्रीमती सुनीता पुरी, सुश्री वर्षा सोनी ।

महाराणा प्रताप पुरस्कार—सुश्री वर्षा सोनी, सुश्री गंगोत्री भण्डारी ।

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—श्रीमति नीलम ।

श्रीमति सुनीता पुरी—वर्ष 1966 में आप को अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया गया । आपने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय महिला हाकी प्रतियोगिताओं में भारत का प्रतिनिधित्व किया है ।

कु. वर्षा सोनी—वर्ष 1981 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित कु.वर्षा सोनी ने दिल्ली एशियाड़ में स्वर्ण पदक जीता । आप भारतीय महिला टीम का नेतृत्व भी कर चुकी हैं महाराणा प्रताप पुरस्कार से भी आप को पुरस्कृत किया गया है ।

सुश्री गंगोत्री भण्डारी – दिल्ली एशियाड़ में स्वर्ण पदक विजेता सुश्री भण्डारी ने मास्को ओलम्पिक खेलों में भारत का प्रतिनिधित्व किया । वर्ष 1982-83में आपको महाराणा प्रताप पुरस्कार से सम्मानित किया गया । आपने

विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय महिला हाकी प्रतियोगिताओं में भाग लिया है।

श्रीमती नीलम—आपने मास्को में आयोजित प्रि. ओलम्पिक तथा सोवियत संघ की टीम के विरुद्ध भारत का प्रतिनिधित्व किया है।

पोलो के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन पुरस्कार विजेता—महाराजा प्रेमसिंह, लेफ्टीनेन्ट कर्नल किशनसिंह।

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी – कैप्टन विजयसिंह।

महाराजा प्रेमसिंह—आपको वर्ष 1961 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। आप विश्व स्तर के श्रेष्ठ खिलाड़ी हैं।

ले. क. किशनसिंह—श्रेष्ठ पोलो खिलाड़ी श्री सिंह को वर्ष 1963 में अर्जुन पुरस्कार से अलंकृत किया गया।

हैण्डबाल के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—श्री इरफान अली।

श्री इरफान अली—आपने चीन में सम्पन्न एशियायी प्रतियोगिता में तथा सिंगापुर में आयोजित एशियायी स्कूल स्पर्द्धा में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

कबड्डी के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी – सर्व श्री अश्फाक अहमद, गोविन्द नारायण, गिरिराज किशोर, लीलाराम एवं सुश्री साधना टोकड़ा।

श्री गिरिराज किशोर शर्मा – आप कबड्डी के प्रशिक्षक है। आपने दिल्ली एशियाड के प्रदर्शन कबड्डी मुकाबलों में भारत का प्रतिनिधित्व किया है।

श्री लालाराम यादव—बम्बई में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कबड्डी प्रतियोगिता में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

सुश्रीसाधना—वर्ष 1982 में दिल्ली में आयोजित एशियायी खेलों के प्रदर्शन कबड्डी मुकाबलों में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

श्री अश्फाक अहमद व श्री गोविन्द नारायण शर्मा ने भारतीय कबड्डी टीम के साथ एशिया के विभिन्न देशों का दौरा किया।

लान-टेनिस के श्रेष्ठ खिलाड़ी—

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी— श्री मनमोहन मेहरा।

श्री मनमोहन मेहरा—आपने न केवल अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में बल्कि विम्बल्डन में भी शानदार प्रदर्शन किया है।

निशानेबाजी के श्रेष्ठ खिलाड़ी—

अर्जुन पुरस्कार विजेता-डा. कर्णीसिंह, श्रीमति राजश्री कुमारी, श्रीमति भुवनेश्वरी कुमारी एवं महाराव भीम सिंह।

अन्तर्राष्ट्रीय निशानेबाज—सर्वश्री मेजर आपजी कल्याणसिंह, मानसिंह, देवीसिंह, ठाकुर कालूसिंह।

डा. कर्णीसिंह---आप देश के वरिष्ठतम खिलाड़ी है। प्रख्यात निशानेबाज एवं भूतपूर्व सांसद, अर्जुन पुरस्कार एवं महाराणा प्रताप पुरस्कार विजेता एवं ओलम्पियन डा. कर्णीसिंह ने 1962 में सियोल में सम्पन्न विश्व-निशानेबाजी प्रतियोगिता में रजत पदक प्राप्त किया। आप कई प्रतिस्पर्द्धाओं में भाग लेकर पदक एवं पुरस्कार जीत चुके हैं।

श्रीमति राजश्री---आप डा. कर्णीसिंह की सुपुत्री है तथा पिता की भांति ही विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग लेकर उत्कृष्ट प्रदर्शन कर चुकी हैं। आपने बहुत छोटी उम्र में ही वर्ष 1968 का अर्जुन पुरस्कार प्राप्त किया है।

श्रीमति भुवनेश्वरी—आप अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की महिला निशानेबाज है तथा वर्ष 1969 का अर्जुन पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं। आपने कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय निशानेबाजी प्रतिस्पर्द्धाओं में सराहनीय प्रदर्शन किया है।

महाराव भीमसिंह---वर्ष 1971 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित भीमसिंह ने निशानेबाजी की कई अन्त

राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग लेकर पदक प्राप्त किये हैं।

मेजर आपजी कल्याणसिंह—आप की प्रायः सभी प्रमुख खेलों में अभिरूचि है लेकिन निशानेबाजी में आप काफी दक्ष है। आप राजस्थान खेल परिषद के सदस्य भी है। आपने निशानेबाजी के निर्णायक व खेल पदाधिकारी के रूप में राज्य एवं देश को अपनी अमूल्य सेवाएं प्रदान की है। आप का निशानेबाजी के उद्‌भव और विकास में भी विशिष्ट योगदान है।

वर्ष 1962 की काहिरा प्रतियोगिता में आपको स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। वर्ष 1963 में टोकियो में तथा 1971 में फिनलैण्ड में आयोजित प्रतिस्पर्द्धाओं में आपने भाग लिया तथा भारतीय निशानेबाजी टीम के मैनेजर के रूप में विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग लिया

श्री मान सिंह—आपने सियोल में आयोजित एशियायी निशानेबाजी प्रतियोगिता में भाग लेकर कांस्य पदक जीता तथा दिल्ली एशियाड़ की निशानेबाजी प्रतियोगिताओं में भी भारत का प्रतिनिधित्व किया।

साफ्टबाल के श्रेष्ठ खिलाड़ी—

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—सुश्री भवानी कछावा, श्रीमति नीरजासिह, सुश्री ऊषा शर्मा एवं निशा जोशी।

सुश्री भवानी कछावा—आप वर्ष 1965 में कलकत्ता में अमेरिका के विरुद्ध खेली भारतीय महिला टीम की कप्तान थीं। आप महारानी कालेज, जयपुर में शारीरिक शिक्षा के निदेशक पद पर कार्यरत हैं।

श्रीमति नीरजासिंह—कु. निशा जोशी एवं कु. ऊषा शर्मा ने चीन के विरुद्ध टेस्ट मैचों में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

तैराकी के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन पुरस्कार विजेता—कु. रीमा दत्ता, श्री भंवर सिंह, मंजरी भार्गव

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—श्री अनिल गंजू, कु. ग्लेण्डा डिसूजा

सुश्री रीमादत्ता—अपने समय की जलपरी रीमा को वर्ष 1966 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

श्री भंवर सिंह—गोता खोरी में पारंगत श्री भंवर सिंह को वर्ष 1971 में अर्जुन पुरस्कार प्रदान किया गया आप मेयो कालेज, अजमेर में शारीरिक शिक्षा निदेशक पद पर कार्यरत है।

श्रीमति मंजरी भार्गव—आपने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय तैराकी प्रतियोगिताओं में भारत का प्रतिनिधित्व किया है। वर्ष 1974 में अर्जुन पुरस्कार से आपको विभूषित किया गया।

श्री अनिल गंजू व ग्लैण्डा डिसूजा ने श्रीलंका व बंगलादेश के विरुद्ध भारत का प्रतिनिधित्व किया है।

स्क्वेश के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अर्जुन पुरस्कार विजेता—सुश्री भुवनेश्वरी कुमारी को वर्ष 1982 में अर्जुन पुरस्कार से विभूषित किया गया। आप राष्ट्रीय महिला स्क्वेश चैम्पियन रही है।

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—कु. हनी शर्मन राष्ट्रीय महिला स्क्वेश उपविजेता रही हैं तथा आपने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मुकाबलों में भारत का प्रतिनिधित्व कर श्रेष्ठ खेल का प्रदर्शन किया है।

टेबिल टेनस के श्रेष्ठ खिलाड़ी

अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी—श्री प्रमोद पाटनी भारतीय जूनियर टेबल टेनिस टीम के साथ वेस्टइंडीज का भ्रमण किया।

कुश्ती के श्रेष्ठ खिलाड़ी

महाराणा प्रताप पुरस्कार विजेता—श्रीरामफलसिंह।

अन्तर्राष्ट्रीय पहलवान—सर्वश्री राजेन्द्रप्रसाद, कमल सिंह एवं मेहरदीन।

श्री रामफल—आपने तेहरान में सम्पन्न एशियायी प्रतियोगिता में रजत पदक प्राप्त किया। इसके पूर्व हिसार में आयोजित एशियायी जूनियर कुश्ती में स्वर्ण तथा लाहौर में सम्पन्न एशियायी सीनियर दंगल में कांस्य पदक भी प्राप्त कर चुके है। आपको महाराणा प्रताप पुरस्कार से सम्मानित वर्ष 1983 में किया गया।

श्री राजेन्द्र प्रसाद—आपने ब्रिसवेन (आस्ट्रेलिया) की अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्र मण्डलीय प्रतियोगिता में भारत का प्रतिनिधत्व कर रजत पदक प्राप्त किया ।

श्री कमलसिंह—हिसार में सम्पन्न जूनियर कुश्ती प्रतियोगिता में आपने भारत का प्रतिनिधित्व किया ।

श्री मेहरदीन—आप अपने समय के श्रेष्ठ पहलवान रहे हैं। आपने कुश्ती टीम के साथ ईरान का भ्रमण किया ।

राज्य खेल-कूद क्षेत्र में खिलाड़ियों की उन्नति व उन का स्तर उच्चतर करने की दिशा में प्रयत्नशील है। इस वर्ष (1988-89) विभिन्न राष्ट्रीय स्तर की खेल प्रतियोगिताओं में राज्य के खिलाड़ियों ने 15 स्वर्ण व 10 कांस्य पदक प्राप्त किये हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ष 1988-89 में 25 नये ग्रामीण खेल-कूद केन्द्र खोलने का लक्ष्य है। इनके परिणामस्वरूप राज्य में इस वित्तीय वर्ष के अन्त तक 17 जिलों में खेल-कूद केन्द्र स्थापित हो जाने की सम्भावना है ।

राजस्थान प्रथम बार आडिट हाकी विजेता

राजस्थान पहली बार आडिट हाकी विजेता बना जब उसने 10-3-89 को फाईनल मैच में मध्यप्रदेश को एक के मुकाबले दो गोल से हराकर पश्चिमी क्षेत्र आडिट हाकी प्रतियोगिता का खिताब जीत लिया ।

राजस्थान केसरी खिताब—भरतपुर के पहलवान निर्भयसिंह ने नाथद्वारा में आयोजित कुश्ती प्रतियोगिता में गंगानगर के पहलवान सुनील कुमार को पराजित कर **'राजस्थान केसरी'** का खिताब हासिल किया है ।

※

राजस्थान-आंकड़ों की दृष्टि में

तालिका संख्या—1

राजस्थान एवं अन्य देशों का क्षेत्रफल

देश	क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)
राजस्थान राज्य	3,42,239
जापान	3,77,801
पोलैण्ड	3,12,683
इटली	3,01,278
युगोस्लेविया	2,55,804
जर्मन गणतन्त्र	2,48,706
ब्रिटेन	2,44,100
चेकोस्लोवाकिया	1,27,896
पुर्तगाल	92,389
श्रीलंका	65,610
वेल्जियम	30,519
इजराइल	20,700

तालिका संख्या—2

राजस्थान एवं अन्य राज्यों का क्षेत्रफल

राज्य	क्षेत्रफल (वर्ग किमी.)
असम	78,523
आन्ध्र प्रदेश	2,76,814
उड़ीसा	1,55,782
उत्तरप्रदेश	2,94,413
कर्नाटक	1,91,773
केरल	38,864
गुजरात	1,95,984
जम्मू-कश्मीर	2,22,236
तमिलनाडु	1,30,069
त्रिपुरा	10,477
नागालैण्ड	16,527
पंजाब	50,362
प. बंगाल	87,853
विहार	1,73,876
मणिपुर	22,356
मध्य प्रदेश	4,43,459
महाराष्ट्र	3,07,762
मेघालय	22,489
राजस्थान	3,42,239
सिक्किम	7,299
हरियाणा	44,222
हिमाचल प्रदेश	55,673

तालिका संख्या—3

राजस्थान की प्रमुख पर्वत चोटियों की ऊंचाई

नाम	जिला	ऊंचाई (मी.)
1. गुरुशिखर (माऊन्ट आवू)	सिरोही	1,727
2. सेर (माऊन्ट आवू)	सिरोही	1,597
3. जरगा	उदयपुर	1,431
4. अचलगढ़ (माऊन्ट आवू)	सिरोही	1,380
5. रघुनाथगढ़	सीकर	1,055
6. खो	जयपुर	920
7. तारागढ़	अजमेर	873
8. भैराच	अलवर	792
9. बावाई	जयपुर	873
10. वैराठ	अलवर	704

तालिका संख्या—4

प्रमुख नगरों का अधिकतम-न्यूनतम तापमान

नगर	(सेलशियस) अधिकतम	न्यूनतम
अजमेर	44°	2°
अलवर	45°	8°
बांसवाड़ा	44°	8°
बाड़मेर	45°	5°
धौलपुर	47°	3°
भीलवाड़ा	44°	5°
बीकानेर	48°	6°
चित्तौड़गढ़	44°	6°
चूरू	47°	4°
श्रीगंगानगर	47°	3°
जयपुर	44°	3°
जैसलमेर	46°	2°
झालावाड़	45°	3°
जोधपुर	45°	5°
कोटा	45°	9°
नागौर	47°	0°
सीकर	45°	3°
आवू पर्वत	35°	0°
उदयपुर	41°	3°
सवाईमाधोपुर	45°	2°

तालिका संख्या—5
राज्य के जिलों की औसत वार्षिक वर्षा

जिला	औसत वर्षा (से.मी.)
1. गंगानगर	25·40
2. बीकानेर	26·40
3. चूरू	32·55
4. झुन्झुनू	44·45
5. अलवर	61·20
6. भरतपुर	67·20
7. सवाईमाधोपुर	68·90
8. जयपुर	54·80
9. सीकर	46·60
10. अजमेर	52·70
11. टोंक	61·40
12. जैसलमेर	16·40
13. जोधपुर	31·90
14. नागौर	38·85
15. पाली	49·05
16. बाड़मेर	27·75
17. जालौर	42·15
18. सिरोही	63.85
19. भीलवाड़ा	69·90
20. उदयपुर	62·45
21. चित्तौड़गढ़	85·20
22. डूंगरपुर	76·20
23. बांसवाड़ा	92·25
24. बूंदी	76·70
25. कोटा	88·55
26. झालावाड़	100·40
27. धौलपुर	75·10

तालिका संख्या—6
राजस्थान की नदियों की लम्बाई व अपवाह क्षेत्र

नदियां	लम्बाई (किमी.)	अपवाह क्षेत्र (वर्ग किमी.)
1. चम्बल नदी	965	72,032
2. लूनी नदी	320	34,866
3. माही नदी	576	16,551
4. बनास नदी	480	2,837
5. साहबी	185	5,794
6. कान्तली	100	4,668
7. बेड़च	190	—
8. कोठारी	145	—
9. खारी	80	—
10. पार्वती	65	—
11. बाणगंगा	380	2,325
12. काली सिन्ध	345	11,445

तालिका—7
राजस्थान में पशुधन संरचना (1983)

पशुधन	संख्या लाखों में
चौपाए	135·04
भैंसें	60·43
भेड़ें	134·31
बकरे-बकरियां	154·79
घोड़े	0·30
खच्चर	0·02
गधे	2·25
ऊंट	7·56
सूअर	1·79
कुत्ते	14·33
मुर्गे-मुर्गियां	22·13
कुल पशुधन	532·90

तालिका—8
भारत व राजस्थान में स्त्री-पुरूष अनुपात 1901-1981

वर्ष	भारत का स्त्री पुरुष अनुपात	राजस्थान का स्त्री पुरूष अनुपात
1901	972	905
1911	962	908
1921	956	896
1931	952	907
1941	947	906
1951	948	921
1961	943	908
1971	931	911
1981	934	919

तालिका संख्या—9

विभिन्न साधनों द्वारा सिंचित क्षेत्र (हजार हैक्टेअर में)

साधन	1951-52	1962-63	1972-73	1977-78	1983-84	1984-85
नहरें	224	581	819	914	1502	1359
तालाब	82	214	105	231	240	139
कुऐं व नलकूप	684	977	1314	1550	2210	2294
अन्य साधन	17	51	32	70	72	38
कुल सिंचित क्षेत्र	1007	1823	2270	2765	4024	3830

तालिका—10

राजस्थान में सातवीं योजना में वार्षिक बुवाई एवं उत्पादन

फसलें	सातवीं योजना 1985-90		बुआई क्षेत्र '000 हैक्टेयर में			उत्पादन '000 टनों में		
			1985-86	1986-87	1987-88	1985-86	1986-87	1987-88
	क्षेत्रफल	उत्पादन	वास्तविक	अनुमानित	लक्ष्य	वास्तविक	अनुमानित	लक्ष्य
खरीफ								
1. अनाज	66·00	38·50	68·86	63·97	66·95	18·70	13·26	35·20
2. दलहन	19·50	5·00	19·04	18·57	19·30	0·99	1·66	4·43
3. तिलहन	8·10	4·20	8·18	7·32	7·40	2·11	1·57	3.40
4. अन्य	29·90	38·00	23·74	24·20	29.70	16·26	16.45	32·80
योग	**123·50**	**85·70**	**119·82**	**114·06**	**123·35**	**38·06**	**32·94**	**75·83**
रबी								
1. अनाज	25·00	49·70	20·99	18·76	23·85	44·92	35·89	45·20
2. दलहन	19·50	19·80	19·76	13·11	18·90	16·57	7·48	17·20
3. तिलहन	13·00	10·50	11·09	10·16	13·40	7·00	7·92	9·95
4. अन्य	2.50	—	2.44	2·21	2.00	—	—	—
योग	**60.00**	**80.00**	**54.28**	**44.24**	**58.15**	**68.49**	**51.29**	**72.37**

तालिका—11

जनसंख्या का घनत्व 1901-1981

वर्ष	1901	1911	1921	1931	1941	1951	1961	1971	1981
राजस्थान	30	32	30	34	41	47	59	75	100
भारत	77	82	81	90	103	127	142	177	216

राजस्थान की प्रशासनिक इकाइयां, ग्राम एवं नगर

संभाग	5
जिले	27
उपखण्ड	83
जिला परिषदें	27
तहसीलें	210
पंचायत समितियाँ	237
ग्राम पंचायतें	7353
नगर	201
ग्रामों की संख्या	37124
नगरपालिकाएँ	192

पशुधन से सम्बन्धित आंकड़े

कुल पशुधन	532.90 लाख
वार्षिक उत्पादन	36 लाख टन दूध 1750 लाख अण्डे, 17.50 हजार टन मांस 15 हजार मैट्रिक टन मछली
पशु धन पर वित्तीय आवंटन (86-87)	375 लाख रुपये
,, (1987-88)	425 लाख रुपये
पशु चिकित्सा संस्थाऐं	1088
मछली उत्पादन से आय (1986-87)	150 लाख रुपये
,, (1987-88)	160 लाख रुपये
मुर्गे-मुर्गियां	22 13 लाख
राज्य स्तरीय कुक्कट शालाऐं	2
बायलर फार्म	3
सघन कुक्कट विकास खण्ड	10
भेड़ों की संख्या	134.31 लाख
ऊन का उत्पादन	15,600 टन
भेड़ पालक परिवार	2 लाख
भेड़ पालक जिला कार्यालय	17
भेड़ ऊन प्रसार केन्द्र	135
प्रस्तावित भेड़ ऊन प्रसार केन्द्र (88-89)	5
भेड़ कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र	28
प्रस्तावित कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र (1988-89)	3
वित्तीय आवंटन(1988-89)	6.99 करोड़ रुपये

कृषि से सम्बन्धित आंकड़े

कृषि योग्य भूमि	266.06 लाख हैक्टेयर
बोया गया क्षेत्रफल (86-87)	180.75 लाख हैक्टेयर
बोया गया क्षेत्रफल (87-88)	141.32 लाख हैक्टेयर
बोया जाने वाला क्षेत्रफल (1988-89)	182.50 लाख हैक्टेयर
खाद्यान्न उत्पादन के अन्तर्गत क्षेत्रफल (86-87)	128.50 लाख हैक्टेयर
,, (87-88)	91.92 लाख हैक्टेयर
खाद्यान्न उत्पादन (86-87)	70.00 लाख टन
,, (87-88)	53.20 लाख टन
,, लक्ष्य (1988-89)	82.40 लाख टन
अधिक उपज देने वाली किस्मों के अन्तर्गत क्षेत्रफल	33.70 लाख हैक्टेयर
अधिक उपज देने वाले बीजों का वितरण	188.80 हजार क्विंटल
खाद का उपयोग (प्रति है.)	15.26 कि. ग्रा.
सिंचित क्षेत्रफल	40.14 लाख हैक्टेयर
फलदार पौधों का वितरण	20 लाख
फल विकास (लक्ष्य 88-89)	7500 हैक्टेयर
वित्तीय आवंटन (1988-89)	49.44 करोड़ रुपये

राजस्थान डेयरी उद्योग सम्बन्धी आंकड़े

जिला दुग्ध उत्पादन सहकारी संघ	16
दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियां एवं संग्रहण केन्द्र	4314
प्रस्तावित दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियां (1988-89)	600
डेयरी संयन्त्र	10
कुल दैनिक क्षमता	9.20 लाख लीटर
अवशीतन केन्द्र	24
औसत दुग्ध संकलन	5.48 लाख लीटर
पशु आहार संयन्त्र	5
पशु आहार का उत्पादन	14400 मी. टन
वित्तीय आवंटन (88-89)	2 करोड़ रुपये

तालिका—16

राजस्थान की जनसंख्या सम्बन्धी तथ्य

क्र सं.	जिले का नाम	क्षेत्रफल वर्ग किमी.	जनसंख्या (1981) के अनुसार	जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग किमी.	पुरुष/स्त्री अनुपात
1.	अजमेर	8,481	14,40,366	171	922
2.	अलवर	8,380	7,71,173	213	892
3.	बांसवाड़ा	5,037	8,86,600	177	984
4.	बाड़मेर	28,387	11,18,892	39	904
5.	भरतपुर	5,084	12,99,073	232	831
6	भीलवाड़ा	10,455	13,10,379	126	942
7.	बीकानेर	27,244	8,48,749	31	891
8	बूंदी	5,550	5,86,982	107	887
9.	चित्तौड़गढ़	10,856	12,32,494	114	951
10.	चूरू	16,830	11,79,466	69	954
11.	धौलपुर	3,009	5,85,059	194	803
12.	डूंगरपुर	3,770	6,82,845	185	1045
13.	गंगानगर	20,634	20,29,968	98	874
14.	जयपुर	14,068	34,20,574	244	894
15.	जैसलमेर	38,401	2,43,082	6	811
16	जालौर	10,640	9,03,073	85	942
17.	झालावाड़	6,219	7,84,998	127	926
18.	झुंझुनू	5,928	12,11,583	202	956
19.	जोधपुर	22,850	16,67,791	73	909
20.	कोटा	12,436	15,59,784	126	888
21.	नागौर	17,718	16,28,669	92	958
22.	पाली	12,387	12,74,504	104	946
23.	सवाईमाधोपुर	10,527	15,35,870	146	867
24	सीकर	7,732	13,77,245	174	963
25	सिरोही	5,136	5,42,049	106	963
26.	टौंक	7,194	7,83,635	108	928
27.	उदयपुर	17,279	23,56,959	193	977

तालिका—17

जिलानुसार राज्य में साक्षरता स्तर

जिला	साक्षरता 1971	दर 1981
1. गंगानगर	20.19	26.03
2. बीकानेर	25.82	28.20
3. चूरू	18.96	21.86
4. झुन्झुनू	23.25	28.61
5. अलवर	19.73	26.53
6. भरतपुर	19.79	26.74
7. सवाई माधोपुर	16.29	23.23
8. जयपुर	23.73	31.40
9. सीकर	19.61	25.43
10. अजमेर	30.30	35.30
11. टोंक	15.36	20.56
12. जैसलमेर	13.41	15.80
13. जोधपुर	21.38	26.64
14. नागौर	15.09	19.38
15. पाली	17.20	21.87
16. बाड़मेर	10.58	12.29
17. जालौर	10.13	13.70
18. सिरोही	16.73	20.07
19. भीलवाड़ा	15 10	19.79
20. उदयपुर	17.41	22.01
21. चित्तौड़गढ़	17.52	21.94
22. डूंगरपुर	14.31	18.52
23. बाँसवाड़ा	12.42	16.85
24. बूंदी	16.01	20.14
25. कोटा	25 28	32.33
26. झालावाड़	17.56	22.11
27. धौलपुर	16.05	21.00
राजस्थान ..	19.07	24.38

तालिका—18

उद्योग सम्बन्धित आंकड़े

लघु उद्योगों की संख्या	1,35,350 (दिसम्बर, 1987)
विनियोजित की संख्या	575 करोड़ रुपये ,, ,,
श्रमिकों की संख्या	5.00 लाख (दिसम्बर, 1987)
औद्योगिक क्षेत्र	174
जिला उद्योग केन्द्र	27
पंजीकृत कारखानों की संख्या	9150
राज. राज्य औद्योगिक विकास एवं विनियोजन निगम द्वारा स्वीकृत	23.95 करोड़ रुपये
राज. वित्त निगम द्वारा स्वीकृत	64.11 करोड़ रुपये
ऋण वितरण (दिसम्बर,87)	54 करोड़ रुपये

तालिका—19

विद्युत सम्बन्धित आंकड़े

विद्युतीकृत गांवों की संख्या (87-88)	22439
ऊर्जीकृत कुओं की संख्या (87-88)	2.94 लाख
बिजली अधिष्ठापित क्षमता (88-89)	2337.28 लाख मेगावाट
विद्युत उत्पादन (86-87)	4620.00 मिलियन यूनिटस
क्रय (86-87)	2724.00 मिलियन यूनिटस
कुओं का ऊर्जीकरण (लक्ष्य 88-89)	15,000
गांवों का विद्युतीकरण (लक्ष्य 88-89)	1,300
पवन चक्कियों का प्रावधान (88-89)	32
सोलर्स कुकर्स सहायता (87-88)	6500
वित्तीय आवंटन (88-89)	208.71 करोड़ रुपये

तालिका—20

राजस्थान में ग्रामीण व नगरीय जनसंख्या 1901-1981

वर्ष	ग्रामीण जनसंख्या	नगरीय जनसंख्या	कुल जनसंख्या
1901	87,43,434	15,50,655	1,02,94,089
1911	95,06,680	14,75,829	1,19,82,509
1921	88,17,313	14,75,335	1,02,92,648
1931	1,00,18,796	17,29,205	1,17,47,974
1941	1,16,46,759	21,17,101	1,37,63,860
1951	1,30,15,499	29,55,275	1,59,70,774
1961	1,68,74,124	32,81,478	2,01,55,602
1971	2,12,22,045	45,44,761	2,57,66,806
1981	2,70,51,354	72,10,508	3,42,61,862

तालिका—21

राष्ट्रीय उद्यान एवं वन्य जीव अभ्यारण्य

क्र. सं.	क्षेत्र का नाम	जिला	क्षेत्रफल वर्ग किमी
	राष्ट्रीय उद्यान		
1.	रणथम्भौर राष्ट्रीय उद्यान	सवाई माधोपुर	392
2.	केवला देव राष्ट्रीय उद्यान (घना पक्षी विहार)	भरतपुर	82
3.	राष्ट्रीय मरु-उद्यान (अकाल)	जैसलमेर	21 हेक्टेयर
	वन्य जीव अभ्यारण्य-		
1.	सरिस्का अभ्यारण्य	अलवर	492
2.	दर्रा अभ्यारण्य	कोटा	201
3.	जवाहर सागर अभ्यारण्य	कोटा	100
4.	राष्ट्रीय चम्बल अभ्यारण्य	कोटा	280
5.	कुम्भलगढ़ अभ्यारण्य(रणकपुर)	उदयपुर	500
6.	जयसमन्द अभ्यारण्य	उदयपुर	52
7.	आबू संरक्षण स्थल	सिरोही	112.6
8.	सीता माता अभ्यारण्य	चित्तौड़गढ़	500
9.	वन विहार अभ्यारण्य	धौलपुर	59
10.	ताल छापर अभ्यारण्य	चुरू	8.20
11.	जम्वा रामगढ़ अभ्यारण्य	जयपूर	300
12.	नाहरगढ़ अभ्यारण्य	जयपुर	50
13.	रामगढ़ विशधड़ी	बूंदी	307
14.	वारोदा अभ्यारण्य	भरतपुर	—
15.	रामसागर अभ्यारण्य	भरतपुर	—
16.	फुलवाड़ी की नल	उदयपुर	—
17.	रावली टाडगढ़ अभ्यारण्य	अजमेर	—
18.	पीपल खूंट अभ्यारण्य	बांसवाड़ा	—
19.	सारगढ़ अचरोल अभ्यारण्य	कोटा	—
20.	केवलादेवी अयअभ्यारण्य	सवाई माधोपूर	—

तालिका—22

राजस्थान और भारत में साक्षरता का प्रतिशत

वर्ष	राजस्थान	भारत
1901	3.47	7.35
1911	3.41	5.92
1921	3.25	7.16
1931	3.96	9.50
1941	5.46	16.10
1951	8.02	16.67
1961	15.21	24.02
1971	19.07	29.45
1981	24.38	36.23

तालिका—23

राज्य में पुरुषों व स्त्रियों के बीच साक्षरता

कुल जनसंख्या की दर

कुल	पुरुष	स्त्रियाँ
24.36	36.30	11.42

ग्रामीण जनसंख्या की दर

कुल	पुरुष	स्त्रियाँ
17.99	29.65	5.49

नगरीय जनसंख्या की दर

कुल	पुरुष	स्त्रियाँ
48.35	60.55	34.45

तालिका—24

राज्य के प्रमुख शहरों की वृद्धि की दर

शहर	वृद्धि की दर 1961-71	स्थान	वृद्धि की दर 1971-81	स्थान
1. जयपुर	5ɔ.17	2	57.78	2
2. जोधपुर	41.31	4	55.41	3
3. अजमेर	14.29	7	41.64	5
4. कोटा	76.98	1	62.88	1
5. बीकानेर	25.26	6	34.21	7
6. उदयपुर	45.11	3	42.46	4
7. अलवर	38.06	5	39.45	6

तालिका—25

जिलेवार अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या ('000 में)

राज्य/जिला	कुल जनसंख्या	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति
राजस्थान राज्य	34262	5839	4183
1. गंगानगर	2030	590	5
2. बीकानेर	849	156	1·5
3. चुरू	1179	231	6
4. झुन्झुनूं	1212	181	23
5. अलवर	1771	312	144
6. भरतपुर	1299	278	30
7. सवाई माधोपुर	1536	328	348
8. जयपुर	3421	556	390
9, सीकर	1377	189	37
10. अजमेर	1440	265	32
11. टोंक	784	162	92
12. जैसलमेर	243	35	11
13. जोधपुर	1668	259	40
14, नागौर	1629	312	3
15. पाली	1275	226	70
16. बाड़मेर	1119	175	57
17. जालोर	903	154	72
18. सिरोही	542	102	125
19. भीलवाड़ा	1310	223	122
20. उदयपुर	2357	193	809
21. चित्तौड़गढ़	1232	178	224
22. डूंगरपुर	683	31	440
23. बांसवाड़ा	887	42	644
24. बूंदी	587	111	118
25. कोटा	1560	293	231
26. झालावाड़	785	134	92
27. धौलपुर	585	124	26

तालिका—26

राज्यों में नगरों का विकास 1901-1981

नगर की श्रेणी	1901	1911	1921	1931	1941	1951	1961	1971	1981
I (1,00,000 व अधिक)	1	1	2	2	4	4	6	7	11
II (50,000-99,999)	4	3	2	2	2	4	4	7	11
III (20,000-49,999)	8	9	7	9	13	20	23	31	52
IV (10,000-19,999)	26	24	20	26	28	37	52	64	98
V (5000-9999)	64	60	58	64	74	96	51	38	22
VI (5000 से कम)	32	41	58	47	36	66	9	4	1

तालिका—27

राजस्थान का तुलनात्मक अतीत और वर्तमान

मद	विवरण	माप	1950-51	1980-81	1985-86	1988-89 (सम्भावित)
कृषि	खाद्यान्न उत्पादन	लाख टन	29 46	65.02	81.18	104.85
सिंचाई	कुल सिंचित क्षेत्र	हजार हैक्टेयर	1171	3749	4007	4670
विद्युत	उपलब्ध विद्युत क्षमता	मेगावाट	8.00	1210.82	1802.36	2337.28
	विद्युतीकृत ग्राम/	संख्या	42	15440	21427	25368
	कुओं का ऊर्जीकरण	संख्या लाख में	—	2.14	2.84	2.99
उद्योग	औद्योगिक इकाइयाँ	संख्या हजार में	—	43	124	135.35
	औद्योगिक क्षेत्र	संख्या हजार में	—	134	171	174
पशु पालन	पशु चिकित्सालय एवं औषधालय	संख्या	144	657	1083	1088
चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं	ऐलोपैथिक चिकित्सालय/औषधालय/ प्रा. स्व. केन्द्र/एडपोस्ट इत्यादि	संख्या	390	1169	1617	1798
	आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सालय/औषधालय	संख्या	1350	2484	3118	3215
	होमियोपैथिक चिकित्सालय	संख्या	—	63	80	85
	चल चिकित्सालय	संख्या	—	2	3	8
पेयजल	नगरीय योजनाएँ	संख्या	5	201	201	201
	ग्रामीण योजनाएँ	संख्या	—	7887	23752	28343
शिक्षा प्रसार	प्राथमिक विद्यालय	संख्या	4494	21863	27558	28512
	उच्च प्राथमिक विद्यालय	संख्या	834	5175	7950	8133
	माध्यमिक एवं सीनियर उच्च मा. विद्यालय	संख्या	20	2420	2944	3236
	महाविद्यालय	संख्या	51	120	135	137
	विश्वविद्यालय	संख्या	1	3	5	5
	साक्षरता का प्रतिशत	प्रतिशत	8.95	23.44	24.38	24.38
सड़कें		किमी.	18749	41194	50436	52236
सहकारिता	सहकारी समितियाँ	संख्या	3590	16275	18696	19012
	समितियों की सदस्यता	संख्या लाख में	1.45	43.05	58.83	61.52